

प्रेमचंद रचनावली

14

प्रेमचंद रचनावली

14



कहानियां : 1928-1931

प्रेमचंद रचनावली

खण्ड : चौदह

भूमिका एवं मार्गदर्शन

डॉ० रामविलास शर्मा



प्रकाशकीय

'प्रेमचंद रचनावली' का प्रकाशन **जनवाणी** के लिए गौरव की बात है। कॉपीराइट समाप्त होने के बाद प्रेमचंद साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित-प्रचारित हुआ। पर उनका सम्पूर्ण साहित्य अब तक कहीं भी एक जगह उपलब्ध नहीं था। लगातार यह जरूरत महसूस की जा रही थी कि उनके सम्पूर्ण साहित्य का प्रामाणिक प्रकाशन हो।

श्रेष्ठ और कालजयी साहित्यकारों के समग्र कृतित्व का एकत्र प्रकाशन कई दृष्टियों से उपयोगी होता है। इसी आलोक में **'प्रेमचंद रचनावली'** की कुछ विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख बहुत आवश्यक है। इस रचनावली में पहली बार सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य सर्वाधिक शुद्ध और प्रामाणिक मूल पाठ के साथ सामने आया है। सम्पूर्ण रचनाओं का विभाजन पहले विधावार तत्पश्चात् कालक्रमानुसार किया गया है। रचनाओं के प्रथम प्रकाशन एवं उनके कालक्रम संबंधी प्रामाणिक जानकारी प्रत्येक रचना के अन्त में दी गई है जिससे प्रेमचंद के कृतित्व के अध्ययन और मूल्यांकन में विशेष सुविधा होगी। इसकी अधिकांश सामग्री प्रथम संस्करणों या काफी पुराने संस्करणों से ली गई है। प्रेमचंद साहित्य के अध्ययन, अध्यापन तथा शोध के लिए इस रचनावली का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि इसमें प्रेमचंद की अब तक उपलब्ध सम्पूर्ण तथा अद्यतन सामग्री का समावेश कर लिया गया है। रचनावली के बीस खण्डों का क्रमबद्ध प्रारूप इस प्रकार है—

खण्ड 1-6 : मौलिक उपन्यास, **खण्ड 7-9 :** लेख, भाषण, संस्मरण, संपादकीय, भूमिकाएं, समीक्षाएं, **खण्ड 10 :** मौलिक नाटक; **खण्ड 11-15:** सम्पूर्ण कहानियां (302); **खण्ड 16-17 :** अनुवाद (उपन्यास, नाटक, कहानी), **खण्ड 18 :** जीवनी एवं बाल साहित्य; **खण्ड 19 :** पत्र (चिट्ठी-पत्री); **खण्ड 20 :** विविध।

रचनावली की विस्तृत भूमिका मूर्धन्य आलोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखी है, जो इस रचनावली की सबसे बड़ी उपलब्धि है। डॉ॰ शर्मा ने अपनी साहित्य-साधना के व्यस्त क्षणों में भी हर कदम पर हमारा मार्गदर्शन किया। रचनावली का जो यह उत्कृष्ट रूप सामने आया है यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का प्रतिफल है। इस कृपा और सहयोग के लिए मैं उनके प्रति नतमस्तक हूं।

बिहार विधान परिषद् के माननीय सभापति, हिन्दी और उर्दू के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो॰ जाबिर हुसेन ने प्रेमचंद रचनावली के संपादक-मण्डल का अध्यक्ष होना स्वीकार किया और रचनावली के संपादन कार्य में हमारा उचित मार्गदर्शन किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं। साथ ही संपादक-मण्डल के विद्वान सदस्यों के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

श्री केशवदेव शर्मा ने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बावजूद सम्पादन कार्य में जिस गहरी लगन, समझदारी और आत्मीयता से सहयोग किया है उसके लिए उनके प्रति अनेकशः धन्यवाद। उनका अहर्निश सानिध्य मुझे स्फूर्ति प्रदान करता रहा। डॉ॰ गीता शर्मा एवं डॉ॰ अशोक कुमार शर्मा, वेद प्रकाश सोनी तथा डॉ॰ विनय के प्रति भी उनके हार्दिक सहयोग के लिए आभारी हूं।

भाई राम आनंद साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्रेमचंद द्वारा स्थापित प्रकाशन संस्थान **'सरस्वती प्रेस'** से जुड़ गए थे। लगभग बीस वर्षों तक उन्होंने स्व॰ श्रीपत राय (प्रेमचंद के ज्येष्ठ पुत्र) के मार्गदर्शन में अप्राप्य प्रेमचंद साहित्य पर शोध कार्य किया। वे स्व॰ श्रीपत राय के संपादन में प्रकाशित होने वाली विख्यात कथा-पत्रिका **'कहानी'** के सहायक संपादक रहे। श्रीपत राय के देहांत के बाद उन्होंने **'कहानी'** का स्वतंत्र रूप से संपादन किया और उसे नया रूप तथा गरिमा प्रदान की। उन्होंने जिस गहरी सूझ-बूझ, लगन, धैर्य और निष्ठा से इस रचनावली के संपादन कार्य को इतने सुरुचिपूर्ण और वैज्ञानिक ढंग से संपन्न किया, इसके लिए वे हम सबों के साधुवाद के पात्र हैं।

श्री हरीशचन्द्र वार्ष्णेय, श्री प्रेमशंकर शर्मा, श्री उदयकान्त पाठक ने प्रूफ-संशोधन और सम्पूर्ण मुद्रण कार्य में विशेष जागरूकता और मनस्विता का परिचय दिया; इनके साथ विमलसिंह, आर॰ के॰ यादव, सुनील जैन, शिवानंदसिंह तथा संस्था के अन्य सभी सहकर्मियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं क्योंकि इन सबके सहयोग और सद्भाव के बिना यह काम पूरा होना लगभग असंभव था।

मेरी भ्रातृजा रीमा और भ्रातृज संदीप, संजीव, मनीष, विक्रांत, चेतन की लगन और सूझबूझ ने भी मुझे सदैव प्रेरित और उत्साहित किया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

रचनावली के मुद्रण का कार्य श्री कान्तीप्रसाद शर्मा की देखरेख में हुआ है। उनकी सूझबूझ और श्रमनिष्ठा के लिए वे हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

सर्वश्री विजयदान देथा, यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', रामकुमार कृषक, स्वामी प्रेम जहीर, डॉ॰ कुसुम वियोगी, रामकुमार शर्मा आदि सभी मित्रों के सुझावों के लिए भी आभारी हूं।

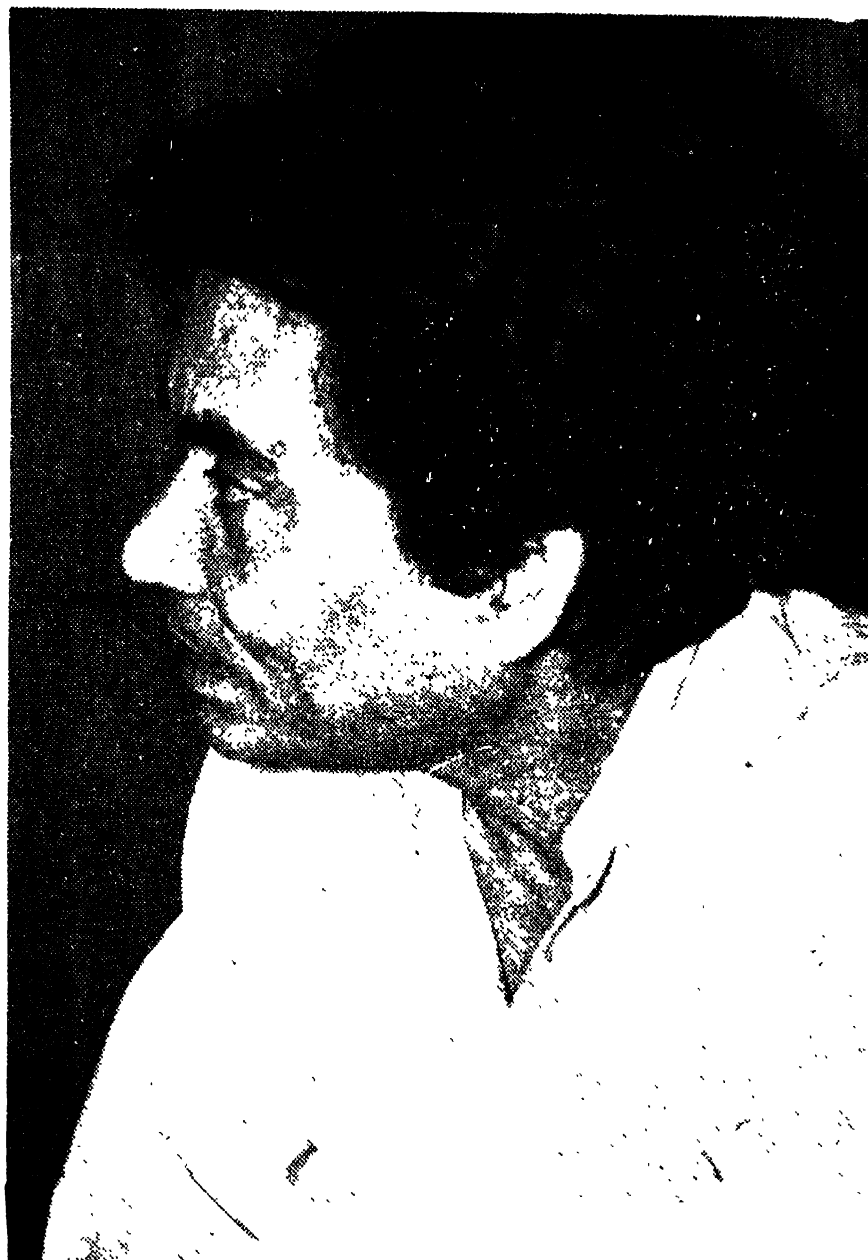
इस कार्य में पूज्य माताजी श्रीमती जसवन्ती देवी का आशीर्वाद और पिताश्री प्रेमनाथ शर्मा का दीर्घकालीन प्रकाशन-व्यवसाय का अनुभव और आशीर्वाद मेरे विशेष प्रेरणा स्रोत रहे। इनके साथ मातृतुल्या भाभी श्रीमती ललिता शर्मा, अग्रज राजकुमार शर्मा, चमनलाल शर्मा, धर्मपाल शर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी इन्दु शर्मा के साथ भाई हरीशकुमार शर्मा एवं सुभाषचन्द्र शर्मा के साथ ही चाचा श्री दीनानाथ शर्मा का भी आभारी हूं जिन्होंने पग-पग पर मेरा मार्ग-दर्शन किया। और सबसे अंत में सहधर्मिणी श्रीमती गीता शर्मा ने जो सहयोग और संबल प्रदान किया उसके लिए आभार अथवा धन्यवाद जैसा शब्द बहुत कम होगा। सारा श्रेय उन्हीं का है।

नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के सहयोग से दुर्लभ पुस्तक 'महात्मा शेखसादी' लगभग सत्तर वर्ष बाद एक बार फिर इस रचनावली के मार्फत पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। मैं नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं। उन समस्त संस्थानों, पुस्तकालयों, विभागों, संस्थाओं, लेखकों, संपादकों, अधिकारियों और व्यक्तियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने इस रचनावली के आयोजन में सहयोग किया।

अन्त में विद्वान पाठकों से हमारा निवेदन है कि वे इस रचनावली की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करें ताकि आगामी संस्करणों में उन्हें दूर किया जा सके।

हम आशा करते हैं कि हिन्दी जगत् इस बहु-प्रतीक्षित रचनावली का हार्दिक स्वागत करेगा।

अरुण कुमार
(प्रबंध निदेशक)



स्व० अमृत राय

(प्रेमचंद के छोटे पुत्र, सुप्रसिद्ध लेखक-अनुवादक, प्रेमचंद साहित्य के अग्रणी शोधकर्त्ता, प्रेमचंद की महान् जीवनी पुस्तक 'कलम का सिपाही' के प्रणेता)



शिवरानी प्रेमचंद 1962

कथाक्रम

अग्नि-समाधि

साधु-संतों के सत्संग से बुरे भी अच्छे हो जाते हैं, किन्तु पयाग का दुर्भाग्य था कि उस पर सत्संग का उल्टा ही असर हुआ। उसे गाँजे, चरस और भंग का चस्का पड़ गया, जिसका फल यह हुआ कि एक मेहनती, उद्यमशील युवक आलस्य का उपासक बन बैठा। जीवन-संग्राम में यह आनन्द कहाँ ! किसी वट-वृक्ष के नीचे धूनी जल रही है, एक जटाधारी महात्मा विराज रहे हैं, भक्तजन उन्हें घेरे बैठे हुए हैं, और तिल-तिल पर चरस के दम लग रहे हैं। बीच-बीच में भजन भी हो जाते हैं। मजूरी-धतूरी में यह स्वर्ग-सुख कहाँ ! चिलम भरना पयाग का काम था। भक्तों को परलोक में पुण्य-फल की आशा थी, पयाग को तत्काल फल मिलता था—चिलमों पर पहला हक उसी का होता था। महात्माओं के श्रीमुख से भगवत् चर्चा सुनते हुए वह आनंद से विह्वल हो उठता था, उस पर आत्मविस्मृति-सी छा जाती थी। वह सौरभ, संगीत और प्रकाश से भरे हुए एक दूसरे ही संसार में पहुँच जाता था। इसलिए जब उसकी स्त्री रुक्मिन रात के दस-ग्यारह बज जाने पर उसे बुलाने आती, तो पयाग को प्रत्यक्ष क्रूर अनुभव होता, संसार उसे काँटों से भरा हुआ जंगल-सा दीखता, विशेषतः जब घर आने पर उसे मालूम होता कि अभी चूल्हा नहीं जला और चने-चवेने की कुछ फिक्र करनी है। वह जाति का भर था, गाँव की चौकीदारी उसकी मीरास थी, दो रुपये और कुछ आने वेतन मिलता था। वरदी और साफा मुफ्त। काम था सप्ताह में एक दिन थाने जाना, वहाँ अफसरों के द्वार पर झाड़ू लगाना, अस्तबल साफ करना, लकड़ी चीरना। पयाग रक्त के घूँट पी-पी कर ये काम करता, क्योंकि अवज्ञा शारीरिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टि से महँगी पड़ती थी। आँसू यों पुछते थे कि चौकीदारी में यदि कोई काम था, तो इतना ही, और महीने में चार दिन के लिए दो रुपये और कुछ आने कम न थे। फिर गाँव में भी अगर बड़े आदमियों पर नहीं, तो नीचों पर रोब था। वेतन पेंशन थी और जब से महात्माओं का सम्पर्क हुआ, वह पयाग के जेब-खर्च की मद में आ गयी। अतएव जीविका का प्रश्न दिनोंदिन चिन्तोत्पादक रूप धारण करने लगा। इन सत्संगों के पहले यह दम्पति गाँव में मजदूरी करता था। रुक्मिन लकड़ियाँ तोड़ कर बाजार ले जाती, पयाग कभी आरा चलाता, कभी हल जोतता, कभी पुर हाँकता। जो काम सामने आ जाय, उसमें जुट जाता था। हँसमुख, श्रमशील, विनोदी, निर्द्वन्द्व आदमी था और ऐसा आदमी कभी भूखों नहीं मरता। उस पर नम्र इतना कि किसी काम के लिए 'नहीं' न करता। किसी ने कुछ कहा और वह 'अच्छा भैया' कह कर दौड़ा। इसलिए उसका गाँव में मान था। इसी की बदौलत निरुद्यम होने पर भी दो-तीन साल उसे अधिक कष्ट न हुआ। दोनों जून की तो बात ही

क्या, जब महतो को यह ऋद्धि न प्राप्त थी, जिनके द्वार पर बैलों की तीन-तीन जोड़ियाँ बँधती थीं, तो पयाग किस गिनती में था। हाँ, एक जून की दाल-रोटी में संदेह न था। परन्तु अब यह समस्या दिन पर दिन विषमतर होती जाती थी। उस पर विपत्ति यह थी कि रुक्मिन भी अब किसी कारण से उसकी पतिपरायण, उतनी सेवाशील, उतनी तत्पर न थी। नहीं, उसकी प्रगल्भता और वाचालता में आश्चर्यजनक विकास होता जाता था। अतएव पयाग को किसी ऐसी सिद्धि की आवश्यकता थी, जो उसे जीविका की चिंता से मुक्त कर दे और वह निश्चिंत हो कर भगवद्‌भजन और साधु-सेवा में प्रवृत्त हो जाय।

एक दिन रुक्मिन बाजार में लकड़ियाँ बेच कर लौटी, तो पयाग ने कहा—ला, कुछ पैसे मुझे दे दे, दम लगा आऊँ।

रुक्मिन ने मुँह फेर कर कहा—दम लगाने की ऐसी चाट है, तो काम क्यों नहीं करते ? क्या आजकल कोई बाबा नहीं हैं, जा कर चिलम भरो ?

पयाग ने त्योरी चढ़ा कर कहा—भला चाहती है तो पैसे दे दे; नहीं तो इस तरह तंग करेगी, तो एक दिन कहीं चला जाऊँगा, तब रोयेगी।

रुक्मिन अँगूठा दिखा कर बोली—रोये मेरी बला। तुम रहते ही हो, तो कौन सोने का कौर खिला देते हो ? अब भी छाती फाड़ती हूँ, तब भी छाती फाड़ूँगी।

'तो अब यही फैसला है ?'

'हाँ-हाँ, कह तो दिया, मेरे पास पैसे नहीं हैं।'

'गहने बनवाने के लिए पैसे हैं और मैं चार पैसे माँगता हूँ, तो यों जवाब देती है !'

रुक्मिन तिनक कर बोली—गहने बनवाती हूँ, तो तुम्हारी छाती क्यों फटती है? तुमने तो पीतल का छल्ला भी नहीं बनवाया, या इतना भी नहीं देखा जाता ?

पयाग उस दिन घर न आया। रात के नौ बज गये, तब रुक्मिन ने किवाड़ बंद कर लिये। समझी, गाँव में कहीं छिपा बैठा होगा। समझता होगा, मुझे मनाने आयेगी, मेरी बला जाती है।

जब दूसरे दिन भी पयाग न आया, तो रुक्मिन को चिंता हुई। गाँव भर छान आयी। चिड़िया किसी अड्डे पर न मिली। उस दिन उसने रसोई नहीं बनायी। रात को लेटी भी तो बहुत देर तक आँखें न लगीं। शंका हो रही थी, पयाग सचमुच तो विरक्त नहीं हो गया। उसने सोचा, प्रातःकाल पत्ता-पत्ता छान डालूँगी, किसी साधु-संत के साथ होगा। जा कर थाने में रपट कर दूँगी।

अभी तड़का ही था कि रुक्मिन थाने में चलने को तैयार हो गयी। किवाड़ बंद करके निकली ही थी कि पयाग आता हुआ दिखाई दिया। पर वह अकेला न था। उसके पीछे-पीछे एक स्त्री भी थी। उसकी छींट की साड़ी, रँगी हुई चादर, लम्बा घूँघट और शर्मीली चाल देख कर रुक्मिन का कलेजा धक्-से हो गया। वह एक क्षण हत्-बुद्धि-सी खड़ी रही, तब बढ़ कर नयी सौत को दोनों हाथों के बीच में ले लिया और उसे इस भाँति धीरे-धीरे घर के अंदर ले चली, जैसे कोई रोगी जीवन से निराश हो कर विष-पान कर रहा हो !

जब पड़ोसियों की भीड़ छंट गयी तो रुक्मिन ने पयाग से पूछा—इसे कहाँ से लाये ?

पयाग ने हँस कर कहा—घर से भागी जाती थी, मुझे रास्ते में मिल गयी। घर का काम-धंधा करेगी, पड़ी रहेगी।

'मालूम होता है, मुझसे तुम्हारा जी भर गया।'

पयाग ने तिरछी चितवनों से देख कर कहा—दुत् पगली ! इसे तेरी सेवा-टहल करने को लाया हूँ।

'नयी के आगे पुरानी को कौन पूछता है ?'

'चल, मन जिससे मिले वही नयी है, मन जिससे न मिले वही पुरानी है। ला, कुछ पैसा हो तो दे दे, तीन दिन से दम नहीं लगाया, पैर सीधे नहीं पड़ते। हाँ, देख दो-चार दिन इस बेचारी को खिला-पिला दे, फिर तो आप ही काम करने लगेगी।'

रुक्मिन ने पूरा रुपया ला कर पयाग के हाथ पर रख दिया। दूसरी बार कहने की जरूरत ही न पड़ी।

2

पयाग में चाहे और कोई गुण हो या न हो, यह मानना पड़ेगा कि वह शासन के मूल सिद्धांतों से परिचित था। उसने भेद-नीति को अपना लक्ष्य बना लिया था।

एक मास तक किसी प्रकार की विघ्न-बाधा न पड़ी। रुक्मिन अपनी सारी चौकड़ियाँ भूल गयी थी। बड़े तड़के उठती, कभी लकड़ियाँ तोड़ कर, कभी चारा काट कर, कभी उपले पाथ कर बाजार ले जाती। वहाँ जो कुछ मिलता, उसका आधा तो पयाग के हत्थे चढ़ा देती। आधे में घर का काम चलता। वह सौत को कोई काम न करने देती। पड़ोसियों से कहती—बहन, सौत है तो क्या, है तो अभी कल की बहुरिया। दो-चार महीने भी आराम से न रहेगी, तो क्या याद करेगी। मैं तो काम करने को हूँ ही।

गाँव भर में रुक्मिन के शील-स्वभाव का बखान होता था, पर सत्संगी घाघ पयाग सब कुछ समझता था और अपनी नीति की सफलता पर प्रसन्न होता था।

एक दिन बहू ने कहा—दीदी, अब तो घर में बैठे-बैठे जी ऊबता है। मुझे भी कोई काम दिला दो।

रुक्मिन ने स्नेह सिंचित स्वर में कहा—क्या मेरे मुख में कालिख पुतवाने पर लगी हुई है ? भीतर का काम किये जा, बाहर के लिए मैं हूँ ही।

बहू का नाम कौशल्या था, जो बिगड़ कर सिलिया हो गया था। इस वक्त सिलिया ने कुछ जवाब न दिया। लेकिन वह लौंड़ियों की दशा अब उसके लिए असह्य हो गयी थी। वह दिन भर घर का काम करते-करते मरे, कोई नहीं पूछता। रुक्मिन बाहर से चार पैसे लाती है, तो घर की मालकिन बनी हुई है। अब सिलिया भी मजूरी करेगी और मालकिन का घमंड तोड़ देती। पयाग पैसों का यार है, यह बात उससे अब छिपी न थी। जब रुक्मिन चारा ले कर बाजार चली गयी, तो उसने घर की टट्टी लगायी और गाँव का रंग-ढंग देखने के लिए निकल पड़ी। गाँव में ब्राह्मण, ठाकुर, कायस्थ, बनिये सभी थे। सिलिया ने शील और संकोच का कुछ ऐसा स्वांग रचा कि सभी स्त्रियाँ उस पर मुग्ध हो गयीं। किसी ने चावल दिया, किसी ने दाल, किसी ने कुछ। नयी बहू की आवभगत कौन न करता ? पहले ही दौरे में सिलिया को मालूम हो गया कि गाँव में पिसनहारी का स्थान खाली है और वह इस कमी को पूरा कर सकती है। वह यहाँ से घर लौटी, तो उसके सिर पर गेहूँ से भरी हुई एक टोकरी थी।

पयाग ने पहर रात ही से चक्की की आवाज सुनी, तो रुक्मिन से बोला—आज तो सिलिया अभी से पीसने लगी।

रुक्मिन बाजार से आटा लायी थी। अनाज और आटे के भाव में विशेष अंतर न था। उसे आश्चर्य हुआ कि सिलिया इतने सबेरे क्या पीस रही है। उठ कर कोठरी में आयी, तो देखा कि सिलिया अँधेरे में बैठी कुछ पीस रही है। उसने जा कर उसका हाथ पकड़ लिया और टोकरी को उठा कर बोली—तुझसे किसने पीसने को कहा है ? किसका अनाज पीस रही है ?

सिलिया ने निश्शंक हो कर कहा—तुम जा कर आराम से सोती क्यों नहीं। मैं पीसती हूँ, तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है ! चक्की की घुमुर-घुमुर भी नहीं सही जाती ? लाओ, टोकरी दे दो, बैठे-बैठे कब तक खाऊँगी, दो महीने तो हो गये।

'मैंने तो तुझसे कुछ नहीं कहा !'

'तुम कहो, चाहे न कहो; अपना धरम भी तो कुछ है।'

'तू अभी यहाँ के आदमियों को नहीं जानती। आटा तो पिसाते सबको अच्छा लगता है। पैसे देते रोते हैं। किसका गेहूँ है ? मैं सबेरे उसके सिर पर पटक आऊँगी।'

सिलिया ने रुक्मिन के हाथ से टोकरी छीन ली और बोली—पैसे क्यों न देंगे ? कुछ बेगार करती हूँ ?

'तू न मानेगी ?'

'तुम्हारी लौंडी बन कर न रहूँगी।'

यह तकरार सुन कर पयाग भी आ पहुँचा और रुक्मिन से बोला—काम करती है तो करने क्यों नहीं देती ? अब क्या जनम भर बहुरिया ही बनी रहेगी ? हो गये दो महीने।

'तुम क्या जानो नाक तो मेरी कटेगी।'

सिलिया बोल उठी—तो क्या कोई बैठे खिलाता है ? चौका-बरतन, झाड़ू-बहारू, रोटी-पानी, पीसना-कूटना, यह कौन करता है ? पानी खींचते-खींचते मेरे हाथों में घट्ठे पड़ गये। मुझसे अब सारा काम न होगा।

पयाग ने कहा—तो तू ही बाजार जाया कर। घर का काम रहने दे ! रुक्मिन कर लेगी। रुक्मिन ने आपत्ति की—ऐसी बात मुँह से निकालते लाज नहीं आती ? तीन दिन की बहुरिया बाजार में घूमेगी, तो संसार क्या कहेगा !

सिलिया ने आग्रह करके कहा—संसार क्या कहेगा, क्या कोई ऐब करने जाती हूँ ?

सिलिया की डिग्री हो गयी। आधिपत्य रुक्मिन के हाथ से निकल गया।

सिलिया की अमलदारी हो गयी। जवान औरत थी। गेहूँ पीस कर उठी तो औरों के साथ घास छीलने चली गयी, और इतनी घास छीली कि सब दंग रह गयीं ! गट्ठा उठाये न उठता था। जिन पुरुषों को घास छीलने का बड़ा अभ्यास था, उनसे भी उसने बाजी मार ली ! यह गट्ठा बारह आने का बिका। सिलिया ने आटा, चावल, दाल, तेल, नमक, तरकारी, मसाला सब कुछ लिया, और चार आने बचा भी लिये। रुक्मिन ने समझ रखा था कि सिलिया बाजार से दो-चार आने पैसे ले कर लौटेगी तो उसे डाटूँगी और दूसरे दिन से फिर बाजार जाने लगूँगी। फिर मेरा राज्य हो जायगा। पर यह सामान देखे, तो आँखें खुल गयीं।

वह खाने बैठा तो मसालेदार तरकारी का बखान करने लगा। महीनों से ऐसी स्वादिष्ट

वस्तु मयस्सर न हुई थी। बहुत प्रसन्न हुआ। भोजन करके वह बाहर जाने लगा, तो सिलिया बरोठे में खड़ी मिल गयी। बोला—आज कितने पैसे मिले ?

'बारह आने मिले थे !'

'सब खर्च कर डाले ? कुछ बचे हों तो मुझे दे दे।'

सिलिया ने बचे हुए चार आने पैसे दे दिये। पयाग पैसे खनखनाता हुआ बोला—तूने तो आज मालामाल कर दिया। रुक्मिन तो दो-चार पैसों ही में टाल देती थी।

'मुझे गाड़ कर रखना थोड़े ही है। पैसा खाने-पीने के लिए है कि गाड़ने के लिए ?'

'अब तू ही बाजार जाया कर, रुक्मिन घर का काम करेगी।'

3

रुक्मिन और सिलिया में संग्राम छिड़ गया। सिलिया पयाग पर अपना आधिपत्य जमाये रखने के लिए जान तोड़ कर परिश्रम करती। पहर रात ही से उसकी चक्की की आवाज कानों में आने लगती। दिन निकलते ही घास लाने चली जाती और जरा देर सुस्ता कर बाजार की राह लेती। वहाँ से लौट कर भी वह बेकार न बैठती, कभी सन कातती, कभी लकड़िया तोड़ती। रुक्मिन उसके प्रबंध में बराबर ऐब निकालती और जब अवसर मिलता तो गोबर बटोर कर उपले पाथती और गाँव में बेचती। पयाग के दोनों हाथों में लड्डू थे। स्त्रियाँ उसे अधिक से अधिक पैसे देने और स्नेह का अधिकांश देकर अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न करती रहतीं, पर सिलिया ने कुछ ऐसी दृढ़ता से आसन जमा लिया था कि किसी तरह हिलाये न हिलती थी। यहाँ तक कि एक दिन दोनों प्रतियोगियों में खुल्लमखुल्ला ठन गयी। एक दिन सिलिया घास ले कर लौटी तो पसीने से तर थी। फागुन का महीना था; धूप तेज थी। उसने सोचा, नहा कर तब बाजार जाऊँगी। घास द्वार पर ही रख कर वह तालाब में नहाने चली गयी। रुक्मिन ने थोड़ी-सी घास निकाल कर पड़ोसिन के घर में छिपा दी और गट्ठे को ढीला करके बराबर कर दिया। सिलिया नहा कर लौटी तो घास कम मालूम हुई। रुक्मिन से पूछा। उसने कहा—मैं नहीं जानती। सिलिया ने गालियाँ देनी शुरू कीं—जिसने मेरी घास छुई हो, उसकी देह में कीड़े पड़ें, उसके बाप और भाई मर जायँ, उसकी आँखें फूट जायँ। रुक्मिन कुछ देर तक तो जब्त किये बैठी रही, आखिर खून में उबाल आ ही गया। झल्ला कर उठी और सिलिया के दो-तीन तमाचे लगा दिये। सिलिया छाती पीट-पीट कर रोने लगी। सारा मुहल्ला जमा हो गया। सिलिया की सुबुद्धि और कार्यशीलता सभी की आँखों में खटकती थी—वह सबसे अधिक घास क्यों छीलती है, सबसे ज्यादा लकड़ियाँ क्यों लाती है, इतने सबेरे क्यों उठती है, इतने पैसे क्यों लाती है, इन कारणों ने उसे पड़ोसियों की सहानुभूति से वंचित कर दिया था। सब उसी को बुरा-भला कहने लगीं। मुट्ठी भर घास के लिए इतना ऊधम मचा डाला, इतनी घास तो आदमी झाड़ कर फेंक देता है। घास न हुई, सोना हुआ। तुझ तो सोचना चाहिए था कि अगर किसी ने ले ही लिया, तो है तो गाँव-भर ही का। बाहर का कोई चोर तो आया नहीं। तूने इतनी गालियाँ दीं, तो किसको दीं ? पड़ोसियों ही को तो ?

संयोग से उस दिन पयाग थाने गया हुआ था। शाम को थका-माँदा लौटा तो सिलिया से बोला—ला कुछ पैसे दे दे, तो दम लगा आऊँ। थक कर चूर हो गया हूँ।

सिलिया उसे देखते ही हाय-हाय करके रोने लगी। पयाग ने घबरा कर पूछा—क्या हुआ ? क्यों रोती है ? कहीं गमी तो नहीं हो गयी ? नैहर से कोई आदमी तो नहीं आया ?

'अब इस घर में मेरा रहना न होगा। अपने घर जाऊँगी।'

'अरे, कुछ मुँह से तो बोल; हुआ क्या ? गाँव में किसी ने गाली दी है ? किसने गाली दी है ? घर फूँक दूँ, उसका चालान करवा दूँ।'

सिलिया ने रो-रो कर सारी कथा कह सुनायी। पयाग पर आज थाने में खूब मार पड़ी थी। झल्लाया हुआ था। वह कथा सुनी, तो देह में आग लग गयी। रुक्मिन पानी भरने गयी थी। वह अभी घड़ा भी न रखने पायी थी कि पयाग उस पर टूट पड़ा और मारते-मारते बेदम कर दिया। वह मार का जवाब गालियों से देती थी और पयाग हर एक गाली पर और झल्ला-झल्ला कर मारता था। यहाँ तक कि रुक्मिन के घुटने फूट गये, चूड़ियाँ टूट गयीं। सिलिया बीच-बीच में कहती जाती थी—वाह रे तेरा दीदा ! वाह रे तेरी जबान ! ऐसी तो औरत ही नहीं देखी। औरत काहे को, डाइन है, जरा भी मुँह में लगाम नहीं ! किंतु रुक्मिन उसकी बातों को मानो सुनती ही न थी। उसकी सारी शक्ति पयाग को कोसने में लगी हुई थी। पयाग मारते-मारते थक गया, पर रुक्मिन की जबान न थकी। बस, यही रट लगी हुई थी—तू मर जा, तेरी मिट्टी निकले, तुझे भवानी खायँ, तुझे मिरगी आये। पयाग रह-रह कर क्रोध से तिलमिला उठता और आ कर दो-चार लातें जमा देता। पर रुक्मिन को अब शायद चोट ही न लगती थी। वह जगह से हिलती भी न थी। सिर के बाल खोले, जमीन पर बैठी इन्हीं मंत्रों का पाठ कर रही थी। उसके स्वर में अब क्रोध न था, केवल एक उन्मादमय प्रवाह था। उसकी समस्त आत्मा हिंसा-कामना की अग्नि से प्रज्ज्वलित हो रही थी।

अँधेरा हुआ तो रुक्मिन उठ कर एक ओर निकल गयी, जैसे आँखों से आँसू की धार निकल जाती है। सिलिया भोजन बना रही थी। उसने उसे जाते देखा भी, पर कुछ पूछा नहीं। द्वार पर पयाग बैठा चिलम पी रहा था। उसने भी कुछ न कहा।

4

जब फसल पकने लगती थी, तो डेढ़-दो महीने तक पयाग को हार की देखभाल करनी पड़ती थी। उसे किसानों से दोनों फसलों पर हल पीछे कुछ अनाज बँधा हुआ था। माघ ही में वह हार के बीच में थोड़ी-सी जमीन साफ करके एक मड़ैया डाल लेता था और रात को खा-पी कर आग, चिलम और तमाखू-चरस लिये हुए इसी मड़ैया में जा कर पड़ा रहता था। चैत के अंत तक उसका यही नियम रहता था। आजकल वही दिन थे। फसल पकी हुई तैयार खड़ी थी। दो-चार दिन में कटाई शुरू होनेवाली थी। पयाग ने दस बजे रात तक रुक्मिन की राह देखी। फिर यह समझ कर कि शायद किसी पड़ोसिन के घर सो रही होगी, उसने खा-पी कर अपनी लाठी उठायी और सिलिया से बोला—किवाड़ बंद कर ले, अगर रुक्मिन आये तो खोल देना, और, मना-जुना कर थोड़ा-बहुत खिला देना। तेरे पीछे आज इतना तूफान हो गया। मुझे न-जाने इतना गुस्सा कैसे आ गया। मैंने उसे कभी फूल की छड़ी से भी न छुआ था। कहीं बूड़-धँस न मरी हो, तो कल आफत आ जाय।

सिलिया बोली—न जाने वह आयेगी कि नहीं। मैं अकेली कैसे रहूँगी। मुझे डर लगता है।

'तो घर में कौन रहेगा ? सूना घर पा कर कोई लोटा-थाली उठा ले जाय तो ? डर किस बात का है ? फिर रुक्मिन तो आती ही होगी।'

सिलिया ने अंदर से टट्टी बंद कर ली। पयाग हार की ओर चला। चरस की तरंग में यह भजन गाता जाता था –

ठगिनी ! क्या नैना झमकावे
कद्दू काट मृदंग बनावे, नीबू काट मजीरा;
पाँच तरोई मंगल गावें, नाचे बालम खीरा।
रूपा पहिर के रूप दिखावे, सोना पहिर रिझावे;
गले डाल तुलसी की माला, तीन लोक भरमावे।
ठगिनी.....।

सहसा सिवाने पर पहुँचते ही उसने देखा कि सामने हार में किसी ने आग जलायी। एक क्षण में एक ज्वाला-सी दहक उठी। उसने चिल्ला कर पुकारा—कौन है वहाँ ? अरे, यह कौन आग जलाता है ?

ऊपर उठती हुई ज्वालाओं ने अपनी आग्नेय जिह्वा से उत्तर दिया।

अब पयाग को मालूम हुआ कि उसकी मड़ैया में आग लगी हुई है। उसकी छाती धड़कने लगी। इस मड़ैया में आग लगाना रुई के ढेर में आग लगाना था। हवा चल रही थी। मड़ैया के चारों ओर एक हाथ हट कर पकी हुई फसल की चादर-सी बिछी हुई थी। रात में भी उनका सुनहरा रंग झलक रहा था। आग की एक लपट, केवल एक जरा-सी चिनगारी सारे हार को भस्म कर देगी। सारा गाँव तबाह हो जायगा। इसी हार से मिले हुए दूसरे गाँव के भी हार थे। वे भी जल उठेंगे। ओह ! लपटें बढ़ती जा रही हैं। अब विलम्ब करने का समय न था। पयाग ने अपना उपला और चिलम वहीं पटक दिया और कंधे पर लोहबंद लाठी रख कर बेतहाशा मड़ैया की तरफ दौड़ा। मेड़ों से जाने में चक्कर था, इसलिये वह खेतों में से हो कर भागा जा रहा था। प्रति क्षण ज्वाला प्रचंडतर होती जाती थी और पयाग के पाँव और तेजी से उठ रहे थे। कोई तेज घोड़ा भी इस वक्त उसे पा न सकता था। अपनी तेजी पर उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था। जान पड़ता था, पाँव भूमि पर पड़ते ही नहीं। उसकी आँखें मड़ैया पर लगी हुई थीं—दाहिने-बायें से और कुछ न सूझता था। इसी एकाग्रता ने उसके पैरों में पर लगा दिये थे। न दम फूलता था, न पाँव थकते थे। तीन-चार फरलाँग उसने दो मिनट में तय कर लिये और मड़ैया के पास जा पहुँचा।

मड़ैया के आस-पास कोई न था। किसने यह कर्म किया है, यह सोचने का मौका न था। उसे खोजने की तो बात ही और थी। पयाग का संदेह रुक्मिन पर हुआ। पर यह क्रोध का समय न था। ज्वालाएँ कुचाली बालकों की भाँति ठट्ठा मारतीं, धक्कम-धक्का करतीं, कभी दाहिनी ओर लपकतीं और कभी बायीं तरफ। बस, ऐसा मालूम होता था कि लपट अब खेत तक पहुँची, अब पहुँची। मानो ज्वालाएँ आग्रहपूर्वक क्यारियों की ओर बढ़तीं और असफल हो कर दूसरी बार फिर दूने वेग से लपकती थीं। आग कैसे बुझे ! लाठी से पीट कर बुझाने का मौका न था। वह तो निरी मूर्खता थी। फिर क्या हो ! फसल जल गयी, तो फिर वह किसी को मुँह न दिखा सकेगा। आह ! गाँव में कोहराम मच जायगा। सर्वनाश हो जायगा। उसने ज्यादा नहीं सोचा। गँवारों को सोचना नहीं आता। पयाग ने लाठी सँभाली,

जोर से एक छलाँग मार कर आग के अंदर मड़ैया के द्वार पर जा पहुँचा, जलती हुई मड़ैया को अपनी लाठी पर उठाया और उसे सिर पर लिये सबसे चौड़ी मेड़ पर गाँव की तरफ भागा। ऐसा जान पड़ा, मानो कोई अग्नि-यान हवा में उड़ता चला जा रहा है। फूस की जलती हुई धज्जियाँ उसके ऊपर गिर रही थीं, पर उसे इसका ज्ञान तक न होता था। एक बार एक मूठा अलग हो कर उसके हाथ पर गिर पड़ा। सारा हाथ भुन गया। पर उसके पाँव पल भर भी नहीं रुके, हाथों में जरा भी हिचक न हुई। हाथों का हिलना खेती का तबाह होना था। पयाग की ओर से अब कोई शंका न थी। अगर भय था तो यही कि मड़ैया का वह केंद्र-भाग जहाँ लाठी का कुंदा डाल कर पयाग ने उसे उठाया था, न जल जाय; क्योंकि छेद के फैलते ही मड़ैया उसके ऊपर आ गिरेगी और अग्नि-समाधि में मग्न कर देगी। पयाग यह जानता था और हवा की चाल से उड़ा चला जाता था। चार फरलाँग की दौड़ है। मृत्यु अग्नि का रूप धारण किये हुए पयाग के सर पर खेल रही है और गाँव की फसल पर। उसकी दौड़ में इतना वेग है कि ज्वालाओं का मुँह पीछे को फिर गया है और उसकी दाहक शक्ति का अधिकांश वायु से लड़ने में लग रहा है। नहीं तो अब तक बीच में आग पहुँच गयी होती और हाहाकार मच गया होता। एक फरलाँग तो निकल गया, पयाग की हिम्मत ने हार नहीं मानी। वह दूसरा फरलाँग भी पूरा हो गया। देखना पयाग, दो फरलाँग की और कसर है। पाँव जरा भी सुस्त न हों। ज्वाला लाठी के कुंदे पर पहुँची और तुम्हारे जीवन का अंत है। मरने के बाद भी तुम्हें गालियाँ मिलेंगी, तुम अनंत काल तक आहों की आग में जलते रहोगे। बस, एक मिनट और ! अब केवल दो खेत और रह गये हैं। सर्वनाश ! लाठी का कुंदा निकल गया। मड़ैया नीचे खिसक रही है, अब कोई आशा नहीं। पयाग प्राण छोड़ कर दौड़ रहा है, वह किनारे का खेत आ पहुँचा। अब केवल दो सेकेंड का और मामला है। विजय का द्वार सामने बीस हाथ पर खड़ा स्वागत कर रहा है। उधर स्वर्ग है, इधर नरक। मगर वह मड़ैया खिसकती हुई पयाग के सिर पर आ पहुँची। वह अब भी उसे फेंक कर अपनी जान बचा सकता है। पर उसे प्राणों का मोह नहीं। वह उस जलती हुई आग को सिर पर लिये भागा जा रहा है ! वहाँ उसके पाँव लड़खड़ाये ! अब यह क्रूर अग्नि-लीला नहीं देखी जाती।

एकाएक एक स्त्री सामने के वृक्ष के नीचे से दौड़ती हुई पयाग के पास पहुँची। यह रुक्मिन थी। उसने तुरंत पयाग के सामने आकर गरदन झुकायी और जलती हुई मड़ैया के नीचे पहुँच कर उसे दोनों हाथों पर ले लिया। उसी दम पयाग मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा। उसका सारा मुँह झुलस गया था।

रुक्मिन उसके अलाव को लिये एक सेकेंड में खेत के डाँड़े पर आ पहुँची, मगर इतनी दूर में उसके हाथ जल गये, मुँह जल गया और कपड़ों में आग लग गयी। उसे अब इतनी सुधि भी न थी कि मड़ैया के बाहर निकल आये। वह मड़ैया को लिये हुए गिर पड़ी। इसके बाद कुछ देर तक मड़ैया हिलती रही। रुक्मिन हाथ-पाँव फेंकती रही, फिर अग्नि ने उसे निगल लिया। रुक्मिन ने अग्नि-समाधि ले ली।

कुछ देर के बाद पयाग को होश आया। सारी देह जल रही थी। उसने देखा, वृक्ष के नीचे फूस की लाल आग चमक रही है। उठ कर दौड़ा और पैर से आग को हटा दिया—नीचे रुक्मिन की अधजली लाश पड़ी हुई थी। उसने बैठ कर दोनों हाथों से मुँह ढाँप

लिया और रोने लगा।

प्रातःकाल गाँव के लोग पयाग को उठा कर उसके घर ले गये। एक सप्ताह तक उसका इलाज होता रहा, पर बचा नहीं। कुछ तो आग ने जलाया था, जो कुछ कसर थी, वह शोकाग्नि ने पूरी कर दी।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'विशाल भारत', जनवरी, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित। उर्दू रूप 'मजारे आतिश' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'खाके परवाना' में संकलित।]

मोटरामजी शास्त्री

पण्डित मोटेरामजी शास्त्री को कौन नहीं जानता ? आप अधिकारियों का रुख देखकर काम करते हैं। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में आपने उस आन्दोलन का खूब विरोध किया था। स्वराज्य आन्दोलन के दिनों में भी आपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर भी उनकी तकदीर की मीठी नींद न टूटी और अध्यापन-कार्य से पिण्ड न छूटा, तो अन्त में आपने एक नयी तदबीर सोची। घर में जाकर धर्मपत्नीजी से बोले—इन बूढ़े तोतों को रटाते-रटाते मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्या फल मिला जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूं ?

धर्मपत्नी ने चिंतित होकर कहा—भोजनों का भी तो कोई सहारा चाहिए ?

मोटेराम—तुम्हें जब देखो, पेट ही की फिक्र पड़ी रहती है। कोई ऐसा बिरला ही दिन जाता होगा कि निमंत्रण न मिलते हों, और चाहे कोई निन्दा ही करे, पर मैं परोसा लिए बिना नहीं आता हूं। क्या आज ही सब यजमान मरे जाते हैं ? मगर जन्म-भर पेट ही जिलाया तो क्या किया। संसार का कुछ सुख भी तो भोगना चाहिए। मैंने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा—वैद्य कैसे बनोगे, कुछ वैद्यकी पढ़ी भी है ?

मोटे.—वैद्यक पढ़ने से कुछ नहीं होता, संसार में विद्या का इतना महत्त्व नहीं जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके हैं, बस और कुछ नहीं है। आज ही अपने नाम के आगे भिषगाचार्य बढ़ा लूंगा, कौन पूछने आता है, तुम भिषगाचार्य हो या नहीं। किसी को क्या गरज पड़ी है जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूंगा। उस पर यह शब्द लिखे होंगे—'यहां स्त्री-पुरुषों के गुप्त रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है।' दो-चार पैसे का हड़-बहेड़ा-आवंला कूट-छानकर रख लूंगा। बस, इस काम के लिए इतना सामान पर्याप्त है। हां, समाचारपत्रों में विज्ञापन दूंगा और नोटिस बंटवाऊंगा। उसमें लंका, मद्रास, रंगून, कराची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिटिठ्यां दर्ज की जायेंगी। ये मेरे चिकित्सा-कौशल के साक्षी होंगे। जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानों में इन नामों के मनुष्य रहते भी हैं या नहीं। फिर देखो वैद्यक कैसी चलती है।

स्त्री—लेकिन बिना जाने-बूझे दवा दोगे, तो फायदा क्या करेगी ?

मोटे.—फायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है, वह मृत्यु को परास्त करने का ठेका नहीं लेता, और फिर जितने आदमी बीमार पड़ते हैं, सभी तो नहीं मर जाते। मेरा तो यह कहना है कि जिन्हें कोई औषधि नहीं दी जाती, वे विकार शान्त हो जाने पर आप ही अच्छे हो जाते हैं। वैद्यों को बिना मांगे यश मिलता है। पांच रोगियों में एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार जो मर गये, वे मेरी निन्दा करने थोड़े ही आवेंगे। मैंने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नहीं है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूं, पत्रों में आयुर्वेद-महत्त्व पर दो-चार लेख लिख दूंगा, उनमें जहां-तहां दो-चार कवित्त भी जोड़ दूंगा और लिखूंगा भी जरा चटपटी भाषा में। फिर देखो कितने उल्लू फंसते हैं। यह न समझो कि मैं इतने दिनों केवल बूढ़े तोते ही रटाता रहा हूं। मैं नगर के सफल वैद्यों की चालों का अवलोकन करता रहा हूं और इतने दिनों के बाद मुझे उनकी सफलता के मूल-मंत्र का ज्ञान हुआ हे। ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुमसिर से पांव तक सोने से लदी होगी।

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा—मैं इस उम्र में भला क्या गहने पहनूंगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो बताओ कि तुम्हें दवाएं बनानी भी तो नहीं आतीं, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेंगे, दवाओं को पहचानते भी तो नहीं हो?

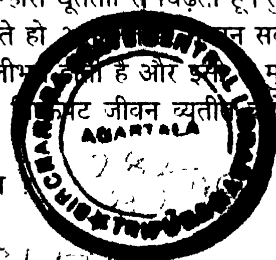
मोटे.—प्रिये ! तुम वास्तव में बड़ी मूर्खा हो। अरे वैद्यों के लिए इन बातों में से एक की भी आवश्यकता नहीं। वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है, रसायन है, बस आवश्यकता है कुछ ठाठ-बाट की। एक बड़ा-सा कमरा चाहिए, उसमें एक दरी हो, ताखों पर दस-पांच शीशियां-बोतलें हों। इसके सिवा और कोई चीज दरकार नहीं, और सब कुछ बुद्धि आप ही आप कर लेती है। मेरे साहित्यमिश्रित लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, तुम देख लेना। अलंकारों का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमण्डल पर मुझे ऐसा कोई नहीं दीखता जो अलंकारों के विषय में मुझसे पेश पा सके। आखिर इतने दिनों घास तो नहीं खोदी है ! दस-पांच आदमी तो कवि-चर्चा के नाते ही मेरे यहां आया-जाया करेंगे। बस, वही मेरे दल्लाल होंगे। उन्हीं के मार्फत मेरे पास रोगी आवेंगे। मैं आयुर्वेद-ज्ञान के बल पर नहीं, नायिका-ज्ञान के बल पर धड़ल्ले से वैद्यक करूंगा, तुम देखती तो जाओ।

स्त्री ने अविश्वास के भाव के कहा—मुझे तो डर लगता है कि कहीं यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जायें। न इधर के रहा न उधर के। तुम्हारे भाग्य में तो लड़के पढ़ाना लिखा है, और चारों ओर से ठोकर खाकर फिर तुम्हें वही तोते रटाने पड़ेंगे।

मोटे.—तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यों नहीं आता ?

स्त्री—इसलिए कि तुम वहां भी धूर्तता करोगे। मैं तुम्हारी धूर्तताा से चिढ़ती हूं। तुम जो कुछ नहीं हो और नहीं हो सकते, वह क्यों बनना चाहते हो [illegible] न सके, न बन सके, सिर पटककर रह गये। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभ[illegible] है और इसी[illegible] मुझे चिढ़ है। मैं चाहती हूं कि तुम भले आदमी बनकर रहो। [illegible]ट जीवन व्यती[illegible]ो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो ?

मोटे.—आखिर मेरा नायिका-ज्ञान कब काम आवेगा [illegible]



स्त्री—किसी रईस की मुसाहिवी क्यों नहीं कर लेते ? जहां दो-चार सुन्दर कवित्त सुना दोगे वह खुश हो जायेगा और कुछ-न-कुछ दे ही मरेगा। वैद्यक का ढोंग क्यों रचते हो!

मोटे.—मुझे ऐसे-ऐसे गुर मालूम हैं जो वैद्यों के बाप-दादों को भी न मालूम होंगे। ओर सभी वैद्य एक-एक, दो-दो रुपये पर मारे-मारे फिरते हैं, मैं अपनी फीस पांच रुपये रखूंगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेंगे कि यह कोई बड़े वैद्य हैं नहीं तो इतनी फीस क्यों होती ?

स्त्री को अबकी कुछ विश्वास आया, बोली—इतनी देर में तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहां तुम्हारा रंग न जमेगा, किसी दूसरे शहर को चलना पड़ेगा।

मोटे.—(हंसकर) क्या मैं इतना भी नहीं जानता। लखनऊ में अड्डा जमेगा अपना। साल-भर में वह धाक बांध दूं कि सारे वैद्य गर्द हो जायें। मुझे और भी कितने ही मंत्र आते हैं। मैं रोगी को दो-तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूंगा। कहूंगा, मैं जब तक रोगी की प्रकृति को भली-भांति पहचान न लूं, उसकी दवा नहीं कर सकता। बोला, कैसी रहेगी ?

स्त्री की बाछें खिल गयीं, बोली—अब मैं तुम्हें मान गयी। अवश्य चलेगी तुम्हारी वैद्यकी, अब मुझे कोई सन्देह नहीं रहा। मगर गरीबों के साथ यह मंत्र न चलाना नहीं तो धोखा खाओगे।

2

साल-भर गुजर गया।

भिषगाचार्य पण्डित मोटेरामजी शास्त्री की लखनऊ में धूम मच गयी। अलंकारों का ज्ञान तो उन्हें था ही, कुछ गा-बजा भी लेते थे। उस पर गुप्त रोगों के विशेषज्ञ, रसिकों के भाग्य जागे। पण्डितजी उन्हें कवित्त सुनाते, हंसाते और बलकारक औषधियां खिलाते, और वह रईसों में, जिन्हें पुष्टिकारक औषधियों की विशेष चाह रहती है, उनकी तारीफों के पुल बांधते। साल ही भर में वैद्यजी का वह रंग जमा कि बायद व शायद। गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ में एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विलासिनी विधवा रानियों और शौकीन अदूरदर्शी रईसों में आपकी खूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हें बराबर समझाया करती कि रानियों के झमेले में न फंसो, नहीं एक दिन पछताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख समझाये-बुझाये। पण्डितजी के उपासकों में बिड़हल की रानी भी थीं। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था, रानी साहिबा न जाने किस जीर्ण रोग में ग्रस्त थीं। पण्डितजी उनके यहां दिन में पांच-पांच बार जाते। रानी साहिबा उन्हें एक क्षण के लिए भी अपने पास से हटने न देना चाहती थीं। पण्डितजी के पहुंचने में जरा भी देर हो जाती तो बेचैन हो जातीं। एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खड़ी रहती थी। अब पण्डितजी ने खूब केंचुल बदली थी। तंजेब की अचकन पहनते, बनारसी साफा बांधते और पंप जूता डाटते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया

करते थे। कई मित्रों को रानी साहिबा के दरबार में नौकर रखा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसे टालतीं।

मगर चर्खे जफाकार और ही षड्यन्त्र रच रहा था।

एक दिन पण्डितजी रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रखे नब्ज देख रहे थे और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने में कई आदमी सोटे लिये हुए कमरे में घुस आये और पण्डितजी पर टूट पड़े। रानी ने भागकर दूसरे कमरे की शरण ली और किवाड़ बन्द कर लिये। पण्डितजी पर बेभाव पड़ने लगी। यों तो पण्डितजी भी दमखम के आदमी थे, एक गुप्ती सदैव साथ रखते थे। पर जब धोखे में कई आदमियों ने धर दबाया तो क्या करते ? कभी इसका पैर पकड़ते, कभी उसका। हाय ! हाय ! का शब्द निरन्तर मुंह से निकल रहा था पर उन बेरहमों को उन पेर जरा भी दया न आती थी। एक आदमी ने एक लात जमाकर कहा—इस दुष्ट की नाक काट लो।

दूसरा बोला—इसके मुंह में कालिख और चूना लगाकर छोड़ दो।

तीसरा—क्यों वैद्यजी महाराज, बोलो क्या मंजूर है ? नाक कटवाओगे या मुंह में कालिख लगवाओगे ?

पण्डित—हाय, हाय मर गया और जो चाहे करो, मगर नाक न काटो !

पहला—अब तो इधर न आवेगा।

पण्डित—भूलकर भी नहीं, सरकार। हाय मर गया !

दूसरा—आज ही लखनऊ से रफूरैट हो जाओ नहीं तो बुरा होगा।

पण्डित—सरकार, मैं आज ही चला जाऊंगा। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूं। आप यहां मेरी सूरत न देखेंगे।

तीसरा—अच्छा भाई, सब कोई इसे पांच-पांच लातें लगाकर छोड़ दो।

पण्डित—अरे सरकार, मर जाऊंगा, दया करो।

चौथा—तुम जैसे पाखंडियों का मर जाना ही अच्छा है। हां, तो शुरू हो।

पंचलत्ती पड़ने लगी, धमाधम की आवाजें आने लगीं। मालूम होता था नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय की आवाज निकल आती थी, मानो उनकी प्रतिध्वनि हो।

पंचलत्ती पूजा समाप्त हो जाने पर लोगों ने मोटेरामजी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया। चलते-चलते चेतावनी दे दी कि प्रातःकाल से पहले भाग खड़े होना, नही तो और ही इलाज किया जायेगा।

3

मोटेरामजी लंगड़ाते, कराहते, लड़की टेकते घर में गये और धम से चारपाई पर गिर पड़े। स्त्री ने घबराकर पूछा—कैसा जी है ? अरे, तुम्हारा क्या हाल है ? हाय-हाय, यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया है।

मोटे.—हाय भगवान्, मर गया।

स्त्री—कहां दर्द है ? इसी मारे कहती थी, बहुत रबड़ी न खाओ। लवणभास्कर ले आऊं ?

मोटे.—हाय, दुष्टों ने मार डाला। उसी चाण्डालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सबों ने भुरकुस निकाल लिया।

स्त्री—तो यह कहो कि पिटकर आये हो। हां, पिटे तो हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातों ही के देवता। कहती थी कि रानी के यहां मत आया-जाया करो, मगर तुम कब सुनते थे।

मोटे.—हाय, हाय ! राँड़, तुझे भी इसी दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे, ठेला-वेला लावे, रातों-रात लखनऊ से भाग जाना है। नहीं तो सवेरे प्राण न बचेंगे।

स्त्री—नहीं, अभी तुम्हारा पेट नहीं भरा। अभी कुछ दिन और यहां की हवा खाओ ! कैसे मजे से लड़के पढ़ाते थे, हां, नहीं तो वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ, अब उम्र-भर न भूलोगे। रानी कहां थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्हारी रक्षा न की ?

पण्डित—हाय, हाय, वह चुड़ैल तो भाग गयी। उसी के कारण ! क्या जानता था कि यह हाल होगा, नहीं तो उसकी चिकित्सा ही क्यों करता ?

स्त्री—हो तुम तकदीर के खोटे। कैसी वैद्यकी चल गयी थी। मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यानाश कर दिया। आखिर फिर वही पढ़ौनी करनी पड़ी। हो तकदीर के खोटे।

प्रातःकाल मोटेरामजी के द्वार पर ठेला खड़ा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रों में एक भी नजर न आता था। पण्डितजी पड़े कराह रहे थे और स्त्री सामान लदवा रही थी।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', जनवरी, 1928 में प्रकाशित। यह कहानी लेखकीय टिप्पणी के साथ पुनः 'माधुरी', मई, 1928 में प्रकाशित हुई। 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

दो सखियाँ

लखनऊ 1-7-25

प्यारी बहन,

जब से यहाँ आयी हूँ, तुम्हारी याद सताती रहती है। काश ! तुम कुछ दिनों के लिए यहाँ चली आतीं, तो कितनी बहार रहती। मैं तुम्हें अपने विनोद से मिलाती। क्या यह सम्भव नहीं है ? तुम्हारे माता-पिता क्या तुम्हें इतनी आजादी भी न देंगे ? मुझे तो आश्चर्य यही है कि बेड़ियाँ पहनकर तुम कैसे रह सकती हो ! मैं तो इस तरह घण्टे-भर भी नहीं रह सकती। ईश्वर को धन्यवाद देती हूँ कि मेरे पिताजी पुरानी लकीर पीटनेवालों में नहीं। वह उन नवीन आदर्शों के भक्त हैं, जिन्होंने नारी-जीवन को स्वर्ग बना दिया है। नहीं तो मैं कहीं की न रहती।

विनोद हाल ही में इंग्लैंड से डी. फिल. होकर लौटे हैं और जीवन-यात्रा आरम्भ करने

के पहले एक बार संसार-यात्रा करना चाहते हैं। योरप का अधिकांश भाग तो वह देख चुके हैं, पर अमेरिका, आस्ट्रेलिया और एशिया की सैर किये बिना उन्हें चैन नहीं। मध्य एशिया और चीन का तो यह विशेष रूप से अध्ययन करना चाहते हैं। योरोपियन यात्री जिन बातों की मीमांसा न कर सके, उन्हीं पर प्रकाश डालना इनका ध्येय है। सच कहती हूँ, चन्दा, ऐसा साहसी; ऐसा निर्भीक, ऐसा आदर्शवादी पुरुष मैंने कभी नहीं देखा था। मैं तो उनकी बातें सुनकर चकित हो जाती हूँ। ऐसा कोई विषय नहीं है, जिसका उन्हें पूरा ज्ञान न हो, जिसकी वह आलोचना न कर सकते हों; और यह केवल किताबी आलोचना नहीं होती, उसमें मौलिकता और नवीनता होती है। स्वतन्त्रता के तो वह अनन्य उपासक हैं। ऐसे पुरुष की पत्नी बनकर ऐसी कौन-सी स्त्री है; जो अपने सौभाग्य पर गर्व न करे। बहन, तुमसे क्या कहूँ कि प्रातःकाल उन्हें अपने बँगले की ओर आते देखकर मेरे चित्त की क्या दशा हो जाती है। यह उन पर न्योछावर होने के लिए विकल हो जाता है। यह मेरी आत्मा में बस गये हैं। अपने पुरुष की मैंने मन में जो कल्पना की थी, उसमें और उनमें बाल बराबर भी अन्तर नहीं। मुझे रात-दिन यही भय लगा रहता है कि कहीं मुझमें उन्हें कोई त्रुटि न मिल जाय। जिन विषयों से उन्हें रुचि है, उनका अध्ययन आधी रात तक बैठी किया करती हूँ। ऐसा परिश्रम मैंने कभी न किया था। आईने-कंघी से मुझे कभी इतना प्रेम न था, सुभाषितों को मैंने कभी इतने चाव से कण्ठ न किया था। अगर इतना सब कुछ करने पर भी मैं उनका हृदय न पा सकी, तो बहन, मेरा जीवन नष्ट हो जायगा, मेरा हृदय फट जायगा और संसार मेरे लिए सूना हो जायगा।

कदाचित् प्रेम के साथ ही मन में ईर्ष्या का भाव भी उदय हो जाता है। उन्हें मेरे बँगले की ओर आते हुए देख जब मेरी पड़ोसिन कुसुम अपने बरामदे में आकर खड़ी हो जाती है, तो मेरा ऐसा जी चाहता है कि उसकी आँखें ज्योतिहीन हो जायँ। कल तो अनर्थ ही हो गया। विनोद ने उसे देखते ही हैट उतार ली और मुस्कराये। वह कुलटा भी खीसें निकालने लगी। ईश्वर सारी विपत्तियाँ दे, पर मिथ्याभिमान न दे। चुड़ैलों की-सी तो आपकी सूरत है, पर अपने को अप्सरा समझती हैं। आप कविता करती हैं और कई पत्रिकाओं में उनकी कविताएँ छप भी गई हैं। बस, आप जमीन पर पाँव नहीं रखतीं। सच कहती हूँ, थोड़ी देर के लिए विनोद पर से मेरी श्रद्धा उठ गयी। ऐसा आवेश होता था कि चलकर कुसुम का मुँह नोच लूँ। खैरियत हुई कि दोनों में बातचीत न हुई, पर विनोद आकर बैठे तो आध घण्टे तक मैं उनसे न बोल सकी, जैसे उनके शब्दों में वह जादू ही न था, वाणी में वह रस ही न था। तब से अब तक मेरे चित्त की व्यग्रता शान्त नहीं हुई। रात-भर मुझे नींद नहीं आयी, वही दृश्य आँखों के सामने बार-बार आता था। कुसुम को लज्जित करने के लिए कितने मंसूबे बाँध चुकी हूँ। चंदा, मुझे आज तक यह नहीं मालूम था कि मेरा मन इतना दुर्बल है। अगर यह भय न होता कि विनोद मुझे ओछी और हलकी समझेंगे, तो मैं उनसे अपने मनोभावों को स्पष्ट कह देती। मैं सम्पूर्णतः उनकी होकर उन्हें सम्पूर्णतः अपना बनाना चाहती हूँ। मुझे विश्वास है कि संसार का सबसे रूपवान युवक मेरे सामने आ जाय, तो मैं उसे आँख उठाकर न देखूँगी। विनोद के मन में मेरे प्रति यह भाव क्यों नहीं है।

चन्दा, प्यारी बहन; एक सप्ताह के लिए आ जा। तुझसे मिलने के लिए मन अधीर हो रहा है। मुझे इस समय तेरी सलाह और सहानुभूति की बड़ी जरूरत है। यह मेरे जीवन

का सबसे नाजुक समय है। इन्हीं दस-पाँच दिनों में या तो पारस हो जाऊँगी या मिट्टी। लो 7 बज गए और अभी तक बाल नहीं बनाये। विनोद के आने का समय है। अब बिदा होती हूँ। कहीं आज फिर अभागिनी कुसुम अपने बरामदे में न आ खड़ी हो। अभी से दिल काँप रहा है। कल तो यह सोचकर मन को समझाया था कि यों ही सरल भाव से वह हँस पड़ी होगी। आज भी अगर वही दृश्य सामने आया, तो उतनी आसानी से मन को न समझा सकूंगी।

तुम्हारी,
पद्मा

2

गोरखपुर
5-7-25

प्रिय पद्मा,

भला एक युग के बाद तुम्हें मेरी सुधि तो आयी। मैंने जो समझा था, शायद तुमने परलोक [illegible] कर ली। यह उस निष्ठुरता का दंड ही है, जो कुसुम तुम्हें दे रही है। पन्द्रह अप्रैल को कालेज बंद हुआ और एक जुलाई को आप खत लिखती हैं—पूरे ढाई महीने बाद, वह भी कुसुम की कृपा से। जिस कुसुम को तुम कोस रही हो, उसे मैं आशीर्वाद दे रही हूँ। वह दारुण दुःख की भाँति तुम्हारे रास्ते में न आ खड़ी होती, तो तुम्हें क्यों मेरी याद आती ? खैर, विनोद की तुमने जो तसवीर खींची वह बहुत ही आकर्षक है और मैं ईश्वर से मना रही हूँ, वह दिन जल्द आये कि मैं उनसे बहनोई के नाते मिल सकूँ। मगर देखना, कहीं सिविल मैरेज न कर बैठना। विवाह हिन्दू-पद्धति के अनुसार ही हो। हाँ, तुम्हें अख्तियार है जो सैकड़ों बेहूदा और व्यर्थ के कपड़े हैं, उन्हें निकाल डालो। एक सच्चे, विद्वान् पण्डित को अवश्य बुलाना, इसलिए नहीं कि वह तुमसे बात-बात पर टके निकलवाये, बल्कि इसलिए कि वह देखता रहे कि सब कुछ शास्त्र-विधि से हो रहा है या नहीं।

अच्छा, अब मुझसे पूछो कि इतने दिनों क्यों चुप्पी साधे बैठी रही। मेरे ही खानदान में इन ढाई महीनों में, पाँच शादियाँ हुईं। बारातों का ताँता लगा रहा। ऐसा शायद ही कोई दिन गया हो कि सौ मेहमानों से कम रहे हों। और जब बारात आ जाती थी, तब तो उनकी संख्या पाँच-पाँच सौ तक पहुँच जाती थी। ये पाँचों लड़कियाँ मुझसे छोटी हैं और मेरा बस चलता तो अभी तीन-चार साल तक न बोलती, लेकिन मेरी सुनता कौन है और विचार करने पर मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि माता-पिता का लड़कियों के विवाह के लिए जल्दी करना कुछ अनुचित नहीं है । जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं। अगर माता-पिता अकाल ही मर जायँ, तो लड़की का विवाह कौन करे। भाइयों का क्या भरोसा। अगर पिता ने काफी दौलत छोड़ी है तो कोई बात नहीं; लेकिन जैसा साधारणतः होता है, पिता ऋण का भार छोड़ गये, तो बहन भाइयों पर भार हो जाती है। यह भी अन्य कितने ही हिन्दू-रस्मों की भाँति आर्थिक समस्या है, और जब तक हमारी आर्थिक दशा न सुधरेगी, यह रस्म भी न मिटेगी।

अब मेरे बलिदान की बारी है। आज के पंद्रहवें दिन यह घर मेरे लिए विदेश हो

जायगा। दो-चार महीने के लिए आऊँगी, तो मेहमान की तरह। मेरे विनोद बनारसी हैं, अभी कानून पढ़ रहे हैं। उनके पिता नामी वकील हैं। सुनती हूँ, कई गाँव हैं, कई मकान हैं, अच्छी मर्यादा है। मैंने अभी तक वर को नहीं देखा। पिताजी ने मुझसे पुछवाया था कि इच्छा हो, तो वर को बुला दूँ। पर मैंने कह दिया, कोई जरूरत नहीं। कौन घर में बहू बने। है तकदीर ही का सौदा। न पिताजी ही किसी के मन में पैठ सकते हैं, न मैं ही। अगर दो-एक बार देख ही लेती, नहीं मुलाकात ही कर लेती तो क्या हम दोनों एक दूसरे को परख लेते? यह किसी तरह संभव नहीं। ज्यादा-से-ज्यादा हम एक दूसरे का रंग-रूप देख सकते हैं। इस विषय में मुझे विश्वास है कि पिताजी मुझसे कम संयत नहीं हैं। मेरे दोनों बड़े बहनोई सौंदर्य के पुतले न हों पर कोई रमणी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरी बहनें उनके साथ आनन्द से जीवन बिता रही हैं। फिर पिताजी मेरे ही साथ क्यों अन्याय करेंगे। यह मैं मानती हूँ कि हमारे समाज में कुछ लोगों का वैवाहिक जीवन सुखकर नहीं है, लेकिन संसार में ऐसा कौन समाज है, जिसमें दुखी परिवार न हों। और फिर हमेशा पुरुषों ही का दोष तो नहीं होता, बहुधा स्त्रियाँ ही विष की गाँठ होती हैं। मैं तो विवाह को सेवा और त्याग का व्रत समझती हूँ और इसी भाव से उसका अभिवादन करती हूँ। हाँ, मैं तुम्हें विनोद से छीनना तो नहीं चाहती लेकिन अगर बीस जुलाई तक तुम दो दिन के लिए आ सको, तो मुझे जिला लो। ज्यों-ज्यों इस व्रत का दिन निकट आ रहा है, मुझे एक अज्ञात शंका हो रही है, मगर तुम खुद बीमार हो, मेरी दवा क्या करोगी—जरूर आना बहन !

तुम्हारी,
चन्दा

3

मंसूरी
5-8-25

प्यारी चन्दा,

सैकड़ों बातें लिखनी हैं, किस क्रम से शुरू करूँ, समझ में नहीं आता। सबसे पहले तुम्हारे विवाह के शुभ अवसर पर न पहुँच सकने के लिए क्षमा चाहती हूँ। मैं आने का निश्चय कर चुकी थी, मैं और प्यारी चन्दा के स्वयंवर में न जाऊँ। मगर उसके ठीक तीन दिन पहले विनोद ने अपना आत्मसमर्पण करके मुझे ऐसा मुग्ध कर दिया कि फिर मुझे किसी वात की सुधि न रही। आह ! वे प्रेम के अन्तस्तल से निकले हुए उष्ण, आवेशमय और कंपित शव्द अभी तक कानों में गूँज रहे हैं। मैं खड़ी थी, और विनोद मेरे सामने घुटने टेके हुए प्रेरणा, विनय और आग्रह के पुतले बने बैठे थे। ऐसा अवसर जीवन में एक ही बार आता है, केवल एक बार, मगर उसकी मधुर स्मृति किसी स्वर्ग-संगीत की भाँति जीवन के तार-तार में व्याप्त रहती है। तुम उस आनन्द का अनुभव न कर सकोगी—मैं रोने लगी, कह नहीं सकती, मन में क्या-क्या भाव आये; पर मेरी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। कदाचित् यही आनन्द की चरम सीमा है। मैं कुछ-कुछ निराश हो चली थी। तीन-चार दिन से विनोद को आते-जाते कुसुम से बातें करते देखती थी, कुसुम नित नये आभूषणों से सजी रहती थी और क्या कहूँ, एक दिन विनोद ने कुसुम की एक कविता मुझे

सुनायी और एक-एक शब्द पर सिर धुनते रहे। मैं मानिनी तो हूँ ही; सोचा, जब यह उस चुड़ैल पर लट्टू हो रहे हैं, तो मुझे क्या गरज पड़ी है कि इनके लिए अपना सिर खपाऊँ। दूसरे दिन वह सबेरे आये, तो मैंने कहला दिया, तबीयत अच्छी नहीं है। जब उन्होंने मुझसे मिलने के लिए आग्रह किया, तब विवश होकर मुझे कमरे में आना पड़ा। मन में निश्चय करके आयी थी–साफ कह दूँगी अब आप न आया कीजिए। मैं आपके योग्य नहीं हूँ, मैं कवि नहीं, विदुषी नहीं, सुभाषिणी नहीं....एक पूरी स्पीच मन में उमड़ रही थी, पर कमरे में आई और विनोद के सतृष्ण नेत्र देखे, प्रबल उत्कंठा में काँपते हुए ओंठ–बहन, उस आवेश का चित्रण नहीं कर सकती। विनोद ने मुझे बैठने भी न दिया। मेरे सामने घुटनों के बल फर्श पर बैठ गये और उनके आतुर उन्मत्त शब्द मेरे हृदय को तरंगित करने लगे।

एक सप्ताह तैयारियों में कट गया। पापा और मामा फूले न समाते थे।

और सबसे प्रसन्न थी कुसुम ! यही कुसुम जिसकी सूरत से मुझे घृणा थी ! अब मुझे ज्ञात हुआ कि मैंने उस पर सन्देह करके उसके साथ घोर अन्याय किया। उसका हृदय निष्कपट है, उसमें न ईर्ष्या है, न तृष्णा, सेवा ही उसके जीवन का मूलतत्त्व है। मैं नहीं समझती कि उसके बिना ये सात दिन कैसे कटते। मैं कुछ खोई-खोई सी जान पड़ती थी। कुसुम पर मैंने अपना सारा भार छोड़ दिया था। आभूषणों के चुनाव और सजाव, वस्त्रों के रंग और काट-छांट के विषय में उसकी सुरुचि विलक्षण है। आठवें दिन जब उसने मुझे दुलहिन बनाया, तो मैं अपना रूप देखकर चकित रह गई। मैंने अपने को कभी ऐसी सुन्दरी न समझा था। गर्व से मेरी आँखों में नशा-सा छा गया।

उसी दिन संध्या-समय विनोद और मैं दो भिन्न जल-धाराओं की भांति संगम पर मिलकर अभिन्न हो गये। विहार-यात्रा की तैयारी पहले ही से हो चुकी थी, प्रातःकाल हम मंसूरी के लिए रवाना हो गये। कुसुम हमें पहुँचाने के लिए स्टेशन तक आयी और विदा होते समय बहुत रोयी। उसे साथ ले चलना चाहती थी, पर न जाने क्यों वह राजी न हुई।

मंसूरी रमणीक है, इसमें सन्देह नहीं। श्यामवर्ण मेघ-मालाएँ पहाड़ियों पर विश्राम कर रही हैं, शीतल पवन आशा-तरंगों की भाँति चित्त का रंजन कर रहा है, पर मुझे ऐसा विश्वास है कि विनोद के साथ मैं किसी निर्जन वन में इतने ही सुख से रहती। उन्हें पाकर अब मुझे किसी वस्तु की लालसा नहीं। बहन, तुम इस आनन्दमय जीवन की शायद कल्पना भी न कर सकोगी। सुबह हुई नाश्ता आया, हम दोनों ने नाश्ता किया; डांडी तैयार है, नौ बजते-बजते सैर करने निकल गये। किसी जल-प्रपात के किनारे जा बैठे। वहाँ जल-प्रवाह का मधुर संगीत सुन रहे हैं। या किसी शिला-खंड पर बैठे मेघों की व्योम-क्रीड़ा देख रहे हैं। ग्यारह बजते-बजते लौटे। भोजन तैयार है। भोजन किया। मैं प्यानो पर जा बैठी। विनोद को संगीत से प्रेम है। खुद बहुत अच्छा गाते हैं और मैं गाने लगती हूँ, तब तो वह झूमने ही लगते हैं! तीसरे पहर हम एक घंटे के लिए विश्राम करके खेलने या कोई खेल देखने चले जाते हैं। रात को भोजन करने के बाद थियेटर देखते हैं और वहाँ से लौट कर शयन करते हैं। न सास की घुड़कियाँ है न ननदों की कानाफूसी, न जेठानियों के ताने। पर इस सुख में भी मुझे कभी-कभी एक शंका-सी होती है–फूल में कोई काँटा तो नहीं छिपा हुआ है, प्रकाश के पीछे कहीं अन्धकार तो नहीं है ! मेरी समझ में नहीं आता, ऐसी शंका क्यों होती है। अरे, यह लो पाँच बज गये, विनोद तैयार हैं, आज टेनिस का मैच

देखने जाना है। मैं भी जल्दी से तैयार हो जाऊँ। शेष बातें फिर लिखूँगी।

हाँ, एक बात तो भूली ही जा रही थी। अपने विवाह का समाचार लिखना। पतिदेव कैसे हैं ? रंग-रूप कैसा है ? ससुराल गयीं, या अभी मैके ही में हो ? ससुराल गयीं, तो वहाँ के अनुभव अवश्य लिखना। तुम्हारी खूब नुमाइश हुई होगी। घर, कुटुम्ब और मुहल्ले की महिलाओं ने घूँघट उठा-उठाकर खूब मुँह देखा होगा, खूब परीक्षा हुई होगी। ये सभी बातें विस्तार से लिखना। देखें कब फिर मुलाकात होती है।

तुम्हारी,
पद्म

4

गोरखपुर
1-9-25

प्यारी पद्मा,

तुम्हारा पत्र पढ़कर चित्त को बड़ी शांति मिली। तुम्हारे न आने ही से मैं समझ गयी थी कि विनोद बाबू तुम्हें हर ले गये, मगर यह न समझी थी कि तुम मंसूरी पहुँच गयीं। अब उस आमोद-प्रमोद में भला गरीब चन्दा तुम्हें क्यों याद आने लगी। अब मेरी समझ में आ रहा है कि विवाह के नये और पुराने आदर्श में क्या अन्तर है। तुमने अपनी पसन्द से काम लिया, सुखी हो। मैं लोक-लाज की दासी बनी रही, नसीबों को रो रही हूँ।

अच्छा, अब मेरी बीती सुनो। दान-दहेज के टंटे से तो मुझे कुछ मतलब है नहीं। पिताजी ने बड़ा ही उदार-हृदय पाया है। खूब दिल खोलकर दिया होगा। मगर द्वार पर बारात आते ही मेरी अग्नि-परीक्षा शुरू हो गयी। कितनी उत्कण्ठा थी—वर-दर्शन की, पर देखूँ कैसे। कुल की नाक न कट जायगी। द्वार पर बारात आयी। सारा जमाना वर को घेरे हुए था। मैंने सोचा—छत पर से देखूँ। छत पर गयी, पर वहाँ से भी कुछ न दिखाई दिया। हाँ, इस अपराध के लिए अम्माँजी की घुड़कियाँ सुननी पड़ीं। मेरी जो बात इन लोगों को अच्छी नहीं लगती, उसका दोष मेरी शिक्षा के माथे मढ़ा जाता है। पिताजी बेचारे मेरे साथ बड़ी सहानुभूति रखते हैं। मगर किस-किस का मुँह पकड़ें। द्वाराचार तो यों गुजरा और भाँवरों की तैयारियाँ होने लगीं। जनवासे से गहनों और कपड़ों का थाल आया। बहन ! सारा घर—स्त्री-पुरुष—सब उस पर कुछ इस तरह टूटे, मानो इन लोगों ने कभी कुछ देखा ही नहीं। कोई कहता है, कंठा तो लाये ही नहीं; कोई हार के नाम को रोता है ! अम्माँजी तो सचमुच रोने लगीं, मानो मैं डुबा दी गयी। वर-पक्षवालों की दिल खोलकर निंदा होने लगी। मगर मैंने गहनों की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। हाँ, जब कोई वर के विषय में कोई बात करता था, तो मैं तन्मय होकर सुनने लगती थी। मालूम हुआ—दुबले-पतले आदमी हैं। रंग साँवला है, आँखें बड़ी-बड़ी हैं, हँसमुख हैं। इन सूचनाओं से दर्शनोत्कंठा और भी प्रबल होती थी। भाँवरों का मुहूर्त ज्यों-ज्यों समीप आता था, मेरा चित्त व्यग्र होता जाता था। अब तक यद्यपि मैंने उनकी झलक भी न देखी थी, पर मुझे उनके प्रति एक अभूतपूर्व प्रेम का अनुभव हो रहा था। इस वक्त यदि मुझे मालूम हो जाता कि उनके दुश्मनों को कुछ हो गया है, तो मैं बावली हो जाती। अभी तक मेरा उनसे साक्षात् नहीं हुआ है, मैंने उनकी बोली तक नहीं सुनी है, लेकिन संसार का सबसे रूपवान पुरुष भी, मेरे चित्त को आकर्षित

नहीं कर सकता। अब वही मेरे सर्वस्व हैं।

आधी रात के बाद भाँवरें हुईं। सामने हवन-कुण्ड था, दोनों ओर विप्रगण बैठे हुए थे, दीपक जल रहा था, कुल देवता की मूर्ति रखी हुई थी। वेद मंत्र का पाठ हो रहा था। उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ कि सचमुच देवता विराजमान हैं। अग्नि, वायु, दीपक, नक्षत्र सभी मुझे उस समय देवत्व की ज्योति से प्रदीप्त जान पड़ते थे। मुझे पहली बार आध्यात्मिक विकास का परिचय मिला। मैंने जब अग्नि के सामने मस्तक झुकाया, तो यह कोरी रस्म की पाबंदी न थी, मैं अग्निदेव को अपने सम्मुख मूर्तिमान्. स्वर्गीय आभा से तेजोमय देख रही थी। आखिर भाँवरें भी समाप्त हो गयीं; पर पतिदेव के दर्शन न हुए।

अब अन्तिम आशा यह थी कि प्रातःकाल जब पतिदेव कलेवा के लिए बुलाये जायँगे, उस समय देखूँगी। तब उनके सिर पर मौर न होगा, सखियों के साथ मैं भी जा बैठूँगी और खूब जी भर कर देखूँगी। पर क्या मालूम था कि विधि कुछ और ही कुचक्र रच रहा है। प्रातःकाल देखती हूँ, तो जनवासे के खेमे उखड़ रहे है। बात कुछ न थी। बारातियों के नाश्ते के लिए जो सामान भेजा गया था, वह काफी न था। शायद घी भी खराब था। मेरे पिताजी को तुम जानती ही हो। कभी किसी से दबे नहीं, जहाँ रहे शेर बनकर रहे। बोले--जाते हैं. तो जाने दो. मनाने की कोई जरूरत नहीं; कन्यापक्ष का धर्म है बारातियों का सत्कार करना, लेकिन सत्कार का यह अर्थ नहीं कि धमकी और रोब से काम लिया जाय, मानो किसी अफसर का पड़ाव हो। अगर वह अपने लड़के की शादी कर सकते हैं, तो मैं भी अपनी लड़की की शादी कर सकता हूँ।

बारात चली गयी और मैं पति के दर्शन न कर सकी ! सारे शहर में हलचल मच गयी। विरोधियों को हँसने का अवसर मिला। पिताजी ने बहुत सामान जमा किया था। वह सब खराब हो गया। घर में जिसे देखिए, मेरी ससुराल की निंदा कर रहा है--उजड्ड हैं, लोभी हैं, बदमाश हैं, मुझे जरा भी बुरा नहीं लगता। लेकिन पति के विरुद्ध मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहती। एक दिन अम्माँजी बोलीं--लड़का भी बेसमझ है। दूध पीता बच्चा नहीं, कानून पढ़ता है, मूँछ-दाढ़ी आ गई है, उसे अपने बाप को समझाना चाहिए था कि आप लोग क्या कर रहे हैं। मगर वह भी भीगी बिल्ली बना रहा। मै सुन कर तिलमिला उठी। कुछ बोली तो नहीं, पर अम्माँजी को मालूम जरूर हो गया कि इस विषय में मैं उनसे सहमत नहीं। मैं तुम्हीं से पूछती हूँ बहन, जैसी समस्या उठ खड़ी हुई थी, उसमें उनका क्या धर्म था ? अगर वह अपने पिता और अन्य सम्बन्धियों का कहना न मानते, तो उनका अपमान न होता ? उस वक्त उन्होंने वही किया, जो उचित था। मगर मुझे विश्वास है कि जरा मामला ठंडा होने पर वह आयेंगे। मैं अभी से उनकी राह देखने लगी हूँ। डाकिया चिट्ठियाँ लाता है, तो दिल में धड़कन होने लगती है--शायद उनका पत्र भी हो ! जी में बार-बार आता है, क्यों न मैं ही एक खत लिखूँ; मगर संकोच में पड़कर रह जाती हूँ। शायद मैं कभी न लिख सकूँगी। मान नहीं है केवल संकोच है। पर हाँ, अगर दस-पाँच दिन और उनका पत्र न आया, या वह खुद न आये, तो संकोच मान का रूप धारण कर लेगा। क्या तुम उन्हें एक चिट्ठी नहीं लिख सकतीं ! सब खेल बन जाय। क्या मेरी खातिर इतना भी न करोगी ? मगर ईश्वर के लिए उस खत में कहीं यह न लिख देना कि चंदा ने प्रेरणा की है। क्षमा करना, ऐसी भद्दी गलती की तुम्हारी ओर से शंका करके मैं तुम्हारे साथ

अन्याय कर रही हूँ, मगर मैं समझदार थी ही कब ?

तुम्हारी,
चन्दा

5

मंसूरी
20-9-25

प्यारी चन्दा,

मैंने तुम्हारा खत पाने के दूसरे ही दिन काशी खत लिख दिया था। उसका जवाब भी मिल गया। शायद बाबूजी ने तुम्हें खत लिखा हो। कुछ पुराने खयाल के आदमी हैं। मेरी तो उनसे एक दिन भी न निभती। हाँ, तुमसे निभ जायगी। यदि मेरे पति ने मेरे साथ यह बर्ताव किया होता—अकारण मुझसे रूठे होते—तो मैं जिन्दगी-भर उनकी सूरत न देखती। अगर कभी आते भी, तो कुत्तों की तरह दुत्कार देती। पुरुष पर सबसे बड़ा अधिकार उसकी स्त्री का है। माता-पिता को खुश रखने के लिए वह स्त्री का तिरस्कार नहीं कर सकता। तुम्हारे ससुरालवालों ने बड़ा घृणित व्यवहार किया। पुराने खयालवालों का गजब का कलेजा है, जो ऐसी बातें सहते हैं। देखा उस प्रथा का फल, जिसकी तारीफ करते तुम्हारी जबान नहीं थकती। वह दीवार सड़ गयी है। टीपटाप करने से काम न चलेगा। उसकी जगह नये सिरे से दीवार बनाने की जरूरत है।

अच्छा, अब कुछ मेरी भी कथा सुन लो। मुझे ऐसा संदेह हो रहा है कि विनोद ने मेरे साथ दगा की है। इनकी आर्थिक दशा वैसी नहीं, जैसी मैंने समझी थी। केवल मुझे ठगने के लिए इन्होंने सारा स्वाँग भरा था। मोटर माँगे की थी, बँगले का किराया अभी तक नहीं दिया गया, फरनिचर किराये के थे। यह सच है। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से मुझे धोखा नहीं दिया। कभी अपनी दौलत की डींग नहीं मारी, लेकिन ऐसा रहन-सहन बना लेना, जिससे दूसरों को अनुमान हो कि यह कोई बड़े धनी आदमी हैं, एक प्रकार का धोखा ही है। यह स्वाँग इसीलिए भरा गया था कि कोई शिकार फँस जाय। अब देखती हूँ कि विनोद मुझसे अपनी असली हालत को छिपाने का प्रयत्न किया करते हैं। अपने खत मुझे नहीं देखने देते, कोई मिलने आता है, तो चौंक पड़ते हैं और घबरायी हुई आवाज में बैरा से पूछते हैं, कौन है ? तुम जानती हो, मैं धन की लौंडी नहीं। मैं केवल विशुद्ध हृदय चाहती हूँ। जिसमें पुरुषार्थ है, प्रतिभा है, वह आज नहीं तो कल अवश्य ही धनवान् होकर रहेगा। मैं इस कपट-लीला से जलती हूँ। अगर विनोद मुझसे अपनी कठिनाइयाँ कह दें, तो मैं उनके साथ सहानुभूति करूँगी, उन कठिनाइयों को दूर करने में उनकी मदद करूँगी। यों मुझसे परदा करके यह मेरी सहानुभूति और सहयोग ही से हाथ नहीं धोते, मेरे मन में अविश्वास, द्वेष और क्षोभ का बीज बोते हैं। यह चिंता मुझे मारे डालती है। अगर इन्होंने अपनी दशा साफ-साफ बता दी होती, तो मैं यहाँ मंसूरी आती ही क्यों ? लखनऊ में ऐसी गरमी नहीं पड़ती कि आदमी पागल हो जाय। यह हजारों रुपये पर क्यों पानी पड़ता। सबसे कठिन समस्या जीविका की है। कई विद्यालयों में आवेदन-पत्र भेज रखे हैं। जवाब का इंतजार कर रहे हैं। शायद इस महीने के अंत तक कहीं जगह मिल जाय। पहले तीन-चार सौ मिलेंगे।

समझ में नहीं आता, कैसे काम चलेगा। एक सौ पचास रुपये तो पापा मेरे कालेज का खर्च देते थे। अगर दस-पाँच महीने जगह न मिली तो यह क्या करेंगे, यह फिक्र और भी खाये डालती है। मुश्किल यही है कि विनोद मुझसे परदा रखते हैं। अगर हम दोनों बैठकर परामर्श कर लेते, तो सारी गुत्थियाँ सुलझ जातीं। मगर शायद यह मुझे इस योग्य ही नहीं समझते। शायद इनका खयाल है कि मैं केवल रेशमी गुड़िया हूँ, जिसे भाँति-भाँति के आभूषणों, सुगंधों और रेशमी वस्त्रों से सजाना ही काफी है। थियेटर में कोई नया तमाशा होनेवाला होता है, दौड़े हुए आकर मुझे खबर देते हैं। कहीं कोई जलसा हो, कोई खेल हो, कहीं सैर करना हो उसकी शुभ सूचना मुझे अविलम्ब दी जाती है और बड़ी प्रसन्नता के साथ, मानो मैं रात-दिन विनोद और क्रीड़ा और विलास में मग्न रहना चाहती हूँ, मानो मेरे हृदय में गंभीर अंश है ही नहीं। यह मेरा अपमान है; घोर अपमान, जिसे मैं अब नहीं सह सकती। मैं अपने संपूर्ण अधिकार लेकर ही संतुष्ट हो सकती हूँ। बस, इस वक्त इतना ही। बाकी फिर। अपने यहाँ का हाल-हवाल विस्तार से लिखना। मुझे अपने लिए जितनी चिंता है, उससे कम तुम्हारे लिए नहीं है। देखो हम दोनों के डोंगे कहाँ लगते हैं। तुम अपनी स्वदेशी, पाँच हजार वर्षो की पुरानी जर्जर नौका पर बैठी हो, मैं नये, द्रुतग्रामी मोटर बोट पर। अवसर, विज्ञान और उद्योग मेरे साथ हैं। लेकिन कोई दैवी विपत्ति आ जाय, तब भी इसी मोटर बोट पर डूबूँगी। साल में लाखों आदमी रेल के टक्करों से मर जाते हैं, पर कोई बैलगाड़ियों पर यात्रा नहीं करता। रेलों का विस्तार बढ़ता ही जाता है। बस।

तुम्हारी,
पद्मा

6

गोरखपुर
25-9-25

प्यारी पद्मा,

कल तुम्हारा खत मिला, आज जवाब लिख रही हूँ। एक तुम हो कि महीनों रटाती हो। इस विषय में तुम्हें मुझसे उपदेश लेना चाहिए। विनोद बाबू पर तुम व्यर्थ ही आक्षेप लगा रही हो। तुमने क्यों पहले ही उनकी आर्थिक दशा की जाँच पड़ताल नहीं की ? बस, एक सुन्दर, रसिक, शिष्ट, वाणी-मधुर युवक देखा और फूल उठीं ? अब भी तुम्हारा ही दोष है। तुम अपने व्यवहार से, रहन-सहन से सिद्ध कर दो कि तुनमें गंभीर अंश भी हैं, फिर देखूँ कि विनोद बाबू कैसे तुमसे परदा रखते हैं। और बहन, यह तो मानवी स्वभाव है। सभी चाहते हैं कि लोग हमें संपन्न समझें। इस स्वाँग को अंत तक निभाने की चेष्टा की जाती है और जो इस काम में सफल हो जाता है उसी का जीवन सफल समझा जाता है। जिस युग में धन ही सर्वप्रधान हो, मर्याद, कीर्ति, यश—यहाँ तक कि विद्या भी धन से खरीदी जा सके, उस युग में स्वाँग भरना एक लाजिमी बात हो जाती है। अधिकार योग्यता का मुँह ताकते हैं ! यही समझ लो कि इन दोनों में फूल और फल का संबंध है। योग्यता का फूल लगा और अधिकार का फल आया।

इस ज्ञानोपदेश के बाद अब तुम्हें हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। तुमने पतिदेव के नाम जो पत्र लिखा था, उसका बहुत अच्छा असर हुआ। उसके पाँचवें ही दिन स्वामी का कृपापत्र मुझे मिला। बहन, वह खत पाकर मुझे कितनी खुशी हुई, इसका तुम अनुमान कर सकती हो। मालूम होता था, अंधे को आँखें मिल गयी हैं। कभी कोठे पर जाती थी, कभी नीचे आती थी। सारे घर में खलबली पड़ गयी। तुम्हें वह पत्र अत्यन्त निराशाजनक जान पड़ता, मेरे लिए वह संजीवन-मन्त्र था, आशादीपक था। प्राणेश ने बारातियों की उद्दंडता पर खेद प्रकट किया था, पर बड़ों के सामने वह जबान कैसे खोल सकते थे। फिर जनातियों ने भी, बारातियों का जैसा आदर-सत्कार करना चाहिए था, वैसा नहीं किया। अन्त में लिखा था –'प्रिये, तुम्हारे दर्शनों की कितनी उत्कंठा है, लिख नहीं सकता। तुम्हारी कल्पित मूर्ति नित आँखों के सामने रहती है। पर कुल-मर्यादा का पालन करना मेरा कर्तव्य है। जब तक माता-पिता का रुख न पाऊँ, आ नहीं सकता। तुम्हारे वियोग में चाहे प्राण ही निकल जायँ, पर पिता की इच्छा की उपेक्षा नहीं कर सकता। हाँ, एक बात का दृढ़ निश्चय कर चुका हूँ–चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, कपूत कहलाऊँ, पिता के कोप का भागी बनूं, घर छोड़ना पड़े पर अपनी दूसरी शादी न करूँगा। मगर जहाँ तक मैं समझता हूँ, मामला इतना तूल न खींचेगा। यह लोग थोड़े दिनों में नर्म पड़ जायँगे और तब मैं आऊँगा और अपनी हृदयेश्वरी को आँखों पर बिठाकर लाऊँगा।

बस, अब मैं संतुष्ट हूँ बहन, मुझे और कुछ न चाहिए। स्वामी मुझ पर इतनी कृपा रखते हैं, इससे अधिक और वह क्या कर सकते हैं ! प्रियतम तुम्हारी चन्दा सदा तुम्हारी रहेगी, तुम्हारी इच्छा ही उसका कर्त्तव्य है। वह जब तक जिएगी, तुम्हारे पवित्र चरणों से लगी रहेगी। उसे बिसारना मत।

बहन, आँखों में आँसू भरे आते हैं, अब नहीं लिखा जाता, जवाब जल्द देना।

तुम्हारी,
चन्दा

7

दिल्ली
15-12-25

प्यारी बहन,

तुझसे बार-बार क्षमा माँगती हूँ, पैरों पड़ती हूँ। मेरे पत्र न लिखने का कारण आलस्य न था, सैर-सपाटे की धुन न थी। रोज सोचती थी कि आज लिखूँगी, पर कोई-न-कोई ऐसा काम आ पड़ता था, कोई ऐसी बात हो जाती थी; कोई ऐसी बाधा आ खड़ी होती थी कि चित्त अशांत हो जाता था और मुँह लपेट कर पड़ रहती थी। तुम मुझे अब देखो तो शायद पहचान न सको। मंसूरी से दिल्ली आये एक महीना हो गया। यहाँ विनोद को तीन सौ रुपये की एक जगह मिल गयी है। यह सारा महीना बाजार की खाक छानने में कटा। विनोद ने मुझे पूरी स्वाधीनता दे रखी है। मैं जो चाहूँ, करूँ; उनसे कोई मतलब नहीं। वह मेरे मेहमान हैं। गृहस्थी का सारा बोझ मुझ पर डालकर वह निश्चिन्त हो गये हैं। ऐसा बेफिक्रा मैंने आदमी ही नहीं देखा। हाजिरी की परवाह है, न डिनर की, बुलाया तो आ गये,

नहीं तो बैठे हैं। नौकरों से कुछ बोलने की तो मानो इन्होंने कसम ही खा ली है। उन्हें डाँटू तो मैं, रखूँ तो मैं, निकालूँ तो मैं, उनसे कोई मतलब ही नहीं। मैं चाहती हूँ, वह मेरे प्रबन्ध की आलोचना करें, ऐब निकालें; मैं चाहती हूँ जब मैं बाजार से कोई चीज लाऊँ, तो वह बतावें मैं जट गयी या जीत आयी; मैं चाहती हूँ महीने के खर्च का बजट बनाते समय मेरे और उनके बीच में खूब बहस हो, पर इन अरमानों में से एक भी पूरा नहीं होता। मैं नहीं समझती, इस तरह कोई स्त्री कहाँ तक गृह-प्रबन्ध में सफल हो सकती है। विनोद के इस सम्पूर्ण आत्म-समर्पण ने मेरी निज की जरूरतों के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रखी। अपने शौक की चीजें खुद खरीदकर लाते बुरा मालूम होता है, कम-से-कम मुझसे नहीं हो सकता। मैं जानती हूँ, मैं अपने लिए कोई चीज लाऊँ तो वह नाराज न होंगे। नहीं, मुझे विश्वास है, खुश होंगे; लेकिन मेरा जी चाहता है, मेरे शौक सिंगार की चीजें वह खुद ला कर दें। उनसे लेने में जो आनन्द है, वह खुद जाकर लाने में नहीं। पिताजी अब भी मुझे सौ रुपये महीना देते हैं और उन रुपयों को मैं अपनी जरूरतों पर खर्च कर सकती हूँ। पर न जाने क्यों मुझे भय होता है कि कहीं विनोद समझें, मैं उनके रुपये खर्च किये डालती हूँ। जो आदमी किसी बात पर नाराज नहीं हो सकता वह किसी बात पर खुश भी नहीं हो सकता। मेरी समझ में ही नहीं आता, वह किस बात से खुश और किस बात से नाराज होते हैं। बस, मेरी दशा उस आदमी की-सी है, जो बिना रास्ता जाने इधर-उधर भटकता फिरे। तुम्हें याद होगा, हम दोनों कोई गणित का प्रश्न लगाने के बाद कितनी उत्सुकता से उसका जवाब देखती थीं; जब हमारा जवाब किताब के जवाब से मिल जाता था, तो हमें कितना हार्दिक आनंद मिलता था। मेहनत सफल हुई, इसका विश्वास हो जाता था। जिन गणित की पुस्तकों में प्रश्नों के उत्तर न लिखे होते थे, उसके प्रश्न हल करने की हमारी इच्छा ही न होती थी। सोचते थे, मेहनत अकारथ जायगी। मैं रोज प्रश्न हल करती हूँ, पर नहीं जानती कि जवाब ठीक निकला, या गलत। सोचो, मेरे चित्त की क्या दशा होगी।

एक हफ्ता होता है, लखनऊ की मिस रिग से भेंट हो गयी। वह लेडी-डाक्टर हैं और मेरे घर बहुत आती-जाती हैं। किसी का सिर भी धमका और मिस रिग बुलायी गयीं। पापा जब मेडिकल कालेज में प्रोफेसर थे, तो उन्होंने इन मिस रिग को पढ़ाया था। उसका एहसान वह अब भी मानती हैं। यहाँ उन्हें देखकर भोजन का निमंत्रण न देना अशिष्टता की हद होती। मिस रिग ने दावत मंजूर कर ली। इस दिन मुझे जितनी कठिनाई हुई, वह बयान नहीं कर सकती। मैंने कभी अँगरेजों के साथ टेबुल पर नहीं खाया। उनमें भोजन के क्या शिष्टाचार हैं, इसका मुझे बिलकुल ज्ञान नहीं। मैंने समझा था, विनोद मुझे सारी बातें बता देंगे। वह बरसों अँगरेजों के साथ इंगलैंड रह चुके हैं। मैंने उन्हें मिस रिग के आने की सूचना भी दे दी। पर उस भले आदमी ने मानो सुना ही नहीं। मैंने भी निश्चय किया, मैं तुमसे कुछ न पूछूंगी, यही न होगा कि मिस रिग हँसेंगी। बला से। अपने ऊपर बार-बार झुँझलाती थी कि कहाँ मिस रिग को बुला उठी। पड़ोस के बँगलों में कई हमीं-जैसे परिवार रहते हैं; उनसे सलाह ले सकती थी। पर यही संकोच होता था कि ये लोग मुझे गँवारिन समझेंगे। अपनी इस विवशता पर थोड़ी देर तक आँसू भी बहाती रही। आखिर निराश होकर अपनी बुद्धि से काम लिया। दूसरे दिन मिस रिग आयीं। हम दोनों भी मेज पर बैठे। दावत शुरू हुई। मैं देखती थी कि विनोद बार-बार झेंपते थे और मिस रिग बार-बार नाक

सिकोड़ती थीं, जिससे प्रकट हो रहा था कि शिष्टाचार की मर्यादा भंग हो रही है। मैं शर्म के मारे मरी जाती थी। बारे किसी भाँति विपत्ति सिर से टली। तब मैंने कान पकड़े कि अब किसी अँगरेज की दावत न करूँगी। उस दिन से देख रही हूँ, विनोद मुझसे कुछ खिंचे हुए हैं। मैं भी नहीं बोल रही हूँ। वह शायद समझते हैं कि मैंने उनकी भद्द करा दी। मैं समझ रही हूँ कि उन्होंने मुझे लज्जित किया। सच कहती हूँ, चन्दा, गृहस्थी के इन झंझटों में मुझे अब किसी से हँसने-बोलने का अवसर नहीं मिलता। इधर महीनों से कोई नयी पुस्तक नहीं पढ़ सकी। विनोद की विनोदशीलता भी न जाने कहाँ चली गयी। अब वह सिनेमा या थियेटर का नाम भी नहीं लेते। हाँ, मैं चलूँ तो वह तैयार हो जायँगे। मैं चाहती हूँ, प्रस्ताव उनकी ओर से हो, मैं उसका अनुमोदन करूँ। शायद वह पहले की आदतें छोड़ रहे हैं। मैं तपस्या का संकल्प उनके मुख पर अंकित पाती हूँ। ऐसा जान पड़ता है, अपने में गृह-संचालन की शक्ति न पाकर उन्होंने सारा भार मुझ पर डाल दिया है। मंसूरी में वह घर के संचालक थे। दो-ढाई महीने में पन्द्रह सौ खर्च किये। कहाँ से लाये, यह मैं अब तक नहीं जानती। पास तो शायद ही कुछ रहा हो। संभव है किसी मित्र से ले लिया हो। तीन सौ रुपये महीने की आमदनी में थिएटर और सिनेमा का जिक्र ही क्या ! पचास रुपये तो मकान ही के निकल जाते हैं। मैं इस जंजाल से तंग आ गयी हूँ। जी चाहता है, विनोद से कह दूँ कि मेरे चलाये यह ठेला न चलेगा। आप तो दो-ढाई घंटा यूनिवर्सिटी में काम करके दिन-भर चैन करें, खूब टेनिस खेलें, खूब उपन्यास पढ़ें, खूब सोयें और मैं सुबह से आधी रात तक घर के झंझटों में मरा करूँ। कई बार छेड़ने का इरादा किया, दिल में ठानकर उनके पास गयी भी, लेकिन उनका सामीप्य मेरे सारे संयम, सारी ग्लानि, सारी विरक्ति को हर लेता है। उनका विकसित मुखमंडल, उनके अनुरक्त नेत्र, उनके कोमल शब्द मुझ पर मोहिनी मंत्र-सा डाल देते हैं। उनके एक आलिंगन में मेरी सारी वेदना विलीन हो जाती है। बहुत अच्छा होता, अग्रर यह इतने रूपवान, इतने मधुरभाषी, इतने सौम्य न होते। तब कदाचित् मैं इनसे झगड़ बैठती, अपनी कठिनाइयाँ कह सकती। इस दशा में तो इन्होंने मुझे जैसे भेड़ बना लिया है। मगर माया को तोड़ने का मौका तलाश कर रही हूँ। एक तरह से मैं अपना आत्म-सम्मान खो बैठी हूँ। मैं क्यों हर एक बात में किसी की अप्रसन्नता से डरती रहती हूँ ? मुझमें क्यों यह भाव नहीं आता कि जो कुछ मैं कर रही हूँ, वह ठीक है। मैं इतनी मुखापेक्षा क्यों करती हूँ ? इस मनोवृत्ति पर मुझे विजय पाना है, चाहे जो कुछ हो। अब इस वक्त विदा होती हूँ। अपने यहाँ के समाचार लिखना, जी लगा है।

तुम्हारी,
पद्मा

8

काशी
25-12-25

प्यारी पद्मा,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे कुछ दुःख हुआ, कुछ हँसी आयी, कुछ क्रोध आया। तुम क्या चाहती हो, यह तुम्हें खुद नहीं मालूम। तुमने आदर्श पति पाया है, व्यर्थ की शंकाओं

से मन को अशांत न करो। तुम स्वाधीनता चाहती थीं, वह तुम्हें मिल गयी। दो आदमियों के लिए तीन सौ रुपये कम नहीं होते। उस पर अभी तुम्हारे पापा भी सौ रुपये दिये जाते हैं। अब और क्या चाहिए ? मुझे भय होता है कि तुम्हारा चित्त कुछ अव्यवस्थित हो गया है। मेरे पास तुम्हारे लिए सहानुभूति का एक शब्द भी नहीं।

मैं पन्द्रह तारीख को काशी आ गयी। स्वामी स्वयं मुझे विदा कराने गये थे। घर से चलते समय बहुत रोयी। पहले मैं समझती थी कि लड़कियाँ झूठ-मूठ रोया करती हैं फिर मेरे लिए तो माता-पिता का वियोग कोई बात न थी। गर्मी, दशहरा और बड़े दिन की छुट्टियों के बाद छह सालों से इस वियोग का अनुभव कर रही हूँ। कभी आँखों में आँसू न आते थे। सहेलियां से मिलने की खुशी होती थी। पर अबकी तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई हृदय को खींचे लेता है। अम्माँजी के गले लिपटकर तो मैं इतना रोयी कि मुझे मूर्छा आ गयी। पिताजी के पैरों पर लोटकर रोने की अभिलाषा मन में ही रह गयी। हाय, वह रुदन का आनन्द ! उस समय पिता के चरणों पर गिर कर रोने के लिए मैं अपने प्राण तक दे देती। यही रोना आता था कि मैंने इनके लिए कुछ न किया। मेरा पालन-पोषण करने में इन्होंने क्या कुछ कष्ट न उठाया ! मैं जन्म की रोगिणी हूँ। रोज ही बीमार रहती थी। अम्माँजी रात-रात भर मुझे गोद में लिये बैठी रह जाती थीं। पिताजी के कन्धों पर चढ़कर उचकने की याद मुझे अभी तक आती है। उन्होंने कभी मुझे कड़ी निगाह से नहीं देखा। मेरे सिर में दर्द हुआ और उनके हाथों के तोते उड़ जाते थे। दस वर्ष की उम्र तक तो यों गये। छह साल देहरादून में गुजरे। अब, जब इस योग्य हुई कि उनकी कुछ सेवा करूँ, तो यों पर झाड़कर अलग हो गयी। कुल आठ महीने तक उनके चरणो की सेवा कर सकी और यही आठ महीने मेरे जीवन की निधि है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि मेरा जन्म फिर इसी गोद में हो और फिर इसी अतुल पितृस्नेह का आनन्द भोगूँ।

सन्ध्या समय गाड़ी स्टेशन से चली। मैं जनाना कमरे में थी और लोग दूसरे कमरे में थे। उस वक्त सहसा मुझे स्वामीजी को देखने की प्रबल इच्छा हुई। सान्त्वना, सहानुभूति और आश्रय के लिए हृदय व्याकुल हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था जैसे कोई कैदी कालापानी जा रहा हो।

घंटे भर के बाद गाड़ी एक स्टेशन पर रुकी। मैं पीछे की ओर खिड़की से सिर निकालकर देखने लगी। उसी वक्त द्वार खुला और किसी ने कमरे में कदम रखा। उस कमरे में एक औरत भी न थी। मैंने चौंककर पीछे देखा तो एक पुरुष। मैंने तुरन्त मुँह छिपा लिया और बोली आप कौन हैं ? यह जनाना कमरा है। मरदाने कमरे में जाइए।

पुरुष ने खड़े-खड़े कहा—मैं तो इसी कमरे में बैठूँगा। मरदाने कमरे में भीड़ बहुत है।

मैंने रोष से कहा—नहीं, आप इसमें नहीं बैठ सकते।

'मैं तो बैठूँगा।'

'आपको निकलना पड़ेगा। आप अभी चले जाइए, नहीं तो मैं अभी जंजीर खींच लूँगी।'

'अरे साहब, मैं भी आदमी हूँ, कोई जानवर नहीं हूँ। इतनी जगह पड़ी हुई है। आपका इसमें हरज क्या है ?'

गाड़ी ने सीटी दी। मैं और घबराकर बोली—आप निकलते हैं, या मैं जंजीर खींचूँ ?

पुरुष ने मुस्कराकर कहा—आप तो बड़ी गुस्सावर मालूम होती हैं। एक गरीब आदमी

पर आपको जरा भी दया नहीं आती ?

गाड़ी चल पड़ी। मारे क्रोध और लज्जा के मुझे पसीना आ गया। मैंने फौरन द्वार खोल दिया और बोली—अच्छी बात है, आप बैठिए, मैं ही जाती हूँ।

बहन, मैं सच कहती हूँ, मुझे उस वक्त लेशमात्र भी भय न था। जानती थी, गिरते ही मर जाऊँगी, पर एक अजनबी के साथ अकेले बैठने से मर जाना अच्छा था। मैंने एक पैर लटकाया ही था कि उस पुरुष ने मेरी बाँह पकड़ ली और अन्दर खींचता हुआ बोला—अब तक तो आपने मुझे कालेपानी भेजने का सामान कर दिया था। यहाँ और कोई तो है नहीं, फिर आप इतना क्यों घबराती हैं। बैठिए, जरा हँसिए-बोलिए। अगले स्टेशन पर मैं उतर जाऊँगा, इतनी देर तक कृपा-कटाक्ष से वंचित न कीजिए। आपको देखकर दिल काबू से बाहर हुआ जाता है। क्यों एक गरीब का खून सिर पर लीजिएगा ?....

मैंने झटककर अपना हाथ छुड़ा लिया। सारी देह काँपने लगी। आँखों में आँसू भर आये। उस वक्त अगर मेरे पास कोई छुरी या कटार होती, तो मैंने जरूर उसे निकाल लिया होता और मरने-मारने को तैयार हो गयी होती। मगर इस दशा में क्रोध से ओंठ चबाने के सिवा और क्या करती ! आखिर झल्लाना व्यर्थ समझकर मैंने सावधान होने की चेष्टा करके कहा—आप कौन हैं ? उसने उसी ढिठाई से कहा—तुम्हारे प्रेम का इच्छुक।

'आप तो मजाक करते हैं। सच बतलाइए।'

'सच बता रहा हूँ, तुम्हारा आशिक हूँ।'

'अगर आप मेरे आशिक हैं, तो कम-से-कम इतनी बात मानिए कि अगले स्टेशन पर उतर जाइए। मुझे बदनाम करके आप कुछ न पायेंगे। मुझ पर इतनी दया कीजिए।'

मैंने हाथ जोड़कर यह बात कही। मेरा गला भी भर आया था। उस आदमी ने द्वार की ओर जाकर कहा—अगर आपका यही हुक्म है, तो लीजिए, जाता हूँ। याद रखिएगा।

उसने द्वार खोल लिया और एक पाँव आगे बढ़ाया। मुझे मालूम हुआ वह नीचे कूदने जा रहा है। बहन, नहीं कह सकती कि उस वक्त मेरे दिल की क्या दशा हुई। मैंने बिजली की तरह लपककर उसका हाथ पकड़ लिया और अपनी तरफ जोर से खींच लिया।

उसने ग्लानि से भरे हुए स्वर में कहा—'क्यों खींच लिया, मैं तो चला जा रहा था।'

'अगला स्टेशन आने दीजिए।'

'जब आप भगा ही रही हैं, तो जितनी जल्द भाग जाऊँ उतना ही अच्छा।'

'मैं यह कब कहती हूँ कि आप चलती गाड़ी से कूद पड़िए।'

'अगर मुझ पर इतनी दया है, तो एक बार जरा दर्शन ही दे दो।'

'अगर आपकी स्त्री से कोई दूसरा पुरुष बातें करता, तो आपको कैसा लगता ?'

पुरुष ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—'मैं उसका खून पी जाता ।'

मैंने निस्संकोच होकर कहा—तो फिर आपके साथ मेरे पति क्या व्यवहार करेंगे, यह भी आप समझते होंगे ?

'तुम अपनी रक्षा आप ही कर सकती हो। प्रिये, तुम्हें पति की मदद की जरूरत ही नहीं। अब आओ, मेरे गले से लग जाओ। मैं ही तुम्हारा भाग्यशाली स्वामी और सेवक हूँ।'

मेरा हृदय उछल पड़ा। एक बार मुंह से निकला—'अरे ! आप !!' और मैं दूर हटकर खड़ी हो गयी। एक हाथ लंबा घूँघट खींच लिया। मुंह से एक शब्द न निकला।

स्वामी ने कहा—अब यह शर्म और परदा कैसा ?

मैंने कहा—आप बड़े छलिये हैं ! इतनी देर तक मुझे रुलाने में क्या मजा आया ?

स्वामी—इतनी देर में मैंने तुम्हें जितना पहचान लिया, उतना घर के अन्दर शायद बरसों में भी न पहचान सकता। यह अपराध क्षमा करो। क्या तुम सचमुच गाड़ी से कूद पड़तीं ?

'अवश्य ?'

'बड़ी खैरियत हुई, मगर यह दिल्लगी बहुत दिनों याद रहेगी।' मेरे स्वामी औसत कद के, साँवले, चेचकरू, दुबले आदमी हैं। उनसे कहीं रूपवान् पुरुष मैंने देखे हैं : पर मेरा हृदय कितना उल्लसित हो रहा था ! कितनी आनन्दमय सन्तुष्टि का अनुभव कर रही थी, मैं बयान नहीं कर सकती।

मैंने पूछा—गाड़ी कब तक पहुँचेगी ?

'शाम को पहुँच जायँगे।'

मैंने देखा, स्वामी का चेहरा कुछ उदास हो गया है। वह दस मिनट तक चुपचाप बैठे बाहर की तरफ ताकते रहे। मैंने उन्हें केवल बात में लगाने ही के लिए यह अनावश्यक प्रश्न पूछा था। पर अब भी जब वह न बोले तो मैंने फिर न छेड़ा। पानदान खोलकर पान बनाने लगी। सहसा उन्होंने कहा—चन्दा, एक बात कहूँ ?

मैंने कहा—हाँ-हाँ, शौक से कहिए।

उन्होंने सिर झुकाकर शर्माते हुए कहा—मैं जानता कि तुम इतनी रूपवती हो, तो मैं तुमसे विवाह न करता। अब तुम्हें देखकर मुझे मालूम हो रहा है कि मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। मैं किसी तरह तुम्हारे योग्य न था।

मैंने पान का बीड़ा देते हुए कहा—ऐसी बातें न कीजिए। आप जैसे हैं, मेरे सर्वस्व हैं। मैं आपकी दासी बनकर अपने भाग्य को धन्य मानती हूँ।

दूसरा स्टेशन आ गया। गाड़ी रुकी। स्वामी चले गये। जब-जब गाड़ी रुकती थी, वह आकर दो-चार बातें कर जाते थे। शाम को हम लोग बनारस पहुँचे गये। मकान एक गली में है और मेरे घर से बहुत छोटा है। इन कई दिनों में यह भी मालूम हो रहा है कि सासजी स्वभाव की रूखी हैं। लेकिन अभी किसी के बारे में कुछ नहीं कह सकती। सम्भव है, मुझे भ्रम हो रहा हो। फिर लिखूँगी। मुझे इसकी चिन्ता नहीं कि घर कैसा है, आर्थिक दशा कैसी है, सास-ससुर कैसे हैं। मेरी इच्छा है कि यहाँ सभी मुझसे खुश रहें। पतिदेव को मुझसे प्रेम है, यह मेरे लिए काफी है। मुझे और किसी बता की परवा नहीं। तुम्हारे बहनोईजी का मेरे पास बार-बार आना सासजी को अच्छा नहीं लगता। वह समझती हैं, कहीं यह सिर न चढ़ जाय। क्यों मुझ पर उनकी यह अकृपा है, कह नहीं सकती; पर इतना जानती हूँ कि वह अगर इस बात से नाराज होती हैं, तो हमारे ही भले के लिए। वह ऐसी कोई बात क्यों करेंगी, जिसमें हमारा हित न हो। अपनी सन्तान का अहित कोई माता नहीं कर सकती। मुझ ही में कोई बुराई उन्हें नजर आयी होगी। दो-चार दिन में आप ही मालूम हो जायगा ! अपने यहाँ के समाचार लिखना। जवाब की आशा एक महीने के पहले तो है नहीं, यों तुम्हारी खुशी।

तुम्हारी,
चन्दा

9

देहली
1-2-26

प्यारी बहन,

तुम्हारे प्रथम मिलन की कुतूहलमय कथा पढ़कर चित्त प्रसन्न हो गया। मुझे तुम्हारे ऊपर हसद हो रहा है। मैंने समझा था, तुम्हें मुझ पर हसद होगा, पर क्रिया उलटी हो गयी। तुम्हें चारों ओर हरियाली ही नजर आती है, मैं जिधर नजर डालती हूँ, सूखे रेत और नग्न टीलों के सिवा कुछ नहीं। खैर ! अब कुछ मेरा वृत्तान्त सुनो–

"अब जिगर थामकर बैठो, मेरी बारी आयी।"

विनोद की अविचलित दार्शनिकता अब असह्य हो गयी है। कुछ विचित्र जीव है, घर में आग लगे, पत्थर पड़े इनकी बला से। इन्हें मुझ पर जरा भी दया नहीं आती। मैं सुबह से शाम तक घर के झंझटों में कुढ़ा करूँ, इन्हें कुछ परवा नहीं। ऐसा सहानुभूति से खाली आदमी कभी नहीं देखा था। इन्हें तो किसी जंगल में तपस्या करनी चाहिए थी। अभी तो खैर दो ही प्राणी हैं, लेकिन कहीं बाल-बच्चे हो गये तब तो मैं बे-मौत मर जाऊँगी। ईश्वर न करे, वह दारुण विपत्ति मेरे सिर पड़े।

चन्दा, मुझे अब दिल से लगी हुई है कि किसी भाँति इनकी वह समाधि भंग कर दूँ। मगर कोई उपाय सफल नहीं होता, कोई चाल ठीक नहीं पड़ती। एक दिन मैंने उनके कमरे के लैंप का बल्ब तोड़ दिया। कमरा अँधेरा पड़ा रहा। आप सैर करके आये, तो कमरा अँधेरा देखा। मुझसे पूछा मैंने कह दिया बल्ब टूट गया। बस, आपने भोजन किया और मेरे कमरे में आकर लेट रहे। पत्रों और उपन्यासों की ओर देखा तक नहीं, न जाने वह उत्सुकता कहाँ विलीन हो गयी। दिन-भर गुजर गया, आपको बल्ब लगवाने की कोई फिक्र नहीं। आखिर मुझी को बाजार से लाना पड़ा।

एक दिन मैंने झुँझलाकर रसोइये को निकाल दिया। सोचा जब लाला रात भर भूखे सोयेंगे तब आँखें खुलेंगी। मगर इस भले आदमी ने कुछ पूछा तक नहीं। चाय न मिली, कुछ परवा नहीं। ठीक दस बजे आपने कपड़े पहने, एक बार रसोई की ओर जाकर देखा, सन्नाटा था। बस, कालेज चल दिये। एक आदमी पूछता है, महाराज कहाँ गया, क्यों गया; अब क्या इन्तजाम होगा, कौन खाना पकायेगा, कम-से-कम इतना तो मुझसे कह सकते थे कि तुम अगर नहीं पका सकतीं, तो बाजार ही से कुछ खाना मँगवा लो। जब वह चले गये, तो मुझे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। रायल होटल से खाना मँगवाया और बैरे के हाथ कालेज भेज दिया। पर खुद भूखी ही रही। दिन-भर भूख के मारे बुरा हाल था। सिर में दर्द होने लगा। आप कालेज से आये और मुझे पड़े देखा तो ऐसे परेशान हुए मानो मुझे त्रिदोष है। उसी वक्त एक डाक्टर बुला भेजा। डाक्टर आये, आँखें देखीं, जबान देखी, हरारत देखी, लगाने की दवा अलग दी, पीने की अलग। आदमी दवा लेने गया। लौटा तो बारह रुपये का बिल भी था। मुझे इन सारी बातों पर ऐसा क्रोध आ रहा था कि कहाँ भागकर चली जाऊँ। उस पर आप आराम-कुर्सी डालकर मेरी चारपाई के पास बैठ गये और एक-एक पल पर पूछने लगे कैसा जी है? दर्द कुछ कम हुआ ? यहाँ मारे भूख के आँतें कुलबुला रही थीं। दवा हाथ से छुई तक नहीं। आखिर झख मारकर मैंने फिर बैरे से खाना मँगवाया। फिर चाल उलटी

पड़ी। मैं डरी कि कहीं सबेरे फिर यह महाशय डाक्टर को न बुला बैठें, इसलिए सबेरा होते ही हारकर फिर घर के काम-धन्धे में लगी। उसी वक्त एक दूसरा महाराज बुलवाया। अपने पुराने महाराज को बेकसूर निकालकर दण्डस्वरूप एक काठ के उल्लू को रखना पड़ा, जो मामूली चपातियाँ भी नहीं पका सकता। उस दिन से एक नयी बला गले पड़ी। दोनों वक्त दो घण्टे इस महाराज को सिखाने में लग जाते हैं। इसे अपनी पाक-कला का ऐसा घमण्ड है कि मैं चाहे जितना बकूँ, पर करता अपने ही मन की है। इस पर बीच-बीच में मुसकिराने लगता है, मानो कहता हो कि 'तुम इन बातों को क्या जानो, चुपचाप बैठी देखती जाव।' जलाने चली थी विनोद को और खुद जल गयी। रुपये खर्च हुए, वह तो हुए ही, एक और जंजाल में फँस गयी। मैं खूब जानती हूँ कि विनोद का डाक्टर को बुलाना या मेरे पास बैठे रहना केवल दिखावा था। उनके चेहरे पर जरा भी घबराहट न थी, चित्त जरा भी अशांत न था।

चन्दा, मुझे क्षमा करना। मैं नहीं जानती कि ऐसे पुरुष के पाले पड़कर तुम्हारी क्या दशा होती, पर मेरे लिए इस दशा में रहना असह्य है। मैं आगे जो वृत्तान्त कहनेवाली हूँ, उसे सुनकर तुम नाक-भौं सिकोड़ोगी, मुझे कोसोगी, कलंकिनी कहोगी; पर जो चाहे कहो, मुझे परवा नहीं। आज चार दिन होते हैं, मैंने त्रिया-चरित्र का एक नया अभिनय किया। हम दोनों सिनेमा देखने गये थे। वहाँ मेरी बगल में एक बंगाली बाबू बैठे हुए थे। विनोद सिनेमा में इस तरह बैठते हैं, मानो ध्यानावस्था में हों। न बोलना, न चालना ! फिल्म इतनी सुन्दर थी, ऐक्टिंग इतनी सजीव कि मेरे मुँह से बार-बार प्रशंसा के शब्द निकल जाते थे। बंगाली बाबू को भी बड़ा आनन्द आ रहा था ! हम दोनों उस फिल्म पर आलोचनाएँ करने लगे। वह फिल्म के भावों की इतनी रोचक व्याख्या करता था कि मन मुग्ध हो जाता था। फिल्म से ज्यादा मजा मुझे उसकी बातों में आ रहा था। बहन, सच कहती हूँ, शक्ल-सूरत में वह विनोद के तलुओं की बराबरी भी नहीं कर सकता, पर केवल विनोद को जलाने के लिए मैं उससे मुसकिरा-मुसकिराकर बातें करने लगी। उसने समझा, कोई शिकार फँस गया। अवकाश के समय वह बाहर जाने लगा, तो मैं भी उठ खड़ी हुई; पर विनोद अपनी जगह पर ही बैठे रहे।

मैंने कहा—बाहर चलते हो, मेरी तो बैठे-बैठे कमर दुख गयी।

विनोद बोले—हाँ-हाँ, चलो, इधर-उधर, टहल आयें। मैंने लापरवाही से कहा—तुम्हारा जी न चाहे तो मत चलो, मैं मजबूर नहीं करती।

विनोद फिर अपनी जगह पर बैठते हुए बोले—अच्छी बात है।

मैं बाहर आयी तो बंगाली बाबू ने पूछा—क्या आप यहीं की रहनेवाली हैं ?

'मेरे पति यहाँ यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं।'

'अच्छा ! वह आपके पति थे। अजीब आदमी हैं।'

'आपको तो मैंने शायद यहाँ पहले ही देखा है।'

'हाँ, मेरा मकान तो बंगाल में है। [illegible]नपुर के महाराज साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी हूँ। महाराज साहब वाइसराय से मिलने आये हैं।'

'तो अभी दो-चार दिन रहिएगा ?'

'जी हाँ, आशा तो करता हूँ। रहूँ तो साल-भर रह जाऊँ। जाऊँ तो दूसरी गाड़ी से

चला जाऊँ। हमारे महाराज साहब का कुछ ठीक नहीं। यों बड़े सज्जन और मिलनसार हैं। आपसे मिलकर बहुत खुश होंगे।'

यह बातें करते-करते हम रेस्ट्राँ में पहुँच गये। बाबू ने चाय और टोस्ट लिया। मैंने सिर्फ चाय ली।

'तो इसी वक्त आपका महाराज साहब से परिचय करा दूँ। आपको आश्चर्य होगा कि मुकुटधारियों में भी इतनी नम्रता और विनय हो सकती है। उनकी बातें सुनकर आप मुग्ध हो जायँगी।'

मैंने आईने में अपनी सूरत देखकर कहा—जी नहीं, फिर किसी दिन पर रखिए। आपसे तो अक्सर मुलाकात होती रहेगी। क्या आपकी स्त्री आपके साथ नहीं आयीं ?

युवक ने मुसकिराकर कहा—मैं अभी क्वाँरा हूँ और शायद क्वाँरा ही रहूँ ?

मैंने उत्सुक होकर पूछा—अच्छा ! तो आप भी स्त्रियों से भागनेवाले जीवों में है। इतनी बातें तो हो गयीं और आपका नाम तक न पूछा।

बाबू ने अपना नाम भुवनमोहनदास गुप्त बताया। मैंने अपना परिचय दिया।

'जी नहीं, मैं उन अभागों में हूँ, जो एक बार निराश होकर फिर उसकी परीक्षा नहीं करते। रूप की तो संसार में कमी नहीं, मगर रूप और गुण का मेल बहुत कम देखने में आता है। जिस रमणी से मेरा प्रेम था, वह आज एक बड़े वकील की पत्नी है। मैं गरीब था। इसकी सजा मुझे ऐसी मिली कि जीवन-पर्यन्त न भूलेगी। साल-भर तक जिसकी उपासना की, जब उसने समुझे धन पर बलिदान कर दिया, तो अब और क्या आशा रखूं ?'

मैंने हँसकर कहा—'आपने बहुत जल्द हिम्मत हार दी।'

भुवन ने सामने द्वार की ओर ताकते हुए कहा—मैंने आज तक ऐसा वीर ही नहीं देखा, जो रमणियों से परास्त न हुआ हो। ये हृदय पर चोट करती हैं और हृदय एक ही गहरी चोट सह सकता है। जिस रमणी ने मेरे प्रेम को तुच्छ समझकर पैरों से कुचल दिया, उसको मैं दिखाना चाहता हूँ कि मेरी आँखों में धन कितनी तुच्छ वस्तु है यही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। मेरा जीवन उसी दिन सफल होगा, जब विमला के घर के सामने मेरा विशाल भवन होगा और उसका पति मुझसे मिलने में अपना सौभाग्य समझेगा।

मैंने गम्भीरता से कहा—यह तो कोई बहुत ऊँचा उद्देश्य नहीं है। आप यह क्यों समझते हैं कि विमला ने केवल धन के लिए आपका परित्याग किया। सम्भव है, इसके और भी कारण हों। माता-पिता ने उस पर दबाव डाला हो, या अपने ही में उसे कोई ऐसी त्रुटि दिखलायी दी हो, जिससे आपका जीवन दुःखमय हो जाता। आप यह क्यों समझते हैं कि जिस प्रेम से वंचित होकर आप इतने दुखी हुए, उसी प्रेम से वंचित होकर वह सुखी हुई होगी। सम्भव था, कोई धनी स्त्री पाकर आप भी फिसल जाते।

भुवन ने जोर देकर कहा—यह असम्भव है, सर्वथा असम्भव है। मैं उसके लिए त्रिलोक का राज्य भी त्याग देता।

मैंने हँसकर कहा—हाँ, इस वक्त आप ऐसा कह सकते हैं; मगर ऐसी परीक्षा में पड़कर आपकी क्या दशा होती, इसे आप निश्चयपूर्वक नहीं बता सकते। सिपाही की बहादुरी का प्रमाण उसकी तलवार है, उसकी जबान नहीं। इसे अपना सौभाग्य समझिए कि आपको उस परीक्षा में नहीं पड़ना पड़ा। वह प्रेम, प्रेम नहीं है, जो प्रत्याघात की शरण ले।

प्रेम का आदि भी सहृदयता है और अन्त भी सहृदयता। सम्भव है, आपको अब भी कोई ऐसी बात मालूम हो जाय, जो विमला की तरफ से आपको नर्म कर दे।

भुवन गहरे विचार में डूब गये। एक मिनट के बाद उन्होंने सिर उठाया और बोले–'मिसेज विनोद, आपने आज एक ऐसी बात सुझा दी, जो आज तक मेरे ध्यान में आयी ही न थी। यह भाव कभी मेरे मन में उदय ही नहीं हुआ। मैं इतना अनुदार क्यों हो गया, समझ में नहीं आता। मुझे आज मालूम हुआ कि प्रेम के ऊँचे आदर्श का पालन रमणियाँ ही कर सकती हैं। पुरुष कभी प्रेम के लिए आत्म-समर्पण नहीं कर सकता–वह प्रेम को स्वार्थ और वासना से पृथक् नहीं कर सकता। अब मेरा जीवन सुखमय हो जायगा। आपने मुझे आज जो शिक्षा दी है, उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ।'

यह कहते-कहते भुवन सहसा चौंक पड़े और बोले–ओह ! मैं कितना बड़ा मूर्ख हूँ–सारा रहस्य समझ में आ गया, अब कोई बात छिपी नहीं है। ओह मैंने विमला के साथ घोर अन्याय किया ! महान् अन्याय ! मैं बिलकुल अंधा हो गया था। विमल, मुझे क्षमा करो।

भुवन इसी तरह देर तक विलाप करते रहे। बार-बार मुझे धन्यवाद देते थे और अपनी मूर्खता पर पछताते थे। हमें इसकी सुध ही न रही कि कब घंटी बजी, कब खेल शुरू हुआ। एकाएक विनोद कमरे में आये। मैं चौंक पड़ी। मैंने उनके मुख की ओर देखा, किसी भाव का पता न था। बोले–तुम अभी यहीं हो, पद्मा ! खेल शुरू हुए तो देर हुई ! मैं चारों तरफ तुम्हें खोज रहा था।

मैं हकबकाकर उठ खड़ी हुई और बोली–खेल शुरू हो गया ? घंटी की आवाज तो सुनायी ही नहीं दी।

भुवन भी उठे। हम फिर आकर तमाशा देखने लगे। विनोद ने मुझे अगर इस वक्त दो-चार लगनेवाली बातें कह दी होतीं, उनकी आँखों में क्रोध की झलक दिखायी देती, तो मेरा अशांत हृदय सँभल जाता, मेरे मन को ढाढ़स होती, पर उनके अविचलित विश्वास ने मुझे और भी अशांत कर दिया। बहन, मैं चाहती हूँ, वह मुझ पर शासन करें। मैं उनकी कठोरता, उनकी उद्दण्डता, उनकी बलिष्ठता का रूप देखना चाहती हूँ। उनके प्रेम, प्रमोद, विश्वास का रूप देख चुकी। इससे मेरी आत्मा को तृप्ति नहीं होती! तुम उस पिता को क्या कहोगी, जो अपने पुत्र को अच्छा खिलाये, अच्छा पहनाये, पर उसकी शिक्षा-दीक्षा की कुछ चिन्ता न करे; वह जिस राह जाय, उस राह जाने दे; जो कुछ करे, वह करने दे। कभी उसे कड़ी आँख से देखे भी नहीं। ऐसा लड़का अवश्य ही आवारा हो जायगा। मेरा भी वही हाल हुआ जाता है। यह उदासीनता मेरे लिए असह्य है। इस भले आदमी ने यहाँ तक न पूछा कि भुवन कौन है ? भुवन ने यही तो समझा होगा कि इसका पति इसकी बिलकुल परवा नहीं करता। विनोद खुद स्वाधीन रहना चाहते हैं, मुझे भी स्वाधीन छोड़ देना चाहते हैं। वह मेरे किसी काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। इसी तरह चाहते हैं कि मैं भी उनके किसी काम में हस्तक्षेप न करूँ। मैं इस स्वाधीनता को दोनों ही के लिए विष तुल्य समझती हूँ। संसार में स्वाधीनता का चाहे जो भी मूल्य हो, घर में तो पराधीनता ही फलती-फूलती है। मैं जिस तरह अपने एक जेवर को अपना समझती हूँ, उसी तरह विनोद को भी अपना समझना चाहती हूँ। अगर मुझसे पूछे बिना विनोद उसे किसी को दे दें, तो मैं लड़ पड़ूँगी।

मैं चाहती हूँ, उसी तरह उन पर मेरा अधिकार हो। अपने ऊपर भी उनका ऐसा ही अधिकार चाहती हूँ। उन्हें मेरी एक-एक बात पर ध्यान देना चाहिए। मैं किससे मिलती हूँ, कहाँ हूँ, क्या पढ़ती हूँ, किस तरह जीवन व्यतीत करती हूँ, इन सारी बातों पर उनकी तीव्र दृष्टि रहनी चाहिए। जब वह मेरी परवा नहीं करते, तो मैं उनकी परवा क्यों करूँ? इस खींचातानी में हम एक दूसरे से अलग होते चले जा रहे हैं और क्या कहूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम कि वह किन मित्रों को रोज पत्र लिखते हैं। उन्होंने भी मुझसे कभी कुछ नहीं पूछा। खैर, मैं क्या लिख रही थी, क्या कहने लगी। विनोद ने मुझसे कुछ नहीं पूछा। मैं फिर भुवन से फिल्म के सम्बन्ध में बातें करने लगी।

जब खेल खत्म हो गया और हम लोग बाहर आये और ताँगा ठीक करने लगे, तो भुवन ने कहा—'मैं अपनी कार में आपको पहुँचा दूँगा।'

हमने कोई आपत्ति नहीं की। हमारे मकान का पता पूछकर भुवन ने कार चला दी। रास्ते में मैंने भुवन से कहा—'कल मेरे यहाँ दोपहर का खाना खाइएगा।' भुवन ने स्वीकार कर लिया।

भुवन तो हमें पहुँचाकर चले गये, पर मेरा मन बड़ी देर तक उन्हीं की तरफ लगा रहा। इन दो-तीन घंटों में भुवन को जितना समझी, उतना विनोद को आज तक नहीं समझी। मैंने भी अपने हृदय की जितनी बातें उससे कह दीं, उतनी विनोद से आज तक नहीं कहीं। भुवन उन मनुष्यों में है, जो किसी परपुरुष को मेरी ओर कुदृष्टि डालते देखकर उसे मार डालेगा। उसी तरह मुझे किसी पुरुष से हँसते देखकर मेरा खून पी लेगा और जरूरत पड़ेगी, तो मेरे लिए आग में कूद पड़ेगा। ऐसा ही पुरुष-चरित्र मेरे हृदय पर विजय पा सकता है। मेरे ही हृदय पर नहीं, नारी-जाति (मेरे विचार में) ऐसे ही पुरुष पर जान देती है। वह निर्बल है, इसलिए बलवान् का आश्रय ढूँढ़ती है।

बहन, तुम ऊब गयी होगी, खत बहुत लंबा हो गया; मगर इस काण्ड को समाप्त किए बिना नहीं रहा जाता। मैंने सबेरे ही से भुवन की दावत की तैयारी शुरू कर दी। रसोइया तो काठ का उल्लू है, मैंने सारा काम अपने हाथ से किया। भोजन बनाने में ऐसा आनन्द मुझे और कभी न मिला था।

भुवन बाबू की कार ठीक समय पर आ पहुँची। भुवन उतरे और सीधे मेरे कमरे में आये। दो-चार बातें हुईं। डिनर-टेबुल पर जा बैठे। विनोद भी भोजन करने आये। मैंने उन दोनों आदमियों का परिचय करा दिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि विनोद ने भुवन की ओर से कुछ उदासीनता दिखायी। इन्हें राजाओं-रईसों से चिढ़ है, साम्यवादी हैं। जब राजाओं से चिढ़ है तो उनके पिट्ठुओं से क्यों न होती। वह समझते हैं, इन रईसों के दरबार में खुशामदी, निकम्मे, सिद्धान्तहीन, चरित्रहीन लोगों का जमघट रहता है, जिनका इसके सिवाय और कोई काम नहीं कि अपने रईस की हर एक उचित-अनुचित इच्छा पूरी करें और प्रजा का गला काटकर अपना घर भरें। भोजन के समय बातचीत की धारा घूमते-घामते विवाह और प्रेम-जैसे महत्त्व के विषय पर आ पहुँची।

विनोद ने कहा—'नहीं, मैं वर्तमान वैवाहिक प्रथा को पसंद नहीं करता। इस प्रथा का आविष्कार उस समय हुआ था, जब मनुष्य सभ्यता की प्रारंभिक दशा में था। तब से दुनिया बहुत आगे बढ़ी है। मगर विवाह-प्रथा में जौ भर भी अन्तर नहीं पड़ा। यह प्रथा वर्तमान

काल के लिए उपयोगी नहीं।'

भुवन ने कहा—'आखिर आपको इसमें क्या दोष दिखाई देते हैं ?'

विनोद ने विचार कर कहा—'इसमें सबसे बड़ा ऐब यह है कि यह एक सामाजिक प्रश्न को धार्मिक रूप दे देता है।'

'और दूसरा ?'

'दूसरा यह कि यह व्यक्तियों की स्वाधीनता में बाधक है। यह स्त्री-व्रत और पतिव्रत का स्वाँग रचकर हमारी आत्मा को संकुचित कर देता है। हमारी बुद्धि के विकास में जितनी रुकावट इस प्रथा ने डाली है, उतनी और किसी भौतिक या दैविक क्रांति से भी नहीं हुई। इसने मिथ्या आदर्शों को हमारे सामने रख दिया और आज तक हम उन्हीं पुरानी, सड़ी हुई, लज्जाजनक, पाशविक लकीरों को पीटते जाते हैं। व्रत केवल एक निरर्थक बंधन का नाम है। इतना महत्त्वपूर्ण नाम देकर हमने उस कैद को धार्मिक रूप दे दिया है। पुरुष क्यों चाहता है कि स्त्री उसको अपना ईश्वर, अपना सर्वस्व समझे? केवल इसलिए कि वह उसका भरण-पोषण करता है। क्या स्त्री का कर्तव्य केवल पुरुष की सम्पत्ति के लिए वारिस पैदा करना है ? उस सम्पत्ति के लिए जिस पर, हिन्दू नीति शास्त्र के अनुसार, पति के देहान्त के बाद उसका कोई अधिकार नहीं रहता। समाज की यह सारी व्यवस्था, सारा संगठन सम्पत्ति-रक्षा के आधार पर हुआ है। इसने सम्पत्ति को प्रधान और व्यक्ति को गौण कर दिया है। हमारे ही वीर्य से उत्पन्न सन्तान हमारी कमाई हुई जायदाद का भोग करे, इस मनोभाव में कितनी स्वार्थान्धता, कितना दासत्व छिपा हुआ है, इसका कोई अनुमान नहीं कर सकता। इस कैद में जकड़ी हुई समाज की संतान यदि आज घर में, देश में, संसार में, अपने क्रूर स्वार्थ के लिए रक्त की नदियाँ बहा रही है, तो क्या आश्चर्य है। मैं इस वैवाहिक प्रथा को सारी बुराइयों का मूल समझता हूँ।'

भुवन चकित हो गया। मैं खुद चकित हो गयी। विनोद ने इस विषय पर मुझसे कभी इतनी स्पष्टता से बातचीत न की थी। मैं यह तो जानती थी, वह साम्यवादी हैं, दो-एक बार इस विषय पर उनसे बहस भी कर चुकी हूँ, पर वैवाहिक प्रथा के वे इतने विरोधी हैं, यह मुझे न मालूम था। भुवन के चेहरे से ऐसा प्रकट होता था कि उन्होंने ऐसे दार्शनिक विचारों की गंध तक नहीं पायी। जरा देर के बाद बोले—प्रोफेसर साहेब, आपने तो मुझे एक बड़े चक्कर में डाल दिया। आखिर आप इस प्रथा की जगह कोई और प्रथा रखना चाहते हैं या विवाह की आवश्यकता ही नहीं समझते ? जिस तरह पशु-पक्षी आपस में मिलते हैं, वह हमें भी करना चाहिए ?

विनोद ने तुरंत उत्तर दिया—बहुत कुछ। पशु-पक्षियों में सभी का मानसिक विकास एक-सा नहीं है। कुछ ऐसे हैं, जो जोड़े के चुनाव में कोई विचार नहीं रखते। कुछ ऐसे हैं, जो एक बार बच्चे पैदा करने के बाद अलग हो जाते हैं, और कुछ ऐसे हैं, जो जीवनपर्यन्त एक साथ रहते हैं। कितनी ही भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। मैं मनुष्य होने के नाते उसी श्रेणी को श्रेष्ठ समझता हूँ, जो जीवन-पर्यन्त एक साथ रहते हैं। मगर स्वेच्छा से। उनके यहाँ कोई कैद नहीं, कोई सजा नहीं। दोनों अपने-अपने चारे-दाने की फिक्र करते हैं। दोनों मिलकर रहने का स्थान बनाते हैं, दोनों साथ बच्चों का पालन करते हैं। उनके बीच में कोई तीसरा नर या मादा आ ही नहीं सकता, यहाँ तक कि उनमें से जब एक मर जाता है तो

दूसरा मरते दम तक फुट्टैल रहता है। यह अन्धेर मनुष्य-जाति ही में है कि स्त्री ने किसी दूसरे पुरुष से हँसकर बात की और उसके पुरुष की छाती पर साँप लोटने लगा, खून-खराबे के मंसूबे सोचे जाने लगे। पुरुष ने किसी दूसरी स्त्री की ओर रसिक नेत्रों से देखा और अर्धांगिनी ने त्योरियाँ बदलीं, पति के प्राण लेने को तैयार हो गयी। यह सब क्या है ? ऐसा मनुष्य-समाज सभ्यता का किस मुँह से दावा कर सकता है ?

भुवन ने सिर सहलाते हुए कहा—मगर मनुष्यों में भी तो भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। कुछ लोग हर महीने एक नया जोड़ा खोज निकालेंगे।

विनोद ने हँसकर कहा—लेकिन यह इतना आसान काम न होगा। या तो वह ऐसी स्त्री चाहेगा, जो सन्तान का पालन स्वयं कर सकती हो, या उसे एक मुश्त सारी रकम अदा करनी पड़ेगी !

भुवन भी हँसे—आप अपने को किस श्रेणी में रक्खेंगे ?

विनोद इस प्रश्न के लिए तैयार न थे। था भी बेढंगा-सा सवाल। झेंपते हुए बोले—परिस्थितियाँ जिस श्रेणी में ले जायँ। मैं स्त्री और पुरुष दोनों के लिए पूर्ण स्वाधीनता का हामी हूँ। कोई कारण नहीं है कि मेरा मन किसी नवयौवना की ओर आकर्षित हो और वह भी मुझे चाहे तो भी मैं समाज और नीति के भय से उसकी ओर ताक न सकूँ। मैं इसे पाप नहीं समझता।

भुवन अभी कुछ उत्तर न देने पाये थे कि विनोद उठ खड़े हुए। कालेज के लिए देर हो रही थी। तुरन्त कपड़े पहने और चल दिये। हम दोनों दीवानखाने में आकर बैठे और बातें करने लगे।

भुवन ने सिगार जलाते हुए कहा—'कुछ सुना, कहाँ जाकर तान टूटी ?'

मैंने मारे शर्म के सिर झुका लिया। क्या जवाब देती। विनोद की अंतिम बात ने मेरे हृदय पर कठोर आघात किया था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि विनोद ने केवल मुझे सुनाने के लिए विवाह का यह नया खण्डन तैयार किया है। वह मुझसे पिंड छुड़ा लेना चाहते हैं। वह किसी रमणी की ताक में हैं, मुझसे उनका जी भर गया। यह खयाल करके मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। कदाचित् एकांत में मैं न रोती, पर भुवन के सामने मैं संयत न रह सकी। भुवन ने मुझे बहुत सांत्वना दी—'आप व्यर्थ इतना शोक करती हैं। मिस्टर विनोद आपका मान न करें; पर संसार में कम-से-कम एक ऐसा व्यक्ति है, जो आपके संकेत पर अपने प्राण तक न्योछावर कर सकता है। आप-जैसी रमणी-रत्न पाकर संसार में ऐसा कौन पुरुष है, जो अपने भाग्य को धन्य न मानेगा। आप इसकी बिलकुल चिन्ता न करें।'

मुझे भुवन की यह बात बुरी मालूम हुई। क्रोध से मेरा मुख लाल हो गया। यह धूर्त मेरी इस दुर्बलता से लाभ उठाकर मेरा सर्वनाश करना चाहता है। अपने दुर्भाग्य पर बराबर रोना आता था। अभी विवाह हुए साल भी नहीं पूरा हुआ, मेरी यह दशा हो गयी कि दूसरों को मुझे बहकाने और मुझ पर अपना जादू चलाने का साहस हो रहा है। जिस वक्त मैंने विनोद को देखा था, मेरा हृदय कितना फूल उठा था। मैंने अपने हृदय को कितनी भक्ति से उनके चरणों पर अर्पण किया था। मगर क्या जानती थी कि इतनी जल्द मैं उनकी आँखों से गिर जाऊँगी और मुझे परित्यक्ता समझ कर शोहदे मुझ पर डोरे डालेंगे।

मैंने आँसू पोंछते हुए कहा—मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ। मुझे जरा विश्राम लेने दीजिए।

'हाँ-हाँ, आराम करें; मैं बैठा देखता रहूँगा।'

'जी नहीं, अब आप कृपा करके जाइए। यों मुझे आराम न मिलेगा।'

'अच्छी बात है, आप आराम कीजिए। मैं सन्ध्या-समय आकर देख जाऊँगा।'

'जी नहीं, आपको कष्ट करने की कोई जरूरत नहीं है।'

'अच्छा तो मैं कल आऊँगा। शायद महाराजा साहब भी आवें।'

'नहीं, आप लोग मेरे बुलाने का इन्तजार कीजिएगा। बिना बुलाये न आइएगा।'

यह कहती हुई मैं उठकर अपने सोने के कमरे की ओर चली। भुवन एक क्षण मेरी ओर देखता रहा, फिर चुपके से चला गया।

बहन, इसे दो दिन हो गये हैं। पर मैं कमरे से बाहर नहीं निकली। भुवन दो-तीन बार आ चुका है, मगर मैंने उससे मिलने से साफ इनकार कर दिया। अब शायद उसे फिर आने का साहस न होगा। ईश्वर ने बड़े नाजुक मौके पर मुझे सुबुद्धि प्रदान की, नहीं तो मैं अब तक अपना सर्वनाश कर बैठी होती। विनोद प्रायः मेरे पास ही बैठे रहते हैं। लेकिन उनसे बोलने को मेरा जी नहीं चाहता। जो पुरुष व्यभिचार का दार्शनिक सिद्धान्तों से समर्थन कर सकता है, जिसकी आँखों में विवाह-जैसे पवित्र बन्धन का कोई मूल्य नहीं, जो न मेरा हो सकता है, न मुझे अपना बना सकता है, उसके साथ मुझ जैसी मानिनी गर्विणी स्त्री का कै दिन निर्वाह होगा।

बस, अब विदा होती हूँ। बहन, क्षमा करना। मैंने तुम्हारा बहुत-सा अमूल्य समय ले लिया। मगर इतना समझ लो कि मैं तुम्हारी दया नहीं, सहानुभूति चाहती हूँ।

तुम्हारी,
पद्मा

10

काशी
5-1-26

बहन,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई उपन्यास पढ़कर उठी हूँ। अगर तुम उपन्यास लिखो, तो मुझे विश्वास है, उसकी धूम मच जाय; तुम आप उसकी नायिका बन जाना। तुम ऐसी-ऐसी बातें कहाँ सीख गयीं, मुझे तो यही आश्चर्य है। उस बंगाली के साथ तुम अकेली कैसे बैठी बातें करती रहीं, मेरी तो समझ में नहीं आता। मैं तो कभी न कर सकती। तुम विनोद को जलाना चाहती हो, उनके चित्त को अशांत करना चाहती हो। उस गरीब के साथ तुम कितना भयंकर अन्याय कर रही हो! तुम यह क्यों समझती हो कि विनोद तुम्हारी उपेक्षा कर रहे हैं, अपने विचारों में इतने मग्न हैं कि उन्हें तुम्हारी परवा ही नहीं। यह क्यों नहीं समझतीं कि उन्हें कोई मानसिक चिंता सताया करती है, उन्हें कोई ऐसी फिक्र घेरे हुए है कि जीवन के साधारण व्यापारों में उनकी रुचि ही नहीं रही। संभव है, वह कोई दार्शनिक तत्त्व खोज रहे हों, कोई थीसिस लिख रहे हों, किसी पुस्तक की रचना

कर रहे हों। कौन कह सकता है ? तुम जैसी रूपवती स्त्री पाकर यदि कोई मनुष्य चिन्तित रहे, तो समझ लो कि उसके दिल पर कोई बड़ा बोझ है। उनको तुम्हारी सहानुभूति की जरूरत है, तुम उनका बोझ हलका कर सकती हो। लेकिन तुम उलटे उन्हीं को दोष देती हो। मेरी समझ में नहीं आता कि तुम एक दिन क्यों विनोद से दिल खोलकर बातें नहीं कर लेतीं, संदेह को जितनी जल्द हो सके, दिल से निकाल डालना चाहिए। संदेह वह चोट है, जिसका उपचार जल्द न हो, तो नासूर पड़ जाता है और फिर अच्छा नहीं होता। क्यों दो-चार दिनों के लिए यहाँ नहीं चली आतीं ? तुम शायद कहो, तू ही क्यों नहीं चली आती। लेकिन मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, बिना सास-ससुर से पूछे कोई काम नहीं कर सकती। तुम्हें तो कोई बंधन नहीं है।

बहन, आजकल मेरा जीवन हर्ष और शोक का विचित्र मिश्रण हो रहा है। अकेली होती हूँ, तो रोती हूँ, आनन्द आ जाते हैं, तो हँसती हूँ। जी चाहता है, वह हरदम मेरे सामने बैठे रहते। लेकिन रात के बारह बजे के पहले उनके दर्शन नहीं होते। एक दिन दोपहर को आ गये, तो सासजी ने ऐसा डाँटा कि कोई बच्चे को क्या डाँटेगा। मुझे ऐसा भय हो रहा है कि सासजी को मुझसे चिढ़ है। बहन, मैं उन्हें भरसक प्रसन्न करने की चेष्टा करती हूँ। जो काम कभी न किये थे, वह उनके लिए करती हूँ, उनके स्नान के लिए पानी गर्म करती हूँ, उनकी पूजा के लिए चौकी बिछाती हूँ। वह स्नान कर लेती हैं, तो उनकी धोती छाँटती हूँ; वह लेटती हैं तो उनके पैर दबाती हूँ; जब वह सो जाती हैं तो उन्हें पंखा झलती हूँ। वह मेरी माता हैं, उन्हीं के गर्भ से वह रत्न उत्पन्न हुआ है जो मेरा प्राणाधार है। मैं उनकी कुछ सेवा कर सकूँ, इससे बढ़कर मेरे लिये सौभाग्य की और क्या बात होगी। मैं केवल इतना ही चाहती हूँ कि वह मुझसे हँसकर बोलें; मगर न जाने क्यों वह बात-बात पर मुझे कोसने दिया करती हैं। मैं जानती हूँ, दोष मेरा ही है। हाँ, मुझे मालूम नहीं, वह क्या है। अगर मेरा यही अपराध है कि मैं अपनी दोनों ननदों से रूपवती क्यों हूँ, पढ़ी-लिखी क्यों हूँ, आनन्द क्यों मुझे इतना चाहते हैं, तो बहन, यह मेरे बस की बात नहीं। मेरे प्रति सासजी का यह व्यवहार देखकर ही कदाचित् आनन्द माताजी से कुछ खिंचे रहते हैं। सासजी को भ्रम होता होगा कि मैं ही आनन्द को भरमा रही हूँ। शायद वह पछताती हैं कि क्यों मुझे बहू बनाया! उन्हें भय होता है कि कहीं मैं उनके बेटे को उनसे छीन न लूँ। दो-एक बार मुझे जादूगरनी कह चुकी हूँ। दोनों ननदें अकारण ही मुझसे जलती रहती हैं। बड़ी ननदजी तो विधवा हो गयी हैं उनका जलना समझ में आता है। लेकिन छोटी ननदजी तो अभी कलोर हैं, उनका जलना मेरी समझ में नहीं आता। मैं उनकी जगह होती, तो अपनी भावज से कुछ सीखने की, कुछ पढ़ने की कोशिश करती, उनके चरण धो-धोकर पीती पर इस छोकरी को मेरा अपमान करने ही में आनन्द आता है। मैं जानती हूँ, थोड़े दिनों में दोनों ननदें लज्जित होंगी। हाँ, अभी वे मुझसे विचकती हैं। मैं अपनी तरफ से तो उन्हें अप्रसन्न होने का कोई अवसर नहीं देती।

मगर रूप को क्या करूँ। क्या जानती थी कि एक दिन इस रूप के कारण मैं अपराधिनी ठहरायी जाऊँगी। मैं सच कहती हूँ बहन, यहाँ मैंने सिंगार करना एक तरह से छोड़ ही दिया है। मैली-कुचैली बनी बैठी रहती हूँ। इस भय से कि कोई मेरे पढ़ने-लिखने पर नाक न सिकोड़े, पुस्तकों को हाथ नहीं लगाती। घर से पुस्तकों का एक गट्ठर बाँध लायी

थी। उसमें कई पुस्तकें बड़ी सुन्दर हैं। उन्हें पढ़ने के लिए बार-बार जी चाहता है, मगर डरती हूँ कि कोई ताना न दे बैठे। दोनों ननदें मुझे देखती रहती हैं कि यह क्या करती है, कैसे बैठती है, कैसे बोलती है, मानो दो-दो जासूस मेरे पीछे लगा दिये गये हों। इन दोनों महिलाओं को मेरी बदगोई में क्या इतना मजा आता है, नहीं कह सकती। शायद आजकल उन्हें इसके सिवा दूसरा काम ही नहीं। गुस्सा तो ऐसा आता है कि एक बार झिड़क दूँ, लेकिन मन को समझाकर रोक लेती हूँ। यह दशा बहुत दिनों नहीं रहेगी। एक नये आदमी से कुछ हिचक होना स्वाभाविक ही है, विशेषकर जब वह नया आदमी शिक्षा और विचार व्यवहार में हमसे अलग हो। मुझी को अगर किसी फ्रेंच लेडी के साथ रहना पड़े, तो शायद मैं भी उसकी हर एक बात को आलोचना और कुतूहल की दृष्टि से देखने लगूँ। यह काशीवासी लोग पूजा-पाठ बहुत करते हैं। सासजी तो रोज गंगा-स्नान करने जाती हैं। बड़ी ननदजी भी उनके साथ जाती हैं। मैंने कभी पूजा नहीं की। याद है, हम और तुम पूजा करनेवालों को कितना बनाया करती थीं। अगर मैं पूजा करनेवालों का चरित्र कुछ उन्नत पाती, तो शायद अब तक मैं भी पूजा करती होती। लेकिन मुझे तो कभी ऐसा अनुभव प्राप्त नहीं हुआ। पूजा करनेवालियाँ भी उसी तरह दूसरों की निन्दा करती हैं, उसी तरह आपस में लड़ती झगड़ती हैं, जैसे वे जो कभी पूजा नहीं करतीं। खैर, अब मुझे धीरे-धीरे पूजा से श्रद्धा होती जा रही है। मेरे ददिया ससुरजी ने एक छोटा-सा ठाकुरद्वारा बनवा दिया था। वह मेरे घर के सामने ही है। मैं अक्सर सासजी के साथ वहाँ जाती हूँ और अब यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि उन विशाल मूर्तियों के दर्शन से मुझे अपने अंतस्तल में एक ज्योति का अनुभव होता है। जितनी अश्रद्धा से मैं राम और कृष्ण के जीवन की आलोचना किया करती थी, वह बहुत कुछ मिट चुकी है।

लेकिन रूपवती होने का दण्ड यहीं तक बस नहीं है। ननदें अगर मेरे रूप को देखकर जलती हैं, तो यह स्वाभाविक है। दुःख तो इस बात का है कि यह दण्ड मुझे उस तरफ से भी मिल रहा है, जिधर से इसकी कोई संभावना न होनी चाहिए—मेरे आनन्द बाबू भी मुझे इसका दण्ड दे रहे हैं। हाँ, उनकी दण्डनीति एक निराले ही ढंग की है। वह मेरे पास नित्य ही कोई-न-कोई सौगात लाते रहते हैं। वह जितनी देर मेरे पास रहते हैं, उनके मन में यह संदेह होता रहता है कि मुझे उनका रहना अच्छा नहीं लगता। वह समझते हैं कि मैं उनसे जो प्रेम करती हूँ, यह केवल दिखावा है, कौशल है। वह मेरे सामने कुछ ऐसे दबे-दबाये, सिमटे-सिमटाये रहते हैं कि मैं मारे लज्जा के मर जाती हूँ। उन्हें मुझसे कुछ कहते हुए ऐसा संकोच होता है, मानो वह कोई अनधिकार चेष्टा कर रहे हों। जैसे मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए कोई आदमी उज्ज्वल वस्त्र पहननेवालों से दूर ही रहना चाहता है, वही दशा इनकी है। वह शायद समझते हैं कि किसी रूपवती स्त्री को रूपहीन पुरुष से प्रेम हो ही नहीं सकता। शायद वह दिल में पछताते हैं कि क्यों इससे विवाह किया। शायद उन्हें अपने ऊपर ग्लानि होती है। वह मुझे कभी रोते देख लेते हैं, तो समझते हैं, मैं अपने भाग्य को रो रही हूँ; कोई पत्र लिखते देखते हैं, तो समझते हैं, मैं उनकी रूपहीनता ही का रोना रो रही हूँ। क्या कहूँ बहन, यह सौन्दर्य मेरी जान का गाहक हो गया। आनन्द के मन से इस शंका को निकालने और उन्हें अपनी ओर से आश्वासन देने के लिए मुझे ऐसी-ऐसी बातें करनी पड़ती हैं, ऐसे-ऐसे आचरण करने पड़ते हैं, जिन पर मुझे घृणा होती है। अगर

पहले से यह दशा जानती, तो ब्रह्मा से कहती कि मुझे कुरूपा ही बनाना। बड़े असमंजस में पड़ी हूँ ! अगर सासजी की सेवा नहीं करती, बड़ी ननदजी का मन नहीं रखती, तो उनकी आँखों से गिरती हूँ। अगर आनन्द बाबू को निराश करती हूँ, तो कदाचित् मुझसे विरक्त ही हो जायँ। मैं तुमसे अपने हृदय की बात कहती हूँ। बहन, तुमसे क्या पर्दा रखना है; मुझे आनन्द बाबू से उतना ही प्रेम है, जो किसी स्त्री को पुरुष से हो सकता है, उनकी जगह अब अगर इन्द्र भी सामने आ जायँ, तो मैं उनकी ओर आँख उठाकर न देखूँ। मगर उन्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ। मैं देखती हूँ, वह किसी न किसी बहाने से बार-बार घर में आते हैं और दबी हुई, ललचाई हुई नजरों से मेरे कमरे के द्वार की ओर देखते हैं, तो जी चाहता है, जाकर उनका हाथ पकड़ लूँ और अपने कमरे में खींच ले आऊँ। मगर एक तो डर होता है कि किसी की आँख पड़ गयी, तो छाती पीटने लगेगी और इससे भी बड़ा डर यह कि कहीं आनन्द इसे भी कौशल ही न समझ बैठें। अभी उनकी आमदनी बहुत कम है, लेकिन दो-चार रुपये सौगातों में रोज उड़ाते हैं। अगर प्रेमोपहार-स्वरूप वह धेले की कोई चीज दें, तो मैं उसे आँखों से लगाऊँ, लेकिन वह कर-स्वरूप देते हैं, मानो उन्हें ईश्वर ने यह दण्ड दिया है। क्या करूँ, अब मुझे भी प्रेम का स्वाँग करना पड़ेगा। प्रेम-प्रदर्शन से मुझे चिढ़ है। तुम्हें याद होगा, मैंने एक बार कहा था कि प्रेम या तो भीतर ही रहेगा या बाहर ही रहेगा। समान रूप से वह भीतर और बाहर दोनों जगह नहीं रह सकता। स्वाँग वेश्याओं के लिए है, कुलवंती तो प्रेम को हृदय ही में संचित रखती हैं !

बहन, पत्र बहुत लम्बा हो गया, तुम पढ़ते-पढ़ते ऊब गयी होगी। मैं भी लिखते-लिखते थक गयी। अब शेष बातें कल लिखूँगी। परसों यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचेगा।

बहन, क्षमा करना; कल पत्र लिखने का अवसर नहीं मिला। रात एक ऐसी बात हो गयी, जिससे चित्त अशान्त हो उठा। बड़ी मुश्किलों से यह थोड़ा सा समय निकाल सकी हूँ। मैंने अभी तक आनन्द से घर के किसी प्राणी की शिकायत नहीं की थी। अगर सासजी ने कोई बात कह दी या ननदजी ने कोई ताना दे दिया; तो इसे उनके कानों तक क्यों पहुँचाऊँ। इसके सिवा कि गृह-कलह उत्पन्न हो, इससे और क्या हाथ आयेगा। इन्हीं जरा-जरा-सी बातों को पेट में न डालने से घर बिगड़ते हैं। आपस में वैमनस्य बढ़ता है। मगर संयोग की बात, कल अनायास ही मेरे मुँह से एक बात निकल गयी जिसके लिये मैं अब भी अपने को कोस रही हूँ, और ईश्वर से मनाती हूँ कि वह आगे न बढ़े। बात यह हुई कि कल आनन्द बाबू बहुत देर करके मेरे पास आये। मैं उनके इन्तजार में बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी। सहसा सासजी ने आकर पूछा—क्या अभी तक बिजली जल रही है ? क्या वह रात-भर न आयें, तो तुम रात-भर बिजली जलाती रहोगी ?

मैंने उसी वक्त बत्ती ठण्डी कर दी। आनन्द बाबू थोड़ी ही देर में आये, तो कमरा अँधेरा पड़ा था, न-जाने उस वक्त मेरी मति कितनी मन्द हो गयी थी। अगर मैंने उनकी आहट पाते ही बत्ती जला दी होती, तो कुछ न होता, मगर मैं अँधेरे में पड़ी रही। उन्होंने पूछा—क्या सो गयी ? यह अँधेरा क्यों पड़ा हुआ है ?

हाय ! इस वक्त भी यदि मैंने कह दिया होता कि मैंने अभी बत्ती गुल कर दी है, तो बात बन जाती। मगर मेरे मुँह से निकला—'सासजी का हुक्म हुआ कि बत्ती गुल कर दो,

गुल कर दी। तुम रात-भर न आओ, तो क्या रात-भर बत्ती जलती रहे?'

'तो अब तो जला दो। मैं रोशनी के सामने से आ रहा हूँ। मुझे तो कुछ सूझता ही नहीं।'

'मैंने अब बटन को हाथ से छूने की कसम खा ली है। अब जरूरत पड़ेगी, तो मोम की बत्ती जला लिया करूँगी। कौन मुफ्त में घुड़कियाँ सहे।'

आनन्द ने बिजली का बटन दबाते हुए कहा—'और मैंने कसम खा ली कि रात-भर बत्ती जलेगी, चाहे किसी को बुरा लगे या भला। सब कुछ देखता हूँ अन्धा नही हूँ। दूसरी बहू आकर इतनी सेवा करेगी तो देखूँगा; तुम नसीब की खोटी हो कि ऐसे प्राणियों के पाले पड़ीं। किसी दूसरी सास की तुम इतनी खिदमत करतीं, तो वह तुम्हें पान की तरह फेरती, तुम्हें हाथों पर लिये रहती; मगर यहाँ चाहे कोई प्राण ही दे दे, किसी के मुँह से सीधी बात न निकलेगी।'

मुझे अपनी भूल साफ मालूम हो गयी। उनका क्रोध शान्त करने के इरादे से बोली—गलती भी तो मेरी ही थी कि व्यर्थ आधी रात तक बत्ती जलाये बैठी रही। अम्माँजी ने गुल करने को कहा, तो क्या बुरा कहा ? मुझे समझाना, अच्छी सीख देना उनका धर्म है। मेरा धर्म यही है कि यथाशक्ति उनकी सेवा करूँ और उनकी शिक्षा को गिरह बाँधूँ।

आनन्द एक क्षण द्वार की ओर ताकते रहे। फिर बोले—मुझे मालूम हो रहा है कि इस घर में मेरा अब गुजर न होगा। तुम नहीं कहतीं, मगर मैं सब कुछ सुनता रहता हूँ। सब समझता हूँ। तुम्हें मेरे पापों का प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है। मैं कल अम्माँजी से साफ-साफ कह दूँगा—'अगर आपका यही व्यवहार है, तो आप अपना घर लीजिए, मैं अपने लिए कोई दूसरी राह निकाल लूँगा।'

मैंने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—नहीं-नहीं। कहीं ऐसा गजब भी न करना। मेरे मुँह में आग लगे, कहाँ से कहाँ बत्ती का जिकर कर बैठी। मैं तुम्हारे चरण छूकर कहती हूँ मुझे न सासजी से कोई शिकायत है न ननदजी से, दोनों मुझसे बड़ी हैं, मेरी माता के तुल्य हैं। अगर एक बात कड़ी भी कह दें, तो मुझे सब्र करना चाहिए! तुम उनसे कुछ न कहना नहीं तो मुझे बड़ा दुःख होगा।

आनन्द ने रुँधे कंठ से कहा—तुम्हारी-जैसी बहू पाकर भी अम्माँजी का कलेजा नहीं पसीजता, अब क्या कोई स्वर्ग की देवी घर में आती ? तुम डरो मत, मैं ख्वामख्वाह लडूँगा नहीं। मगर हाँ, इतना अवश्य कह दूँगा कि ज़रा अपने मिजाज को काबू में रखें। आज अगर मैं दो-चार सौ रुपये घर में लाता होता, तो कोई चूँ न करता। कुछ कमाकर नहीं लाता, यह उसी का दण्ड है। सच पूछो, तो मुझे विवाह करने का कोई अधिकार ही न था। मुझ-जैसे मन्दबुद्धि को, जो कौड़ी कमा नहीं सकता, उसे अपने साथ किसी महिला को डुबाने का क्या हक था ! बहनजी को न-जाने क्या सूझी है कि तुम्हारे पीछे पड़ी रहती हैं। ससुराल का सफाया कर दिया, अब यहाँ भी आग लगाने पर तुली हुई हैं। बस, पिताजी का लिहाज करता हूँ, नहीं इन्हें तो एक दिन में ठीक कर देता।

बहन, उस वक्त तो मैंने किसी तरह उन्हें शान्त किया, पर नहीं कह सकती कि कब वह उबल पड़ें। मेरे लिये वह सारी दुनिया से लड़ाई मोल ले लेंगे। मैं जिन परिस्थितियों में हूँ, उनका तुम अनुमान कर सकती हो। मुझ पर कितनी ही मार पड़े, मुझे रोना न चाहिए,

जबान तक न हिलाना चाहिए। मैं रोयी और घर तबाह हुआ। आनन्द फिर कुछ न सुनेंगे, कुछ न देखेंगे। कदाचित् इस उपाय से वह अपने विचार में मेरे हृदय में अपने प्रेम का अंकुर जमाना चाहते हों। आज मुझे मालूम हुआ कि यह कितने क्रोधी हैं। अगर मैंने जरा-सा पुचारा दे दिया होता, तो रात ही को वह सासजी की खोपड़ी पर जा पहुँचते। कितनी युवतियाँ इसी अधिकार के गर्व में अपने को भूल जाती हैं। मैं तो बहन, ईश्वर ने चाहा तो कभी न भूलूँगी। मुझे इस बात का डर नहीं है कि आनन्द अलग घर बना लेंगे, तो गुजर कैसे होगा। मैं उनके साथ सबकुछ झेल सकती हूँ। लेकिन घर तो तबाह हो जायगा।

बस, प्यारी पद्मा, आज इतना ही। पत्र का जवाब जल्द देना।

तुम्हारी,
चन्दा

11

देहली
5-2-26

प्यारी चन्दा,

क्या लिखूँ, मुख पर तो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा ! हाय, वह चले गये ! मेरे विनोद का तीन दिन से पता नहीं—निर्मोही चला गया, मुझे छोड़कर, विना कुछ कहे-सुने चला गया—अभी तक रोयी नहीं। जो लोग पूछने आते हैं उनसे बहाना कर देती हूँ कि—दो-चार दिन में आयेंगे, एक काम से काशी गये हैं। मगर जब रोऊँगी तो यह शरीर उन आँसुओं में डूब जायगा। प्राण उसी में विसर्जित हो जायँगे। छलिये ने मुझसे कुछ भी नहीं कहा, रोज की तरह उठा, भोजन किया, विद्यालय गया, नियत समय पर लौटा, रोज की तरह मुस्कराकर मेरे पास आया। हम दोनों ने जलपान किया, फिर वह दैनिक पत्र पढ़ने लगा, मैं टेनिस खेलने चली गयी। इधर कुछ दिनों से उन्हें टेनिस से कुछ प्रेम न रहा था, मैं अकेली ही जाती। लौटी, तो रोज ही की तरह उन्हें बरामदे में टहलते और सिगार पीते देखा। मुझे देखते ही वह रोज की तरह मेरा ओवरकोट लाये और मेरे ऊपर डाल दिया। बरामदे से नीचे उतरकर खुले मैदान में हम टहलने लगे। मगर वह ज्यादा बोले नहीं, किसी विचार में डूबे रहे। जब ओस अधिक पड़ने लगी, तो हम दोनों फिर अन्दर चले आये। उसी वक्त वह बंगाली महिला आ गयी, जिनसे मैंने वीणा सीखना शुरू किया है। विनोद भी मेरे साथ ही बैठे रहे। संगीत उन्हें कितना प्रिय है, यह तुम्हें लिख चुकी हूँ। कोई नयी बात नहीं हुई। महिला के चले जाने के बाद हमने साथ-ही-साथ भोजन किया, फिर, मैं अपने कमरे में लेटने आयी। वह रोज की तरह अपने कमरे में लिखने-पढ़ने चले गये ! मैं जल्द ही सो गयी, लेकिन जब वह मेरे कमरे में आये, तो मेरी आँखें खुल गयीं। मैं नींद में कितनी बेखबर पड़ी रहूँ, उनकी आहट पाते ही आप-ही-आप आँखें खुल जाती हैं। मैंने देखा, वह अपना हरा शाल ओढ़े खड़े थे। मैंने उनकी ओर हाथ बढ़ाकर कहा—आओ, खड़े क्यों हो, और फिर सो गयी। बस, प्यारी बहन ! वही विनोद के अंतिम दर्शन थे। कह नहीं सकती, वह पलंग पर लेटे या नहीं। इन आँखों में न-जाने कौन-सी महानिद्रा समायी हुई थी। प्रातः उठी, तो विनोद को न पाया। मैं उनसे पहले उठती हूँ, वह पड़े सोते रहते हैं। पर आज वह

पलंग पर न थे। शाल भी न था। मैंने समझा, शायद अपने कमरे में चले गये हों। स्नान-गृह में चली गयी। आध घंटे में बाहर आयी, फिर भी वह न दिखायी दिये। उनके कमरे में गयी, वहाँ भी न थे। आश्चर्य हुआ कि इतने सबेरे कहाँ चले गये। सहसा खूँटी पर आँख पड़ी—कपड़े न थे। किसी से मिलने चले गये ? या स्नान के पहले सैर करने की ठानी। कम-से-कम मुझसे कह तो देते, संशय में तो जी न पड़ता। क्रोध आया—मुझे लौंडी समझते हैं....

हाजिरी का समय आया। बैरा मेज पर चाय रख गया। विनोद के इंतजार में चाय ठंडी हो गयी। मैं बार-बार झुँझलाती थी, कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती, ठान ली थी कि आज ज्योंही महाशय आयेंगे, ऐसा लताडूँगी कि वह भी याद करेंगे। कह दूँगी, आप अपना घर लीजिए, आपको अपना घर मुबारक रहे, मैं अपने घर चली जाऊँगी। इस तरह तो रोटियाँ वहाँ भी मिल जायँगी। जाड़े के नौ बजने में देर ही क्या लगती है। विनोद का अभी पता नहीं। झल्लायी हुई उनके कमरे में गयी कि एक पत्र लिखकर मेज पर रख दूँ—साफ-साफ लिख दूँ कि इस तरह अगर रहना है, तो आप रहिए, मैं नहीं रह सकती। मैं जितना ही तरह देती जाती हूँ, उतना ही तुम मुझे चिढ़ाते हो। बहन, उस क्रोध में सन्तप्त भावों की नदी-सी मन में उमड़ रही थी। अगर लिखने बैठती, तो पन्नों-के-पन्ने लिख डालती। लेकिन आह ! मैं तो भाग जाने की धमकी ही दे रही थी, वह पहले ही भाग चुके थे। ज्योंही मेज पर बैठी, मुझे पैड में उनका एक पत्र मिला। मैंने तुरन्त उस पत्र को निकाल लिया और सरसरी निगाह से पढ़ा—मेरे हाथ काँपने लगे, पाँव थरथराने लगे, जान पड़ा कमरा हिल रहा है। एक ठण्डी, हृदय को चीरनेवाली आह खींचकर मैं कोच पर गिर पड़ी। पत्र यह था—

'प्रिये ! नौ महीने हुए, जब मुझे पहली बार तुम्हारे दर्शनों का सौभाग्य हुआ था। उस वक्त मैंने अपने को धन्य माना था। आज तुमसे वियोग का दुर्भाग्य हो रहा है, फिर भी मैं अपने को धन्य मानता हूँ। मुझे जाने का लेशमात्र भी दुःख नहीं है, क्योंकि मैं जानता हूँ तुम खुश होगी। जब तुम मेरे साथ सुखी नहीं रह सकतीं; तो मैं जबरदस्ती क्यों पड़ा रहूँ। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि हम और तुम अलग हो जायँ। मैं जैसा हूँ, वैसा ही रहूँगा। तुम भी जैसी हो, वैसी ही रहोगी। फिर सुखी जीवन की सम्भावना कहाँ ? मैं विवाह को आत्मविकास का साधन समझता हूँ। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का अगर कोई अर्थ है, तो यही है, वर्ना मैं विवाह की कोई जरूरत नहीं समझता। मानव सन्तान बिना विवाह के भी जीवित रहेगी और शायद इससे अच्छे रूप में। वासना भी बिना विवाह के पूरी हो सकती है, घर के प्रबन्ध के लिए विवाह करने की कोई जरूरत नहीं। जीविका एक बहुत ही गौण प्रश्न है। जिसे ईश्वर ने दो हाथ दिये हैं वह कभी भूखा नहीं रह सकता। विवाह का उद्देश्य यही और केवल यही है कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे की आत्मोन्नति में सहायक हों। जहाँ अनुराग हो, वहीं विवाह है और अनुराग ही आत्मोन्नति का मुख्य साधन है। जब अनुराग न रहा, तो विवाह भी न रहा। अनुराग के बिना विवाह का अर्थ ही नहीं।

जिस वक्त मैंने तुम्हें पहली बार देखा था, तुम मुझे अनुराग की सजीव मूर्ति-सी नजर आयी थीं। तुममें सौन्दर्य था, शिक्षा थी, प्रेम था, स्फूर्ति थी, उमंग थी। मैं मुग्ध हो गया। उस वक्त मेरी अन्धी आँखों को यह न सूझा कि जहाँ तुममें इतने गुण थे, वहाँ चंचलता भी थी,

जो इन सब गुणों पर पर्दा डाल देती। तुम चंचल हो, गजब की चंचल, जो उस वक्त मुझे न सूझा था। तुम ठीक वैसी ही हो, जैसी तुम्हारी दूसरी बहनें होती हैं, न कम, न ज्यादा। मैंने तुमको स्वाधीन बनाना चाहा था, क्योंकि मेरी समझ में अपनी पूरी ऊँचाई तक पहुँचने के लिए इसी की सबसे अधिक जरूरत है। संसार भर में पुरुषों के विरुद्ध क्यों इतना शोर मचा हुआ है ? इसीलिए कि हमने औरतों की आजादी छीन ली है और उन्हें अपनी इच्छाओं की लौंडी बना रखा है। मैंने तुम्हें स्वाधीन कर दिया। मैं तुम्हारे ऊपर अपना कोई अधिकार नहीं मानता। तुम अपनी स्वामिनी हो। मैं जब तक समझता था, तुम मेरे साथ स्वेच्छा से रहती हो, मुझे कोई चिन्ता न थी। अब मुझे मालूम हो रहा है, तुम स्वेच्छा से नहीं, संकोच या भय या बन्धन के कारण रहती हो। दो ही चार दिन पहले मुझ पर यह बात खुली है। इसीलिए अब मैं तुम्हारे सुख के मार्ग में बाधा नहीं डालना चाहता। मैं कहीं भागकर नहीं जा रहा हूँ। केवल तुम्हारे रास्ते से हटा जा रहा हूँ, और इतनी दूर हटा जा रहा हूँ कि तुम्हें मेरी ओर से पूरी निश्चिन्तता हो जाय। अगर मेरे बगैर तुम्हारा जीवन अधिक सुन्दर हो सकता है, तो मैं तुम्हें जबरन नहीं रखना चाहता। अगर मैं समझता कि तुम मेरे सुख के मार्ग में बाधक हो रही हो, तो मैंने तुमसे साफ-साफ कह दिया होता। मैं धर्म और नीति का ढोंग नहीं मानता, केवल आत्मा का संतोष चाहता हूँ—अपने लिए भी, तुम्हारे लिए भी। जीवन का तत्त्व यही है, मूल्य यही है। मैंने डेस्क में अपने विभाग के अध्यक्ष के नाम एक पत्र लिखकर रख दिया है। वह उनके पास भेज देना। रुपये की कोई चिन्ता मत करना। मेरे एकाउंट में अभी इतने रुपये हैं, जो तुम्हारे लिए कई महीने को काफी हैं, और उस वक्त तक मिलते रहेंगे, जब तक तुम लेना चाहोगी। मैं समझता हूँ, मैंने अपना भाव स्पष्ट कर दिया है। इससे अधिक स्पष्ट मैं नहीं करना चाहता। जिस वक्त तुम्हारी इच्छा मुझसे मिलने की हो, बैंक से मेरा पता पूछ लेना। मगर दो-चार दिन के बाद। घबड़ाने की कोई बात नहीं। मैं स्त्री को अबला या अपंग नहीं समझता। वह अपनी रक्षा स्वयं कर सकती है—अगर करना चाहे। अगर अब या अब से दो-चार महीना, दो-चार साल पीछे तुम्हें मेरी याद आये और तुम समझो कि मेरे साथ सुखी रह सकती हो, तो मुझे केवल दो शब्द लिखकर डाल देना मैं तुरन्त आ जाऊँगा, क्योंकि मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं है। तुम्हारे साथ मेरे जीवन के जितने दिन कटे हैं, वह मेरे लिए स्वर्ग-स्वप्न के दिन हैं। जब तक जीऊँगा, इस जीवन की आनन्द-स्मृतियों को हृदय में संचित रखूँगा। आह ! इतनी देर तक मन को रोके रहने के बाद आँखों से एक बूँद आँसू गिर ही पड़ा। क्षमा करना, मैंने तुम्हें 'चंचल' कहा है। अचंचल कौन है ? जानता हूँ कि तुमने मुझे अपने हृदय से निकालकर फेंक दिया है, फिर भी इस एक घंटे में कितनी बार तुमको देख-देखकर लौट आया हूँ ! मगर इन बातों को लिखकर मैं तुम्हारी दया को उकसाना नहीं चाहता। तुमने वही किया, जिसका मेरी नीति में तुमको अधिकार था, है और रहेगा। मैं विवाह में आत्मा को सर्वोपरि रखना चाहता हूँ। स्त्री और पुरुष में मैं वही प्रेम चाहता हूँ, जो दो स्वाधीन व्यक्तियों में होता है। वह प्रेम नहीं जिसका आधार पराधीनता है।

बस, अब और कुछ न लिखूँगा। तुमको एक चेतावनी देने की इच्छा हो रही है, पर दूँगा नहीं; क्योंकि तुम अपना भला और बुरा खुद समझ सकती हो। तुमने सलाह देने का हक मुझसे छीन लिया है। फिर भी इतना कहे बगैर नहीं रहा जाता कि संसार में प्रेम का

स्वाँग भरनेवाले शोहदों की कमी नहीं है, उनसे बचकर रहना। ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि तुम जहाँ रहो, आनन्द से रहो। अगर कभी तुम्हें मेरी जरूरत पड़े, तो याद करना। तुम्हारी एक तस्वीर का अपहरण किये जाता हूँ। क्षमा करना, क्या मेरा इतना अधिकार भी नहीं ? हाय ! जी चाहता है, एक बार फिर देख आऊँ, मगर नहीं आऊँगा।'

—तुम्हारा ठुकराया हुआ,
विनोद

बहन, यह पत्र पढ़कर मेरे चित्त की जो दशा हुई, उसका तुम अनुमान कर सकती हो। रोयी तो नहीं; पर दिल बैठा जाता था। बार-बार जी चाहता था कि विष खाकर सो रहूँ। दस बजने में अब थोड़ी ही देर थी। मैं तुरन्त विद्यालय गयी और दर्शन-विभाग के अध्यक्ष को विनोद का पत्र दिया। वह एक मदरासी सज्जन हैं। मुझे बड़े आदर से बिठाया और पत्र पढ़कर बोले—आपको मालूम है, वह कहाँ गये और कब तक आयेंगे? इसमें तो केवल एक मास की छुट्टी माँगी गयी है। मैंने बहाना किया—वह एक आवश्यक कार्य से काशी गये हैं। और निराश होकर लौट आयी। मेरी अन्तरात्मा सहस्रों जिह्वा बनकर मुझे धिक्कार रही थी। कमरे में उनकी तस्वीर के सामने घुटने टेककर मैंने जितने पश्चात्ताप-पूर्ण शब्दों में क्षमा माँगी है, वह अगर किसी तरह उनके कानों तक पहुँच सकती, तो उन्हें मालूम होता कि उन्हें मेरी ओर से कितना भ्रम हुआ ! तब से अब तक मैंने कुछ भोजन नहीं किया और न एक मिनट सोयी। विनोद मेरी क्षुधा और निद्रा भी अपने साथ लेते गये और शायद इसी तरह दस-पाँच दिन उनकी खबर न मिली, तो प्राण भी चले जायेंगे। आज मैं बैंक तक गयी थी, पर यह पूछने की हिम्मत न पड़ी कि विनोद का कोई पत्र आया। वह सब क्या सोचते कि यह उनकी पत्नी होकर हमसे पूछने आयी है !

बहन, अगर विनोद न आये, तो क्या होगा ? मैं समझती थी, वह मेरी तरफ से उदासीन हैं, मेरी परवा नहीं करते, मुझसे अपने दिल की बातें छिपाते हैं, उन्हें शायद मैं भारी हो गयी हूँ। अब मालूम हुआ, मैं कैसे भयंकर-भ्रम में पड़ी हुई थी। उनका मन इतना कोमल है, यह मैं जानती, तो उस दिन क्यों भुवन को मुँह लगाती ? मैं उस अभागे का मुँह तक न देखती। इस वक्त जो उसे देख पाऊँ, तो शायद गोली मार दूँ! जरा तुम विनोद के पत्र को फिर पढ़ो, बहन—आप मुझे स्वाधीन बनाने चले थे। अगर स्वाधीन बनाते थे, तो भुवन से जरा देर मेरा बातचीत कर लेना क्यों इतना अखरा ? मुझे उनकी अविचलित शांति से चिढ़ होती थी। वास्तव में उनके हृदय में इस जरा-सी बात ने जितनी अशांति पैदा कर दी, शायद मुझमें न कर सकती। मैं किसी रमणी से उनकी रुचि देखकर शायद मुँह फुला लेती, ताने देती, खुद रोती उन्हें रुलाती; पर इतनी जल्द भाग न जाती। मर्दों का घर छोड़कर भागना तो आज तक नहीं सुना, औरतें ही घर छोड़कर मैके भागती हैं, या कहीं डूबने जाती हैं, या आत्महत्या करती हैं। पुरुष निर्द्वन्द्व बैठे मूँछों पर ताव देते हैं। मगर यहाँ उल्टी गंगा बह रही है—पुरुष ही भाग खड़ा हुआ ! इस अशांति की थाह कौन लगा सकता है ? इस प्रेम की गहराई को कौन समझ सकता है ? मैं तो अगर इस वक्त विनोद के चरणों पर पड़े-पड़े मर जाऊँ तो समझूँ, मुझे स्वर्ग मिल गया। बस, इसके सिवा मुझे अब और कोई इच्छा नहीं है। इस अगाध-प्रेम ने मुझे तृप्त कर दिया। विनोद मुझसे भागे, तो लेकिन भाग

न सके। वह मेरे हृदय से, मेरी धारणा से, इतने निकट कभी न थे। मैं तो अब भी उन्हें अपने सामने बैठा देख रही हूँ। क्या मेरे सामने फिलासफर बनने चले थे ? कहाँ गयी आपकी वह दार्शनिक गंभीरता ? यों अपने को धोखा देते हो ? यों अपनी आत्मा को कुचलते हो? अबकी तो तुम भागे, लेकिन फिर भागना तो देखूँगी। मैं न जानती थी कि तुम ऐसे चतुर बहुरूपिये हो। अब मैंने समझा, और शायद तुम्हारी दार्शनिक गंभीरता को भी समझ में आया होगा कि प्रेम जितना ही सच्चा, जितना ही हार्दिक होता है, उतना ही कोमल होता है। वह विपत्ति के उन्मत्त सागर में थपेड़े खा सकता है, पर अवहेलना की एक चोट भी नहीं सह सकता। बहन, बात विचित्र है, पर है सच्ची, मैं इस समय अपने अन्तस्तल में जितनी उमंग, जितने आनंद का अनुभव कर रही हूँ, याद नहीं आता कि विनोद के हृदय से लिपटकर भी कभी पाया हो। तब पर्दा बीच में था, अब कोई पर्दा बीच में नहीं रहा। मैं उनको प्रचलित प्रेम व्यापार की कसौटी पर कसना चाहती थी। यह फैशन हो गया है कि पुरुष घर में आये, तो स्त्री के वास्ते कोई तोहफा लाये, पुरुष रात-दिन स्त्री के लिए गहने बनवाने, कपड़े सिलवाने, बेल, फीते, लेस खरीदने में मस्त रहे, फिर स्त्री को उससे कोई शिकायत नहीं। वह आदर्श-पति है, उसके प्रेम में किसे संदेह हो सकता है ? लेकिन उसी प्रेयसी की मृत्यु के तीसरे महीने वह फिर नया विवाह रचाता है। स्त्री के साथ अपने प्रेम को भी चिता में जला आता है। फिर वही स्वाँग इस नयी प्रेयसी से होने लगते हैं, फिर वही लीला शुरू हो जाती है। मैंने यही प्रेम देखा था और इसी कसौटी पर विनोद को कस रही थी। कितनी मन्दबुद्धि हूँ ! छिछोरेपन को प्रेम समझे बैठी थी। कितनी स्त्रियाँ जानती हैं कि अधिकांश ऐसे ही गहने, कपड़े और हँसने-बोलने में मस्त रहनेवाले जीव लम्पट होते हैं। अपनी लम्पटता को छिपाने के लिए वे यह स्वाँग करते रहते हैं। कुत्ते को चुप रखने के लिए उसके सामने हड्डी के टुकड़े फेंक देते हैं। बेचारी भोली-भाली उसे अपना सर्वस्व देकर खिलौने पाती है और उन्हीं में मग्न रहती है। मैं विनोद को उसी काँटे पर तौल रही थी—हीरे को साग के तराजू पर रखे देती थी। मैं जानती हूँ, मेरा दृढ़ विश्वास है और वह अटल है कि विनोद की दृष्टि कभी किसी पर स्त्री पर नहीं पड़ सकती। उनके लिए मैं हूँ, अकेली मैं हूँ, अच्छी हूँ, या बुरी हूँ, जो कुछ हूँ, मैं हूँ। बहन, मेरी तो मारे गर्व और आनन्द से छाती फूल उठी है। इतना बड़ा साम्राज्य—इतना अचल, इतना स्वरक्षित, किसी हृदयेश्वरी को नसीब हुआ है ! मुझे तो सन्देह है। और मैं इस पर भी असन्तुष्ट थी, यह न जानती थी कि ऊपर बबूले तैरते हैं, मोती समुद्र की तह में ही मिलते हैं। हाय ! मेरी इस मूर्खता के कारण, मेरे प्यारे विनोद को कितनी मानसिक वेदना हो रही है ! मेरे जीवन-धन, मेरे जीवन-सर्वस्व न जाने कहाँ मारे-मारे फिरते होंगे, न-जाने किस दशा में होंगे, न-जाने मेरे प्रति उनके मन में कैसी-कैसी शंकाएँ उठ रही होंगी—प्यारे ! तुमने मेरे साथ कुछ कम अन्याय नहीं किया। अगर मैंने तुम्हें निष्ठुर समझा, तो तुमने तो मुझे उससे कहीं बदतर समझा—क्या अब भी पेट नहीं भरा ? तुमने मुझे इतनी गयी-गुजरी समझ लिया कि इस अभागे भुवन...मैं ऐसे-ऐसे एक लाख भुवनों को तुम्हारे चरणों पर भेंट कर सकती हूँ। मुझे तो संसार में ऐसा कोई प्राणी ही नहीं नजर आता, जिस पर मेरी निगाह उठ सके। नहीं, तुम मुझे इतनी नीच, इतनी कलंकिनी नहीं समझ सकते—शायद वह नौबत आती, तो तुम और मैं दो में से एक भी इस संसार में न होता।

बहन, मैंने विनोद को बुलाने की, खींच लाने की, पकड़ मँगवाने की एक तरकीब सोची है। क्या कहूँ, पहले ही दिन यह तरकीब क्यों न सूझी ? विनोद को दैनिक पत्र पढ़े बिना चैन नहीं आता और वह कौन-सा पत्र पढ़ते हैं, मैं यह भी जानती हूँ। कल के पत्र में यह खबर छपेगी—'पद्मा मर रही है,' और परसों विनोद यहाँ होंगे—रुक ही नहीं सकते। फिर खूब झगड़े होंगे, खूब लड़ाइयाँ होंगी।

अब कुछ तुम्हारे विषय में क्या तुम्हारी बुढ़िया सचमुच तुमसे इसलिए जलती है कि तुम सुन्दरी हो, शिक्षित हो ? खूब ! और तुम्हारे आनन्द भी विचित्र जीव मालूम होते हैं। मैंने तो सुना है कि पुरुष कितना ही कुरूप हो, उसकी निगाह अप्सराओं ही पर जाकर पड़ती है। फिर आनन्द बाबू तुमसे क्यों बिचकते हैं ? जरा गौर से देखना, कहीं राधा और कृष्ण के बीच में कोई कुब्जा तो नहीं ? अगर सासजी यों ही नाक में दम करती रहें, तो मैं तो यही सलाह दूँगी कि अपनी झोंपड़ी अलग बना लो। मगर जानती हूँ, तुम मेरी यह सलाह न मानोगी, किसी तरह न मानोगी। इस सहिष्णुता के लिए मैं तुम्हें बधाई देती हूँ। पत्र जल्द लिखना। मगर शायद तुम्हारा पत्र आने के पहले ही मेरा दूसरा पत्र पहुँचे।

तुम्हारी,
पद्मा

12

काशी
10-2-26

प्रिय पद्मा,

कई दिन तक तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करने के बाद आज यह खत लिख रही हूँ। मैं अब भी आशा कर रही हूँ कि विनोद बाबू घर आ गये होंगे, मगर अभी वह न आये हों और तुम रो-रोकर अपनी आँखें फोड़े डालती हो, तो मुझे जरा भी दुःख न होगा ! तुमने उनके साथ जो अन्याय किया है, उसका यही दण्ड है। मुझे तुमसे जरा भी सहानुभूति नहीं है। तुम गृहिणी होकर वह कुटिल क्रीड़ा करने चली थीं, जो प्रेम का सौदा करनेवाली स्त्रियों को ही शोभा देती है। मैं तो जब खुश होती कि विनोद ने तुम्हारा गला घोंट दिया होता और भुवन के कुसंस्कारों को सदा के लिये शांत कर देते। तुम चाहे मुझसे रूठ ही क्यों न जाओ पर मैं इतना जरूर कहूँगी कि तुम विनोद के योग्य नहीं हो। शायद तुम उस पति से प्रसन्न रहतीं, जो प्रेम के नये-नये स्वाँग भरकर तुम्हें जलाया करता। शायद तुमने अँग्रेजी किताबों में पढ़ा होगा कि स्त्रियाँ छैले रसिकों पर ही जान देती हैं और यह पढ़कर तुम्हारा सिर फिर गया है। तुम्हें नित्य कोई सनसनी चाहिए, अन्यथा तुम्हारा जीवन शुष्क हो जायगा। तुम भारत की पतिपरायणा रमणी नहीं, योरोप की आमोदप्रिय युवती हो। मुझे तुम्हारे ऊपर दया आती है। तुमने अब तक रूप को ही आकर्षण का मूल समझ रखा है। रूप में आकर्षण है, मानती हूँ। लेकिन उस आकर्षण का नाम मोह है, वह स्थायी नहीं, केवल धोखे की टट्टी है। प्रेम का एक ही मूल मंत्र है, और वह है सेवा। यह मत समझो कि जो पुरुष तुम्हारे ऊपर भ्रमर की भाँति मँडराया करता है, वह तुमसे प्रेम करता है। उसकी यह रूपासक्ति बहुत दिनों तक नहीं रहेगी। प्रेम का अंकुर रूप में है, पर उसको पल्लवित और पुष्पित करना

सेवा ही का काम है। मुझे विश्वास नहीं आता कि विनोद को बाहर से थके-माँदे, पसीने में तर देखकर तुमने कभी पंखा झला होगा। शायद टेबुल-फैन लगाने की बात भी तुम्हें न सूझी होगी। सच कहना, मेरा अनुमान ठीक है या नहीं? बतलाओ, तुमने कभी उनके पैरों में चंपी की है ? कभी उनके सिर में तेल डाला है ? तुम कहोगी, यह खिदमतगारों का काम है, लेडियाँ यह मरज नहीं पालतीं। तुमने उस आनन्द का अनुभव ही नहीं किया। तुम विनोद को अपने अधिकार में रखना चाहती हो, मगर उसका साधन नहीं करतीं।विलासिनी मनोरंजन कर सकती है, चिरसंगिनी नहीं बन सकती। पुरुष के गले से लिपटी हुई भी वह उससे कोसों दूर रहती है। मानती हूँ, रूपमोह मनुष्य का स्वभाव है, लेकिन रूप से हृदय की प्यास नहीं बुझती, आत्मा की तृप्ति नहीं होती। सेवाभाव रखनेवाली रूप-विहीन स्त्री का पति किसी स्त्री के रूप-जाल में फँस जाय, तो बहुत जल्द निकल भागता है, सेवा का चस्का पाया हुआ मन केवल नखरों और चोचलों पर लट्टू नहीं होता। मगर मैं तो तुम्हें उपदेश करने बैठ गयी, हालाँकि तुम मुझसे दो-चार महीने बड़ी होगी, क्षमा करो बहन, यह उपदेश नहीं है। ये बातें हम-तुम सभी जानते हैं, केवल कभी-कभी भूल जाते हैं। मैंने केवल तुम्हें याद दिला दिया है। उपदेश में हृदय नहीं होता, लेकिन मेरा उपदेश मेरे मन की वह व्यथा है, जो तुम्हारी इस नयी विपत्ति से जागरित हुई है।

अच्छा, अब मेरी रामकहानी सुनो। इस एक महीने में यहाँ बड़ी-बड़ी घटनाएँ हो गयीं। यह तो मैं पहले ही लिख चुकी हूँ कि आनन्द बाबू और अम्माँजी में कुछ मनमुटाव रहने लगा है। वह आग भीतर-ही-भीतर सुलगती रहती थी। दिन में दो-एक बार माँ-बेटे में चोंचें हो जाती थीं। एक दिन मेरी छोटी ननदजी मेरे कमरे से एक पुस्तक उठा ले गयीं। उन्हें पढ़ने का रोग है। मैंने कमरे में किताब न देखी, तो उनसे पूछा। इस जरा-सी बात पर वह भलेमानस बिगड़ गयी और कहने लगी—तुम तो मुझे चोरी लगाती हो। अम्माँ ने उन्हीं का पक्ष लिया और मुझे खूब सुनायी। संयोग की बात, अम्माँजी मुझे कोसने ही दे रही थीं कि आनन्द बाबू घर में आ गये। अम्माँजी उन्हें देखते ही और जोर से बकने लगीं—बहू की इतनी मजाल ! वह तूने सिर चढ़ा रखी है और कोई बात नहीं। पुस्तक क्या उसके बाप की थी ? लड़की लायी, तो उसने कौन गुनाह किया ? जरा भी सब्र न हुआ, दौड़ी हुई उसके सिर पर जा पहुँची और उसके हाथों से किताब छीनने लगी।

बहन, मैं यह स्वीकार करती हूँ कि मुझे पुस्तक के लिए इतनी उतावली न करनी चाहिए थी। ननदजी पढ़ चुकने पर आप ही दे जातीं। न भी देतीं तो उस एक पुस्तक के न पढ़ने से मेरा क्या बिगड़ा जाता था। मगर मेरी शामत कि उनके हाथों से किताब छीनने लगी थी। अगर इस बात पर आनन्द बाबू मुझे डाँट बताते, तो मुझे जरा भी दुःख न होता मगर उन्होंने उल्टे मेरा ही पक्ष लिया और त्योरियाँ चढ़ाकर बोले—किसी की चीज कोई बिना पूछे लाये ही क्यों ? यह तो मामूली शिष्टाचार है।

इतना सुनना था कि अम्माँ के सिर पर भूत-सा सवार हो गया। आनन्द बाबू भी बीच-बीच में फुलझड़ियाँ छोड़ते रहे और मैं अपने कमरे में बैठी रोती रही कि कहाँ-से-कहाँ मैंने किताब माँगी। न अम्माँजी ने ही भोजन किया, न आनन्द बाबू ने ही। और मेरा तो बार-बार यही जी चाहता था कि जहर खा लूँ। रात को जब अम्माँजी लेटीं तो, मैं अपने नियम के अनुसार उनके पैर दबाने गयी। मुझे देखते ही उन्होंने दुत्कार दिया, लेकिन मैंने

उनके पाँव पकड़ लिये। मैं पैताने की ओर तो थी ही। अम्माँजी ने जो पैर से मुझे ढकेला तो मैं चारपाई के नीचे गिर पड़ी। जमीन पर कई कटोरियाँ पड़ी हुई थीं। मैं उन कटोरियों पर गिरी, तो पीठ और कमर में बड़ी चोट आयी। मैं चिल्लाना न चाहती थी, मगर न जाने कैसे मेरे मुँह से चीख निकल गयी। आनन्द बाबू अपने कमरे में आ गये थे, मेरी चीख सुनकर दौड़ पड़े और अम्माँजी के द्वार पर आकर बोले—क्या उसे मारे डालती हो, अम्माँ ? अपराधी तो मैं हूँ, उसकी जान क्यों ले रही हो ? यह कहते हुए वह कमरे में घुस आये और मेरा हाथ पकड़कर जबरदस्ती खींच ले गये। मैंने बहुत चाहा कि अपना हाथ छुड़ा लूँ पर आनन्द ने न छोड़ा ! वास्तव में इस समय उनका हम लोगों के बीच में कूद पड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता था। वह न आ जाते, तो मैंने रो-धोकर अम्माँजी को मना लिया होता। मेरे गिर पड़ने से उनका क्रोध कुछ शान्त हो चला था। आनन्द का आ जाना गजब हो गया। अम्माँजी कमरे के बाहर निकल आयीं और मुँह चिढ़ाकर बोलीं—हाँ, देखो, मरहम-पट्टी कर दो, कहीं कुछ टूट-फूट न गया हो !

आनन्द ने आँगन में रुककर कहा—क्या तुम चाहती हो कि तुम किसी को मार डालो और मैं न बोलूँ ?

'हाँ मैं तो डायन हूँ, आदमियों को मार डालना ही तो मेरा काम है। ताज्जुब है कि मैंने तुम्हें क्यों न मार डाला।'

'तो पछतावा क्यों हो रहा है, धेले की सँखिया में तो काम चलता है।'

'अगर तुम्हें इस औरत को सिर चढ़ाकर रखना है, तो कहीं और ले जाकर रखो। इस घर में तुम्हारा निर्वाह अब न होगा।'

'मैं खुद इसी फिक्र में हूँ, तुम्हारे कहने की जरूरत नहीं।'

'मैं भी समझ लूँगी कि मैंने लड़का ही नहीं जना।'

'मैं भी समझ लूँगा कि मेरी माता मर गयी।'

मैं आनन्द का हाथ पकड़कर जोर से खींच रही थी कि उन्हें वहाँ से हटा ले जाऊँ, मगर वह बार-बार मेरा हाथ झटक देते थे। आखिर जब अम्माँजी अपने कमरे में चली गयीं, तो वह अपने कमरे में आये और सिर थामकर बैठ गये।

मैंने कहा—यह तुम्हें क्या सूझी ?

आनन्द ने भूमि की ओर ताकते हुए कहा—अम्माँ ने आज नोटिस दे दिया।

'तुम खुद ही उलझ पड़े, वह बेचारी तो कुछ बोली नहीं।'

'मैं ही उलझ पड़ा !'

'और क्या। मैंने तो तुमसे फरियाद न की थी।'

'पकड़ न लाता, तो अम्माँ ने तुम्हें अधमरा कर दिया होता। तुम उनका क्रोध नहीं जानतीं।'

'यह तुम्हारा भ्रम है। उन्होंने मुझे मारा नहीं, अपना पैर छुड़ा रही थीं। मैं पट्टी पर बैठी थी, जरा-सा धक्का खाकर गिर पड़ी। अम्माँजी मुझे उठाने ही जा रही थीं कि तुम पहुँच गये।'

'नानी के आगे ननिहाल का बखान न करो, मैं अम्माँ को खूब जानता हूँ। मैं कल ही दूसरा घर ले लूँगा, यह मेरा निश्चय है। कहीं-न-कहीं नौकरी मिल ही जायगी। ये लोग

समझते हैं कि मैं इनकी रोटियों पर पड़ा हुआ हूँ। इसी से यह मिजाज है !'

मैं जितना ही उनको समझाती थी, उतना ही वह और बफरते थे। आखिर मैंने झुँझलाकर कहा—तो तुम अकेले जाकर दूसरे घर में रहो। मैं न जाऊँगी। मुझे यहीं पड़ी रहने दो।

आनन्द ने मेरी ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा—यही लातें खाना अच्छा लगता है ?

'हाँ, मुझे यही अच्छा लगता है।'

'तो तुम खाओ, मैं नहीं खाना चाहता। यही फायदा क्या थोड़ा है कि तुम्हारी दुर्दशा आँखों से न देखूँगा, न पीड़ा होगी।'

'अलग रहने लगोगे, तो दुनिया क्या कहेगी !'

'इसकी परवा नहीं। दुनिया अन्धी है।'

'लोग यही कहेंगे कि स्त्री ने यह माया फैलायी है।'

'इसकी भी परवा नहीं, इस भय से अपना जीवन संकट में नहीं डालना चाहता।'

मैंने रोकर कहा—तुम मुझे छोड़ दोगे, तुम्हें मेरी जरा भी मुहब्बत नहीं है।

बहन, और किसी समय इस प्रेम-आग्रह से भरे हुए शब्दों ने न जाने क्या कर दिया होता। ऐसे ही आग्रहों पर रियासतें मिटती हैं, नाते टूटते हैं, रमणी के पास इससे बढ़कर दूसरा अस्त्र नहीं। मैंने आनन्द के गले में बाँहें डाल दी थीं और उनके कन्धे पर सिर रखकर रो रही थी। मगर इस समय आनन्द बाबू इतने कठोर हो गये थे कि यह आग्रह भी उन पर कुछ असर न कर सका। जिस माता ने जन्म दिया, उसके प्रति इतना रोष ! हम अपनी ही माता की एक कड़ी बात नहीं सह सकते, इस आत्माभिमान का कोई ठिकाना है। यही वे आशाएँ हैं, जिन पर माता ने अपने जीवन के सारे सुख-विलास अर्पण कर दिये थे, दिन का चैन और रात की नींद अपने ऊपर हराम कर ली थी ! पुत्र पर माता का इतना भी अधिकार नहीं !

आनन्द ने उसी अविचलित कठोरता से कहा—अगर मुहब्बत का यही अर्थ है कि मैं इस घर में तुम्हारी दुर्गति कराऊँ, तो मुझे वह मुहब्बत नहीं है।

प्रातःकाल वह उठकर बाहर जाते हुए मुझसे बोले—मैं जाकर घर ठीक किये आता हूँ। ताँगा भी लेता आऊँगा, तैयार रहना।

मैंने दरवाजा रोककर कहा—क्या अभी तक क्रोध शान्त नहीं हुआ ?

'क्रोध की बात नहीं, केवल दूसरों के सिर से अपना बोझ हटा लेने की बात है।'

'यह अच्छा काम नहीं कर रहे हो। सोचो, माताजी को कितना दुःख होगा। ससुरजी से भी तुमने कुछ पूछा ?'

'उनसे पूछने की कोई जरूरत नहीं। कर्ता-धर्ता जो कुछ हैं, वह अम्मा हैं। दादाजी मिट्टी के लोंदे हैं।'

'घर के स्वामी तो हैं ?'

'तुम्हें चलना है या नहीं, साफ कहो।'

'मैं तो अभी न जाऊँगी।'

'अच्छी बात है, लात खाओ।'

मैं कुछ नहीं बोली। आनन्द ने एक क्षण के बाद फिर कहा—तुम्हारे पास कुछ रुपये हों, तो मुझे दो।

मेरे पास रुपये थे, मगर मैंने इनकार कर दिया। मैंने समझा, शायद इसी असमंजस में पड़कर वह रुक जायँ। मगर उन्होंने बात मन में ठान ली थी। खिन्न होकर बोले—अच्छी बात है, तुम्हारे रुपयों के बगैर भी मेरा काम चल जायगा। तुम्हें यह विशाल भवन, यह सुख-भोग, ये नौकर-चाकर, ये ठाट-बाट मुबारक हों। मेरे साथ क्यों भूखों मरोगी ! वहाँ यह सुख कहाँ ! मेरे प्रेम का मूल्य ही क्या !

यह कहते हुए वह चले गये। बहन, क्या कहूँ, उस समय अपनी बेबसी पर कितना दुःख हो रहा था। बस, यही जी में आता था कि यमराज आकर मुझे उठा ले जायँ। मुझ कुल-कलंकिनी के कारण माता और पुत्र में यह वैमनस्य हो रहा था। जाकर अम्माँजी के पैरों पर गिर पड़ी और रो-रोकर आनन्द बाबू के चले जाने का समाचार कहा। मगर माताजी का हृदय जरा भी न पसीजा। मुझे आज मालूम हुआ कि माता भी इतनी वज्र-हृदया हो सकती है। फिर आनन्द बाबू का हृदय क्यों न कठोर हो। अपनी माता ही के पुत्र तो हैं।

माताजी ने निर्दयता से कहा—तुम उसके साथ क्यों न चली गयी ? जब वह कहता था, तब चला जाना चाहिए था। कौन जाने, यहाँ मैं किसी दिन तुम्हें विष दे दूँ।

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा—अम्माँजी, उन्हें बुला भेजिए, आपके पैरों पड़ती हूँ। नहीं तो कहीं चले जायेंगे।

अम्माँ[illegible]मी निर्दयता से बोलीं—जाय चाहे रहे, वह मेरा कौन है। अब तो जो कुछ हो, तुम हो, मुझे कौन गिनता है। आज जरा-सी बात पर यह इतना झल्ला रहा है। और मेरी अम्माँजी ने मुझे सैकड़ों ही बार पीटा होगा। मैं भी छोकरी न थी, तुम्हारी ही उम्र की थी, पर मजाल न थी कि तुम्हारे दादाजी से किसी के सामने बोल सकूँ। कच्चा ही खा जातीं ! मार खाकर रात-रात-भर रोती रहती थी, पर इस तरह घर छोड़कर कोई न भागता था। आजकल के लौंडे ही प्रेम करना नहीं जानते, हम भी प्रेम करते थे, पर इस तरह नहीं कि माँ-बाप, छोटे-बड़े किसी को कुछ न समझें।

यह कहती हुई माताजी पूजा करने चली गयीं। मैं अपने कमरे में आकर नसीबों को रोने लगी। यही शंका होती थी कि आनन्द किसी तरफ की राह न लें। बार-बार जी मसोसता था कि रुपये क्यों न दे दिये। बेचारे इधर-उधर मारे-मारे फिरते होंगे। अभी हाथ-मुँह भी नहीं धोया, जलपान भी नहीं किया। वक्त पर जलपान न करेंगे तो, जुकाम हो जायगा, और उन्हें जुकाम होता है, तो हरारत भी हो जाती है। महरी से कहा—जरा जाकर देख तो, बाबूजी कमरे में हैं ? उसने आकर कहा—कमरे में तो कोई नहीं, खूँटी पर कपड़े भी नहीं हैं।

मैंने पूछा—क्या और भी कभी इस तरह अम्माँजी से रूठे हैं ? महरी बोली—कभी नहीं बहू, ऐसा सीधा तो मैंने लड़का ही नहीं देखा। मालकिन के सामने कभी सिर नहीं उठाते थे। आज न-जाने क्यों चले गये।

मुझे आशा थी कि दोपहर को भोजन के समय वह आ जायँगे। लेकिन दोपहर की कौन कहे; शाम भी हो गयी और उनका पता नहीं। सारी रात जागती रही। द्वार की ओर कान लगे हुए थे। मगर रात भी उसी तरह गुजर गयी। बहन, इस प्रकार पूरे तीन दिन बीत गये। उस वक्त तुम मुझे देखतीं, तो पहचान न सकतीं। रोते-रोते आँखें लाल हो गयी थीं। इन तीन दिनों में एक पल भी नहीं सोयी और भूख का तो जिक्र ही क्या, पानी तक न

पिया। प्यास ही न लगती थी। मालूम होता था, देह में प्राण ही नहीं है। सारे घर में मातम-सा छाया हुआ था। अम्माँजी भोजन करने दोनों वक्त जाती थीं, पर मुँह जूठा करके चली आती थीं। दोनों ननदों की हँसी और चुहल भी गायब हो गयी थी। छोटी ननदजी तो मुझसे अपना अपराध क्षमा कराने आयीं।

चौथे दिन सबेरे रसोइये ने आकर मुझसे कहा—बाबूजी तो अभी मुझे दशाश्वमेध घाट पर मिले थे। मैं उन्हें देखते ही लपककर उनके पास जा पहुँचा और बोला—भैया, घर क्यों नहीं चलते ? सब लोग घबड़ाये हुए हैं। बहूजी ने तीन दिन से पानी तक नहीं पिया। उनका हाल बहुत बुरा है। यह सुनकर वह कुछ सोच में पड़ गये, फिर बोले—बहूजी ने क्यों दाना-पानी छोड़ रखा है ? जाकर कह देना, जिस आराम के लिए उस घर को न छोड़ सकी, उससे क्या इतनी जल्द जी भर गया !

अम्माँजी उसी समय आँगन में आ गयीं। महाराज की बातों की भनक कानों में पड़ गयी, बोलीं—क्या है अलगू, क्या आनन्द मिला था ?

महाराज—हाँ, बड़ी बहू, अभी दशाश्वमेध घाट पर मिले थे। मैंने कहा—घर क्यों नहीं चलते, तो बोले—उस घर में मेरा कौन बैठा हुआ है ?

अम्माँ—कहा नहीं और कोई अपना नहीं है, तो स्त्री तो अपनी है, उसकी जान क्यों लेते हो ?

महाराज—मैंने बहुत समझाया बड़ी बहू, पर वह टस-से-मस न हुए।

अम्माँ—करता क्या है ?

महाराज—यह तो मैंने नहीं पूछा, पर चेहरा बहुत उतरा हुआ था।

अम्माँ—ज्यों-ज्यों तुम बूढ़े होते हो, शायद सठियाते जाते हो। इतना तो पूछा होता, कहाँ रहते हो, कहाँ खाते-पीते हो। तुम्हें चाहिए था, उसका हाथ पकड़ लेते और खींचकर ले आते। मगर तुम नमकहरामों को अपने हलवे-मांडे से मतलब, चाहे कोई मरे या जिये। दोनों वक्त बढ़-बढ़कर हाथ मारते हो और मूँछों पर ताव देते हो। तुम्हें इसकी क्या परवाह है कि घर में दूसरा कोई खाता है या नहीं। मैं तो परवाह न करती, वह आये या न आये। मेरा धर्म पालना-पोसना था, पाल-पोस दिया। अब जहाँ चाहे रहे। पर इस बहू का क्या करूँ, जो रो-रोकर प्राण दिये डालती है। तुम्हें ईश्वर ने आँखें दी हैं, उसकी हालत देख रहे हो। क्या मुँह से इतना भी न फूटा कि बहू अन्न-जल त्याग किये पड़ी हुई है।

महाराज—बहूजी, नारायण जानते हैं, मैंने बहुत तरह समझाया, मगर वह तो जैसे भागे जाते थे। फिर मैं क्या करता।

अम्माँ—समझाया नहीं, अपना सिर। तुम समझाते और वह यों ही चला जाता। क्या सारी लच्छेदार बातें मुझी से करने को है ? इस बहू को मैं क्या कहूँ। मेरे पति ने मुझसे इतनी बेरुखी की होती, तो मैं उसकी सूरत न देखती। पर, इस पर उसने न-जाने कौन-सा जादू कर दिया है। ऐसे उदासियों को तो कुलटा चाहिए, जो उन्हें तिगनी का नाच नचाये।

कोई आध घंटे बाद कहार ने आकर कहा—बाबूजी आकर कमरे में बैठे हुए हैं।

मेरा कलेजा धक्-धक् करने लगा। जी चाहता था कि जाकर पकड़ लाऊँ, पर अम्माँजी का हृदय सचमुच वज्र है। बोलीं—जाकर कह दे, यहाँ उनका कौन बैठा हुआ है, जो आकर बैठे हैं !

मैंने हाथ जोड़कर कहा—अम्माँजी, उन्हें अन्दर बुला लीजिए, कहीं फिर न चले जायँ।

अम्माँ—यहाँ उनका कौन बैठा हुआ है, जो आयेगा। मैं तो अन्दर कदम न रखने दूँगी।

अम्माँजी तो बिगड़ रही थीं, उधर छोटी ननदजी जाकर आनन्द बाबू को लायीं। सचमुच उनका चेहरा उतरा हुआ था, जैसे महीनों का मरीज हो। ननदजी उन्हें इस तरह खींचे लाती थीं, जैसे कोई लड़की ससुराल जा रही हो। अम्माँजी ने मुसकिराकर कहा—इसे यहाँ क्यों लायीं ? यहाँ इसका कौन बैठा हुआ है ?

आनन्द सिर झुकाये अपराधियों की भाँति खड़े थे। जबान न खुलती थी। अम्माँजी ने फिर पूछा—चार दिन कहाँ थे ?

'कहीं नहीं, यहीं तो था।'

'खूब चैन से रहे होगे।'

'जी हाँ, कोई तकलीफ न थी।'

'वह तो सूरत ही से मालूम हो रहा है।'

ननदजी जलपान के लिए मिठाई लायीं। आनन्द मिठाई खाते इस तरह झेंप रहे थे मानो ससुराल आये हों ! फिर माताजी उन्हें लिए अपने कमरे में चली गयीं। वहाँ आध घण्टे तक माता और पुत्र में बातें होती रहीं। मैं कान लगाये हुए थी, पर साफ कुछ न सुनायी देता था। हाँ, ऐसा मालूम होता था कि कभी माताजी रोती हैं और कभी आनन्द। माताजी जब पूजा करने निकलीं, तो उनकी आँखें लाल थीं। आनन्द वहाँ से निकले, तो सीधे मेरे कमरे में आये। मैं उन्हें आते देख चटपट मुँह ढाँपकर चारपाई पर पड़ रही, मानो बेखबर सो रही हूँ। वह कमरे में आये, मुझे चारपाई पर पड़े देखा, मेरे समीप आकर एक बार धीरे से पुकारा और लौट पड़े। मुझे जगाने की हिम्मत न पड़ी। मुझे जो कष्ट हो रहा था, इसका एकमात्र कारण अपने को समझकर वह मन-ही-मन दुखी हो रहे थे। मैंने अनुमान किया था, वह मुझे उठायेंगे, मैं मान करूँगी, वह मनायेंगे, मगर सारे मंसूबे खाक में मिल गये। उन्हें लौटते देखकर मुझसे न रहा गया। मैं हकबकाकर उठ बैठी और चारपाई से नीचे उतरने लगी, मगर न-जाने क्यों, मेरे पैर लड़खड़ाये और ऐसा जान पड़ा मैं गिरी जाती हूँ। सहसा आनन्द ने पीछे फिर कर मुझे सँभाल लिया और बोले—लेट जाओ, लेट जाओ, मैं कुरसी पर बैठ जाता हूँ। यह तुमने अपनी क्या गति बना रखी है ?

मैंने अपने को सँभालकर कहा—मैं तो बहुत अच्छी तरह हूँ। आपने कैसे कष्ट किया ?

'पहले तुम कुछ भोजन कर लो, तो पीछे मैं कुछ बात करूँगा।'

'मेरे भोजन की आपको क्या फिक्र पड़ी है। आप तो सैर-सपाटे कर रहे हैं !'

'जैसे सैर-सपाटे मैंने किये हैं, मेरा दिल ही जानता है। मगर बातें पीछे करूँगा, अभी मुँह-हाथ धोकर खा लो। चार दिन से पानी तक मुँह में नहीं डाला। राम ! राम!'

'यह आपसे किसने कहा कि मैंने चार दिन से पानी तक मुँह में नहीं डाला। जब आपको मेरी परवा न थी, तो मैं क्यों दाना-पानी छोड़ती ?'

'वह तो सूरत ही कहे देती है। फूल से....मुरझा गये।'

'जरा अपनी सूरत जाकर आईने में देखिए।'

'मैं पहले ही कौन बड़ा सुन्दर था। ठूँठ को पानी मिले तो क्या और न मिले तो क्या। मैं न जानता था कि तुम यह अनशन-व्रत ले लोगी, नहीं तो ईश्वर जानता है, अम्माँ मार-मारकर भगातीं, तो भी न जाता।'

मैंने तिरस्कार की दृष्टि से देखकर कहा—तो क्या सचमुच तुम समझे थे कि मैं यहाँ केवल आराम के विचार से रह गयी ?

आनन्द ने जल्दी से अपनी भूल सुधारी—नहीं, नहीं, प्रिये, मैं इतना गधा नहीं हूँ, पर यह मैं कदापि न समझता था कि तुम बिलकुल दाना-पानी छोड़ दोगी। बड़ी कुशल हुई कि मुझे महाराज मिल गया, नहीं तो तुम प्राण ही दे देतीं। अब ऐसी भूल कभी न होगी। कान पकड़ता हूँ। अम्माँजी तुम्हारा बखान कर-करके रोती रहीं।

मैंने प्रसन्न होकर कहा—तब तो मेरी तपस्या सफल हो गयी।

'थोड़ा-सा दूध पी लो, तो बातें हों। जाने कितनी बातें करनी हैं।'

'पी लूँगी, ऐसी क्या जल्दी है।'

'जब तक तुम कुछ खा न लोगी, मैं यही समझूँगा कि तुमने मेरा अपराध क्षमा नहीं किया।'

'मैं भोजन जभी करूँगी, जब तुम यह प्रतिज्ञा करो कि फिर कभी इस तरह रूठकर न जाओगे।'

'मैं सच्चे दिल से यह प्रतिज्ञा करता हूँ।'

बहन, तीन दिन कष्ट तो हुआ, पर मुझे उसके लिए जरा भी पछतावा नहीं है। इन तीन दिनों के अनशन ने दिलों में जो सफाई कर दी, वह किसी दूसरी विधि से कदापि न होती। अब मुझे विश्वास है कि हमारा जीवन शांति से व्यतीत होगा। अपने समाचार शीघ्र, अति शीघ्र लिखना।

तुम्हारी,
चन्दा

13

देहली
20-2-26

प्यारी बहन,

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे तुम्हारे ऊपर दया आयी। तुम मुझे कितना ही बुरा कहो, पर मैं अपनी यह दुर्गति किसी तरह न सह सकती, किसी तरह नहीं। मैंने या तो अपने प्राण ही दे दिये होते, या फिर उस सास का मुँह न देखती। तुम्हारा सीधापन, तुम्हारी सहनशीलता, तुम्हारी सास-भक्ति तुम्हें मुबारक हो। मैं तो तुरन्त आनन्द के साथ चली जाती और चाहे भीख ही क्यों न माँगनी पड़ती, पर उस घर में कदम न रखती। मुझे तुम्हारे ऊपर दया ही नहीं आती क्रोध भी आता है, इसलिए कि तुममें स्वाभिमान नहीं है। तुम-जैसी स्त्रियों ने ही सासों और पुरुषों का मिजाज आसमान पर चढ़ा दिया है। 'जहन्नुम में जाय ऐसा घर—जहाँ अपनी इज्जत नहीं।' मैं पति-प्रेम भी इन दामों न लूँ। तुम्हें

उन्नीसवीं सदी में जन्म लेना चाहिए था। उस वक्त तुम्हारें गुणों की प्रशंसा होती। इस स्वाधीनता और नारी-स्वत्व के नवयुग में तुम केवल प्राचीन इतिहास हो। यह सीता और दमयन्ती का युग नहीं। पुरुषों ने बहुत दिनों तक राज्य किया। अब स्त्री-जाति का राज्य होगा। मगर अब तुम्हें अधिक न कोसूँगी।

अब मेरा हाल सुनो। मैंने सोचा था, पत्रों में अपनी बीमारी का समाचार छपवा दूँगी। लेकिन फिर खयाल आया; यह समाचार छपते ही मित्रों का ताँता लग जायगा। कोई मिजाज पूछने आयेगा। कोई देखने आयेगा। फिर मैं कोई रानी तो हूँ नहीं, जिसकी बीमारी का बुलेटिन रोजाना छापा जाय। न जाने लोगों के दिल में कैसे-कैसे विचार उत्पन्न हों। यह सोचकर मैंने पत्र में छपवाने का विचार छोड़ दिया। दिन-भर मेरे चित्त की क्या दशा रही, लिख नहीं सकती। कभी मन में आता, जहर खा लूँ; कभी सोचती, कहीं उड़ जाऊँ। विनोद के सम्बन्ध में भाँति-भाँति की शंकाएँ होने लगीं। अब मुझे ऐसी कितनी ही बातें याद आने लगीं, जब मैंने विनोद के प्रति उदासीनता का भाव दिखाया था। मैं उनसे सब कुछ लेना चाहती थी; देना कुछ न चाहती थी। मैं चाहती थी कि वह आठों पहर भ्रमर की भाँति मुझ पर मँडराते रहें, पतंग की भाँति मुझे घेरे रहें। उन्हें किताबों और पत्रों में मग्न बैठे देखकर मुझे झुँझलाहट होने लगती थी। मेरा अधिकांश समय अपने ही बनाव-सिंगार में कटता था, उनके विषय में मुझे कोई चिन्ता ही न होती थी। अब मुझे मालूम हुआ कि सेवा का महत्त्व रूप से कहीं अधिक है। रूप मन को मुग्ध कर सकता है, पर आत्मा को आनन्द पहुँचानेवाली कोई दूसरी ही वस्तु है।

इस तरह एक हफ्ता गुजर गया। मैं प्रातःकाल मैके जाने की तैयारियाँ कर रही थी—यह घर फाड़े खाता था—कि सहसा डाकिये ने मुझे एक पत्र लाकर दिया। मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा। मैंने काँपते हुए हाथों से पत्र लिया, पर सिरनामे पर विनोद की परिचित हस्तलिपि न थी, लिपि किसी स्त्री की थी, इसमें सन्देह न था, पर मैं उससे सर्वथा अपरिचित थी। मैंने तुरन्त पत्र खोला और नीचे की तरफ देखा तो चौंक पड़ी—वह कुसुम का पत्र था। मैंने एक ही साँस में सारा पत्र पढ़ लिया। लिखा था—'बहन, विनोद बाबू तीन दिन यहाँ रहकर बम्बई चले गये। शायद विलायत जाना चाहते हैं। तीन-चार दिन बम्बई में रहेंगे। मैंने बहुत चाहा कि उन्हें देहली वापस कर दूँ, पर वह किसी तरह न राजी हुए। तुम उन्हें नीचे लिखे पत से तार दे दो। मैंने उनसे यह पता पूछ लिया था। उन्होंने मुझे ताकीद कर दी थी कि इस पते को गुप्त रखना, लेकिन तुमसे क्या परदा। तुम तुरन्त तार दे दो, शायद रुक जायँ। वह बात क्या हुई ! मुझे विनोद ने तो बहुत पूछने पर भी नहीं बताया, पर वह दुखी बहुत थे। ऐसे आदमी को भी तुम अपना न बना सकीं, इसका मुझे आश्चर्य हैं; पर मुझे इसकी पहले ही शंका थी। रूप और गर्व में दीपक और प्रकाश का सम्बन्ध है। गर्व रूप का प्रकाश है।'....

मैंने पत्र रख दिया और उसी वक्त विनोद के नाम तार भेज दिया कि बहुत बीमार हूँ, तुरन्त आओ। मुझे आशा थी कि विनोद तार द्वारा जवाब देंगे, लेकिन सारा दिन गुजर गया और काई जवाब न आया। बँगले के सामने से कोई साइकिल निकलती, तो मैं तुरन्त उसकी ओर ताकने लगती थी कि शायद तार का चपरासी हो। रात को भी मैं तार का इन्तजार करती रही। तब मैंने अपने मन को इस विचार से शांत किया कि विनोद आ रहे

हैं, इसलिए तार भेजने की जरूरत न समझी।

अब मेरे मन में फिर शंकाएँ उठने लगी। विनोद कुसुम के पास क्यों गये, कहीं कुसुम से उन्हें प्रेम तो नहीं है ? कहीं उसी प्रेम के कारण तो वह मुझसे विरक्त नहीं हो गये? कुसुम कोई कौशल तो नहीं कर रही है ? उसे विनोद को अपने घर ठहराने का अधिकार ही क्या था ? इस विचार से मेरा मन बहुत क्षुब्ध हो उठा। कुसुम पर क्रोध आने लगा। अवश्य दोनों में बहुत दिनों से पत्र-व्यवहार होता रहा होगा। मैंने फिर कुसुम का पत्र पढ़ा और अबकी उसके प्रत्येक शब्द में मेरे लिए कुछ सोचने की सामग्री रखी हुई थी। निश्चय किया कि कुसुम को एक पत्र लिखकर खूब कोसूँ। आधा पत्र लिख भी डाला, पर उसे फाड़ डाला। उसी वक्त विनोद को एक पत्र लिखा। तुमसे कभी भेंट होगी, तो वह पत्र दिखलाऊँगी; जो कुछ मुँह में आया बक डाला। लेकिन इस पत्र की भी वही दशा हुई जो कुसुम के पत्र की हुई थी। लिखने के बाद मालूम हुआ कि वह किसी विक्षिप्त हृदय की बकवाद है। मेरे मन में यही बात बैठती जाती थी कि वह कुसुम के पास हैं। वही छलिनी उन पर अपना जादू चला रही है। यह दिन भी बीत गया। डाकिया कई बार आया, पर मैंने उसकी ओर आँख भी नहीं उठायी। चन्दा, मैं नहीं कह सकती मेरा हृदय कितना तिलमिला रहा था। अगर कुसुम इस समय मुझे मिल जाती, तो मैं न-जाने क्या कर डालती।

रात को लेटे-लेटे खयाल आया, कहीं वह योरप न चले गये हों। जी बेचैन हो उठा। सिर में ऐसा चक्कर आने लगा, मानो पानी में डूबी जाती हूँ। अगर वह योरप चले गये, तो फिर कोई आशा नहीं—मैं उसी वक्त उठी और घड़ी पर नजर डाली। दो बजे थे। नौकर को जगाया और तार-घर जा पहुँची। बाबूजी कुरसी पर लेटे-लेटे सो रहे थे। बड़ी मुश्किल से उनकी नींद खुली। मैंने रसीदी तार दिया। जब बाबूजी तार दे चुके, तो मैंने पूछा—इसका जवाब कब तक आयेगा ?

बाबू ने कहा—यह प्रश्न किसी ज्योतिषी से कीजिए। कौन जानता है, वह कब जवाब दें। तार का चपरासी जबरदस्ती तो उनसे जवाब नहीं लिखा सकता। अगर कोई और कारण न हो, तो आठ-नौ बजे तक जवाब आ जाना चाहिए।

घबराहट में आदमी की बुद्धि पलायन कर जाती है। ऐसा निरर्थक प्रश्न करके मैं स्वयं लज्जित हो गयी। बाबूजी ने अपने मन में मुझे कितना मूर्ख समझा होगा; खैर, मैं वहीं एक बेंच पर बैठ गयी और तुम्हें विश्वास न आयेगा, नौ बजे तक वहीं बैठी रही। सोचो, कितने घंटे हुए ? पूरे सात घंटे। सैकड़ों आदमी आये और गये, पर मैं वहीं जमी बैठी रही। जब तार का डमी खटकता मेरे हृदय में धड़कन होने लगती। लेकिन इस भय से कि बाबूजी झल्ला न उठें, कुछ पूछने का साहस न करती थी। जब दफ़्तर की घड़ी में नौ बजे, तो मैंने डरते-डरते बाबू से पूछा—क्या अभी तक जवाब नहीं आया।

बाबू ने कहा—आप तो यहीं बैठी हैं, जवाब आता तो क्या मैं खा डालता ? मैंने बेहयाई करके फिर पूछा—तो क्या अब न आवेगा ? बाबू ने मुँह फेरकर कहा—और दो-चार घंटे बैठी रहिए।

बहन, यह वाग्बाण शर के समान हृदय में लगा। आँखें भर आयीं। लेकिन फिर भी मैं वहाँ से टली नहीं। अब भी आशा बँधी हुई थी कि शायद जवाब आता हो। जब दो घंटे और गुजर गये, तब मैं निराश हो गयी। हाय ! विनोद ने मुझे कहीं का न रखा। मैं घर

चली, तो आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। रास्ता न सूझता था।

सहसा पीछे से एक मोटर का हार्न सुनायी दिया। मैं रास्ते से हट गयी। उस वक्त मन में आया, इसी मोटर के नीचे लेट जाऊँ और जीवन का अन्त कर दूँ। मैंने आँखें पोंछकर मोटर की ओर देखा भुवन बैठा हुआ था और उसकी बगल में बैठी थी कुसुम ! ऐसा जान पड़ा, मानो अग्नि की ज्वाला मेरे पैरों से समाकर सिर से निकल गयी। मैं उन दोनों की निगाहों से बचना चाहती थी, लेकिन मोटर रुक गयी और कुसुम उतर कर मेरे गले से लिपट गयी। भुवन चुपचाप मोटर में बैठा रहा, मानो मुझे जानता ही नहीं। निर्दयी, धूर्त !

कुसुम ने पूछा—मैं तो तुम्हारे पास जाती थी बहन ? वहाँ से कोई खबर आयी? मैंने बात टालने के लिए कहा—तुम कब आयीं ?

भुवन के सामने मैं अपनी विपत्ति-कथा न कहना चाहती थी।

कुसुम—आओ, कार में बैठ जाओ।

'नहीं, मैं चली जाऊँगी। अवकाश मिले, तो एक बार चली आना।'

कुसुम ने मुझसे आग्रह न किया। कार में बैठकर चल दी। मैं खड़ी ताकती रह गयी ! यह वही कुसुम है या कोई और ? कितना बड़ा अन्तर हो गया है ?

मैं घर चली, तो सोचने लगी—भुवन से इसकी जान-पहचान कैसे हुई ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि विनोद ने इसे मेरी टोह लेने को भेजा हो ! भुवन से मेरे विषय में कुछ पूछने तो नहीं आयी है ?

मैं घर पहुँचकर बैठी ही थी कि कुसुम आ पहुँची। अब की वह मोटर में अकेली न थी—विनोद बैठे हुए थे। मैं उन्हें देखकर ठिठक गयी ! चाहिए तो यह था कि मैं दौड़कर उनका हाथ पकड़ लेती और मोटर से उतार लाती, लेकिन मैं जगह से हिली तक नहीं। मूर्ति की भाँति अचल बैठी रही। मेरी मानिनी प्रकृति अपना उद्दण्ड-स्वरूप दिखाने के लिए विकल हो उठी। एक क्षण में कुसुम ने विनोद को उतारा और उनका हाथ पकड़े हुए ले आयी। उस वक्त मैंने देखा कि विनोद का मुख बिल्कुल पीला पड़ गया है और वह इतने अशक्त हो गये हैं कि अपने सहारे खड़े भी नहीं रह सकते, मैंने घबगकर पूछा, क्यों तुम्हारा यह क्या हाल है ?

कुसुम ने कहा—हाल पीछे पूछना, जरा इनकी चारपाई चटपट बिछा दो और थोड़ा-सा दूध मँगवा लो।

मैंने तुरन्त चारपाई बिछायी और विनोद को उस पर लेटा दिया। दूध तो रखा ही हुआ था ! कुसुम इस वक्त मेरी स्वामिनी बनी हुई थी। मैं उसके इशारे पर नाच रही थी। चन्दा, इस वक्त मुझे ज्ञात हुआ कि कुसुम पर विनोद को जितना विश्वास है, वह मुझ पर नहीं। मैं इस योग्य हूँ ही नहीं। मेरा दिल सैकड़ों प्रश्न पूछने के लिए तड़फड़ा रहा था, लेकिन कुसुम एक पल के लिए भी विनोद के पास से न टलती थी। मैं इतनी मूर्ख हूँ कि अवसर पाने पर इस दशा में भी मैं विनोद से प्रश्नों का ताँता बाँध देती।

विनोद को जब नींद आ गयी, मैंने आँखों में आँसू भरकर कुसुम से पूछा—बहन, इन्हें क्या शिकायत है ? मैंने तार भेजा। उसका जवाब नहीं आया। रात दो बजे एक जरूरी और जवाबी तार भेजा। दस बजे तक तार-घर में बैठी जवाब की राह देखती रही। वहीं से लौट रही थी, जब तुम रास्ते में मिलीं। यह तुम्हें कहाँ मिल गये ?

कुसुम मेरे हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में ले गयी और बोली—पहले तुम यह बताओ कि भुवन का क्या मुआमला था ? देखो, साफ कहना।

मैंने आपत्ति करते हुए कहा—कुसुम, तुम यह प्रश्न पूछकर मेरे साथ अन्याय कर रही हो। तुम्हें खुद समझ लेना चाहिए था कि इस बात में कोई सार नहीं है ! विनोद को केवल भ्रम हो गया।

'बिना किसी कारण के ?'

'हाँ, मेरी समझ में तो कोई कारण न था।'

'मैं इसे नहीं मानती। यह क्यों नहीं कहतीं कि विनोद को जलाने, चिढ़ाने और जगाने के लिए तुमने यह स्वाँग रचा था।'

कुसुम की सूझ पर चकित होकर मैंने कहा—वह तो केवल दिल्लगी थी।

'तुम्हारे लिए दिल्लगी थी, विनोद के लिए वज्रघात था। तुमने इतने दिनों उनके साथ रहकर भी उन्हें नहीं समझा ! तुम्हें अपने बनाव-सँवार के आगे उन्हें समझने की कहाँ फुरसत ? कदाचित् तुम समझती हो कि तुम्हारी यह मोहनी मूर्ति ही सब कुछ है। मैं कहती हूँ, इसका मूल्य दो-चार महीने के लिए हो सकता है। स्थायी वस्तु कुछ और ही है।'

मैंने अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा—विनोद को मुझसे कुछ पूछना तो चाहिए था ?

कुसुम ने हँसकर कहा—यही तो वह नहीं कर सकते। तुमसे ऐसी बात पूछना उनके लिए असम्भव है। वह उन प्राणियों में हैं, जो स्त्री की आँखों से गिरकर जीते नहीं रह सकते। स्त्री या पुरुष किसी के लिए भी वह किसी प्रकार का धार्मिक या नैतिक बन्धन नहीं रखना चाहते। वह प्रत्येक प्राणी के लिए पूर्ण स्वाधीनता के समर्थक हैं। मन और इच्छा के सिवा वह और कोई बंधन स्वीकार नहीं करते। इस विषय पर मेरी उनसे खूब बातें हुई हैं। खैर—मेरा पता उन्हें मालूम था ही, यहाँ से सीधे मेरे पास पहुँचे। मैं समझ गयी कि आपस में पटी नहीं। मुझे तुम्हीं पर सन्देह हुआ।

मैंने पूछा—क्यों ? मुझ पर तुम्हें क्यों सन्देह हुआ ?

'इसलिए कि मैं तुम्हें पहले देख चुकी थी।'

'अब तो तुम्हें मुझ पर संदेह नहीं है।'

'नहीं, मगर इसका कारण तुम्हारा संयम नहीं, परम्परा है। मैं इस समय स्पष्ट बातें कर रही हूँ, इसके लिए क्षमा करना।'

'तुम समझती हो कि मुझे विनोद से प्रेम नहीं है !'

'नहीं, विनोद से तुम्हें जितना प्रेम है, उससे अधिक अपने-आपसे है। कम-से-कम दस दिन पहले यही बात थी। अन्यथा यह नौबत ही क्यों आती ? विनोद यहाँ से सीधे मेरे पास गये और दो-तीन दिन रहकर बम्बई चले गये। मैंने बहुत पूछा, पर कुछ बतलाया नहीं। वहाँ उन्होंने एक दिन विष खा लिया।'

मेरे चेहरे का रंग उड़ गया।

'बम्बई पहुँचते ही उन्होंने मेरे पास एक खत लिखा था। उसमें यहाँ की सारी बातें लिखी थीं और अन्त में लिखा था—मैं इस जीवन से तंग आ गया हूँ, अब मेरे लिए मौत के सिवा और कोई उपाय नहीं है।'

मैंने एक ठंडी साँस ली।

'मैं यह पत्र पाकर घबरा गयी और उसी वक्त बम्बई रवाना हो गयी। जब वहाँ पहुँची, तो विनोद को मरणासन्न पाया। जीवन की कोई आशा नहीं थी। मेरे एक सम्बन्धी वहाँ डाक्टरी करते हैं। उन्हें लाकर दिखाया तो वह बोले—इन्होंने जहर खा लिया है। तुरन्त दवा दी गयी। तीन दिन तक डाक्टर साहब ने दिन-को-दिन और रात-को-रात न समझा, और मैं तो एक क्षण के लिए विनोद के पास से न हटी। बारे तीसरे दिन इनकी आँखें खुलीं। तुम्हारा पहला तार मुझे मिला था, पर उसका जवाब देने की किसे फुरसत थी ? तीन दिन और बम्बई रहना पड़ा। विनोद इतने कमजोर हो गये थे कि इतना लम्बा सफर करना उनके लिए असम्भव था। चौथे दिन मैंने जब उनसे यहाँ आने का प्रस्ताव किया, तो बोले—मैं अब वहाँ न जाऊँगा। जब मैंने बहुत समझाया, तब इस शर्त पर राजी हुए कि मैं पहले आकर यहाँ की परिस्थिति देख जाऊँ।'

मेरे मुँह से निकला—'हा ! ईश्वर, मैं ऐसी अभागिनी हूँ।'

'अभागिनी नहीं हो बहन, केवल तुमने विनोद को समझा न था। वह चाहते थे कि मैं अकेली जाऊँ, पर मैंने उन्हें इस दशा में वहाँ छोड़ना उचित न समझा। परसों हम दोनों वहाँ से चले। यहाँ पहुँचकर विनोद तो वेटिंग-रूम में ठहर गये, मैं पता पूछती हुई भुवन के पास पहुँची। भुवन को मैंने इतना फटकारा कि वह रो पड़ा। उसने मुझसे यहाँ तक कह डाला कि तुमने उसे बुरी तरह दुत्कार दिया है। आँखों का बुरा आदमी है, पर दिल का बुरा नहीं। उधर से जब मुझे सनतोप हो गया और रास्ते में तुमसे भेंट हो जाने पर रहा-सहा भ्रम भी दूर हो गया, तो मैं विनोद को तुम्हारे पास लायी। अब तुम्हारी वस्तु तुम्हें सौंपती हूँ। मुझे आशा है, इस दुर्घटना ने तुम्हें इतना सचेत कर दिया होगा कि फिर ऐसी नौबत न आयेगी। आत्म-समर्पण करना सीखो। भूल जाओ कि तुम सुन्दरी हो, आनन्दमय जीवन का यही मूल मंत्र है। मैं डींग नहीं मारती, लेकिन चाहूँ तो आज विनोद को तुमसे छीन सकती हूँ। लेकिन रूप में मैं तुम्हारे तलुओं के बराबर भी नहीं। रूप के साथ अगर तुम सेवा-भाव धारण कर सको, तो तुम अजेय हो जाओगी।'

मैं कुसुम के पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई बोली—बहन, तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उसके लिए मरते दम तक तुम्हारी ऋणी रहूँगी। तुमने न सहायता की होती, तो आज-न-जाने मेरी क्या गति होती।

बहन, कुसुम कल चली जायगी। मुझे तो अब वह देवी-सी दीखती है। जी चाहता है, उसके चरण धो-धोकर पीऊँ। उसके हाथों मुझे विनोद ही नहीं मिले हैं, सेवा का सच्चा आदर्श और स्त्री का सच्चा कर्तव्य-ज्ञान भी मिला है। आज से मेरे जीवन का नवयुग आरम्भ होता है, जिसमें भोग और विलास की नहीं, सहृदयता और आत्मीयता की प्रधानता होगी।

तुम्हारी,
पद्मा

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', फरवरी-मार्च-अप्रैल-मई, 1928 में प्रकाशित। मानसरोवर भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप 'दो सखियां' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

मंत्र-2

संध्या का समय था। डाक्टर चड्ढा गोल्फ खेलने के लिए तैयार हो रहे थे। मोटर द्वार के सामने खड़ी थी कि दो कहार एक डोली लिये आते दिखायी दिये। डोली के पीछे एक बूढ़ा लाठी टेकता चला आता था। डोली औषधालय के सामने आ कर रुक गयी। बूढ़े ने धीरे-धीरे आकर द्वार पर पड़ी हुई चिक से झाँका। ऐसी साफ-सुथरी जमीन पर पैर रखते हुए भय हो रहा था कि कोई घुड़क न बैठे। डाक्टर साहब को सामने खड़े देख कर भी उसे कुछ कहने का साहस न हुआ।

डाक्टर साहब ने चिक के अंदर से गरज कर कहा–कौन है ? क्या चाहता है?

बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा–हुजूर, बड़ा गरीब आदमी हूँ। मेरा लड़का कई दिन से...

डाक्टर साहब ने सिगार जला कर कहा–कल सबेरे आओ, कल सबेरे, हम इस वक्त मरीजों को नहीं देखते।

बूढ़े ने घुटने टेक कर जमीन पर सिर रख दिया और बोला–दुहाई है सरकार की, लड़का मर जायगा ! हुजूर, चार दिन से आँखें नहीं...

डाक्टर चड्ढा ने कलाई पर नजर डाली। केवल दस मिनट समय और बाकी था। गोल्फ-स्टिक खूँटी से उतारते हुए बोले–कल सबेरे आओ, कल सबेरे; यह हमारे खेलने का समय है।

बूढ़े ने पगड़ी उतार कर चौखट पर रख दी और रो कर बोला–हुजूर, एक निगाह देख लें। बस, एक निगाह ! लड़का हाथ से चला जायगा हुजूर, सात लड़कों में यही एक बच रहा है, हुजूर। हम दोनों आदमी रो-रो कर मर जायेंगे, सरकार ! आपकी बढ़ती होय, दीनबंधु !

ऐसे उजड्ड देहाती यहाँ प्रायः रोज आया करते थे। डाक्टर साहब उनके स्वभाव से खूब परिचित थे। कोई कितना ही कुछ कहे; पर वे अपनी ही रट लगाते जायँगे। किसी की सुनेंगे नहीं। धीरे से चिक उठायी और बाहर निकल कर मोटर की तरफ चले। बूढ़ा यह कहता हुआ उनके पीछे दौड़ा–सरकार, बड़ा धरम होगा। हुजूर, दया कीजिए, बड़ा दीन-दुखी हूँ; संसार में कोई और नहीं है, बाबू जी !

मगर डाक्टर साहब ने उसकी ओर मुँह फेर कर देखा तक नहीं। मोटर पर बैठ कर बोले–कल सबेरे आना।

मोटर चली गयी। बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा। संसार में ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जो अपने आमोद-प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका उसे अब भी विश्वास न आता था। सभ्य संसार इतना निर्मम, इतना कठोर है, इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने के जीवों में था, जो लगी हुई आग को बुझाने, मुर्दे को कंधा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शांत करने के लिए सदैव तैयार रहते थे। जब तक बूढ़े को मोटर दिखायी दी, वह खड़ा टकटकी लगाये उस ओर ताकता रहा। शायद उसे अब भी डाक्टर साहब के लौट आने की आशा थी। फिर उसने कहारों से डोली उठाने को कहा। डोली जिधर से आयी

थी, उधर ही चली गयी। चारों ओर से निराश होकर वह डाक्टर चड्ढा के पास आया था। इनकी बड़ी तारीफ सुनी थी। यहाँ से निराश हो कर फिर वह किसी दूसरे डाक्टर के पास न गया। किस्मत ठोक ली !

उसी रात को उसका हँसता-खेलता सात साल का बालक अपनी बाल-लीला समाप्त करके इस संसार से सिधार गया। बूढ़े माँ-बाप के जीवन का यही एक आधार था। इसी का मुँह देख कर जीते थे। इस दीपक के बुझते ही जीवन की अँधेरी रात भाँय-भाँय करने लगी। बुढ़ापे की विशाल ममता टूटे हुए हृदय से निकल कर अंधकार में आर्त-स्वर से रोने लगी।

2

कई साल गुजर गये। डॉक्टर चड्ढा ने खूब यश और धन कमाया; लेकिन इसके साथ ही अपने स्वास्थ्य की रक्षा भी की, जो एक असाधारण बात थी। यह उनके नियमित जीवन का आशीर्वाद था कि पचास वर्ष की अवस्था में उनकी चुस्ती और फुर्ती युवकों को भी लज्जित करती थी। उनके हर एक काम का समय नियत था, इस नियम से वह जौ-भर भी न टलते थे। बहुधा लोग स्वास्थ्य के नियमों का पालन उस समय करते हैं, जब रोगी हो जाते हैं। डाक्टर चड्ढा उपचार और संयम का रहस्य खूब समझते थे। उनकी संतान-संख्या भी इसी नियम के अधीन थी। उनके केवल दो बच्चे हुए, एक लड़का और एक लड़की। तीसरी संतान न हुई, इसीलिए श्रीमती चड्ढा भी अभी जवान मालूम होती थीं। लड़की का तो विवाह हो चुका था। लड़का कालेज में पढ़ता था। वही माता-पिता के जीवन का आधार था। शील और विनय का पुतला, बड़ा ही रसिक, बड़ा ही उदार, विद्यालय का गौरव, युवक-समाज की शोभा। मुखमंडल से तेज की छटा-सी निकलती थी। आज उसकी बीसवीं सालगिरह थी।

संध्या का समय था। हरी-हरी घास पर कुर्सियाँ बिछी हुई थीं। शहर के रईस और हुक्काम एक तरफ, कालेज के छात्र दूसरी तरफ बैठे भोजन कर रहे थे। बिजली के प्रकाश से सारा मैदान जगमगा रहा था। आमोद-प्रमोद का सामान भी जमा था। छोटा-सा प्रहसन खेलने की तैयारी थी। प्रहसन स्वयं कैलाशनाथ ने लिखा था। वही मुख्य एक्टर भी था। इस समय वह एक रेशमी कमीज पहने, नंगे सिर, नंगे पाँव, इधर से उधर मित्रों की आव- भगत में लगा हुआ था। कोई पुकारता—कैलाश, जरा इधर आना; कोई उधर से बुलाता—कैलाश, क्या उधर ही रहोगे ? सभी उसे छेड़ते थे, चुहलें करते थे, बेचारे को जरा दम मारने का अवकाश न मिलता था। सहसा एक रमणी ने उसके पास आ कर कहा—क्यों कैलाश, तुम्हारे साँप कहाँ हैं ? जरा मुझे दिखा दो।

कैलाश ने उससे हाथ मिला कर कहा—मृणालिनी, इस वक्त क्षमा करो, कल दिखा दूँगा।

मृणालिनी ने आग्रह किया—जी नहीं, तुम्हें दिखाना पड़ेगा, मैं आज नहीं मानने की। तुम रोज 'कल-कल' करते हो।

मृणालिनी और कैलाश दोनों सहपाठी थे और एक दूसरे के प्रेम में पगे हुए। कैलाश को साँपों के पालने, खेलाने और नचाने का शौक था। तरह-तरह के साँप पाल रखे थे।

उनके स्वभाव और चरित्र की परीक्षा करता रहता था। थोड़े दिन हुए, उसने विद्यालय में 'साँपों' पर एक मार्के का व्याख्यान दिया था। साँपों को नचा कर दिखाया भी था ! प्राणिशास्त्र के बड़े-बड़े पंडित भी यह व्याख्यान सुन कर दंग रह गये थे ! यह विद्या उसने एक बड़े सँपेरे से सीखी थी। साँपों की जड़ी-बूटियाँ जमा करने का उसे मरज था। इतना पता भर मिल जाय कि किसी व्यक्ति के पास कोई अच्छी जड़ी है, फिर उसे चैन न आता था। उसे ले कर ही छोड़ता था। यही व्यसन था। इस पर हजारों रुपये फूँक चुका था। मृणालिनी कई बार आ चुकी थी; पर कभी साँपों को देखने के लिए इतनी उत्सुक न हुई थी। कह नहीं सकते, आज उसकी उत्सुकता सचमुच जाग गयी थी, या वह कैलाश पर अपने अधिकार का प्रदर्शन करना चाहती थी; पर उसका आग्रह बेमौका था; उस कोठरी में कितनी भीड़ लग जायगी, भीड़ को देख कर साँप कितने चौंकेंगे और रात के समय उन्हें छेड़ा जाना कितना बुरा लगेगा, इन बातों का उसे जरा भी ध्यान न आया।

कैलाश ने कहा—नहीं, कल जरूर दिखा दूँगा। इस वक्त अच्छी तरह दिखा भी तो न सकूँगा, कमरे में तिल रखने को भी जगह न मिलेगी।

एक महाशय ने छेड़ कर कहा—दिखा क्यों नहीं देते, जरा-सी बात के लिए इतना टाल-मटोल कर रहे हो ? मिस गोविंद, हर्गिज न मानना। देखें कैसे नहीं दिखाते !

दूसरे महाशय ने और रद्दा चढ़ाया—मिस गोविन्द इतनी सीधी और भोली हैं, तभी आप इतना मिजाज करते हैं; दूसरी सुंदरी होती, तो इसी बात पर बिगड़ खड़ी होती।

तीसरे साहब ने मजाक उड़ाया—अजी बोलना छोड़ देती। भला, कोई बात है ! इस पर आपका दावा है कि मृणालिनी के लिए जान हाजिर है।

मृणालिनी ने देखा कि ये शोहदे उसे रंग पर चढ़ा रहे हैं, तो बोली—आप लोग मेरी वकालत न करें, मैं खुद अपनी वकालत कर लूँगी। मैं इस वक्त साँपों का तमाशा नहीं देखना चाहती। चलो, छुट्टी हुई।

इस पर मित्रों ने ठट्ठा लगाया। एक साहब बोले—देखना तो आप सब कुछ चाहें, पर कोई दिखाये भी तो ?

कैलाश को मृणालिनी की झेंपी हुई सूरत देखकर मालूम हुआ कि इस वक्त उसका इनकार वास्तव में उसे बुरा लगा है। ज्योंही प्रीति-भोज समाप्त हुआ और गाना शुरू हुआ, उसने मृणालिनी और अन्य मित्रों को साँपों के दरबे के सामने ले जाकर महुअर बजाना शुरू किया। फिर एक-एक खाना खोलकर एक-एक साँप को निकालने लगा। वाह ! क्या कमाल था ! ऐसा जान पड़ता था कि वे कीड़े उसकी एक-एक बात, उसके मन का एक-एक भाव समझते हैं। किसी को उठा लिया, किसी को गरदन में डाल लिया, किसी को हाथ में लपेट लिया। मृणालिनी बार-बार मना करती कि इन्हें गर्दन में न डालो, दूर ही से दिखा दो। बस, जरा नचा दो। कैलाश की गरदन में साँपों को लिपटते देख कर उसकी जान निकली जाती थी। पछता रही थी कि मैंने व्यर्थ ही इनसे साँप दिखाने को कहा; मगर कैलाश एक न सुनता था। प्रेमिका के सम्मुख अपने सर्प-कला-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कब चूकता ! एक मित्र ने टीका की—दाँत तोड़ डाले होंगे।

कैलाश हँसकर बोला—दाँत तोड़ डालना मदारियों का काम है। किसी के दाँत नहीं

तोड़े गये। कहिए तो दिखा दूँ ? कह कर उसने एक काले साँप को पकड़ लिया और बोला –'मेरे पास इससे बड़ा और जहरीला साँप दूसरा नहीं है, अगर किसी को काट ले, तो आदमी आनन-फानन में मर जाय। लहर भी न आये। इसके काटे पर मन्त्र नहीं। इसके दाँत दिखा दूँ ?'

मृणालिनी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा–नहीं-नहीं, कैलाश, ईश्वर के लिए इसे छोड़ दो। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

इस पर एक दूसरे मित्र बोले–मुझे तो विश्वास नहीं आता, लेकिन तुम कहते हो, तो मान लूँगा।

कैलाश ने साँप की गरदन पकड़कर कहा–नहीं साहब, आप आँखों से देख कर मानिए। दाँत तोड़कर वश में किया तो क्या किया। साँप बड़ा समझदार होता है ! अगर उसे विश्वास हो जाय कि इस आदमी से मुझे कोई हानि न पहुँचेगी, तो वह उसे हर्गिज न काटेगा।

मृणालिनी ने जब देखा कि कैलाश पर इस वक्त भूत सवार है, तो उसने यह तमाशा न करने के विचार से कहा–अच्छा भाई, अब यहाँ से चलो। देखो गाना शुरू हो गया है। आज मैं भी कोई चीज सुनाऊँगी। यह कहते हुए उसने कैलाश का कंधा पकड़ कर चलने का इशारा किया और कमरे से निकल गयी; मगर कैलाश विरोधियों का शंका-समाधान करके ही दम लेना चाहता था। उसने साँप की गरदन पकड़ कर जोर से दबायी, इतनी जोर से दबायी कि उसका मुँह लाल हो गया, देह की सारी नसें तन गयीं। साँप ने अब तक उसके हाथों ऐसा व्यवहार न देखा था। उसकी समझ में न आता था कि यह मुझसे क्या चाहते हैं। उसे शायद भ्रम हुआ कि मुझे मार डालना चाहते हैं, अतएव वह आत्मरक्षा के लिए तैयार हो गया।

कैलाश ने उसकी गर्दन खूब दबा कर मुँह खोल दिया और उसके जहरीले दाँत दिखाते हुए बोला–जिन सज्जनों को शक हो, आ कर देख लें। आया विश्वास या अब भी कुछ शक है ? मित्रों ने आ कर उसके दाँत देखे और चकित हो गये। प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने संदेह का स्थान कहाँ। मित्रों का शंका-निवारण करके कैलाश ने साँप की गर्दन ढीली कर दी और उसे जमीन पर रखना चाहा, पर वह काला गेहुँवन क्रोध से पागल हो रहा था। गर्दन नरम पड़ते ही उसने सिर उठा कर कैलाश की उँगली में जोर से काटा और वहाँ से भागा। कैलाश की उँगली से टप-टप खून टपकने लगा। उसने जोर से उँगली दबा ली और अपने कमरे की तरफ दौड़ा। वहाँ मेज की दराज़ में एक जड़ी रखी हुई थी, जिसे पीस कर लगा देने से घातक विष भी रफू हो जाता था। मित्रों में हलचल पड़ गयी। बाहर महफिल में भी खबर हुई। डाक्टर साहब घबरा कर दौड़े। फौरन उँगली की जड़ कस कर बाँधी गयी और जड़ी पीसने के लिए दी गयी। डाक्टर साहब जड़ी के कायल न थे। वह उँगली का डसा भाग नश्तर से काट देना चाहते थे, मगर कैलाश को जड़ी पर पूर्ण विश्वास था। मृणालिनी प्यानो पर बैठी हुई थी। यह खबर सुनते ही दौड़ी, और कैलाश की उँगली से टपकते हुए खून को रूमाल से पोंछने लगी। जड़ी पीसी जाने लगी; पर उसी एक मिनट में कैलाश की आँखें झपकने लगीं, ओठों पर पीलापन दौड़ने लगा। यहाँ तक कि वह खड़ा न

रह सका। फर्श पर बैठ गया। सारे मेहमान कमरे में जमा हो गये। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। इतने में जड़ी पीस कर आ गयी। मृणालिनी ने उँगली पर लेप किया। एक मिनट और बीता। कैलाश की आँखें बंद हो गयीं। वह लेट गया और हाथ से पंखा झलने का इशारा किया। माँ ने दौड़ कर उसका सिर गोद में रख लिया और बिजली का टेबुल-फैन लगा दिया।

डाक्टर साहब ने झुक कर पूछा—कैलाश, कैसी तबीयत है ? कैलाश ने धीरे से हाथ उठा दिया; पर कुछ बोल न सका। मृणालिनी ने करुण स्वर में कहा—क्या जड़ी कुछ असर न करेगी ? डाक्टर साहब ने सिर पकड़ कर कहा—क्या बतलाऊँ, मैं इसकी बातों में आ गया। अब तो नश्तर से भी कुछ फायदा न होगा।

आध घंटे तक यही हाल रहा। कैलाश की दशा प्रतिक्षण बिगड़ती जाती थी। यहाँ तक कि उसकी आँखें पथरा गयीं, हाथ-पाँव ठंडे हो गये, मुख की कांति मलिन पड़ गयी, नाड़ी का कहीं पता नहीं। मौत के सारे लक्षण दिखायी देने लगे। घर में कुहराम मच गया। मृणालिनी एक ओर सिर पीटने लगी; माँ अलग पछाड़ें खाने लगी। डाक्टर चड्ढा को मित्रों ने पकड़ लिया, नहीं तो वह नश्तर अपनी गर्दन पर मार लेते।

एक महाशय बोले—कोई मंत्र झाड़ने वाला मिले, तो सम्भव है, अब भी जान बच जाय।

एक मुसलमान सज्जन ने इसका समर्थन किया—अरे साहब कब्र में पड़ी हुई लाशें जिंदा हो गयी हैं। ऐसे-ऐसे बाकमाल पड़े हुए हैं।

डाक्टर चड्ढा बोले—मेरी अक्ल पर पत्थर पड़ गया था कि इसकी बातों में आ गया। नश्तर लगा देता, तो यह नौबत ही क्यों आती। बार-बार समझाता रहा कि बेटा, साँप न पालो, मगर कौन सुनता था ! बुलाइए, किसी झाड़-फूँक करनेवाले ही को बुलाइए। मेरा सब कुछ ले ले, मैं अपनी सारी जायदाद उसके पैरों पर रख दूँगा। लँगोटी बाँध कर घर से निकल जाऊँगा; मगर मेरा कैलाश, मेरा प्यारा कैलाश उठ बैठे। ईश्वर के लिए किसी को बुलवाइए।

एक महाशय का किसी झाड़नेवाले से परिचय था। वह दौड़कर उसे बुला लाये; मगर कैलाश की सूरत देखकर उसे मंत्र चलाने की हिम्मत न पड़ी। बोला—अब क्या हो सकता है, सरकार ? जो कुछ होना था, हो चुका !

अरे मूर्ख, यह क्यों नहीं कहता कि जो कुछ न होना था, हो चुका। जो कुछ होना था, वह कहाँ हुआ ? माँ-बाप ने बेटे का सेहरा कहाँ देखा ? मृणालिनी का कामना-तरु क्या पल्लव और पुष्प से रंजित हो उठा ? मन के वह स्वर्ण-स्वप्न जिनसे जीवन आनंद का स्रोत बना हुआ था, क्या पूरे हो गये ? जीवन के नृत्यमय तारिका-मंडित सागर में आमोद की बहार लूटते हुए क्या उनकी नौका जलमग्न नहीं हो गयी ? जो न होना था, वह हो गया।

वही हरा-भरा मैदान था, वही सुनहरी चाँदनी एक निःशब्द संगीत की भाँति प्रकृति पर छायी हुई थी; वही मित्र-समाज था। वही मनोरंजन के सामान थे। मगर जहाँ हास्य की ध्वनि थी, वहाँ करुण क्रंदन और अश्रु-प्रवाह था।

3

शहर से कई मील दूर एक छोटे-से घर में एक बूढ़ा और बूढ़िया अँगीठी के सामने बैठे जाड़े की रात काट रहे थे। बूढ़ा नारियल पीता था और बीच-बीच में खाँसता था। बुढ़िया दोनों घुटनियों में सिर डाले आग की ओर ताक रही थी। एक मिट्टी के तेल की कुप्पी ताक पर जल रही थी। घर में न चारपाई थी, न बिछौना। एक किनारे थोड़ी-सी पुआल पड़ी हुई थी। इसी कोठरी में एक चूल्हा था। बुढ़िया दिन-भर उपले और सूखी लकड़ियाँ बटोरती थी। बूढ़ा रस्सी बट कर बाजार में बेच आता था। यही उनकी जीविका थी। उन्हें न किसी ने रोते देखा, न हँसते। उनका सारा समय जीवित रहने में कट जाता था। मौत द्वार पर खड़ी थी, रोने या हँसने की कहाँ फुरसत ! बुढ़िया ने पूछा—कल के लिए सन तो है नहीं, काम क्या करोगे ?

'जा कर झगडू साह से दस सेर सन उधार लाऊँगा।'

'उसके पहले के पैसे तो दिये ही नहीं, और उधार कैसे देगा ?'

'न देगा न सही। घास तो कहीं नहीं गयी है। दोपहर तक क्या दो आने की भी न काटूँगा ?'

इतने में एक आदमी ने द्वार पर आवाज दी—भगत, भगत, क्या सो गये ? जरा किवाड़ खोलो।

भगत ने उठकर किवाड़ खोल दिये। एक आदमी ने अंदर आ कर कहा—कुछ सुना, डाक्टर चड्ढा बाबू के लड़के को साँप काट लिया।

भगत ने चौंक कर कहा—चड्ढा बाबू के लड़के को ! वही चड्ढा बाबू हैं न, जो छावनी में बँगले में रहते हैं ?

'हाँ-हाँ वही। शहर में हल्ला मचा हुआ है। जाते हो तो जाओ, आदमी बन जाओगे।'

बूढ़े ने कठोर भाव से सिर हिला कर कहा—मैं नहीं जाता ! मेरी बला जाय ! वही चड्ढा है। खूब जानता हूँ। भैया को ले कर उन्हीं के पास गया था। खेलने जा रहे थे। पैरों पर गिर पड़ा कि एक नजर देख लीजिए; मगर सीधे मुँह से बात तक न की। भगवान् बैठे सुन रहे थे। अब जान पड़ेगा कि बेटे का गम कैसा होता है। कई लड़के हैं ?

'नहीं जी, यही तो एक लड़का था। सुना है, सबने जवाब दे दिया है।'

'भगवान् बड़ा कारसाज है। उस बखत मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े थे, पर उन्हें तनिक भी दया न आयी थी। मैं तो उनके द्वार पर होता, तो भी बात न पूछता।'

'तो न जाओगे ? हमने जो सुना था, सो कह दिया।'

'अच्छा किया—अच्छा किया। कलेजा ठंडा हो गया, आँखें ठंडी हो गयीं। लड़का भी ठंडा हो गया होगा ! तुम जाओ। आज चैन की नींद सोऊँगा। (बुढ़िया से) जरा तम्बाखू ले ले ! एक चिलम और पीऊँगा। अब मालूम होगा लाला को ! सारी साहबी निकल जायगी, हमारा क्या बिगड़ा। लड़के के मर जाने से कुछ राज तो नहीं चला गया? जहाँ छः बच्चे गये थे, वहाँ एक और चला गया, तुम्हारा तो राज सूना हो जायगा। उसी के वास्ते सबका गला दबा-दबा कर जोड़ा था न ! अब क्या करोगे ? एक बार देखने जाऊँगा; पर कुछ दिन बाद मिजाज का हाल पूछूँगा।'

आदमी चला गया। भगत ने किवाड़ बंद कर लिये, तब चिलम पर तम्बाखू रख कर पीने लगा।

बुढ़िया ने कहा—इतनी रात गये जाड़े-पाले में कौन जायगा ?

'अरे, दोपहर ही होता तो मैं न जाता। सवारी दरवाजे पर लेने आती, तो भी न जाता। भूल नहीं गया हूँ। पन्ना की सूरत आज भी आँखों में फिर रही है। इस निर्दयी ने उसे एक नजर देखा तक नहीं। क्या मैं न जानता था कि वह न बचेगा ? खूब जानता था। चड्ढा भगवान् नहीं थे, कि उनके एक निगाह देख लेने से अमृत बरस जाता। नहीं, खाली मन की दौड़ थी। जरा तसल्ली हो जाती। बस, इसीलिए उनके पास गया था। अब किसी दिन जाऊँगा और कहूँगा—क्यों साहब, कहिए, क्या रंग है ? दुनिया बुरा कहेगी, कहे; कोई परवाह नहीं। छोटे आदमियों में तो सब ऐब होते हैं। बड़ों में कोई ऐब नहीं होता, देवता होते हैं।'

भगत के लिए यह जीवन में पहला अवसर था कि ऐसा समाचार पा कर वह बैठा रह गया हो। अस्सी वर्ष के जीवन में ऐसा कभी न हुआ था कि साँप की खबर पा कर वह दौड़ न गया हो। माघ-पूस की अँधेरी रात, चैत-बैसाख की धूप और लू, सावन-भादों की चढ़ी हुई नदी और नाले, किसी की उसने कभी परवाह न की। वह तुरंत घर से निकल पड़ता था—निःस्वार्थ, निष्काम ! लेन-देन का विचार कभी दिल में आया नहीं। यह ऐसा काम ही न था। जान का मूल्य कौन दे सकता है ? यह एक पुण्य-कार्य था। सैकड़ों निराशों को उसके मंत्रों ने जीवन-दान दे दिया था; पर आज वह घर से कदम नहीं निकाल सका। यह खबर सुन कर सोने जा रहा है।

बुढ़िया ने कहा—तमाखू अँगीठी के पास रखी हुई है। उसके भी आज ढाई पैसे हो गये। देती ही न थी।

बुढ़िया यह कह कर लेटी। बूढ़े ने कुप्पी बुझायी, कुछ देर खड़ा रहा, फिर बैठ गया। अंत को लेट गया; पर यह खबर उसके हृदय पर बोझे की भाँति रखी हुई थी। उसे मालूम हो रहा था, उसकी कोई चीज खो गयी है, जैसे सारे कपड़े गीले हो गये हैं या पैरों में कीचड़ लगा हुआ है, जैसे कोई उसके मन में बैठा हुआ उसे घर से निकालने के लिए कुरेद रहा है। बुढ़िया जरा देर में खर्राटे लेने लगी। बूढ़े बातें करते-करते सोते हैं और जरा-सा खटका होते ही जागते हैं। तब भगत उठा, अपनी लकड़ी उठा ली, और धीरे से किवाड़ खोले।

बुढ़िया ने पूछा—कहाँ जाते हो ?

'कहीं नहीं, देखता था कि कितनी रात है।'

'अभी बहुत रात है, सो जाओ।'

'नींद नहीं आती।'

'नींद काहे को आवेगी ? मन तो चड्ढा के घर पर लगा हुआ है।'

'चड्ढा ने मेरे साथ कौन-सी नेकी कर दी है, जो वहाँ जाऊँ ? वह आ कर पैरों पड़े, तो भी न जाऊँ।'

'उठे तो तुम इसी इरादे से ही ?'

'नहीं री, ऐसा पागल नहीं हूँ कि जो मुझे काँटे बोये, उसके लिए फूल बोता फिरूँ।'

बुढ़िया फिर सो गयी। भगत ने किवाड़ लगा दिये और फिर आ कर बैठा। पर उसके मन की कुछ ऐसी दशा थी, जो बाजे की आवाज कान में पड़ते ही उपदेश सुननेवालों की होती है। आँखे चाहे उपदेशक की ओर हों, पर कान बाजे ही की ओर होते हैं। दिल में भी बाजे की ध्वनि गूँजती रहती है। शर्म के मारे जगह से नहीं उठता। निर्दयी प्रतिघात का भाव भगत के लिए उपदेशक था, पर हृदय उस अभागे युवक की ओर था, जो इस समय मर रहा था, जिसके लिए एक-एक पल का विलम्ब घातक था।

उसने फिर किवाड़ खोले, इतने धीरे से कि बुढ़िया को खबर भी न हुई। बाहर निकल आया। उसी वक्त गाँव का चौकीदार गश्त लगा रहा था, बोला—कैसे उठे भगत ? आज तो बड़ी सरदी है ! कहीं जा रहे हो क्या ?

भगत ने कहा—नहीं जी, जाऊँगा कहाँ ! देखता था, अभी कितनी रात है। भला, कै बजे होंगे ?

चौकीदार बोला—एक बजा होगा और क्या, अभी थाने से आ रहा था, तो डाक्टर चड्ढा बाबू के बँगले पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उनके लड़के का हाल तो तुमने सुना होगा, कीड़े ने छू लिया है। चाहे मर भी गया हो तुम चले जाओ, तो साइत बच जाय। सुना है, दस हजार तक देने को तैयार हैं।

भगत- मैं तो न जाऊँ, चाहे वह दस लाख भी दें। मुझे दस हजार या दस लाख ले कर करना क्या है ? कल मर जाऊँगा, फिर कौन भोगनेवाला बैठा हुआ है।

चौकीदार चला गया। भगत ने आगे पैर बढ़ाया। जैसे नशे में आदमी की देह अपने काबू में नहीं रहती, पैर कहीं रखता है, पड़ता कहीं है, कहता कुछ है, जबान से निकलता कुछ है, वही हाल इस समय भगत का था। मन में प्रतिकार था; पर कर्म मन के अधीन न था। जिसने कभी तलवार नहीं चलायी, वह इरादा करने पर भी तलवार नहीं चला सकता। उसके हाथ काँपते हैं, उठते ही नहीं।

भगत लाठी खट-खट करता लपका चला जाता था। चेतना रोकती थी पर उपचेतना ठेलती थी। सेवक स्वामी पर हावी था।

आधी राह निकल जाने के बाद सहसा भगत रुक गया। हिंसा ने क्रिया पर विजय पायी—मैं यों ही इतनी दूर चला आया। इस जाड़े-पाले में मरने की मुझे क्या पड़ी थी ? आराम से सोया क्यों नहीं ? नींद न आती, न सही; दो-चार भजन ही गाता। व्यर्थ इतनी दूर दौड़ा आया। चड्ढा का लड़का रहे या मरे, मेरी बला से। मेरे साथ उन्होंने ऐसा कौन-सा सलूक किया था कि मैं उनके लिए मरूँ ? दुनिया में हजारों मरते हैं, हजारों जीते हैं। मुझे किसी के मरने-जीने से मतलब !

मगर उपचेतना ने अब एक दूसरा रूप धारण किया, जो हिंसा से बहुत कुछ मिलता-जुलता था—वह झाड़-फूँक करने नहीं जा रहा है; वह देखेगा, कि लोग क्या कर रहे हैं। डाक्टर साहब का रोना-पीटना देखेगा, किस तरह सिर पीटते हैं, किस तरह पछाड़ें खाते हैं ! यह देखेगा कि बड़े लोग भी छोटों ही की भाँति रोते हैं, या सबर कर जाते हैं ! वे लोग तो विद्वान् होते हैं, सबर कर जाते होंगे ! हिंसा-भाव को यों धीरज देता हुआ वह फिर आगे बढ़ा।

इतने में दो आदमी आते दिखायी दिये। दोनों बातें करते चले आ रहे थे—चड्ढा बाबू का घर उजड़ गया, वही तो एक लड़का था। भगत के कान में यह आवाज पड़ी। उसकी चाल और भी तेज हो गयी। थकान के मारे पाँव न उठते थे। शिरोभाग इतना बढ़ा जाता था, मानों अब मुँह के बल गिर पड़ेगा। इस तरह वह कोई दस मिनट चला होगा कि डाक्टर साहब का बँगला नजर आया। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं; मगर सन्नाटा छाया हुआ था। रोने-पीटने की आवाज भी न आती थी। भगत का कलेजा धक्-धक् करने लगा। कहीं मुझे बहुत देर तो नहीं हो गयी ? वह दौड़ने लगा। अपनी उम्र में वह इतना तेज कभी न दौड़ा था। बस, यही मालूम होता था मानो उसके पीछे मौत दौड़ी आ रही है।

4

दो बज गये थे। मेहमान विदा हो गये। रोने वालों में केवल आकाश के तारे रह गये थे। और सभी रो-रो कर थक गये थे। बड़ी उत्सुकता के साथ लोग रह-रहकर आकाश की ओर देखते थे कि किसी तरह सुबह हो और लाश गंगा की गोद में दी जाय।

सहसा भगत ने द्वार पर पहुँच कर आवाज दी। डाक्टर साहब समझे, कोई मरीज आया होगा। किसी और दिन उन्होंने उस आदमी को दुत्कार दिया होता; मगर आज बाहर निकल आये। देखा एक बूढ़ा आदमी खड़ा है—कमर झुकी हुई, पोपला मुँह, भौंहें तक सफेद हो गयी थीं। लकड़ी के सहारे काँप रहा था। बड़ी नम्रता से बोले—क्या है भई, आज तो हमारे ऊपर ऐसी मुसीबत पड़ गयी है कि कुछ कहते नहीं बनता, फिर कभी आना। इधर एक महीना तक तो शायद मैं किसी भी मरीज को न देख सकूँगा।

भगत ने कहा—सुन चुका हूँ बाबू जी, इसीलिए आया हूँ। भैया कहाँ हैं ? जरा मुझे दिखा दीजिए। भगवान् बड़ा कारसाज है, मुरदे को भी जिला सकता है। कौन जाने, अब भी उसे दया आ जाय।

चड्ढा ने व्यथित स्वर से कहा—चलो, देख लो; मगर तीन-चार घंटे हो गये। जो कुछ होना था, हो चुका। बहुतेरे झाड़ने-फूँकने वाले देख-देख कर चले गये।

डाक्टर साहब को आशा तो क्या होती। हाँ, बूढ़े पर दया आ गयी। अंदर ले गये। भगत ने लाश को एक मिनट तक देखा। तब मुस्करा कर बोला—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, बाबू जी ! वह नारायण चाहेंगे, तो आध घंटे में भैया उठ बैठेंगे। आप नाहक दिल छोटा कर रहे हैं। जरा कहारों से कहिए, पानी तो भरें।

कहारों ने पानी भर-भर कर कैलाश को नहलाना शुरू किया। पाइप बंद हो गया था। कहारों की संख्या अधिक न थी, इसलिए मेहमानों ने अहाते के बाहर के कुएँ से पानी भर-भर कर कहारों को दिया, मृणालिनी कलसा लिये पानी ला रही थी। बूढ़ा भगत खड़ा मुस्करा-मुस्करा कर मंत्र पढ़ रहा था, मानो विजय उसके सामने खड़ी है। जब एकबार मंत्र समाप्त हो जाता, तब वह एक जड़ी कैलाश को सुँघा देता। इस तरह न-जाने कितने घड़े कैलाश के सिर पर डाले गये और न-जाने कितनी बार भगत ने मंत्र फूँका। आखिर जब उषा ने अपनी लाल-लाल आँखें खोलीं तो कैलाश की भी लाल-लाल आँखें खुल गयीं। एक क्षण में उसने अंगड़ाई ली और पानी पीने को माँगा। डाक्टर चड्ढा ने दौड़ कर नारायणी को

गले लगा लिया। नारायणी दौड़कर भगत के पैरों पर गिर पड़ी और मृणालिनी कैलाश के सामने आँखों में आँसू-भरे पूछने लगी—अब कैसी तबीयत है ?

एक क्षण में चारों तरफ खबर फैल गयी। मित्रगण मुबारकबाद देने आने लगे। डाक्टर साहब बड़े श्रद्धा-भाव से हर एक के सामने भगत का यश गाते फिरते थे। सभी लोग भगत के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे, मगर अंदर जा कर देखा, तो भगत का कहीं पता न था। नौकरों ने कहा—अभी तो यहीं बैठे चिलम पी रहे थे। हम लोग तमाखू देने लगे, तो नहीं ली; अपने पास से तमाखू निकाल कर भरी।

यहाँ तो भगत की चारों ओर तलाश होने लगी, और भगत लपका हुआ घर चला जा रहा था कि बुढ़िया के उठने से पहले पहुँच जाऊँ !

जब मेहमान लोग चले गये, तो डाक्टर साहब ने नारायणी से कहा—बुड्ढा न-जाने कहाँ चला गया। एक चिलम तमाखू का भी रवादार न हुआ।

नारायणी—मैंने तो सोचा था, इसे कोई बड़ी रकम दूँगी।

चड्ढा—रात को तो मैंने नहीं पहचाना, पर जरा साफ हो जाने पर पहचान गया। एक बार यह एक मरीज को ले कर आया था। मुझे अब याद आता है कि मैं खेलने जा रहा था और मरीज को देखने से इनकार कर दिया था। आज उस दिन की बात याद करके मुझे जितनी ग्लानि हो रही है, उसे प्रकट नहीं कर सकता। मैं उसे अब खोज निकालूँगा और उसके पैरों पर गिर कर अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। वह कुछ लेगा नहीं, यह जानता हूँ, उसका जन्म यश की वर्षा करने ही के लिए हुआ है। उसकी सज्जनता ने मुझे ऐसा आदर्श दिखा दिया है, जो अब से जीवन-पर्यन्त मेरे सामने रहेगा।

['मन्तर' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना', फरवरी, 1928 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'मन्त्र' शीर्षक से हिन्दी मासिक पत्रिका 'विशाल भारत', मार्च, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित।]

मोटेराम जी शास्त्री का नैराश्य

जिस तरह लोग नाई को ठाकुर, चमार को चौधरी और मेहतर को जमादार कहते हैं, उसी तरह घसीटे परचून वाले को लोग सेठ कहा करते थे। घसीटे खुद तो करिया अक्षर भैंस बराबर था, पर अन्य निरक्षर पिताओं की भाँति उसे भी अपने-लड़के को विद्या से अलंकृत करने की धुन लगी हुई थी। कई महीनों के कठिन परिश्रम के बाद उसने सौ तक गिनती सिखा दी थी, पर वर्णमाला सिखाने के लिए तो किसी गुरुजी का होना ज़रूरी था। कृपणता के कारण वह कई महीनों से इस समस्या को टालता आता था, पर आज उसने पाटी-पूजा करने का निश्चय कर लिया। साइत पहले ही पूछ रक्खी थी। सेठानी से बोला, "पुजाई तो एक रुपया से कम न लगेगी।"

सेठानी, "एक रुपया क्यों लगेगी, कोई लूट पड़ी है ? तीन अच्छर बता देने का एक रुपया। किस पंडित के पास जावगे ?"

सेठ, "मेरे मन में तो मोटेराम जँचे हुए हैं। इस तरह तो और भी कई पण्डित हैं, पर मोटेराम की बात और है।"

सेठानी, "तो उनके लिए रुपए का क्या काम ? भर-पेट लड्डू खिला देना।"

सेठ, "तो क्या लड्डू चार रुपये से कम खायेंगे ? इस तरह तो एक ही रुपया में *पिण्ड छूट जायगा।"*

राय पक्की हो गयी। सेठानी ने बालक को नहलाया, कपड़े पहनाये, हाथों में सोने के चूड़े, कानों में बालियाँ, पाँवों में चाँदी के कड़े, माथे पर काजल का टीका लगा दिया। उधर सेठजी ने कुरता डाटा, पगड़ी बाँधी और सूखे हुए जूतों को पानी से नर्म करके उनमें पाँव ठूँस दिया। बालक ने उन्हें जूते पहनते देखा तो मचल पड़ा कि मुझे भी जूते ला दो। एक रुपए का प्रश्न तो सामने था ही, उस पर यह नयी ज़िद। सेठ जी को क्रोध आ गया। बालक को तमाचे लगाये और घसीटता हुआ गुरु-धाम की ओर ले चला।

2

देवताओं की उपासना कभी निष्फल नहीं जाती, फिर पं. मोटेराम जी की मनोकामना क्यों न पूरी होती। उनकी पहुँच तो देवताओं तक ही नहीं, उनकी देवियों तक थी। कभी साइत विचारने, कभी-कभी वर्ष-फल बनाने के लिए, कभी जायचों के मिलाने के लिए, कभी दुर्गा-पाठ करने के लिए घरों में उनका बुलावा होता था और यह तो हम नहीं कह सकते कि पं. जी रसिक जीव थे या नहीं, उसकी स्थूलता रसिकता के अनुकूल न थी, पर सोना देवी ऐसे अवसरों पर बहुत प्रसन्न न होती थीं और पं. जी को चेतावनी दे दिया करती थीं कि ज़रा हाथ-पाँव सँभालते रहना। पं. जी इतने मधुर भाषी, इतने प्रसन्नमुख थे, और रमणियों को प्रसन्न करने के लिए इतने मन्त्र जानते थे कि उनके सामने और किसी पण्डित की दाल न गलतीं थी। इन्हीं कारणों से पण्डित जी एक पाठशाला में 30 रु० मासिक के अध्यापक हो गए थे।

लेकिन अध्यापक हो जाने पर मोटेराम जी को एक नया अनुभव हुआ। अब छोटे-मोटे नेवतों को स्वीकार करते उन्हें संकोच होता था। ज्योंही वह शाला पहुँचते, उन्हें सारे शहर की रिपोर्ट मिलने लगतीं—कहाँ विद्यारम्भ है, कहाँ श्राद्ध है, कहाँ विवाह है। पण्डित जी अपने सुपुत्रों को प्रतिनिधि बनाकर मन को समझा लेते थे। यह सम्मान और यह पद उन्हें बड़े महँगे दामों में मिला था। इसलिए वह कभी-कभी स्त्री से झुँझलाकर कहते, "मैं यह नौकरी छोड़ दूँगा। यह नौकरी है या कठोर-दण्ड ? इस तरह रोटी-दाल खाना पड़ा तो दो-चार साल में प्राण-पखेरू ही उड़ जायेंगे। अभी से कुछ झटक चला हूँ।" लेकिन सोना देवी उन्हें ऊँच-नीच सुझाकर शान्त करती रहती थीं। बेचारे मोटेराम अब स्वादिष्ट पदार्थों की चर्चा सुनकर ही मन को सन्तुष्ट कर लेते थे। आँसू केवल इसलिए पुछ जाते थे कि यहाँ पण्डित जी को कोई काम न करना पड़ता था। ऊँची कक्षा के विद्यार्थी नीची कक्षा वालों को पढ़ा देते थे। पण्डित जी का काम केवल सर्वोच्च श्रेणी के एक विद्यार्थी को पढ़ाना था और वह विद्यार्थी पण्डित जी को बहुत कम कष्ट देता था।

घसीटे जब पुत्र को कन्धे पर लिए शाला पहुँचे तो पण्डित जी मसनद लगाये, गद्दी पर लेटे हुए शिष्यों से अपनी गुदगुदी देह में मुक्कियाँ लगवा रहे थे। एक युवक उनके

तलवे सहला रहा था। दो खड़े पंखा झल रहे थे और एक लड़का उनके सिर में तेल डाल रहा था। पण्डित जी लेटे-लेटे काव्य-साहित्य पर लेक्चर दे रहे थे, "जिस भाँति स्वाद में षट्-रस हैं, उसी भाँति काव्य में नवरस हैं। स्वाद के रसों में जैसे मिष्ठ-रस सर्वप्रधान है, उसी भाँति काव्य के नौ रसों में शृंगार सर्वश्रेष्ठ है। जिस भाँति मिष्ठ-रस के अन्तर्गत अनेकों पदार्थ हैं, उसी भाँति शृंगार-रस के अन्तर्गत अनेकों नायिकाएँ हैं और जिस भाँति मिष्ठ-पदार्थों में मोतीचूर के लड्डू सर्वोत्तम हैं, उसी भाँति नायिकाओं में मुग्धा सर्वप्रधान है। मैं मुग्धा पर मुग्ध हूँ।" सहसा घसीटे ने भीतर आकर पंडित जी को साष्टांग दण्डवत की।

मोटे., "आशीर्वाद, आशीर्वाद ! कहो कैसे चले सेठ ! यह क्या छोटे सेठ हैं ?"

घसीटे, "हाँ महाराज, आपका गुलाम है। इसकी पाटी पुजाना चाहता हूँ।"

मोटे., "हाँ-हाँ, अवश्य पुजाओ। विद्या से उत्तम कोई वस्तु नहीं।"

घसीटे, "तभी तो आपकी सरन आया हूँ, महाराज ! ऐसी कृपा कीजिए कि चार अच्छर पढ़ जाय।"

मोटे., "गुरुजनों की दया चाहिए। केवल कुछ खर्च करना पड़ेगा।"

घसीटे, "खरच करने को तो मैं तैयार हूँ महाराज !"

मोटे., "हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ। चिन्तामणि जी, यहाँ तक कष्ट कीजिए। यह सेठ घसीटेमल जी हैं। इनके सुपुत्र का विद्यारम्भ होगा। इस शुभ अवसर पर यह गुरुजनों का सत्कार करना चाहते हैं।"

चिन्ता., "अहोभाग्य ! धन्य है, धन्य है ! ऐसे ही पुण्यात्माओं से तो सृष्टि थमी हुई है। नहीं तो यह पृथ्वी कब की रसातल चली गयी होती। तो सेठजी, कितने ब्राह्मणों को जिमाइयेगा ?"

मोटे., "सेठजी से आप व्यर्थ यह प्रश्न करते हैं। मुझसे सम्भाषण कीजिए, द्वादश की संख्या बहुत की मंगलमयी है।"

चिन्ता., "समझ गये सेठ जी ! बारह महात्माओं के जिमाने का प्रबन्ध कीजिए।"

मोटे., "आप सामग्री का अनुमान कीजिए, सेठजी लक्ष्मी-पुत्र हैं। कोई दस सेर अमिर्ती पर्याप्त होंगी।"

चिन्ता., "दस सेर ! इतनी तो मेरे को अकेले..."

मोटे., "मित्रवर, मिथ्या-भाषण वर्जित है। अच्छा कलाकन्द कितना चाहिए ?"

चिन्ता., "मुझे तो बोलने ही नहीं देते !"

मोटे., "नहीं-नहीं ! इस विषय में आप अपने विचार सम्पूर्ण स्वाधीनता से प्रकट कर सकते हैं।"

चिन्ता., "मन भर कलाकन्द रखिए।"

मोटे. (हँसकर), "नहीं-नहीं, हमें अपने यजमान पर इतना गुरुभार न डालना चाहिए। दस सेर कलाकन्द भी रख लीजिए।"

चिन्ता., "तो फिर तुम मेरे से क्यों पूछते हो ? न मालूम तुम्हारा क्या स्वभाव है कि जब कोई आखेट फँसता है, तो तुम उसे..."

मोटे., "व्यर्थ प्रज्वलित न हो मित्रवर ! ऐसे दुष्कर कार्यों का सम्पादन करने के लिए बड़े अनुभव की आवश्यकता है। मोतीचूर के लड्डू कितने हों ?"

चिन्ता., "मैं कुछ नहीं जानता।"

मोटे., "रुष्ट न हो मित्रवर ! शपथ खाकर कहता हूँ, अबकी तुम्हारी प्रस्तावित मात्रा ही स्वीकार करूँगा।"

चिन्ता., "तो सेर भर रख लो।"

मोटे., "महान मूर्ख हो मित्रवर, इस देव-दुर्लभ पदार्थ का यह अपमान तुम जैसे सहृदय पुरुष को शोभा नहीं देता। इसे बीस सेर रख लो।"

इस तरह आपस में एक तख़मीना बनाकर मोटेराम ने सेठ जी को सब ब्यौरा बता दिया। एक-एक रुपया दक्षिणा का प्रस्ताव भी किया। बेचारे घसीटे ने यह तख़मीना सुना तो चक्कर में आ गया। उसे तो एक ही रुपया अखर रहा था। बोला, "मेरी तो इतनी सामर्थ्य नहीं है।"

मोटे., "ऐसा न कहो लक्ष्मी-पुत्र, ऐसा न कहो, भगवान ने तुम्हें सब-कुछ दिया है। तुम्हारा बालक बड़ा भागवान है, कुल का नाम करेगा। तो सब मूर्तियाँ आठ बजते-बजते पहुँच जायेंगी।"

घसीटे, "महाराज, मैं तो बहुत..."

मोटे., "हाँ-हाँ, प्रसन्न होने की तो बात ही है। विप्रों तथा विद्वानों के चरण जहाँ जाते हैं, वह स्थान स्वर्ग-तुल्य हो जाता है।"

घसीटे, "महाराज, मुझसे तो कुछ कहते नहीं बनता। आपने मेरी दुकान तो देखी है, बिक्री-बट्टा भी आजकल मन्दा है..."

मोटे., "इस पुण्य-कार्य से तुम्हारा सब दुख-दारिद्र्य दूर हो जायगा। विप्रसेवा ही कल्पवृक्ष है। शीघ्र ही प्रबन्ध करना, हमें विलम्ब न होगा।"

बेचारा घसीटे फिर कुछ न कहने पाया, क्योंकि मोटेराम जी अपने विचार में उसे काफ़ी तौर पर तैयार करके फिर काव्य-साहित्य पर वक्तृता देने लगे।

3

नियत समय पर जब सब लोग भोजन करने चले तो मारे आनन्द के फूले न समाते थे। बारह की संख्या पूरी करने के लिए पाँच विद्यार्थियों को पाठशाला से ले लिया। सलाह हुई कि वेद-मन्त्र गाते हुए घसीटे के घर चलें। शास्त्री जी ने विद्यार्थियों को इस विषय में इतना अभ्यस्त कर दिया कि जो लोग शाले आ जाते वे संगीत सुनकर ही मुग्ध हो जाते थे। फिर उन्हें इस शाला से भक्ति हो जाती थी। इसी चाल से शास्त्री जी ने अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। इस वक़्त भी विद्यार्थियों का संगीत सुनकर खड़े हो-होकर देखने लगे। एक दर्शक ने कहा, "शास्त्री जी के दम का जलूसा है।"

दूसरा बोला, "क्या बात है, जब से शास्त्री जी आए, पाठशाला के भाग जाग गए।"

नुक्कड़ के समीप पहुँचकर मोटेराम ने चिन्तामणि से कहा, "देखो, कुछ प्रकाश है सामने !"

चिन्ता., "मुझे तो कोई प्रकाश नहीं दीखता।"

मोटे., "है क्यों नहीं, तुम्हें सूझता ही नहीं। गैस का हण्डा जल रहा है। कुछ बोल-चाल सुनाई देती है न ?"

चिन्ता., "क्या जाने, मुझे तो सन्नाटा-सा मालूम होता है।"

मोटे., "तुम्हारा सिर ! मुझे तो आदमियों की बोल-चाल साफ़ सुनाई देती है। लो पहुँच ही गये। जी चाहता है दौड़कर अन्दर चला जाऊँ। जिस तरह विरह-पीड़ित नायक अपनी प्रेमिका के निकट पहुँच अधीर हो जाता है, उसी भाँति मेरा मन भी अधीर हो रहा है। मगर यह बात क्या है ? यहाँ तो सचमुच सन्नाटा है। शायद घर होगा।"

चिन्ता., "द्वार खटखटाऊँ ? मगर यहाँ तो ताला पड़ा हुआ है।"

मोटेराम ने पड़ोस के दूकानदार से पूछा तो उसने कहा, "साँझ तक तो घर ही में थे। इस बखत की नहीं जानते। देखिए, होंगे घर ही में।"

पं. मोटेराम ने इतने ज़ोर से किवाड़ खटखटाये कि सारा घर हिल उठा, किन्तु भीतर से कोई आवाज़ न आयी।

अलगू ने कहा, "ताला तोड़ डालूँ ?"

मोटे., "नहीं-नहीं, ताला न तोड़ो। सम्भव है, सामग्री लेने बाज़ार गया हो।"

दोनों पण्डित द्वार की चौखट पर जा बैठे। अन्य विद्यार्थी इधर-उधर टहलने लगे, मगर इस भाँति राह देखते-देखते पूरा एक घण्टा हो गया तो चिन्तामणि ने झुँझलाकर कहा, "मुझे तो मालूम होता है, दुष्ट ने धोखा दिया।"

मोटे., "हाँ, अब तो मुझे भी सन्देह होता है।"

चिन्ता., "इस समय दुष्ट मिल जाता तो गरदन दबा लेता। धूर्त ! अबे ओ घसीटे बनिये ! निकल बाहर ! कहाँ मुँह छिपाए बैठा है ?"

इस पर पाँचों विद्यार्थियों ने चिल्ला-चिल्लाकर घसीटे को दुष्ट, पापी, चाण्डाल कहना शुरु किया।

अलगू, "ससुर के मुँह में कालिख लगी हुई है।"

चिन्ता., "ईश्वर करे, इसका सर्वनाश हो जाय।"

भवानी, "मरेगा तो इसका जनम छछूँदर का होगा।"

अलगू, "गधा होगा ससुर, रेंकता फिरेगा !"

मोटेराम चुपचाप बैठे थे। मारे क्रोध, लज्जा और आत्मवेदना के उनका सिर नीचे झुका हुआ था। अन्त में वह धीरे से उठे और बोले, "तो अब चलना चाहिए।"

अलगू, "कहिए तो इस घर में आग लगा दूँ ?"

भवानी, "पत्थर फेंका जाय।"

मोटे., "नहीं बच्चा, यह ब्राह्मणों का कर्त्तव्य नहीं। उसकी नीचता का दण्ड उसे भगवान देंगे। हमने क्षमा किया।"

यह कहते-कहते शास्त्री जी की आँखों में आँसू बहने लगे, अपने जीवन में वह कभी इतने लज्जित न हुए थे।

चिन्तामणि ने समझाया, "भैया, आप व्यर्थ दिल छोटा करते हैं। आपको चाहिए कि हम लोगों को समझायें, सो आप ही रोने लगे। ईश्वर ने जो भाग्य में लिखा है, वह तो पूरा होकर ही रहेगा, पर देख लीजिएगा इसकी कसर शीघ्र ही निकल जायगी।"

मोटेराम ने आँसू पोंछते हुए कहा, "क्या कसर निकल जायगी मित्र ! यह घाव कभी

न भरेगा। हम लोग भी कितने अभागे हैं कि भोजन के लिए दूसरों का मुँह ताकते हैं ! इस वक़्त ऐसा जी चाहता है कि चाहे मर जाऊँ, पर पाठशाले की सूरत न देखूँ। जो प्राणी अपने पुरुषार्थ से इच्छानुसार भोजन भी न प्राप्त कर सके, उसका जीवन निरर्थक है। मैंने हुक्काम की जितनी खुशामद की, रईसों का जितना यश गाया, उसकी आधी लगन से कोई और काम करता तो आज आदमी बन गया होता। आज इस
धूर्त घसीटे ने मेरी आँखें खोल दीं।"

चिन्ता., "देखो, आज सोना भाभी क्या कहती हैं !"

मोटे, "मेरे तो अभी से पाँव थरथरा रहे हैं। सच पूछो तो कहीं मुँह दिखाने योग्य नहीं रहा। सोना जीता न छोड़ेगी।"

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। 'समालोचक' (हिन्दी पत्रिका), मार्च-अप्रैल, 1928 में प्रकाशित। 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

आँसुओं की होली

नामों को बिगाड़ने की प्रथा न-जाने कब चली और कहाँ शुरू हुई।

इस संसार-व्यापी रोग का पता लगाये तो ऐतिहासिक संसार में अवश्य ही अपना नाम छोड़ जाय। पंडित जी का नाम तो श्री विलास था; पर मित्र लोग सिलबिल कहा करते थे। नामों का असर चरित्र पर कुछ न कुछ पड़ जाता है। बेचारे सिलबिल सचमुच ही सिलबिल थे। दफ्तर जा रहे हैं; मगर पाजामे का इजारबंद नीचे लटक रहा है। सिर पर फेल्ट-कैप है; पर लम्बी-सी चुटिया पीछे झाँक रही है, अचकन यों बहुत सुन्दर है। न जाने उन्हें त्योहारों से क्या चिढ़ थी। दिवाली गुजर जाती पर वह भलमानस कौड़ी हाथ में न लेता। और होली का दिन तो उनकी भीषण परीक्षा का दिन था। तीन दिन वह घर से बाहर न निकलते। घर पर भी काले कपड़े पहने बैठे रहते थे। यार लोग टोह में रहते थे कि कहीं बचा फँस जायँ मगर घर में घुस कर तो फौजदारी नहीं की जाती। एक-आध बार फँसे भी, मगर घिघिया-पुदिया कर बेदाग निकल गये।

लेकिन अबकी समस्या बहुत कठिन हो गयी थी। शास्त्रों के अनुसार पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद उन्होंने विवाह किया था। ब्रह्मचर्य के परिपक्व होने में जो थोड़ी-बहुत कसर रही, वह तीन वर्ष के गौने की मुद्दत ने पूरी कर दी। यद्यपि स्त्री से कोई शंका न थी, तथापि वह औरतों को सिर चढ़ाने के हामी न थे। इस मामले में उन्हें अपना वही पुराना-धुराना ढंग पसंद था। बीबी को जब कस कर डाँट दिया, तो उसकी मजाल है कि रंग हाथ से छुए। विपत्ति यह थी कि ससुराल के लोग भी होली मनाने आनेवाले थे। पुरानी मसल है 'बहन अंदर तो भाई सिकंदर'। इन सिकंदरों के आक्रमण से बचने का उन्हें कोई उपाय न सूझता था। मित्र लोग घर में न जा सकते थे; लेकिन सिकंदरों को कौन रोक सकता है।

स्त्री ने आँख फाड़ कर कहा—अरे भैया ! क्या सचमुच रंग न घर लाओगे ? यह कैसे

होली है, बाबा ?

सिलबिल ने त्योरियाँ चढ़ा कर कहा—बस, मैंने एक बार कह दिया और बात दोहराना मुझे पसंद नहीं। घर में रंग नहीं आयेगा और न कोई छुएगा ? मुझे कपड़ों पर लाल छींटे देख कर मचली आने लगती है। हमारे घर में ऐसी ही होली होती है।

स्त्री ने सिर झुका कर कहा—तो न लाना रंग-संग, मुझे रंग ले कर क्या करना है। जब तुम्हीं रंग न छुओगे, तो मैं कैसे छू सकती हूँ सिलबिल ने प्रसन्न हो कर कहा—निस्संदेह यही साध्वी स्त्री का धर्म है।

'लेकिन भैया तो आनेवाले हैं। वह क्यों मानेंगे ?'

'उनके लिए भी मैंने एक उपाय सोच लिया है। उसे सफल बनाना तुम्हारा काम है। मैं बीमार बन जाऊँगा। एक चादर ओढ़ कर लेट रहूँगा। तुम कहना इन्हें ज्वर आ गया। बस; चलो छुट्टी हुई।'

स्त्री ने आँख नचा कर कहा—ऐ नौज; कैसी बातें मुँह से निकालते हो ! ज्वर जाय मुद्दई के घर, यहाँ आये तो मुँह झुलस दूँ निगोड़े का।

'तो फिर दूसरा उपाय ही क्या है ?'

'तुम ऊपरवाली छोटी कोठरी में छिप रहना, मैं कह दूँगी, उन्होंने जुलाब लिया है। बाहर निकलेंगे तो हवा लग जायगी।'

पंडित जी खिल उठे—बस, बस, यही सबसे अच्छा।

2

होली का दिन है। बाहर हाहाकार मचा हुआ है। पुराने जमाने में अबीर और गुलाल के सिवा और कोई रंग न खेला जाता था। अब नीले, हरे, काले, सभी रंगों का मेल हो गया है और इस संगठन से बचना आदमी के लिए तो संभव नहीं। हाँ, देवता बचें। सिलबिल के दोनों साले मुहल्ले भर के मर्दों, औरतों, बच्चों और बूढ़ों का निशाना बने हुए थे। बाहर के दिवानखाने के फर्श, दीवारें—यहाँ तक की तसवीरें भी रंग उठी थीं। घर में भी यही हाल था। मुहल्ले की ननदें भला कब मानने लगी थीं। परनाला तक रंगीन हो गया था।

बड़े साले ने पूछा—क्यों री चम्पा, क्या सचमुच उनकी तबीयत अच्छी नहीं ? खाना खाने भी न आये ?

चम्पा ने सिर झुका कर कहा—हाँ भैया, रात ही से पेट में कुछ दर्द होने लगा। डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है।

जरा देर बाद छोटे साले ने कहा—क्यों जीजी जी, क्या भाई साहब नीचे नहीं आयेंगे ? ऐसी भी क्या बीमारी है ! कहो तो ऊपर जा कर देख आऊँ।

चम्पा ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—नहीं-नहीं, ऊपर मत जैयो ! वह रंग-वंग न खेलेंगे। डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है।

दोनों भाई हाथ मल कर रह गये।

सहसा छोटे भाई को एक बात सूझी—जीजा जी के कपड़ों के साथ क्यों न होली खेलें। वे तो नहीं बीमार हैं।

बड़े भाई के मन में यह बात बैठ गयी। बहन बेचारी अब क्या करती ? सिकंदरों ने

कुंजियाँ उसके हाथ से लीं और सिलबिल के सारे कपड़े निकाल-निकाल कर रंग डाले। रूमाल तक न छोड़ा। जब चम्पा ने उन कपड़ों को आँगन में अलगनी पर सूखने को डाल दिया तो ऐसा जान पड़ा, मानो किसी रंगरेज ने ब्याह के जोड़े रँगे हों। सिलबिल ऊपर बैठे-बैठे यह तमाशा देख रहे थे; पर जबान न खोलते थे। छाती पर साँप-सा लोट रहा था। सारे कपड़े खराब हो गये, दफ्तर जाने को भी कुछ न बचा। इन दुष्टों को मेरे कपड़ों से न जाने क्या बैर था।

घर में नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बन रहे थे। मुहल्ले की एक ब्राह्मणी के साथ चम्पा भी जुटी हुई थी। दोनों भाई और कई अन्य सज्जन आँगन में भोजन करने बैठे, तो बड़े साले ने चम्पा से पूछा—कुछ उनके लिए भी खिचड़ी-विचड़ी बनायी है ? पूरियाँ तो बेचारे आज खा न सकेंगे !

चम्पा ने कहा—अभी तो नहीं बनायी, अब बना लूँगी।

'वाह री तेरी अक्ल ! अभी तक तुझे इतनी फिक्र नहीं कि वह बेचारे खायेंगे क्या। तू तो इतनी लापरवाह कभी न थी। जा निकाल ला जल्दी से चावल और मूँग की दाल।'

लीजिए—खिचड़ी पकने लगी। इधर मित्रों ने भोजन करना शुरू किया। सिलबिल ऊपर बैठे अपनी किस्मत को रो रहे थे। उन्हें इस सारी विपत्ति का एक ही कारण मालूम होता था—विवाह ! चम्पा न आती, तो ये साले क्यों आते, कपड़े क्यों खराब होते, होली के दिन मूँग की खिचड़ी क्यों खाने को मिलती ? मगर अब पछताने से क्या होता है। जितनी देर में लोगों ने भोजन किया, उतनी देर में खिचड़ी तैयार हो गयी। बड़े साले ने खुद चम्पा को ऊपर भेजा कि खिचड़ी की थाली ऊपर दे आये।

सिलबिल ने थाली की ओर कुपित नेत्रों से देख कर कहा—इसे मेरे सामने से हटा ले जाव।

'क्या आज उपवास ही करोगे ?'

'तुम्हारी यही इच्छा है, तो यही सही।'

'मैंने क्या किया। सबेरे से जुती हुई हूँ। भैया ने खुद खिचड़ी डलवायी और मुझे यहाँ भेजा।'

'हाँ, वह तो मैं देख रहा हूँ कि मैं घर का स्वामी नहीं। सिकंदरों ने उस पर कब्जा जमा लिया है, मगर मैं यह नहीं मान सकता कि तुम चाहतीं तो और लोगों के पहले ही मेरे पास थाली न पहुँच जाती। मैं इसे पतिव्रत धर्म के विरुद्ध समझता हूँ, और क्या कहूँ !'

'तुम तो देख रहे थे कि दोनों जने मेरे सिर पर सवार थे।'

'अच्छी दिल्लगी है कि और लोग तो समोसे और खस्ते उड़ायें और मुझे मूँग की खिचड़ी दी जाय। वाह रे नसीब !'

'तुम इसे दो-चार कौर खा लो, मुझे ज्यों ही अवसर मिलेगा, दूसरी थाली लाऊँगी।'

'सारे कपड़े रँगवा डाले, दफ्तर कैसे जाऊँगा ? यह दिल्लगी मुझे जरा भी नहीं भाती। मैं इसे बदमाशी कहता हूँ। तुमने संदूक की कुंजी क्यों दे दी ? क्या मैं इतना पूछ सकता हूँ ?'

'जबरदस्ती छीन ली। तुमने सुना नहीं ? करती क्या ?'

'अच्छा, जो हुआ सो हुआ, यह थाली ले जाव। धर्म समझना तो दूसरी थाली लाना,

नहीं तो आज व्रत ही सही।'

एकाएक पैरों की आहट पा कर सिलबिल ने सामने देखा, तो दोनों साले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही बिचारे ने मुँह बना लिया, चादर से शरीर ढँक लिया और कराहने लगे।

बड़े साले ने कहा—कहिए, कैसी तबीयत है ? थोड़ी-सी खिचड़ी खा लीजिए।

सिलबिल ने मुँह बना कर कहा—अभी तो कुछ खाने की इच्छा नहीं है।

'नहीं, उपवास करना तो हानिकर होगा। खिचड़ी खा लीजिए।'

बेचारे सिलबिल ने मन में इन दोनों शैतानों को खूब कोसा और विष की भाँति खिचड़ी कंठ के नीचे उतारी। आज होली के दिन खिचड़ी ही भाग्य में लिखी थी ! जब तक सारी खिचड़ी समाप्त न हो गयी, दोनों वहाँ डटे रहे, मानो जेल के अधिकारी किसी अनशन व्रतधारी कैदी को भोजन करा रहे हों। बेचारे को ठूँस-ठूँस कर खिचड़ी खानी पड़ी। पकवानों के लिए गुंजायश ही न रही।

3

दस बजे रात को चम्पा उत्तम पदार्थों का थाल लिये पतिदेव के पास पहुँची ! महाशय मन ही मन झुँझला रहे थे। भाइयों के सामने मेरी परवाह कौन करता है। न जाने कहाँ से दोनों शैतान फट पड़े। दिन भर उपवास कराया और अभी तक भोजन का कहीं पता नहीं। बारे चम्पा को थाल लाते देख कर कुछ अग्नि शांत हुई। बोले—अब तो बहुत सवेरा है, एक-दो घंटे बाद क्यों न आयीं ? चम्पा ने सामने थाली रख कर कहा—तुम तो न हारी ही मानते हो, न जीती। अब आखिर ये दो मेहमान आये हुए हैं, इनका सेवा-सत्कार न करूँ तो भी तो काम नहीं चलता। तुम्हीं को बुरा लगेगा। कौन रोज आयेंगे।

'ईश्वर न करे कि रोज आयें, यहाँ तो एक ही दिन में बधिया बैठ गयी।'

थाल की सुगंधमय, तरबतर चीजें देख कर सहसा पंडित जी के मुखारविंद पर मुस्कान की लाली दौड़ गयी। एक-एक चीज खाते थे और चम्पा को सराहते थे—सच कहता हूँ, चम्पा; मैंने ऐसी चीजें कभी नहीं खायी थीं। हलवाई साला क्या बनायेगा। जी चाहता है, कुछ इनाम दूँ।

'तुम मुझे बना रहे हो। क्या करूँ जैसा बनाना आता है, बना लायी।'

'नहीं जी, सच कह रहा हूँ। मेरी तो आत्मा तक तृप्त हो गयी। आज मुझे ज्ञात हुआ कि भोजन का सम्बन्ध उदर से इतना नहीं, जितना आत्मा से है। बतलाओ, क्या इनाम दूँ ?'

'जो माँगूँ, वह दोगे ?'

'दूँगा—जनेऊ की कसम खा कर कहता हूँ !'

'न दो तो मेरी बात जाय।'

'कहता हूँ भाई, अब कैसे कहूँ। क्या लिखा-पढ़ी कर दूँ ?'

'अच्छा, तो माँगती हूँ। मुझे अपने साथ होली खेलने दो।'

पंडित जी का रंग उड़ गया। आँखें फाड़ कर बोले—होली खेलने दूँ ? मैं तो होली खेलता नहीं। कभी नहीं खेला। होली खेलना होता, तो घर में छिप कर क्यों बैठता।

'और के साथ मत खेलो; लेकिन मेरे साथ तो खेलना ही पड़ेगा।'

'यह मेरे नियम के विरुद्ध है। जिस चीज को अपने घर में उचित समझूँ उसे किस न्याय से घर के बाहर अनुचित समझूँ, सोचो।'

चम्पा ने सिर नीचा करके कहा—घर में ऐसी कितनी बातें उचित समझते हो, जो घर के बाहर करना अनुचित ही नहीं पाप भी है।

पंडित जी झेंपते हुए बोले—अच्छा भाई, तुम जीती, मैं हारा। अब मैं तुम से यही दान माँगता हूँ....

'पहले मेरा पुरस्कार दे दो, पीछे मुझसे दान माँगना'—यह कहते हुए चम्पा ने लोटे का रंग उठा लिया और पंडित जी को सिर से पाँव तक नहला दिया। जब तक वह उठ कर भागें उसने मुट्ठी भर गुलाल ले कर सारे मुँह में पोत दिया।

पंडित जी गेनी सूरत बना कर बोले—अभी और कसर बाकी हो, तो वह भी पूरी कर लो। मैं जानता था कि तुम मेरी आस्तीन का साँप बनोगी। अब और कुछ रंग बाकी नहीं रहा ?

चम्पा ने पति के मुख की ओर देखा, तो उस पर मनोवेदना का गहरा रंग झलक रहा था। पछता कर बोली—क्या तुम सचमुच बुरा मान गये हो ? मैं तो समझती थी कि तुम केवल मुझे चिढ़ा रहे हो।

श्रीविलास ने काँपते हुए स्वर में कहा—नहीं चम्पा, मुझे बुरा नहीं लगा। हाँ, तुमने मुझे उस कर्तव्य की याद दिला दी, जो मैं अपनी कायरता के कारण भुला बैठा था। वह सामने जो चित्र देख रही हो, मेरे परम मित्र मनहरनाथ का है, जो अब संसार में नहीं है। तुमसे क्या कहूँ, कितना सरस, कितना भावुक, कितना साहसी आदमी था! देश की दशा देख-देख कर उसका खून जलता रहता था। उन्नीस-बीस भी कोई उम्र होती है, पर वह उसी उम्र में अपने जीवन का मार्ग निश्चित कर चुका था। सेवा करने का अवसर पा कर वह इस तरह उसे पकड़ता था, मानो सम्पति हो। जन्म का विरागी था। वासना तो उसे छू ही न गयी थी। हमारे और साथी सैर-सपाटे करते थे; पर उसका मार्ग सबसे अलग था। सत्य के लिए प्राण देने को तैयार, कहीं अन्याय देखा और भवें तन गयीं, कहीं पत्रों में अत्याचार की खबर देखी और चेहरा तमतमा उठा। ऐसा तो मैंने आदमी ही नहीं देखा। ईश्वर ने अकाल ही बुला लिया, नहीं तो वह मनुष्यों में रत्न होता। किसी मुसीबत के मारे का उद्धार करने को अपने प्राण हथेली पर लिये फिरता था। स्त्री-जाति का इतना आदर और सम्मान कोई क्या करेगा ? स्त्री उसके लिए पूजा और भक्ति की वस्तु थी। पाँच वर्ष हुए, यही होली का दिन था। मैं भंग के नशे में चूर, रंग में सिर से पाँव तक नहाया हुआ, उसे गाना सुनने के लिए बुलाने गया, तो देखा कि वह कपड़े पहने कहीं जाने को तैयार है। पूछा—कहाँ जा रहे हो ?

उसने मेरा हाथ पकड़ कर कहा—तुम अच्छे वक्त पर आ गये, नहीं तो मुझे जाना पड़ता। एक अनाथ बुढ़िया मर गयी है, कोई उसे कंधा देनेवाला नहीं मिलता। कोई किसी मित्र से मिलने गया हुआ है, कोई नशे में चूर पड़ा हुआ है, कोई मित्रों की दावत कर रहा है, कोई महफिल सजाये बैठा है। कोई लाश को उठानेवाला नहीं। ब्राह्मण-क्षत्री उस चमारिन की लाश कैसे छुएँगे, उनका तो धर्म भ्रष्ट होता है, कोई तैयार नहीं होता! बड़ी मुश्किल से दो कहार मिले हैं। एक मैं हूँ, चौथे आदमी की कमी थी, सो ईश्वर ने तुम्हें भेज

दिया। चलो, चलें।

हाय ! अगर मैं जानता कि यह प्यारे मनहर का आदेश है, तो आज मेरी आत्मा को इतनी ग्लानि न होती। मेरे घर कई मित्र आये हुए थे। गाना हो रहा था। उस वक्त लाश उठा कर नदी जाना मुझे अप्रिय लगा। बोला—इस वक्त तो भाई, मैं नहीं जा सकूँगा। घर पर मेहमान बैठे हुए हैं। मैं तुम्हें बुलाने आया था।

मनहर ने मेरी ओर तिरस्कार के नेत्रों से देख कर कहा—अच्छी बात है, तुम जाओ; मैं और कोई साथी खोज लूँगा। मगर तुमसे मुझे ऐसी आशा नहीं थी। तुमने भी वही कहा जो तुमसे पहले औरों ने कहा था। कोई नयी बात नहीं थी। अगर हम लोग अपने कर्त्तव्य को भूल न गये होते, तो आज यह दशा ही क्यों होती ? ऐसी होली को धिक्कार है ! त्योहार, तमाशा देखने, अच्छी-अच्छी चीजें खाने और अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने का नाम नहीं है। यह व्रत है, तप है, अपने भाइयों से प्रेम और सहानुभूति करना ही त्योहार का खास मतलब है और कपड़े लाल करने के पहले खून को लाल कर लो। सफेद खून पर यह लाली शोभा नहीं देती।

यह कह कर वह चला गया। मुझे उस वक्त यह फटकारें बहुत बुरी मालूम हुईं। अगर मुझमें वह सेवा-भाव न था, तो उसे मुझे यों धिक्कारने का कोई अधिकार न था। घर चला आया· पर वे बातें बराबर मेरे कानों में गूँजती रहीं। होली का सारा मजा बिगड़ गया।

एक महीने तक हम दोनों से मुलाकात न हुई। कालेज इम्तहान की तैयारी के लिए बंद हो गया था। इसलिए कालेज में भी भेंट न होती थी। मुझे कुछ खबर नहीं, वह कब और कैसे बीमार पड़ा, कब अपने घर गया। सहसा एक दिन मुझे उसका एक पत्र मिला। हाय ! उस पत्र को पढ़कर आज भी छाती फटने लगती है।

श्रीविलास एक क्षण तक गला रुक जाने के कारण बोल न सके। फिर बोले—किसी दिन तुम्हें फिर दिखाऊँगा। लिखा था, मुझसे आखिरी बार मिल जा, अब शायद इस जीवन में भेंट न हो। खत मेरे हाथ में छूट कर गिर पड़ा। उसका घर मेरठ जिले में था। दूसरी गाड़ी जाने में आधा घंटे की कसर थी। तुरंत चल पड़ा। मगर उसके दर्शन न बदे थे। मेरे पहुँचने के पहले ही वह सिधार चुका था। चम्पा उसके बाद मैंने होली नहीं खेली, होली ही नहीं, और सभी त्योहार छोड़ दिये। ईश्वर ने शायद मुझे क्रिया की शक्ति नहीं दी। अब बहुत चाहता हूँ कि कोई मुझसे सेवा का काम ले। खुद आगे नहीं बढ़ सकता; लेकिन पीछे चलने को तैयार हूँ। पर मुझसे कोई काम लेनेवाला भी नहीं; लेकिन आज वह रंग डाल कर तुमने मुझे उस धिक्कार की याद दिला दी। ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं मन में ही नहीं, कर्म में भी मनहरन बनूँ।

यह कहते हुए श्रीविलास ने तश्तरी से गुलाल निकाला और उसे चित्र पर छिड़क कर प्रणाम किया।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी साप्ताहिक 'मतवाला', 6 मई, 1928 में प्रकाशित। यह कहानी 'मतवाला' के वर्ष 5, अंक 29 में प्रकाशित हुई। 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

पिसनहारी का कुआँ

गोमती ने मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए चौधरी विनायकसिंह से कहा—चौधरी, मेरे जीवन की यही लालसा थी।

चौधरी ने गम्भीर हो कर कहा—इसकी कुछ चिंता न करो काकी: तुम्हारी लालसा भगवान् पूरी करेंगे। मैं आज ही से मजूरों को बुला कर काम पर लगाये देता हूँ। दैव ने चाहा, तो तुम अपने कुएँ का पानी पियोगी। तुमने तो गिना होगा, कितने रुपये हैं ?

गोमती ने एक क्षण आँखें बंद करके, बिखरी हुई स्मृति को एकत्र करके कहा—भैया, मैं क्या जानूँ, कितने रुपये हैं ? जो कुछ हैं, वह इसी हाँड़ी में हैं। इतना करना कि इतने ही में काम चल जाय। किसके सामने हाथ फैलाते फिरोगे ?

चौधरी ने बंद हाँड़ी को उठा कर हाथों से तौलते हुए कहा—ऐसा तो करेंगे ही काकी; कौन देनेवाला है। एक चुटकी भीख तो किसी के घर से निकलती नहीं, कुआँ बनवाने को कौन देता है। धन्य हो तुम कि अपनी उम्र भर की कमाई इस धर्म-काज के लिए दे दी।

गोमती ने गर्व से कहा—भैया, तुम तो तब बहुत छोटे थे। तुम्हारे काका मरे तो मेरे हाथ में एक कौड़ी भी न थी। दिन-दिन भर भूखी पड़ी रहती। जो कुछ उनके पास था, वह सब उनकी बीमारी में उठ गया। वह भगवान् के बड़े भक्त थे। इसीलिए भगवान् ने उन्हें जल्दी से बुला लिया। उस दिन से आज तक तुम देख रहे हो कि किस तरह दिन काट रही हूँ। मैंने एक-एक रात में मन-मन भर अनाज पीसा है; बेटा! देखनेवाले अचरज मानते थे। न-जाने इतनी ताकत मुझमें कहाँ से आ जाती थी। बस, यही लालसा रही कि उनके नाम का एक छोटा-सा कुआँ गाँव में बन जाय। नाम तो चलना चाहिए। इसीलिए तो आदमी बेटे-बेटी को रोता है।

इस तरह चौधरी विनायकसिंह को वसीयत करके, उसी रात को बुढ़िया गोमती परलोक सिधारी। मरते समय अंतिम शब्द, जो उसके मुख से निकले, वे यही थे—कुआँ बनवाने में देर न करना। उसके पास धन है यह तो लोगों का अनुमान था; लेकिन दो हजार है, इसका किसी को अनुमान न था। बुढ़िया अपने धन को ऐब की तरह छिपाती थी। चौधरी गाँव का मुखिया और नीयत का साफ आदमी था। इसलिए बुढ़िया ने उससे यह अंतिम आदेश किया था।

2

चौधरी ने गोमती के क्रिया-कर्म में बहुत रुपये खर्च न किये। ज्योंही इन संस्कारों से छुट्टी मिली, वह अपने बेटे हरनाथसिंह को बुला कर ईंट, चूना, पत्थर का तखमीना करने लगे। हरनाथ अनाज का व्यापार करता था। कुछ देर तक तो वह बैठा सुनता रहा, फिर बोला—अभी दो-चार महीने कुआँ न बने तो कोई बड़ा हरज है ?

चौधरी ने 'हुँह !' करके कहा—हरज तो कुछ नहीं, लेकिन देर करने का काम ही क्या है। रुपये उसने दे ही दिये हैं, हमें तो सेंत में यश मिलेगा। गोमती ने मरते-मरते जल्द कुआँ बनवाने को कहा था।

हरनाथ—हाँ, कहा तो था, लेकिन आजकल बाजार अच्छा है। दो-तीन हजार का अनाज भर लिया जाय, तो अगहन-पूस तक सवाया हो जायगा। मैं आपको कुछ सूद दे दूँगा। चौधरी का मन शंका और भय के दुविधे में पड़ गया। दो हजार के कहीं ढाई हजार हो गये, तो क्या कहना। जगमोहन में कुछ बेल-बूटे बनवा दूँगा। लेकिन भय था कि कहीं घाटा हो गया तो ? इस शंका को वह छिपा न सके, बोले—जो कहीं घाटा हो गया तो ?

हरनाथ ने तड़प कर कहा—घाटा क्या हो जायगा, कोई बात है ?

'मान लो, घाटा हो गया तो ?'

हरनाथ ने उत्तेजित होकर कहा—यह कहो कि तुम रुपये नहीं देना चाहते, बड़े धर्मात्मा बने हो !

अन्य वृद्धजनों की भाँति चौधरी भी बेटे से दबते थे। कातर स्वर में बोले—मैं यह कब कहता हूँ कि रुपये न दूँगा। लेकिन पराया धन है, सोच-समझ कर ही तो उसमें हाथ लगाना चाहिए। बनिज-व्यापार का हाल कौन जानता है। कहीं भाव और गिर जाय तो ? अनाज में घुन ही लग जाय, कोई मुद्दई घर में आग ही लगा दे। सब बातें सोच लो अच्छी तरह।

हरनाथ ने व्यंग्य से कहा—इस तरह सोचना है, तो यह क्यों नहीं सोचते कि कोई चोर ही उठा ले जाय; या बनी-बनायी दीवार बैठ जाय ? ये बातें भी तो होती ही हैं।

चौधरी के पास अब और कोई दलील न थी, कमजोर सिपाही ने ताल तो ठोंकी, अखाड़े में उतर पड़ा; पर तलवार की चमक देखते ही हाथ-पॉव फूल गये। बगलें झाँक कर चौधरी ने कहा—तो कितना लोगे ?

हरनाथ कुशल योद्धा की भॉति, शत्रु को पीछे हटता देख कर, बफर कर बोला—सब का सब दीजिए, सौ-पचास रुपये ले कर क्या खिलवाड़ करना है ?

चौधरी राजी हो गये। गोमती को उन्हें रुपये देते किसी ने न देखा था। लोक-निंदा की संभावना भी न थी। हरनाथ ने अनाज भरा। अनाजों के बोरों का ढेर लग गया। आराम की मीठी नींद सोनेवाले चौधरी अब सारी रात बोरों की रखवाली करते थे, मजाल न थी कि कोई चुहिया बोरों में घुस जाय। चौधरी इस तरह झपटते थे कि बिल्ली भी हार मान लेती। इस तरह छः महीने बीत गये। पौष में अनाज बिका, पूरे पाँच सौ रुपये का लाभ हुआ।

हरनाथ ने कहा—इसमें से पचास रुपये आप ले लें।

चौधरी ने झल्ला कर कहा—पचास रुपये क्या खैरात ले लूँ ? किसी महाजन से इतने रुपये लिये होते तो कम से कम दो सौ रुपये सूद के होते; मुझे तुम दो-चार रुपये कम दे दो, और क्यार करोगे ?

हरनाथ ने ज्यादा बतबढ़ाव न किया। एक सौ पचास रुपये चौधरी को दे दिया। चौधरी की आत्मा इतनी प्रसन्न कभी न हुई थी। रात को वह अपनी कोठरी में सोने गया, तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि बुढ़िया गोमती खड़ी मुस्करा रही है। चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा। वह नींद में न था। कोई नशा न खाया था। गोमती सामने खड़ी मुस्करा रही थी। हाँ, उस मुरझाये हुए मुख पर एक विचित्र स्फूर्ति थी।

3

कई साल बीत गये ! चौधरी बराबर इसी फिक्र में रहते कि हरनाथ से रुपये निकाल लूँ; लेकिन हरनाथ हमेशा ही हीले-हवाले करता रहता था। वह साल में थोड़ा-सा ब्याज दे देता, पर मूल के लिए हजार बातें बनाता था। कभी लेने का रोना था, कभी चुकते का। हाँ, कारोबार बढ़ता जाता था। आखिर एक दिन चौधरी ने उससे साफ-साफ कह दिया कि तुम्हारा काम चले या डूबे। मुझे परदा नहीं, इस महीने में तुम्हें अवश्य रुपये चुकाने पड़ेंगे। हरनाथ ने बहुत उड़नघाइयाँ बतायीं, पर चौधरी अपने इरादे पर जमे रहे।

हरनाथ ने झुँझला कर कहा—कहता हूँ कि दो महीने और ठहरिए। माल बिकते ही मैं रुपये दे दूँगा।

चौधरी ने दृढ़ता से कहा—तुम्हारा माल कभी न बिकेगा, और न तुम्हारे दो महीने कभी पूरे होंगे। मैं आज रुपये लूँगा।

हरनाथ उसी वक्त क्रोध में भरा हुआ उठा, और दो हजार रुपये ला कर चौधरी के सामने जोर से पटक दिये।

चौधरी ने कुछ झेंप कर कहा—रुपये तो तुम्हारे पास थे।

'और क्या बातों से रोजगार होता है ?'

'तो मुझे इस समय एक सौ पचास रुपये दे दो, बाकी दो महीने में देना। सब आज ही तो खर्च न हो जायेंगे।'

हरनाथ ने ताव दिखा कर कहा—आप चाहे खर्च कीजिए, चाहे जमा कीजिए, मुझे रुपयों का काम नहीं। दुनिया में क्या महाजन मर गये हैं, जो आपकी धौंस सहूँ ?

चौधरी ने रुपये उठा कर एक ताक पर रख दिये। कुएँ की दागबेल डालने का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया।

हरनाथ ने रुपये लौटा तो दिये थे, पर मन में कुछ और मनसूबा बाँध रखा था। आधी रात को जब घर में सन्नाटा छा गया, तो हरनाथ चौधरी के कोठरी की चूल खिसका कर अंदर घुसा। चौधरी बेखबर सोये थे। हरनाथ ने चाहा कि दोनों थैलियाँ उठा कर बाहर निकल आऊँ, लेकिन ज्यों ही हाथ बढ़ाया उसे अपने सामने गोमती खड़ी दिखायी दी। वह दोनों थैलियों को दोनों हाथों से पकड़े हुए थी। हरनाथ भयभीत हो कर पीछे हट गया।

फिर यह सोच कर कि शायद मुझे धोखा हो रहा हो, उसने फिर हाथ बढ़ाया, पर अबकी वह मूर्ति इतनी भयंकर हो गयी कि हरनाथ एक क्षण भी वहाँ खड़ा न रह सका। भागा, पर बरामदे ही में अचेत होकर गिर पड़ा

4

हरनाथ ने चारों तरफ से अपने रुपये वसूल करके व्यापारियों को देने के लिए जमा कर रखे थे। चौधरी ने आँखें दिखायीं, तो वही रुपये ला कर पटक दिया। दिल में उसी वक्त सोच लिया था कि रात को रुपये उड़ा लाऊँगा। झूठमूठ चोर का गुल मचा दूँगा, तो मेरी ओर संदेह भी न होगा। पर जब यह पेशबंदी ठीक न उतरी, तो उस पर व्यापारियों के तगादे होने

लगे। वादों पर लोगों को कहाँ तक टालता, जितने बहाने हो सकते थे, सब किये। आखिर वह नौबत आ गयी कि लोग नालिश करने की धमकियाँ देने लगे। एक ने तो तीन सौ रुपये की नालिश कर भी दी। बेचारे चौधरी बड़ी मुश्किल में फँसे। दूकान पर हरनाथ बैठता था, चौधरी को उससे कोई वास्ता न था, पर उसकी जो साख थी वह चौधरी के कारण। लोग चौधरी को खरा और लेन-देन का साफ आदमी समझते थे। अब भी यद्यपि कोई उनसे तकाजा न करता था, पर वह सबसे मुँह छिपाते फिरते थे। लेकिन उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि कुएँ के रुपये न छुऊँगा चाहे कुछ आ पड़े।

रात को एक व्यापारी के मुसलमान चपरासी ने चौधरी के द्वार पर आ कर हजारों गालियाँ सुनायीं। चौधरी को बार-बार क्रोध आता था कि चल कर मूँछें उखाड़ लूँ, पर मन को समझाया, 'हमसे मतलब ही क्या है, बेटे का कर्ज चुकाना बाप का धर्म नहीं है।'

जब भोजन करने गये, तो पत्नी ने कहा—यह सब क्या उपद्रव मचा रखा है ?

चौधरी ने कठोर स्वर में कहा—मैंने मचा रखा है ?

'और किसने मचा रखा है ? बच्चा कसम खाते हैं कि मेरे पास केवल थोड़ा-सा माल है, रुपये तो सब तुमने माँग लिये।'

चौधरी—माँग न लेता तो क्या करता, हलवाई की दूकान पर दादा का फातेहा पढ़ना मुझे पसंद नहीं।

स्त्री—यह नाक-कटाई अच्छी लगती है ?

चौधरी—तो मेरा क्या बस है भाई, कभी कुआँ बनेगा कि नहीं ? पाँच साल हो गये।

स्त्री—इस वक्त उसने कुछ नहीं खाया। पहली जून भी मुँह जूठा करके उठ गया था।

चौधरी—तुमने समझाकर खिलाया नहीं, दाना-पानी छोड़ देने से तो रुपये न मिलेंगे।

स्त्री—तुम क्यों नहीं जा कर समझा देते ?

चौधरी—मुझे तो इस वक्त बैरी समझ रहा होगा !

स्त्री—मैं रुपये ले जा कर बच्चा को दिये आती हूँ, हाथ में जब रुपये आ जायँ, तो कुआँ बनवा देना।

चौधरी—नहीं, नहीं, ऐसा गजब न करना, मैं इतना बड़ा विश्वासघात न करूँगा, चाहे घर मिट्टी ही में मिल जाय।

लेकिन स्त्री ने इन बातों की ओर ध्यान न दिया। वह लपक कर भीतर गयी और थैलियों पर हाथ डालना चाहती थी कि एक चीख मार कर हट गयी। उसकी सारी देह सितार के तार की भाँति काँपने लगी।

चौधरी ने घबरा कर पूछा—क्या हुआ, क्या ? तुम्हें चक्कर तो नहीं आ गया ?

स्त्री ने ताक की ओर भयातुर नेत्रों से देख कर कहा—चुड़ैल वहाँ खड़ी है ?

चौधरी ने ताक की ओर देख कर कहा—कौन चुड़ैल ? मुझे तो कोई नहीं दीखता।

स्त्री—मेरा तो कलेजा धक्-धक् कर रहा है। ऐसा मालूम हुआ, जैसे उस बुढ़िया ने मेरा हाथ पकड़ लिया है।

चौधरी—यह सब भ्रम है। बुढ़िया को मरे पाँच साल हो गये, अब तक वह यहाँ बैठी है ?

स्त्री—मैंने साफ देखा, वही थी। बच्चा भी कहते थे कि उन्होंने रात को थैलियों पर हाथ रखे देखा था !

चौधरी—वह रात को मेरी कोठी में कब आया।

स्त्री—तुमसे कुछ रुपयों के विषय ही में कहने आया था। उसे देखते ही भागा।

चौधरी—अच्छा; फिर तो अंदर जाओ, मैं देख रहा हूँ।

स्त्री ने कान पर हाथ रख कर कहा—न बाबा, अब मैं उस कमरे में कदम न रखूँगी।

चौधरी—अच्छा, मैं जा कर देखता हूँ।

चौधरी ने कोठरी में जा कर दोनों थैलियाँ ताक पर से उठा लीं। किसी प्रकार की शंका न हुई। गोमती की छाया का कहीं नाम भी न था। स्त्री द्वार पर खड़ी झाँक रही थी। चौधरी ने आ कर गर्व से कहा—मुझे तो कहीं कुछ न दिखायी दिया। वहाँ होती, तो कहाँ चली जाती ?

स्त्री—क्या जाने, तुम्हें क्यों नहीं दिखायी दी ? तुमसे उसे स्नेह था, इसी से हट गयी होगी।

चौधरी—तुम्हें भ्रम था; और कुछ नहीं।

स्त्री—बच्चा को बुला कर पुछाये देती हूँ।

चौधरी—खड़ा तो हूँ, आ कर देख क्यों नहीं लेती ?

स्त्री को कुछ आश्वासन हुआ। उसने ताक के पास जा कर डरते-डरते हाथ बढ़ाया—जोर से चिल्ला कर भागी और आँगन में आ कर दम लिया।

चौधरी भी उसके साथ आँगन में आ गया और विस्मय से बोला—क्या था, क्या ? व्यर्थ में भागी चली आयी। मुझे तो कुछ न दिखायी दिया।

स्त्री ने हाँफते हुए तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा—चलो हटो, अब तक तो तुमने मेरी जान ही ले ली थी। न-जाने तुम्हारी आँखों को क्या हो गया है। खड़ी तो है वह डायन !

इतने में हरनाथ भी वहाँ आ गया। माता को आँगन में पड़े देख कर बोला—क्या है अम्माँ, कैसा जी है ?

स्त्री—वह चुड़ैल आज दो बार दिखायी दी, बेटा। मैंने कहा—लाओ, तुम्हें रुपये दे दूँ। फिर जब हाथ में आ जायँगे, तो कुआँ बनवा दिया जायगा। लेकिन ज्यों ही थैलियों पर हाथ रखा, उस चुड़ैल ने मेरा हाथ पकड़ लिया। प्राण-से निकल गये।

हरनाथ ने कहा—किसी अच्छे ओझा को बुलाना चाहिए, जो इसे मार भगाये।

चौधरी—क्या रात को तुम्हें भी दिखाई दी थी ?

हरनाथ—हाँ, मैं तुम्हारे पास एक मामले में सलाह करने आया था। ज्यों ही अंदर कदम रखा, वह चुड़ैल ताक के पास खड़ी दिखायी दी, मैं बदहवास हो कर भागा।

चौधरी—अच्छा, फिर तो जाओ।

स्त्री—कौन, अब तो मैं न जाने दूँ, चाहे कोई लाख रुपये ही क्यों न दे।

हरनाथ—मैं आप न जाऊँगा।

चौधरी—मगर मुझे कुछ दिखायी नहीं देता। यह बात क्या है ?

हरनाथ—क्या जाने, आपसे डरती होगी। आज किसी ओझा को बुलाना चाहिए।

चौधरी—कुछ समझ में नहीं आता, क्या माजरा है। क्या हुआ बैजू पांडे की डिग्री का?

हरनाथ इन दिनों चौधरी से इतना जलता था कि अपनी दूकान के विषय की कोई बात उनसे न कहता था। आँगन की तरफ ताकता हुआ मानो हवा से बोला—जो होना होगा, वह होगा, मेरी जान के सिवा और कोई क्या ले लेगा जो खा गया हूँ, वह तो उगल नहीं सकता।

चौधरी—कहीं उसने डिग्री जारी कर दी तो ?

हरनाथ—तो क्या ? दूकान में चार-पाँच सौ का माल है, वह नीलाम हो जायगा।

चौधरी—कारोबार तो सब चौपट हो जायगा ?

हरनाथ—अब कारोबार के नाम को कहाँ तक रोऊँ। अगर पहले से मालूम होता कि कुआँ बनवाने की इतनी जल्दी है, तो यह काम छेड़ता ही क्यों ? रोटी-दाल तो पहले भी मिल जाती थी। बहुत होगा, तो-चार महीने हवालात में रहना पड़ेगा। इसके सिवा और क्या हो सकता है ?

माता ने कहा—जो तुम्हें हवालात में ले जाय, उसका मुँह झुलस दूँ ! हमारे जीते-जी तुम हवालात में जाओगे !

हरनाथ ने दार्शनिक बन कर कहा—माँ-बाप जन्म के साथी होते हैं, किसी के कर्म के साथी नहीं होते।

चौधरी को पुत्र से प्रगाढ़ प्रेम था। उन्हें शंका हो गयी थी कि हरनाथ रुपये हजम करने के लिए टाल-मटोल कर रहा है। इसलिए उन्होंने आग्रह करके रुपये वसूल कर लिये थे। अब उन्हें अनुभव हुआ कि हरनाथ के प्राण सचमुच संकट में हैं। सोचा—अगर लड़के को हवालात हो गयी, या दूकान पर कुर्की आ गयी; तो कुल-मर्यादा धूल में मिल जायगी। क्या हरज है, अगर गोमती के रुपये दे दूँ। आखिर दूकान चलती ही है, कभी न कभी तो रुपये हाथ में आ ही जायँगे।

एकाएक किसी ने बाहर से पुकारा—'हरनाथसिंह !' हरनाथ के मुख पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। चौधरी ने पूछा—कौन है ?

'कुर्क अमीन।'

'क्या दूकान कुर्क कराने आया है ?'

'हाँ, मालूम तो होता है।'

'कितने रुपयों की डिग्री है ?'

'बारह सौ रुपये की।'

'कुर्क-अमीन कुछ लेने-देने से न टलेगा ?'

'टल तो जाता पर महाजन भी तो उसके साथ होगा। उसे जो कुछ लेना है, उधर से ले चुका होगा।'

'न हो, बारह सौ रुपये गोमती के रुपयों में से दे दो।'

'उसके रुपये कौन छुएगा। न-जाने घर पर क्या आफत आये।'

'उसके रुपये कोई हजम थोड़ी ही किये लेता है; चलो, मैं दे दूँ !'

चौधरी को इस समय भय हुआ, कहीं मुझे भी वह न दिखायी दे। लेकिन उनकी शंका निर्मूल थी। उन्होंने एक थैली से दो सौ बीस रुपये निकाले और दूसरी थैली में रख कर हरनाथ को दे दिये। संध्या तक इन दो हजार रुपये में एक रुपया भी न बचा।

5

बारह साल गुजर गये। न चौधरी अब इस संसार में हैं, न हरनाथ। चौधरी जब तक जिये, उन्हें कुएँ की चिंता बनी रही; यहाँ तक कि मरते दम भी उनकी जबान पर कुएँ की रट लगी हुई थी। लेकिन दूकान में सदैव रुपयों का तोड़ा रहा। चौधरी के मरते ही सारा कारोबार चौपट हो गया। हरनाथ ने आने रुपये लाभ से संतुष्ट न हो कर दूने-तिगुने लाभ पर हाथ मारा—जुआ खेलना शुरू किया। साल भी न गुजरने पाया था कि दूकान बंद हो गयी। गहने-पाते, बरतन भाड़े, सब मिट्टी में मिल गये। चौधरी की मृत्यु के ठीक साल भर बाद, हरनाथ ने भी इस हानि-लाभ के संसार से पयान किया। माता के जीवन का अब कोई सहारा न रहा। बीमार पड़ी, पर दवा-दर्पन न हो सकी। तीन-चार महीने तक नाना प्रकार के कष्ट झेल कर वह भी चल बसी। अब केवल बहू थी, और वह भी गर्भिणी। उस बेचारी के लिए अब कोई आधार न था। इस दशा में मजदूरी भी न कर सकती थी। पड़ोसियों के कपड़े सी-सी कर उसने किसी भाँति पाँच-छः महीने काटे। तेरे लड़का होगा। सारे लक्षण बालक के-से थे। यही एक जीवन का आधार था। जब कन्या हुई, तो यह आधार भी जाता रहा। माता ने अपना हृदय इतना कठोर कर लिया कि नवजात शिशु को छाती भी न लगाती थी। पड़ोसियों के बहुत समझाने-बुझाने पर छाती से लगाया, पर उसकी छाती में दूध की एक बूँद भी न थी। उस समय अभागिनी माता के हृदय में करुणा, वात्सल्य और मोह का एक भूकम्प-सा आ गया। अगर किसी उपाय से उसके स्तन की अंतिम बूँद दूध बन जाती, तो वह अपने को धन्य मानती।

बालिका की वह भोली, दीन, याचनामय, सतृष्ण छवि देख कर उसका मातृ-हृदय मानो सहस्र नेत्रों से रुदन करने लगा था। उसके हृदय की सारी शुभेच्छाएँ, सारा आशीर्वाद, सारी विभूति, सारा अनुराग मानो उसकी आँखों से निकाल कर उस बालिका को उसी भाँति रंजित कर देता था जैसे इंदु का शीतल प्रकाश पुष्प को रंजित कर देता है; पर उस बालिका के भाग्य में मातृप्रेम के सुख न बदे थे ! माता ने कुछ अपना रक्त, कुछ ऊपर का दूध पिला कर उसे जिलाया; पर उसकी दशा दिनोंदिन जीर्ण होती जाती थी।

एक दिन लोगों ने जा कर देखा, तो वह भूमि पर पड़ी हुई थी, और बालिका उसकी छाती से चिपटी उसके स्तनों को चूस रही थी। शोक और दरिद्रता से आहत शरीर में रक्त कहाँ जिससे दूध बनता।

वही बालिका पड़ोसियों की दया-भिक्षा से पल-पल कर एक दिन घास खोदती हुई उस स्थान पर जा पहुँची, जहाँ बुढ़िया गोमती का घर था। छप्पर कब के पंचभूतों में मिल चुके थे। केवल जहाँ-तहाँ दीवारों के चिह्न बाकी थे। कहीं-कहीं आधी-आधी दीवारें खड़ी थीं। बालिका ने न-जाने क्या सोच कर खुरपी से गड्ढा खोदना शुरू किया। दोपहर से साँझ तक वह गड्ढा खोदती रही। न खाने की सुध थी, न पीने की। न कोई शंका थी, न भय।

अँधेरा हो गया; पर वह ज्यों की त्यों बैठी गड्ढा खोद रही थी। उस समय किसान लोग भूल कर भी उधर से न निकलते थे; पर बालिका निश्शंक बैठी भूमि से मिट्टी निकाल रही थी। जब अँधेरा हो गया तो वह चली गयी।

दूसरे दिन वह बड़े सबेरे उठी और इतनी घास खोदी, जितनी वह कभी दिन भर में न खोदती थी। दोपहर के बाद वह अपनी खाँची और खुरपी लिये फिर उसी स्थान पर पहुँची; पर वह आज अकेली न थी, उसके साथ दो बालक और भी थे। तीनों वहाँ साँझ तक 'कुआँ-कुआँ' खोदते रहे। बालिका गड्ढे के अंदर खोदती थी और दोनों बालक मिट्टी निकाल-निकाल कर फेंकते थे।

तीसरे दिन दो लड़के और भी उस खेल में मिल गये। शाम तक खेल होता रहा। आज गड्ढा दो हाथ गहरा हो गया था। गाँव के बालक-बालिकाओं में इस विलक्षण खेल ने अभूपूर्व उत्साह भर दिया था।

चौथे दिन और भी कई बालक आ मिले। सलाह हुई, कौन अंदर जाय, कौन मिट्टी उठाये, कौन झौआ खींचे। गड्ढा अब चार हाथ गहरा हो गया था, पर अभी तक बालकों के सिवा और किसी को उसकी खबर न थी।

एक दिन रात को एक किसान अपनी खोयी हुई भैंस ढूँढ़ता हुआ उस खंडहर में जा निकला। अदर मिट्टी का ऊँचा ढेर, एक बड़ा-सा गड्ढा और एक टिमटिमाता हुआ दीपक देखा, तो डर कर भागा। औरों ने भी आ कर देखा, कई आदमी थे। कोई शंका न थी। समीप जा कर देखा, तो बालिका बैठी थी। एक आदमी ने पूछा—अरे, क्या तूने यह गड्ढा खोदा है?

बालिका ने कहा—हाँ।

'गड्ढा खोद कर क्या करेगी ?'

'यहाँ कुआँ बनाऊँगी ?'

'कुआँ कैसे बनायेगी ?'

'जैसे इतना खोदा है वैसे ही इतना और खोद लूँगी। गाँव के सब लड़के खेलने आते हैं।'

'मालूम होता है, तू अपनी जान देगी और अपने साथ और लड़कों को भी मारेगी। खबरदार, जो कल से गड्ढा खोदा !'

दूसरे दिन और लड़के न आये, बालिका भी दिन भर मजूरी करती रही। लेकिन संध्या-समय वहाँ फिर दीपक जला और फिर वह खुरपी हाथ में लिये वहाँ बैठी दिखायी दी।

गाँव वालों ने उसे मारा-पीटा, कोठरी में बंद किया, पर वह अवकाश पाते ही वहाँ जा पहुँचती।

गाँव के लोग प्रायः श्रद्धालु होते ही हैं, बालिका के इस अलौकिक अनुराग ने आखिर उनमें भी अनुराग उत्पन्न किया। कुआँ खुदने लगा।

इधर कुआँ खुद रहा था। उधर बालिका मिट्टी से ईंटें बनाती थी। इस खेल में सारे गाँव के लड़के शरीक होते थे। उजाली रातों में जब सब लोग सो जाते, तब भी वह ईंटें थापती दिखायी देती। न-जाने इतनी लगन उसमें कहाँ से आ गयी थी। सात वर्ष की उम्र कोई उम्र होती है ? लेकिन सात वर्ष की वह लड़की बुद्धि और बातचीत में अपनी तिगुनी

उम्र वालों के कान काटती थी।

आखिर एक दिन वह भी आया कि कुआँ बँध गया और उसकी पक्की जगत तैयार हो गयी। उस दिन बालिका उसी जगत पर सोयी । आज उसके हर्ष की सीमा न थी। गाती थी, चहकती थी।

प्रातःकाल उस जगत पर केवल उसकी लाश मिली। उस दिन से लोगों ने कहना शुरू किया, यह वही बुढ़िया गोमती थी ! इस कुएँ का नाम 'पिसनहारी का कुआँ' पड़ा।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', जून, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित। केवल हिन्दी में प्रकाशित।]

सोहाग का शव

मध्यप्रदेश के एक पहाड़ी गाँव में एक छोटे-से घर की छत पर एक युवक मानो संध्या की निस्तब्धता में लीन बैठा था। सामने चन्द्रमा के मलिन प्रकाश में ऊदी पर्वतमालाएँ अनन्त के स्वप्न की भाँति गम्भीर, रहस्यमय, संगीतमय, मनोहर मालूम होती थीं, मानो उन पहाड़ियों के नीचे जल-धारा की एक रौप्य रेखा ऐसी मालूम होती थी, मानो उन पर्वतों का समस्त संगीत, समस्त गाम्भीर्य, सम्पूर्ण रहस्य इसी उज्ज्वल प्रवाह में लीन हो गया हो। युवक की वेशभूषा से प्रकट होता था कि उसकी दशा बहुत सम्पन्न नहीं है। हाँ, उसके मुख से तेज और मनस्विता झलक रही थी। उसकी आँखों पर ऐनक न थी, न मूँछें मुड़ी हुई थीं, न बाल सँवारे हुए थे, कलाई पर घड़ी न थी; यहाँ तक कि कोट की जेब में फाउन्टेनपेन भी न था। या तो वह सिद्धान्तों का प्रेमी था, या आडम्बरों का शत्रु।

युवक विचारों में मौन उसी पर्वतमाला की ओर देख रहा था कि सहसा बादल की गरज से भी भयंकर ध्वनि सुनायी दी। नदी का मधुर गान उस भीषण नाद में डूब गया। ऐसा मालूम हुआ, मानो उस भयंकर नाद ने पर्वतों को भी हिला दिया है, मानो पर्वतों में कोई घोर संग्राम छिड़ गया है। यह रेलगाड़ी थी, जो नदी पर बने हुए पुल से चली आ रही थी।

एक युवती कमरे से निकल कर छत पर आयी और बोली—आज अभी से गाड़ी आ गयी इसे भी आज ही वैर निभाना था।

युवक ने युवती का हाथ पकड़ कर कहा—प्रिये ! मेरा जी चाहता है कहीं न जाऊँ; मैंने निश्चय कर लिया है। मैंने तुम्हारी खातिर से हामी भर ली थी, पर अब जाने की इच्छा नहीं होती। तीन साल कैसे कटेंगे ?

युवती ने कातर स्वर में कहा—तीन साल के वियोग के बाद फिर तो जीवनपर्यन्त कोई बाधा न खड़ी होगी। एक बार जो निश्चय कर लिया है, उसे पूरा ही कर डालो, अनंत सुख की आशा में मैं सारे कष्ट झेल लूँगी।

यह कहते हुए युवती जलपान लाने के बहाने से फिर भीतर चली गयी। आँसुओं का आवेग उसके काबू से बाहर हो गया। इन दोनों प्राणियों के वैवाहिक जीवन की यह पहली

ही वर्षगाँठ थी। युवक बम्बई-विश्वविद्यालय से एम. ए. की उपाधि लेकर नागपुर के एक कालेज में अध्यापक था। नवीन युग की नयी-नयी वैवाहिक और सामाजिक क्रांतियों ने उसे लेशमात्र भी विचलित न किया था। पुरानी प्रथाओं से ऐसी प्रगाढ़ ममता कदाचित् वृद्धजनों को भी कम होगी। प्रोफेसर हो जाने के बाद उसके माता-पिता ने इस बालिका से उसका विवाह कर दिया था। प्रथानुसार ही उस आँखमिचौनी के खेल में उन्हें प्रेम का रत्न मिल गया। केवल छुट्टियों में यहाँ पहली गाड़ी से आता और आखिरी गाड़ी से जाता। ये दो-चार दिन मीठे स्वप्न के समान कट जाते थे। दोनों बालकों की भाँति रो-रो कर बिदा होते। इसी कोठे पर खड़ी होकर वह उसको देखा करती, जब तक निर्दयी पहाड़ियाँ उसे आड़ में न कर लेतीं। पर अभी साल भी न गुजरने पाया था कि वियोग ने अपना षड्यंत्र रचना शुरू कर दिया। केशव को विदेश जा कर शिक्षा पूरी करने के लिए एक वृत्ति मिल गयी। मित्रों ने बधाइयाँ दीं। किसके ऐसे भाग्य हैं, जिसे बिना माँगे स्वभाग्य-निर्माण का ऐसा अवसर प्राप्त हो। केशव बहुत प्रसन्न न था। वह इसी दुविधे में पड़ा हुआ घर आया। माता-पिता और अन्य सम्बन्धियों ने इस यात्रा का घोर विरोध किया। नगर में जितनी बधाइयाँ मिली थीं, यहाँ उससे कहीं अधिक बाधाएँ मिलीं। किंतु सुभद्रा की उच्चाकांक्षाओं की सीमा न थी। वह कदाचित् केशव को इंद्रासन पर बैठा हुआ देखना चाहती थी। उसके सामने तब भी वही पति सेवा का आदर्श होता था। वह तब भी उसके सिर में तेल डालेगी, उसकी धोती छाँटेगी, उसके पाँव दबायेगी और उसको पंखा झलेगी। उपासक की महत्त्वाकांक्षा उपास्य ही के प्रति होती है। वह उसको सोने का मंदिर बनवायेगा, उसके सिंहासन को रत्नों से सजायेगा, स्वर्ग से पुष्प लाकर भेंट करेगा; पर वह स्वयं वही उपासक रहेगा। जटा के स्थान पर मुकुट या कौपीन की जगह पिताम्बर की लालसा उसे कभी नहीं सताती। सुभद्रा ने उस वक्त तक दम न लिया जब तक केशव ने विलायत जाने का वादा न कर लिया, माता-पिता ने उसे कलंकिनी और न जाने क्या-क्या कहा, पर अंत में सहमत हो गये। सब तैयारियाँ हो गयीं। स्टेशन समीप ही था। यहाँ गाड़ी देर तक खड़ी रहती थी। स्टेशनों के समीपस्थ गाँव के निवासियों के लिए गाड़ी का आना शत्रु का धावा नहीं, मित्र का पदार्पण है। गाड़ी आ गयी। सुभद्रा जलपान बना कर पति को हाथ धुलाने आयी थी। इस समय केशव की प्रेम-कातर आपत्ति ने उसे एक क्षण के लिए विचलित कर दिया। हा! कौन जानता है, तीन साल में क्या हो जाय ! मन में एक आवेश उठा—कह दूँ, प्यारे मत जाओ। थोड़ा ही खायेंगे, मोटा ही पहनेंगे, रो-रो कर दिन तो न कटेंगे। कभी केशव के आने में एक-आधा महीना लग जाता था, तो वह विकल हो जाया करती थी। यही जी चाहता था, उड़ कर उनके पास पहुँच जाऊँ। फिर ये निर्दयी तीन वर्ष कैसे कटेंगे ! लेकिन उसने बड़ी कठोरता से इन निराशाजनक भावों को ठुकरा दिया और काँपते कंठ से बोली—जी तो मेरा भी यही चाहता है। जब तीन साल का अनुमान करती हूँ, तो एक कल्प-सा मालूम होता है। लेकिन जब विलायत में तुम्हारे सम्मान और आदर का ध्यान करती हूँ, तो ये तीन साल तीन दिन से मालूम होते हैं। तुम तो जहाज पर पहुँचते ही मुझे भूल जाओगे। नये-नये दृश्य तुम्हारे मनोरंजन के लिए आ खड़े होंगे। यूरोप पहुँच कर विद्वानों के सत्संग में तुम्हें घर की याद भी न आयेगी। मुझे तो रोने के सिवा और कोई धंधा नहीं है। यही स्मृतियाँ ही

मेरे जीवन का आधार होंगी। लेकिन क्या करूँ, जीवन की भोग-लालसा तो नहीं मानती। फिर जिस वियोग का अंत जीवन की सारी विभूतियाँ अपने साथ लायेगा, वह वास्तव में तपस्या है। तपस्या के बिना तो वरदान नहीं मिलता।

केशव को भी अब ज्ञात हुआ कि क्षणिक मोह के आवेश में स्वभाग्य निर्माण का ऐसा अच्छा अवसर त्याग देना मूर्खता है। खड़े हो कर बोले—रोना-धोना मत, नहीं तो मेरा जी न लगेगा।

सुभद्रा ने उसका हाथ पकड़ कर हृदय से लगाते हुए उनके मुँह की ओर सजल नेत्रों से देखा और बोली—पत्र बराबर भेजते रहना।

सुभद्रा ने फिर आँखों में आँसू भरे हुए मुस्करा कर कहा—देखना, विलायती मिसों के जाल में न फँस जाना।

केशव फिर चारपाई पर बैठ गया और बोला—अगर तुम्हें यह संदेह है, तो लो, मैं जाऊँगा ही नहीं।

सुभद्रा ने उसके गले में बाँहें डाल कर विश्वास-पूर्ण दृष्टि से देखा और बोली—मैं दिल्लगी कर रही थी।

'अगर इंद्रलोक की अप्सरा भी आ जाय, तो आँख उठा कर न देखूँ। ब्रह्मा ने ऐसी दूसरी सृष्टि की ही नहीं।'

'बीच में कोई छुट्टी मिले, तो एक बार चले आना।'

'नहीं प्रिये, बीच में शायद छुट्टी न मिलेगी। मगर जो मैंने सुना कि तुम रो-रो कर घुली जाती हो, दाना-पानी छोड़ दिया है, तो मैं अवश्य चला आऊँगा। ये फूल जरा भी कुम्हलाने न पायें।'

दोनों गले मिल कर विदा हो गये। बाहर सम्बन्धियों और मित्रों का एक समूह खड़ा था। केशव ने बड़ों के चरण छुए, छोटों को गले लगाया और स्टेशन की ओर चले। मित्रगण स्टेशन तक पहुँचाने गये। एक क्षण में गाड़ी यात्री को ले कर चल दी।

उधर केशव गाड़ी में बैठा हुआ पहाड़ियों की बहार देख रहा था; इधर सुभद्रा भूमि पर पड़ी सिसकियाँ भर रही थी।

2

दिन गुजरने लगे। उसी तरह, जैसे बीमारी के दिन कटते हैं—दिन पहाड़, रात काली बला। रात भर मनाते गुजरती थी कि किसी तरह भोर हो। भोर होता, तो मनाने लगती कि जल्दी शाम हो। मैके गयी कि वहाँ जी बहलेगा। दस-पाँच दिन परिवर्तन का कुछ असर हुआ, फिर उससे भी बुरी दशा हुई, भाग कर ससुराल चली आयी। रोगी करवट बदल कर आराम का अनुभव करता है।

पहले पाँच-छह महीनों तक तो केशव के पत्र पंद्रहवें दिन बराबर मिलते रहे। उसमें वियोग के दुःख कम, नये-नये दृश्यों का वर्णन अधिक होता था। पर सुभद्रा संतुष्ट थी। पत्र आते हैं, वह प्रसन्न हैं, कुशल से हैं, उसके लिए यही काफी था। प्रतिकूल वह पत्र लिखती, तो विरह-व्यथा के सिवा उसे कुछ सूझता ही न था। कभी-कभी जब जी बेचैन हो

जाता, तो पछताती कि व्यर्थ जाने दिया। कहीं एक दिन मर जाऊँ, तो उनके दर्शन भी न हों।

लेकिन छठे महीने से पत्रों में भी विलम्ब होने लगा। कई महीने तक तो महीने में एक पत्र आता रहा, फिर वह भी बंद हो गया। सुभद्रा के चार-छह पत्र पहुँच जाते, तो एक पत्र आ जाता; वह भी बेदिली से लिखा हुआ काम की अधिकता और समय के अभाव के रोने से भरा हुआ। एक वाक्य भी ऐसा नहीं, जिससे हृदय को शांति हो, जो टपकते हुए दिल पर मरहम रखे। हा ! आदि से अंत तक 'प्रिये' शब्द का नाम नहीं। सुभद्रा अधीर हो उठी। उसने योरप-यात्रा का निश्चय कर लिया। वह सारे कष्ट सह लेगी, सिर पर जो कुछ पड़ेगी, सह लेगी; केशव को आँखों से देखती तो रहेगी। वह इस बात को उनसे गुप्त रखेगी, उनकी कठिनाइयों को और न बढ़ायेगी, उनसे बोलेगी भी नहीं ! केवल उन्हें कभी-कभी आँख भर कर देख लेगी। यही उसकी शांति के लिए काफी होगा। उसे क्या मालूम था कि उसका केशव अब उसका नहीं रहा। वह अब एक दूसरी ही कामिनी के प्रेम का भिखारी है।

सुभद्रा कई दिनों तक इस प्रस्ताव को मन में रखे हुए सेती रही। उसे किसी प्रकार की शंका न होती थी। समाचार-पत्रों के पढ़ते रहने से उसे समुद्री यात्रा का हाल मालूम होता रहता था। एक दिन उसने अपने सास-ससुर के सामने अपना निश्चय प्रकट किया। उन लोगों ने बहुत समझाया; रोकने की बहुत चेष्टा की; लेकिन सुभद्रा ने अपना हठ न छोड़ा। आखिर जब लोगों ने देखा कि यह किसी तरह नहीं मानती, तो राजी हो गये। मैकेवाले भी समझा कर हार गये। कुछ रुपये उसने स्वयं जमा कर रखे थे, कुछ ससुराल में मिले। माँ-बाप ने भी मदद की। रास्ते के खर्च की चिंता न रही। इंग्लैंड पहुँच कर वह क्या करेगी, इसका अभी उसने कुछ निश्चय न किया। इतना जानती थी कि परिश्रम करनेवालों को रोटियों की कहीं कमी नहीं रहती।

विदा होते समय सास और ससुर दोनों स्टेशन तक आये। जब गाड़ी ने सीटी दी, तो सुभद्रा ने हाथ जोड़ कर कहा—मेरे जाने का समाचार वहाँ न लिखिएगा। नहीं तो उन्हें चिंता होगी और पढ़ने में उनका जी न लगेगा।

ससुर ने आश्वासन दिया। गाड़ी चल दी।

3

लंदन के उस हिस्से में, जहाँ इस समृद्धि के समय में भी दरिद्रता का राज्य है, ऊपर के एक छोटे से कमरे में सुभद्रा एक कुर्सी पर बैठी है। उसे यहाँ आये आज एक महीना हो गया है। यात्रा के पहले उसके मन में जितनी शंकाएँ थीं, सभी शांत होती जा रही हैं। बम्बई-बंदर में जहाज पर जगह पाने का प्रश्न बड़ी आसानी से हल हो गया। वह अकेली औरत न थी जो योरोप जा रही हो। पाँच-छह स्त्रियाँ और भी उसी जहाज से जा रही थीं। सुभद्रा को न जगह मिलने में कोई कठिनाई हुई, न मार्ग में। यहाँ पहुँच कर और स्त्रियों से संग छूट गया। कोई किसी विद्यालय में चली गयी; दो-तीन अपने पतियों के पास चली गयीं, जो यहाँ पहले आ गये थे। सुभद्रा ने इस मुहल्ले में एक कमरा ले लिया। जीविका का प्रश्न भी

उसके लिए बहुत कठिन न रहा। जिन महिलाओं के साथ वह आयी थी, उनमें कई उच्च-अधिकारियों की पत्नियाँ थीं। कई अच्छे-अच्छे अँगरेज घरानों से उनका परिचय था। सुभद्रा को दो महिलाओं को भारतीय संगीत और हिन्दी-भाषा सिखाने का काम मिल गया। शेष समय में वह भारतीय संगीत और हिन्दी-भाषा सिखाने का काम कर लेती है। केशव का निवास-स्थान यहाँ से निकट है, इसीलिए सुभद्रा ने इस मुहल्ले को पसंद किया है। कल केशव उसे दिखायी दिया था। ओह ! उन्हें 'बस' से उतरते देख कर उसका चित्त कितना आतुर हो उठा था। बस यही मन में आता था कि दौड़ कर उनके गले से लिपट जाय और पूछे—क्यों जी, तुम यहाँ आते ही बदल गये। याद है, तुमने चलते समय क्या-क्या वादे किये थे ? उसने बड़ी मुश्किल से अपने को रोका था। तब से इस वक्त तक उसे मानो नशा-सा छाया हुआ है, वह उनके इतने समीप है ! चाहे रोज उन्हें देख सकती है, उनकी बातें सुन सकती है; हाँ, उन्हें स्पर्श तक कर सकती है। अब यह उससे भाग कर कहाँ जायँगे? उनके पत्रों की अब उसे क्या चिंता है ? कुछ दिनों के बाद सम्भव है वह उनके होटल के नौकरों से जो चाहे, पूछ सकती है।

संध्या हो गयी थी। धुएँ में बिजली की लालटेनें रोती आँखों की भाँति ज्योतिहीन-सी हो रही थीं। गली में स्त्री-पुरुष सैर करने जा रहे थे। सुभद्रा सोचने लगी—इन लोगों को आमोद से कितना प्रेम है, मानो किसी को चिंता ही नहीं, मानो सभी सम्पन्न हैं, जभी ये लोग इतने एकाग्र हो कर सब काम कर सकते हैं। जिस समय जो काम करते हैं, जी-जान से करते हैं। खेलने की उमंग है, तो काम करने की भी उमंग है और एक हम हैं कि न हँसते हैं, न रोते हैं; मौन बने बैठे रहते हैं। स्फूर्ति का कहीं नाम नहीं, काम तो सारे दिन करते हैं, भोजन करने की फुरसत भी नहीं मिलती, पर वास्तव में चौथाई समय भी काम में नहीं लगाते। केवल काम करने का बहाना करते हैं। मालूम होता है, जाति प्राण-शून्य हो गयी है।

सहसा उसने केशव को जाते देखा। हाँ, केशव ही था। कुर्सी से उठ कर बरामदे में चली आयी। प्रबल इच्छा हुई कि जा कर उनके गले से लिपट जाय। उसने अगर अपराध किया है, तो उन्हीं के कारण तो। यदि वह बराबर पत्र लिखते जाते, तो वह क्यों आती ?

लेकिन केशव के साथ यह युवती कौन है ? अरे ! केशव उसका हाथ पकड़े हुए है। दोनों मुस्करा-मुस्करा कर बातें करते चले जाते हैं। यह युवती कौन है ?

सुभद्रा ने ध्यान से देखा। युवती का रंग साँवला था। वह भारतीय बालिका थी। उसका पहनावा भारतीय था। इससे ज्यादा सुभद्रा को और कुछ न दिखायी दिया। उसने तुरंत जूते पहने, द्वार बंद किया और एक क्षण में गली में आ पहुँची ! केशव अब दिखायी न देता था, पर वह जिधर गया था, उधर ही वह बड़ी तेजी से लपकी चली जाती थी। यह युवती कौन है ? वह उन दोनों की बातें सुनना चाहती थी, उस युवती को देखना चाहती थी, उसके पाँव इतनी तेजी से उठ रहे थे, मानो दौड़ रही हो। पर इतनी जल्द दोनों कहाँ अदृश्य हो गये ? अब तक उसे उन लोगों के समीप पहुँच जाना चाहिए था। शायद दोनों किसी 'बस' पर जा बैठे।

अब वह गली समाप्त करके एक चौड़ी सड़क पर आ पहुँची थी। दोनों तरफ

बड़ी-बड़ी जगमगाती हुई दूकानें थीं, जिनमें संसार की विभूतियाँ गर्व से फूली बैठी थीं। कदम-कदम पर होटल और रेस्ट्राँ थे। सुभद्रा दोनों ओर नेत्रों से ताकती, पग-पग पर भ्रांति के कारण मचलती कितनी दूर निकल गयी, कुछ खबर नहीं।

फिर उसने सोचा—यों कहाँ तक चली जाऊँगी ? कौन जाने, किधर गये। चल कर फिर अपने बरामदे से देखूँ। आखिर इधर से गये हैं, तो इधर ही से लौटेंगे भी। यह खयाल आते ही वह घूम पड़ी, और उसी तरह दौड़ती हुई अपने स्थान की ओर चली। जब वहाँ पहुँची, तो बारह बज गये थे। और इतनी देर उसे चलते ही गुजरा! एक क्षण भी उसने कहीं विश्राम नहीं किया !

वह ऊपर पहुँची, तो गृह-स्वामिनी ने कहा—तुम्हारे लिए बड़ी देर से भोजन रखा हुआ है।

सुभद्रा ने भोजन अपने कमरे में मँगा लिया पर खाने की सुधि किसे थी ! वह उसी बरामदे में, उसी तरफ टकटकी लगाये खड़ी थी, जिधर से केशव गया था।

एक बज गया, दो बजा, फिर भी केशव नहीं लौटा। उसने मन में कहा—वह किसी दूसरे मार्ग से चले गये। मेरा यहाँ खड़ा रहना व्यर्थ है। चलूँ, सो रहूँ। लेकिन फिर खयाल आ गया, कहीं आ न रहे हों।

मालूम नहीं, उसे कब नींद आ गयी।

4

दूसरे दिन प्रातःकाल सुभद्रा अपने काम पर जाने को तैयार हो रही थी कि एक युवती रेशमी साड़ी पहने आ कर खड़ी हो गयी और मुस्करा कर बोली—क्षमा कीजिएगा, मैंने बहुत सबेरे आपको कष्ट दिया। आप तो कहीं जाने को तैयार मालूम होती हैं।

सुभद्रा ने एक कुर्सी बढ़ाते हुए कहा—हाँ, एक काम से बाहर जा रही थी। मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ ?

यह कहते हुए सुभद्रा ने युवती को सिर से पांव तक उसी आलोचनात्मक दृष्टि से देखा, जिससे स्त्रियाँ ही देख सकती हैं। सौंदर्य की किसी परिभाषा से भी उसे सुन्दरी न कहा जा सकता था। उसका रंग साँवला, मुँह कुछ चौड़ा, नाक कुछ चिपटी, कद भी छोटा और शरीर भी कुछ स्थूल था। आँखों पर ऐनक लगी हुई थी। लेकिन इन सब कारणों के होते हुए भी उसमें कुछ ऐसी बात थी, जो आँखों को अपनी ओर खींच लेती थी। उसकी वाणी इतनी मधुर, इतनी संयमित, इतनी विनम्र थी कि जान पड़ता था किसी देवी के वरदान हों। एक-एक अंग से प्रतिभा विकीर्ण हो रही थी। सुभद्रा उसके सामने हलकी एवं तुच्छ मालूम होती थी। युवती ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—

'अगर मैं भूलती हूँ, तो मुझे क्षमा कीजिएगा। मैंने सुना है कि आप कुछ कपड़े भी सीती हैं, जिसका प्रमाण यह है कि यहाँ सीविंग मशीन मौजूद है।'

सुभद्रा—मैं दो लेडियों को भाषा पढ़ाने जाया करती हूँ, शेष समय में कुछ सिलाई भी कर लेती हूँ। आप कपड़े लायी हैं ?

युवती—नहीं, अभी कपड़े नहीं लायी। यह कहते हुए उसने लज्जा से सिर झुका कर

मुस्कराते हुए कहा—बात यह है कि मेरी शादी होने जा रही है। मैं वस्त्राभूषण सब हिंदुस्तानी रखना चाहती हूँ। विवाह भी वैदिक रीति से ही होगा। ऐसे कपड़े यहाँ आप ही तैयार कर सकती हैं।

सुभद्रा ने हँस कर कहा—मैं ऐसे अवसर पर आपके जोड़े तैयार करके अपने को धन्य समझूँगी। वह शुभ तिथि कब है ?

युवती ने सकुचाते हुए कहा—वह तो कहते हैं, इसी सप्ताह में हो जाय; पर मैं उन्हें टालती आती हूँ। मैंने तो चाहा था कि भारत लौटने पर विवाह होता, पर वह इतने उतावले हो रहे हैं कि कुछ कहते नहीं बनता। अभी तो मैंने यही कह कर टाला है कि मेरे कपड़े सिल रहे हैं।

सुभद्रा—तो मैं आपके जोड़े बहुत जल्द दे दूँगी।

युवती ने हँस कर कहा—मैं तो चाहती थी कि आप महीनों लगा देतीं।

सुभद्रा—वाह, मैं इस शुभ कार्य में क्यों विघ्न डालने लगी ? मैं इसी सप्ताह में आपके कपड़े दे दूँगी, और उनसे इसका पुरस्कार लूँगी।

युवती खिलखिला कर हँसी। कमरे में प्रकाश की लहरें-सी उठ गयीं। बोली—इसके लिए तो पुरस्कार वह देंगे, बड़ी खुशी से देंगे और तुम्हारे कृतज्ञ होंगे। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि विवाह के बंधन में पड़ूँगी ही नहीं; पर उन्होंने मेरी प्रतिज्ञा तोड़ दी। अब मुझे मालूम हो रहा है कि प्रेम की बेड़ियाँ कितनी आनंदमय होती हैं। तुम तो अभी हाल ही में आयी हो। तुम्हारे पति भी साथ होंगे ?

सुभद्रा ने बहाना किया। बोली—वह इस समय जर्मनी में हैं। संगीत से उन्हें बहुत प्रेम है। संगीत ही का अध्ययन करने के लिए वहाँ गये हैं।

'तुम भी संगीत जानती हो ?'

'बहुत थोड़ा।'

'केशव को संगीत से बड़ा प्रेम है।'

केशव का नाम सुन कर सुभद्रा को ऐसा मालूम हुआ, जैसे बिच्छू ने काट लिया हो। वह चौंक पड़ी।

युवती ने पूछा—आप चौंक कैसे गयीं ? क्या केशव को जानती हो ?

सुभद्रा ने बात बना कर कहा—नहीं, मैंने यह नाम कभी नहीं सुना। वह यहाँ क्या करते हैं ?

सुभद्रा को खयाल आया, क्या केशव किसी दूसरे आदमी का नाम नहीं हो सकता ? इसलिए उसने यह प्रश्न किया था। उसी जवाब पर उसकी जिंदगी का फैसला था।

युवती ने कहा—यहाँ विद्यालय में पढ़ते हैं। भारत सरकार ने उन्हें भेजा है। अभी साल भर भी तो आये नहीं हुआ। तुम देख कर प्रसन्न होगी। तेज और बुद्धि की मूर्ति समझ लो। यहाँ के अच्छे-अच्छे प्रोफेसर उनका आदर करते हैं। ऐसा सुन्दर भाषण तो मैंने किसी के मुँह से सुना ही नहीं। जीवन आदर्श है। मुझसे उन्हें क्यों प्रेम हो गया है, मुझे इसका आश्चर्य है। मुझमें न रूप है, न लावण्य। यह मेरा सौभाग्य है। तो मैं शाम को कपड़े ले कर आऊँगी।

सुभद्रा ने मन में उठते हुए वेग को सँभाल कर कहा—अच्छी बात है।

जब युवती चली गयी, तो सुभद्रा फूट-फूट कर रोने लगी। ऐसा जान पड़ता था, मानो देह में रक्त ही नहीं, मानो प्राण निकल गये हैं। वह कितनी निस्सहाय, कितनी दुर्बल है, इसका आज अनुभव हुआ। ऐसा मालूम हुआ, मानो संसार में उसका कोई नहीं है। अब उसका जीवन व्यर्थ है। उसके लिए अब जीवन में रोने के सिवा और क्या है ? उसकी सारी ज्ञानेंद्रियाँ शिथिल-सी हो गयी थीं मानों वह किसी ऊँचे वृक्ष से गिर पड़ी हो। हा ! यह उसके प्रेम और भक्ति का पुरस्कार है। उसने कितना आग्रह करके केशव को यहाँ भेजा था? इसलिए कि यहाँ आते ही उसका सर्वनाश कर दें?

पुरानी बातें याद आने लगीं। केशव की वह प्रेमातुर आँखें सामने आ गयीं। वह सरल, सहज मूर्ति आँखों के सामने नाचने लगी। उसका जरा सिर धमकता था, तो केशव कितना व्याकुल हो जाता था। एक बार जब उसे फसली बुखार आ गया था, तो केशव घबरा कर, पंद्रह दिन की छुट्टी ले कर घर आ गया था और उसके सिरहाने बैठा रात भर पंखा झलता रहा था। वही केशव अब इतनी जल्द उससे ऊब उठा ! उसके लिए सुभद्रा ने कौन-सी बात उठा रखी। वह तो उसी को अपना प्राणाधार, अपना जीवन धन, अपना सर्वस्व समझती थी। नहीं-नहीं, केशव का दोष नहीं, सारा दोष इसी का है। इसी ने अपनी मधुर बातों से उन्हें वशीभूत कर लिया है। इसकी विद्या, बुद्धि और वाक्पटुता ही ने उनके हृदय पर विजय पायी है। हाय ! उसने कितनी बार केशव से कहा था, मुझे भी पढ़ाया करो, लेकिन उन्होंने हमेशा यही जवाब दिया, तुम जैसी हो, मुझे वैसी ही पसन्द हो। मैं तुम्हारी स्वाभाविक सरलता को पढ़ा-पढ़ा कर मिटाना नहीं चाहता। केशव ने उसके साथ कितना बड़ा अन्याय किया है ! लेकिन यह उनका दोष नहीं, यह इसी यौवन मतवाली छोकरी की माया है।

सुभद्रा को इस ईर्ष्या और दुःख के आवेश में अपने काम पर जाने की सुध न रही। वह कमरे में इस तरह टहलने लगी, जैसे किसी ने जबरदस्ती उसे बंद कर दिया हो। कभी दोनों मुट्ठियाँ बँध जातीं, कभी दाँत पीसने लगती, कभी ओंठ काटती। उन्माद की-सी दशा हो गयी। आँखों में भी एक तीव्र ज्वाला चमक उठी। ज्यों-ज्यों केशव के इस निष्ठुर आघात को सोचती, उन कष्टों को याद करती, जो उसने उसके लिए झेले थे, उसका चित्त प्रतिकार के लिए विकल होता जाता था। अगर कोई बात हुई होती, आपस में कुछ मनोमालिन्य का लेश भी होता, तो उसे इतना दुःख न होता। यह तो उसे ऐसा मालूम होता था कि मानो कोई हँसते-हँसते अचानक गले पर चढ़ बैठे। अगर वह उनके योग्य नहीं थी, तो उन्होंने उससे विवाह ही क्यों किया था ? विवाह करने के बाद भी उसे क्यों न ठुकरा दिया था ? क्यों प्रेम का बीज बोया था ? और आज जब वह बीज पल्लवों से लहराने लगा, उसकी जड़ें उसके अंतस्तल के एक-एक अणु में प्रविष्ट हो गयीं, उसका रक्त, उसका सारा उत्सर्ग वृक्ष को सींचने और पालने में प्रवृत्त हो गया, तो वह आज उसे उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं। क्या हृदय के टुकड़े-टुकड़े हुए बिना वृक्ष उखड़ जायगा ?

सहसा उसे एक बात याद आ गयी। हिंसात्मक संतोष से उसका उत्तेजित मुख-मंडल और भी कठोर हो गया। केशव ने अपने पहले विवाह की बात इस युवती से गुप्त रखी

होगी! सुभद्रा उसका भंडाफोड़ करके केशव के सारे मंसूबों को धूल में मिला देगी। उसे अपने ऊपर क्रोध आया कि युवती का पता क्यों न पूछ लिया। उसे एक पत्र लिख कर केशव की नीचता, स्वार्थपरता और कायरता की कलई खोल देती—उसके पांडित्य, प्रतिभा और प्रतिष्ठा को धूल में मिला देती। खैर, संध्या-समय तो वह कपड़े ले कर आयेगी ही। उस समय उसे सारा कच्चा चिट्ठा बयान कर दूँगी।

5

सुभद्रा दिन-भर युवती का इंतजार करती रही। कभी बरामदे में आ कर इधर-उधर निगाह दौड़ाती, कभी सड़क पर देखती, पर उसका कहीं पता न था। मन में झुँझलाती थी कि उसने क्यों उसी वक्त सारा वृत्तांत न कह सुनाया।

केशव का पता उसे मालूम था। उस मकान और गली का नम्बर तक याद था, जहाँ से वह उसे पत्र लिखा करता था। ज्यों-ज्यों दिल ढलने लगा और युवती के आने में विलम्ब होने लगा, उसके मन में एक तरंग-सी उठने लगी कि जा कर केशव को फटकारे, उसका सारा नशा उतार दे, कहे—तुम इतने भयंकर हिंसक हो, इतने महान् धूर्त हो, यह मुझे मालूम न था। तुम यही विद्या सीखने आये थे। तुम्हारे पांडित्य का यही फल है ! तुम एक अबला को जिसने तुम्हारे ऊपर सर्वस्व अर्पण कर दिया, यों छल सकते हो। तुममें क्या मुनष्यता नाम को भी नहीं रह गयी ? आखिर तुमने मेरे लिए क्या सोचा है। मैं सारी जिंदगी तुम्हारे नाम को रोती रहूँ ! लेकिन अभिमान हर बार उसके पैरों को रोक लेता। नहीं, जिसने उसके साथ ऐसा कपट किया है, उसका इतना अपमान किया है, उसके पास वह न जायगी। वह उसे देख कर अपने आँसुओं को रोक सकेगी या नहीं, इसमें उसे संदेह था, और केशव के सामने वह रोना नहीं चाहती थी। अगर केशव उसे घृणा करता है, तो वह भी केशव से घृणा करेगी। संध्या भी हो गयी, पर युवती न आयी। बत्तियाँ भी जलीं, पर उसका पता नहीं।

एकाएक उसे अपने कमरे के द्वार पर किसी के आने की आहट मालूम हुई। वह कूद कर बाहर निकल आयी। युवती कपड़ों का एक पुलिंदा लिये सामने खड़ी थी। सुभद्रा को देखते ही बोली—क्षमा करना, मुझे आने में देर हो गयी। बात यह है कि केशव को किसी बड़े जरूरी काम से जर्मनी जाना है। वहाँ उन्हें एक महीने से ज्यादा लग जायगा। वह चाहते हैं कि मैं भी उनके साथ चलूँ। मुझसे उन्हें अपनी थीसिस लिखने में बड़ी सहायता मिलेगी। बर्लिन के पुस्तकालयों को छानना पड़ेगा। मैंने भी स्वीकार कर लिया है। केशव की इच्छा है कि जर्मनी जाने से पहले हमारा विवाह हो जाय। कल संध्या समय संस्कार हो जायगा। अब ये कपड़े मुझे आप जर्मनी से लौटने पर दीजिएगा। विवाह के अवसर पर हम मामूली कपड़े पहन लेंगे। और क्या करती? इसके सिवा कोई उपाय न था, केशव का जर्मनी जाना अनिवार्य है।

सुभद्रा ने कपड़ों को मेज पर रख कर कहा—आपको धोखा दिया गया है।

युवती ने घबरा कर पूछा—धोखा ? कैसा धोखा ? मैं बिलकुल नहीं समझती। तुम्हारा मतलब क्या है ?

सुभद्रा ने संकोच के आवरण को हटाने की चेष्टा करते हुए कहा–केशव तुम्हें धोखा दे कर तुमसे विवाह करना चाहता है।

'केशव ऐसा आदमी नहीं है, जो किसी को धोखा दे। क्या तुम केशव को जानती हो ?'

'केशव ने तुमसे अपने विषय में सब-कुछ कह दिया है ?'

'सब-कुछ।'

'कोई भी बात नहीं छिपायी ?'

'मेरा तो यही विचार है कि उन्होंने एक बात भी नहीं छिपायी !'

'तुम्हें मालूम है कि उसका विवाह हो चुका है ?'

युवती की मुख-ज्योति कुछ मलिन पड़ गयी, उसकी गर्दन लज्जा से झुक गयी। अटक-अटक कर बोली–हाँ, उन्होंने मुझसे... यह बात कही थी।

सुभद्रा परास्त हो गयी। घृणा-सूचक नेत्रों से देखती हुई बोली–यह जानते हुए भी तुम केशव से विवाह करने पर तैयार हो ?

युवती ने अभिमान से देख कर कहा–तुमने केशव को देखा है ?

'नहीं, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा है।'

'फिर, तुम उन्हें कैसे जानती हो ?'

'मेरे एक मित्र ने मुझसे यह बात कही है, वह केशव को जानता है।'

'अगर तुम एक बार केशव को देख लेतीं, एक बार उससे बातें कर लेतीं, तो मुझसे यह प्रश्न न करतीं। एक नहीं, अगर उन्होंने एक सौ विवाह किये होते, तो मैं इनकार न करती। उन्हें देख कर मैं अपने को बिलकुल भूल जाती हूँ। अगर उनसे विवाह न करूँ, तो फिर मुझे जीवन भर अविवाहित ही रहना पड़ेगा। जिस समय वह मुझसे बातें करने लगते हैं, मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मेरी आत्मा पुष्प की भाँति खिली जा रही है। मैं उसमें प्रकाश और विकास का प्रत्यक्ष अनुभव करती हूँ। दुनिया चाहे जितना हँसे, चाहे जितनी निंदा करे, मैं केशव को अब नहीं छोड़ सकती। उनका विवाह हो चुका है, यह सत्य है; पर उस स्त्री से उनका मन कभी न मिला। यथार्थ में उनका विवाह अभी नहीं हुआ है। वह कोई साधारण, अर्द्धशिक्षिता बालिका है। तुम्हीं सोचो, केशव जैरा विद्वान् उदारचेता, मनस्वी पुरुष ऐसी बालिका के साथ कैसे प्रसन्न रह सकता है ? तुम्हें कल मेरे विवाह में चलना पड़ेगा।'

सुभद्रा का चेहरा तमतमाया जा रहा था। केशव ने उसे इतने काले रंगों में रंगा है, यह सोच कर उसका रक्त खौल रहा था। जी में आता था, इसी क्षण इसको दुत्कार दूँ, लेकिन उसके मन में कुछ और ही मंसूबे पैदा होने लगे थे। उसने गंभीर, पर उदासीनता के भाव से पूछा–केशव ने कुछ उस स्त्री के विषय में नहीं कहा ?

युवती ने तत्परता से कहा–घर पहुँचने पर वह उससे केवल यही कह देंगे कि हम और तुम अब स्त्री और पुरुष नहीं रह सकते। उसके भरण-पोषण का वह उसके इच्छानुसार प्रबंध कर देंगे, इसके सिवा वह और क्या कर सकते हैं। हिन्दू-नीति में पति-पत्नी में विच्छेद नहीं हो सकता। पर केवल स्त्री को पूर्ण रीति से स्वाधीन कर देने के विचार से वह

ईसाई या मुसलमान होने पर भी तैयार हैं। वह तो अभी उसे इसी आशय का एक पत्र लिखने जा रहे थे, पर मैंने ही रोक लिया। मुझे उस अभागिनी पर बड़ी दया आती है, मैं तो यहाँ तक तैयार हूँ कि अगर उसकी इच्छा हो तो वह भी हमारे साथ रहे। मैं उसे अपनी बहन समझूँगी। किंतु केशव इससे सहमत नहीं होते।

सुभद्रा ने व्यंग्य से कहा—रोटी-कपड़ा देने को तैयार ही हैं, स्त्री को इसके सिवा और क्या चाहिए ?

युवती ने व्यंग्य की कुछ परवा न करके कहा—तो मुझे लौटने पर कपड़े तैयार मिलेंगे न ?

सुभद्रा—हाँ, मिल जायँगे।

युवती—कल तुम संध्या समय आओगी ?

सुभद्रा—नहीं, खेद है, अवकाश नहीं है।

युवती ने कुछ न कहा। चली गयी।

6

मानो ज्वाला-सी दहक रही थी ! केशव के लिए वह अपने प्राणों का कोई मूल्य नहीं समझती थी। वही केशव उसे पैरों से ठुकरा रहा है। यह आघात इतना आकस्मिक, इतना कठोर था कि उसकी चेतना की सारी कोमलता मूर्च्छित हो गयी ! उसका एक-एक अणु प्रतिकार के लिए तड़पने लगा। अगर यही समस्या इसके विपरीत होती, तो क्या सुभद्रा की गरदन पर छुरी न फिर गयी होती ? केशव उसके खून का प्यासा न हो जाता ? क्या पुरुष हो जाने से ही सभी बातें क्षम्य और स्त्री हो जाने से सभी बातें अक्षम्य हो जाती हैं ? नहीं, इस निर्णय को सुभद्रा की विद्रोही आत्मा इस समय स्वीकार नहीं कर सकती। उसे नारियों के ऊँचे आदर्शों की परवा नहीं है। उन स्त्रियों में आत्माभिमान न होगा ? वे पुरुषों के पैरों की जूतियाँ बन कर रहने ही में अपना सौभाग्य समझती होंगी। सुभद्रा इतनी आत्माभिमान-शून्य नहीं है। वह अपने जीते-जी यह नहीं देख सकती थी कि उसका पति उसके जीवन का सर्वनाश करके चैन की बंशी बजाये। दुनिया उसे हत्यारिन, पिशाचिनी कहेगी, कहे—उसको परवाह नहीं। रह-रह कर उसके मन में भयंकर प्रेरणा होती थी कि इसी समय उसके पास चली जाय, और इसके पहले कि वह उस युवती के प्रेम का आनंद उठाये, उसके जीवन का अंत कर दे। वह केशव की निष्ठुरता को याद करके अपने मन को उत्तेजित करती थी। अपने को धिक्कार-धिक्कार कर नारी सुलभ शंकाओं को दूर करती थी। क्या वह इतनी दुर्बल है? क्या उसमें इतना साहस भी नहीं है ? इस वक्त यदि कोई दुष्ट उसके कमरे में घुस आये और उसके सतीत्व का अपहरण करना चाहे, तो क्या वह उसका प्रतिकार न करेगी? आखिर आत्म-रक्षा ही के लिए तो उसने यह पिस्तौल ले रखी है। केशव ने उसके सत्य का अपहरण ही तो किया है। उसका प्रेम-दर्शन केवल प्रवंचना थी। वह केवल अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए सुभद्रा के साथ प्रेम-स्वाँग भरता था। फिर उसका वध करना क्या सुभद्रा का कर्त्तव्य नहीं ?

उस अंतिम कल्पना से सुभद्रा को वह उत्तेजना मिल गयी, जो उसके भयंकर संकल्प को पूरा करने के लिए आवश्यक थी। यही वह अवस्था है, जब स्त्री पुरुष के खून की प्यासी हो जाती है।

उसने खूँटी पर लटकती हुई पिस्तौल उतार ली और ध्यान से देखने लगी, मानो उसे कभी देखा न हो। कल संध्या-समय जब आर्य-मंदिर में केशव और उसकी प्रेमिका एक दूसरे के सम्मुख बैठे हुए होंगे, उसी समय वह इस गोली से केशव की प्रेम-लीलाओं का अंत कर देगी। दूसरी गोली अपनी छाती में मार लेगी। क्या वह रो-रो कर अपना अधम जीवन काटेगी ?

7

संध्या का समय था। आर्य-मंदिर के आँगन में वर और वधू इष्ट-मित्रों के साथ बैठे हुए थे। विवाह का संस्कार हो रहा था। उसी समय सुभद्रा पहुँची और बरामदे में एक खम्भे की आड़ में इस भाँति खड़ी हो गयी कि केशव का मुँह उसके सामने था। उसकी आँखों में वह दृश्य खिंच गया, जब आज से तीन साल पहले उसने इसी भाँति केशव को मंडप में बैठे हुए आड़ से देखा था। तब उसका हृदय कितना उछ्वसित हो रहा था। अंतस्तल में गुदगुदी-सी हो रही थी, कितना अपार अनुराग था, कितनी असीम अभिलाषाएँ थीं, मानों जीवन-प्रभात का उदय हो रहा हो। जीवन मधुर संगीत की भाँति सुखद था, भविष्य ऊषा-स्वप्न की भाँति सुन्दर। क्या यह वही केशव है ? सुभद्रा को ऐसा भ्रम हुआ, मानो यह केशव नहीं है। हाँ, यह वह केशव नहीं था। यह उसी रूप और उसी नाम का कोई दूसरा मनुष्य था। अब उसकी मुस्कराहट में, उसके नेत्रों में, उसके शब्दों में, उसके हृदय को आकर्षित करने वाली कोई वस्तु न थी। उसे देख कर वह उसी भाँति निस्पंद, निश्चल खड़ी है, मानो कोई अपरिचित व्यक्ति हो। अब तक केशव का-सा रूपवान, तेजस्वी, सौम्य, शीलवान् पुरुष संसार में न था; पर अब सुभद्रा को ऐसा जान पड़ा की वहाँ बैठे हुए युवकों में और उसमें कोई अंतर नहीं है। वह ईर्ष्याग्नि, जिसमें वह जली जा रही थी, वह हिंसा-कल्पना, जो उसे वहाँ तक लायी थी, मानों एकदम शांत हो गयी। विरक्ति हिंसा से भी अधिक हिंसात्मक होती है—सुभद्रा की हिंसा-कल्पना में एक प्रकार का ममत्व था—उसका केशव, उसका प्राणवल्लभ, उसका जीवन-सर्वस्व और किसी का नहीं हो सकता। पर अब वह ममत्व नहीं है। वह उसका नहीं है, उसे अब परवा नहीं, उस पर किसका अधिकार होता है।

विवाह-संस्कार समाप्त हो गया, मित्रों ने बधाइयाँ दीं, सहेलियों ने मंगलगान किया, फिर लोग मेजों पर जा बैठे, दावत होने लगी, रात के बारह बज गये; पर सुभद्रा वहीं पाषाण-मूर्ति की भाँति खड़ी रही, मानों कोई विचित्र स्वप्न देख रही हो। हाँ, जैसे कोई बस्ती उजड़ गयी हो, जैसे कोई संगीत बंद हो गया हो, जैसे कोई दीपक बुझ गया है।

जब लोग मंदिर से निकले, तो वह भी निकल आयी; पर उसे कोई मार्ग न सूझता था। परिचित सड़कें उसे भूली हुई-सी जान पड़ने लगीं। सारा संसार ही बदल गया था। वह सारी रात सड़कों पर भटकती फिरी। घर का कहीं पता नहीं। सारी दुकानें बंद हो गयीं, सड़कों पर सन्नाटा छा गया, फिर भी वह अपना घर ढूँढ़ती हुई चली जा रही थी। हाय !

क्या इसी भाँति उसे जीवन-पथ में भी भटकना पड़ेगा ?

सहसा एक पुलिसमैन ने पुकारा—मैडम, तुम कहाँ जा रही हो ?

सुभद्रा ने ठिठक कर कहा—कहीं नहीं।

'तुम्हारा स्थान कहाँ है ?'

'मेरा स्थान ?'

'हाँ, तुम्हारा स्थान कहाँ है ? मैं तुम्हें बड़ी देर से इधर-उधर भटकते देख रहा हूँ। किस स्ट्रीट में रहती हो ?'

सुभद्रा को उस स्ट्रीट का नाम तक न याद था।

'तुम्हें अपने स्ट्रीट का नाम तक याद नहीं ?'

'भूल गयी, याद नहीं आता।'

सहसा उसकी दृष्टि सामने के एक साइन बोर्ड की तरफ उठी, ओह ! यही तो उसकी स्ट्रीट है। उसने सिर उठा कर इधर-उधर देखा। सामने ही उसका डेरा था। और इसी गली में, अपने ही घर के सामने, न-जाने कितनी देर से वह चक्कर लगा रही थी।

8

अभी प्रातःकाल ही था कि युवती सुभद्रा के कमरे में पहुँची। वह उसके कपड़े सी रही थी। उसका सारा तन-मन कपड़ों में लगा हुआ था। कोई युवती इतनी एकाग्रचित्त हो कर अपना श्रृंगार भी न करती होगी। न-जाने उससे कौन-सा पुरस्कार लेना चाहती थी। उसे युवती के आने की खबर न हुई।

युवती ने पूछा—तुम कल मंदिर में नहीं आयीं ?

सुभद्रा ने सिर उठा कर देखा, तो ऐसा जान पड़ा मानो किसी कवि की कोमल कल्पना मूर्तिमयी हो गयी है। उसकी उप छवि अनिंद्य थी। प्रेम की विभूति रोम-रोम से प्रदर्शित हो रही थी। सुभद्रा दौड़ कर उसके गले से लिपट गयी, जैसे उसकी छोटी बहन आ गयी हो और बोली—हाँ, गयी तो थी।

'मैंने तुम्हें नहीं देखा।'

'हाँ, मैं अलग थी।'

'केशव को देखा ?'

'हाँ देखा।'

'धीर से क्यों बोलीं ? मैंने कुछ झूठ कहा था ?'

सुभद्रा ने सहृदयता से मुस्करा कर कहा—मैंने तुम्हारी आँखों से नहीं, अपनी आँखों से देखा। मुझे तो वह तुम्हारे योग्य नहीं जँचे। तुम्हें ठग लिया।

युवती खिलखिला कर हँसी और बोली—वह ! मैं समझती हूँ, मैंने उन्हें ठगा है।

सुभद्रा ने गम्भीर हो कर कहा—एक बार वस्त्राभूषणों से सज कर अपनी छवि आईने में देखो तो मालूम हो।

'तब क्या मैं कुछ और हो जाऊँगी।'

'अपने कमरे से फर्श, तसवीरें, हाँड़ियाँ, गमले आदि निकाल कर देख लो, कमरे की

शोभा वही रहती है !'

युवती ने सिर हिला कर कहा—ठीक कहती हो। लेकिन आभूषण कहाँ से लाऊँ। न-जाने अभी कितने दिनों में बनने की नौबत आये।

'मैं तुम्हें अपने गहने पहना दूँगी।

'तुम्हारे पास गहने हैं ?'

'बहुत। देखो, मैं अभी ला कर तुम्हें पहनाती हूँ।'

युवती ने मुँह से बहुत 'नहीं-नहीं' किया, पर मन में प्रसन्न हो रही थी। सुभद्रा ने अपने सारे गहने पहना दिये। अपने पास एक छल्ला भी न रखा। युवती को यह नया अनुभव था। उसे इस रूप में निकलते शर्म तो आती थी; पर उसका रूप चमक उठा था। इसमें संदेह न था। उसने आईने में अपनी सूरत देखी तो उसकी सूरत जगमगा उठी, मानों किसी वियोगिनी को अपने प्रियतम का संवाद मिला हो। मन में गुदगुदी होने लगी। वह इतनी रूपवती है, उसे उसकी कल्पना भी न थी।

कहीं केशव इस रूप में उसे देख लेते; यह आकांक्षा उसके मन में उदय हुई, पर कहे कैसे। कुछ देर के बाद लज्जा से सिर झुका कर बोली—केशव मुझे इस रूप में देख कर बहुत हँसेंगे।

सुभद्रा—हँसेंगे नहीं, बलैया लेंगे, आँखें खुल जायँगी। तुम आज इसी रूप में उसके पास जाना।

युवती ने चकित हो कर कहा—सच ! आप इसकी अनुमति देती हैं ?

सुभद्रा ने कहा—बड़े हर्ष से।

'तुम्हें संदेह न होगा ?'

'बिल्कुल नहीं।'

'और जो मैं दो-चार दिन पहने रहूँ ?'

'तुम दो-चार महीने पहने रहो। आखिर, यहाँ पड़े ही तो हैं !'

'तुम भी मेरे साथ चलो।'

'नहीं, मुझे अवकाश नहीं है।'

'अच्छा, लो मेरे घर का पता नोट कर लो।'

'हाँ, लिख दो, शायद कभी आऊँ।'

एक क्षण में युवती यहाँ से चली गयी सुभद्रा अपनी खिड़की पर उसे इस भाँति प्रसन्न-मुख खड़ी देख रही थी, मानों उसकी छोटी बहन हो, ईर्ष्या या द्वेष का लेश भी उसके मन में न था।

मुश्किल से, एक घंटा गुजरा होगा कि युवती लौट कर बोली—सुभद्रा क्षमा करना, मैं तुम्हारा समय बहुत खराब कर रही हूँ। केशव बाहर खड़े हैं ! बुला लूँ ?

एक क्षण, केवल एक क्षण के लिए सुभद्रा कुछ घबड़ा गयी। उसने जल्दी से उठ कर मेज पर पड़ी हुई चीजें इधर-उधर हटा दीं, कपड़े करीने से रख दिये, अपने उलझे हुए बाल सँभाल लिये, फिर उदासीन भाव से मुस्करा कर बोली—उन्हें तुमने क्यों कष्ट दिया। जाओ बुला लो।

एक मिनट में केशव ने कमरे में कदम रखा और चौंक कर पीछे हट गये, मानो पाँव जल गया हो। मुँह से एक चीख निकल गयी। सुभद्रा गम्भीर, शांत, निश्चल अपनी जगह पर खड़ी रही। फिर हाथ बढ़ा कर बोली मानो किसी अपरिचित व्यक्ति से बोल रही हो—आइए मिस्टर केशव, मैं आपको ऐसी सुशील, ऐसी सुन्दरी, ऐसी विदुषी रमणी पाने पर बधाई देती हूँ।

केशव के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। वह पथ-भ्रष्ट-सा बना खड़ा था। लज्जा और ग्लानि से उसके चेहरे पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। यह बात एक दिन होनेवाली थी अवश्य, पर इस तरह अचानक उसकी सुभद्रा से भेंट होगी, इसका उसे स्वप्न में भी गुमान न था। सुभद्रा से यह बात कैसे कहेगा, इसको उसने खूब सोच लिया था। उसके आक्षेपों का उत्तर सोच लिया था, पत्र के शब्द तक मन में अंकित कर लिये थे। ये सारी तैयारियाँ धरी रह गयीं और सुभद्रा से साक्षात् हो गया। सुभद्रा उसे देख कर जरा भी नहीं चौंकी, उसके मुख पर आश्चर्य, घबराहट या दुःख का एक चिह्न भी न दिखायी दिया उसने उसी भाँति उससे बात की; मानों वह कोई अजनबी हो। यहाँ कब आयी, कैसे आयी, क्यों आयी, कैसे गुजर करती है; यह और इस तरह के असंख्य प्रश्न पूछने के लिए केशव का चित्त चंचल हो उठा। उसने सोचा था सुभद्रा उसे धिक्कारेगी; विष खाने की धमकी देगी—निष्ठुर; निर्दय और न-जाने क्या-क्या कहेगी। इन सब आपदाओं के लिए वह तैयार था; पर इस आकस्मिक मिलन, इस गर्वयुक्त उपेक्षा के लिए वह तैयार न था। वह प्रेम-व्रतधारिणी सुभद्रा इतनी कठोर, इतनी हृदय-शून्य हो गयी है ! अवश्य ही उसे सारी बातें पहले ही मालूम हो चुकी हैं। सब से तीव्र आघात यह था कि इसने अपने सारे आभूषण इतनी उदारता से दे डाले, और कौन जाने वापस भी न लेना चाहती हो। वह परास्त और अप्रतिभ हो कर एक कुर्सी पर बैठ गया। उत्तर में एक शब्द भी उसके मुख से न निकला।

युवती ने कृतज्ञता का भाव प्रकट करके कहा—इनके पति इस समय जर्मनी में हैं।

केशव ने आँखें फाड़कर देखा, पर कुछ बोल न सका।

युवती ने फिर कहा—बेचारी संगीत के पाठ पढ़ा कर और कुछ कपड़े सी कर अपना निर्वाह करती हैं। वह महाशय यहाँ आ जाते, तो उन्हें उनके सौभाग्य पर बधाई देती।

केशव इस पर भी कुछ न बोल सका, पर सुभद्रा ने मुस्करा कर कहा—वह मुझसे रूठे हुए हैं, बधाई पा कर और भी झल्लाते। युवती ने आश्चर्य से कहा—तुम उन्हीं के प्रेम से यहाँ आयीं, अपना घरबार छोड़ा, यहाँ मिहनत-मजूरी करके निर्वाह कर रही हो, फिर भी वह तुमसे रूठे हुए हैं ? आश्चर्य !

सुभद्रा ने उसी भाँति प्रसन्न-मुख से कहा—पुरुष-प्रकृति ही आश्चर्य का विषय है, चाहे मि. केशव इसे स्वीकार न करें।

युवती ने फिर केशव की ओर प्रेरणा-पूर्ण दृष्टि से देखा, लेकिन केशव उसी भाँति अप्रतिभ बैठा रहा। उसके हृदय पर यह नया आघात था। युवती ने उसे चुप देख कर उसकी तरफ से सफाई दी—केशव, स्त्री और पुरुष, दोनों ही को समान अधिकार देना चाहते हैं।

केशव डूब रहा था, तिनके का सहारा पा कर उसकी हिम्मत बँध गयी। बोला—विवाह एक प्रकार का समझौता है। दोनों पक्षों को अधिकार है, जब चाहे उसे तोड़ दें।

युवती ने हामी भरी—सभ्य-समाज में यह आंदोलन बड़े जोरों पर है।

सुभद्रा ने शंका की—किसी समझौते को तोड़ने के लिए कारण भी तो होना चाहिए ?

केशव ने भावों की लाठी का सहारा ले कर कहा—जब इसका अनुभव हो जाय कि हम इस बंधन से मुक्त हो कर अधिक सुखी हो सकते हैं, तो यही कारण काफी है। स्त्री को यदि मालूम हो जाय कि वह दूसरे पुरुष के साथ...

सुभद्रा ने बात काट कर कहा—क्षमा कीजिए मि. केशव, मुझमें इतनी बुद्धि नहीं कि इस विषय पर आप से बहस कर सकूँ। आदर्श समझौता वही है, जो जीवन-पर्यंत रहे। मैं भारत की नहीं कहती। वहाँ तो स्त्री पुरुष की लौंडी है, मैं इंग्लैंड की कहती हूँ। यहाँ भी कितनी ही औरतों से मेरी बातचीत हुई है। वे तलाकों की बढ़ती हुई संख्या को देख कर खुश नहीं होतीं। विवाह का सब से ऊँचा आदर्श उसकी पवित्रता और स्थिरता है। पुरुषों ने सदैव इस आदर्श को तोड़ा है, स्त्रियों ने निबाहा है। अब पुरुषों का अन्याय स्त्रियों को किस ओर ले जायगा, नहीं कह सकती।

इस गम्भीर और संयत कथन ने विवाद का अंत कर दिया। सुभद्रा ने चाय मँगवायी। तीनों आदमियों ने पी। केवल पूछना चाहता था, अभी आप यहाँ कितने दिनों रहेंगी। लेकिन न पूछ सका। वह यहाँ पंद्रह मिनट और रहा, लेकिन विचारों में डूबा हुआ। चलते समय उससे न रहा गया। पूछ ही बैठा—अभी आप यहाँ कितने दिन और रहेंगी ?

सुभद्रा ने जमीन की ओर ताकते हुए कहा—कह नहीं सकती।

'कोई जरूरत हो, तो मुझे याद कीजिए।'

'इस आश्वासन के लिए आपको धन्यवाद।'

केशव सारे दिन बेचैन रहा। सुभद्रा उसकी आँखों में फिरती रही। सुभद्रा की बातें उसके कानों में गूँजती रहीं। अब उसे इसमें कोई संदेह न था कि उसी के प्रेम में सुभद्रा यहाँ आयी थी। सारी परिस्थिति उसकी समझ में आ गयी थी। उस भीषण त्याग का अनुमान करके उसके रोयें खड़े हो गये। यहाँ सुभद्रा ने क्या-क्या कष्ट झेले होंगे, कैसी-कैसी यातनाएँ सही होंगी, सब उसी के कारण ? वह उस पर भार न बनना चाहती थी, इसलिए तो उसने अपने आने की सूचना तक उसे न दी। अगर उसे पहले मालूम होता कि सुभद्रा यहाँ आ गयी है, तो कदाचित् उसे उस यवुती की ओर इतना आकर्षण ही न होता। चौकीदार के सामने चोर को घर में घुसने का साहस नहीं होता। सुभद्रा को देख कर उसकी कर्तव्य-चेतना जाग्रत हो गयी। उसके पैरों पर गिर कर उससे क्षमा माँगने के लिए उसका मन अधीर हो उठा। वह उसके मुँह से सारा वृत्तांत सुनेगा। यह मौन उपेक्षा उसके लिए असह्य थी। दिन तो केशव ने किसी तरह काटा, लेकिन ज्यों ही रात के दस़ बजे, वह सुभद्रा से मिलने चला। युवती ने पूछा—कहाँ जाते हो ?

केशव ने बूट का लेस बाँधते हुए कहा—जरा एक प्रोफेसर से मिलना है, इस वक्त आने का वादा कर चुका हूँ ?

'जल्द आना।'

'बहुत जल्द आऊँगा।'

केशव घर से निकला, तो उसके मन में कितनी ही विचार-तरंगें उठने लगीं। कहीं सुभद्रा मिलने से इन्कार कर दे, तो ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। वह इतनी अनुदार नहीं है। हाँ, यह हो सकता है कि वह अपने विषय में कुछ न कहे। उसे शांत करने के लिए उसने एक कृपा की कल्पना कर डाली। ऐसा बीमार था कि बचने की आशा न थी। उर्मिला ने ऐसा तन्मय होकर उसकी सेवा-शूश्रूषा की कि उसे उससे प्रेम हो गया। कथा का सुभद्रा पर जो असर पड़ेगा, इसके विषय में केशव को कोई संदेह न था। परिस्थिति का बोध होने पर वह उसे क्षमा कर देगी। लेकिन इसका फल क्या होगा? क्या वह दोनों के साथ एक-सा प्रेम कर सकता है ? सुभद्रा को देख लेने के बाद उर्मिला को शायद उसके साथ-साथ रहने में आपत्ति हो। आपत्ति हो ही कैसे सकती है ! उससे यह बात छिपी नहीं है। हाँ, यह देखना है कि सुभद्रा भी इसे स्वीकार करती है कि नहीं। उसने जिस उपेक्षा का परिचय दिया है, उसे देखते हुए तो उसके मानने में संदेह ही जान पड़ता है। मगर वह उसे मनायेगा, उसकी विनती करेगा, उसके पैरों पड़ेगा और अंत में उसे मना कर ही छोड़ेगा। सुभद्रा से प्रेम और अनुराग का नया प्रमाण पा कर वह मानो एक कठोर निद्रा से जाग उठा था। उसे अब अनुभव हो रहा था कि सुभद्रा के लिये उसके हृदय में जो स्थान था, वह खाली पड़ा हुआ है। उर्मिला उस स्थान पर अपना आधिपत्य नहीं जमा सकती। अब उसे ज्ञात हुआ कि उर्मिला के प्रति उसका प्रेम केवल वह तृष्णा थी, जो स्वादयुक्त पदार्थों को देखकर ही उत्पन्न होती है। वह सच्ची क्षुधा न थी। अब फिर उसे सरल सामान्य भोजन की इच्छा हो रही थी। विलासिनी उर्मिला कभी इतना त्याग कर सकती है. इसमें उसे संदेह था।

सुभद्रा के घर के निकट पहुँच कर केशव का मन कुछ कातर होने लगा। लेकिन उसने जी कड़ा करके जीने पर कदम रक्खा और एक क्षण में सुभद्रा के द्वार पर पहुँचा. लेकिन कमरे का द्वार बंद था। अंदर भी प्रकाश न था। अवश्य ही वह कहीं गयी है, आती ही होगी। तब तक उसने बरामदे में टहलने का निश्चय किया।

सहसा मालकिन आती हुई दिखायी दी। केशव ने बढ़ कर पूछा—आप बता सकती हैं कि यह महिला कहाँ गयी हैं ?

मालकिन ने उसे सिर से पाँव तक देख कर कहा—वह तो आज यहाँ से चली गयीं।

केशव ने हकबका कर पूछा—चली गयीं ! कहाँ चली गयीं ?

'यह तो मुझसे कुछ नहीं बताया।'

'कब गयीं ?'

'वह तो दोपहर को ही चली गयीं !'

'अपना असबाब ले कर गयीं ?'

'असबाब किसके लिए छोड़ जाती ? हाँ, एक छोटा-सा पैकेट अपनी एक सहेली के लिए छोड़ गयी हैं। उस पर मिसेज केशव लिखा हुआ है। मुझसे कहा था कि यदि वह आ जायँ, तो उन्हें दे देना, नहीं तो डाक से भेज देना।'

केशव को अपना हृदय इस तरह बैठता हुआ मालूम हुआ जैसे सूर्य का अस्त होना है। एक गहरी साँस ले कर बोला–

'आप मुझे वह पैकेट दिखा सकती हैं ? केशव मेरा ही नाम है।'

मालकिन ने मुस्करा कर कहा–मिसेज केशव को कोई आपत्ति तो न होगी ?

'तो फिर मैं उन्हें बुला लाऊँ ?'

'हाँ, उचित तो यही है !'

'बहुत दूर जाना पड़ेगा !'

केशव कुछ ठिठकता हुआ जीने की ओर चला, तो मालकिन ने फिर कहा–मैं समझती हूँ, आप इसे लिये ही जाइए, व्यर्थ आपको क्यों दौड़ाऊँ। मगर कल मेरे पास एक रसीद भेज दीजिएगा। शायद उसकी जरूरत पड़े !

यह कहते हुए उसने एक छोटा-सा पैकेट ला कर केशव को दे दिया। केशव पैकेट ले कर इस तरह भागा, मानो कोई चोर भागा जा रहा हो। इस पैकेट में क्या है, यह जानने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो रहा था। उसे इतना विलम्ब असह्य था कि अपने स्थान पर जा कर उसे खोले। समीप ही एक पार्क था। वहाँ जा कर उसने बिजली के प्रकाश में इस पैकेट को खोल डाला। उस समय उसके हाथ काँप रहे थे और हृदय इतने वेग से धड़क रहा था, मानो किसी बंधु की बीमारी के समाचार के बाद तार मिला हो।

पैकेट का खुलना था कि केशव की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। उसमें एक पीले रंग की साड़ी थी, एक छोटी-सी सेंदूर की डिबिया और एक केशव का फोटो-चित्र के साथ ही एक लिफाफा भी था। केशव ने उसे खोल कर पढ़ा। उसमें लिखा था–

'बहन, मैं जाती हूँ। यह मेरे सोहाग का शव है। उसे टेम्स नदी में विसर्जित कर देना। तुम्हीं लोगों के हाथों यह संस्कार भी हो जाय, तो अच्छा।

तुम्हारी,
सुभद्रा'

केशव मर्माहत-सा पत्र हाथ में लिये वहीं घास पर लेट गया और फूट-फूट कर रोने लगा।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक 'माधुरी', जुलाई, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित। उर्दू रूप 'सुहागन का जनाजा' शीर्षक से 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

दारोगाजी

कल शाम को एक जरूरत से ताँगे पर बैठा हुआ जा रहा था कि रास्ते में एक और महाशय ताँगे पर आ बैठे। ताँगेवाला उन्हें बैठाना तो न चाहता था, पर इनकार भी न कर सकता था। पुलिस के आदमी से झगड़ा कौन मोल ले। यह साहब किसी थाने के दारोगा थे। एक मुकदमे की पैरवी करने सदर आये थे ! मेरी आदत है कि पुलिसवालों से बहुत कम बोलता हूँ। सच पूछिए, तो मुझे उनकी सूरत से नफरत है। उनके हाथों प्रजा को कितने कष्ट

उठाने पड़ते हैं, इसका अनुभव इस जीवन में कई बार कर चुका हूँ। मैं जरा एक तरफ खिसक गया और मुँह फेरकर दूसरी ओर देखने लगा कि दारोगाजी बोले—जनाब, यह आम शिकायत है कि पुलिसवाले बहुत रिश्वत लेते हैं; लेकिन यह कोई नहीं देखता कि पुलिसवाले रिश्वत लेने के लिये कितने मजबूर किये जाते हैं। अगर पुलिसवाले रिश्वत लेना बन्द कर दें तो मैं हलफ से कहता हूँ, ये जो बड़े-बड़े ऊँची पगड़ियोंवाले रईस नजर आते हैं, सब-के-सब जेलखाने के अन्दर बैठे दिखाई दें। अगर हर एक मामले का चालान करने लगें, तो दुनिया पुलिसवालों को और भी बदनाम करे। आपको यकीन न आयेगा जनाब, रुपये की थैलियाँ गले लगाई जाती हैं। हम हजार इनकार करें, पर चारों तरफ से ऐसे दबाव पड़ते हैं कि लाचार होकर लेना ही पड़ता है।

मैंने उपहास के भाव से कहा—जो काम रुपये लेकर किया जाता है, वही काम बिना रुपये लिये भी तो किया जा सकता है।

दारोगाजी हँसकर बोले—वह तो गुनाह बेलज्जत होगा, बंदापरवर। पुलिस का आदमी इतना कट्टर देवता नहीं होता, और मेरा खयाल है कि शायद कोई इंसान भी इतना बेलौस नहीं हो सकता। और सींगों के लोगों को भी देखता हूँ, मुझे तो कोई देवता न मिला....

मैं अभी इसका कुछ जवाब दे ही रहा था कि एक मियाँ साहब लम्बी अचकन पहने, तुर्की टोपी लगाये, ताँगे के सामने से निकले। दारोगाजी ने उन्हें देखते ही झुककर सलाम किया और शायद मिजाज शरीफ पूछना चाहते थे कि उस भले आदमी ने सलाम का जवाब गालियों से देना शुरू किया। जब ताँगा कई कदम आगे निकल आया; तो वह एक पत्थर लेकर ताँगे के पीछे दौड़ा। ताँगेवाले ने घोड़े को तेज किया। उस भलेमानुस ने भी कदम तेज किये और पत्थर फेंका। मेरा सिर बाल-बाल बच गया। उसने दूसरा पत्थर उठाया, वह हमारे सामने आकर गिरा। तीसरा पत्थर इतनी जोर से आया कि दारोगाजी के घुटने में बड़ी चोट आयी; पर इतनी देर में ताँगा इतनी दूर निकल आया था कि हम पत्थरों की मार से दूर हो गये थे। हाँ, गालियों की मार अभी तक जारी थी। जब तक वह आदमी आँखों से ओझल न हो गया, हम उसे एक हाथ में पत्थर उठाये, गालियाँ बकते हुए देखते रहे।

जब जरा चित्त शान्त हुआ, मैंने दारोगाजी से पूछा—यह कौन आदमी है, साहब? कोई पागल तो नहीं है ?

दारोगाजी ने घुटने को सहलाते हुए कहा—पागल नहीं है साहब, मेरा पुराना दुश्मन है। मैंने समझा था, जालिम पिछली बातें भूल गया होगा। वरना मुझे क्या पड़ी थी कि सलाम करने जाता।

मैंने पूछा—आपने इसे किसी मुकदमे में सजा दिलाई होगी ?

'बड़ी लम्बी दास्तान है जनाब ! बस इतना ही समझ लीजिए कि इसका बस चले, तो मुझे जिन्दा ही निगल जाय।'

'आप तो शोक की आग को और भड़का रहे हैं। अब तो वह दास्तान सुने बगैर तस्कीन न होगी।'

दारोगाजी ने पहलू बदलकर कहा—अच्छी बात है, सुनिए। कई साल हुए, मैं सदर में

ही तैनात था। बेफिक्री के दिन थे, ताजा खून, एक माशूक से आँख लड़ गई। आमदरफ्त शुरू हुई। अब भी जब उस हसीना की याद आती है, तो आँखों से आँसू निकल आते हैं। बाजारू औरतों में इतनी हया, इतनी वफा, इतनी मुरव्वत मैंने नहीं देखी। दो साल उसके साथ इतने लुत्फ से गुजरे कि आज भी उसकी याद करके रोता हूँ। मगर किस्से को बढ़ाऊँगा नहीं, वरना अधूरा ही रह जायगा। मुख्तसर यह कि दो साल के बाद मेरे तबादले का हुक्म आ गया। उस वक्त दिल को जितना सदमा पहुँचा, उसका जिक्र करने के लिए दफ्तर चाहिए। बस, यही जी चाहता था कि इस्तीफा दे दूँ। उस हसीना ने यह खबर सुनी, तो उसकी जान-सी निकल गई। सफर की तैयारी के लिए मुझे तीन दिन मिले थे। ये तीन दिन हमने मंसूबे बाँधने में काटे। उस वक्त मुझे अनुभव हुआ कि औरतों को अक्ल से खाली समझने में हमने कितनी बड़ी गलती की है। मेरे मंसूबे शेखचिल्ली के-से होते थे। कलकत्ते भाग चलें, वहाँ कोई दूकान खोल दें, या इसी तरह कोई दूसरी तजवीज करता। लेकिन वह यही जवाब देती कि अभी वहाँ जाकर अपना काम करो। जब मकान का बन्दोबस्त हो जाय, तो मुझे बुला लेना। मैं दौड़ी चली आऊँगी।

आखिर जुदाई की घड़ी आई। मुझे मालूम होता था कि अब जान न बचेगी। गाड़ी का वक्त निकला जाता था और मैं उसके पास से उठने का नाम न लेता था। मगर मैं फिर किस्से को तूल देने लगा। खुलासा यह कि मैं उसे दो-तीन दिन में बुलाने का वादा करके रुखसत हुआ। पर अफसोस ! वे दो-तीन दिन कभी न आये। पहले दस-पाँच दिन तो अफसरों से मिलने और इलाके की देखभाल में गुजरे। इसके बाद घर से खत आ गया कि तुम्हारी शादी तय हो गई; रुखसत लेकर चले आओ। शादी की खुशी में उस वफा की देवी की मुझे फिक्र न रही। शादी करके महीने-भर बाद लौटा, तो बीवी साथ थी। रही-सही याद भी जाती रही। उसने एक महीने के बाद एक खत भेजा; पर मैंने उसका जवाब न दिया। डरता रहता था कि कहीं एक दिन वह आकर सिर पर सवार न हो जाय; फिर बीवी को मुँह दिखाने लायक भी न रह जाऊँ।

साल भर के बाद मुझे एक काम से सदर आना पड़ा। उस वक्त मुझे उस औरत की याद आई; सोचा, जरा चलकर देखना चाहिए, किस हालत में है। फौरन अपने खत न भेजने और इतने दिनों तक न आने का जवाब सोच लिया और उसके द्वार पर जा पहुँचा। दरवाजा साफ-सुथरा था, मकान की हालत भी पहले से अच्छी थी। दिल की खुशी हुई कि इसकी हालत उतनी खराब नहीं है, जितनी मैंने समझी थी। और, क्यों खराब होने लगी। मुझ जैसे दुनिया में क्या और आदमी ही नहीं हैं।

मैंने दरवाजा खटखटाया। अंदर से वह बंद था। आवाज आई—कौन है ?

मैंने कहा—वाह ! इतनी जल्द भूल गई, मैं हूँ, बशीर ...

कोई जवाब न मिला, आवाज उसी की थी, इसमें शक नहीं, फिर दरवाजा क्यों नहीं खोलती ? जरूर मुझसे नाराज है। मैंने फिर किवाड़ खटखटाये और लगा अपनी मुसीबतों का किस्सा सुनाने। कोई पन्द्रह मिनट के बाद दरवाजा खुला। हसीना ने मुझे इशारे से अन्दर बुलाया और चट किवाड़ बन्द कर लिये। मैंने कहा—मैं तुमसे मुआफी माँगने आया हूँ। यहाँ से जाकर मैं बड़ी मुश्किल में फँस गया। इलाका इतना खराब है कि दम मारने की

मुहलत नहीं मिलती।

हसीना ने मेरी तरफ न देखकर जमीन की तरफ ताकते हुए कहा—मुआफी किस बात की ? तुमसे मेरा निकाह तो हुआ न था। दिल कहीं और लग गया, तो मेरी याद क्यों आती। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। जैसा और लोग करते हैं, वैसा ही तुमने किया। यही क्या कम है कि इतने दिनों के बाद इधर आ तो गये। रहे तो खैरियत से ?

'किसी तरह जिंदा हूँ।'

'शायद जुदाई में घुलते-घुलते यह तोंद निकल आई है। खुदा झूठ न बुलवाये, तब से दूने हो गये।'

मैंने झेंपते हुए कहा—यह सारा बलगम का फिसाद है। भला मोटा मैं क्या होता। उधर का पानी निहायत बलगमी है। तुमने तो मेरी याद ही भुला दी।

उसने अबकी मेरी ओर तेज निगाहों से देखा और बोली—खत का जवाब तक न दिया, उलटे मुझी को इलजाम देते हो। मैं तुम्हें शुरू से बेवफा समझती थी और तुम वैसे ही निकले। बीवी लाये और मुझे खत तक न लिखा ?

मैंने ताज्जुब से पूछा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मेरी शादी हो गई ?

उसने रुखाई से कहा—यह पूछकर क्या करोगे ? झूठ तो नहीं कहती। बेवफा बहुत देखे, लेकिन तुम सबसे बढ़कर निकले। तुम्हारी आवाज सुनकर जी में तो आया कि दुत्कार दूँ; लेकिन यह सोचकर दरवाजा खोल दिया कि अपने दरवाजे पर किसी को क्या जलील करूँ।

मैंने कोट उतारकर खूँटी पर लटका दिया, जूते भी उतार डाले और चारपाई पर लेटकर बोला—लैली, देखो, इतनी बेरहमी से न पेश आओ। मैं तो अपनी खताओं को खुद तस्लीम करता हूँ और इसीलिए अब तुमसे मुआफी माँगने आया हूँ। जरा अपने नाजुक हाथों से एक पान तो खिला दो। सच कहना, तुम्हें मेरी याद काहे को आती होगी। कोई और यार मिल गया होगा।

लैली पानदान खोलकर पान बनाने लगी कि एकाएक किसी ने किवाड़ खटखटाये। मैंने घबराकर पूछा—यह कौन शैतान आ पहुँचा ?

हसीना ने होंठों पर उँगली रखते हुए कहा—यह मेरे शौहर हैं। तुम्हारी तरफ से जब निराश हो गई, तो मैंने इनके साथ निकाह कर लिया।

मैंने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—तो तुमने मुझसे पहले ही क्यों न बता दिया, मैं उलटे पाँव लौट न जाता, यह नौबत क्यों आती। न जाने कब की यह कसर निकाली।

'मुझे क्या मालूम कि यह इतने जल्द आ पहुँचेंगे। रोज तो पहर रात गये आते थे। फिर तुम इतनी दूर से आये थे, तुम्हारी कुछ खातिर भी तो करनी थी।'

'यह अच्छी खातिर की। बताओ; अब मैं जाऊँ कहाँ ?'

'मेरी समझ में खुद कुछ नहीं आ रहा है। या अल्लाह ! किस अजाब में फँसी।'

इतने में उन साहब ने दरवाजा खटखटाया। ऐसा मालूम होता था कि किवाड़ तोड़ डालेगा। हसीना के चेहरे पर एक रंग आता था, एक रंग जाता था। बेचारी खड़ी काँप रही थी। बस, जबान से यही निकलता था—या अल्लाह, रहम कर।

बाहर से आवाज आई—अरे, तुम क्या सरेशाम से सो गईं ? अभी तो आठ भी नहीं

बजे। कहीं साँप तो नहीं सूँघ गया। अल्लाह जानता है, अब और देर की, तो किवाड़ चिड़वा डालूँगा।

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा—खुदा के लिए मेरे छिपने की कोई जगह बताओ। पिछवाड़े कोई दरवाजा नहीं ?

'ना !'

'संडास तो है ?'

'सबसे पहले वह वहीं जायेंगे।'

'अच्छा, वह सामने कोठरी कैसी है ?'

'हाँ, है तो, लेकिन कहीं कोठरी खोलकर देखा तो ?

'क्या बहुत डबल आदमी है ?'

'तुम जैसे दो को बगल में दवा ले।'

'तो खोल दो कोठरी। वह ज्यों ही अन्दर आयेगा, मैं दरवाजा खोलकर निकल भागूँगा।'

हसीना ने कोठरी खोल दी। मैं अन्दर जा घुसा। दरवाजा फिर बन्द हो गया।

मुझे कोठरी में बन्द करके हसीना ने जाकर सदर दरवाजा खोला और बोली—क्यों किवाड़ तोड़े डालते हो ? आ तो रही हूँ।

मैंने कोठरी के किवाड़ों के दराजों से देखा। आदमी क्या पूरा देव था। अन्दर आते ही बोला—तुम सरेशाम से सो गई थीं !

'हाँ, जरा आँख लग गई थी।'

'मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा था कि तुम किसी से बातें कर रही हो।'

'वहम की दवा तो लुकमान के पास भी नहीं।'

'मैंने साफ सुना। कोई-न-कोई था जरूर। तुमने उसे कहीं छिपा रखा है।'

'इन्हीं बातों पर तुमसे मेरा जी जलता है। सारा घर तो पड़ा है, देख क्यों नहीं लेते।'

'देखूँगा तो मैं जरूर ही, लेकिन तुमसे सीधे-सीधे पूछता हूँ, बतला दो, कौन था ?'

हसीना ने कुंजियों का गुच्छा फेंकते हुए कहा—और कोई था तो घर ही में न होगा। लो, सब जगह देख आओ। सुई तो है नहीं कि मैंने कहीं छिपा दी हो।

वह शैतान इन चकमों में न आया। शायद पहले भी ऐसा ही चरका खा चुका था। कुंजियों का गुच्छा उठाकर सबसे पहले मेरी कोठरी के द्वार पर आया और उसके ताले को खोलने की कोशिश करने लगा ! गुच्छे में उस ताले की कुंजी न थी। बोला—इस कोठरी की कुंजी कहाँ है ?

हसीना ने बनावटी ताज्जुब से कहा—अरे, तो क्या उसमें कोई छिपा बैठा है ? वह तो लकड़ियों से भरी पड़ी है।

'तुम कुंजी दे दो न।'

'तुम भी कभी-कभी पागलों के-से काम करने लगते हो। अँधेरे में कोई साँप-बिच्छू निकल आये तो। ना भैया, मैं उसकी कुंजी न दूँगी।'

'बला से साँप निकल आयेगा। अच्छा ही हो, निकल आये। इस बेहयाई की

जिन्दगी से तो मौत ही अच्छी !'

हसीना ने इधर-उधर तलाश करके कहा—'न जाने उसकी कुंजी कहाँ रख दी। खयाल नहीं आता।'

'इस कोठरी में तो मैंने और कभी ताला नहीं देखा।'

'मैं तो रोज लगाती हूँ। शायद कभी लगाना भूल गई हूँ, तो नहीं कह सकती।'

'तो तुम कुंजी न दोगी ?'

'कहती तो हूँ इस वक्त नहीं मिल रही है।'

'कहे देता हूँ, कच्चा ही खा जाऊँगा।'

अब तक तो मैं किसी तरह जब्त किये खड़ा रहा। बार-बार अपने ऊपर गुस्सा आ रहा था कि यहाँ क्यों आया। न-जाने यह शैतान कैसे पेश आये। कहीं तैश में आकर मार ही न डाले। मेरे हाथों में तो कोई छुरी भी नहीं। या खुदा ! अब तू ही मालिक है। दम रोके हुए खड़ा था कि एक पल का भी मौका मिले, तो निकल भागूँ; लेकिन जब उस मरदूद ने किवाड़ों को जोर से धमधमाना शुरू किया, तब तो रूह ही फना हो गई। इधर-उधर निगाह डाली कि किसी कोने में छिपने की जगह है, या नहीं। किवाड़ के दराजों से कुछ रोशनी आ रही थी ! ऊपर जो निगाह उठाई, तो एक मचान-सा दिखाई दिया। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। उचककर चाहता था कि ऊपर चढ़ जाऊँ कि मचान पर एक आदमी को बैठे देखकर उस हालत में मेरे मुँह से चीख निकल गई। यह हजरत अचकन पहने, घड़ी लगाये, एक खूबसूरत साफा बाँधे, उकडूँ बैठे हुए थे। अब मुझे मालूम हुआ कि मेरे लिए दरवाजा खोलने में हसीना ने इतनी देर क्यों की थी। अभी इनको देख ही रहा था कि दरवाजे पर मूसल की चोटें पड़ने लगीं। मामूली किवाड़ तो थे ही, तीन-चार चोटों में दोनों किवाड़े नीचे आ रहे और वह मरदूद लालटेन लिए कमरे में घुसा। उस वक्त मेरी क्या हालत थी, इसका अंदाज आप ख़ुद कर सकते हैं। उसने मुझे देखते ही लालटेन रख दी और मेरी गर्दन पकड़कर बोला—अच्छा, आप यहाँ तशरीफ रखते हैं। आइए, आपकी कुछ खातिर करूँ। ऐसे मेहमान रोज कहाँ मिलते हैं।

यह कहते हुए उसने मेरा एक हाथ पकड़कर इतने जोर से बाहर की तरफ ढकेला कि मैं आँगन में औंधा जा गिरा। उस शैतान की आँखों से अंगारे निकल रहे थे। मालूम होता था, उसके होंठ मेरा खून चूसने के लिए बढ़े आ रहे हैं। मैं अभी जमीन से उठने भी न पाया था कि वह कसाई एक बड़ा-सा तेज छुरा लिए मेरी गरदन पर आ पहुँचा; मगर जनाब, हूँ पुलिस का आदमी। उस वक्त मुझे एक चाल सूझ गई। उसने मेरी जान बचा ली, वरना आज आपके साथ ताँगे पर न बैठा होता। मैंने हाथ जोड़कर कहा—हुजूर, मैं बिलकुल बेकसूर हूँ। मैं तो मीर साहब के साथ आया था।

उसने गरज कर पूछा—कौन मीर साहब ? मैंने जी कड़ा करके कहा—वही, जो मचान पर बैठे हुए हैं। मैं तो हुजूर का गुलाम ठहरा, जहाँ हुक्म पाऊँगा, उनके साथ जाऊँगा। मेरी इसमें क्या खता है ?

'अच्छा, तो कोई मीर साहब मचान पर भी तशरीफ रखते हैं ?'

उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और कोठरी में जाकर मचान पर देखा। वह हजरत

सिमटे-सिमटाये, भीगी बिल्ली बने बैठे थे। चेहरा ऐसा पीला पड़ गया था, गोया बदन में जान ही नहीं।

उसने उनका हाथ पकड़कर एक झटका दिया, तो आप धम-से नीचे आ रहे। उनका ठाठ देखकर अब इसमें कोई शुबहा न रहा कि वह मेरे मालिक हैं। उनकी सूरत देखकर उस वक्त तरस के साथ हँसी आती थी।

'तू कौन है बे ?'

'जी, मैं....मेरा मकान, यह आदमी झूठा है, यह मेरा नौकर नहीं है।'

'तू यहाँ क्या करने आया था ?'

'मुझे यही बदमाश (मेरी तरफ देखकर) धोखा देकर लाया था।'

'यह क्यों नहीं कहता कि मजे उड़ाने आया था। दूसरों पर इल्जाम रखकर अपनी जान बचाना चाहता है, सुअर ? ले, तू भी क्या समझेगा कि किसके पाले पड़ा था।'

यह कहकर उसने उसी तेज छुरे से उन साहब की नाक काट ली। मैं मौका पाकर बेतहाशा भागा, लेकिन हाय-हाय की आवाज मेरे कानों में आ रही थी। इसके बाद उन दोनों में कैसी छनी, हसीना के सिर पर क्या आफत आई, इसकी मुझे कुछ खबर नहीं। मैं तब से बीसों बार सदर आ चुका हूँ, पर उधर भूलकर भी नहीं गया। यह पत्थर फेंकनेवाले हजरत वही हैं, जिनकी नाक कटी थी। आज न-जाने कहाँ से दिखाई पड़ गये और मेरी शामत आई कि उन्हें सलाम कर बैठा। आपने उनकी नाक की तरफ शायद खयाल नहीं किया।

मुझे अब खयाल आया कि उस आदमी की नाक कुछ चिपटी थी। बोला—हाँ, नाक कुछ चिपटी तो थी। मगर आपने उस गरीब को बुरा चरका दिया।

'और करता ही क्या ?'

'जरूर दबा लेते; मगर चोर का दिल आधा होता है। उस वक्त अपनी-अपनी पड़ी थी कि मुकाबला करने की सूझती। कहीं उस रमझल्ले में धर लिया जाता, तो आबरू अलग जाती और नौकरी से अलग हाथ धोता। मगर अब इस आदमी से होशियार रहना पड़ेगा।'

इतने में चौक आ गया और हम दोनों ने अपनी-अपनी राह ली।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अगस्त, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप 'दारोगा की सरगुजश्त' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

सम्पादक मोटेरामजी शास्त्री

पंडित चिन्तामणि जब कई महीनों के बाद तीर्थ-यात्रा करके लौटे, तो अपने परम मित्र पंडित मोटेरामजी शास्त्री से मिलने चले। इस लम्बी यात्रा में उन्हें कितने ही विचित्र अनुभव हुए थे, कितनी ही नयी-नयी बातें देखी और सुनी थीं। इस सबों को वह नमक-मिर्च लगाकर पंडितजी से बयान करने के लिए आतुर हो रहे थे। लपके हुए पंडित

मोटेरामजी के घर पहुँचे और अन्दर क़दम रखना चाहते थे कि एक चपरासी ने ललकारा—"कौन अन्दर जा रहा है ? बाहर खड़े रहो। अन्दर क्या काम है ?"

चिन्तामणि ने विस्मित होकर पूछा—मोटेराम का घर यही है न ?

सिपाही—हम यह कुछ नहीं जानते, व्यवस्थापकजी की आज्ञा है कि कोई अन्दर न जाने पाए।

चिन्तामणि—व्यवस्थापकजी कौन हैं ? है तो यह मोटेराम ही का घर ?

सिपाही—यह सब हम कुछ नहीं जानते। व्यवस्थापकजी की यही आज्ञा है।

चिंतामणि—कुछ मालूम तो हो, व्यवस्थापकजी कौन हैं ?

सिपाही—व्यवस्थापकजी व्यवस्थापकजी हैं, और कौन हैं।

चिंतामणि ने चकित होकर मकान को ऊपर से नीचे तक देखा कि कहीं उनसे कोई भूल तो नहीं हुई, तो उन्हें द्वार के सामने एक बड़ा-सा साइनबोर्ड नज़र आया। उस पर लिखा था—'सोना कार्यालय' मित्र से मिलने की उत्सुकता में उनकी निगाह पहले उस बोर्ड पर न पड़ी थी। पूछा—यह कोई कार्यालय है क्या ?

सिपाही—तुम्हारे आँखें नहीं हैं क्या ?

चिंतामणि—तुम इतना रोब क्यों जमाते हो ! क्या हमें कोई भिक्षुक समझा है ? अगर मोटेरामजी का यही घर हो, तो जाकर कहो—पंडित चिन्तामणिजी उनसे मिलने आए हैं। धौंस दूसरों पर जमाना।

सिपाही—कार्ड लाओ।

चिंतामणि—कैसा कार्ड ?

सिपाही—व्यवस्थापकजी बिना कार्ड देखे किसी से नहीं मिलते।

चिंतामणि—तुम हमारा नाम तो बताओ जाकर।

सिपाही—ऐसे क्या नाम बताऊँ। मुझ पर बिगड़ने लगें तब ?

चिंतामणि ने जब देखा कि सिपाही की खुशामद से काम नहीं चलेगा, तो द्वार पर खड़े होकर ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगे—मोटेराम ! ओ मोटेराम !

सिपाही ने चिंतामणि का हाथ पकड़कर हटाते हुए कहा—यहाँ चिल्लाने का हुक्म नहीं है।

चिंतामणि की क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह उस सिपाही को अपने ब्रह्मतेज का स्वरूप दिखाना ही चाहते थे कि पंडित मोटेरामजी अन्दर से निकल आये और चिंतामणि को देखकर बोले—"अरे ! तुम हो चिंतामणि ! कार्ड क्यों न भिजवा दिया? तुमने साइनबोर्ड तो देखा होगा—मैं 'सोना' नामी पत्रिका का सम्पादक हूं। आओ, अन्दर आओ। मैं बिना कार्ड देखे किसी से नहीं मिलता, लेकिन तुम अपने पुराने मित्र हो, तुम्हारे लिए कोई रोक-टोक नहीं।"

चिंतामणि अन्दर दाख़िल हुए तो कुछ और ही छटा देखी। जिस कोठरी में सोना बैठती थी, वहाँ अब मेज़ और कुर्सियाँ थीं। रसोई के कमरे में पत्रों का ढेर लगा हुआ था। बरामदों में कर्मचारी लोग बैठे हुए बड़े-बड़े रजिस्टर लिख रहे थे।

जब दोनों आदमी कुर्सियों पर बैठ गये तो मोटेरामजी ने कहा—"तुम जब तीर्थयात्रा

करने चले गए तो मैंने एक पत्रिका निकाल ली।''

चिंतामणि–अच्छा तो 'सोना' पत्रिका का नाम है। तुम्हीं इसका सम्पादन करते हो।

मोटेराम–जब से मैंने यह पत्रिका निकाली है, हिन्दी संसार में हलचल पड़ गई है। अभी इसे निकाले तीन महीने भी पूरे नहीं हुए, लेकिन ग्राहक-संख्या पच्चीस हज़ार से ऊपर हो गई। घड़ाधड़ आर्डर चले आ रहे हैं। डाकखाने वाले ने कर्मचारियों की संख्या बढ़ा दी है।

चिंतामणि–झूठ बोलते हो, सरासर झूठ। सोलहों आने झूठ। पच्चीस हज़ार ! ईश्वर से भी नहीं डरते। भला पच्चीस-सौ कहते तो एक बात भी थी। झूठ भी बोलने बैठे, तो बोलना न आया।

मोटेराम ने हँसकर कहा–''यही और लोग भी कहते हैं। जो सुनता है, दंग रह जाता है। पर यहाँ तो सच्चा काम करते हैं। जिसका जी चाहे रजिस्टर देख ले। अगर पच्चीस हज़ार ग्राहक न निकलें, तो चोर की सज़ा वह मेरी। और अभी तो आरम्भ है। अगर साल भर में एक लाख तक संख्या न पहुँचा दूँ, तो मोटेराम नहीं। ग्राहकों की यहाँ कमी नहीं है, कमी है काम करने वालों की। सच्चे ढंग से काम करने वाला चाहिए, फिर देखो कैसे ग्राहक नहीं आते। यह सब कुछ विज्ञापन का खेल है। दिखाऊँ रजिस्टर?''

चिंतामणि–रजिस्टर में कोई कार्रवाई कर ली होगी, फ़र्जी नाम लिख लिये होंगे, बीच में कई-कई नम्बर छोड़ गए होंगे। मैं इतना मान सकता हूं कि तुम बड़े कार्य-कुशल हो। मैं तो इसका चौथाई भी न कर सकता। लेकिन पच्चीस हज़ार की संख्या नहीं मिल सकती। तुम्हें इतने रुपये कहाँ से मिल गए ?

मोटेराम–रुपये की न कहो, सब ईश्वर की दया है। यही तो एक ऐसा साधन है, जिसमें बिना एक कौड़ी घर की लगाये, तुम एक बहुत बड़ा व्यवसाय खड़ा कर सकते हो। बस जरा ढंग चाहिए। कौड़ी घर से लगाने की कोई ज़रूरत नहीं। कागज़ वाले से उधार कागज़ ले लिया, प्रेसवालों से उधार छपाई करा ली, बस बेड़ा पार। रुपये मिले, तो प्रेस और कागज़ दो, नहीं तो कानों में तेल डालकर बैठ रहो। कोई तुमसे क्या ले लेगा।

चिंतामणि–कागज़ वाले और प्रेस वाले उधार कैसे देते हैं ?

मोटेराम–(हँसकर) यह दूसरी विद्या है, जो ईश्वर की देन है। यह पढ़ने से नहीं आती, न रटने से कंठ होती है। उसे पूर्व-जन्म का संस्कार ही कह सकते हो। कागज़ वाले सेठ सुद्धीलाल को जानते ही हो, कई बार उसके यहाँ हम-तुम इच्छापूर्ण भोजन कर चुके हैं। भक्त जीव है। उससे कागज़ लिया। माँगने की देर थी। पाँच सौ का कागज़ ठेलों पर लदवा दिया। छापाख़ाना अभी अपना नहीं है। एक दूसरे छापे खाने में छपवा लेता हूँ। पूरे दो दर्जन एजेण्ट रख छोड़े हैं। वे नगरों और ग्रामों में जा-जाकर मेरी पत्रिका का प्रचार करते हैं। कर्मचारियों के साथ मेरा नियम बड़ा कठोर है। उन्हें टालबाज़ी अथवा कामचोरी करते देखकर मैं आपे से बाहर हो जाता हूँ। मेरी देह में आग-सी लग जाती है। यही जी चाहता है कि इन्हें कच्चा ही चबा जाऊँ, नमक भी न माँगू। कितने ही तो छोड़कर भाग खड़े हुए। इसमें भी मेरा ही लाभ रहा। उनका वेतन न देना पड़ा। कितनों ही को पीट चुका हूँ। मुझे देखकर सब थर-थर काँपते हैं। अभी दस-पाँच एजेण्टों की और आवश्यकता है। अगर तुम

चाहो तो अपने दो-चार मित्रों को रखा दो। अच्छा फ़ायदा है।

चिंतामणि—मेरे मित्रों में ऐसे बहुत कम हैं जो तुम्हारी इस अनीति को सहन कर सकें। इधर तुमने घूँसा ताना और उधर वे तुम्हें ले पड़ेंगे। मगर यह तो बताओ, तुम पत्रिका का सम्पादन कैसे कर लेते हो ?

मोटेराम—सम्पादन कैसे कर लेता हूँ ! बुद्धि से, और कैसे ?

चिंतामणि—तुम्हारी बुद्धि तो बहुत तीव्र कभी न थी।

मोटेराम—तुम मेरी बुद्धि की तीव्रता का अनुमान क्या खाके करोगे। जो आदमी बिना गाँठ की संझी कौड़ी ख़र्च किए इतना बड़ा कार्यालय खोल दे, इतनी बड़ी पत्रिका का सम्पादक हो जाये, जिसका नाम समस्त देश में फैल जाये, उसके बुद्धिमान होने में तुम जैसे गधों के सिवा और किसे सन्देह हो सकता है।

चिंतामणि—यह तो काइयाँपन है। मैं इसे बुद्धि नहीं कहता।

मोटेराम—ओह ! तुम चाहे काइयाँपन कहो, चाहे झाँसेबाज़ी कहो, चाहे धूर्तता कहो; पर मेरे कोष में उसका नाम बुद्धि है। कोई कितना ही धुरंधर विद्वान अपना लेख भेजे, मैं उसमें कुछ-न-कुछ संशोधन अवश्य करूँगा। दो-चार जगह लाल-क़लम फेर ही देता हूँ। इससे विद्वानों पर आतंक जम जाता है। दो-तीन अनुवादक रख छोड़े हैं। वे बंगला, गुजराती आदि भाषाओं के लेख और टिप्पणियाँ अनुवाद कर लेते हैं। उन्हें मैं अपने सम्पादकीय विचारों में देता हूँ। उन पर लेखक का नाम तो पता होता नहीं, लोग समझते हैं कि शास्त्रीजी ही ने लिखा है। किसे इतना अवकाश है कि मेरे लेखों की छान-बीन करता फिरे। मैंने बहुत दिनों के बाद सांसारिक सफलता का मूलमंत्र खोज पाया है, मगर तुमसे न बताऊँगा।

चिंतामणि—क्यों मित्र, हमीं से यह परदा ! मैंने तुम्हें सदैव अपना गुरु माना है और अब भी अपना बड़ा भाई समझता हूँ, और तुम मुझी से ऐसी कृपणता करते हो।

मोटेराम—अच्छा वचन दो कि तुम पत्रिका के सौ ग्राहक बना लाओगे।

चिंतामणि तुम्हारी आज्ञा मैंने कभी टाली है ?

मोटेराम—अच्छा तो सुना, वह मूलमंत्र है डींग मारना। ऐसी डींग मारो कि दूसरे प्रभावित हो जाएँ। कोई कितना ही अविश्वास प्रकट करे, कितनी ही हँसी उड़ाए, कुछ परवा मत करो। तुम्हारे चले जाने के बाद वह अपने मन में सोचेगा कि अगर इसने रुपये में एक आना भी सत्य कहा है तब भी कुछ कम नहीं। बस ज़मीन और आसमान के कुलाबे मिला दो। ग्राहक-संख्या कभी एक लाख से कम न बतलाओ। खूब जोर-शोर से कहो कि हमने पाश्चात्य विद्वानों से लेख मँगवाने का आयोजन किया है। अपने चित्रों और लेखों को अद्वितीय सिद्ध करो, फिर देखो ग्राहक कैसे नहीं पंजे में आता। तुम ज़रा भी झिझके और काम बिगड़ा। ज़रा देर के लिए अपने को भूल जाओ और यह समझो कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अक्षरशः सत्य है। तुमने मेरी पत्रिका देखी नहीं, इसमें समाज-सुधार पर बड़े स्वतन्त्र लेख रहते हैं।

चिंतामणि—समाज-सुधार पर ! तुम समाज-सुधारक कब से हुए ? तुम तो बाज़ार की पूरियाँ तक नहीं खाते।

मोटेराम—अजी, यह न पूछो मैं क्या खाता हूँ और कैसे रहता हूँ। इस कमरे में आकर मैं समाज का कट्टर सुधारक हो जाता हूँ और घर में जाकर सुधार का कट्टर शत्रु। बिना इस दुरंगी चाल के सफलता कहाँ ! तुमको आश्चर्य होगा मैंने विधवा-विवाह का समर्थन किया है; अछूतोद्धार का बीड़ा उठाया है और शुद्धि का बिगुल बजाया है। दिल में समझता हूँ कि इन सुधारों से हिन्दू-समाज रसातल की ओर जा रहा है, पर करूँ क्या, किसी तरह बाल-बच्चों का पालन पोषण तो करना है।

चिंतामणि—यार, तुम बड़े धूर्त हो, मान गया तुम्हारी खोपड़ी को।

मोटेराम—अजी, अभी देखते तो जाव ! अब की विज्ञापन दूँगा कि हमारी पत्रिका के बारहों अंक विशेषांक होंगे। संसार के बड़े-से-बड़े पुरुषों को उनका सम्पादक लिख दूँगा। किसी अंक का सम्पादन डॉक्टर टैगोर करेंगे, किसी अंक का श्रीमान् डॉक्टर इकबाल तथा किसी अंक का शंकराचार्य, किसी का मुसोलिनी, किसी का कैसर, किसी का लायड जार्ज। फिर देखो इस विज्ञापन की कैसी धूम मचती है।

चिंतामणि—और यदि इन महानुभावों ने अपना नाम देना स्वीकार न किया तो?

मोटेराम—यह तो मानी हुई बात है कि वे स्वीकार न करेंगे, लेकिन इस झाँसे में आकर जो आदमी पत्रिका का ग्राहक बन जायेगा, वह हमसे अपने रुपये तो न लौटाने आयेगा। दूसरी साल फिर कोई ऐसा ही शिगूफा खिला दूँगा।

2

अभी यही बातें हो रही थीं कि भीतर से सोनादेवी छम-छम करती हुई निकल आयीं। उनके मुख-मंडल पर आज ऐसी लुनाई झलक रही थी कि चिंतामणि चकित हो गये। सोना ने चिंतामणि को देखते ही कहा—अरे लाला, बहुत दिनन माँ सुधि लीन्ह्यो। अस कोऊ भुलाय देत है।

चिंतामणि—क्या करूँ भाभीजी, जरा तीरथ करने चला गया था। कुछ परलोक की फिकर भी तो करनी चाहिए।

सोना—अरे, अबै तुम्हार उमिरै का है, जौन लाग्यो परलोक की फिकर करै। अभी तो पचासो के पूर नाहीं भयो। तुम्हारे भैया का आजकल यह नई सनक सवार भई है। कितना समझावा कि ई फरफंद में न परौ, भगवान् जौन भाग में लिखे होई तौन आपुई घर बैठे मिल जाई, मुदा ई केह की सुनत हैं। अभूं पाँचो सौ गहकी पतरिका के नाहीं भए, तौन चिल्लाय लागे कि हमरे तो पचीस हज़ार गहकी होय गए।

मोटेराम—तुम्हें यहाँ किसने बुलाया जो डाइन की तरह सिर पर सवार हो गई। जाओ अन्दर।

चिंतामणि—क्या अभी पाँच सौ ग्राहक भी नहीं हुए ? यह तो मुझसे भी पच्चीस हजार कह रहे थे।

सोना—इनका बके देव। झुठाई माँ तो इनकेर पेरान बसत है।

मोटेराम—तुम यहाँ से जाओगी या नहीं ?

सोना—नाहीं। देखी का कर लेत हौ। हमसे ई जबरजस्ती न चल पाई, समुझि

राख्यो। संसार का ठगा करो। ठग कहूँ का ! हमका आँखी दिखावत है। आँखी फोर दैहों। आज किरोध माँ भरी बैठी हौं। तुहिका लाज नाहीं आवत कि अपनी पतरिका में रॉंडन के बिहाव की बात लिखत है। बैठी तो है एक ठो राँड़ बहिनिया, काहे नाहीं ओहि का बिहाव कर डारत है। कहाँ हैं तोरे पच्चीस हजार गहकी, देखों। नकली रजट्टर बनात के सबका दिखावत फिरत है। लाला तुमसे एहके गुन काव कही। अब इ दारू पिये लाग।

चिंतामणि—अरे ! सच !! राम-राम !

मोटेराम—मैं तेरा गला घोट दूँगा।

सोना—राम जाने दारू पियत है। बोतलन दारू पी डारत है। चोरवन की तरों अंगरेजी दूकान में जात है और जेब में बोतल रख के भागत है। असल चोर ! कहत है कि एहके पिए से बुद्धि बाढ़त है। भोजन पचत है। मजा आवत है। तोरे मजा माँ लूका लागे। बुद्धि राँड़ कहाँ लों बाढ़ी, का मजार हो जाई। एहिके मारे नाक माँ दम होई रहा है।

चिंतामणि—यह तुम्हें क्या सूझी, मित्र। भंग तो चढ़ाते ही थे। क्या उतना नशा कम था।

मोटेराम—अजी बकने दो इसको। इसकी बुद्धि तो घास खाने गयी है।

सोना—अब चुप्पे रह्यो, नाहीं तुम्हार सबकी करतूत खोल के धर दैहूँ। लाला, भगवान् के घर एहि की न जाने कौन दुर्गति होई। ई तौन पराई मेहरियन पर डोरा डारत फिरत है। रानी के हुआँ कैस मार परी रही पर एहकी आँखी न खुली, न खुली। ई सम्पादक बना फिरत है, समाज का सुधारत है, सबका राह दिखावत है, उपदेश करत है और आपन इ हवाल ! कागद वाले के पाँच सौ रुपया मूंड पर सवार है, छापाखाना वाला घर खोदे डारत है, पर एहिका अपनै राग-रंग सूझी है। फिकरन के मारे मैं मरी जात हौं।

चिंतामणि—यह बात तो नहीं है, भाभीजी। ऐसा नमक तो कभी न देखा था।

सोना—(तिरछी चितवन से देखकर) तीन-तीन ठौर तो घर माँ बैठी हैं, उनकेर नमक देखके जिउ भर गवा का ? कहे देत हौं, हमसे न लाग्यो, नाहीं एक के सौ सुनैहों आव तुमका इन मूसरचन्द की झुठाई दिखाई। असली रजट्टर दूसरी कोठरी माँ चोराय के राखे हैं जहिमाँ कोऊ देखिं न ले। आओ।

चिंतामणि तो यह चाहते ही थे। चट उठ खड़े हुए। लेकिन शास्त्रीजी भी ग़ाफ़िल न थे। उन्होंने लपककर चिंतामणि का हाथ पकड़ लिया। बेचारे चिंतामणि आफत में फँस गये। एक ओर सोना उसका हाथ पूरी शक्ति से अपनी ओर खींच रही है, दूसरी ओर मोटेरामजी पूरा जोर लगा रहे हैं। चिंतामणि को ऐसा जान पड़ा कि दोनों हाथ ही उखड़ जाते हैं। जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

सोना—अच्छा लाला, तुम इनका खूब कसके पकड़े रहौ, हम रजट्टर लिहे आइत हैं। छोड़्यो ना।

यह कहती हुई वह तो कोठरी में गयीं। उधर दोनों मित्रों में मल्लयुद्ध होने लगा।

मोटेराम—हड्डी तोड़ डालूँगा।

चिंतामणि—खोद के गाड़ दूँगा।

मोटेराम—पीस डालूँगा।

चिंतामणि—चटनी बना दूँगा।

मोटेराम—पेट फाड़ दूँगा।

चिंतामणि—नाक तोड़ दूँगा।

दोनों मित्र जमीन पर पड़े हुए अपनी-अपनी वाणी की वीरता दिखा रहे थे। और सोना ग्राहकों का रजिस्टर लिये चिंतामणि को दिखा रही थी। चिंतामणि ने देखा चार सौ अस्सी अन्तिम संख्या थी। बोले—क्यों मित्र, हमसे उड़ते थे। कहो तो इसी बात पर गर्दन नापूँ।

मोटेराम—यह स्त्री मेरे पूर्वजन्मों का संचित पाप है, बस कुछ नहीं। अब छोड़ दो। तुमने सब कुछ देख लिया। अब हमारी लाज तुम्हारे हाथ है। किसी से कहना मत।

चिंतामणि—नहीं मित्र, क्या मैं ऐसा मूर्ख हूँ। लेकिन एक बात अवश्य कहूँगा। पत्रिका पर मेरा नाम भी डालना पड़ेगा। हम और तुम दोनों सम्पादक होंगे। तुम अपना नाम चाहे ऊपर ही रखो, पर मेरा नाम भी नीचे दो। बोलो, स्वीकार है ?

मोटेराम ने गम्भीर भाव से कहा—हाँ, स्वीकार है।

(इस कहानी का लक्ष्य किसी व्यक्ति-विशेष से नहीं है। सम्पादक मोटेरामजी कल्पनाजगत् के पुरुष हैं।)

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अगस्त-सितम्बर, 1928 में प्रकाशित। 'सोलह अप्राप्य कहानियां' तथा 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

अभिलाषा

कल पड़ोस में बड़ी हलचल मची। एक पानवाला अपनी स्त्री को मार रहा था। वह बेचारी बैठी रो रही थी, पर उस निर्दयी को उस पर लेशमात्र भी दया न आती थी। आखिर स्त्री को भी क्रोध आ गया। उसने खड़े होकर कहा—बस, अब मारोगे, तो ठीक न होगा। आज से मेरा तुझसे कोई संबंध नहीं। मैं भीख माँगूँगी, पर तेरे घर न आऊँगी। यह कहकर उसने अपनी एक पुरानी साड़ी उठाई और घर से निकल पड़ी। पुरुष काठ के उल्लू की तरह खड़ा देखता रहा। स्त्री कुछ दूर चलकर फिर लौटी और दूकान की संदूकची खोलकर कुछ पैसे निकाले। शायद अभी तक उसे ममता थी; पर उस निर्दय ने तुरन्त उसका हाथ पकड़कर पैसे छीन लिये। हाय री हृदयहीनता ! अबला स्त्री के प्रति पुरुष का यह अत्याचार ! एक दिन इसी स्त्री पर उसने प्राण दिये होंगे, उसका मुँह जोहता रहा होगा; पर आज इतना निष्ठुर हो गया है, मानो कभी की जान-पहचान ही नहीं। स्त्री ने पैसे रख दिये और बिना कहे-सुने चली गई। कौन जाने कहाँ ! मैं अपने कमरे की खिड़की से घंटों देखती रही कि शायद वह फिर लौटे या शायद पानवाला ही उसे मनाने जाय; पर दो में से एक बात भी न हुई। आज मुझे स्त्री की सच्ची दशा का पहली बार ज्ञान हुआ। यह दूकान दोनों की थी। पुरुष तो मटरगश्ती किया करता था, स्त्री रात-दिन बैठी सती होती थी। दस-ग्यारह बजे रात तक मैं उसे दूकान पर बैठी देखती थी। प्रातःकाल नींद खुलती, तब भी उसे बैठी

पाती। नोच-खसोट, काट-कपट जितना पुरुष करता था, उससे कुछ अधिक ही स्त्री करती थी। पर पुरुष सब कुछ है, स्त्री कुछ नहीं ! पुरुष जब चाहे उसे निकाल बाहर कर सकता है !

इस समस्या पर मेरा चित्त इतना अशांत हो गया कि नींद आँखों से भाग गई। बारह बज गये और मैं बैठी रही। आकाश पर निर्मल चाँदनी छिटकी हुई थी। निशानाथ अपने रत्न-जटित सिंहासन पर गर्व से फूले बैठे थे। बादल के छोटे-छोटे टुकड़े धीरे-धीरे चंद्रमा के समीप आते थे और फिर विकृत रूप में पृथक् हो जाते थे, मानो श्वेतवसना सुन्दरियाँ उसके हाथों दलित और अपमानित होकर रुदन करती हुई चली जा रही हों। इस कल्पना ने मुझे इतना विकल किया कि मैंने खिड़की बंद कर दी और पलंग पर आ बैठी। मेरे प्रियतम निद्रा में मग्न थे। उनका तेजमय मुखमंडल इस समय मुझे कुछ चंद्रमा से ही मिलता-जुलता मालूम हुआ। वही सहास छवि थी, जिससे मेरे नेत्र तृप्त हो जाते थे। वही विशाल वक्ष था, जिस पर सिर रखकर मैं अपने अन्तस्तल में एक कोमल, मधुर कंपन का अनुभव करती थी। वही सुदृढ़ बाँहें थीं, जो मेरे गले में पड़ जाती थीं, तो मेरे हृदय में आनंद की हिलोरें-सी उठने लगती थीं। पर आज कितने दिन हुए, मैंने उस मुख पर हँसी की उज्ज्वल रेखा नहीं देखी, न देखने को चित्त व्याकुल ही हुआ। कितने दिन हुए, मैंने उस वक्ष पर सिर नहीं रखा और न वह बाँहें मेरे गले में पड़ीं। क्यों ? क्या मैं कुछ और हो गई, या पतिदेव ही कुछ और हो गये।

अभी कुछ बहुत दिन भी तो नहीं बीते, कुल पॉच साल हुए हैं—कुल पाँच साल, जब पतिदेव ने विकसित नेत्रों और लालायित अधरों से मेरा स्वागत किया था। मैं लज्जा से गर्दन झुकाये हुए थी। हृदय में कितनी प्रबल उत्कंठा हो रही थी कि उनकी मुख-छवि देख लूँ; पर लज्जावश सिर न उठा सकती। आखिर एक बार मैंने हिम्मत करके आँखें उठाई और यद्यपि दृष्टि आधे रास्ते से ही लौट आई, तो भी उस अर्द्ध दर्शन से मुझे जो आनंद मिला, क्या उसे कभी भूल सकती हूँ। वह चित्र अब भी मेरे हृदय-पट पर खिंचा हुआ है। जब कभी उसका स्मरण आ जाता है, हृदय पुलकित हो उठता है। उस आनंद-स्मृति में अब भी वही गुदगुदी, वही सनसनी है ! लेकिन अब रात-दिन उस छवि के दर्शन करती हूँ। उषाकाल, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, संध्याकाल, निशाकाल आठों पहर उसको देखती हूँ; पर हृदय में गुदगुदी नहीं होती। वह मेरे सामने खड़े मुझसे बातें किया करते हैं। मैं क्रोशिए की ओर देखती रहती हूँ। जब वह घर से निकलते थे, तो मैं द्वार पर आकर खड़ी हो जाती थी। और, जब वह पीछे फिरकर मुस्करा देते थे तो मुझे मानो स्वर्ग का राज्य मिल जाता था। मैं तीसरे पहर कोठे पर चढ़ जाती थी और उनके आने की बाट जोहने लगती थी। उनको दूर से आते देखकर मैं उन्मत्त-सी होकर नीचे आती और द्वार पर जाकर उनका अभिवादन करती। पर अब मुझे यह भी नहीं मालूम होता कि वह कब जाते और कब आते हैं। जब बाहर का द्वार बंद हो जाता है, तो समझ जाती हूँ कि यह चले गये, जब द्वार खुलने की आवाज आती है, तो समझ जाती हूँ कि आ गये। समझ में नहीं आता कि मैं ही कुछ और हो गई या पतिदेव ही कुछ और हो गये।

तब वह घर में बहुत न आते थे। जब उनकी आवाज कानों में आ जाती तो मेरी देह

में बिजली-सी दौड़ जाती थी। उनकी छोटी-छोटी बातों, छोटे-छोटे कामों को भी मैं अनुरक्त, मुग्ध नेत्रों से देखा करती थी। वह जब छोटे लाला को गोद में उठाकर प्यार करते थे, जब टामी का सिर थपथपाकर उसे लिटा देते थे, जब बूढ़ी भक्तिन को चिढ़ाकर बाहर भाग जाते थे, जब बाल्टियों में पानी भर-भर पौधों को सींचते थे, तब ये आँखें उसी ओर लगी रहती थीं। पर अब वह सारे दिन घर में रहते हैं, मेरे सामने हँसते हैं, बोलते हैं, मुझे खबर भी नहीं होती। न जाने क्यों ?

तब किसी दिन उन्होंने फूलों का एक गुलदस्ता मेरे हाथ में रख दिया था और मुस्कराये थे। वह प्रणय का उपहार पाकर मैं फूली न समाई थी। केवल थोड़-से फूल और पत्तियाँ थीं; पर उन्हें देखने से मेरी आँखें किसी भाँति तृप्त ही न होती थीं। कुछ देर हाथ में लिये रही, फिर अपनी मेज पर फूलदान में रख दिया। कोई काम करती होती, तो बार-बार आकर उस गुलदस्ते को देख जाती। कितनी बार उसे ऑखों से लगाया, कितनी बार उसे चूमा ! कोई एक लाख रुपये भी देता, तो उसे न देती। उसकी एक-एक पंखड़ी मेरे लिए एक-एक रत्न थी। जब वह मुरझा गया, तो मैंने उसे उठाकर अपने बक्स में रख दिया था। तब से उन्होंने मुझे हजारों चीजें उपहार में दी हैं—एक-से-एक रत्नजटित आभूषण हैं, एक-से-एक बहुमूल्य वस्त्र हैं और गुलदस्ते तो प्रायः नित्य ही लाते हैं; लेकिन इन चीजों को पाकर वह उल्लास नहीं होता। मैं उन चीजों को पहनकर आईने में अपना रूप देखती हूँ और गर्व से फूल उठती हूँ। अपनी हमजोलियों को दिखाकर अपना गौरव और उनकी ईर्ष्या बढ़ाती हूँ। बस।

अभी थोड़े ही दिन हुए है, उन्होंने मुझे वह चन्द्रहार दिया है, जो इसे देखता है, मोहित हो जाता है। मैं भी उसकी बनावट और सजावट पर मुग्ध हूँ। मैंने अपना संदूक खोला और उस गुलदस्ते को निकाल लाई। आह ! उसे हाथ में लेते ही मेरी एक-एक नस में बिजली दौड़ गई। हृदय के सारे तार कंपित हो गये। वह सूखी हुई पंखड़ियाँ, जो अब पीले रंग की हो गई थीं बोलती हुई मालूम होती थीं। उसके सूखे, मुरझाये हुए मुखों के अस्फुटित कंपित, अनुराग में डूबे शब्द सायँ-सायँ करके निकलते हुए जान पड़ते थे; किंतु वह रत्न-जटित, कांति से दमकता हुआ हार स्वर्ण और पत्थरों का एक समूह था, जिसमें प्राण न थे, संज्ञा न थी, मर्म न था। मैंने फिर गुलदस्ते को चूमा, कंठ से लगाया, आर्द्र नेत्रों से सींचा और फिर संदूक में रख आई। आभूषणों से भरा हुआ संदूक भी उस एक स्मृति-चिह्न के सामने तुच्छ था। यह क्या रहस्य था ?

फिर मुझे उनके एक पुराने पत्र की याद आ गई। उसे उन्होंने कालेज से मेरे पास भेजा था। उसे पढ़कर मेरे हृदय में जो आनन्द हुआ था, जो तूफान उठा था, आँखों से जो नदी बही थी, क्या उसे कभी भूल सकती हूँ। उस पत्र को मैंने अपनी सोहाग की पिटारी में रख दिया था। इस समय उस पत्र को पढ़ने की प्रबल इच्छा हुई। मैंने पिटारी से वह पत्र निकाला। उसे स्पर्श करते ही मेरे हाथ काँपने लगे, हृदय में धड़कन होने लगी। मैं कितनी देर उसे हाथ में लिये खड़ी रही, कह नहीं सकती। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं फिर वही हो गई हूँ, जो पत्र पाते समय थी। उस पत्र में क्या प्रेम के कवित्तमय उद्गार थे ? क्या प्रेम की साहित्यिक विवेचना थी। क्या वियोग-व्यथा का करुण क्रंदन था ? उसमें तो प्रेम का

एक शब्द भी न था। लिखा था—कामिनी, तुमने आठ दिनों से कोई पत्र नहीं लिखा। क्यों नहीं लिखा ? अगर तुम मुझे पत्र न लिखोगी, तो मैं होली की छुट्टियों में घर न आऊँगा, इतना समझ लो। आखिर तुम सारे दिन क्या करती हो ! मेरे उपन्यासों की आलमारी खोल ली है क्या ? आपने मेरी आलमारी क्यों खोली ? समझती होगी, मैं पत्र न लिखूँगी तो बचा खूब रोयेंगे और हैरान होंगे। यहाँ इसकी परवाह नहीं। नौ बजे रात को सोता हूँ, तो आठ बजे उठता हूँ। कोई चिंता है, तो यही कि फेल न हो जाऊँ। अगर फेल हुआ तो तुम जानोगी।

कितना सरल, भोले-भाले हृदय से निकला हुआ, निष्कपट मानपूर्ण आग्रह और आतंक से पत्र भरा हुआ था, मानो उसका सारा उत्तरदायित्व मेरे ही ऊपर था। ऐसी धमकी क्या अब भी वह मुझे दे सकते हैं ? कभी नहीं। ऐसी धमकी वही दे सकता है, जो न मिल सकने की व्यथा को जानता हो, उसका अनुभव करता हो। पतिदेव अब जानते हैं, इस धमकी का मुझ पर कोई असर न होगा, मैं हँसूँगी और आराम से सोऊँगी, क्योंकि मैं जानती हूँ, वह अवश्य आयेंगे और उनके लिए ठिकाना ही कहाँ है ? जा ही कहाँ सकते हैं ? तब से उन्होंने मेरे पास कितने पत्र लिखे हैं। दो-दिन को भी बाहर जाते हैं, तो जरूर एक पत्र भेजते हैं, और जब दस-पाँच दिन को जाते हैं, तो नित्य प्रति एक पत्र आता है। पत्रों में प्रेम के चुने हुए शब्द, चुने हुए वाक्य, चुने हुए संबोधन भरे होते हैं। मैं उन्हें पढ़ती हूँ और एक ठंडी साँस लेकर रख देती हूँ। हाय ! वह हृदय कहाँ गया ? प्रेम के इन निर्जीव भावशून्य कृत्रिम शब्दों में वह अभिन्नता कहाँ है, वह रस कहाँ है, वह उन्माद कहाँ है, वह क्रोध कहाँ है ? वह झुँझलाहट कहाँ है ? उनमें मेरा मन कोई वस्तु खोजता है—कोई अज्ञात, अव्यक्त, अलक्षित वस्तु—पर वह नहीं मिलती। उनमें सुगंध भरी होती है, पत्रों के कागज आर्ट-पेपर को मात करते हैं; पर उनका यह सारा बनाव-सँवार किसी गतयौवना नायिका के बनाव-सिंगार के सदृश ही लगता है, कभी-कभी तो मैं पत्रों को खोलती भी नहीं। मैं जानती हूँ, उनमें क्या लिखा होगा।

उन्हीं दिनों की बात है, मैंने तीजे का व्रत किया था। मैंने देवी के सम्मुख सिर झुकाकर वन्दना की थी—देवि, मैं तुमसे केवल एक वरदान माँगती हूँ। हम दोनों प्राणियों में कभी विच्छेद न हो, और मुझे कोई अभिलाषा नहीं, मैं संसार की और कोई वस्तु नहीं चाहती। तब से चार साल हो गये हैं और हममें एक दिन के लिए भी विच्छेद नहीं हुआ। मैंने तो केवल एक वरदान माँगा था। देवी ने वरदानों का भंडार ही मुझे सौंप दिया। पर आज मुझे देवी के दर्शन हों, तो मैं उनसे कहूँ तुम अपने सारे वरदान ले लो; मैं इनमें से एक भी नहीं चाहती। मैं फिर वही दिन देखना चाहती हूँ, जब हृदय में प्रेम की अभिलाषा थी। तुमने सब कुछ देकर मुझे उस अतुल सुख से वंचित कर दिया, जो अभिलाषा में था। मैं अबकी देवी से वह दिन दिखाने की प्रार्थना करूँ, जब मैं किसी निर्जन जलतट और सघन वन में अपने प्रियतम को ढूँढ़ती फिरूँ। नदी की लहरों से कहूँ, मेरे प्रियतम को तुमने देखा है ? वृक्षों से पूछूँ, मेरे प्रियतम कहाँ गये ?

क्या वह सुख मुझे कभी प्राप्त न होगा ? उसी समय मन्द, शीतल पवन चलने लगा। मैं खिड़की के बाहर सिर निकाले खड़ी थी। पवन के झोंके से मेरे केश की लटें

बिखरने लगीं। मुझे ऐसा आभास हुआ, मानो मेरे प्रियतम वायु के इन उच्छ्वासों में हैं। फिर मैंने आकाश की ओर देखा। चाँद की किरणें चाँदी के जगमगाते तारों की भाँति आँखों से आँखमिचौनी-सी खेल रही थीं। आँखें बन्द करते समय सामने आ जातीं; पर आँखें खोलते ही अदृश्य हो जाती थीं। मुझे उस समय ऐसा आभास हुआ कि मेरे प्रियतम उन्हीं जगमगाते तारों पर बैठे आकाश से उतर रहे हैं। उसी समय किसी ने गाया—

अनोखे-से नेही के त्याग,
निराले पीड़ा के संसार !
कहाँ होते हो अन्तर्द्धान,
लुटा करके सोने-सा प्यार !

'लुटा करके सोने-सा प्यार', यह पद मेरे मर्मस्थल को तीर की भाँति छेदता हुआ कहाँ चला गया, नहीं जानती। मेरे रोयें खड़े हो गये। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई मेरे प्रियतम को मेरे हृदय से निकाले लिये जाता है। मैं जोर से चिल्ला पड़ी। उसी समय पतिदेव की नींद टूट गई। वह मेरे पास आकर बोले—क्या अभी तुम चिल्लाई थीं ? अरे ! तुम रो रही हो ? क्या बात है ? कोई स्वप्न तो नहीं देखा?

मैंने सिसकते हुए कहा—रोऊँ न, तो क्या हँसूँ ?

स्वामी ने मेरा हाथ पकड़कर कहा—क्यों, रोने का कोई कारण है, या यों ही रोना चाहती हो ?

'क्या मेरे रोने का कारण तुम नहीं जानते ?'

'मैं तुम्हारे दिल की बात कैसे जान सकता हूँ ?'

'तुमने जानने की चेष्टा कभी की है ?'

'मुझे इसका सान-गुमान भी न था कि तुम्हारे रोने का कोई कारण हो सकता है।'

'तुमने तो बहुत कुछ पढ़ा है, क्या तुम भी ऐसी बात कह सकते हो ?'

स्वामी ने विस्मय में पड़कर कहा—'तुम तो पहेलियाँ बुझवाती हो ?'

'क्यों, क्या तुम कभी नहीं रोते ?'

'मैं क्यों रोने लगा।'

'तुम्हें अब कोई अभिलाषा नहीं है ?

'मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा पूरी हो गई। अब मैं और कुछ नहीं चाहता।'

यह कहते हुए पतिदेव मुस्कराये और मुझे गले से लिपटा लेने को बढ़े। उनकी यह हृदयहीनता इस समय मुझे बहुत बुरी लगी। मैंने उन्हें हाथों से पीछे हटाकर कहा—मैं इस स्वाँग को प्रेम नहीं समझती। जो कभी रो नहीं सकता वह प्रेम नहीं कर सकता। रुदन और प्रेम, दोनों एक ही स्रोत से निकलते हैं।

उसी समय फिर उसी गाने की ध्वनि सुनाई दी—

अनोखे-से नेही के त्याग,
निराले पीड़ा के संसार !
कहाँ होते हो अंतर्द्धान,
लुटा करके सोने-सा प्यार !

पतिदेव की वह मुस्कराहट लुप्त हो गई। मैंने उन्हें एक बार काँपते देखा। ऐसा जान पड़ा, उन्हें रोमांच हो रहा है। सहसा उनका दाहिना हाथ उठकर उनकी छाती तक गया। उन्होंने लम्बी साँस ली और उनकी आँखों से आँसू की बूँदें निकलकर गालों पर आ गईं। तुरंत मैंने रोते हुए उनकी छाती पर सिर रख दिया और उस परम सुख का अनुभव किया, जिसके लिए कितने दिनों से मेरा हृदय तड़प रहा था। आज फिर मुझे पतिदेव का हृदय धड़कता हुआ सुनाई दिया, आज उनके स्पर्श में फिर स्फूर्ति का ज्ञान हुआ।

अभी तक उस पद के शब्द मेरे हृदय में गूँज रहे थे—

कहाँ होते हो अन्तर्द्धान
लुटा करके सोने-सा प्यार !
(श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता का एक पद)।

[हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अक्टूबर, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित।]

बोहनी-1

मैं जिस मुहल्ले में रहता हूँ, वहाँ पानों की कोई दूकान नहीं थी। मुझे बार-बार सड़क के उस नुक्कड़ पर जाना पड़ता था, जो शायद दो फ़रलाँग से कम न था। और मैं पान का लती। दिन में कई बार क़वायद करनी पड़ती थी। कई बार कोशिश की कि एक पानदान रख लूँ, लेकिन एक तो नया पानदान ख़रीदना मेरे लिए हाथी मोल लेना है। दूसरे आठों पहर उसकी चिन्ता कौन करे—वक़्त पर पान लावो, कपड़ा भिगावो, दिन में पाँच बार पानों को फेरो, चूना लाओ, कत्था लाओ, तम्बाकू लाओ—कहाँ तक गिनाऊँ, मुझे तो अगर मुक्ति भी मिलती हो, तो इतना सिरदर्द गवारा नहीं कर सकता। और सब समस्याएँ तो हल भी हो सकती हैं, लेकिन छालियाँ कौन कतरे? मुझे तो, जनाब, सरोता पकड़ना ही न आया। डर लगता है, कहीं हाथ न कट जाय। जब कभी काम पड़ता है, तो छालियों को सिल पर लोढ़े से तोड़ लेता हूँ, और अगर दाताओं के आशीर्वाद और पुरुषों के पुण्य-प्रताप से यह बेड़ा भी पार लग जाय, तो चूने और कत्थे का अन्दाज़ कहाँ से लाऊँ ? कहीं चूना ज़्यादा हो गया तो सारे मुँह में छाले पड़ गये, चाट के लिए तरस-तरस कर रहूँ। ज़िन्दगी में दो ही चार बार मुझे पान लगाने का अवसर पड़ा है और हर बार मेरे मुँह में छाले पड़े हैं। एक बार कई दोस्तों को पान बनाकर खिलाए थे। वह दिन उनको अब तक याद है और शायद कभी न भूलेंगे।

ख़ैर, तो जब मेरे पड़ोस में एक तम्बोली ने दूकान खोली तो मेरे आह्लाद का पारावार न रहा। उस पर तुर्रा यह है कि वह तम्बोली न था, तम्बोलिन थी। फिर क्या था, अपनी पाँचों उँगलियाँ घी में थीं। एक तो क़वायद से बचे, दूसरे मनोरंजन का भी कुछ सामान हो गया। दो-चार पाँतियाँ लिखीं और पान की याद आयी, दूकान पर जा पहुँचा। दो ही चार दिनों में नियत मात्रा दुगुनी हो गयी। सच कहता हूँ, मुझे ऐसी निश्चिन्तता का अनुभव होने लगा, मानो किसी बीमे की पालिसी मच्योर हो रही हो।

2

एक दिन मैं प्रातःकाल हाथ-मुँह धोकर पान खाने जा पहुँचा। तम्बोलिन मेरी ओर मुख़ातिब न हुई। मैं एक मिनिट खड़ा रहा, फिर भी उसने पान बनाना न शुरु किया। तब मैंने अधीर होकर कहा, "क्यों, आज पान न खिलाओगी ?"

तम्बोलिन ने मुँह फेर और सिर झुकाकर कहा, "बाबूजी, थोड़ी देर में फिर आइएगा, अभी बोहनी नहीं हुई है।"

मैंने जेब से पैसे खनखनाकर कहा, "तो मैं उधार कब माँग रहा हूँ। एक पैसे की बोहनी न अच्छी हो, तो दो की सही।"

तम्बोलिन ने फिर भी सिर गड़ा लिया। मैंने देखा कि उसके कपोलों पर लाली दौड़ गयी। वह हिचकती हुई बोली, "बुरा न मानो, बाबूजी, तुम्हारे हाथ की बोहनी अच्छी नहीं है। कल तुम्हारी बोहनी हुई, दिन भर में केवल आठ आने पैसे आए। परसों भी तुम्हारी ही बोहनी हुई थी, कुल छः आने मिले थे। नरसों पण्डित जी की बोहनी हुई थी, दोपहर तक सवा रुपए के पैसे आ गए थे। साँझ तक साढ़े तीन की बिक्री हो गयी।"

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि दुर्भाग्य पर मेरा एकाधिपत्य है। इस क्षेत्र में मेरा कोई द्वन्द्वी नहीं, लेकिन उस दिन तक मुझे न मालूम था कि मेरा दुर्भाग्य इतना सर्वव्यापी है। बहुत झेंपा, अपना-सा मुँह लिए लौटना ही चाहता था कि उस रमणी को मुझ पर दया आ गयी। तुरन्त पान बनाए और मुझे देती हुई बोली, "आप आए ही हो तो बाबूजी, पान खाते जाओ। भाग्य में जो कुछ होगा, मिलता ही रहेगा। किसी-किसी का हाथ ही ऐसा होता है।"

मैंने पान तो खा लिया, पर इतना बड़ा कलंक अपने माथे कैसे लगा रहने देता? मन में निश्चय किया कि इसे अवश्य मिटाकर छोड़ूँगा।

अपने घर में आकर बैठा ही था कि एक मित्र आ गए। बाज़ार शाक-भाजी लेने जा रहे थे। मैंने उनसे अपनी तम्बोलिन की खूब तारीफ़ की। वह महाशय रसिक जीव थे। मेरी ओर शरारत से भरी हुई आँखें फेरीं और बोले, "इस वक़्त तो मेरे पास पैसे नहीं हैं, और न अभी पानों की ज़रूरत ही है।"

मैंने कहा, "पैसे मुझसे ले लो।"

"हाँ, यह मंजूर है, मगर कभी तक़ाज़ा मत करना।"

"भाई, यह टेढ़ी बात है।"

"तो क्या सेंत ही में आँखें सेकना चाहते हो ?"

हारकर इन महाशय को एक ढोली पान के दाम दिए। इसी तरह जो-जो मुझसे मिलने आया, उससे मैंने अपनी तम्बोलिन की प्रशंसा की। मेरी खूब हँसी उड़ाई गयी, खूब फ़ब्तियाँ कसी गयीं, लेकिन मैंने सब-कुछ सहा। यह कलंक मिटाने की मुझे धुन सवार हो गयी थी।

दूसरे दिन जब मैं तम्बोलिन की दूकान पर गया तो उसने तुरन्त पान बनाए और मुझे देती हुई बोली, "बाबूजी, कल तुम्हारी बोहनी बड़ी अच्छी थी। कोई साढ़े तीन रुपये आये। अब रोज़ बोहनी करा दिया करो।"

3

तीन-चार दिन लगातार मैंने मित्रों से सिफ़ारिश करके और अपनी ज़ेब से पैसे ख़र्च करके अपने को सुर्खरू बनाए रक्खा, लेकिन इतने ही समय में मेरी जेब से कोई पाँच रुपये ख़र्च हो गये थे। यह स्वाँग अब और न चल सकता था, इसलिए मैंने इरादा किया कि कुछ दिनों उसकी दूकान से पान लेना छोड़ दूँ। जब मेरी बोहनी ही न होगी, तो मुझे उसकी हानि-लाभ की क्या चिन्ता ? दूसरे दिन हाथ-मुँह धोकर एक इलायची खा ली और अपने काम में लग गया। सहसा किसी की आहट पाकर आँख उठाई, तो क्या देखता हूँ कि तम्बोलिन हाथ में गिलौरियाँ लिए खड़ी मुसकरा रही है। मुझे इस समय उसका आना अच्छा न लगा, लेकिन इतनी बेमुरौवती भी तो न हो सकती थी कि फटकार दूँ। बोला, "तुमने क्यों कष्ट किया, मैं तो आ ही रहा था !"

तम्बोलिन ने मेरे हाथ में गिलौरियाँ रखकर कहा, "आपको देर हुई तो मैंने कहा, मैं ही चलकर बोहनी कर आऊँ। तीन-चार ग्राहक खड़े हैं, मुदा मैंने अभी किसी की बोहनी नहीं की।"

क्या करता ? गिलौरियाँ खायीं और बोहनी करायी। जिस चिन्ता से मुक्त होना चाहता था, वह जबरदस्ती सिर पर सवार हो गयी। फिर वही बला सिर पर सवार हुई। मैंने सोचा था, मेरे मित्र-लोग दो-एक बार इसके यहाँ पान लेंगे तो आप परिचित हो जायेंगे। मेरी सिफ़ारिश की ज़रूरत न रहेगी, मगर तम्बोलिन शायद पानों के साथ अपने रूप का भी कुछ मोल करती थी, इसलिए जिसने एक बार उससे पान लिये, दोबारा उसकी दूकान पर न गया। हाँ, दो-एक रसिक जन अभी तक आते थे। वे एक पैसे में पान और रूप-दर्शन का दोनों ही का आनन्द उठाकर चले जाते थे। उस दिन मुझे अपने मुँह की लाली रखने के लिए पूरे डेढ़ रुपये ख़र्च करने पड़े। बधिया बैठ गयी।

दूसरे दिन मैंने द्वार अन्दर से बन्द कर लिया, मगर जब तम्बोलिन ने चीखना-चिल्लाना और द्वार खड़खड़ाना शुरु किया तो हारकर खोलना ही पड़ा। आँखें मलता हुआ नीचे गया, जिसमें मालूम हो कि आज नींद आ गयी थी। फिर बोहनी करानी पड़ी और फिर वही बला सिर पर सवार हुई। शाम तक डेढ़-दो रुपये का सफ़ाया हो गया।

आख़िर मैंने इस विपत्ति से नजात पाने के लिए यही निश्चय किया कि यह घर छोड़ देना चाहिए।

4

मैंने नख़ास में एक मकान ठीक किया और रातों-रात असबाब उठवाकर जा पहुँचा। वह घर छोड़कर मैं जितना खुश हुआ, शायद जेल से निकलकर क़ैदी भी उतना खुश न होता होगा। रात को खूब गहरी नींद सोया। सवेरा हुआ तो मुझे किसी स्वाधीन पक्षी का-सा अनुभव हो रहा था। शान्तिपूर्वक सिगरेट पिया, मुँह-हाथ धोया, फिर अपनी चीज़ें ठिकाने से रखने लगा। महरी का अभी कोई प्रबन्ध न था। कोई होटल भी भोजन के लिए ठीक करना था, पर मुझे उन महान संकट पर विजय पाकर जो आनन्द हो रहा था, उसके सामने उन चिन्ताओं की कोई गिनती न थी। मुँह-हाथ धोकर कोई आठ बजे नीचे उतरा। आज की

हवा में भी स्वाधीनता की महक आ रही थी। खुश-खुश टहलता हुआ एक दूकान पर जाकर पान खाया और ज़ीने पर चढ़ ही रहा था कि देखा वह तम्बोलिन लपकी हुई चली आ रही है। कुछ न पूछो, उस वक़्त दिल की क्या हालत हुई। बस, यही जी चाहता था कि अपना और इसका दोनों का सिर फोड़ लूँ। मुझे देखकर वह ऐसी प्रसन्न हुई, मानो कोई धोबी अपना खोया हुआ गधा पा जाय, और मेरी क्षुब्धावस्था का अनुमान भी उसी गधे की मानसिक दशा से कर लो। मैं इतना बौखला गया कि कोठे पर जाने की सुधि भी न रही। उसने दूर ही से कहा, "वाह बाबूजी, वाह ! आप ऐसा भागे कि किसी को ख़बर भी न हुई। उसी महल्ले में एक-से-एक अच्छे मकान हैं। मुझे क्या मालूम था कि उस मकान में आपको तकलीफ़ थी, नहीं तो मेरे पिछवाड़े ही एक बड़े आराम का घर खाली था। मैं आपको यहाँ न रहने दूँगी, जिस तरह बनेगा, आपको उठा ले जाऊँगी। आख़िर आप इसका क्या किराया देते हैं?"

मैंने रोनी सूरत बनाए हुए कहा, "दस रुपये।"

मैंने समझा था, किराया इतना कम बताऊँ कि यह दलील उसके हाथ से निकल जाय। इस घर का किराया बीस रुपये है। दस में तो शायद मरने को भी स्थान न मिलेगा, मगर तम्बोलिन पर कोई असर न हुआ। बोली, "आप आठ ही दीजिएगा और घर इससे अच्छा न हो तो आपको अख़्तियार है, छोड़ दीजिएगा। चलिए, मैं उस घर की कुंजी लेती आयी हूँ।"

मैंने खिन्न होकर कहा, "आप ही तो इस घर में आया हूँ। आज ही छोड़ कैसे सकता हूँ ? पेशगी किराया दे चुका हूँ।"

"दस ही रुपये तो दिये हैं। आपके लिए दस रुपया कौन बड़ी बात है ? यही समझ लीजिए कि आप न चले तो मैं उजड़ जाऊँगी। ऐसी अच्छी बोहनी वहाँ और किसी की नहीं है। आपके चलने में अड़चन होती हो तो कहिए मैं ही अपनी दूकान यहाँ उठा लाऊँ ?"

मेरा दिल बैठ गया। यह अच्छी विपत्ति गले पड़ी। कहीं सचमुच यह चुड़ैल अपनी दूकान न उठा लाये। जी में तो आया कि एक फटकार सुनाऊँ, पर ज़बान इतनी बेमुरौवत न हो सकी। बोला, "मेरा कुछ ठीक नहीं, कब तक रहूँ, कब तक न रहूँ ? आज ही बदली हो जाय तो भागना पड़े। तुम न इधर की रहो, न उधर की।"

उसने निश्चल भाव से कहा, "आप चले जायेंगे तो मैं भी चली जाऊँगी। अभी आज तो आप जाते नहीं।"

"मेरा कुछ ठीक नहीं है।"

"तो मैं रोज़ यहाँ आकर बोहनी कर लिया करूँगी।"

"इतनी दूर रोज़ आओगी ?"

"हाँ, चली आऊँगी। दो मील भी तो नहीं है। आपकी बोहनी तो हो जायगी। यह लीजिए, गिलौरियाँ लायी हूँ, बोहरी करा दीजिए।

मैंने गिलौरियाँ लीं, पैसे दिये और मूर्छित-सा ऊपर आकर अपने कमरे में लेट गया। अब मेरी समझ में नहीं आता कि इस मुसीबत से कैसे छुटकारा पाऊँ ? तब से इसी चिन्ता में पड़ा हुआ हूँ, अक्ल कुछ काम नहीं करती। सुर्खरू भी रहना चाहता

हूँ, बेमुरौवती भी नहीं करना चाहता और इस विपत्ति से मुक्त भी होना चाहता हूँ। अगर कोई सज्जन पाठक मेरी दयनीय दशा पर दया करके कोई ऐसी युक्ति बता दे तो जीवन-पर्यन्त उनका कृतज्ञ रहूंगा।

[हिन्दी साप्ताहिक पत्रिका 'भारत', 7 अक्टूबर, 1928 में प्रकाशित। 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' भाग-1 में संकलित-प्रकाशित।]

बोहनी-2

उस दिन जब मेरे मकान के सामने सड़क की दूसरी तरफ एक पान की दुकान खुली तो मैं बाग-बाग हो उठा। इधर एक फर्लांग तक पान की कोई दुकान न थी और मुझे सड़क के मोड़ तक कई चक्कर करने पड़ते थे। कभी वहां कई-कई मिनट तक दुकान के सामने खड़ा रहना पड़ता था। चौराहा है, गाहकों की हरदम भीड़ रहती है। यह इंतजार मुझको बहुत बुरा लगता था। पान की लत मुझे कब पड़ी और कैसे पड़ी, यह तो अब याद नहीं आता लेकिन अगर कोई बना-बनाकर गिलौरियां देता जाए तो शायद मैं कभी इंकार न करूं। आमदनी का बड़ा हिस्सा नहीं तो छोटा हिस्सा जरूर पान की भेंट चढ़ जाता है। कई बार इरादा किया कि एक पानदान खरीद लूं लेकिन पानदान खरीदना कोई खाला जी का घर नहीं है और फिर मेरे लिए तो हाथी खरीदने से किसी तरह कम नहीं। और मान लो जान पर खेलकर एक बार खरीद भी लूं तो पानदान कोई परी की थैली तो नहीं कि इधर इच्छा हुई और गिलौरियां निकल पड़ीं। बाजार से पान लाना, दिन में पांच बार फेरना, पानी से तर करना, सड़े हुए टुकड़ों को तराशकर अलग करना क्या कोई आसान काम है। मैंने बड़े घरों की औरतों को हमेशा पानदान की देखभाल और प्रबंध में ही व्यस्त पाया है ! इतना सरदर्द उठाने की क्षमता होती तो आज मैं भी आदमी होता। और अगर किसी तरह यह मुश्किल भी हल हो जाए तो सुपाड़ी कौन काटे ? यहां तो सरौते की सूरत देखते ही कंपकंपी छूटने लगती है। जब कभी ऐसी ही कोई जरूरत आ पड़ी, जिसे टाला नहीं जा सकता, तो सिल पर बट्टे से तोड़ लिया करता हूं लेकिन सरौते से काम लूं यह गैर-मुमकिन। मुझे तो किसी को सुपाड़ी काटते देखकर उतना ही आश्चर्य होता है जितना किसी को तलवार की धार पर नाचते देखकर। और मान लो यह मामला भी किसी तरह हल हो जाए, तो आखिरी मंजिल कौन फतह करे। कत्था और चूना बराबर लगाना क्या कोई आसान काम है ? कम-से-कम मुझे तो उसका ढंग नहीं आता। जब इस मामले में वे लोग रोज गलतियां करते हैं जो इस कला में दक्ष हैं तो मैं भला किस खेत की मूली हूं। तमोली ने अगर चूना ज्यादा कर दिया तो कत्था और ले लिया, उस पर उसे एक डांट भी बताई, आंसू पुंछ गए। मुसीबत का सामना तो उस वक्त होता है, जब किसी दोस्त के घर जाएं। पान अंदर से आया तो इसके सिवाय कि जान-बूझकर मक्खी निगलें, समझ-बूझकर जहर का घूंट गले के नीचे उतारें और चारा ही क्या है। शिकायत नहीं कर सकते, सभ्यता बाधक होती है। कभी-कभी पान मुंह में डालते ही ऐसा मालूम होता है कि जीभ पर कोई चिनगारी पड़ गई, गले से लेकर

छाती तक किसी ने पारा गरम करके उंड़ेल दिया, मगर घुटकर रह जाना पड़ता है। अंदाजे में इस हद तक गलती हो जाए यह तो समझ में आने वाली बात नहीं। मैं लाख अनाड़ी हूं लेकिन कभी इतना ज्यादा चूना नहीं डालता। हां, दो-चार छाले पड़ जाते हैं। मैं तो समझता हूं, यही अंतःपुर के कोप की अभिव्यक्ति है। आखिर वह आपकी ज्यादतियों का प्रोटेस्ट क्योंकर करें। खामोश बायकाट से आप राजी नहीं होते, दूसरा कोई हथियार उनके हाथ में है नहीं। भवों की कमान और बरौनियों का नेजा और मुस्कराहट का तीर उस वक्त बिल्कुल कोई असर नहीं करते। जब आप आंखें लाल किये, आस्तीनें समेटे इसलिए आसमान सर पर उठा लेते हैं कि नाश्ता और पहले क्यों नहीं तैयार हुआ, तब सालन में नमक और पान में चूना ज्यादा कर देने के सिवाय बदला लेने का उनके हाथ में और क्या साधन रह जाता है।

खैर, तीन-चार दिन के बाद एक दिन मैं सुबह के वक्त तंबोलिन की दुकान पर गया तो उसने मेरी फरमाइश पूरी करने में ज्यादा मुस्तैदी न दिखलाई। एक मिनट तक तो पान फेरती रही, फिर अंदर चली गई और कोई मसाला लिए हुए निकली। मैं दिल में खुश हुआ कि आज बड़े विधिपूर्वक गिलौरियां बना रही है। मगर अब भी वह सड़क की ओर प्रतीक्षा की आंखें से ताक रही थी कि जैसे दुकान के सामने कोई ग्राहक ही नहीं और ग्राहक भी कैसा, जो उसका पड़ोसी है और दिन में बीसियों ही बार आता है ! तब तो मैंने जग झुंझलाकर कहा—मैं कितनी देर से खड़ा हूं, कुछ इसकी भी खबर है ?

तंबोलिन ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा—हां बाबूजी, आपको देर तो बहुत हुई लेकिन एक मिनट और ठहर जाइए। बुरा न मानिएगा बाबूजी, आपके हाथ की बोहनी अच्छी नहीं है, कल आपकी बोहनी हुई थी, दिन में कुल छः आने की बिक्री हुई। परसों भी आप ही की बोहनी हुई थी, आठ आने के पैसे दुकान में आए थे। इसके पहले दो दिन पंडितजी की बोहनी हुई थी, दोपहर तक ढाई रुपये आ गए थे। कभी किसी का हाथ अच्छा नहीं होता बाबूजी !

मुझे गोली-सी लगी। मुझे अपने भाग्यशाली होने का कोई दावा नहीं है, मुझसे ज्यादा अभागे दुनिया में कम होंगे। इस साम्राज्य का अगर मैं बादशाह नहीं, तो कोई ऊंचा मनसबदार जरूर हूं लेकिन यह मैं कभी गवारा नहीं कर सकता कि नहूसत का दाग बर्दाश्त कर लूं। कोई मुझसे बोहनी न कराए, लोग सुबह को मेरा मुंह देखना अपशकुन समझें, यह तो घोर कलंक की बात है।

मैंने पान तो ले लिया लेकिन दिल में पक्का इरादा कर लिया कि इस नहूसत के दाग को मिटाकर ही छोड़ूंगा। अभी अपने कमरे में आकर बैठा ही था कि मेरे एक दोस्त आ गए। बाजार साग-भाजी लेने जा रहे थे। मैंने उनसे अपनी तंबोलिन की खूब तारीफ की। वह महाशय जरा सौंदर्य-प्रेमी थे और मजाकिया भी। मेरी ओर शरारत भरी नजरों से देखकर बोले—इस वक्त तो भाई, मेरे पास पैसे नहीं हैं और न अभी पानों की जरूरत ही है। मैंने कहा—पैसे मुझसे ले लो।

"हां, यह मंजूर है, मगर कभी तकाजा मत करना।"

"यह तो टेढ़ी खीर है।"

"तो क्या मुफ्त में किसी की आंख में चढ़ना चाहते हो ?"

मजबूर होकर उन हजरत को एक ढोली पान के दाम दिए। इसी तरह जो मुझसे मिलने आया, उससे मैंने अपनी तंबोलिन का बखान किया। दोस्तों ने मेरी खूब हंसी उड़ाई, मुझ पर खूब फबतियां कसीं, मुझे 'छिपे रुस्तम', 'भगतजी' और न जाने क्या-क्या नाम दिए गए लेकिन मैंने सारी आफतें हंसकर टालीं। यह दाग मिटाने की मुझे धुन सवार हो गई।

दूसरे दिन जब मैं तंबोलिन की दुकान पर गया तो उसने फौरन पान बनाए और मुझे देती हुई बोली—बाबूजी कल तो आपकी बोहनी बहुत अच्छी हुई, कोई साढ़े तीन रुपये आए। अब रोज बोहनी करा दिया करो।

2

तीन-चार दिन लगातार मैंने दोस्तों से सिफारिशें की, तंबोलिन की स्तुति गाई और अपनी गिरह से पैसे खर्च करके सुर्खरूई हासिल की। लेकिन इतने ही दिनों में मेरे खजाने में इतनी कमी हो गई कि खटकने लगी। यह स्वांग अब ज्यादा दिनों तक न चल सकता था, इसलिए मैंने इरादा किया कि कुछ दिनों उसकी दुकान से पान लेना छोड़ दूं। जब मेरी बोहनी ही न होगी, तो मुझे उसकी बिक्री की क्या फिक्र होगी ? दूसरे दिन हाथ-मुंह धोकर मैंने एक इलायची खा ली और अपने काम में लग गया। लेकिन मुश्किल से आध घंटा बीता होगा कि किसी की आहट मिली। आंख ऊपर को उठाता हूं तो तंबोलिन गिलौरियां लिए सामने खड़ी मुस्करा रही है। मुझे इस वक्त उसका आना जी पर बहुत भारी गुजरा लेकिन इतनी बेमुरौवती भी तो न हो सकती थी कि दुतकार दूं। बोला—तुमने नाहक तकलीफ की, मैं तो आ ही रहा था।

तंबोलिन ने मेरे हाथ में गिलौरियां रखकर कहा—आपको देर हुई तो मैंने कहा मैं ही चलकर बोहनी कर आऊं। दुकान पर गाहक खड़े हैं, मगर किसी की बोहनी नहीं की।

क्या करता, गिलौरियां खाईं और बोहनी कराई। जिस चिंता से मुक्ति पाना चाहता था, वह फिर फंदे की तरह गर्दन पर चिमटी हुई थी। मैंने सोचा था, मेरे दोस्त दो-चार दिन तक उसके यहां पान खाएंगे तो आप ही उससे हिल जाएंगे और मेरी सिफारिश की जरूरत न रहेगी। मगर तंबोलिन शायद पान के साथ अपने रूप का भी कुछ मोल करती थी, इसलिए एक बार जो उसकी दुकान पर गया, दुबारा न गया। दो-एक रसिक नौजवान अभी तक आते थे, वह लोग एक ही हंसी में पान और रूप-दर्शन दोनों का आनंद उठाकर चलते बने थे। आज मुझे अपनी साख बनाए रखने के लिए पूरे डेढ़ रुपये खर्च करने पड़े, बधिया बैठ गई।

दूसरे दिन मैंने दरवाजा अंदर से बंद कर लिया, मगर जब तंबोलिन ने नीचे से चीखना, चिल्लाना और खटखटाना शुरू किया तो मजबूरन दरवाजा खोलना पड़ा। आंखें मलता हुआ नीचे गया, जिससे मालूम हो कि आज नींद आ गई थी। फिर बोहनी करानी पड़ी। और फिर वही बला सर पर सवार हुई। शाम तक दो रुपये का सफाया हो गया। आखिर इस विपत्ति से छुटकारा पाने का यही एक उपाय रह गया कि वह घर छोड़ दूं।

3

मैंने वहां से दो मील पर एक अनजान मुहल्ले में एक मकान ठीक किया और रातों-रात असबाब उठवाकर वहां जा पहुंचा। वह घर छोड़कर मैं जितना खुश हुआ शायद कैदी जेलखाने से भी निकलकर उतना खुश न होता होगा। रात को खूब गहरी नींद सोया, सवेरा हुआ तो मुझे उस पंछी की आजादी का अनुभव हो रहा था जिसके पर खुल गए हैं। बड़े इत्मीनान से सिगरेट पिया, मुंह-हाथ धोया, फिर अपना सामान ढंग से रखने लगा। खाने के लिए किसी होटल की भी फिक्र थी, मगर उस हिम्मत तोड़ने वाली बला पर फतेह पाकर मुझे जो खुशी हो रही थी, उसके मुकाबले में इन चिंताओं की कोई गिनती न थी। मुंह-हाथ धोकर नीचे उतरा। आज की हवा में भी आजादी का नशा था। हर एक चीज मुस्कराती हुई मालूम होती थी। खुश-खुश एक दुकान पर जाकर पान खाए और जीने पर चढ़ ही रहा था कि देखा वह तंबोलिन लपकी चली आ रही है। कुछ न पूछो, उस वक्त दिल पर क्या गुजरी। बस यही जी चाहता था कि अपना और उसका दोनों का सिर फोड़ लूं। मुझे देखकर वह ऐसी खुश हुई जैसे कोई धोबी अपना खोया हुआ गधा पा गया हो। और मेरी घबराहट का अंदाजा बस उस गधे की दिमागी हालत से कर लो ! उसने दूर ही से कहा—वाह बाबूजी. वाह, आप ऐसे भागे कि किसी को पता भी न लगा। उसी मुहल्ले में एक-से-एक अच्छे घर खाली हैं। मुझे क्या मालूम था कि आपको उस घर में तकलीफ थी। नहीं तो मेरे पिछवाड़े ही एक बड़े आराम का मकान था। अब मैं आपको यहां न रहने दूंगी। जिस तरह हो सकेगा, आपको उठा ले जाऊंगी। आप इस घर का क्या किराया देते हैं ?

मैंने रोनी सूरत बनाकर कहा—दस रुपये।

मैंने सोचा था कि किराया इतना कम बताऊं जिसमें यह दलील उसके हाथ से निकल जाए। इस घर का किराया बीस रुपये है, दस रुपये में तो शायद मरने को भी जगह न मिलेगी। मगर तंबोलिन पर इस चकमे को कोई असर न हुआ। बोली—इस जरा-से घर के दस रुपये ! आप आठ ही दीजिएगा और घर इससे अच्छा न हो तो जब भी जी चाहे छोड़ दीजिएगा। चलिए, मैं उस घर की कुंजी लेती आई हूं। इसी वक्त आपको दिखा दूं।

मैंने त्योरी चढ़ाते हुए कहा—आज ही तो इस घर में आया हूं, आज ही छोड़ कैसे सकता हूं। पेशगी किराया दे चुका हूं।

तंबोलिन ने बड़ी लुभावनी मुस्कराहट के साथ कहा—दस ही रुपये तो दिए हैं, आपके लिए दस रुपये कौन-सी बड़ी बात है। यही समझ लीजिए कि आप न चले तो मैं उजड़ जाऊंगी। ऐसी अच्छी बोहनी वहां और किसी की नहीं है। आप नहीं चलेंगे तो मैं ही अपनी दुकान यहां उठा लाऊंगी।

मेरा दिल बैठ गया। यह अच्छी मुसीबत गले पड़ी। कहीं सचमुच चुड़ैल अपनी दुकान न उठा लाए। मेरे जी में तो आया कि एक फटकार बताऊं पर ज़ुबान इतनी बेमुरौवत न हो सकी। बोला—मेरा कुछ ठीक नहीं है, कब तक रहूं, कब तक न रहूं। आज ही तबादला हो जाय तो भागना पड़े। तुम न इधर की रहो, न उधर की।

उसने हसरत-भरे लहजे में कहा—आप चले जाएंगे तो मैं भी चली जाऊंगी। अभी आज तो आप जाते नहीं।

"मेरा कुछ ठीक नहीं है.

"तो मैं रोज यहां आकर बोहनी करा लिया करूंगी।"

"इतनी दूर रोज आओगी ?"

"हां, चली आऊंगी। दो मील ही तो है। आपके हाथ की बोहनी हो जाएगी। यह लीजिए, गिलौरियां लाई हूं। बोहनी तो करा दीजिए।"

मैंने गिलौरियां लीं, पैसे दिए और कुछ गश की-सी हालत में ऊपर जाकर चारपाई पर लेट गया।

अब मेरी अक्ल कुछ काम नहीं करती कि इस मुसीबत से क्योंकर गला छुड़ाऊं। तब से इसी फिक्र में पड़ा हुआ हूं। कोई भागने की राह नजर नहीं आती। सुर्खरू भी रहना चाहता हूं, बेमुरौवती भी नहीं करना चाहता और इस मुसीबत से छुटकारा भी पाना चाहता हूं। अगर कोई साहब मेरी इस करुण स्थिति पर मुझे ऐसा कोई उपाय बतला दें तो जीवन-भर उनका कृतज्ञ रहूंगा।

['बोहनी' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' (सन् 1930) में संकलित। अमृतराय द्वारा किया रूपांतर 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित-प्रकाशित। पाठ में भिन्नता के कारण इस रचनावली में 'बोहनी' कहानी के दोनों रूप प्रस्तुत किए गए हैं।]

खूनी

माया अपने तिमंजिले मकान की छत पर खड़ी सड़क की ओर उत्सुक और चिन्तित नेत्रों से देख रही थी और सोच रही थी—वह अब तक आये क्यों नहीं ? कहाँ देर लगायी ? इसी गाड़ी से तो आने को लिखा था। गाड़ी तो कब की आ गयी। स्टेशन से मुसाफ़िर चले आ रहे हैं। इस वक़्त और कोई तो गाड़ी भी नहीं आती। फिर क्या आज न आवेंगे ? नहीं, झूठे वादे करने की तो उनकी आदत नहीं है। शायद असबाब उतरवाने में देर हो गयी हो, या यार-दोस्त स्टेशन ही पर बधाइयाँ देने पहुँच गए होंगे। उनसे फुर्सत मिलेगी, तब तो घर की सुध आयेगी। उनकी जगह मैं होती तो सीधी घर आती। मित्रों से कह देती, आप लोग इस समय क्षमा करें, घर पर मिलिएगा, पर दोस्तों में उनकी तो जान बसती है।

मि. व्यास लखनऊ के एक जवान, पर उदीयमान बैरिस्टरों में हैं। तीन महीने से वह एक राजनैतिक अभियोग की पैरवी करने के लिए सरकार की ओर से लाहौर गये हुए हैं। उन्होंने माया को लिखा था, "विजय हो गयी। पहली तारीख़ को मैं शाम की मेल से अवश्य पहुँचूँगा।" आज वही शाम है। माया ने आज सारा दिन तैयारियों में काटा, सारा मकान धुलवाया, कमरों के सजावट के सामान साफ़ कराये, मोटर धुलवाई, नाना प्रकार के भोजन बनवाये। ये तीन महीने उसने तपस्या करके काटे थे, पर जिसके लिए सारी तैयारियाँ कीं, उसका पता नहीं।

उसकी छोटी बच्ची तिलोत्तमा आकर उसके पैरों से चिपट गयी और बोली, "अम्मा, बाबू जी कब आयेंगे ?"

माया ने उसे गोद में उठा लिया और सड़क की ओर ताकती हुई बोली, "आते ही होंगे, बेटी। गाड़ी तो कब की आ गयी।"

तिलोत्तमा ने माता की गरदन में बाहें डालकर कहा, "मेरे लिए अच्छी-अच्छी गुड़ियाँ लाते होंगे। ओहो ! !"

माया ने कोई जवाब न दिया। उसकी निराशा अब क्रोध का रूप धारण करती जाती थी। वह सोच रही थी—जिस तरह यह महाशय मुझे दिक़ कर रहे हैं, उसी तरह मैं भी उन्हें दिक़ करूँगी। घण्टे भर तो बोलूँगी ही नहीं। आकर स्टेशन पर बैठे हुए हैं। यहाँ तक आते पैर की मेहंदी छूटी जाती है। कुछ नहीं, इन्हें मुझको जलाने में मज़ा आता है। इनकी यह पुरानी आदत है। अपने मन को क्या करूँ ? नहीं, इच्छा तो यही होती है कि जैसे वह मुझसे उदासीन रहते हैं, वैसे ही मैं भी उनकी बात न पूछूँ।

सहसा एक चौक़ीदार ने आकर कहा, "बहूजी, लाहौर से तार आया है।"

माया भीतर-ही-भीतर जल उठी। ऐसा जान पड़ा, जैसे किसी ने हृदय को कुचल दिया हो। फ़ौरन विचार हुआ—इसके सिवा और क्या लिखा होगा कि इस गाड़ी से न आ सकूँगा ? तार दे देना कौन मुश्किल है ? मैं भी क्यों न तार दे दूँ कि मैं एक महीने के लिए मैके जा रही हूँ।

विरक्त भाव से चौक़ीदार की ओर देखकर माया ने कहा, "तार ले जाकर कमरे में मेज पर रख दो !" लेकिन फिर कुछ सोचकर उसने लिफ़ाफ़ा ले लिया और खोला ही था कि काग़ज़ हाथ से छूटकर गिर पड़ा। लिखा था—मि. व्यास को किसी बदमाश ने दस बजे रात को मार डाला।

2

कई महीने गुज़र गये, पर खूनी का अब तक कहीं पता नहीं। खुफ़िया पुलिस के कई पुराने आदमी उसका सुराग़ लगाने के लिए नियुक्त हैं। खूनी का पता देने वाले को बीस हज़ार रुपये का इनाम दिये जाने का विज्ञापन दिया जा चुका है, पर सारे प्रयास निष्फल हो रहे हैं। जिस होटल में मि. व्यास ठहरे थे, उसी में एक महीने से माया ठहरी हुई है। इस कमरे से उसे प्रेम हो गया है। उसकी सूरत इतनी बदल गई है कि पहचानी नहीं जाती, पर उस पर दीनता या वेदना की जगह, उन्माद की प्रचण्डता झलक रही है। उसकी मत्त आँखों में अब खून की प्यास है और प्रतिकार की ज्वाला। यही उसके जीवन का ध्येय, उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है। जिस पिशाच ने उसका सर्वनाश कर दिया, उसे अपने सामने तड़पते देखकर ही उसकी आँखें ठण्डी होंगी।

पुलिस साम, दाम, दण्ड, भेद से काम ले रही है, किन्तु माया ने अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए एक और ही साधना का आश्रय लिया है। मि. व्यास को प्रेत-विद्या का शौक़ था। उनकी सोहबत में माया को भी कुछ अभ्यास हो गया था। उस वक़्त उसके लिए यह मनोरंजन का विषय था, पर अब यही उसका इष्ट हो गया था। वह नित्य-प्रति तिलोत्तमा पर इसका अभ्यास करती
थी। वह उस दिन का इन्तज़ार कर रही थी, जब वह अपने पति की आत्मा का आवाहन

करके उससे घातक का सुराग़ लगा सकेगी।

रात के दस बज गये थे। माया ने कमरे में अँधेरा कर लिया था और तिलोत्तमा पर प्रयोग कर रही थी। सहसा उसे कमरे में किसी बुझते हुए दीपक के अन्तिम आलोक के सदृश किसी वस्तु के अवतरित होने का आभास हुआ।

माया ने पूछा, "आप कौन हैं ?"

तिलोत्तमा ने हँसकर कहा, "क्या इतनी जल्द भूल गयीं ? मैं तुम्हारा मनमोहन हूँ।"

"आप खूब आये ? मैं आपसे आपके हत्यारे का नाम पूछना चाहती हूँ।"

"उसका नाम है ईश्वरदास।"

"कहाँ रहता है ?"

"शाहजहाँपुर।"

माया ने मुहल्ले का नाम, मकान का नम्बर, रूप-रंग, सब-कुछ विस्तार से पूछकर एक काग़ज़ पर नोट कर लिया। एक क्षणभर बाद तिलोत्तमा अँगड़ाई लेकर उठ बैठी। जब कमरे में फिर प्रकाश हुआ तो माया का मुखमण्डल विजय के उल्लास से प्रदीप्त हो उठा था।

उसी रात को माया शाहजहाँपुर के लिए रवाना हो गयी।

3

माया की एक बहन शाहजहाँपुर में रहती थी। ईश्वरदास का पता लगाने में कोई कठिनाई न हुई। माया को भय था कि कहीं प्रेतात्मा की बतलायी हुई बातें मिथ्या न हों। इसलिए जब उसे ईश्वरदास का घर मिला तो उसका हृदय आनन्दमिश्रित भय से काँप उठा। कल्पना-जगत की बात सम्मुख आ गयी। अब उस कर्त्तव्य को पूरा करना पड़ेगा जो प्रत्यक्ष होकर और भी कठोर हो गया है।

माया ने ईश्वरदास के घर के पास ही एक घर-किराये पर ले लिया है। तिलोत्तमा अक्सर खेलती हुई ईश्वरदास के पास चली जाती है। ईश्वरदास अविवाहित है। तिलोत्तमा को देखता है तो गोद में उठा लेता है और खिलाने लगता है। खूनी के जितने लक्षण आत्मा ने बतलाए थे, वे सब मौजूद हैं—वही पहनावा है, वही रूप-रंग है, वही मुद्रा है, वही बातचीत करने का ढंग है; लेकिन माया को कभी-कभी सन्देह होने लगता है कि कहीं उसे भ्रम न हो रहा हो। ईश्वरदास इतना सज्जन, इतना हँसमुख, इतना नम्र, इतनी खिदमत करने वाला आदमी है कि उसके हाथों किसी का मारा जाना असम्भव-सा मालूम होता है।

एक बार तिलोत्तमा को थोड़ा ज्वर हो आया। फिर मालूम हुआ मियादी बुख़ार है। इन दस-बारह दिनों में ईश्वरदास ने जितनी दौड़-धूप की, उतनी शायद खुद बैरिस्टर साहब भी न कर सकते। तिलोत्तमा रात को बहुत बेचैन हो जाती थी, हाथ-पाँव पटकती, बक-झक करती। तब माया घबरा जाती कि कहीं बच्ची को सरसाम न हो रहा हो। उस समय वहाँ ईश्वरदास के सिवा और कौन था जो अड़े पर काम आता ? कभी-कभी तो माया बदहवास होकर खुद दौड़ी हुई जाती और उसे बुला लाती। उसकी आवाज़ सुनते ही ईश्वरदास भागा चला आता और या तो उसी वक़्त वैद्य के पास जाता या तिलोत्तमा को गोद में उठाकर टहलाने ले जाता।

माया को अब ईश्वरदास से कोई परदा न था, कोई झिझक न थी। ऐसे दया के पुतले भी क्या किसी का खून क सकते हैं ? माया का सन्देह दिन-दिन बढ़ता जाता था। जब तक उसे निश्चित रूप से न साबित हो जायगा कि यही खूनी है, वह केवल सन्देह पर उसे प्राणदण्ड न देगी। दे ही नहीं सकती।

एक दिन तिलोत्तमा की तबियत कुछ अच्छी थी। वह ज़रा-सा दूध पीकर सो गयी थी। ईश्वरदास उसके पास ही एक मोड़े पर बैठा हुआ उसे पंखा झल रहा था और माया खड़ी उसके मुँह की ओर देख रही थी। उसका जी झुँझला रहा था कि ईश्वरदास से क्यों उसकी जान-पहचान हुई। आज अगर यह साबित भी हो जाय कि यही खूनी है, तो भी क्या वह उसके उपकारों को भूल जायेगी ? उस पर उसके हाथ उठ सकेंगे ?

उसने सशंक नेत्रों से ईश्वरदास की ओर देखा। वह मोड़े पर लेटा-लेटा झपकियाँ ले रहा था। धीरे-धीरे उसके हाथ से पंखा छूटकर गिर पड़ा, उसका सिर एक ओर झुक गया और उसकी नाक से खर्राटे की आवाज़ आने लगी। माया को उस समय ईश्वरदास की सूरत देखकर भय-सा लगा। नींद की गोद में सुख और विश्राम का अनुभव करके आदमी का चेहरा, कुछ खिल जाता है, लेकिन ईश्वरदास का चेहरा कठोर, उद्दण्ड हो गया था।

सहसा वह बर्रा उठा, "हाय-हाय ! मारो मत, मैं सब-कुछ बतला दूँगा....सब कुछ..."

एक मिनिट तक उसकी सूरत ऐसी बिगड़ी रही, मानो वह कठोर वेदना सह रहा हो। फिर उसने हाथ उठाया, मानो अपने को किसी के वार से बचा रहा हो, और बर्राने लगा, "हाँ, वह सड़क पर खड़े थे.... रात के दस बजे थे। मैंने पीछे से जाकर.... मारो मत....मारो मत, कहता तो हूँ....जाकर उन्हें गिरा दिया।"

यह कहते-कहते ईश्वरदास चौंक पड़ा, उसकी आँखें खुल गयीं। उसने अँगड़ाई लेकर कहा, "क्या मैं सो गया था ?"

माया की आँखों से ज्वाला निकल रही थी। वह कुछ न बोली। ईश्वरदास ने कहा, "बड़ा बुरा ख्वाब देखा।"

माया ने मानो क़ब्र के अन्दर से कहा, "आप बहुत थक गये हैं। जाकर लेट रहिए।"

ईश्वर, "हाँ, आज सारे दिन दौड़ना पड़ा, थक गया हूँ। कोई ज़रूरत हो तो पुकार लीजिएगा।"

ईश्वरदास जाने लगा तो माया ने कहा, "आज यहीं न लेट रहिए ! मुझे भी कुछ सर्दी लग रही है। शायद ज्वर आ जाय।"

ईश्वर, "अच्छी बात है, यहीं लेट रहूँगा। कई रातें जागने से आप भी थक गयी हैं। आप निश्चिन्त होकर सो जायें। मुझे कोई ज़रूरत होगी तो पुकार लूँगा।"

4

आधी रात बीत चुकी थी। ईश्वरदास गहरी नींद में था और माया पिस्तौल लिए विचार में मग्न खड़ी थी। उसने समीप आकर ईश्वरदास को ध्यान से देखा। वह गाफ़िल पड़ा हुआ था। उसने अन्दर जाकर पिस्तौल उठा लिया और फिर बाहर के कमरे में आयी। वह ऐसा

निशाना लगाना चाहती थी कि वार ख़ाली ही न जाय, पर उसकी सारी देह काँप रही थी। कमरे की हर चीज़ घूमती हुई मालूम होती थी, मानो सारा आसमान चक्कर खा रहा है। उसने एक क़दम और आगे बढ़ाया। वहाँ उसके सिवा और कोई न था। यह जानकर भी वह सशंक नेत्रों से इधर-उधर देख रही थी, मानो दीवारों के भी आँखें हैं। सहसा उसे ऐसा जान पड़ा कि उसके पतिदेव सामने खड़े उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देख रहे हैं, जैसे कह रहे हों–अब क्या खड़ी काँप रही हो? इससे अच्छा और कौन मौक़ा आयेगा ? माया ने ओठ को दाँतों के नीचे दबा लिया और ईश्वरदास के सामने आकर खड़ी हो गयी।

मगर ईश्वरदास की आँखें खुल गयी थीं। माया की आहट पाकर वह चौंका और सिर उठाकर देखा तो खून सर्द हो गया। माया पिस्तौल की नली उसकी तरफ़ किये उसे हिंसा-भाव से देख रही है।

वह चारपाई से उठकर खड़ा हो गया और घबराकर बोला, 'क्या है बहन, यह पिस्तौल क्यों ?"

माया ने कठोर स्वर में कहा, "तुमने मेरे पति को क़त्ल किया है।"

ईश्वरदास का मुख पीला पड़ा गया। बोला, "मैंने ?"

"हाँ, तुमने। तुम्हीं ने लाहौर में मेरे पति को मारा, जब वह एक मुक़दमे की पैरवी करने लाहौर गये थे। क्या तुम इससे इन्कार कर सकते हो ? मेरे पति की आत्मा ने स्वयं तुम्हारा पता बताया है।"

"तो तुम मि. व्यास की पत्नी हो ?"

"हाँ, मैं ही उनकी अभागिनी पत्नी हूँ और तुम मेरा सुहाग लूटने वाले हो। तुमने मेरे ऊपर बड़े एहसान किये हैं। मैं उन्हें न भूलूँगी, लेकिन एहसानों से मेरे दिल की आग नहीं बुझ सकती। यह तुम्हारे खून ही से बुझेगी।"

ईश्वरदास एक क्षण तक शान्त खड़ा रहा, फिर दीन-भाव से देखकर, "अगर आपका यही फ़ैसला है तो लीजिए यह सिर हाज़िर है। अगर मेरे खून से आपके दिल की आग बुझ जाय तो मैं स्वयं उसे आपके चरणों पर गिरा दूँगा, लेकिन जिस भाँति आप मुझे मारना अपना धर्म समझ रही हैं, उसी तरह मैंने भी मि. व्यास को मारना अपना धर्म समझा था। आपको मालूम है, वह एक सरकारी मुक़दमे की पैरवी करने लाहौर गए हुए थे। वहाँ उन्होंने जिस तरह पुलिस को झूठी गवाहियाँ बनाने में मदद की, जिस निर्दयता से बेकस और बेबस युवकों का सर्वनाश किया, जिस कुटिलता से नीति और न्यास का गला घोंटा, उसे देखकर मेरा दिल काबू से बाहर हो गया। मेरे सिर पर खून सार हो गया। उन दिनों अदालत में तमाशा देखने वालों की भीड़ रहती थी। सभी अदालत में मि. व्यास को गालियाँ देते जाते थे। मैं मुक़दमे का रहस्य खूब जानता था, इसलिए मुझे गालियों से तस्कीन न हो सकती थी। मैं आपसे क्या कहूँ, मि. व्यास जानबूझकर पुलिस के हाथों में कठपुतली बन गये। वह उन ग़रीबों को इजलास में जिस निर्दयता से डांटते थे, वह सुनकर मेरे हृदय में ज्वाला-सी दहक उठती थी। आज कितनी माताएँ अपने लालों के लिए खून के आँसू रो रही हैं, कितनी देवियाँ रँडापे की आग में जल रही हैं। केवल इसलिए कि मि. व्यास ने

पुलिस के हथकण्डों को सच्चा साबित कर दिया। पुलिस कितनी ही बुराइयाँ करे हम परवाह नहीं करते। इसके सिवा पुलिस से हम कोई आशा ही नहीं रखते। सरकार ने उस महकमे को खोला ही इसलिए है कि ग़रीबों को तंग करे, जिसे ज़रा भी सिर उठाकर चलते देखे कुचल दे। मगर वकीलों से हम न्याय की आशा रखते हैं। हम उनका आदर करते हैं, उन्हें अपने समाज का नेता समझते हैं। जब ऐसे आदमियों को हम पुलिस की तालों पर नाचते देखते हैं तो यही जी चाहता है कि ऐसे देशद्रोहियों का खून पी जायें। मैं मि. व्यास का बड़ा भक्त था। एक बार मैं उनका व्याख्यान सुनकर दंग रह गया था। मगर जब मैंने उन्हें बेगुनाहों की गरदन पर छुरी फेरते देखा. तो मुझे उनसे घृणा हो गयी। बेचारे ग़रीब मुलज़िम रात-रात भर उलटे लटकाये जाते थे, केवल इसलिए कि जो अपराध उन्होंने कभी नहीं किया, उसे स्वीकार कर लें। उनकी नाक में लाल मिर्च का धुआँ डाला जाता था। मि. व्यास यह सारा अत्याचार केवल देखते ही न थे, बल्कि यह सब-कुछ उन्हीं के इशारे से होता था।"

माया खिसियानी होकर बोली, "आपके पास इसका कोई सबूत है कि उन्होंने लोगों पर ऐसे अत्याचार किये ?"

ईश्वरदास ने उत्तेजित होकर कहा. "वह कोई छिपी हुई बात न थी। लाहौर का बच्चा-बच्चा जानता है। मैंने खुद अपनी आँखों से देखा। इसके सिवा मैं और क्या सबूत दे सकता हूँ कि उन ग़रीबों का इतना ही अपराध था कि वे भारत के सच्चे सेवक थे। अपना सारा समय शिक्षा-प्रचार और परोपकार में लगाते थे। खुद कुचले जाते थे, पर ग़रीबों को सख़्तियों से बचाते थे। खुद
फ़ाक़े करते थे, पर भूखों को खिलाते थे। यही उनका अपराध था और इसी अपराध की सज़ा दिलाने में मि. व्यास पुलिस के दाहिने हाथ बने हुए थे।"

माया ने पिस्तौल जमीन पर रख दिया और सिर झुकाकर सोचने लगी। उसका नारी-हृदय अत्याचार का यह वृत्तान्त सुनकर कातर हो उठा। वह जब किसी कोचवान को देखती थी कि घोड़े को बेतरह पीट रहा है तो उसे क्रोध आता था कि कोचवान को कोड़े लगवाये। कोई पुरुष अपनी स्त्री को पीटता था तो यह ख़बर सुनकर उसका चित्त उस स्त्री के लिए दुखी हो जाता था, लेकिन जब उसे मालूम हो जाता था कि घोड़ा अड़ियल है और स्त्री कुलटा, तो उसका क्रोध उलट पड़ता था। यही दशा इस समय भी उसके मन की हो रही थी।

ईश्वरदास ने फिर कहना शुरु किया, "यह न समझिए कि मैं आपके पिस्तौल से डरकर मि. व्यास पर झूठे आक्षेप कर रहा हूँ। मैंने कभी जीवन की परवाह नहीं की। मेरे कौन रोने वाला बैठा हुआ है, जिसके लिए मौत से डरूँ ? अगर यह माज़रा सुनकर भी आप समझती हैं कि मैंने मि. व्यास के साथ अन्याय किया है, तो पिस्तौल उठाकर इस जीवन का अन्त कर दीजिए। मैं ज़रा भी न झिझकूँगा। पुलिस की आँखों में तो मैं खूनी हूँ, लेकिन मैं पुलिस की परवाह नहीं करता। जनता की आँखों में मैं बेक़सूर हूँ। अगर पुलिस मेरे खिलाफ़ कोई गवाह चाहे तो नहीं पा सकती। मैं खुद अपने को खूनी नहीं समझता। बस आप ही के ऊपर फ़ैसला है। आप का फ़ैसला अगर मेरे ख़िलाफ़ है, तो मैं आपके सामने

यहीं इसी पिस्तौल से अपना अन्त कर लूँगा।"

यह कहते हुए ईश्वरदास ने ज़मीन से पिस्तौल उठा लिया और उसकी नली अपनी तरफ़ फेरकर माया की तरफ़ देखने लगा।

माया ने सिर उठाकर नरमी से कहा, "पिस्तौल रख दीजिए।"

"मैं आपका फैसला सुनना चाहता हूँ।"

"इसका फ़ैसला ईश्वर करेंगे। मुझे अब आपसे कुछ नहीं कहना है। मैं उन्हें ऐसा न समझती थी। आप मुझे उन घरों का पता बता दीजिए, जो मेरे पति के हाथों बरबाद हुए हैं। शायद मैं उनके अत्याचार का कुछ प्रायश्चित कर सकूँ।"

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी साप्ताहिक 'भारत', 25 नवम्बर, 1928 में प्रकाशित। 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

विद्रोही

आज दस साल से जब्त कर रहा हूँ। अपने इस नन्हे-से हृदय में अग्नि का दहकता हुआ कुण्ड छिपाये बैठा हूँ। संसार में कहीं शान्ति होगी, कहीं सैर-तमाशे होंगे, कहीं मनोरंजन की वस्तुएँ होंगी; मेरे लिए तो अब यही अग्निराशि है और कुछ नहीं। जीवन की सारी अभिलाषाएँ इसी में जलकर राख हो गयीं। किससे अपनी मनोव्यथा कहूँ ? फायदा ही क्या? जिसके भाग्य में रुदन, अनंत रुदन हो, उसका मर जाना ही अच्छा।

मैंने पहली बार तारा को उस वक्त देखा, जब मेरी उम्र दस साल की थी। मेरे पिता आगरे के एक अच्छे डाक्टर थे। लखनऊ में मेरे एक चचा रहते थे। उन्होंने वकालत में काफी धन कमाया था। मैं उन दिनों चचा ही के साथ रहता था। चचा के कोई सन्तान न थी; इसलिए मैं ही उनका वारिस था। चचा और चची दोनों मुझे अपना पुत्र समझते थे। मेरी माता बचपन ही में सिधार चुकी थीं। मातृ-स्नेह का जो कुछ प्रसाद मुझे मिला, वह चची जी ही की भिक्षा थी। वही भिक्षा मेरे उस मातृ-प्रेम से वंचित बालपन की सारी विभूति थी।

चचा साहब के पड़ोस में हमारी बिरादरी के एक बाबू साहब और रहते थे। वह रेलवे-विभाग में किसी अच्छे ओहदे पर थे। दो-ढाई सौ रुपये पाते थे। नाम था विमलचन्द्र। तारा उन्हीं की पुत्री थी। उस वक्त उसकी उम्र पाँच साल की होगी। बचपन का वह दिन आज भी आँखों के सामने है, जब तारा एक फ्राक पहने, बालों में एक गुलाब का फूल गूँथे हुए मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी। कह नहीं सकता, क्यों मैं उसे देखकर झेंप-सा गया। मुझे वह देव-कन्या सी मालूम हुई, जो उषा-काल के सौरभ और प्रकाश से रंजित आकाश से उतर आयी हो।

उस दिन से तारा अक्सर मेरे घर आती। उसके घर में खेलने की जगह न थी। चचा साहब के घर के सामने लम्बा-चौड़ा मैदान था। वहीं वह खेला करती। धीरे-धीरे मैं भी उससे मानूस हो गया। मैं जब स्कूल से लौटता तो तारा दौड़कर मेरे हाथों से किताबों का

बस्ता ले लेती। जब मैं स्कूल जाने के लिए गाड़ी पर बैठता, तो वह भी आकर मेरे साथ बैठ जाती। एक दिन उसके सामने चची ने चचाजी से कहा—तारा को मैं अपनी बहू बनाऊँगी। क्यों कृष्णा, तू तारा से ब्याह करेगा ? मैं मारे शर्म के बाहर भाग गया; लेकिन तारा वहीं खड़ी रही, मानो चची ने उसे मिठाई देने को बुलाया हो। उस दिन से चचा और चची में अक्सर यही चर्चा होती....कभी सलाह के ढंग से, कभी मजाक के ढंग से। उस अवसर पर मैं तो शर्माकर बाहर भाग जाता था; पर तारा खुश होती थी। दोनों परिवारों में इतना घराव था कि इस सम्बन्ध का हो जाना कोई असाधारण बात न थी। तारा के माता-पिता को तो इसका पूरा विश्वास था कि तारा से मेरा विवाह होगा। मैं जब उनके घर जाता, तो मेरी बड़ी आवभगत होती। तारा की माँ उसे मेरे साथ छोड़कर किसी बहाने से टल जाती थीं। किसी को अब इसमें शक न था कि तारा ही मेरी हृदयेश्वरी होगी।

एक दिन उस सरला ने मिट्टी का एक घरौंदा बनाया। मेरे मकान के सामने नीम का पेड़ था। उसी की छाँह में वह घरौंदा तैयार हुआ। उसमें कई जरा-जरा से कमरे थे, कई मिट्टी के बरतन, एक नन्ही-सी चारपाई थी। मैंने जाकर देखा, तो तारा घरौंदा बनाने में तन्मय हो रही थी। मुझे देखते ही दौड़कर मेरे पास आयी और बोली—कृष्णा, चलो हमारा घर देखो, मैंने अभी बनाया है। घरौंदा देखा, तो हँसकर बोला—इसमें कौन रहेगा, तारा ?

तारा ने ऐसा मुँह बनाया, मानो यह व्यर्थ का प्रश्न था ! बोली—क्यों, हम और तुम कहाँ रहेंगे ? जब हमारा-तुम्हारा विवाह हो जायगा, तो हम लोग इसी घर में आकर रहेंगे। वह देखो, तुम्हारी बैठक है, तुम यहीं बैठकर पढ़ोगे। दूसरा कमरा मेरा है, इसमें बैठकर मैं गुड़िया खेलूँगी।

मैंने हँसी करके कहा—क्यों, क्या मैं सारी उम्र पढ़ता ही रहूँगा और तुम हमेशा गुड़िया ही खेलती रहोगी ?

तारा ने मेरी तरफ इस ढंग से देखा, जैसे मेरी बात नहीं समझी। पगली जानती थी कि जिन्दगी खेलने और हँसने ही के लिए है। यह न जानती थी कि एक दिन हवा का एक झोंका आयेगा और इस घरौंदे को उड़ा ले जायेगा और इसी के साथ हम दोनों भी कहीं-से-कहीं जा उड़ेंगे।

2

इसके बाद मैं पिताजी के पास चला आया और कई साल पढ़ता रहा। लखनऊ की जलवायु मेरे अनुकूल न थी, या पिताजी ने मुझे अपने पास रखने के लिए यह बहाना किया था, मैं निश्चय नहीं कह सकता। इण्टरमीडिएट तक मैं आगरे ही में पढ़ा, लेकिन चचा साहब के दर्शनों के लिए बराबर जाता रहता था। हर एक तातील में लखनऊ अवश्य जाता और गर्मियों की छुट्टी तो पूरी लखनऊ ही में कटती थी। एक छुट्टी गुजरते ही दूसरी छुट्टी आने के दिन गिने जाने लगते थे। अगर मुझे एक दिन की भी देर हो जाती, तो तारा का पत्र आ पहुँचता। बचपन के उस सरल प्रेम में अब जवानी का उत्साह और उन्माद था। वे प्यारे दिन क्या भूल सकते हैं ! वही मधुर स्मृतियाँ अब इस जीवन का सर्वस्व हैं। हम दोनों रात को सब की नजरें बचाकर मिलते और हवाई किले बनाते। इससे कोई यह न समझे कि

हमारे मन में पाप था, कदापि नहीं। हमारे बीच में एक भी ऐसा शब्द, एक भी ऐसा संकेत न आने पाता, जो हम दूसरों के सामने न कर सकते, जो उचित सीमा के बाहर होते। यह केवल वह संकोच था, जो इस अवस्था में हुआ करता है। शादी हो जाने के बाद भी तो कुछ दिनों तक स्त्री और पुरुष बड़ों के सामने बातें करते लजाते हैं। हाँ, जो अंग्रेजी सभ्यता के उपासक हैं, उनकी बात मैं नहीं चलाता। वे तो बड़ों के सामने आलिंगन और चुम्बन तक करते हैं। हमारी मुलाकातें दोस्तों की मुलाकातें होती थीं—कभी ताश की बाजी होती, कभी साहित्य की चर्चा, कभी स्वदेश सेवा के मनसूबे बँधते, कभी संसार यात्रा के। क्या कहूँ, तारा का हृदय कितना पवित्र था ! अब मुझे ज्ञात हुआ कि स्त्री कैसे पुरुष पर नियन्त्रण कर सकती है, कुत्सित को कैसे पवित्र बना सकती है। एक दूसरे से बातें करने में, एक दूसरे के सामने बैठे रहने में हमें असीम आनन्द होता था। फिर, प्रेम की बातों की जरूरत वहाँ होती है, जहाँ अपने अखण्ड अनुराग, अपनी अतुल निष्ठा, अपने पूर्ण आत्म-समर्पण का विश्वास दिलाना होता है। हमारा संबंध तो स्थिर हो चुका था। केवल रस्में बाकी थीं। वह मुझे अपना पति समझती थी, मैं उसे अपनी पत्नी समझता था। ठाकुरजी का भोग लगाने के पहले थाल के पदार्थों में कौन हाथ लगा सकता है ? हम दोनों में कभी-कभी लड़ाई भी होती थी और कई-कई दिनों तक बातचीत की नौबत न आती; लेकिन ज्यादती कोई करे, मनाना उसी को पड़ता था। मैं जरा-सी बात पर तिनक जाता था। वह हँसमुख थी, बहुत ही सहनशील, लेकिन उसके साथ ही मानिनी भी परले सिरे की। मुझे खिलाकर भी खुद न खाती, मुझे हँसाकर भी खुद न हँसती।

इंटरमीडिएट पास होते ही मुझे फौज में एक जगह मिल गयी। उस विभाग के अफसरों में पिताजी का बड़ा मान था। मैं सार्जेन्ट हो गया और सौभाग्य से लखनऊ ही में मेरी नियुक्ति हुई। मुँहमाँगी मुराद पूरी हुई।

मगर विधि-वाम कुछ और ही षड्यन्त्र रच रहा था। मैं तो इस खयाल में मगन था कि कुछ दिनों में तारा मेरी होगी। उधर एक दूसरा ही गुल खिल गया। शहर के एक नामी रईस ने चचाजी से मेरे विवाह की बात छेड़ दी और आठ हजार रुपये दहेज का वचन दिया। चचाजी के मुँह से लार टपक पड़ी। सोचा, यह आशातीत रकम मिलती है, इसे क्यों छोड़ूँ। विमल बाबू की कन्या का विवाह कहीं-न-कहीं हो ही जायगा। उन्हें सोचकर जवाब देने का वादा करके विदा किया और विमल बाबू को बुलाकर बोले—आज चौधरी साहब कृष्णा की शादी की बातचीत करने आये थे। आप तो उन्हें जानते होंगे ? अच्छे रईस हैं। आठ हजार रुपये दे रहे हैं। मैंने कह दिया है, सोचकर जवाब दूँगा। आपकी क्या राय है ? यह शादी मंजूर कर लूँ ?

विमल बाबू ने चकित होकर कहा—यह आप क्या फरमाते हैं ? कृष्णा की शादी तो तारा से ठीक हो चुकी है न ?

चचा साहब ने अनजान बनकर कहा—यह तो मुझे आज मालूम हो रहा है। किसने ठीक की है यह शादी ? आपसे तो मुझसे इस विषय में कोई भी बातचीत नहीं हुई।

विमल बाबू जरा गर्म होकर बोले—जो बात आज दस-बारह साल से सुनता हूँ, क्या उसकी तसदीक भी करनी चाहिए थी ? मैं तो इसे तय समझे बैठा हूँ। मैं ही क्या, सारा

मुहल्ला तय समझ रहा है।

चचा साहब ने बदनामी के भय से जरा दबकर कहा—भाई साहब, हक तो यह है कि मैं जब कभी इस सम्बन्ध की चर्चा करता था, दिल्लगी के तौर पर लेकिन खैर, मैं आपको निराश नहीं करना चाहता। आप मेरे पुराने मित्र हैं। मैं आपके साथ सब तरह की रिआयत करने को तैयार हूँ। मुझे आठ हजार मिल रहे हैं। आप मुझे सात ही हजार दीजिए—छः हजार ही दीजिए।

विमल बाबू ने उदासीन भाव से कहा—आप मुझसे मजाक कर रहे हैं या सचमुच दहेज माँग रहे हैं, मुझे यकीन नहीं आता।

चचा साहब ने माथा सिकोड़कर कहा—इसमें मजाक की तो कोई बात नहीं। मैं आपके सामने चौधरी से बातें कर सकता हूँ।

विमल—बाबूजी, आपने तो यह नया प्रश्न छेड़ दिया। मुझे तो स्वप्न में भी गुमान न था कि हमारे और आपके बीच में यह प्रश्न खड़ा होगा। ईश्वर ने आपको बहुत कुछ कर दिया। दस-पाँच हजार में आपका कुछ न बनेगा। हाँ, यह रकम मेरी सामर्थ्य से बाहर है। मैं तो आपसे दया ही की भिक्षा माँग सकता हूँ। आज दस-बारह साल से हम कृष्णा को अपना दामाद समझते आ रहे हैं। आपकी बातों से भी कई बार इसकी तसदीक हो चुकी है। कृष्णा और तारा में जो प्रेम है, वह आपसे छिपा नहीं है। ईश्वर के लिए थोड़े-से रुपयों के वास्ते कई जनों का खून न कीजिए।

चचा साहब ने धृष्टता से कहा—विमल बाबू, मुझे खेद है कि मैं इस विषय में और नहीं दब सकता।

विमल बाबू जरा तेज होकर बोले—आप मेरा गला घोंट रहे हैं !

चचा—आपको मेरा एहसान मानना चाहिए कि कितनी रिआयत कर रहा हूँ।

विमल—क्यों न हो, आप मेरा गला घोंटें और मैं आपका एहसान मानूँ ? मैं इतना उदार नहीं हूँ। अगर मुझे मालूम होता कि आप इतने लोभी हैं, तो आपसे दूर ही रहता। मैं आपको सज्जन समझता था। अब मालूम हुआ कि आप भी कौड़ियों के गुलाम हैं। जिसकी निगाह में मुरौवत नहीं, जिसकी बातों का कोई विश्वास नहीं, उसे मैं शरीफ नहीं कह सकता। आपको अख्तियार है, कृष्णा बाबू की शादी जहाँ चाहें करें; लेकिन आपको हाथ न मलना पड़े, तो कहिएगा। तारा का विवाह तो कहीं-न-कहीं हो ही जायगा और ईश्वर ने चाहा तो किसी अच्छे ही घर में होगा। संसार में सज्जनों का अभाव नहीं है; मगर आपके हाथ अपयश के सिवा और कुछ न लगेगा।

चचा साहब ने त्यौरियाँ चढ़ाकर कहा—अगर आप मेरे घर में न होते, तो इस अपमान का कुछ जवाब देता !

विमल बाबू ने छड़ी उठा ली और कमरे से बाहर जाते हुए कहा—आप मुझे क्या जवाब देंगे ? आप जवाब देने के योग्य ही नहीं हैं।

उसी दिन शाम को जब मैं बैरक से आया और जलपान करके विमल बाबू के घर जाने लगा, तो चची ने कहा—कहाँ जाते हो ? विमल बाबू से और तुम्हारे चचाजी से आज एक झड़प हो गयी।

मैंने ठिठककर ताज्जुब के साथ कहा—झड़प हो गयी ! किस बात पर ?

चची ने सारा-का-सारा वृत्तान्त कह सुनाया और विमल को जितने काले रंगों में रंग सकीं, रंगा—तुमसे क्या कहूँ बेटा, ऐसा मुँहफट तो आदमी ही नहीं देखा। हजारों ही गालियाँ दीं, लड़ने पर आमादा हो गया।

मैंने एक मिनट तक सन्नाटे में खड़े रहकर कहा—अच्छी बात है, वहाँ न जाऊँगा। बैरक जा रहा हूँ। चची बहुत रोयीं-चिल्लायीं; पर मैं एक क्षण-भर भी न ठहरा। ऐसा जान पड़ता था, जैसे कोई मेरे हृदय में भाले भोंक रहा है। घर से बैरक तक पैदल जाने में शायद मुझे दस मिनट से ज्यादा न लगे होंगे। बार-बार जी झुँझलाता था; चचा साहब पर नहीं, विमल बाबू पर भी नहीं, केवल अपने ऊपर। क्यों मुझमें इतनी हिम्मत नहीं है कि जाकर चचा साहब से कह दूँ—कोई मुझे लाख रुपये भी दे, तो शादी न करूँगा। मैं क्यों इतना डरपोक, इतना तेजहीन, इतना दब्बू हो गया ?

इसी क्रोध में मैंने पिताजी को एक पत्र लिखा और वह सारा वृत्तांत सुनाने के बाद अन्त में लिखा—मैंने निश्चय कर लिया है कि और कहीं शादी न करूँगा, चाहे मुझे आपकी अवज्ञा ही क्यों न करनी पड़े। उस आवेश में न जाने क्या-क्या लिख गया, अब याद भी नहीं। इतना ही याद है कि दस-बारह पन्ने दस मिनट में लिख डाले थे। सम्भव होता तो मैं यही सारी बातें तार से भेजता।

तीन दिन मैंने बड़ी व्यग्रता के साथ काटे। उसका केवल अनुमान किया जा सकता है। सोचता, तारा हमें अपने मन में कितना नीच समझ रही होगी। कई बार जी में आया कि चलकर उसके पैरों पर गिर पड़ूँ और कहूँ—देवी, मेरा अपराध क्षमा करो—चचा साहब के कठोर व्यवहार की परवा न करो मैं तुम्हारा था और तुम्हारा हूँ। चचा साहब मुझसे बिगड़ जायँ, पिताजी घर से निकाल दें, मुझे किसी की परवा नहीं है; लेकिन तुम्हें खोकर मेरा जीवन ही खो जायगा।

तीसरे दिन पत्र का जवाब आया। रही-सही आशा भी टूट गयी। वही जवाब था जिसकी मुझे शंका थी। लिखा था—भाई साहब मेरे पूज्य हैं। उन्होंने जो निश्चय किया है, उसके विरुद्ध मैं एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाल सकता और तुम्हारे लिए भी यही उचित है कि उन्हें नाराज न करो।

मैंने उस पत्र को फाड़कर पैरों से कुचल दिया और उसी वक्त विमल बाबू के घर की तरफ चला। आह ! उस वक्त अगर कोई मेरा रास्ता रोक लेता, मुझे धमकाता कि उधर मत जाओ, तो मैं विमल बाबू के पास जाकर ही दम लेता और आज मेरा जीवन कुछ और ही होता; पर वहाँ मना करने वाला कौन बैठा था। कुछ दूर चलकर हिम्मत हार बैठा। लौट पड़ा। कह नहीं सकता, क्या सोचकर लौटा। चचा साहब की अप्रसन्नता का मुझे रत्ती-भर भी भय न था। उनकी अब मेरे दिल में ज़रा भी इज्जत न थी। मैं उनकी सारी सम्पत्ति को ठुकरा देने को तैयार था। पिताजी के नाराज हो जाने का भी डर न था। संकोच केवल यह था—कौन मुँह लेकर जाऊँ ! आखिर मैं उन्हीं चचा का भतीजा तो हूँ। विमल बाबू मुझसे मुखातिब न हुए या जाते-ही-जाते दुत्कार दिया, तो मेरे लिए डूब मरने के सिवा और क्या रह जायगा ? सबसे बड़ी शंका यह थी कि कहीं तारा ही मेरा तिरस्कार कर बैठे तो मेरी क्या

गति होगी। हाय ! अहृदय तारा ! निष्ठुर तारा ! अबोध तारा ! अगर तूने उस वक्त दो शब्द लिख कर मुझे तसल्ली दे दी होती, तो आज मेरा जीवन कितना सुखमय होता। तेरे मौन ने मुझे मटियामेट कर दिया—सदा के लिए ! आह, सदा के लिए।

3

तीन दिन फिर मैंने अंगारों पर लोट-लोटकर काटे। ठान लिया था कि अब किसी से न मिलूँगा। सारा संसार मुझे अपना शत्रु-सा दीखता था। तारा पर भी क्रोध आता था। चचा साहब की तो मूरत से मुझे घृणा हो गयी थी; मगर तीसरे दिन शाम को चचाजी का रुक्का पहुँचा, मुझसे आकर मिल जाओ। जी में तो आया, लिख दूँ, मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नहीं, आप समझ लीजिए, मैं मर गया। मगर फिर उनके स्नेह और उपकारों की याद आ गयी। खरी-खरी सुनाने का भी अच्छा अवसर मिल रहा था। हृदय में युद्ध का नशा और जोश भरे हुए मैं चचाजी की सेवा में पहुँच गया।

चचाजी ने मुझे सिर से पैर तक देखकर कहा—क्या आजकल तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं है? आज रायसाहब सीताराम तशरीफ लाये थे। तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं। कल सबेरे मौका मिले, तो चले आना या तुम्हें लौटने की जल्दी न हो, तो मैं इसी वक्त बुला भेजूँ।

मैं समझ तो गया कि यह रायसाहब कौन हैं; लेकिन अनजान बन कर बोला—यह रायसाहब कौन हैं ? मेरा तो उनसे परिचय नहीं है।

चचाजी ने लापरवाही से कहा—अजी, यह वही महाशय हैं, जो तुम्हारे ब्याह के लिए घेरे हुए हैं। शहर के रईस और कुलीन आदमी हैं। लड़की भी बहुत अच्छी है। कम-से-कम तारा से कई गुनी अच्छी। मैंने हाँ कर लिया है। तुम्हें भी जो बातें पूछनी हों, उनसे पूछ लो।

मैंने आवेश के उमड़ते हुए तूफान को रोक कर कहा—आपने नाहक हाँ की। मैं अपना विवाह नहीं करना चाहता।

चचाजी ने मेरी तरफ आँखें फाड़कर कहा—क्यों ?

मैंने उसी निर्भीकता से जवाब दिया—इसीलिए कि मैं इस विषय में स्वाधीन रहना चाहता हूँ।

चचा साहब ने जरा नर्म होकर कहा—मैं अपनी बात दे चुका हूँ, क्या तुम्हें इसका कुछ खयाल नहीं है ?

मैंने उद्दण्डता से जवाब दिया। जो बात पैसों पर बिकती है, उसके लिए मैं अपनी जिन्दगी नहीं खराब कर सकता।

चचा साहब ने गम्भीर भाव से कहा—यह तुम्हारा आखिरी फैसला है ?

'जी हाँ, आखिरी।'

'पछताना पड़ेगा।'

आप इसकी चिन्ता न करें। आपको कष्ट देने न आऊँगा।

'अच्छी बात है।'

यह कहकर वह उठे और अन्दर चले गये। मैं कमरे से निकला और बैरक की तरफ चला। सारी पृथ्वी चक्कर खा रही थी, आसमान नाच रहा था और मेरी देह हवा में उड़ी

जाती थी। मालूम होता था, पैरों के नीचे की जमीन है ही नहीं।

बैरक में पहुँचकर मैं पलंग पर लेट गया और फूट-फूटकर रोने लगा। माँ-बाप, चाचा-चाची, धन-दौलत, सब कुछ होते हुए भी मैं अनाथ था। उफ ! कितना निर्दय आघात था !

4

सबेरे हमारे रेजिमेंट को देहरादून जाने का हुक्म हुआ। मुझे आँखें-सी मिल गयीं। अब लखनऊ काटे खाता था। उसके गली-कूचों तक से घृणा हो गयी थी। एक बार जी में आया, चलकर तारा से मिल लूँ; मगर फिर वही शंका हुई—कहीं वह मुखातिब न हुई तो ? विमल बाबू इस दशा में भी मुझसे उतना ही स्नेह दिखायेंगे, जितना अब तक दिखाते आये हैं, इसका मैं निश्चय न कर सका। पहले मैं एक धनी परिवार का दीपक था, अब एक अनाथ युवक, जिसे मजूरी के सिवा और कोई अवलम्ब नहीं था।

देहरादून में अगर कुछ दिन मैं शान्ति से रहता, तो सम्भव था, मेरा आहत हृदय सँभल जाता और मैं विमल बाबू को मना लेता; लेकिन वहाँ पहुँचे एक सप्ताह भी न हुआ था कि मुझे तारा का पत्र मिल गया। पते को देखकर मेरे हाथ काँपने लगे। समस्त देह में कंपन-सा होने लगा। शायद शेर को सामने देखकर मैं इतना भयभीत न होता। हिम्मत ही न पड़ती थी कि उसे खोलूँ। वही लिखावट थी, वही मोतियों की लड़ी, जिसे देखकर मेरे लोचन तृप्त-से हो जाते थे, जिसे चूमता था और हृदय से लगाता था, वही काले अक्षर आज नागिनों से भी ज्यादा डरावने मालूम होते थे। अनुमान कर रहा था कि उसने क्या लिखा होगा; पर अनुमान की दूर तक दौड़ भी पत्र के विषय तक न पहुँच सकी। आखिर, एक बार कलेजा मजबूत करके मैंने पत्र खोल डाला। देखते ही आँखों में अँधेरा छा गया। मालूम हुआ, किसी ने शीशा पिघला कर पिला दिया। तारा का विवाह तय हो गया था। शादी होने में कुल चौबीस घंटे बाकी थे। उसने मुझसे अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगी थी और विनती की थी कि मुझे भुला मत देना। पत्र का अंतिम वाक्य पढ़कर मेरी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गयी। लिखा था—यह अंतिम प्यार लो। अब आज से मेरे और तुम्हारे बीच में केवल मैत्री का नाता है। मगर कुछ और समझूँ तो वह अपने पति के साथ अन्याय होगा, जिसे शायद तुम सबसे ज्यादा नापसंद करोगे। बस इससे अधिक और न लिखूँगी। बहुत अच्छा हुआ कि तुम यहाँ से चले गये। तुम यहाँ रहते, तो तुम्हें भी दुःख होता और मुझे भी। मगर प्यारे ! अपनी इस अभागिनी तारा को भूल न जाना। तुमसे यही अन्तिम निवेदन है।

मैं पत्र को हाथ में लिये-लिये लेट गया। मालूम होता था, छाती फट जायगी ! भगवान्, अब क्या करूँ ? जब तक मैं लखनऊ पहुँचूँगा, बारात द्वार पर आ चुकी होगी, यह निश्चय था। लेकिन तारा के अंतिम दर्शन करने की प्रबल इच्छा को मैं किसी तरह न रोक सकता था। वही अब जीवन की अंतिम लालसा थी।

मैंने जाकर कमांडिंग आफिसर से कहा—मुझे एक बड़े जरूरी काम से लखनऊ जाना है। तीन दिन की छुट्टी चाहता हूँ।

साहब ने कहा—अभी छुट्टी नहीं मिल सकती।

'मेरा जाना जरूरी है।'

'तुम नहीं जा सकते।'

'मैं किसी तरह नहीं रुक सकता।'

'तुम किसी तरह नहीं जा सकते।'

मैंने और अधिक आग्रह न किया। वहाँ से चला आया। रात की गाड़ी से लखनऊ जाने का निश्चय कर लिया। कोर्ट-मार्शल का अब मुझे जरा भी डर न था।

5

जब मैं लखनऊ पहुँचा, तो शाम हो गयी थी। कुछ देर तक मैं प्लेटफार्म से दूर खड़ा खूब अँधेरा हो जाने का इन्तजार करता रहा। तब अपनी किस्मत के नाटक का सबसे भीषण कांड देखने चला। बारात द्वार पर आ गयी थी। गैस की रोशनी हो रही थी। बाराती लोग जमा थे। हमारे मकान की छत तारा की छत से मिली हुई थी। रास्ता मरदाने कमरे की बगल से था। चचा साहब शायद कहीं सैर करने गये हुए थे। नौकर-चाकर सब बारात की बहार देख रहे थे। मैं चुपके से जीने पर चढ़ा और छत पर जा पहुँचा। वहाँ उस वक्त बिलकुल सन्नाटा था। उसे देखकर मेरा दिल भर आया। हाय ! यही वह स्थान है, जहाँ हमने प्रेम के आनन्द उठाये थे। यहीं मैं तारा के साथ बैठकर जिन्दगी के मनसूबे बाँधता था ! यही स्थान मेरी आशाओं का स्वर्ग और मेरे जीवन का तीर्थ था। इस जमीन का एक-एक अणु मेरे लिए मधुर-स्मृतियों से पवित्र था। पर हाय ! मेरे हृदय की भाँति आज वह भी ऊजड़, सुनसान, अँधेरा था। मैं उसी जमीन से लिपटकर खूब रोया, यहाँ तक कि हिचकियाँ बँध गयीं। काश ! उस वक्त तारा वहाँ आ जाती, तो मैं उसके चरणों पर सिर रखकर हमेशा के लिए सो जाता ! मुझे ऐसा भासित होता था कि तारा की पवित्र आत्मा मेरी दशा पर रो रही है। आज भी तारा यहाँ जरूर आयी होगी। शायद इसी जमीन पर लिपटकर वह भी रोयी होगी। उस भूमि से उसके सुगन्धित केशों की महक आ रही थी। मैंने जेब से रूमाल निकाला और वहाँ की धूल जमा करने लगा। एक क्षण में मैंने सारी छत साफ कर डाली और अपनी अभिलाषाओं की इस राख को हाथ में लिये घण्टों रोया। यही मेरे प्रेम का पुरस्कार है, यही मेरी उपासना का वरदान है, यही मेरे जीवन की विभूति है। हाय री दुराशा !

नीचे विवाह के संस्कार हो रहे थे। ठीक आधी रात के समय वधू मण्डप के नीचे आयी, अब भाँवरें होंगी। मैं छत के किनारे चला आया और वह मर्मान्तक दृश्य देखने लगा। बस, यही मालूम हो रहा था कि कोई हृदय के टुकड़े किये डालता है। आश्चर्य है, मेरी छाती क्यों न फट गयी, मेरी आँखें न निकल पड़ीं। वह मण्डप मेरे लिए एक चिता थी, जिसमें वह सब कुछ, जिस पर मेरे जीवन का आधार था; जला जा रहा था।

भाँवरें समाप्त हो गयीं तो मैं कोठे से उतरा। अब क्या बाकी था ? चिता की राख भी जलमग्न हो चुकी थी। दिल को थामे, वेदना से तड़पता हुआ, जीने के द्वार तक आया; मगर द्वार बाहर से बन्द था। अब क्या हो ? उल्टे-पाँव लौटा। अब तारा के आँगन से होकर जाने के सिवा दूसरा रास्ता न था। मैंने सोचा, इस जमघट में मुझे कौन पहचानता है, निकल जाऊँगा। लेकिन ज्योंही आँगन में पहुँचा, तारा की माताजी की निगाह पड़ गयी। चौंककर

बोलीं—कौन, कृष्णा बाबू ? तुम कब आये ? आओ, मेरे कमरे में आओ। तुम्हारे चचा साहब के भय से हमने तुम्हें न्यौता नहीं भेजा। तारा प्रातःकाल विदा हो जायगी। आओ, उससे मिल लो। दिन-भर से तुम्हारी रट लगा रही है।

यह कहते हुए उन्होंने मेरा बाजू पकड़ लिया और मुझे खींचते हुए अपने कमरे में ले गयीं। फिर पूछा—अपने घर से होते हुए आये हो न ?

मैंने कहा—मेरा घर यहाँ कहाँ है ?

'क्यों, तुम्हारे चचा साहब नहीं हैं ?'

'हाँ, चचा साहब का घर है, मेरा घर अब कहीं नहीं है। बनने की कभी आशा थी, पर आप लोगों ने वह भी तोड़ दी।'

'हमारा इसमें क्या दोष था भैया ? लड़की का ब्याह तो कहीं-न-कहीं करना था। तुम्हारे चचाजी ने तो हमें मँझधार में छोड़ दिया था। भगवान् ही ने उबारा। क्या अभी स्टेशन से चले आ रहे हो ? तब तो अभी कुछ खाया भी न होगा।'

'हाँ, थोड़ा-सा जहर लाकर दीजिए, यही मेरे लिए सबसे अच्छी दवा है।'

वृद्धा विस्मित होकर मुँह ताकने लगी। मुझे तारा से कितना प्रेम था, वह बेचारी क्या जानती थी ?

मैंने उसी विरक्ति के साथ फिर कहा—जब आप लोगों ने मुझे मार डालने ही का निश्चय कर लिया, तो अब देर क्यों करती हैं ? आप मेरे साथ यह दगा करेंगी यह मैं न समझता था। खैर, जो हुआ, अच्छा ही हुआ। चचा और बाप की आँखों से गिरकर मैं शायद आपकी आँखों में भी न जँचता।

बुढ़िया ने मेरी तरफ शिकायत की नजरों से देखकर कहा—तुम हमको इतना स्वार्थी समझते हो, बेटा।

मैंने जले हुए हृदय से कहा—अब तक तो न समझता था लेकिन परिस्थिति ने ऐसा समझने को मजबूर किया। मेरे खून का प्यासा दुश्मन भी मेरे ऊपर इससे घातक वार न कर सकता। मेरा खून आप ही की गरदन पर होगा।

'तुम्हारे चचाजी ने ही तो इन्कार कर दिया ?'

'आप लोगों ने मुझसे भी कुछ पूछा, मुझसे भी कुछ कहा, मुझे भी कुछ कहने का अवसर दिया ? आपने तो ऐसी निगाहें फेरीं जैसे आप दिल से यही चाहती थीं। मगर अब आपसे शिकायत क्यों करूँ ? तारा खुश रहे, मेरे लिए यही बहुत है।'

'तो बेटा, तुमने भी तो कुछ नहीं लिखा; अगर तुम एक पुरजा भी लिख देते, तो हमें तस्कीन हो जाती। हमें क्या मालूम था कि तुम तारा को इतना प्यार करते हो। हमसे जरूर भूल हुई; मगर उससे बड़ी भूल तुमसे हुई। अब मुझे मालूम हुआ कि तारा क्यों बराबर डाकिये को पूछती रहती थी। अभी कल वह दिन-भर डाकिये की राह देखती रही। जब तुम्हारा कोई खत नहीं आया, तब वह निराश हो गयी। बुला दूँ उसे ? मिलना चाहते हो ?'

मैंने चारपाई से उठ कर कहा—नहीं-नहीं, उसे मत बुलाइए। मैं अब उसे नहीं देख सकता। उसे देख कर मैं न-जाने क्या कर बैठूँ।

यह कहता हुआ मैं चल पड़ा। तारा की माँ ने कई बार पुकारा पर मैंने पीछे फिर कर भी न देखा

यह है मुझ निराश की कहानी। इसे आज दस साल गुजर गये। इन दस सालों में मेरे ऊपर जो कुछ बीती, उसे मैं ही जानता हूँ। कई-कई दिन मुझे निराहार रहना पड़ा है। फौज से तो उसके तीसरे ही दिन निकाल दिया गया था। अब मारे-मारे फिरने के सिवा मुझे कोई काम नहीं। पहले तो काम मिलता ही नहीं और अगर मिल भी गया, तो मैं टिकता नहीं। जिन्दगी पहाड़ हो गयी है। किसी बात की रुचि नहीं रही। आदमी की सूरत से दूर भागता हूँ।

तारा प्रसन्न है। तीन-चार साल हुए, एक बार मैं उसके घर गया था। उसके स्वामी ने बहुत आग्रह करके बुलाया था। बहुत कसमें दिलायीं। मजबूर होकर गया। वह कली अब खिलकर फूल हो गयी है। तारा मेरे सामने आयी। उसका पति भी बैठा हुआ था। मैं उसकी तरफ ताक न सका। उसने मेरे पैर खींच लिये। मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। अगर तारा दुखी होती, कष्ट में होती, फटेहालों में होती, तो मैं उस पर बलि हो जाता; पर सम्पन्न, सरस, विकसित तारा मेरी संवेदना के योग्य न थी। मैं इस कुटिल विचार को न रोक सका—कितनी निष्ठुरता ! कितनी बेवफाई !

शाम को मैं उदास बैठा वहाँ जाने पर पछता रहा था कि तारा का पति आकर मेरे पास बैठ गया और मुस्कराकर बोला—बाबूजी, मुझे यह सुनकर खेद हुआ कि तारा से मेरे विवाह हो जाने का आपको बड़ा सदमा हुआ। तारा-जैसी रमणी शायद देवताओं को भी स्वार्थी बना देती; लेकिन मैं आपसे सच कहता हूँ, अगर मैं जानता कि आपको उससे इतना प्रेम है, तो मैं हरगिज आपकी राह का काँटा न बनता। शोक यही है कि मुझे बहुत पीछे मालूम हुआ। तारा मुझसे आपकी प्रेम-कथा कह चुकी है।

मैंने मुस्कराकर कहा—तब तो आपको मेरी सूरत से घृणा होगी।

उसने जोश से कहा—इसके प्रतिकूल मैं आपका आभारी हूँ। प्रेम का ऐसा पवित्र, ऐसा उज्ज्वल आदर्श आपने उसके सामने रखा। वह आपको अब भी उसी मुहब्बत से याद करती है। शायद कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि आपका जिक्र न करती हो। आपके प्रेम को वह अपनी जिन्दगी की सबसे प्यारी चीज समझती है। आप शायद समझते हों कि उन दिनों को याद करके उसे दुःख होता होगा। बिल्कुल नहीं, वही उसके जीवन की सबसे मधुर स्मृतियाँ हैं। वह कहती है, मैंने अपने कृष्णा को तुममें पाया है।

मेरे लिए इतना ही काफी है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी' नवम्बर, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'खान-ए-बरबाद' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेमचालीसी' में संकलित।]

आगा-पीछा

रूप और यौवन के चंचल विलास के बाद कोकिला अब उस कलुषित जीवन के चिह्न को आँसुओं से धो रही थी। विगत जीवन की याद आते ही उसका दिल बेचैन हो जाता और

वह विषाद और निराशा से विकल होकर पुकार उठती—हाय ! मैंने संसार में जन्म ही क्यों लिया ? उसने दान और व्रत से उन कालिमाओं को धोने का प्रयत्न किया और जीवन के बसंत की सारी विभूति इस निष्फल प्रयास में लुटा दी। पर यह जागृति क्या किसी महात्मा का वरदान या किसी अनुष्ठान का फल था ? नहीं, यह उस नवजात शिशु के प्रथम दर्शन का प्रसाद था, जिसके जन्म ने आज पन्द्रह साल से उसकी सूनी गोद को प्रदीप्त कर दिया था। शिशु क़ा मुख देखते ही उसके नीले होंठों पर एक क्षीण, करुण, उदास मुस्कराहट झलक गई—पर केवल एक क्षण के लिए। एक क्षण के बाद वह मुस्कराहट एक लम्बी साँस में विलीन हो गयी। उस अशक्त, क्षीण, कोमल रुदन ने कोकिला के जीवन का रुख फेर दिया। वात्सल्य की वह ज्योति उसके लिए जीवन-सन्देश और मूक उपदेश थी।

कोकिला ने उस नवजात बालिका का नाम रखा—श्रद्धा। उसी के जन्म ने तो उसमें श्रद्धा उत्पन्न की थी। वह श्रद्धा को अपनी लड़की नहीं, किसी देवी का अवतार समझती थी। उसकी सहेलियाँ उसे बधाई देने आतीं; पर कोकिला बालिका को उनकी नजरों से छिपाती। उसे यह भी मंजूर न था कि उनकी पापमयी दृष्टि भी उस पर पड़े। श्रद्धा ही अब उसकी विभूति, उसकी आत्मा, उसका जीवन-दीपक थी। वह कभी-कभी उसे गोद में लेकर साध से छलकती हुई आँखों से देखती और सोचती—क्या यह पावन ज्योति भी वासना के प्रचंड आघातों का शिकार होगी ? मेरे प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे? आह ! क्या कोई ऐसी औषधि नहीं है, जो जन्म के संस्कारों को मिटा दे ? भगवान से वह सदैव प्रार्थना करती कि मेरी श्रद्धा किन्हीं काँटों में न उलझे। वह वचन और कर्म से, विचार और व्यवहार से उसके सम्मुख नारी-जीवन का ऊँचा आदर्श रखेगी। श्रद्धा इतनी सरल, इतनी प्रगल्भ, इतनी चतुर थी कि कभी-कभी कोकिला वात्सल्य से गद्‌गद होकर उसके तलबों को अपने मस्तक से रगड़ती और पश्चात्ताप तथा हर्ष के आँसू बहाती।

2

सोलह वर्ष बीत गये। पहले की भोली-भाली श्रद्धा अब एक सगर्व, शांत, लज्जाशील नवयौवना थी, जिसे देखकर आँखें तृप्त हो जाती थीं। विद्या की उपासिका थी, पर सारे संसार से विमुख। जिनके साथ वह पढ़ती थी वे उससे बात भी न करना चाहती थीं। मातृ-स्नेह के वायुमंडल में पड़कर वह घोर अभिमानिनी हो गई थी। वात्सल्य के वायुमंडल, सखी-सहेलियों के परित्याग, रात-दिन की घोर पढ़ाई और पुस्तकों के एकांतवास से अगर श्रद्धा को अहंभाव हो आया, तो आश्चर्य की कौन-सी बात है। उसे किसी से भी बोलने का अधिकार न था। विद्यालय में भले घर की लड़कियाँ उसके सहवास में अपना अपमान समझती थीं। रास्ते में लोग उँगली उठाकर कहते—'कोकिला रंडी को लड़की है।' उसका सिर झुक जाता, कपोल क्षण भर के लिए लाल होकर दूसरे ही क्षण फिर चूने की तरह सफेद हो जाते।

श्रद्धा को एकांत से प्रेम था। विवाह को ईश्वरीय कोप समझती थी। यदि कोकिला ने कभी उसकी बात चला दी, तो उसके माथे पर बल पड़ जाते, चमकते हुए लाल चेहरे पर कालिमा छा जाती, आँखों से झर-झर आँसू बहने लगते; कोकिला चुप हो जाती। दोनों के

जीवन-आदर्शों में विरोध था। कोकिला समाज के देवता की पुजारिन, श्रद्धा को समाज से, ईश्वर से और मनुष्य से घृणा। यदि संसार में उसे कोई वस्तु प्यारी थी, तो वह थी उसकी पुस्तकें। श्रद्धा उन्हीं विद्वानों के संसर्ग में अपना जीवन व्यतीत करती, जहाँ ऊँच-नीच का भेद नहीं, जाति-पाँति का स्थान नहीं—सबके अधिकार समान हैं। श्रद्धा की पूर्ण प्रकृति का परिचय महाकवि रहीम के एक दोहे के पद से मिल जाता है—

'प्रेम सहित मरिबो भलो, जो विष देय बुलाय।'

अगर कोई सप्रेम बुलाकर उसे विष दे देता, तो वह नतजानु हो अपने मस्तक से लगा लेती—किन्तु अनादर से दिये हुए अमृत की भी उसकी नजरों में कोई हकीकत न थी।

एक दिन कोकिला ने आँखों में आँसू भर कर श्रद्धा से कहा—क्यों मन्नी, सच बताना, तुझे यह लज्जा तो लगती ही होगी कि मैं क्यों इसकी बेटी हुई। यदि तू किसी ऊँचे कुल में पैदा हुई होती, तो क्या तब भी तेरे दिल में ऐसे विचार आते ? तू मन-ही-मन मुझे जरूर कोसती होगी।

श्रद्धा माँ का मुँह देखने लगी। माता से इतनी श्रद्धा कभी उसके दिल में पैदा नहीं हुई थी। काँपते हुए स्वर में बोली—अम्माँजी, आप मुझसे ऐसा प्रश्न क्यों करती हैं ? क्या मैंने कभी आपका अपमान किया है ?

कोकिला ने गद्गद् होकर कहा—नहीं बेटी, उस परम दयालु भगवान् से यही प्रार्थना है कि तुम्हारी जैसी सुशील लड़की सबको दे। पर कभी-कभी यह विचार आता है कि तू अवश्य ही मेरी बेटी होकर पछताती होगी।

श्रद्धा ने धीर कंठ से कहा—अम्माँ, आपकी यह भावना निर्मूल है। मैं आपसे सच कहती हूँ, मुझे जितनी श्रद्धा और भक्ति आपके प्रति है, उतनी किसी के प्रति नहीं। आपकी बेटी कहलाना मेरे लिए लज्जा की बात नहीं, गौरव की बात है। मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। आप जिस वायु-मंडल में पलीं, उसका असर तो पड़ना ही था; किन्तु पाप के दलदल में फँसकर फिर निकल आना अवश्य गौरव की बात है। बहाव की ओर से नाव खे ले जाना तो बहुत सरल है; किन्तु जो नाविक बहाव के प्रतिकूल खे ले जाता है, वही सच्चा नाविक है।

कोकिला ने मुस्कराते हुए पूछा—तो फिर विवाह के नाम से क्यों चिढ़ती है ? श्रद्धा ने आँखें नीची करके उत्तर दिया—बिना विवाह के जीवन व्यतीत नहीं हो सकता? मैं कुमारी ही रहकर जीवन बिताना चाहती हूँ। विद्यालय से निकलकर कालेज में प्रवेश करूँगी, और दो-तीन वर्ष बाद हम दोनों स्वतन्त्र रूप से रह सकती हैं। डाक्टर बन सकती हूँ, वकालत कर सकती हूँ; औरतों के लिए सब मार्ग खुल गये हैं।

कोकिला ने डरते-डरते पूछा—क्यों, क्या तुम्हारे हृदय में कोई दूसरी इच्छा नहीं होती ? किसी से प्रेम करने की अभिलाषा तेरे मन में नहीं पैदा होती ? श्रद्धा ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—अम्माँजी, प्रेम-विहीन संसार में कौन है ? प्रेम मानव-जीवन का श्रेष्ठ अंग है। यदि ईश्वर की ईश्वरता कहीं देखने में आती है, तो वह केवल प्रेम में। जब कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा; जो मुझे वरने में अपनी मानहानि न समझेगा, तो मैं तन-मन-धन से उसकी पूजा करूँगी, पर किसके सामने हाथ पसारकर प्रेम की भिक्षा माँगूँ ? यदि किसी ने

सुधार के क्षणिक आवेश में विवाह कर भी लिया, तो मैं प्रसन्न न हो सकूँगी। इससे तो कहीं अच्छा है कि मैं विवाह का विचार ही छोड़ दूँ।

3

इन्हीं दिनों महिला-मंडल का एक उत्सव हुआ। कालेज के रसिक विद्यार्थी काफी संख्या में सम्मिलित हुए। हॉल में तिल-भर भी जगह खाली न थी। श्रद्धा भी आकर स्त्रियों की सबसे अंत की पंक्ति में खड़ी हो गयी। उसे यह सब स्वांग मालूम होता था। आज प्रथम ही बार वह ऐसी सभा में सम्मिलित हुई थी।

सभा की कार्रवाई शुरू हुई। प्रधान महोदय की वक्तृता के पश्चात् प्रस्ताव पेश होने लगे और उनके समर्थन के लिए वक्तृताएँ होने लगीं; किन्तु महिलाएँ उनकी वक्तृताएँ भूल गयीं, या उन पर सभा का रोब ऐसा छा गया कि उनकी वक्तृता-शक्ति लोप हो गयी। वे कुछ टूटे-फूटे जुमले बोलकर बैठने लगीं। सभा का रंग बिगड़ने लगा। कई लेडियाँ बड़ी शान से प्लेटफार्म पर आयीं; किन्तु दो-तीन शब्दों से अधिक न बोल सकीं। नवयुवकों को मजाक उड़ाने का अवसर मिला। कहकहे पड़ने लगे; तालियाँ बजने लगीं। श्रद्धा उनकी यह दुर्जनता देखकर तिलमिला उठी, उसका अंग-प्रत्यंग फड़कने लगा। प्लेटफार्म पर जाकर वह कुछ इस शान से बोली कि सभा पर आतंक छा गया। कोलाहल शांत हो गया। लोग टकटकी बाँधकर उसे देखने लगे। श्रद्धा स्वर्गीय बाला की भाँति धारावाहिक रूप में बोल रही थी। उसके प्रत्येक शब्द से नवीनता, सजीवता और दृढ़ता प्रतीत होती थी। उसके नवयौवन की सुरभि भी चारों ओर फैलकर सभा मंडप को अवाक् कर रही थी।

सभा समाप्त हुई। लोग टीका-टिप्पणी करने लगे।

एक ने पूछा—यह स्त्री कौन थी भई !

दूसरे ने उत्तर दिया—उसी कोकिला रंडी की लड़की।

तीसरे व्यक्ति ने कहा—तभी यह आवाज और सफाई है। तभी तो जादू है। जादू है जनाब—मुजस्सिम जादू ! क्यों न हो, माँ भी तो सितम ढाती थी। जब से उसने अपना पेशा छोड़ा, शहर बे-जान हो गया। अब मालूम होता है कि यह अपनी माँ की जगह लेगी।

इस पर एक खद्दरधारी काला नवयुवक बोला—क्या खूब कदरदानी फरमाई है जनाब ने, वाह !

उसी व्यक्ति ने उत्तर दिया—आपको बुरा क्यों लगा ? क्या कुछ साँठ-गाँठ तो नहीं है?

काले नवयुवक ने कुछ तेज होकर कहा—आपको ऐसी बातें मुँह से निकालते लज्जा भी नहीं आती।

दूसरे व्यक्ति ने कहा—लज्जा की कौन बात है जनाब ? वेश्या की लड़की अगर वेश्या हो, तो आश्चर्य की क्या बात है ?

नवयुवक ने घृणापूर्ण स्वर में कहा—ठीक होगा, आप जैसे बुद्धिमान व्यक्तियों की समझ में ! जिस रमणी के मुख से ऐसे विचार निकल सकते हैं, वह देवी है, रूप को बेचनेवाली नहीं।

श्रद्धा उसी समय सभा से जा रही थी। यह अंतिम शब्द उसके कानों में पड़ गये। वह विस्मित और पुलकित होकर वहीं ठिठक गयी। काले नवयुवक की ओर कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से निहारा और फिर बड़ी तेजी से आगे बढ़ गयी; लेकिन रास्ते-भर उसके कानों में उन्हीं शब्दों की प्रतिध्वनि गूँजती रही।

अब तक श्रद्धा की प्रशंसा करनेवाली, उसे उत्साहित करनेवाली केवल उसी की माँ कोकिला थी और चारों ओर वही उपेक्षा थी; वही तिरस्कार ! आज एक अपरिचित, काले किन्तु गौर हृदयवाले खद्दरधारी नवयुवक व्यक्ति के मुख का चित्र बराबर उसकी आँखों के सामने नाचा करता। मन में प्रश्न उठता—वह कौन है ? क्या फिर कभी उसके दर्शन होंगे?

कालेज जाते समय श्रद्धा उस नवयुवक को खोई हुई आँखों से खोजती। घर पर रोज चिक की आड़ से, रास्ते के आते-जाते लोगों को देखती; लेकिन वह नवयुवक नजर न आता।

कुछ दिनों बाद महिला-मंडल की दूसरी सभा का विज्ञापन निकला। अभी सभा होने को चार दिन बाकी थे। वह चारों दिन श्रद्धा ने अपना भाषण तैयार करने में बिताये। एक-एक शब्द की खोज में घंटों सिर मारती। एक-एक वाक्य को बार-बार पढ़ती। बड़े-बड़े नेताओं की स्पीचें पढ़ती और उसी तरह लिखने की कोशिश करती। जब सारी स्पीच पूरी हो गयी, तो श्रद्धा अपने कमरे में जाकर कुर्सियों और मेजों को संबोधित करके जोर-जोर से पढ़ने लगी। भाषण-कला के सभी लक्षण जमा हो गये थे। उपसंहार तो इतना सुन्दर था कि उसे अपने ही मुख से सुनकर वह मुग्ध हो गयी। इसमें कितना संगीत था, कितना आकर्षण, कितनी क्रांति !

सभा का दिन आ पहुँचा। श्रद्धा मन-ही-मन भयभीत होती हुई सभा-मंडप में घुसी। हॉल भरा हुआ था और पहले दिन से भी अधिक भीड़ थी। श्रद्धा को देखते ही जनता ने तालियाँ पीटकर उसका स्वागत किया। कोलाहल होने लगा और सभी एक स्वर से चिल्ला उठे—आप अपनी वक्तृता शुरू करें।

श्रद्धा ने मंच पर आकर एक उड़ती हुई निगाह से जनता की ओर देखा। वह काला नवयुवक जगह न मिलने के कारण अन्तिम पंक्ति में खड़ा हुआ था। श्रद्धा के दिल में गुदगुदी-सी होने लगी। उसने काँपते स्वर में अपनी वक्तृता शुरू की। उसकी नजरों में सारा हॉल पुतलियों से भरा हुआ था; अगर कोई जीवित मनुष्य था, तो वही सबसे पीछे खड़ा हुआ काला नवयुवक। उसका मुख उसी की ओर था। वह उसी से अपने भाषण की दाद माँग रही थी। हीरा परखने की आशा जौहरी से ही की जाती है।

आध घंटे तक श्रद्धा के मुख से फूलों की वर्षा होती रही। लोगों को बहुत कम ऐसी वक्तृता सुनने को मिली थी।

4

श्रद्धा जब सभा समाप्त होने पर घर चली तो देखा, वही काला नवयुवक उसके पीछे तेजी से चला आ रहा है। श्रद्धा को यह मालूम था कि लोगों ने उसका भाषण बहुत पसन्द किया है; लेकिन इस नवयुवक की राय सुनने का अवसर उसे नहीं मिला था। उसने अपनी चाल

धीमी कर दी। दूसरे ही क्षण वह नवयुवक उसके पास पहुँच गया! दोनों कई कदम चुपचाप चलते रहे।

अंत में नवयुवक ने झिझकते हुए कहा—आज तो आपने कमाल कर दिया !

श्रद्धा ने प्रफुल्लता के स्रोत को दबाते हुए कहा—धन्यवाद ! यह आपकी कृपा है।

नवयुवक ने कहा—मैं किस लायक हूँ। मैं ही नहीं, सारी सभा सिर धुन रही थी।

श्रद्धा—क्या आपका शुभ-स्थान यहीं है ?

नवयुवक—जी हाँ, यहाँ मैं एम. ए. में पढ़ रहा हूँ। यह ऊँच-नीच का भूत न जाने कब तक हमारे सिर पर सवार रहेगा। अभाग्य से मैं भी उन लोगों में हूँ, जिन्हें संसार नीच समझता है। मैं जाति का चमार हूँ। मेरे पिता स्कूल के इंस्पेक्टर के यहाँ अर्दली थे। उनकी सिफारिश से स्कूल में भरती हो गया। तब से भाग्य से लड़ता-भिड़ता चला आ रहा हूँ। पहले तो स्कूल के मास्टर मुझे छूते ही न थे। वह हालत तो अब नहीं रही किन्तु लड़के अब भी मुझसे खिंचे रहते हैं।

श्रद्धा—मैं तो कुलीनता को जन्म से नहीं, धर्म से मानती हूँ।

नवयुवक—यह तो आपकी वक्तृता ही से सिद्ध हो गया है। और इसी से आपसे बातें करने का साहस भी हुआ, नहीं तो कहाँ आप और कहाँ मैं !

श्रद्धा ने अपनी आँखें नीची करके कहा—शायद आपको मेरा हाल मालूम नहीं।

नवयुवक—बहुत अच्छी तरह से मालूम है। यदि आप अपनी माताजी के दर्शन करवा सकें, तो आपका बड़ा आभारी होऊँगा।

वह आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्न होंगी ! शुभ नाम !

'मुझे भगतराम कहते हैं।'

यह परिचय धीरे-धीरे स्थिर और दृढ़ होता गया; मैत्री प्रगाढ़ होती गयी। श्रद्धा की नजरों में भगतराम एक देवता थे और भगतराम के समक्ष श्रद्धा मानवी रूप में देवी थी।

5

एक साल बीत गया। भगतराम रोज देवी के दर्शन को जाता। दोनों घंटों बैठे बातें किया करते। श्रद्धा कुछ भाषण करती, तो भगतराम सब काम छोड़कर सुनने जाता। उनके मनसूबे एक थे; जीवन के आदर्श एक; रुचि एक, विचार एक। भगतराम अब प्रेम और उसके रहस्यों की मार्मिक विवेचना करता। उसकी बातों में 'रस' और 'अलंकार' का कभी इतना संयोग न हुआ था। भावों को इंगित करने में उसे कमाल हो गया था। लेकिन ठीक उन अवसरों पर, जब श्रद्धा के हृदय में गुदगुदी होने लगती, उसके कपोल उल्लास से रंजित हो जाते, भगतराम विषय पलट देता और जल्दी ही कोई बहाना बनाकर वहाँ से खिसक जाता। उसके चले जाने पर श्रद्धा हसरत के आँसू बहाती और सोचती—क्या इन्हें दिल से मेरा प्रेम नहीं ?

एक दिन कोकिला ने भगतराम को एकान्त में बुलाकर कहा—बेटा ! अब तो मुन्नी से तुम्हारा विवाह हो जाय, तो अच्छा। जीवन का क्या भरोसा। कहीं मर जाऊँ तो यह साध मन ही में रह जाय।

भगतराम ने सिर हिलाकर कहा—अम्माँ, जरा इस परीक्षा में पास हो जाने दो। जीविका का प्रश्न हल हो जाने के बाद ही विवाह शोभा देता है।

'यह सब तुम्हारा ही है; क्या मैं साथ बाँध ले जाऊँगी ?'

'यह आपकी कृपा है, अम्माँजी; पर इतना निर्लज्ज न बनाइये। मैं तो आपका हो चुका, अब तो आप दुतकारें भी तो इस द्वार से नहीं टल सकता। मुझ जैसा भाग्यवान् संसार में और कौन है। लेकिन देवी के मंदिर में जाने से पहले कुछ पान-फूल तो होना ही चाहिए।'

साल-भर और गुजर गया। भगतराम ने एम. ए. की उपाधि ली और अपने ही विद्यालय में अर्थशास्त्र का अध्यापक हो गया। उस दिन कोकिला ने खूब दान-पुण्य किया। जब भगतराम ने आकर उसके पैरों पर सिर झुकाया तो उसने उसे छोती से लगा लिया। उसे विश्वास था कि आज भगतराम विवाह के प्रश्न को जरूर छेड़ेगा। श्रद्धा प्रतीक्षा की मूर्ति बनी हुई थी। उसका एक-एक अंग मानों सौ-सौ तार होकर प्रतिध्वनित हो रहा था। दिल पर एक नशा छाया हुआ था, पाँव जमीन पर न पड़ते थे। भगतराम को देखते ही माँ से बोली—अम्माँ, अब हमको एक हल्की-सी मोटर ले दीजिएगा।

कोकिला ने मुस्कराकर कहा—हल्की-सी क्यों ? भारी-सी ले लेना। पहले कोई अच्छा-सा मकान तो ठीक कर लो।

श्रद्धा भगतराम को अपने कमरे में बुला ले गयी। दोनों बैठकर नये मकान की सजावट के मनसूबे बाँधने लगे। परदे, फर्श, तस्वीरें सबकी व्यवस्था की गयी। श्रद्धा ने कहा—रुपये भी अम्माँजी से ले लेंगे।

भगतराम बोला—उनसे रुपये लेते मुझे शर्म आएगी।

श्रद्धा ने मुस्कराकर कहा—आखिर मेरे दहेज के रुपये तो देंगी।

दोनों घंटे-भर बातें करते रहे। मगर वह मार्मिक शब्द, जिसे सुनने के लिए श्रद्धा का मन आतुर हो रहा था, आज भी भगतराम के मुँह से न निकला और वह विदा हो गया।

उसके जाने पर कोकिला ने डरते-डरते पूछा—आज क्या बातें हुई ?

श्रद्धा ने उसका आशय समझकर कहा—अगर मैं ऐसी भारी हो रही हूँ तो कुएँ में क्यों नहीं डाल देतीं ?

यह कहते-कहते उसके धैर्य की दीवार टूट गयी। वह आवेश और वह वेदना, जो भीतर-ही-भीतर अब तक टीस रही थी, निकल पड़ी। वह फूट-फूट कर रोने लगी!

कोकिला ने झुँझलाकर कहा—जब कुछ बातचीत ही नहीं करना है, तो रोज आते ही क्यों हैं ? कोई ऐसा घराना भी तो नहीं है, और न ऐसे धन्नासेठ ही हैं।

श्रद्धा ने आँखें पोंछकर कहा—अम्माँजी, मेरे सामने उन्हें कुछ न कहिए। उनके दिल में जो कुछ है, वह मैं जानती हूँ। वह मुँह से चाहे कुछ न कहें; मगर दिल से कह चुके। और मैं चाहे कानों से कुछ न सुनूँ पर दिल से सब कुछ सुन चुकी।

कोकिला ने श्रद्धा से कुछ भी न कहा; लेकिन दूसरे दिन भगतराम से बोली—अब किस विचार में हो, बेटा ?

भगतराम ने सिर खुजलाते हुए कहा—अम्माँजी; मैं तो हाजिर हूँ; लेकिन घर वाले किसी तरह राजी नहीं होते। जरा फुरसत मिले, तो घर जाकर राजी कर लूँ। माँ-बाप को

नाराज करना भी तो अच्छा नहीं !

कोकिला कुछ जवाब न दे सकी।

6

भगतराम के माँ-बाप शहर से दूर रहते थे। यही एक उनका लड़का था। उनका सारी उमंगें उसी के विवाह पर अवलम्बित थीं। उन्होंने कई बार उसकी शादी तय की। पर भगतराम बार-बार यही कहकर निकल जाता कि जब तक नौकर न हो जाऊँगा, विवाह न करूँगा। अब वह नौकर हो गया था, इसलिए दोनों माघ के एक ठण्डे प्रातःकाल में लदे फँदे भगतराम के मकान पर आ पहुँचे। भगतराम ने दौड़कर उनकी पद-धूलि ली और कुशल आदि पूछने के बाद कहा—आप लोगों ने इस जाड़े-पाले में क्यों तकलीफ की ? मुझे बुला लिया होता।

चौधरी ने अपनी पत्नी की ओर देखकर कहा—सुनती हो बच्चा की अम्माँ ! जब बुलाते हैं, तो कहते हैं कि इम्तिहान है, यह है , वह है। जब आ गये, तो कहता है, बुलाया क्यों नहीं ! तुम्हारा विवाह ठीक हो गया है। अब एक महीने की छुट्टी लेकर हमारे साथ चलना होगा। इसीलिए दोनों आये हैं।

चौधराइन—हमने कहा कि बिना गये काम नहीं चलेगा। तो आज ही दरखास दे दो। लड़की बड़ी सुन्दर, पढ़ी-लिखी, अच्छे कुल की है।

भगतराम ने लजाते हुए कहा—मेरा विवाह तो यहीं एक जगह लगा हुआ है, अगर आप राज़ी हों, तो कर लूँ।

चौधरी—इस शहर में हमारी बिरादरी का कौन है, क्यों बच्चा की अम्माँ ?

चौधराइन—यहाँ हमारी बिरादरी का तो कोई नहीं है।

भगतराम—माँ-बेटी हैं। घर में रुपया भी है। लड़की ऐसी है कि तुम लोग देखकर खुश हो जाओगे। मुफ्त में शादी हो जायगी।

चौधरी—क्या लड़की का बाप मर गया है ? उसका क्या नाम था ? कहाँ का रहनेवाला है। कुल-मरजाद कैसा है—जब तक यह सारी बातें मालूम न हो जायँ, तब तक ब्याह कैसे हो सकता है !—क्यों बच्चा की अम्माँ ?

चौधराइन—हाँ, बिना इन बातों का पता लगाये कैसे हो सकता है ?

भगतराम ने कोई जवाब नहीं दिया।

चौधरी—यहाँ किस मुहल्ले में रहती हैं माँ-बेटी ? सारा शहर हमारा छाना पड़ा है, हम यहाँ कोई बीस साल रहे होंगे, क्यों बच्चा की अम्माँ ?

चौधराइन—बीस साल से ज्यादा रहे हैं।

भगतराम—उनका घर नखास पर है।

चौधरी—नखास से किस तरफ ?

भगतराम—नखास की सामनेवाली गली में पहला मकान उन्हीं का है। सड़क से दिखाई देता है।

चौधरी—पहला मकान तो कोकिला रण्डी का है। गुलाबी रंग से पुता हुआ है न ?

भगतराम ने झेंपते हुए कहा—जी हाँ, वही मकान है !

चौधरी—तो उसमें क्रोकिला रण्डी नहीं रहती क्या ?

भगतराम—रहती क्यों नहीं। माँ बेटी, दोनों ही तो रहती हैं।

चौधरी—तो क्या कोकिला रण्डी की लड़की से ब्याह करना चाहते हो ? नाक कटवाने पर लगे हो, क्या ? बिरादरी में तो कोई पानी पियेगा नहीं।

चौधराइन—लूका लगा दूँगी मुँह में राँड़ के ! रूप-रंग देखकर के लुभा गये क्या ?

भगतराम—मैं तो इसे अपना भाग्य समझता हूँ कि वह अपनी लड़की की शादी मेरे साथ करने को राजी है। अगर वह आज चाहे, तो किसी बड़े-से-बड़े रईस के घर में शादी कर सकती है।

चौधरी—रईस उससे ब्याह न करेगा—रख लेगा। तुम्हें भगवान् समाई दे तो एक नहीं चार रखो। मरदों के लिए कौन रोक है ! लेकिन जो ब्याह के लिए कहो तो ब्याह वही है, जो बिरादरी में हो।

चौधराइन—बहुत पढ़ने से आदमी बौरा जाता है।

चौधरी—हम तो गँवार आदमी हैं, पर समझ में नहीं आता कि तुम्हारी यह नीयत कैसे हुई ? रण्डी की बेटी चाहे इन्नर की परी हो, तो भी रण्डी की बेटी है। हम तुम्हारा विवाह वहाँ न होने देंगे। अगर तुमने विवाह किया, तो हम दोनों तुम्हारे ऊपर जान दे देंगे। इतना अच्छी तरह से समझ लेना—क्यों बच्चा की अम्माँ ?

चौधराइन—ब्याह कर लेंगे, जैसे हँसी-ठट्ठा है ! झाड़ू मार के भगा दूँगी राँड़ को ! अपनी बेटी अपने घर में रखे।

भगतराम—अगर आप लोगों की आज्ञा नहीं है, तो मैं विवाह नहीं करूँगा; मगर मैं किसी दूसरी औरत से भी विवाह न करूँगा।

चौधराइन—हाँ, तुम कुँवारे रहो, यह हमें मंजूर है। पतुरिया के घर में ब्याह न करेंगे।

भगतराम ने अबकी झुँझलाकर कहा—आप उसे बार-बार पतुरिया क्यों कहती हैं। किसी जमाने में यह उसका पेशा रहा होगा। आज दिन वह जितने आचार-विचार से रहती है, शायद ही कोई और रहती हो। ऐसा पवित्र आचरण तो मैंने आज तक देखा ही नहीं।

भगतराम का सारा यत्न विफल हो गया। चौधराइन ने ऐसी जिद पकड़ी कि जौ भर अपनी जगह से न टली।

रात को जब भगतराम अपने प्रेम-मन्दिर में पहुँचा, तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। एक-एक अंग से निराशा टपक रही थी। श्रद्धा रास्ता देखती हुई घबरा रही थी कि आज इतनी रात तक आये क्यों नहीं। उन्हें क्या मालूम कि मेरे दिल की क्या हालत हो रही है। यार-दोस्तों से छुट्टी मिलेगी, तो भूलकर इधर भी आ जायेंगे।

कोकिला ने कहा—मैं तो तुझसे कह चुकी कि उनका अब वह मिजाज नहीं रहा। फिर भी तो तू नहीं मानती। आखिर इस टालमटोल की कोई हद भी है।

श्रद्धा ने दुखित होकर कहा—अम्माँजी, मैं आपसे हजार बार विनय कर चुकी हूँ कि चाहे लौकिक रूप में कुमारी ही क्यों न रहूँ; लेकिन हृदय से उनकी ब्याहता हो चुकी। अगर ऐसा आदमी विश्वास करने के काबिल नहीं है, तो फिर नहीं जानती कि किस पर विश्वास किया जा सकता है।

इसी समय भगतराम निराशा की मूर्ति बने हुए कमरे के भीतर आये। दोनों स्त्रियों ने उनकी ओर देखा। कोकिला की आँखों में शिकायत थी और श्रद्धा की आँखों में वेदना। कोकिला की आँखें कह रही थीं, यह क्या तुम्हारे रंग-ढंग हैं ? श्रद्धा की आँखें कह रही थीं—इतनी निर्दयता !

भगतराम ने धीमे, वेदनापूर्ण स्वर में कहा—आप लोगों को आज बहुत देर तक मेरी राह देखनी पड़ी; मगर मैं मजबूर था; घर से अम्माँ और दादा आये हुए हैं; उन्हीं से बातें कर रहा था।

कोकिला बोली—घर पर तो सब कुशल है न ?

भगतराम ने सिर झुकाये हुए कहा—जी हाँ, सब कुशल है। मेरे विवाह का मसला पेश था। पुराने खयाल के आदमी हैं, किसी तरह भी राजी नहीं होते।

कोकिला का मुख तमतमा उठा। बोली—हाँ, क्यों राजी होंगे ? हम लोग उनसे भी नीच हैं न; लेकिन जब तुम उनकी इच्छा के दास थे, तो तुम्हें उनसे पूछकर यहाँ आना-जाना चाहिए था। इस तरह हमारा अपमान करके तुम्हें क्या मिला ? यदि मुझे मालूम होता कि तुम अपने माँ-बाप के इतने गुलाम हो, तो यह नौबत ही काहे को आती?

श्रद्धा ने देखा कि भगतराम की आँखों से आँसू गिर रहे हैं।

विनीत भाव से बोली—अम्माँजी, माँ-बाप की मरजी का गुलाम होना कोई पाप नहीं है। अगर मैं आपकी उपेक्षा करूँ, तो क्या आपको दुःख न होगा ? यही हाल उन लोगों का भी तो होगा।

श्रद्धा यह कहती हुई अपने कमरे की ओर चली और इशारे से भगतराम को भी बुलाया। कमरे में बैठकर दोनों कई मिनट तक पृथ्वी की ओर ताकते रहे। किसी में भी साहस न था कि उस सन्नाटे को तोड़े।

अन्त में भगतराम ने पुरुषोचित वीरता से काम लिया और कहा—श्रद्धा, इस समय मेरे हृदय के भीतर तुमुल युद्ध हो रहा है। मैं शब्दों में अपनी दशा बयान नहीं कर सकता। जी चाहता है कि विष खाकर जान दे दूँ। तुमसे अलग रहकर जीवित नहीं रह सकता; केवल तड़प सकता हूँ। मैंने न-जाने उनकी कितनी खुशामद की, कितना रोया, कितना गिड़गिड़ाया; लेकिन दोनों अपनी बातों पर अड़े रहे। बार-बार यही कहते रहे कि अगर यह ब्याह होगा, तो हम दोनों तुम पर अपनी जान दे देंगे। उन्हें मेरी मौत मंजूर है; लेकिन तुम मेरे हृदय की रानी बनो; यह मंजूर नहीं।

श्रद्धा ने सान्त्वना देते हुए कहा—'प्यारे, मुझसे उनका घृणा करना उचित है। पढ़े-लिखे आदमियों में ही ऐसे कितने निकलेंगे। इसमें उनका कोई दोष नहीं। मैं सबेरे उनके दर्शन करने जाऊँगी. शायद मुझे देखकर उनका दिल पिघल जाय। मैं हर तरह से उनकी सेवा करूँगी, उनकी धोतियाँ धोऊँगी, उनके पैर दाबा करूँगी, मैं वह सब करूँगी, जो उनकी मनचाही बहू करती। इसमें लज्जा की कौन-सी बात। उनके तलवे सहलाऊँगी—भजन गाकर सुनाऊँगी—मुझे बहुत-से दिहाती गीत आते हैं। अम्माँजी के सिर के सफेद बाल चुनूँगी। मैं दया नहीं चाहती, मैं तो प्रेम की चेरी हूँ। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ करूँगी।—सब कुछ।'

भगतराम को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसकी आँखों की ज्योति बढ़ गयी है, अथवा शरीर में कोई दूसरी ज्योतिर्मय आत्मा आ गयी है। उसके हृदय का सारा अनुराग, सारा विश्वास, सारी भक्ति आँखों से उमड़कर श्रद्धा के पैरों की ओर जाती हुई मालूम हुई, मानो किसी घर से नन्हे-नन्हे लाल कपोलवाले, रेशमी कपड़ोंवाले, घुँघराले बालोंवाले बच्चे हँसते हुए निकलकर खेलने जा रहे हों।

7

चौधरी और चौधराइन को शहर आये हुए दो सप्ताह बीत गये। वे रोज जाने के लिए कमर कसते; लेकिन फिर रह जाते। श्रद्धा उन्हें जाने न देती। सबेरे जब उनकी आँखें खुलतीं, तो श्रद्धा उनके स्नान के लिए पानी तपाती हुई होती, चौधरी को अपना हुक्का भरा हुआ मिलता। वे लोग ज्योंही नहाकर उठते, श्रद्धा उनकी धोती छाँटने लगती। दोनों उसकी सेवा और अविरत परिश्रम देखकर दंग रह जाते। ऐसी सुन्दर, ऐसी मधुभाषिणी, ऐसी हँसमुख और चतुर रमणी चौधरी ने इंस्पेक्टर साहब के घर में भी न देखी थी। चौधरी को वह देवी मालूम होती—और चौधराइन को लक्ष्मी। दोनों श्रद्धा की सेवा और टहल प्रेम पर आश्चर्य करते थे; किन्तु तो भी कलंक और बिरादरी का प्रश्न उनके मुँह पर मुहर लगाये हुए था। पन्द्रहवें दिन जब श्रद्धा दस बजे रात को अपने घर चली गयी; तो चौधरी ने चौधराइन से कहा—लड़की तो साक्षात् लक्ष्मी है।

चौधराइन—जब मेरी धोती छाँटने लगती है, तो मैं मारे लाज के कट जाती हूँ। हमारी तरह तो इसकी लौंडी होगी।

चौधरी—फिर क्या सलाह देती हो—अपनी बिरादरी में तो ऐसी सुघर लड़की मिलने की नहीं।

चौधराइन—राम का नाम लेकर ब्याह करो। बहुत होगा रोटी पड़ जायगी। पाँच बीसी में तो रोटी होती है, कौन छप्पन टके लगते हैं। पहले हमें शंका होती थी कि पतुरिया की लड़की न जाने कैसी हो, कैसी न हो, पर अब सारी शंका मिट गई।

चौधरी—जब बातें करती है, तो मालूम होता है, मुँह से फूल झड़ते हैं।

चौधराइन—मैं तो उसकी माँ को बखानती हूँ, जिसकी कोख में ऐसी लक्ष्मी जनमी।

चौधरी—कल चलो, कोकिला से मिलकर सब ठीक-ठाक कर आयें।

चौधराइन—मुझे तो उसके घर जाते सरम लगती है। वह रानी बनी बैठी होगी; मैं तो उसकी लौंडी मालूम होऊँगी।

चौधरी—तो फिर पाउडर मँगाकर मुँह में पोत लो—गोरी हो जाओगी। इंस्पेक्टर साहब की मेम भी तो रोज पाउडर लगाती थीं। रंग तो साँवला था; पर जब पाउडर लगा लेतीं तो मुँह चमकने लगता था।

चौधराइन—हँसी करोगे तो गाली दूँगी, हाँ। काली चमड़ी पर कोई रंग चढ़ता है, जो पाउडर चढ़ जायगा ? तुम तो सचमुच उसके चौकीदार से लगोगे।

चौधरी—तो कल मुँह-अन्धेरे चल दें। अगर कहीं श्रद्धा आ गयी तो फिर गला न छोड़ेगी। बच्चा से कह देंगे कि पंडित से सायत-मिती सब ठीक कर लो। फिर हँसकर

कहा—उन्हें तो आप ही जल्दी होगी।

चौधराइन भी पुराने दिन याद करके मुस्कराने लगीं।

8

चौधरी और चौधराइन का मत पाकर कोकिला विवाह का आयोजन करने लगी। कपड़े बनवाये जाने लगे। बरतनों की दूकानें छानी जाने लगीं और गहनों के लिए सुनार के पास 'आर्डर' जाने लगे। लेकिन न मालूम क्यों भगतराम के मुख पर प्रसन्नता का चिह्न तक न था। श्रद्धा के यहाँ नित्य की भाँति जाता; किंतु उदास, कुछ भूला हुआ-सा बैठा रहता था। घंटों आत्म-विस्मृति की अवस्था में, शून्य दृष्टि से आकाश अथवा पृथ्वी की ओर देखा करता। श्रद्धा उसे अपने कीमती कपड़े और जड़ाऊँ गहने दिखलाती। उसके अंग-प्रत्यंग से आशाओं की स्फूर्ति छलकी पड़ती थी। इस नशे में वह भगतराम की आँखों में छिपे हुए आँसुओं को न देख पाती थी।

इधर चौधरी भी तैयारियाँ कर रहे थे। बार-बार शहर आते और विवाह के सामान मोल ले जाते। भगतराम के स्वतंत्र विचारवाले मित्र उसके भाग्य पर ईर्ष्या करते थे। अप्सरा-जैसी सुन्दर स्त्री, कारूँ के खजाने-जैसी दौलत, दोनों साथ ही किसे मयस्सर होते हैं? किन्तु वह, जो मित्रों की ईर्ष्या, कोकिला की प्रसन्नता श्रद्धा की मनोकामना और चौधरी और चौधराइन के आनन्द का कारण था, छिप-छिपकर रोता था, अपने जीवन से दुःखी था। चिराग तले अँधेरा छाया हुआ था। इस छिपे हुए तूफान की किसी को भी खबर न थी; जो उसके हृदय में हाहाकार मचा रहा था।

ज्यों-ज्यों विवाह का दिन समीप आता था, भगतराम की बनावटी उमंग भी ठण्डी पड़ती थी। जब चार दिन रह गये, तो उसे हल्का-सा ज्वर आ गया। वह श्रद्धा के घर भी न जा सका। चौधरी और चौधराइन तथा अन्य बिरादरी के लोग भी आ पहुँचे थे; किन्तु सब-के-सब विवाह की धुन में इतने मस्त थे कि किसी का भी ध्यान उसकी ओर न गया।

दूसरे दिन भी वह घर से न निकल सका। श्रद्धा ने समझा कि विवाह की रीतियों से छुट्टी न मिली होगी। तीसरे दिन चौधराइन भगतराम को बुलाने गई, तो देखा कि वह सहमी हुई विस्फारित आँखों से कमरे के एक कोने की ओर देखता हुआ दोनों हाथ सामने किये, पीछे हट रहा है, मानो अपने को किसी के वार से बचा रहा हो। चौधराइन ने घबराकर पूछा—बच्चा, कैसा जी है ? पीछे इस तरह क्यों चले जा रहे हो ? यहाँ तो कोई नहीं है।

भगतराम के मुख पर पागलों-जैसी अचेतना थी। आँखों में भय छाया हुआ था। भीत स्वर में बोला—नहीं अम्माँजी, देखो, वह श्रद्धा चली आ रही है ! देखो, उसके दोनों हाथों में दो काली नागिनें हैं। वह मुझे उन नागिनों से डसवाना चाहती है ! अरे अम्माँ ! वह नजदीक आ गयी। श्रद्धा ? श्रद्धा ! ! तुम मेरी जान की क्यों बैरिन हो गयी ? क्या मेरे असीम प्रेम का यही परिणाम है ? मैं तो तुम्हारे चरणों पर बलि होने के लिये सदैव तत्पर था। इस जीवन का मूल्य ही क्या है ! तुम इन नागिनों को दूर फेंक दो। मैं यहाँ तुम्हारे चरणों पर लेटकर यह जान तुम पर न्योछावर कर दूँगा। ....हैं, हैं, तुम न मानोगी !

यह कहकर वह चित गिर पड़ा। चौधराइन ने लपककर चौधरी को बुलाया। दोनों ने

भगतराम को उठाकर चारपाई पर लिटा दिया। चौधरी का ध्यान किसी आसेब की ओर गया। वह तुरन्त ही लौंग और राख लेकर आसेब उतारने का आयोजन करने लगे! स्वयं मन्त्र-तन्त्र में निपुण थे। भगतराम का सारा शरीर ठण्डा था; किन्तु सिर तवे की तरह तप रहा था।

रात को भगतराम कई बार चौंककर उठा। चौधरी ने हर बार मन्त्र फूँककर अपने खयाल से आसेब को भगाया।

चौधराइन ने कहा—कोई डाक्टर क्यों नहीं बुलाते ? शायद दवा से कुछ फायदा हो। कल ब्याह और आज यह हाल।

चौधरी ने निःशंक भाव से कहा—डाक्टर आकर क्या करेगा। वही पीपलवाले बाबा तो हैं। दवा-दारू करना उनसे और रार बढ़ाना है। रात जाने दो। सबेरा होते ही एक बकरा और एक बोतल दारू उनकी भेंट की जायगी। बस और कुछ करने की जरूरत नहीं। डाक्टर बीमारी की दवा करता है कि हवा-बयार की ? बीमारी उन्हें कोई नहीं है, कुल के बाहर ब्याह करने ही से देवता लोग रूठ गये हैं।

सबेरे चौधरी ने एक बकरा मँगाया। स्त्रियाँ गाती-बजाती हुई देवी के चौतरे की ओर चलीं। जब लोग लौटकर आये, तो देखा कि भगतराम की हालत खराब है। उसकी नाड़ी धीरे-धीरे बन्द हो रही थी। मुख पर मृत्यु-विभीषिका की छाप थी। उसके दोनों नेत्रों से आँसू बहकर गालों पर ढुलक रहे थे, मानो अपूर्ण इच्छा का अन्तिम सन्देश निर्दय संसार को सुना रहे हों। जीवन का कितना वेदना-पूर्ण दृश्य था—आँसू की दो बूँदें !

अब चौधरी घबराये। तुरन्त ही कोकिला को खबर दी। एक आदमी डाक्टर के पास भेजा। डाक्टर के आने में तो देर थी—वह भगतराम के मित्रों में से थे; किन्तु कोकिला और श्रद्धा आदमी के साथ ही आ पहुँचीं। श्रद्धा भगतराम के सामने आकर खड़ी हो गयी। आँखों से आँसू बहने लगे।

थोड़ी देर में भगतराम ने आँखें खोलीं और श्रद्धा की ओर देखकर बोले—तुम आ गयी श्रद्धा, मैं तुम्हारी राह देख रहा था। यह अन्तिम प्यार लो। आज ही सब 'आगा-पीछा' का अन्त हो जायगा; जो आज से तीन वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था। इन तीनों वर्षो में मुझे जो आत्मिक-यन्त्रणा मिली है, हृदय ही जानता है। तुम वफा की देवी हो; लेकिन मुझे रह-रहकर यह भ्रम होता था, क्या तुम खून के असर का नाश कर सकती हो ? क्या तुम एक ही बार अपनी परम्परा की नीति छोड़ सकेगी ? क्या तुम जन्म के प्राकृतिक नियमों को तोड़ सकोगी ? इन भ्रमपूर्ण विचारों के लिए शोक न करना। मैं तुम्हारे योग्य न था—किसी प्रकार भी और कभी भी तुम्हारे-जैसा महान् हृदय न बन सका। हाँ, इस भ्रम के वश में पड़कर संसार से मैं अपनी इच्छाएँ बिना पूर्ण किये ही जा रहा हूँ। तुम्हारे अगाध, निष्कपट, निर्मल प्रेम की स्मृति सदैव ही मेरे साथ रहेगी। किन्तु हाय अफसोस....

कहते-कहते भगतराम की आँखें फिर बन्द हो गयीं। श्रद्धा के मुख पर गाढ़ी लालिमा दौड़ गयी। उसके आँसू सूख गये। झुकी हुई गरदन तन गई। माथे पर बल पड़ गये। आँखों में आत्म-अभिमान की झलक आ गयी। वह क्षण भर वहाँ खड़ी रही और दूसरे ही क्षण नीचे आकर अपनी गाड़ी में बैठ गयी। कोकिला उसके पीछे-पीछे दौड़ी हुई आयी

और बोली—बेटी, यह क्रोध करने का अवसर नहीं है। लोग अपने दिल में क्या कहेंगे। उनकी दशा बराबर बिगड़ती ही जाती है ! तुम्हारे रहने से बुड्ढो को ढाढस बँधा रहेगा।

श्रद्धा ने कुछ उत्तर न दिया। कोचवान से कहा—घर चलो। कहकर कोकिला भी गाड़ी में बैठ गयी।

असह्य शीत पड़ रहा था। आकाश में काले बादल छाये हुए थे। शीतल वायु चल रही थी। माघ के अन्तिम दिवस थे। वृक्ष, पेड़-पौधे भी शीत से अकड़े हुए थे। दिन के आठ बज गये थे, अभी तक लोग रजाई के भीतर मुँह लपेटे हुए थे। लेकिन श्रद्धा का शरीर पसीने से भीगा हुआ था। ऐसा मालूम होता था कि सूर्य की सारी उष्णता उसके शरीर के रगों में घुस गयी है। उसके होठ सूख गये थे, प्यास से नहीं, आंतरिक धधकती हुई अग्नि की लपटों से। उसका एक-एक अंग उस अग्नि की भीषण आँच से जला जा रहा था; उसके मुख से बार-बार जलती हुई गर्म साँस निकल रही थी, मानो किसी चूल्हे की लपट हो। घर पहुँचते-पहुँचते उसका फूल-सा मुख मलिन हो गया, होंठ पीले पड़ गये, जैसे किसी काले साँप ने डस लिया हो। कोकिला बार-बार अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसकी ओर ताकती थी; पर क्या कहे और क्या कहकर समझाये।

घर पहुँचकर श्रद्धा अपने ऊपर के कमरे की ओर चली, किन्तु उसमें इतनी शक्ति न थी कि सीढ़ियाँ चढ़ सके। रस्सी को मजबूती से पकड़ती हुई किसी तरह अपने कमरे में पहुँची। हाय, आध ही घंटे पूर्व यहाँ की एक-एक वस्तु पर प्रसन्नता, आह्लाद, आशाओं की छाप लगी हुई थी; पर अब सब-की-सब सिर धुनती हुई मालूम होती थीं। बड़े-बड़े सन्दूकों में जोड़े सजाये हुए रखे थे, उन्हें देखकर श्रद्धा के हृदय में हूक उठी और वह गिर पड़ी, जैसे विहार करता हुआ और कुलाचें भरता हुआ हिरन तीर लग जाने से गिर पड़ता है।

अचानक उसकी दृष्टि उस चित्र पर जा पड़ी, जो आज तीन वर्ष से उसके जीवन का आधार हो रही थी। उस चित्र को उसने कितनी बार चूमा था; कितनी बार गले लगाया था, कितनी बार हृदय से चिपका लिया था। वे सारी बातें एक-एक करके याद आ रही थीं; लेकिन उनके याद करने का भी अधिकार उसे न था।

हृदय के भीतर एक दर्द उठा, जो पहले से कहीं अधिक प्राणांतकारी था—जो पहले से अधिक तूफान के समान भयंकर था। हाय ! उस मरनेवाले के दिल को उसने कितनी यंत्रणा पहुँचायी ! भगतराम के अविश्वास का यह जवाव, यह प्रत्युत्तर कितना रोमांचकारी और हृदय-विदारक था। हाय ! वह कैसे ऐसी निठुर हो गयी ! उसका प्यारा उसकी नजरों के सामने दम तोड़ रहा था ! उसके लिए—उसकी सान्त्वना के लिए एक शब्द भी मुँह से न निकला ! यही तो खून का असर है—इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता था। आज पहली बार श्रद्धा को कोकिला की बेटी होने का पछतावा हुआ। वह इतनी स्वार्थरत, इतनी हृदय-हीन है—आज ही उसे मालूम हुआ। वह त्याग, वह सेवा, वह उच्चादर्श, जिस पर उसे घमंड था, ढहकर श्रद्धा के सामने गिर पड़ा; वह अपनी ही दृष्टि में अपने को हेय समझने लगी। उस स्वर्गीय प्रेम का ऐसा नैराश्यपूर्ण उत्तर वेश्या की पुत्री के अतिरिक्त और कौन दे सकता है।

श्रद्धा उसी समय कमरे से बाहर निकलकर, वायु-वेग से सीढ़ियाँ उतरती हुई नीचे

पहुँची और भगतराम के मकान की ओर दौड़ी। वह आखिरी बार उससे गले मिलना चाहती थी अन्तिम बार उसके दर्शन करना चाहती थी। वह अनंत प्रेम के कठिन बंधनों को निभायेगी और अंतिम श्वास तक उसी की ही बनकर रहेगी !

रास्ते में कोई सवारी न मिली। श्रद्धा थकी जा रही थी। सिर से पाँव तक पसीने से नहाई हुई थी ! न मालूम कितनी बार वह ठोकर खाकर गिरी और फिर उठकर दौड़ने लगी! उसके घुटनों से रक्त निकल रहा था, साड़ी कई जगह से फट गई थी, मगर उस वक्त अपने तन-बदन की सुध तक न थी। उसका एक-एक रोआँ सहस्र कंठ हो-होकर ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि उस प्रातःकाल के दीपक की लौ थोड़ी देर और बची रहे। उनके मुँह से एक बार 'श्रद्धा' का शब्द सुनने के लिए उसकी अंतरात्मा कितनी व्याकुल हो रही थी। केवल यही एक शब्द सुनकर फिर उसकी कोई भी इच्छा अपूर्ण न रह जायगी, उसकी सारी आशाएँ सफल हो जायँगी, सारी साध पूर्ण हो जायगी।

श्रद्धा को देखते ही चौधराइन ने उसका हाथ पकड़ लिया और रोती हुई बोली--

बेटी, तुम कहाँ चली गई थी ? दो बार तुम्हारा नाम लेकर पुकार चुके हैं।

श्रद्धा को ऐसा मालूम हुआ, मानो उसका कलेजा फटा जा रहा है। उसकी आँखें पथरा गयीं। उसे ऐसा मालूम होने लगा कि वह अगाध, अथाह समुद्र की भँवर में पड़ गयी है। उसने कमर में जाते ही भगतराम के ठंडे पैरों पर सिर रख दिया और उसे आँखों के गरम पानी से धोकर गरम करने का उपाय करने लगी। यही उसकी सारी आशाओं और कुछ अरमानों की समाधि थी।

भगतराम ने आँख खोलकर कहा--क्या तुम हो श्रद्धा ? मैं जानता था कि तुम आओगी, इसीलिए अभी तक प्राण अवशेष थे। जरा मेरे हृदय पर अपना सिर रख दो। हाँ, मुझे अब विश्वास हो गया कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया। जी डूब रहा है। तुमसे कुछ माँगना चाहता हूँ, पर किस मुँह से माँगूँ। जब जीते-जी न माँग सका तो अब क्या है ?

हमारी अंतिम घड़ियाँ किसी अपूर्ण साध को अपने हिय के भीतर छिपाये हुए होती हैं। मृत्यु पहले हमारी सारी ईर्ष्या, सारा भेदभाव, सारा द्वेष नष्ट करती है। जिनकी सूरत से हमें घृणा होती है, उनसे फिर वही पुराना सौहार्द, पुरानी मैत्री करने के लिए, उनको गले लगाने के लिए हम उत्सुक हो जाते हैं। जो कुछ कर सकते थे और न कर सके--उसी की एक साध रह जाती है। भगतराम ने उखड़े हुए विषादपूर्ण स्वर में अपने प्रेम की पुनरावृत्ति श्रद्धा के सामने की। उस स्वर्गीय निधि को पाकर वह प्रसन्न हो सकता था, उसका उपयोग कर सकता था; किन्तु हाय, आज वह जा रहा है, अपूर्ण साधों की स्मृति लिए हुए ! हाय रे, अभागिन साध !

श्रद्धा भगतराम के वक्षस्थल पर झुकी हुई रो रही थी । भगतराम ने सिर उठाकर उसके मुरझाये हुए, आँसुओं से धोये हुए स्वच्छ कपोलों को चूम लिया; मरती हुई साध की वह अंतिम हँसी थी।

भगतराम ने अवरुद्ध कंठ से कहा--यह हमारा और तुम्हारा विवाह है श्रद्धा--यह मेरी अंतिम भेंट है।--यह कहते हुए उसकी आँखें हमेशा के लिए बंद हो गयीं ! साध भी मरकर गिर पड़ी।

श्रद्धा की आँखें रोते-रोते लाल हो रही थीं। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो भगतराम उसके सामने प्रेमालिंगन का संकेत करते हुए मुस्करा रहे हैं। वह अपनी दशा, काल, स्थान, सब भूल गयी। जख्मी सिपाही अपनी जीत का समाचार पाकर अपना दर्द, अपनी पीड़ा भूल जाता है। क्षण भर के लिए मौत भी हेय हो जाती है। श्रद्धा का भी यही हाल हुआ। वह भी अपना जीवन प्रेम की निठुर वेदी पर उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो गयी, जिस पर लैला और मजनूँ, शीरीं और फरहाद—नहीं, हजारों ने अपनी बलि चढ़ा दी।

उसने चुम्बन का उत्तर देते हुए कहा—प्यारे, मैं तुम्हारी हूँ और सदा तुम्हारी ही रहूँगी।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', दिसम्बर, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप 'कशमकश' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेमचालीसी' में संकलित। कुछ संग्रहों में 'हुस्नो सबाव' शीर्षक से भी छपी है।]

इस्तीफा

दफ्तर का बाबू एक बेजबान जीव है। मजदूरों को आँखें दिखाओ, तो वह त्योरियाँ बदल कर खड़ा हो जायगा। कुली को एक डाँट बताओ, तो सिर से बोझ फेंक कर अपनी राह लेगा। किसी भिखारी को दुत्कारो, तो वह तुम्हारी ओर गुस्से की निगाह से देख कर चला जायगा। यहाँ तक कि गधा भी कभी-कभी तकलीफ पा कर दो लत्तियाँ झाड़ने लगता है; मगर बेचारे दफ्तर के बाबू को आप चाहे आँखें दिखायें, डाँट बतायें, दुत्कारें या ठोकरें मारें, उसके माथे पर बल न आयेगा। उसे अपने विकारों पर जो आधिपत्य होता है, वह शायद किसी संयमी साधु में भी न हो। संतोष का पुतला, सब्र की मूर्ति, सच्चा आज्ञाकारी, गरज उसमें तमाम मानवी अच्छाइयाँ मौजूद होती हैं। खंडहर के भी एक दिन भाग्य जागते हैं। दीवाली के दिन उस पर भी रोशनी होती है, बरसात में उस पर हरियाली छाती है, प्रकृति की दिलचस्पियों में उसका भी हिस्सा है। मगर इस गरीब बाबू के नसीब कभी नहीं जागते। उसकी अँधेरी तकदीर में रोशनी का जलवा कभी नहीं दिखायी देता। इसके पीले चेहरे पर कभी मुस्कराहट की रोशनी नजर नहीं आती। इसके लिए सूखा सावन है, कभी हरा भादों नहीं। लाला फतहचंद ऐसे ही एक बेजबान जीव थे।

कहते हैं, मनुष्य पर उसके नाम का भी कुछ असर पड़ता है। फतहचंद की दशा में यह बात यथार्थ सिद्ध न हो सकी। यदि उन्हें 'हारचंद' कहा जाय तो कदाचित् यह अत्युक्ति न होगी। दफ्तर में हार, जिंदगी में हार, मित्रों में हार, जीवन में उनके लिए चारों ओर निराशाएँ ही थीं। लड़का एक भी नहीं, लड़कियाँ तीन; भाई एक भी नहीं, भौजाइयाँ दो, गाँठ में कौड़ी नहीं, मगर दिल में दया और मुरव्वत; सच्चा मित्र एक भी नहीं—जिससे मित्रता हुई, उसने धोखा दिया, इस पर तंदुरुस्ती भी अच्छी नहीं—बत्तीस साल की अवस्था में बाल खिचड़ी हो गये थे। आँखों में ज्योति नहीं, हाजमा चौपट, चेहरा पीला, गाल पिचके, कमर झुकी हुई, न दिल में हिम्मत, न कलेजे में ताकत। नौ बजे दफ्तर जाते और छः बजे शाम को लौट कर घर आते। फिर घर से बाहर निकलने की हिम्मत न पड़ती। दुनिया में

क्या होता है; इसकी उन्हें बिलकुल खबर न थी। उनकी दुनिया लोक-परलोक जो कुछ था, दफ्तर था। नौकरी की खैर मनाते और जिंदगी के दिन पूरे करते थे। न धर्म से वास्ता था, न दीन से नाता। न कोई मनोरंजन था, न खेल। ताश खेले हुए भी शायद एक मुद्दत गुजर गयी थी।

2

जाड़ों के दिन थे। आकाश पर कुछ-कुछ बादल थे। फतहचंद साढ़े पाँच बजे दफ्तर से लौटे तो चिराग जल गये थे। दफ्तर से आ कर वह किसी से कुछ न बोलते, चुपके से चारपाई पर लेट जाते और पंद्रह-बीस मिनट तक बिना हिले-डुले पड़े रहते तब कहीं जा कर उनके मुँह से आवाज निकलती। आज भी प्रतिदिन की तरह वे चुपचाप पड़े थे कि एक ही मिनट में बाहर से किसी ने पुकारा। छोटी लड़की ने जा कर पूछा तो मालूम हुआ कि दफ्तर का चपरासी है। शारदा पति के मुँह-हाथ धोने के लिए लोटा-गिलास माँज रही थी। बोली—उससे कह दे, क्या काम है। अभी तो दफ्तर से आये ही हैं, और अभी फिर बुलावा आ गया ?

चपरासी ने कहा—साहब ने कहा है, अभी बुला लाओ। कोई बड़ा जरूरी काम है।

फतहचंद की खामोशी टूट गयी। उन्होंने सिर उठा कर पूछा—क्या बात है ?

शारदा—कोई नहीं, दफ्तर का चपरासी है।

फतहचंद ने सहम कर कहा—दफ्तर का चपरासी ! क्या साहब ने बुलाया है ?

शारदा—हाँ, कहता है, साहब बुला रहे हैं। यह कैसा साहब है तुम्हारा, जब देखो, बुलाया करता है ? सबेरे के गये-गये अभी मकान लौटे हो, फिर भी बुलावा आ गया।

फतहचंद ने सँभल कर कहा—जरा सुन लूँ, किस लिए बुलाया है। मैंने सब काम खतम कर दिया था, अभी आता हूँ।

शारदा—जरा जलपान तो करते जाओ, चपरासी से बातें करने लगोगे, तो तुम्हें अंदर आने की याद भी न रहेगी।

यह कह कर वह एक प्याली में थोड़ी-सी दालमोठ और सेव लायी। फतहचंद उठ कर खड़े हो गये, किंतु खाने की चीजें देख कर चारपाई पर बैठ गये और प्याली की ओर चाव से देख कर डरते हुए बोले—लड़कियों को दे दिया है न ?

शारदा ने आँखें चढ़ाकर कहा—हाँ-हाँ; दे दिया है, तुम तो खाओ।

इतने में छोटी लड़की आ कर सामने खड़ी हो गयी। शारदा ने उसकी ओर क्रोध से देख कर कहा—तू क्यों आ कर सिर पर सवार हो गयी, जा बाहर खेल !

फतहचंद—रहने दो, क्यों डाँटती हो ? यहाँ आओ चुन्नी, यह लो, दालमोठ ले जाओ !

चुन्नी माँ की ओर देख कर डरती हुई बाहर भाग गयी !

फतहचंद ने कहा—क्यों बेचारी को भगा दिया ? दो-चार दाने दे देती, तो खुश हो जाती।

शारदा—इसमें है ही कितना कि सबको बाँटते फिरोगे ? इसे देते तो बाकी दोनों न आ जातीं ? किस-किसको देते ?

इतने में चपरासी ने फिर पुकारा—बाबू जी, हमें बड़ी देर हो रही है।

शारदा—कह क्यों नहीं देते कि इस वक्त न आयेंगे।

फतहचंद—ऐसा कैसे कह दूँ भाई; रोजी का मामला है !

शारदा—तो क्या प्राण दे कर काम करोगे ? सूरत नहीं देखते अपनी ? मालूम होता है, छः महीने के बीमार हो।

फतहचंद ने जल्दी-जल्दी दालमोठ की दो-तीन फंकियाँ लगायीं, एक गिलास पानी पिया और बाहर की तरफ दौड़े। शारदा पान बनाती ही रह गयी।

चपरासी ने कहा—बाबू जी ! आपने बड़ी देर कर दी। अब जरा लपके चलिए, नहीं तो जाते ही डाँट बतायेगा।

फतहचंद ने दो कदम दौड़ कर कहा—चलेंगे तो भाई आदमी ही की तरह, चाहे डाँट बतायें या दाँत दिखायें। हमसे दौड़ा नहीं जाता। बँगले ही पर हैं न ?

चपरासी—भला, वह दफ्तर क्यों आने लगा। बादशाह है कि दिल्लगी ?

चपरासी तेज चलने का आदी था। बेचारे बाबू फतहचंद धीरे-धीरे जाते थे। थोड़ी ही दूर चल कर हाँफ उठे। मगर मर्द तो थे ही, यह कैसे कहते कि भाई जरा और धीरे चलो। हिम्मत करके कदम उठाते जाते थे, यहाँ तक कि जाँघों में दर्द होने लगा और आधा रास्ता खतम होते-होते पैरों ने उठने से इनकार कर दिया। सारा शरीर पसीने से तर हो गया। सिर में चक्कर आ गया। आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगीं।

चपरासी ने ललकारा—जरा कदम बढ़ाये चलो, बाबू !

फतहचंद बड़ी मुश्किल से बोले—तुम जाओ, मैं आता हूँ।

वे सड़क के किनारे पटरी पर बैठ गये और सिर को दोनों हाथों से थाम कर दम मारने लगे। चपरासी ने इनकी यह दशा देखी, तो आगे बढ़ा। फतहचंद डरे कि यह शैतान जा कर न-जाने साहब से क्या कह दे, तो गजब ही हो जायगा। जमीन पर हाथ टेक कर उठे और फिर चले। मगर कमजोरी से शरीर हाँफ रहा था। इस समय कोई बच्चा भी उन्हें जमीन पर गिरा सकता था। बेचारे किसी तरह गिरते-पड़ते साहब के बँगले पर पहुँचे। साहब बँगले पर टहल रहे थे। बार-बार फाटक की तरफ देखते थे और किसी को आते न देखकर मन में झल्लाते थे।

चपरासी को देखते ही आँखें निकाल कर बोले—इतनी देर कहाँ था ?

चपरासी ने बरामदे की सीढ़ी पर खड़े-खड़े कहा—हुजूर ! जब वह आयें तब तो; मैं दौड़ा चला आ रहा हूँ।

साहब ने पैर पटक कर कहा—बाबू क्या बोला ?

चपरासी—आ रहे हैं हुजूर, घंटा-भर में तो घर से निकले।

इतने में फतहचंद अहाते के तार के अंदर से निकल कर वहाँ आ पहुँचे और साहब को सिर झुका कर सलाम किया।

साहब ने कड़क कर कहा—अब तक कहाँ था ?

फतहचंद ने साहब का तमतमाया चेहरा देखा, तो उनका खून सूख गया। बोले—हुजूर, अभी-अभी तो दफ्तर से गया हूँ, ज्यों ही चपरासी ने आवाज दी, हाजिर हुआ।

साहब—झूठ बोलता है, झूठ बोलता है, हम घंटे भर से खड़ा है।

फतहचंद—हुजूर, मैं झूठ नहीं बोलता। आने में जितनी देर हो गयी हो, मगर घर से चलने में मुझे बिल्कुल देर नहीं हुई।

साहब ने हाथ की छड़ी घुमाकर कहा—चुप रह सूअर, हम घण्टा-भर से खड़ा है, अपना कान पकड़ो !

फतहचंद ने खून का घूँट पी कर कहा—हुजूर, मुझे दस साल काम करते हो गये, कभी...।

साहब—चुप रह सूअर, हम कहता है कि अपना कान पकड़ो !

फतहचंद—जब मैंने कोई कसूर किया हो ?

साहब—चपरासी ! इस सूअर का कान पकड़ो।

चपरासी ने दबी जबान से कहा—हुजूर, यह भी मेरे अफसर हैं, मैं इनका कान कैसे पकड़ूँ ?

साहब—हम कहता है, इसका कान पकड़ो, नहीं हम तुमको हंटरों से मारेगा।

चपरासी—हुजूर, मैं यहाँ नौकरी करने आया हूँ, मार खाने नहीं। मैं भी इज्जतदार आदमी हूँ। हुजूर, अपनी नौकरी ले लें ! आप जो हुक्म दें, वह बजा लाने को हाजिर हूँ, लेकिन किसी की इज्जत नहीं बिगाड़ सकता। नौकरी तो चार दिन की है। चार दिन के लिए क्यों जमाने-भर से बिगाड़ करें।

साहब अब क्रोध को न बर्दाश्त कर सके। हंटर ले कर दौड़े। चपरासी ने देखा, यहाँ खड़े रहने में खैरियत नहीं है, तो भाग खड़ा हुआ। फतहचंद अभी तक चुपचाप खड़े थे। साहब चपरासी को न पा कर उनके पास आया और उनके दोनों कान पकड़ कर हिला दिया। बोला—तुम सूअर गुस्ताखी करता है ? जा कर आफिस से फाइल लाओ।

फतहचंद ने कान हिलाते हुए कहा—कौन-सा फाइल ?

साहब—तुम बहरा है, सुनता नहीं ? हम फाइल माँगता है।

फतहचंद ने किसी तरह दिलेर होकर कहा—आप कौन-सा फाइल माँगते हैं ?

साहब—वही फाइल जो हम माँगता है। वही फाइल लाओ। अभी लाओ। बेचारे फतहचंद को अब और कुछ पूछने की हिम्मत न हुई। साहब बहादुर एक तो यों ही तेज-मिजाज थे, इस पर हुकूमत का घमंड और सबसे बढ़ कर शराब का नशा। हंटर ले कर पिल पड़ते, तो बेचारे क्या कर लेते ? चुपके से दफ्तर की तरफ चल पड़े।

साहब ने कहा—दौड़ कर जाओ—दौड़ो।

फतहचंद ने कहा—हुजूर, मुझसे दौड़ा नहीं जाता।

साहब—ओ, तुम बहुत सुस्त हो गया है। हम तुमको दौड़ना सिखायेगा। दौड़ो (पीछे से धक्का दे कर) तुम अब भी नहीं दौड़ेगा ?

यह कह कर साहब हंटर लेने चले। फतहचंद दफ्तर के बाबू होने पर भी मनुष्य ही थे। यदि वह बलवान् होते, तो उस बदमाश का खून पी जाते। अगर उनके पास कोई हथियार होता, तो उस पर जरूर चला देते; लेकिन उस हालत में तो मार खाना ही उनकी

तकदीर में लिखा था। वे बेतहाशा भागे और फाटक से बाहर निकल कर सड़क पर आ गये।

3

फतहचंद दफ्तर न गये। जा कर करते ही क्या ? साहब ने फाइल का नाम तक न बताया। शायद नशा में भूल गया। धीरे-धीरे घर की ओर चले, मगर इस बेइज्जती ने पैरों में बेड़ियाँ-सी डाल दी थीं। माना कि वह शारीरिक बल में साहब से कम न थे, उनके हाथ में कोई चीज भी न थी, लेकिन क्या वह उसकी बातों का जवाब न दे सकते थे ? उनके पैरों में जूते तो थे। क्या वह जूते से काम न ले सकते थे ? फिर क्यों उन्होंने इतनी जिल्लत बर्दाश्त की ?

मगर इलाज ही क्या था ? यदि वह क्रोध में उन्हें गोली मार देता, तो उसका क्या बिगड़ता। शायद एक-दो महीने की सादी कैद हो जाती। सम्भव है, दो-चार सौ रुपये जुर्माना हो जाता। मगर इनका परिवार तो मिट्टी में मिल जाता। संसार में कौन था, जो इनके स्त्री-बच्चों की खबर लेता। वह किसके दरवाजे हाथ फैलाते ? यदि उसके पास इतने रुपये होते, जिनसे उनके कुटुम्ब का पालन हो जाता, तो वह आज इतनी जिल्लत न सहते। या तो मर ही जाते, या उस शैतान को कुछ सबक ही दे देते। अपनी जान का उन्हें डर न था। जिंदगी में ऐसा कौन सुख था, जिसके लिए वह इस तरह डरते ? खयाल था सिर्फ परिवार के बरबाद हो जाने का।

आज फतहचंद को अपनी शारीरिक कमजोरी पर जितना दुख हुआ, उतना और कभी न हुआ था। अगर उन्होंने शुरू ही से तंदुरुस्ती का खयाल रखा होता, कुछ कसरत करते रहते, लकड़ी चलाना जानते होते, तो क्या इस शैतान की इतनी हिम्मत होती कि वह उनका कान पकड़ता। उसकी आँखें निकाल लेते। कम से कम उन्हें घर से एक छुरी ले कर चलना था ! और न होता, तो दो-चार हाथ जमाते ही—पीछे देखा जाता, जेल जाना ही तो होता या और कुछ ?

वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों उनकी तबीयत अपनी कायरता और बोदेपन पर और भी झल्लाती थी। अगर वह उचककर उसके दो-चार थप्पड़ लगा देते, तो क्या होता—यही न कि साहब के खानसामे, बैरे सब उन पर पिल पड़ते और मारते-मारते बेदम कर देते। बाल-बच्चों के सिर पर जो कुछ पड़ती—पड़ती। साहब को इतना तो मालूम हो जाता कि किसी गरीब को बेगुनाह जलील करना आसान नहीं। आखिर आज मैं मर जाऊँ, तो क्या हो ? तव कौन मेरे बच्चों का पालन करेगा ? तब उनके सिर जो कुछ पड़ेगी, वह आज ही पड़ जाती, तो क्या हर्ज था।

इस अंतिम विचार ने फतहचंद के हृदय में इतना जोश भर दिया कि वह लौट पड़े और साहब से जिल्लत का बदला लेने के लिए दो-चार कदम चले, मगर फिर खयाल आया, आखिर जो कुछ जिल्लत होनी थी; वह तो हो ही ली। कौन जाने, बँगले पर हो या क्लब चला गया हो। उसी समय उन्हें शारदा की बेकसी और बच्चों का बिना बाप के हो जाने का खयाल भी आ गया। फिर लौटे और घर चले।

4

घर में जाते ही शारदा ने पूछा—किस लिए बुलाया था, बड़ी देर हो गयी ?

फतहचंद ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—नशे की सनक थी, और क्या ? शैतान ने मुझे गालियाँ दीं, जलील किया। बस, यही रट लगाये हुए था कि देर क्यों की ? निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा।

शारदा ने गुस्से में आकर कहा—तुमने एक जूता उतार कर दिया नहीं सूअर को ?

फतहचंद—चपरासी बहुत शरीफ है। उसने साफ कह दिया—हुजूर, मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इज्जत उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी। वह उसी वक्त सलाम करके चला गया।

शारदा—यही बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यों नहीं फटकारा ?

फतहचंद—फटकारा क्यों नहीं—मैंने भी खूब सुनायी। वह छड़ी ले कर दौड़ा—मैंने भी जूता सँभाला। उसने मुझे कई छड़ियाँ जमायीं—मैंने भी कई जूते लगाये !

शारदा ने खुश हो कर कहा—सच ? इतना-सा मुँह हो गया होगा उसका !

फतहचंद—चेहरे पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी।

शारदा—बड़ा अच्छा किया तुमने, और मारना चाहिए था। मैं होती, तो बिना जान लिये न छोड़ती।

फतहचंद—मार तो आया हूँ; लेकिन अब खैरियत नहीं है। देखो, क्या नतीजा होता है ? नौकरी तो जायगी ही, शायद सजा भी काटनी पड़े।

शारदा—सजा क्यों काटनी पड़ेगी ? क्या कोई इंसाफ करनेवाला नहीं है ? उसने क्यों गालियाँ दीं, क्यों छड़ी जमायी ?

फतहचंद—उसके सामने मेरी कौन सुनेगा ? अदालत भी उसी की तरफ हो जायगी।

शारदा—हो जायगी, हो जाय; मगर देख लेना, अब किसी साहब की यह हिम्मत न होगी कि किसी बाबू को गालियाँ दे बैठे। तुम्हें चाहिए था कि ज्योंही उसके मुँह से गालियाँ निकलीं, लपक कर एक जूता रसीद कर देते।

फतहचंद—तो फिर इस वक्त जिंदा लौट भी न सकता। जरूर मुझे गोली मार देता।

शारदा—देखी जाती।

फतहचंद ने मुस्करा कर कहा—फिर तुम लोग कहाँ जातीं ?

शारदा—जहाँ ईश्वर की मरजी होती। आदमी के लिए सबसे बड़ी चीज इज्जत है। इज्जत गँवा कर बाल-बच्चों की परवरिश नहीं की जाती। तुम उस शैतान को मार कर आये होते तो मैं गरूर से फूली नहीं समाती। मार खा कर आते, तो शायद मैं तुम्हारी सूरत से भी घृणा करती। यों जबान से चाहे कुछ न कहती, मगर दिल से तुम्हारी इज्जत जाती रहती। अब जो कुछ सिर पर आयेगी, खुशी से झेल लूँगी...। कहाँ जाते हो, सुनो-सुनो, कहाँ जाते हो ?

फतहचंद दीवाने हो कर जोश में घर से निकल पड़े। शारदा पुकारती रह गयी। वह फिर साहब के बँगले की तरफ जा रहे थे। डर से सहमे हुए नहीं; बल्कि गरूर से गर्दन

उठाये हुए। पक्का इरादा उनके चेहरे से झलक रहा था। उनके पैरों में वह कमजोरी, आँखों में वह बेकसी न थी। उनकी कायापलट-सी हो गयी थी। वह कमजोर बदन, पीला मुखड़ा, दुबले बदनवाला, दफ्तर के बाबू की जगह अब मर्दाना चेहरा, हिम्मत भरा हुआ, मजबूत गठा और जवान था। उन्होंने पहले एक दोस्त के घर जा कर उसका डंडा लिया और अकड़ते हुए साहब के बँगले पर जा पहुँचे।

इस वक्त नौ बजे थे। साहब खाने की मेज पर थे। मगर फतहचंद ने आज उनके मेज पर से उठ जाने का इंतजार न किया। खानसामा कमरे से बाहर निकला और वह चिक उठा कर अंदर गये। कमरा प्रकाश से जगमगा रहा था। जमीन पर ऐसी कालीन बिछी हुई थी, जैसी फतहचंद की शादी में भी नहीं बिछी होगी। साहब बहादुर ने उसकी तरफ क्रोधित दृष्टि से देखकर कहा—तुम क्यों आया ? बाहर जाओ, क्यों अंदर चला आया ?

फतहचंद ने खड़े-खड़े डंडा सँभाल कर कहा—तुमने मुझसे अभी फाइल माँगा था, वही फाइल ले कर आया हूँ। खाना खा लो, तो दिखाऊँ। तब तक मैं बैठा हूँ। इतमीनान से खाओ, शायद यह तुम्हारा आखिरी खाना होगा। इसी कारण खूब पेट भर कर खा लो।

साहब सन्नाटे में आ गये। फतहचंद की तरफ डर और क्रोध की दृष्टि से देख कर काँप उठे। फतहचंद के चेहरे पर पक्का इरादा झलक रहा था। साहब समझ गये, यह मनुष्य इस समय मरने-मारने के लिए तैयार हो कर आया है। ताकत में फतहचंद उनके पासंग भी नहीं था। लेकिन यह निश्चय था कि वह ईट का जवाब पत्थर से नहीं, बल्कि लोहे से देने को तैयार है। यदि वह फतहचंद को बुरा-भला कहते हैं, तो क्या आश्चर्य है कि वह डंडा ले कर पिल पड़े। हाथापाई करने में यद्यपि उन्हें जीतने में जरा भी संदेह नहीं था, लेकिन बैठे-बिठाये डंडे खाना भी तो कोई बुद्धिमानी नहीं है। कुत्ते को आप डंडे से मारिये, ठुकराइये, जो चाहे कीजिए; मगर उसी समय तक, जब तक वह गुर्राता नहीं। एक बार गुर्रा कर दौड़ पड़े, तो फिर देखें, आपकी हिम्मत कहाँ जाती है ? यही हाल उस वक्त साहब बहादुर का था। जब तक यकीन था कि फतहचंद घुड़की, गाली, हंटर, ठोकर सब कुछ खामोशी से सह लेगा, तब तक आप शेर थे; अब वह त्योरियाँ बदले, डंडा सँभाले, बिल्ली की तरह घात लगाये खड़ा है। जबान से कोई कड़ा शब्द निकला और उसने डंडा चलाया। वह अधिक से अधिक उसे बरखास्त कर सकते हैं। अगर मारते हैं, तो मार खाने का भी डर है। उस पर फौजदारी में मुकदमा दायर हो जाने का अंदेशा—माना कि वह अपने प्रभाव और ताकत से अंत तक फतहचंद को जेल में डलवा देंगे; परन्तु परेशानी और बदनामी से किसी तरह न बच सकते थे। एक बुद्धिमान और दूरंदेश आदमी की तरह उन्होंने यह कहा—ओहो, हम समझ गया, आप हमसे नाराज हैं। हमने क्या आपको कुछ कहा है ? आप क्यों हमसे नाराज हैं ?

फतहचंद ने तन कर कहा—तुमने अभी आध घंटा पहले मेरे कान पकड़े थे, और मुझसे सैकड़ों ऊल-जलूल बातें कही थीं। क्या इतनी जल्दी भूल गये ?

साहब—मैंने आपका कान पकड़ा, आ-हा-हा-हाहा ! मैंने आपका कान पकड़ा, आ-हा-हा-हा ! क्या मजाक है ? क्या मैं पागल हूँ या दीवाना ?

फतहचंद—तो क्या मैं झूठ बोल रहा हूँ ? चपरासी गवाह है। आपके नौकर-चाकर

भी देख रहे थे।

साहब—कब का बात है ?

फतहचंद—अभी-अभी, कोई आधा घण्टा हुआ, आपने मुझे बुलवाया था और बिना कारण मेरे कान पकड़े और धक्के दिये थे।

साहब—ओ बाबू जी, उस वक्त हम नशा में था। बेहरा ने हमको बहुत दे दिया था। हमको कुछ खबर नहीं, क्या हुआ माई गाड ! हमको कुछ खबर नहीं।

फतहचंद—नशा में अगर तुमने मुझे गोली मार दी होती, तो क्या मैं मर न जाता ? अगर तुम्हें नशा था और नशा में सब कुछ मुआफ है, तो मैं भी नशे में हूँ। सुनो मेरा फैसला, या तो अपने कान पकड़ो कि फिर कभी किसी भले आदमी के संग ऐसा बर्ताव न करोगे, या मैं आकर तुम्हारे कान पकड़ूँगा। समझ गये कि नहीं ! इधर-उधर हिलो नहीं, तुमने जगह छोड़ी और मैंने डंडा चलाया। फिर खोपड़ी टूट जाय, तो मेरी खता नहीं। मैं जो कुछ कहता हूँ, करते चलो; पकड़ो कान !

साहब ने बनावटी हँसी हँसकर कहा—वेल बाबू जी, आप बहुत दिल्लगी करता है। अगर हमने आपको बुरा बात कहा है, तो हम आपसे माफी माँगता है।

फतहचंद—(डंडा तौलकर) नहीं, कान पकड़ो !

साहब आसानी से इतनी जिल्लत न सह सके। लपककर उठे और चाहा कि फतहचंद के हाथ से लकड़ी छीन लें; लेकिन फतहचंद गाफिल न थे। साहब मेज़ पर से उठने न पाये थे कि उन्होंने डंडे का भरपूर और तुला हुआ हाथ चलाया। साहब तो नंगे सिर थे ही; चोट सिर पर पड़ गयी। खोपड़ी भन्ना गयी। एक मिनट तक सिर को पकड़े रहने के बाद बोले—हम तुमको बरखास्त कर देगा।

फतहचंद—इसकी मुझे परवाह नहीं, मगर आज मैं तुमसे बिना कान पकड़ाये नहीं जाऊँगा। कान पकड़कर वादा करो कि फिर किसी भले आदमी के साथ ऐसी बेअदबी न करोगे, नहीं तो मेरा दूसरा हाथ पड़ना ही चाहता है !

यह कहकर फतहचंद ने फिर डडा उठाया। साहब को अभी तक पहली चोट न भूली थी। अगर कहीं यह दूसरा हाथ पड़ गया, तो शायद खोपड़ी खुल जाये। कान पर हाथ रखकर बोले—अब आप खुश हुआ ?

'फिर तो कभी किसी को गाली न दोगे ?'

'कभी नहीं।'

'अगर फिर कभी ऐसा किया, तो समझ लेना, मैं कहीं बहुत दूर नहीं हूँ।'

'अब किसी को गाली न देगा।'

'अच्छी बात है, अब मैं जाता हूँ, आज से मेरा इस्तीफा है। मैं कल इस्तीफा में यह लिखकर भेजूँगा कि तुमने मुझे गालियाँ दीं, इसलिए मैं नौकरी नहीं करना चाहता, समझ गये ?'

साहब—आप इस्तीफा क्यों देता है ? हम तो बरखास्त नहीं करता।

फतहचंद—अब तुम जैसे पाजी आदमी की मातहती नहीं करूँगा।

यह कहते हुए फतहचंद कमरे से बाहर निकले और बड़े इत्मीनान से घर चले।

आज उन्हें सच्ची विजय की प्रसन्नता का अनुभव हुआ। उन्हें ऐसी खुशी कभी नहीं प्राप्त हुई थी। यही उनके जीवन की पहली जीत थी।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'भारतेन्दु', दिसम्बर, 1928 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित। उर्दू रूप 'इस्तीफा' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित। यह कहानी कुछ अन्य स्थानों पर 'स्तीफा' शीर्षक से भी प्रकाशित हुई है।]

खुदी

मुन्नी जिस वक्त दिलदारनगर में आई, उसकी उम्र पांच साल से ज्यादा न थी। वह बिल्कुल अकेली थी, मां-बाप दोनों न मालूम मर गए या कहीं परदेस चले गए थे। मुन्नी सिर्फ इतना जानती थी कि कभी एक देवी उसे खिलाया करती थी और एक देवता उसे कंधे पर लेकर खेतों की सैर कराया करता था। पर वह इन बातों का जिक्र कुछ इस तरह करती थी कि जैसे उसने सपना देखा हो। सपना था या सच्ची घटना, इसका उसे ज्ञान न था। जब कोई पूछता तेरे मां-बाप कहां गए ? तो वह बेचारी कोई जवाब देने के बजाय रोने लगती और यों ही उन सवालों को टालने के लिए एक तरफ हाथ उठाकर कहती—ऊपर। कभी आसमान की तरफ देखकर कहती—वहां। इस ऊपर और वहां से उसका क्या मतलब था यह किसी को मालूम न होता। शायद मुन्नी को यह खुद भी मालूम न था। बस, एक दिन लोगों ने उसे एक पेड़ के नीचे खेलते देखा और इससे ज्यादा उसकी बाबत किसी को कुछ पता न था।

लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी। जो उसे देखता, मोह जाता। उसे खाने-पीने की कुछ फिक्र न रहती थी। जो कोई बुलाकर कुछ दे देता, वही खा लेती और फिर खेलने लगती। शक्ल-सूरत से वह किसी अच्छे घर की लड़की मालूम होती थी। गरीब-से-गरीब घर में भी उसके खाने को दो कौर और सोने को एक टाट के टुकड़े की कमी न थी। वह सबकी थी, उसका कोई न था।

इस तरह कुछ दिन बीत गए। मुन्नी अब कुछ काम करने के काबिल हो गई। कोई कहता, जरा जाकर तालाब से यह कपड़े तो धो ला। मुन्नी बिना कुछ कहे-सुने कपड़े लेकर चली जाती। लेकिन रास्ते में कोई बुलाकर कहता, बेटी, कुएं से दो घड़े पानी तो खींच ला, तो वह कपड़े वहीं रखकर घड़े लेकर कुएं की तरफ चल देती। कुएं पर कोई कह देता, जरा खेत से जाकर थोड़ा साग तो ले आ, और मुन्नी घड़े वहीं रखकर साग लेने चली जाती। पानी के इंतजार में बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती। कुएं पर जाकर देखती है तो घड़े रखे हुए हैं। वह मुन्नी को गालियां देती हुई कहती, आज से इस कलमुंही को कुछ खाने को न दूंगी। कपड़े के इंतजार में बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती और गुस्से में तालाब की तरफ जाती तो रास्ते में कपड़े पड़े हुए मिलते। तब वह भी उसे गालियां देकर कहती, आज से इसको कुछ खाने को न दूंगी। इस तरह मुन्नी को कभी-कभी कुछ खाने को न मिलता और तब उसे बचपन याद आता, जब वह कुछ काम

न करती थी और लोग उसे बुलाकर खाना खिला देते थे। वह सोचती किसका काम न करूं, जिसे जवाब दूं वही नाराज हो जाएगा। मेरा अपना कौन है, मैं तो सबकी हूं। उस गरीब को यह न मालूम था कि जो सबका होता है वह किसी का नहीं होता। वह दिन कितने अच्छे थे, जब उसे खाने-पीने की और किसी की खुशी या नाखुशी की परवाह न थी। दुर्भाग्य में भी बचपन का वह समय चैन का था।

कुछ दिन और बीते, मुन्नी जवान हो गई। अब तक वह औरतों की थी, अब मर्दों की हो गई। वह सारे गांव की प्रेमिका थी पर कोई उसका प्रेमी न था। सब उससे कहते थे—मैं तुम पर मरता हूं, तुम्हारे वियोग में तारे गिनता हूं, तुम मेरे दिलोजान की मुराद हो, पर उसका सच्चा प्रेमी कौन है, इसकी उसे खबर न होती थी। कोई उससे यह न कहता था कि तू मेरे दुख-दर्द की शरीक हो जा। सब उससे अपने दिल का घर आबाद करना चाहते थे। सब उसकी निगाह पर, एक मद्धिम-सी मुस्कराहट पर कुर्बान होना चाहते थे; पर कोई उसकी बांह पकड़ने वाला, उसकी लाज रखने वाला न था। वह सबकी थी, उसकी मुहब्बत के दरवाजे सब पर खुले हुए थे; पर कोई उस पर अपना ताला न डालता था जिससे मालूम होता कि यह उसका घर है, और किसी का नहीं!

वह भोली-भाली लड़की जो एक दिन न जाने कहां से भटककर आ गई थी, अब गांव की रानी थी। जब वह अपने उन्नत वक्षों को उभारकर रूप-गर्व से गर्दन उठाए, नजाकत से लचकती हुई चलती तो मनचले नौजवान दिल थामकर रह जाते, उसके पैरों तले आंखें बिछाते। कौन था जो उसके इशारे पर अपनी जान न निसार कर देता। वह अनाथ लड़की जिसे कभी गुड़ियां खेलने को न मिलीं, अब दिलों से खेलती थी। किसी को मारती थी, किसी को जिलाती थी, किसी को ठुकराती थी, किसी को थपकियां देती थी, किसी से रूठती थी, किसी को मनाती थी। इस खेल में उसे कत्ल और खून का-सा मजा मिलता था। अब पांसा पलट गया था। पहले वह सबकी थी, कोई उसका न था; अब सब उसके थे, वह किसी की न थी। उसे जिस चीज की तलाश थी, वह कहीं न मिलती थी। किसी में वह हिम्मत न थी जो उससे कहता, आज से तू मेरी है। उस पर दिल न्यौछावर करने वाले बहुतेरे थे, सच्चा साथी एक भी न था। असल में उन सरफिरों को वह बहुत नीची निगाह से देखती थी। कोई उसकी मुहब्बत के काबिल नहीं था। ऐसे पस्त-हिम्मतों को वह खिलौनों से ज्यादा महत्त्व न देना चाहती थी, जिनका मारना और जिलाना एक मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं।

2

जिस वक्त कोई नौजवान मिठाइयों के थाल और फूलों के हार लिए उसके सामने खड़ा हो जाता तो उसका जी चाहता, मुंह नोच लूं। उसे वह चीजें कालकूट हलाहल जैसी लगतीं। उनकी जगह वह रूखी रोटियां चाहती थी, सच्चे प्रेम में डूबी हुई। गहनों और अशर्फियों के ढेर उसे बिच्छू के डंक जैसे लगते। उनके बदले वह सच्ची, दिल के भीतर से निकली हुई बातें चाहती थी जिनमें प्रेम की गंध और सच्चाई का गीत हो। उसे रहने को महल मिलते थे, पहनने को रेशम, खाने को एक-से-एक व्यंजन, पर उसे इन चीजों की आकांक्षा न थी।

उसे आकांक्षा थी, फूस के झोंपड़े, मोटे-झोटे गाढ़े और रूखे-सूखे खाने की। उसे प्राणघातक सिद्धियों से प्राणपोषक निषेध कहीं ज्यादा प्रिय थे, खुली हवा के मुकाबले में बंद पिंजरा कहीं ज्यादा चहेता !

एक दिन एक परदेसी गांव में आ निकला। बहुत ही कमजोर, दीन-हीन आदमी था। एक पेड़ के नीचे सत्तू खाकर लेटा हुआ था। एकाएक मुन्नी उधर से जा निकली। मुसाफिर को देखकर बोली—कहां जाओगे ?

मुसाफिर ने बेरुखी से जवाब दिया—जहन्नुम !

मुन्नी ने मुस्कराकर कहा—क्यों, क्या दुनिया में जगह नहीं ?

"औरों के लिए होगी, मेरी लिए नहीं।"

"दिल पर कोई चोट लगी है ?"

मुसाफिर ने जहरीली हंसी हंसकर कहा—बदनसीबों की तकदीर में और क्या है? रोना-धोना और डूब मरना, यही उनकी जिंदगी का खुलासा है। पहली दो मंजिलें तो तय कर चुका, अब तीसरी मंजिल और बाकी है, कोई दिन वह भी पूरी हो जाएगी; ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द।

यह एक चोट खाए हुए दिल के शब्द थे। जरूर उसके पहलू में दिल है। वर्ना यह दर्द कहां से आता ? मुन्नी बहुत दिनों से दिल की तलाश कर रही थी। बोली—कहीं और वफा की तला.ा क्यों नहीं करते ?

मुसाफिर ने निराशा के भाव से उत्तर दिया—मेरी तकदीर में नहीं, वर्ना मेरा क्या बना-बनाया घोंसला उजड़ जाता ? दौलत मेरे पास नहीं। रूप-रंग मेरे पास नहीं। फिर वफा की देवी मुझ पर क्यों मेहरबान होने लगी ? पहले समझता था वफा दिल के बदले मिलती है, अब मालूम हुआ और चीजों की तरह वह भी सोने-चांदी से खरीदी जा सकती है।

मुन्नी को मालूम हुआ,' मेरी नजरों ने धोखा खाया था। मुसाफिर बहुत काला नहीं, सिर्फ सांवला था। उसका नाक-नक्शा भी उसे आकर्षक जान पड़ा। बोली—नहीं, यह बात नहीं, तुम्हारा पहला खयाल ठीक था।

यह कहकर मुन्नी चली गई। उसके हृदय के भाव उसके संयम से बाहर हो रहे थे। मुसाफिर किसी खयाल में डूब गया। वह इस सुंदरी की बातों पर गौर कर रहा था, क्या सचमुच यहां वफा मिलेगी ? क्या यहां भी तकदीर धोखा न देगी ?

मुसाफिर ने रात उसी गांव में काटी। वह दूसरे दिन भी न गया। तीसरे दिन उसने एक फूस का झोंपड़ा खड़ा किया। मुन्नी ने पूछा—यह झोंपड़ा किसके लिए बनाते हो ?

मुसाफिर ने कहा—जिससे वफा की उम्मीद है।

"चले तो न जाओगे ?"

"झोंपड़ा तो रहेगा।"

"खाली घर में भूत रहते हैं।"

"अपने प्यारे का भूत भी प्यारा होता है।"

दूसरे दिन मुन्नी उस झोंपड़े में रहने लगी। लोगों को देखकर ताज्जुब होता था। मुन्नी उस झोंपड़े में नहीं रह सकती। वह उस भोले मुसाफिर को जरूर दगा देगी, यह आम

खयाल था, लेकिन मुन्नी फूली न समाती थी। वह न कभी इतनी सुंदर दिखाई पड़ी थी, न इतनी खुश। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था, जिसके पहलू में दिल था।

3

लेकिन मुसाफिर को दूसरे दिन यह चिंता हुई कि कहीं यहां भी वही अभागा दिन न देखना पड़े। रूप में वफा कहां ? उसे याद आया, पहले भी इसी तरह की बातें हुई थीं, ऐसी ही कसमें खाई गई थीं, एक-दूसरे से वादे किए गए थे। मगर उन कच्चे धागों को टूटते कितनी देर लगी ? वह धागे क्या फिर न टूट जाएंगे ? उसके क्षणिक आनंद का समय बहुत जल्द बीत गया और फिर वही निराशा उसके दिल पर छा गई। इस मरहम से भी उसके जिगर का जख्म न भरा। तीसरे रोज वह सारे दिन उदास और चिंतित बैठा रहा और चौथे रोज लापता हो गया। उसकी यादगार सिर्फ उसकी फूस की बनी झोंपड़ी रह गई।

मुन्नी दिन-भर उसकी राह देखती रही। उसे उम्मीद थी कि वह जरूर आएंगे। लेकिन महीनों गुजर गए और मुसाफिर न लौटा। कोई खत भी न आया। लेकिन मुन्नी को उम्मीद थी, वह जरूर आएंगे।

साल बीत गया। पेड़ों में नई-नई कोंपलें निकलीं, फूल खिले, फल लगे, काली घटाएं आई, बिजली चमकी, यहां तक कि जाड़ा भी बीत गया और मुसाफिर न लौटा। मगर मुन्नी को अब भी उसके आने की उम्मीद थी; वह जरा भी चिंतित न थी, भयभीत न थी। वह दिन-भर मजदूरी करती और शाम को झोंपड़े में पड़ी रहती। लेकिन वह झोंपड़ा अब एक सुरक्षित किला था, जहां सिरफिरों के निगाह के पांव भी लंगड़े हो जाते थे।

एक दिन वह सर पर लकड़ी का गट्ठा लिए चली आती थी। एक रसिया ने छेड़खानी की—मुन्नी, क्यों अपने सुकुमार शरीर के साथ यह अन्याय करती हो ? तुम्हारी एक कृपा-दृष्टि पर इस लकड़ी के बराबर सोना न्यौछावर कर सकता हूं।

मुन्नी ने बड़ी घृणा के साथ कहा—तुम्हारा सोना तुम्हें मुबारक हो, यहां अपनी मेहनत का भरोसा है।

"क्यों इतना इतराती हो, अब वह लौटकर न आएगा।"

मुन्नी ने अपने झोंपड़े की तरफ इशारा करके कहा—वह गया कहां जो लौटकर आएगा ? मेरा होकर वह फिर कहां जा सकता है ? वह तो मेरे दिल में बैठा हुआ है।

इसी तरह एक दिन एक और प्रेमीजन ने कहा—तुम्हारे लिए मेरा महल हाजिर है। इस टूटे-फूटे झोंपड़े में क्या पड़ी हो।

मुन्नी ने अभिमान से कहा—इस झोंपड़े पर एक लाख महल न्यौछावर हैं। यहां मैंने वह चीज पाई है, जो और कहीं नहीं मिली थी और न मिल सकती है। यह झोंपड़ा नहीं है, मेरे प्यारे का दिल है।

इस झोंपड़े में मुन्नी ने सत्तर साल काटे। मरने के दिन तक उसे मुसाफिर के लौटने की उम्मीद थी, उसकी आखिरी निगाहें दरवाजे की तरफ लगी हुई थीं। उसके खरीददारों में कुछ तो मर गए, कुछ जिंदा हैं, मगर जिस दिन से वह एक की हो गई, उसी दिन से उसके

चेहरे पर वह दीप्ति दिखाई पड़ी जिसकी तरफ ताकते ही वासना की आंखें अंधी हो जातीं। खुदी जब जाग जाती है तो दिल की कमजोरियां उसके पास आते डरती हैं।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। प्रकाशन तिथि अज्ञात। उर्दू कहानी-संग्रह 'ख्वाबोखयाल' (प्रथम संस्करण 1928) में प्रथम बार प्रकाशित व संकलित। 'खाके परवाना' में भी संकलित की गई। हिन्दी रूप 'खुदी' शीर्षक से ही 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

नादान दोस्त

केशव के घर में कार्निस के ऊपर एक चिड़िया ने अंडे दिए थे। केशव और उसकी बहन श्यामा दोनों बड़े ध्यान से चिड़िया को वहां आते-जाते देखा करते। सवेरे दोनों आंखें मलते कार्निस के सामने पहुंच जाते और चिड़ा या चिड़िया दोनों को वहां बैठा पाते। उनको देखने में दोनों बच्चों को न मालूम क्या मजा मिलता, दूध और जलेबी की सुध भी न रहती थी। दोनों के दिल में तरह-तरह के सवाल उठते। अंडे कितने बड़े होंगे ? किस रंग के होंगे ? कितने होंगे ? क्या खाते होंगे ? उनमें से बच्चे किस तरह निकल आएंगे ? बच्चों के पर कैसे निकलेंगे ? घोंसला कैसा है ? लेकिन इन बातों का जबाव देने वाला कोई नहीं। न अम्मां को घर के काम-धंधों से फुर्सत थी न बाबूजी को पढ़ने-लिखने से। दोनों बच्चे आपस ही में सवाल-जवाब करके अपने दिल को तसल्ली दे लिया करते थे।

श्यामा कहती—क्यों भइया, बच्चे निकलकर फुर्र से उड़ जाएंगे ?

केशव विद्वानों जैसे गर्व से कहता—नहीं री पगली, पहले पर निकलेंगे। बगैर परों के बेचारे कैसे उड़ेंगे ?

श्यामा—बच्चों को क्या खिलाएगी बेचारी ?

केशव इस पेचीदा सवाल का जवाब कुछ न दे सकता था।

इस तरह तीन-चार दिन गुजर गए। दोनों बच्चों की जिज्ञासा दिन-दिन बढ़ती जाती थी। अंडों को देखने के लिए वे अधीर हो उठते थे। उन्होंने अनुमान लगाया कि अब जरूर बच्चे निकल आए होंगे। बच्चों के चारे का सवाल अब उनके सामने आ खड़ा हुआ। चिड़िया बेचारी इतना दाना कहां पाएगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। गरीब बच्चे भूख के मारे चूं-चूं करके मर जाएंगे।

इस मुसीबत का अंदाजा करके दोनों घबरा उठे। दोनों ने फैसला किया कि कार्निस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाय। श्यामा खुश होकर बोली—तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़कर न जाना पड़ेगा न ?

केशव—नहीं, तब क्यों जाएंगी ?

श्यामा—क्यों भइया, बच्चों को धूप न लगती होगी ?

केशव का ध्यान इस तकलीफ की तरफ न गया था। बोला—जरूर तकलीफ हो रही होगी। बेचारे प्यास के मारे तड़पते होंगे। ऊपर छाया भी तो कोई नहीं।

आखिर यही फैसला हुआ कि घोंसले के ऊपर कपड़े की छत बना देनी चाहिए।

पानी की प्याली और थोड़े से चावल रख देने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया।

दोनों बच्चे बड़े चाव से काम करने लगे। श्यामा मां की आंख बचाकर मटके से चावल निकाल लाई। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और उसे खूब साफ करके उसमें पानी भरा।

अब चांदनी के लिए कपड़ा कहां से आए ? फिर ऊपर बगैर छड़ियों के कपड़ा ठहरेगा कैसे और छड़ियां खड़ी होंगी कैसे ?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड़बुन में रहा। आखिरकार उसने यह मुश्किल भी हल कर दी। श्यामा से बोला—जाकर कूड़ा फेंकने वाली टोकरी उठा लाओ। अम्माजी को मत दिखाना।

श्यामा—वह तो बीच से फटी हुई है। उसमें से धूप न जाएगी ?

केशव ने झुंझलकार कहा—तू टोकरी तो ला, मैं उसका सूराख बंद करने की कोई हिकमत निकालूंगा।

श्यामा दौड़कर टोकरी उठा लाई। केशव ने उसके सूराख में थोड़ा-सा कागज ठूंस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला—देख, ऐसे ही घोंसले पर उसकी आड़ कर दूंगा। तब कैसे धूप जाएगी ?

श्यामा ने दिल में सोचा, भइया कितने चालाक हैं !

2

गर्मी के दिन थे। बाबूजी दफ्तर गए हुए थे। अम्मां दोनों बच्चों को कमरे में सुलाकर खुद सो गई थीं। लेकिन बच्चों की आंखों में आज नींद कहां ? अम्मांजी को बहलाने के लिए दोनों दम रोके आंखें बंद किये मौके का इंतजार कर रहे थे। ज्योंही मालूम हुआ कि अम्मांजी अच्छी तरह से सो गई, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से दरवाजे की सिटकनी खोलकर बाहर निकल आए। अंडों की हिफाजत की तैयारियां होने लगा। केशव कमरे से एक स्टूल उठा लाया, लेकिन जब उससे काम न चला तो नहाने की चौकी लगाकर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा।

श्यामा दोनों हाथों से स्टूल पकड़े हुए थी। स्टूल-चारों टांगें बराबर न होने के कारण जिस तरफ ज्यादा दबाव पाता था, जरा-सा हिल जाता था। उस वक्त केशव को कितनी तकलीफ उठानी पड़ती थी यह उसी का दिल जानता था। दोनों हाथों से कार्निस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डांटता, अच्छी तरह पकड़, वरना उतरकर बहुत मारूंगा। मगर बेचारी श्यामा का दिल तो ऊपर कार्निस पर था। बार-बार उसका ध्यान उधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते।

केशव ने ज्यों ही कार्निस पर हाथ रखा, दोनों चिड़ियां उड़ गईं। केशव ने देखा, कार्निस पर थोड़े तिनके बिछे हुए हैं, और उन पर तीन अंडे पड़े हैं। जैसे घोंसले उसने पेड़ों पर देखे थे, वैसा कोई घोंसला नहीं है। श्यामा ने नीचे से पूछा—कै बच्चे हैं भइया ?

केशव—तीन अंडे हैं, अभी बच्चे नहीं निकले।

श्यामा—जरा हमें दिखा दो भइया, कितने बड़े हैं ?

केशव—दिखा दूंगा, पहले जरा चिथड़े ले आ, नीचे बिछा दूं। बेचारे अंडे तिनकों पर पड़े हैं।

श्यामा दौड़कर अपनी पुरानी धोती फाड़कर एक टुकड़ा लाई। केशव ने झुककर कपड़ा ले लिया, उसकी कई तह करके उसने एक गद्दी बनाई और उसे तिनकों पर बिछाकर तीनों अंडे धीरे से उस पर रख दिए।

श्यामा ने फिर कहा—हमको भी दिखा दो भइया !

केशव—दिखा दूंगा, पहले जरा वह टोकरी तो दे दो, ऊपर छाया कर दूं।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली—अब तुम उतर आओ, मैं भी तो देखूं।

केशव ने टोकरी को एक टहनी से टिकाकर कहा—जा, दाना और पानी की प्याली ले आ, मैं उतर आऊं तो तुझे दिखा दूंगा।

श्यामा प्याली और चावल भी लाई। केशव ने टोकरी के नीचे दोनों चीजें रख दीं और आहिस्ता से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ाकर कहा—अब हमको भी चढ़ा दो भइया !

केशव—तू गिर पड़ेगी।

श्यामा—न गिरूंगी भइया, तुम नीचे से पकड़े रहना।

केशव—न भइया, कहीं तू गर-गिरा पड़े तो अम्मांजी मेरी चटनी ही कर डालेंगी। कहें कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देखकर ? अब अंडे बड़े आराम से हैं। जब बच्चे निकलेंगे, तो उनको पालेंगे।

दोनों चिड़ियां बार-बार कार्निस पर आती थीं और बगैर बैठे ही उड़ जाती थीं। केशव ने सोचा, हम लोगों के डर से नहीं बैठतीं। स्टूल उठाकर कमरे में रख आया, चौकी जहां की थी, वहां रख दी।

श्यामा ने आंखों में आंसू भरकर कहा—तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं अम्मांजी से कह दूंगी।

केशव—अम्मांजी से कहेगी तो बहुत मारूंगा, कहे देता हूं।

श्यामा—तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं ?

केशव—और गिर पड़ती तो चार सर न हो जाते !

श्यामा—हो जाते, हो जाते। देख लेना मैं कह दूंगी !

इतने में कोठरी का दरवाजा खुला और मां ने धूप से आंखों को बचाते हुए कहा—तुम दोनों बाहर कब निकल आए ? मैंने कहा न था कि दोपहर को न निकलना ? किसने किवाड़ खोला ?

किवाड़ केशव ने खोला था, लेकिन श्यामा ने मां से यह बात नहीं कही। उसे डर लगा कि भइया पिट जाएंगे। केशव दिल में कांप रहा था कि कहीं श्यामा कह न दे। अंडे न दिखाए थे, इससे अब उसको श्यामा पर विश्वास न था। श्यामा सिर्फ मुहब्बत के मारे चुप थी या इस कसूर में हिस्सेदार होने की वजह से, इसका फैसला नहीं किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

मां ने दोनों को डांट-डपटकर फिर कमरे में बंद कर दिया और आप धीरे-धीरे उन्हें

पंखा झलने लगी। अभी सिर्फ दो बजे थे। बाहर तेज लू चल रही थी। अब दोनों बच्चों को नींद आ गई थी।

3

चार बजे यकायक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निस के पास आई और ऊपर की तरफ ताकने लगी। टोकरी का पता न था। संयोग से उसकी नजर नीचे गई और वह उलटे पांव दौड़ती हुई कमरे में जाकर जोर से बोली—भइया, अंडे तो नीचे पड़े हैं, बच्चे उड़ गए।

केशव घबराकर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया तो क्या देखता है कि तीनों अंडे नीचे टूटे पड़े हैं और उनसे कोई चूने की-सी चीज बाहर निकल आई है। पानी की प्याली भी एक तरफ टूटी पड़ी है।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सहमी हुई आंखों से जमीन की तरफ देखने लगा।

श्यामा ने पूछा—बच्चे कहां उड़ गए भइया ?

केशव ने करुण स्वर में कहा—अंडे तो फूट गए।

"और बच्चे कहां गए ?"

केशव—तेरे सर में। देखती नहीं है अंडों में से उजला-उजला पानी निकल आया है। वही तो दो-चार दिन में बच्चे बन जाते।

मां ने सोटी हाथ में लिए हुए पूछा—तुम दोनों वहां धूप में क्या कर रहे हो ?

श्यामा ने कहा—अम्मांजी, चिड़िया के अंडे टूटे पड़े हैं।

मां न आकर टूटे हुए अण्डों को देखा और गुस्से से बोलीं—तुम लोगों ने अंडों को छुआ होगा।

अब तो श्यामा को भइया पर जरा भी तरस न आया। उसी ने शायद अंडों को इस तरह रख दिया कि वह नीचे गिर पड़े। इसकी उसे सजा मिलनी चाहिए। बोली—इन्होंने अंडों को छेड़ा था अम्मांजी।

मां ने केशव से पूछा—क्यों रे ?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

मां—तू वहां पहुंचा कैसे ?

श्यामा—चौके पर स्टूल रखकर चढ़े अम्मांजी।

केशव—तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी ?

श्यामा—तुम्हीं ने तो कहा था !

मां—तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नहीं मालूम कि छूने से चिड़ियों के अंडे गन्दे हो जाते हैं। चिड़िया फिर उन्हें नहीं सेतीं।

श्यामा ने डरते-डरते पूछा—तो क्या चिड़िया ने अंडे गिरा दिए हैं अम्मांजी ?

मां—और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाय, हाय, तीन जानें ले लीं दुष्ट ने !

केशव रोनी सूरत बनाकर बोला—मैंने तो सिर्फ अंडों को गद्दी पर रख दिया था

अम्मांजी !

मां को हंसी आ गई। मगर केशव को कई दिनों तक अपनी गलती पर अफसोस होता रहा। अंडों की हिफाजत करने के जोम में उसने उनका सत्यानाश कर डाला। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पड़ता था।

दोनों चिड़ियां वहां फिर न दिखाई दीं।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू। मूल स्त्रोत अज्ञात। उर्दू कहानी संग्रह 'खाके परवाना' (प्रथम संस्करण : 1928) में पहली बार संकलित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

शुद्धी

आख़िर जो होना था, वही हुआ। लाला प्रेमनाथ को अपना सब कुछ खो चुकने के बाद आख़िरकार मालूम हुआ कि बाज़ारे-हुस्न (वेश्यालय) में वफ़ा की जिन्स अन्क़ा (दुष्प्राप्य) है। अभी बहुत दिन नहीं गुज़रे वह अहबाब (मित्रों) में ज़ाहिदे-खुश्क (उदारताहीन संयमी) मशहूर थे। मगर एक दिन दोस्तों के इसरार (आग्रह) से एक महफिर में शरीक हुए और बी हुस्ना के हुस्ने-ज़ाहिद-फरेब (संयमी व्यक्ति को मायाजाल में फंसाने वाला सौन्दर्य) ने वहीं मज्मए आम (जनसमूह) में उनका दिल लूट लिया। रंगीन मिजाज़ों के लिए हुस्न और अदा मश्ग़ल-ए-तफरीह (दिल-बहलाव का काम) है। ज़ाहिदों (विषय-विरक्त) के लिए पैग़ामें शहादत (शहीद होने का सन्देश)। इन पांच बरसों में प्रेमनाथ के दौलत, इज्जत, दीन, ईमान सब कुछ बी हुस्ना की नज़र कर दिया। अगर वह छुपे-छुपे हुस्ना की परस्तिश (आराधना) उम्र भर किया करते तो कोई बाज़पुर्स (पूछताछ) न होती। लेकिन अलानिया खुले बन्दों डंके की चोट रंगरलियां मनाना समाज को कब बरदाश्त हो सकता था ? लोगों की आमदो-रफ्त बन्द हो गई। अइज्ज़ा (नातेदार) बेगाने हो गये। उन्हें देखकर क़तरा जाते। मां ने रो-रोकर समझाया। बीवी ने मिन्नतें कीं। दाना-पानी छोड़ा। मगर प्रेमनाथ के दिल में हुस्ना के सिवा और किसी के लिए अब जगह न थी। यहां तक आख़िर मां मजबूर होकर तीर्थ-यात्रा करने चली गई। और गोमती ने मैके की राह ली। प्रेमनाथ का रास्ता और भी साफ हो गया। अनाईयों और मीरासियों की सुहबत रहने लगी। मजहबी पाबन्दियां पहले ही शाख़ पर जा बैठी थीं। अब उनके पर निकल आए। उड़ गईं। हमनिवाला व हमप्याला हुए। बग़ैर लुत्फ सुहबत कहां ? खुलूस में इम्तियाज़ (विवेक) कहां ? उल्फत (प्रेम) में मुगायरत (बेगानापन) कैसी ? छूतछात के मिटते ही उनका हिन्दूपन भी मिट गया। जब हिन्दू न रहे, तो मुसलमान, ईसाई, जो चाहे कहो, जो चाहे समझो। मां और बीवी की किनाराकशी ने बग़ावत की। और फिर भी तहरीक (उत्तेजना) की एक दिन जामे मस्जिद में कल्मा पढ़ लिया। उन्हें इस्लाम से कोई ख़ास अक़ीदत (आस्था) न थीं, जज़्बात हिन्दू थे, ख़यालात हिन्दू थे, ताल्लुक़ात हिन्दू थे। हमदर्दियां हिन्दू थीं, लेकिन आदाब (नियम, शिष्टाचार) हिन्दू न थे। इसलिए वह मुसलमान थे। मुसलमानों के साथ उठना,

बैठना, खाना, पीना, क्या उनके मुसलमान होने की दलील क़ातेअ (काटने वाली) न थी ? पर उससे फ़ायदा ही क्या कि न इधर मैं, न उधर ? कल्मा पढ़ते ही प्रेमनाथ उल्फत हुसैन बन गये।

लेकिन इस कूचे में कौन साहबे-ज़र आया जो चन्द दिनों में दानों का मुहताज न हो गया हो ? दुनिया के बाजार में नक्द जिन्स की सूरत इख्तियार करती है। निशात (आनन्द) के बाग़ में रिंदी (लम्पटता) और फाक़मस्ती के सिवा और क्या है ? शमा बुझते ही परवाने मुन्तशिर (तितर-बितर) हो गये। नख्ले बेसमर (फलहीन वृक्ष) पर तुयूर (परिन्दे) क्यों चहकें ? बाबा आदम के ज़माने से जो होता है वही फिर हुआ। हुस्ना ने नये आशिक ढूंढ़ निकाले और मियां उल्फत हुसैन बेयारो मददगार, बेरफीक़ व ग़मगुसार (साथी हीन) एक पुराने मस्जिद में पनाहगुज़ीं (शरणागत) हुए। सारी दौलत ख़र्च करके रुसवाई, नदामत (पश्चात्ताप), जिल्लत उसरत (निर्धनता) जैसी बेबहा चीजें खरीद लाये। बीमारी धाते में मिली।

2

अब प्रेमनाथ की आंखें खुलीं। तीन हफ्ते से मस्जिद के गोशे में पड़ा कराह रहा था। पर कोई पुरसाने-हाल न था। पुराने दोस्त उसकी आशुफ्तासरी (विक्षिप्ता) से मायूस (निराश) होकर उसके नाम से रो बैठे थे। नये दोस्तों में हंसने वालों की तादाद ज्यादा थी। इस हैअतेकज़ाई (हास्यास्पद) में प्रेमनाथ को प्यारी मां और मेहरबान बीवी की याद आई। आह ! कितनी क़ाबिले-रश्क ज़िन्दगी थी ! क्या बेफ़्रिकी के दिन थे ! वह अस्मत की देवी मुझे कितना समझाती रही। पर मैं हवस के नशे मे बेखुद (अचेत) हो रहा था। काश ! एक बार फिर उस देवी से मिल जाता तो ज़िन्दगी भर उसके क़दमों से जुदा न होता। मगर अब ऐसे नसीब कहां ? अब मुझे कौन पूछेगा ? गोमती को तो मेरी सूरत से नफ़रत हो गई है।

मस्जिद में एक मौलवी साहब रहते थे। ताहिरअली नाम था। बेलौस (निस्वार्थ) आदमी थे। उन्हें प्रेमनाथ की हालत पर रहम आता था। अपने खाने में उन्हें शरीक कर लेते। एक दिन उनसे कहा—"क्यों अपने घर नहीं चले जाते ? यहां कब तक पड़े रहोगे ? आख़िर घर तो नहीं गिर गया ! मैं देखता हूं, यही तुम्हारी हालत रोज़-बेरोज़ अबतर (दुदर्शाग्रस्त) होती जा रही है।"

प्रेमनाथ ने आहे-सर्द खींचकर कहा—'क्यों जले पर नमक छिड़कते हो ? मौलवी साहब, मेरा अब घर-बार कहां ? घर तो कब का बिक चुका है। अब तो क़ब्र में ही आफ़ियत (शान्ति) नसीब होगी।"

"ताहम (फिर भी) भला एक बार अपने घर वालों को बुलाओ, देखो तो क्या जवाब आता है ? बीवी को नहीं कहता, लेकिन मां बच्चे की यह हालत देखकर उसके सारे कुसूर मुआफ कर देगी और छाती से लगा लेगी।"

प्रेमनाथ ने मायूसाना अन्दाज़ से कहा—"इतना जानता हूं मौलवी साहब, अम्मां को ख़बर मिल जाए तो वह चाहे कहीं हों, दौड़ी चली आएंगी। बीवी की जानिब (ओर) से

भी मुझे इसका कामिल (पूर्ण) यक़ीन है। वह वफ़ा की देवी है। मौलवी साहब ! ऐसी शर्म व हया तो मैंने कभी देखी नहीं। मुझे यक़ीन है कि वह ज़रूर आएगी। मगर कहूं किस मुंह से, जाऊं कैसे ! अब उन्हें यह रू-स्याह (कलुषित आत्मा) नहीं दिखा सकता। यहीं पड़े-पड़े मर जाना कुबूल है। उनके ग़म को ताजा नहीं कर सकता। आह! मैं नंगे-खानदान (कुलकलंकनी) हूं। मौलवी साहब ! मैंने बुजुर्गों का नाम डुबो दिया। मेरे पास इतना असासा (धन-दौलत) था कि कई पीढ़ियों तक फराग़त (निश्चिंतता) से गुज़रान होती। लेकिन अब कल्लांच (कंगाल) हूं। यहां तक कि हिम्मत की लकड़ी भी हाथ में नहीं है। अब तो ईश्वर से यही दुआ है कि जितनी जल्द हो सके मेरी मुसीबतों का ख़ात्मा कर दे।''

मौलवी साहब ने तुर्श (कठोर) होकर कहा—''ईश्वर क्यों, खुदा कहो साहब !''

प्रेमनाथ हक़ारत-आमेज (तिरस्कार पूर्ण) लहजे में बोले—''आपके लिए खुदा और ईश्वर दो होंगे, जनाब ! मेरे लिए एक हैं। दुनिया साझे की खेती नहीं, जिसे ईश्वर, खुदा, ब्रह्म, लॉर्ड और जिह्ना ने मिलकर लगाई हो।''

मौलवी साहब नादिम (लज्जित) होकर बोले—''बात तो यही है, बिरादर। हां, एक माबूद (ईश्वर) का जो नाम हमेशा सुनते आए हैं उसकी बजाए कोई दूसरा नाम सुनते हैं तो वह ज़रा कानों को ग़ैर-मानूस (अपरिचित) मालूम होता है। खैर, कहो तो तुम्हारे ससुराल एक खत लिख दूं !''

प्रेमनाथ ने हाथ हिलाकर मना करते हुए कहा—''हरगिज़ नहीं ! मुझे यहीं मरने दीजिए। मेरे आमाल (कर्मो) की यही सजा है। मरने के बाद गोर व कफन (अंत्येष्टि क्रिया) की फिक्र कोई कर ही देगा। उस वक्त अलबत्ता एक ख़त डाल दीजिएगा कि बदनसीब प्रेमनाथ एड़ियां रगड़-रगड़कर मर गया। और अब जहन्नुम की अजीयतें (यातना) झेल रहा है। मरने में अब बहुत देर नहीं। ताहिरअली ! ज्यादा से ज्यादा दो दिन। मेरी ससुराल लखनऊ में है। मुहल्ला नौबस्ता। मेरे ससुर का नाम बाबू निहालचन्द है। मगर भाईजान, खुदा के लिए मरने से पहले ख़त न लिखिएगा। आपको खुदा की क़सम है। इस रू-स्याह की अब कफन में ही पर्दापोशी (दोष व अपराध पर पर्दा डालना) होगी।''

3

तीसरे दिन कोई पहर रात गये दो औरतें मस्जिद के सामने आकर खड़ी हुई। एक मजदूरनी थी, दूसरी गोमती। दोनों मस्जिद की तरफ ताक रही थीं। कुछ पूछने की हिम्मत न पड़ती थी। गोमती आहिस्ता से बोली—''यहां कोई है कि नहीं ? पूछ ! यही रहीमखां की मस्जिद है ?''

मजदूरनी ने कहा—''किससे पूछूं ? कोई दिखाई भी तो दे ? (मौलवी को देखकर) अरे मियां साहब ! यही रहीमखां की मस्जिद है ना ?''

ताहिरअली उन दोनों को देखते ही लपककर अन्दर आए और प्रेमनाथ से बोले—''उल्फत हुसैन, उल्फत हुसैन ! सो गये क्या ? तुम्हारे घर के लोग आ गये।''

प्रेमनाथ उठकर बैठा ही नहीं, खड़ा हो गया और इज़्तिराब (घबराहट) के आलम में

दो क़दम आगे बढ़कर फिर रुक गया और ताज्जुव से बोला—"मेरे घर के लोग ! ख्वाब देखा है क्या ?"

ताहिर—"ख्वाब नहीं है। जनाब, हक़ीक़त है। जरूर तुम्हारे घर वाले हैं। बुला लाऊं ? एक बुढ़िया ने मुझसे पूछा, यही रहीमखां की मस्जिद है। मैंने कुछ जवाब न दिया। सोचा, पहले तुम्हें खबर कर दूं।"

प्रेम ने अन्दाजे-मुलायमत (कोमलता से) से देखकर पूछा—"तुमने ख़त तो नहीं लिख दिया था ?"

ताहिरअली ने माज़िरात-आमेज़ (विवशतापूर्ण) लहज़े में कहा—"हां भई, लिख तो दिया। मुझसे तुम्हारी हालत देखकर न रहा गया।"

प्रेम—"मैंने तो तुम्हें क़सम दिला दी थी, फिर भी तुमने न माना। मुझे तुमसे इस क़मीनेपन की उम्मीद न थी। मैं इसे सरीह (खुल्लमखुल्ला) कमीनापन और दग़ा समझता हूं।"

"गालियां फिर दे लेना, भई। इस वक्त क्या कहते हो ? बुला लाऊं न ! ज़रा भले आदमी की तरह बैठ जाओ। ऐसा न हो कि उन लोगों को उल-जलूल बकने लगो।"

प्रेम—"नहीं किसी को बुलाने की जरूरत नहीं है। कह दो, यहां कोई नहीं है।"

ताहिर—"जरा सोच लो।"

प्रेम—"कौन ! अगर तुम किसी को यहां लाये तो मैं इसी कुएं में कूद पड़ूंगा। बड़े जलील आदमी हो। बनते हो बड़े पार्सा (सदाचारी), मगर छुपे हुए गुर्गे।"

बुढ़िया मजदूरनी ने मस्जिद के दरवाज़े पर आकर पूछा—"अरे मियां साहब, रहीमखां की मस्जिद यही है ? कब से खड़ी भौंक रही हूं ! कोई बोलता ही नहीं।"

ताहिर—(प्रेम से) "भई, इस वक्त मुझ पर रहम करो। अगर मैं जानता कि तुम अपने जामे से बाहर हो जाओगे तो भूलकर भी न लिखता। (बुढ़िया से) हां, यही है रहीमखां की मस्जिद। तुम कौन हो और कहां से आई हो ?"

बुढिया—"लखनऊ से आई हूं। बाबू प्रेमनाथ की ससुराल से। बहूजी आई हैं। बाबू साहब कहां हैं ?"

प्रेम—(ताहिर से) "ताहिरअली, तुमने मेरे साथ बड़ी दग़ा की। सच कहता हूं, इस वक्त मेरे हाथ में ताक़त होती तो तुम्हारी गर्दन जरूर तोड़ देता। ज़ालिम ! ज़रा तो सोचना था कि उस देवी के रू-ब-रू कैसे जाएगा ? कैसे क्या होगा ?"

ताहिर—"भाईजान, माफ करो। सख्त ग़लती हुई। हक़ तो यह है कि मुझे उनके आने की उम्मीद न थी।"

प्रेम—"मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि गोमती मेरी हालत की खबर पाकर जरूर चली आएगी। खैर, अब तो इम्तिहान ले चुके। मालूम हो गया कि हिन्दू औरत कितनी वफ़ादार होती है !"

"अब आप जाकर खुदा के लिए कह दीजिए कि प्रेमनाथ यहां नहीं हैं। और कुछ पूछें तो कह देना कि दोपहर तक यहां थे, मगर न जाने कहां चले गये। मुझसे कुछ नहीं कहा।"

ताहिरअली ने बेकसाना (दुखित) अन्दाज़ से कहा—"भाईजान, मुझ पर रहम करो और एक अफीफे (पतिव्रता के साथ दगा करने के लिए मुझे मजबूर न करो। जो तुम कहते हो, वह मेरे मुंह से नहीं निकल सकता।"

प्रेमनाथ की आंखें डबडबा आई। इस मुल्ला के दिल में कितना दर्द, कितना खुलूस (निश्छलता) कितनी हमदर्दी है ! मौलवी साहब की तरफ एहसानमन्दाना निगाहों से देखकर बोले—"जाइए, बुला लाइए ! कह दीजिए, बदनसीब प्रेमनाथ यहीं है। तय तो कर चुका कि घरवालों को सूरत न दिखाऊं। ऐसी जगह मरना चाहता था, जहां कोई आंसू बहाने वाला भी न हो। लेकिन ईश्वर को मेरी ऐसी पुरसुकून (शांतिपूर्ण) मौत भी मंजूर न थी।"

4

कितना दर्दनाक मंजर (दृश्य) था ! गोमती खड़ी थी। प्रेमनाथ उसके पैरों पर सिर झुकाये हुए था। और बावजूद गोमती की पुरज़ोर मुदाफिअत (बचाव) के सिर न उठता था। दोनों की आंखों का सैलाब जारी था। जबान दोनों की बन्द। जज्बात के तूफान में अल्फाज़ डगमगाये हुए चलते थे, पर नातिका (वाणी) तक पहुंचते-पहुंचते ग़र्क़ाब (डूब) ही जाते थे।

आख़िर गोमती ने सिसकते हुए कहा—"तुम्हारी तबीयत अब कैसी है ? मौलवी साहब ख़त न लिखते तो मुझे खबर भी न होती। हम ऐसे ग़ैर हो गये।"

प्रेमनाथ ने सिर उठाया और रिक्क़त-अंग्रेज़ (नम्रतापूर्वक) लहजे में कहा—"माफ करो, गोमती मेरी ख़ता माफ करो। अपनी नादानी का खूब मज़ा चख चुका। इरादा तो यही था कि तुम्हें ख़बर न हो और दुनिया से रख़सत हो जाऊं। मगर तक़दीर में यह ज़िल्लत और शर्मिंदगी बदी थी।"

गौमती बैठ गई और शौहर की आंखों से आंसू पोंछती हुई बोली—"ज़िल्लत और शर्मिन्दगी कैसी ? क्या तुम मुझे ग़ैर समझते हो ? मेरा ईश्वर जानता है कि मैं तुम्हें पहले जो समझती थी वही अब समझती हूं, बल्कि उससे भी ज्यादा। दौलत का क्या ग़म ? तक़दीर में होगी, फिर मिल रहेगी। मेरे लिए तुम्हारी ख़िदमत ही सबसे बड़ी दौलत है। सुहाग औरत के लिए सबसे बड़ी न्यामत है। तुमने मुझे छोड़ दिया था, लेकिन मैं तुम्हें क्योंकर छोड़ देती ? मैं तो हमेशा के लिए तुम्हारी हूं।"

प्रेमनाथ ने मुश्तबह (शंकित) अन्दाज से कहा—"पर यह कैसे होगा, गोमती ? हमारे दरमियान तो एक आहनी (लोहे) दीवार खड़ी है। दुनिया मुझे मुसलमान कहती है, और मुसलमान समझती है। हालांकि मैं सच्चे दिल से कहता हूं, मुझे इस्लाम से कभी अक़ीदत न थी। मुझे मर जाना क़बूल हैं, पर तुम्हें रुसवा (बदनाम) नहीं कर सकता।"

इस ख़याल से प्रेमनाथ के दिल पर ठेस लगी और आंखों से आंसू जारी हो गये। एक लमहे के बाद उसने जब्त करके पूछा—"एक बात पूछूं बतलाओगी? गोमती, सच कहना।"

गोमती—"क्या बात है, कहो ! मैं तुमसे झूठ नहीं बोलती।"

प्रेमनाथ ने शर्म से सिर झुका लिया। यह सवाल बेमौका था, यह बात उससे छिपी न थी। उसका जवाब गोमती के लिए कितनी रूहानी कोफ्त (आत्मिक पीड़ा) का बायस

होगा, यह भी वह जानता था। ताहम वह गोती के चेहरे की तरफ़ जवाब के लिए मुतजिर निगाहों से देखने लगा।

गोमती ने सिर झुकाये हुए, मगर दिलेराना (वीरोचित) लहजे में कहा—"बेहतर होता कि तुम मुझसे यह सवाल न करते। प्यारे ! अगर मैं कई साल ग़ायब रहने के बाद तुम्हारे पास आती तो तुम्हारे दिल में मेरी जानिब से जो कुछ ख़याल होते उनसे मेरे दिल का अन्दाज कर सकते हो। दिल तुम्हारी तरफ दौड़ता है, मगर जिस्म पीछे हटता है। मैं तुम्हारे लिए इस वक्त भी जान कुरबान कर सकती हूं, लेकिन..."

गोमती खामोश हो गई। अपने इजहारे-हाल (दशा वर्णन) के लिए उसे मुनासिब अल्फाज़ न मिले। प्रेमनाथ इस झिझक का मतलब समझकर जोश से बोला—"मैं तुम्हारा मतलब समझ रहा हूं, गोमती ! और खुश हूं कि तुमने उसे ज़ाहिर कर दिया। आपस में किसी तरह का पर्दा न चाहिए। मेरी शुद्धी तो हो सकती है। क्या तब भी तुम्हें मुझसे ऐतराज होगा ? मैं शुद्धी का हामी नहीं हूं। गोमती, हिन्दू समाज में अब भी ऐसे बेशुमार आदमी पड़े हुए हैं जिनके हाथ का पानी पीना मुझे गवारा न होगा। हमारा समाज ऐसे ही आदमियों से भरा हुआ है। लेकिन उनके साथ मिलने के लिए मैं अपनी शुद्धी करानी शर्मनाक समझता हूं। लेकिन तुम्हारी ख़ातिर मुझे यह आज़माइश भी क़बूल है।"

गोमती ने एहसानमंदाना नज़रों से देख़कर कहा—"तो कब ?"

प्रेमनाथ बोले—"जब तुम्हारा जी चाहे।"

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। प्रकाशन तिथि अज्ञात। उर्दू कहानी-संग्रह 'ख्वाबोख्याल' (प्रथम संस्करण: 1928) में संकलित। हिन्दी रूप 'शुद्धी' शीर्षक से 'सोलह अप्राप्य कहानियां' और 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

प्रायश्चित्त

दफ्तर में जरा देर से आना अफसरों की शान है। जितना ही बड़ा अधिकारी होता है, उतनी ही देर में आता है; और उतने ही सबेरे जाता भी है। चपरासी की हाजिरी चौबीसों घंटे की। वह छुट्टी पर भी नहीं जा सकता। अपना एवज देना पड़ता है। खैर, जब बरेली जिला-बोर्ड के हेड क्लर्क बाबू मदारीलाल ग्यारह बजे दफ्तर आये, तब मानो दफ्तर नींद से जाग उठा। चपरासी ने दौड़ कर पैरगाड़ी ली, अरदली ने दौड़ कर कमरे की चिक उठा दी और जमादार ने डाक की किश्त मेज पर ला कर रख दी। मदारीलाल ने पहला ही सरकारी लिफाफा खोला था कि उनका रंग फक हो गया। वे कई मिनट तक आश्चर्यान्वित हालत में खड़े रहे, मानो सारी ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयी हों। उन पर बड़े-बड़े आघात हो चुके थे; पर इतने बदहवास वे कभी न हुए थे। बात यह थी कि बोर्ड के सेक्रेटरी की जो जगह एक महीने से खाली थी, सरकार ने सुबोधचंद्र को वह जगह दी थी और सुबोधचंद्र, वह व्यक्ति था, जिसके नाम ही से मदारीलाल को घृणा थी। वह सुबोधचन्द्र, जो उनका सहपाठी था, जिसे

जक देने को उन्होंने कितनी ही चेष्टा की; पर कभी सफल न हुए थे। वही सुबोध आज उनका अफसर हो कर आ रहा था। सुबोध की इधर कई सालों से कोई खबर न थी। इतना मालूम था कि वह फौज में भरती हो गया था। मदारीलाल ने समझा था—वहीं मर गया होगा; पर आज वह मानो जी उठा और सेक्रेटरी हो कर आ रहा था। मदारीलाल को उसकी मातहती में काम करना पड़ेगा। इस अपमान से तो मर जाना कहीं अच्छा था। सुबोध को स्कूल और कालेज की सारी बातें अवश्य ही याद होंगी। मदारीलाल ने उसे कालेज से निकलवा देने के लिए कई बार मंत्र चलाये, झूठे आरोप किये, बदनाम किया। क्या सुबोध सब कुछ भूल गया होगा ? नहीं, कभी नहीं। वह आते ही पुरानी कसर निकालेगा। मदारी बाबू को अपनी प्राण-रक्षा का कोई उपाय न सूझता था।

मदारी और सुबोध के ग्रहों में ही विरोध था। दोनों एक ही दिन, एक ही शाला में भरती हुए थे, और पहले ही दिन से दिल में ईर्ष्या और द्वेष की वह चिनगारी पड़ गयी, जो आज बीस वर्ष बीतने पर भी न बुझी थी। सुबोध का अपराध यही था कि वह मदारीलाल से हर एक बात में बढ़ा हुआ था। डील-डौल, रंग-रूप, रीति-व्यवहार, विद्या-बुद्धि ये सारे मैदान उसके हाथ थे। मदारीलाल ने उसका यह अपराध कभी क्षमा नहीं किया। सुबोध बीस वर्ष तक निरंतर उनके हृदय का काँटा बना रहा। जब सुबोध डिग्री लेकर अपने घर चला गया और मदारी फेल हो कर इस दफ्तर में नौकर हो गये, तब उनका चित्त शांत हुआ। किंतु जब यह मालूम कि सुबोध बसरे जा रहा है, तब तो मदारीलाल का चेहरा खिल उठा। उनके दिल से यह पुरानी फाँस निकल गयी। पर हा हतभाग्य ! आज वह पुराना नासूर शतगुण टीस और जलन के साथ खुल गया। आज उनकी किस्मत सुबोध के हाथ में थी। ईश्वर इतना अन्यायी है ! विधि इतना कठोर !

जब जरा चित्त शांत हुआ, तब मदारी ने दफ्तर के क्लर्कों को सरकारी हुक्म सुनाते हुए कहा—अब आप लोग जरा हाथ-पाँव सँभाल कर रहिएगा। सुबोधचंद्र वे आदमी नहीं हैं, जो भूलों को क्षमा कर दें ?

एक क्लर्क ने पूछा—क्या बहुत सख्त हैं।

मदारीलाल ने मुस्करा कर कहा—वह तो आप लोगों को दो-चार दिन ही में मालूम हो जायगा। मैं अपने मुँह से किसी की क्यों शिकायत करूँ ? बस, चेतावनी दे दी कि जरा हाथ-पाँव सँभाल कर रहिएगा। आदमी योग्य है, पर बड़ा ही क्रोधी, बड़ा दम्भी। गुस्सा तो उसकी नाक पर रहता है। खुद हजारों हजम कर जाय और डकार तक न लें; पर क्या मजाल कि कोई मातहत एक कौड़ी भी हजम करने पाये। ऐसे आदमी से ईश्वर ही बचाये ! मैं तो सोच रहा हूँ कि छुट्टी ले कर घर चला जाऊँ। दोनों वक्त घर पर हाजिरी बजानी होगी। आप लोग आज से सरकार के नौकर नहीं, सेक्रेटरी साहब के नौकर हैं। कोई उनके लड़के को पढ़ायेगा, कोई बाजार से सौदा-सुलुफ लायेगा और कोई उन्हें अखबार सुनायेगा। और चपरासियों के तो शायद दफ्तर में दर्शन ही न हों।

इस प्रकार सारे दफ्तर को सुबोधचंद्र की तरफ से भड़का कर मदारीलाल ने अपना कलेजा ठंडा किया।

2

इसके एक सप्ताह बाद सुबोधचंद्र गाड़ी से उतरे, तब स्टेशन पर दफ्तर के सब कर्मचारियों को हाजिर पाया सब उनका स्वागत करने आये थे। मदारीलाल को देखते ही सुबोध लपक कर उनके गले से लिपट गये और बोले–तुम खूब मिले भाई। यहाँ कैसे आये ? ओह ! आज एक युग के बाद भेंट हुई !

मदारीलाल बोले–यहाँ जिला-बोर्ड के दफ्तर में हेड क्लर्क हूँ। आप तो कुशल से हैं?

सुबोध–अजी, मेरी न पूछो। बसरा, फ्रांस, मिस्र और न-जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा। तुम दफ्तर में हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। मेरी तो समझ ही में न आता था कि कैसे काम चलेगा। मैं तो बिलकुल कोरा हूँ; मगर जहाँ जाता हूँ, मेरा सौभाग्य ही मेरे साथ जाता है। बसरे में सभी अफसर खुश थे। फ्रांस में भी खूब चैन किये। दो साल में कोई पचीस हजार रुपये बना लाया और सब उड़ा दिया। वहाँ से आ कर कुछ दिनों कोआपरेशन दफ्तर में मटरगश्त करता रहा। यहाँ आया तब तुम मिल गये। (क्लर्कों को देख कर) ये लोग कौन हैं ?

मदारी के हृदय में बर्छियाँ-सी चल रही थीं। दुष्ट पचीस हजार रुपये बसरे से कमा लाया ! यहाँ कलम घिसते-घिसते मर गये और पाँच सौ भी न जमा कर सके। बोले–ये लोग बोर्ड के कर्मचारी हैं। सलाम करने आये हैं।

सुबोध ने उन सब लोगों से बारी-बारी से हाथ मिलाया और बोला–आप लोगों ने व्यर्थ यह कष्ट किया। बहुत आभारी हूँ। मुझे आशा है कि आप सब सज्जनों को मुझसे कोई शिकायत न होगी। मुझे अपना अफसर नहीं, अपना भाई समझिए। आप सब लोग मिल कर इस तरह काम कीजिए कि बोर्ड की नेकनामी हो और मैं भी सुर्खरू रहूँ। आपके हेड क्लर्क साहब तो मेरे पुराने मित्र और लँगोटिया यार हैं।

एक वाक्‌चतुर क्लर्क ने कहा–हम सब हुजूर के ताबेदार हैं। यथाशक्ति आपको असंतुष्ट न करेंगे, लेकिन आदमी ही हैं, अगर कोई भूल हो भी जाय, तो हुजूर उसे क्षमा करेंगे।

सुबोध ने नम्रता से कहा–यही मेरा सिद्धांत है और हमेशा से यही सिद्धांत रहा है। जहाँ रहा, मातहतों से मित्रों का-सा बर्ताव किया। हम और आप दोनों ही किसी तीसरे के गुलाम हैं। फिर रोब कैसा और अफसरी कैसी ? हाँ, हमें नेकनीयत के साथ अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

जब सुबोध से विदा हो कर कर्मचारी लोग चले, तब आपस में बातें होने लगीं–

'आदमी तो अच्छा मालूम होता है।'

'हेड क्लर्क के कहने से तो ऐसा मालूम होता था कि सबको कच्चा ही खा जायगा।'

'पहले सभी ऐसे ही बातें करते हैं।'

'ये दिखाने के दाँत हैं।'

3

सुबोध को आये एक महीना गुजर गया। बोर्ड के क्लर्क, अरदली, चपरासी सभी उसके

बर्ताव से खुश हैं। वह इतना प्रसन्नचित्त है, इतना नम्र है कि जो उससे एकबार मिलता है, सदैव के लिए उसका मित्र हो जाता है। कठोर शब्द तो उनकी जबान पर आता ही नहीं। इनकार को भी वह अप्रिय नहीं होने देता; लेकिन द्वेष की आँखों में गुण और भी भयंकर हो जाता है। सुबोध के ये सारे सद्‌गुण मदारीलाल की आँखों में खटकते रहते हैं। उसके विरुद्ध कोई न कोई गुप्त षड्यंत्र रचते ही रहते हैं। पहले कर्मचारियों को भड़काना चाहा, सफल न हुए। बोर्ड के मेम्बरों को भड़काना चाहा, मुँह की खायी। ठीकेदारों को उभारने का बीड़ा उठाया, लज्जित होना पड़ा। वे चाहते थे कि भुस में आग लगा कर दूर से तमाशा देखें। सुबोध से यों हँस कर मिलते यों चिकनी-चुपड़ी बातें करते, मानो उसके सच्चे मित्र हैं, पर घात में लगे रहते। सुबोध में सब गुण थे, पर आदमी पहचानना न जानते थे। वे मदारीलाल को अब भी अपना दोस्त समझते हैं।

एक दिन मदारीलाल सेक्रेटरी साहब के कमरे में गये तब कुरसी खाली देखी। वे किसी काम से बाहर चले गये थे। उनकी मेज पर पाँच हजार के नोट पुलिंदों में बँधे हुए रखे थे। बोर्ड के मदरसों के लिए कुछ लकड़ी के सामान बनवाये गये थे। उसी के दाम थे। ठीकेदार वसूली के लिए बुलाया गया था। आज ही सेक्रेटरी साहब ने चेक भेज कर खजाने से रुपये मँगवाये थे। मदारीलाल ने बरामदे में झाँक कर देखा, सुबोध का कहीं पता नहीं। उनकी नीयत बदल गयी। ईर्ष्या में लोभ का सम्मिश्रण हो गया। काँपते हुए हाथों से पुलिंदे उठाये; पतलून की दोनों जेबों में भर कर तुरंत कमरे से निकले और चपरासी को पुकार कर बोले—बाबू जी भीतर हैं ? चपरासी आज ठेकेदार से कुछ वसूल करने की खुशी में फूला हुआ था। सामने वाले तमोली के दूकान से आ कर बोला—जी नहीं, कचहरी में किसी से बातें कर रहे हैं। अभी-अभी तो गये हैं।

मदारीलाल ने दफ्तर में आकर एक क्लर्क से कहा—यह मिसिल ले जा कर सेक्रेटरी साहब को दिखाओ।

क्लर्क मिसिल ले कर चला गया। जरा देर में लौट कर बोला—सेक्रेटरी साहब कमरे में न थे। फाइल मेज पर रख आया हूँ।

मदारीलाल ने मुँह सिकोड़ कर कहा—कमरा छोड़ कर कहाँ चले जाया करते हैं? किसी दिन धोखा उठायेंगे।

क्लर्क ने कहा—उनके कमरे में दफ्तरवालों के सिवा और जाता ही कौन है ?

मदारीलाल ने तीव्र स्वर में कहा—तो क्या दफ्तरवाले सब के सब देवता हैं ? कब किसकी नीयत बदल जाय, कोई नहीं कह सकता। मैंने छोटी-छोटी रकमों पर अच्छों-अच्छों की नीयतें बदलते देखी हैं। इस वक्त हम सभी साह हैं; लेकिन अवसर पा कर शायद ही कोई चूके। मनुष्य की यही प्रकृति है। आप जा कर उनके कमरे के दोनों दरवाजे बंद कर दीजिए।

क्लर्क ने टाल कर कहा—चपरासी तो दरवाजे पर बैठा हुआ है।

मदारीलाल ने झुँझला कर कहा—आप से मैं जो कहता हूँ, वह कीजिए। कहने लगे, चपरासी बैठा हुआ है। चपरासी कोई ऋषि है, मुनि है ? चपरासी ही कुछ उड़ा दे, तो आप उसका क्या कर लेंगे? जमानत भी है तो तीन सौ की। यहाँ एक-एक कागज लाखों का है।

यह कह कर मदारीलाल खुद उठे और दफ्तर के द्वार दोनों तरफ से बंद कर दिये। जब चित्त शांत हुआ तब नोटों के पुलिंदे जेब से निकाल कर एक आलमारी में कागजों के नीचे छिपा कर रख दिये। फिर आ कर अपने काम में व्यस्त हो गये।

सुबोधचंद्र कोई घंटे भर में लौटे। तब उनके कमरे का द्वार बंद था। दफ्तर में आ कर मुस्कराते हुए बोले—मेरा कमरा किसने बंद कर दिया है, भाई, क्या मेरी बेदखली हो गयी ?

मदारीलाल से खड़े हो कर मृदु तिरस्कार दिखाते हुए कहा—साहब, गुस्ताखी माफ हो, आप जब कभी बाहर जायँ, चाहे एक ही मिनट के लिए क्यों न हो, तब दरवाजा बंद कर दिया करें। आपकी मेज पर रुपये-पैसे और सरकारी कागज-पत्र बिखरे पड़े रहते हैं, न-जाने किस वक्त किसकी नीयत बदल जाय। मैंने अभी सुना कि आप कहीं गये हुए हैं, तब दरवाजे बंद कर दिये।

सुबोधचंद्र द्वार खोल कर कमरे में गये और सिगार पीने लगे। मेज पर नोट रखे हुए हैं, इसकी खबर ही न थी।

सहसा ठीकेदार ने आ कर सलाम किया। सुबोध कुर्सी से उठ बैठे और बोले—तुमने बहुत देर कर दी, तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था। दस ही बजे रुपये मँगवा लिये थे। रसीद का टिकट लाये हो न ?

ठीकेदार—हुजूर रसीद लिखवा लाया हूँ।

सुबोध—तो अपने रुपये ले जाओ। तुम्हारे काम से मैं बहुत खुश नहीं हूँ। लकड़ी तुमने अच्छी नहीं लगायी और काम में सफाई भी नहीं है। अगर ऐसा काम फिर करोगे, तो ठीकेदारों के रजिस्टर से तुम्हारा नाम निकाल दिया जायगा।

यह कह कर सुबोध ने मेज पर निगाह डाली, तब नोटों के पुलिंदे न थे। सोचा, शायद किसी फाइल के नीचे दब गये हों। कुरसी के समीप के सब कागज उलट-पलट डाले; मगर नोटों का कहीं पता नहीं। ऐं नोट कहाँ गये ! अभी तो यहीं मैंने रख दिये थे। जा कहाँ सकते हैं। फिर फाइलों को उलटने-पलटने लगे। दिल में जरा-जरा धड़कन होने लगी। सारी मेज के कागज छान डाले, पुलिंदों का पता नहीं। तब वे कुरसी पर बैठ कर इस आध घंटे में होने वाली घटनाओं की मन में आलोचना करने लगे—चपरासी ने नोटों के पुलिंदे ला कर मुझे ही दिये, खूब याद है। भला, यह भी भूलने की बात है और इतनी जल्द! मैंने नोटों को लेकर यहीं मेज पर रख दिया, गिना तक नहीं। फिर वकील साहब आ गये, पुराने मुलाकाती हैं। उनसे बातें करता जरा उस पेड़ तक चला गया। उन्होंने पान मँगवाये, बस इतनी ही देर हुई। जब गया हूँ तब पुलिंदे रखे हुए थे। खूब अच्छी तरह याद है। तब ये नोट कहाँ गायब हो गये ? मैंने किसी संदूक, दराज या आलमारी में नहीं रखे। फिर गये तो कहाँ ? शायद दफ्तर में किसी ने सावधानी के लिए उठा कर रख दिये हों यही बात है। मैं व्यर्थ ही इतना घबरा गया। छिः !

तुरंत दफ्तर में आ कर मदारीलाल से बोले—आपने मेरी मेज पर से नोट तो उठा कर नहीं रख दिये ?

मदारीलाल ने भौंचक्के हो कर कहा—क्या आपकी मेज पर नोट रखे हुए थे ? मुझे

तो खबर ही नहीं। अभी पंडित सोहनलाल एक फाइल ले कर गये थे तब आपको कमरे में न देखा। जब मुझे मालूम हुआ कि आप किसी से बातें करने चले गये हैं, तब दरवाजे बंद करा दिये। क्या कुछ नोट नहीं मिल रहे हैं ?

सुबोध आँखें फैला कर बोले—अरे साहब, पूरे पाँच हजार के हैं। अभी-अभी चेक भुनाया है।

मदारीलाल ने सिर पीट कर कहा—पूरे पाँच हजार ! या भगवान् ! आपने मेज पर खूब देख लिया है ?

'अजी पंद्रह मिनट से तलाश कर रहा हूँ।'

'चपरासी से पूछ लिया कि कौन-कौन आया था ?'

'आइए, जरा आप लोग भी तलाश कीजिए। मेरे तो होश उड़े हुए हैं।'

सारा दफ्तर सेक्रेटरी साहब के कमरे की तलाशी लेने लगा। मेज, आलमारियाँ, संदूक सब देखे गये। रजिस्टरों के वर्क उलट-पलट कर देखे गये; मगर नोटों का कहीं पता नहीं। कोई उड़ा ले गया, अब इसमें कोई शुबहा न था। सुबोध ने एक लम्बी साँस ली और कुर्सी पर बैठ गये। चेहरे का रंग फक हो गया। जरा-सा मुँह निकल आया। इस समय कोई उन्हें देखता तो समझता कि महीनों से बीमार हैं।

मदारीलाल ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—गजब हो गया और क्या ! आज तक कभी ऐसा अंधेर न हुआ था। मुझे यहाँ काम करते दस साल हो गये, कभी धेले की चीज भी गायब न हुई। मैं आपको पहले ही दिन सावधान कर देना चाहता था कि रुपये-पैसे के विषय में होशियार रहिएगा; मगर शुदनी थी, खयाल न रहा। जरूर बाहर से कोई आदमी आया और नोट उड़ा कर गायब हो गया। चपरासी का यही अपराध है कि उसने किसी को कमरे में जाने ही क्यों दिया। वह लाख कसम खाये कि बाहर से कोई नहीं आया; लेकिन मैं इसे मान नहीं सकता। यहाँ से तो केवल पंडित सोहनलाल एक फाइल ले कर गये थे; मगर दरवाजे ही से झाँक कर चले आये।

सोहनलाल ने सफाई दी—मैंने तो अंदर कदम ही नहीं रखा, साहब ! अपने जवान बेटे की कसम खाता हूँ, जो अंदर कदम भी रखा हो।

मदारीलाल ने माथा सिकोड़ कर कहा—आप व्यर्थ में कसमें क्यों खाते हैं ? कोई आपसे कुछ कहता है ? (सुबोध के कान में) बैंक में कुछ रुपये हों तो निकाल कर ठीकेदार को दे दिये जायँ, वरना बड़ी बदनामी होगी। नुकसान तो हो ही गया, अब उसके साथ अपमान क्यों हो।

सुबोध ने करुण-स्वर में कहा—बैंक में मुश्किल से दो-चार सौ रुपये होंगे, भाईजान ! रुपये होते तो क्या चिंता थी। समझ लेता, जैसे पचीस हजार उड़ गये, वैसे ही तीस हजार भी उड़ गये। यहाँ तो कफन को भी कौड़ी नहीं।

उसी रात को सुबोधचंद्र ने आत्महत्या कर ली। इतने रुपयों का प्रबंध करना उनके लिए कठिन था। मृत्यु के परदे के सिवा उन्हें अपनी वेदना, अपनी विवशता को छिपाने की और कोई आड़ न थी।

4

दूसरे दिन प्रातःकाल चपरासी ने मदारीलाल के घर पहुँच कर आवाज दी। मदारी को रात-भर नींद न आयी थी। घबरा कर बाहर आये। चपरासी उन्हें देखते ही बोला—हुजूर ! बड़ा गजब हो गया, सिकट्टरी साहब ने रात को गर्दन पर छुरी फेर ली।

मदारीलाल की आँखें ऊपर चढ़ गयीं, मुँह फैल गया और सारी देह सिहर उठी, मानो उनका हाथ बिजली के तार पर पड़ गया हो।

'छुरी फेर ली ?'

'जी हाँ, आज सबेरे मालूम हुआ। पुलिसवाले जमा हैं। आपको बुलाया है।'

'लाश अभी पड़ी हुई है ?'

'जी हाँ, अभी डाक्टरी होने वाली है।'

'बहुत से लोग जमा हैं ?'

'सब बड़े-बड़े अफसर जमा हैं। हुजूर, लहास की ओर ताकते नहीं बनता। कैसा भलामानुष हीरा आदमी था ! सब लोग रो रहे हैं। छोटे-छोटे दो बच्चे है, एक सयानी लड़की है ब्याहने लायक। बहू जी को लोग कितना रोक रहे हैं; पर बार-बार दौड़ कर लहास के पास आ जाती हैं। कोई ऐसा नहीं है, जो रूमाल से आँखें न पोंछ रहा हो। अभी इतने ही दिन आये हुए, पर सबसे कितना मेल-जोल हो गया था। रुपये की तो कभी परवा ही नहीं थी। दिल दरियाव था !'

मदारीलाल के सिर में चक्कर आने लगा। द्वार की चौखट पकड़ कर अपने को सँभाल न लेते, तो शायद गिर पड़ते। पूछा—बहू जी बहुत रो रही थीं ?

'कुछ न पूछिए, हुजूर। पेड़ की पत्तियाँ झड़ी जाती हैं। आँख फूल कर गूलर हो गयी हैं।

'कितने लड़के बतलाये तुमने ?'

'हुजूर, दो लड़के हैं और एक लड़की।'

'हाँ-हाँ, लड़कों को तो देख चुका हूँ, लड़की सयानी होगी ?'

'जी हाँ, ब्याहने लायक है। रोते-रोते बेचारी की आँखें सूज गयी हैं।'

'नोटों के बारे में भी बातचीत हो रही होगी ?'

'जी हाँ, सब लोग यही कहते हैं कि दफ्तर के किसी आदमी का काम है। दारोगा जी तो सोहनलाल को गिरफ्तार करना चाहते थे; पर साइत आपसे सलाह ले कर करेंगे। सिकट्टरी साहब तो लिख गये हैं कि मेरा किसी पर शक नहीं है।'

'क्या सेक्रेटरी साहब कोई खत लिख कर छोड़ गये हैं ?'

'हाँ, मालूम होता है, छुरी चलाते बखत याद आयी कि शुबहे में दफ्तर के सब लोग पकड़ लिए जायेंगे। बस, कलक्टर साहब के नाम चिट्ठी लिख दी।'

'चिट्ठी में मेरे बारे में भी कुछ लिखा है ? तुम्हें यह क्या मालूम होगा ?'

'हुजूर, अब मैं क्या जानूँ, मुदा इतना सब लोग कहते थे कि आपकी बड़ी तारीफ लिखी है।'

मदारीलाल की साँस और तेज हो गयी। आँखों से आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदें गिर

पड़ीं। आँखें पोंछते हुए बोले—वे और मैं एक साथ के पढ़े थे, नन्दू ! आठ-दस साल साथ रहा। साथ उठते-बैठते, साथ खाते, साथ खेलते। बस, इसी तरह रहते थे, जैसे दो सगे भाई रहते हों। खत में मेरी क्या तारीफ लिखी है ? मगर तुम्हें क्या मालूम होगा ?

'आप तो चल ही रहे हैं, देख लीजिएगा।'

'कफन का इन्तजाम हो गया है ?'

'नहीं हुजूर, कहा न कि अभी लहास की डाक्टरी होगी। मुदा अब जल्दी चलिए। ऐसा न हो, कोई दूसरा आदमी बुलाने आता हो।'

'हमारे दफ्तर के सब लोग आ गये होंगे ?'

'जी हाँ; इस मुहल्लेवाले तो सभी थे।'

'पुलिस ने मेरे बारे में तो उनसे कुछ पूछ-ताछ नहीं की ?'

'जी नहीं, किसी से भी नहीं।'

मदारीलाल जब सुबोधचंद्र के घर पहुँचे, तब उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि सब लोग उनकी तरफ संदेह की आँखों से देख रहे हैं। पुलिस इंस्पेक्टर ने तुरंत उन्हें बुला कर कहा—आप भी अपना बयान लिखा दें और सबके बयान तो लिख चुका हूँ।

मदारीलाल ने ऐसी सावधानी से अपना बयान लिखाया कि पुलिस के अफसर भी दंग रह गये। उन्हें मदारीलाल पर शुबहा होता था, पर इस बयान ने उसका अंकुर भी निकाल डाला।

उसी वक्त सुबोध के दोनों बालक रोते हुए मदारीलाल के पास आये और कहा—चलिए, आप को अम्माँ बुलाती हैं। दोनों मदारीलाल से परिचित थे। मदारीलाल यहाँ तो रोज ही आते थे; पर घर में कभी नहीं गये थे। सुबोध की स्त्री उनसे पर्दा करती थी। यह बुलावा सुन कर उनका दिल धड़क उठा—कहीं इसका मुझ पर शुबहा न हो। कहीं सुबोध ने मेरे विषय में कोई संदेह न प्रकट किया हो। कुछ झिझकते और कुछ डरते हुए भीतर गये, तब विधवा का करुण-विलाप सुन कर कलेजा काँप उठा। इन्हें देखते ही उस अबला के आँसुओं का कोई दूसरा सोता खुल गया और लड़की तो दौड़ कर इनके पैरों से लिपट गयी। दोनों लड़कों ने भी घेर लिया। मदारीलाल को उन तीनों की आँखों में ऐसी अथाह वेदना, ऐसी विदारक याचना भरी हुई मालूम हुई कि वे उनकी ओर देख न सके। उनकी आत्मा उन्हें धिक्कारने लगी। जिन बेचारों को उन पर इतना विश्वास, इतना भरोसा, इतनी आत्मीयता, इतना स्नेह था, उन्हीं की गर्दन पर उन्होंने छुरी फेरी ! उन्हीं के हाथों यह भरा-पूरा परिवार धूल में मिल गया ! इन असहायों का अब क्या हाल होगा ? लड़की का विवाह करना है; कौन करेगा ? बच्चों के लालन-पालन का भार कौन उठायेगा ? मदारीलाल को इतनी आत्मग्लानि हुई कि उनके मुँह से तसल्ली का एक शब्द भी न निकला। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मेरे मुख में कालिख पुती है, मेरा कद कुछ छोटा हो गया है। उन्होंने जिस वक्त नोट उड़ाये थे, उनहें गुमान भी न था कि उसका यह फल होगा। वे केवल सुबोध को जिच करना चाहते थे। उनका सर्वनाश करने की इच्छा न थी।

शोकातुर विधवा ने सिसकते हुए कहा—भैया जी, हम लोगों को वे मझधार में छोड़ गये। अगर मुझे मालूम होता कि मन में यह बात ठान चुके हैं तो अपने पास जो कुछ था;

वह सब उनके चरणों पर रख देती। मुझसे तो वे यही कहते रहे कि कोई न कोई उपाय हो जायगा। आप ही के मार्फत वे कोई महाजन ठीक करना चाहते थे। आपके ऊपर उन्हें कितना भरोसा था कि कह नहीं सकती।

मदारीलाल को ऐसा मालूम हुआ कि कोई उनके हृदय पर नश्तर चला रहा है। उन्हें अपने कंठ में कोई चीज फँसी हुई जान पड़ती थी।

रामेश्वरी ने फिर कहा—रात सोये, तब खूब हँस रहे थे। रोज की तरह दूध पिया, बच्चों को प्यार किया, थोड़ी देर हारमोनियम बजाया और तब कुल्ला करके लेटे। कोई ऐसी बात न थी जिससे लेशमात्र भी संदेह होता। मुझे चिंतित देखकर बोले—तुम व्यर्थ घबराती हो। बाबू मदारीलाल से मेरी पुरानी दोस्ती है। आखिर वह किस दिन काम आयेगी ? मेरे साथ के खेले हुए हैं। इस नगर में उनका सबसे परिचय है। रुपयों का प्रबंध आसानी से हो जायगा। फिर न-जाने कब मन में यह बात समायी। मैं नसीबों-जली ऐसी सोयी कि रात को मिनकी तक नहीं। क्या जानती थी कि वे अपनी जान पर खेल जायँगे ?

मदारीलाल को सारा विश्व आँखों में तैरता हुआ मालूम हुआ। उन्होंने बहुत जब्त किया; मगर आँसुओं के प्रवाह को न रोक सके।

रामेश्वरी ने आँखें पोंछ कर फिर कहा—भैया जी, जो कुछ होना था, वह तो हो चुका; लेकिन आप उस दुष्ट का पता जरूर लगाइए, जिसने हमारा सर्वनाश कर दिया है। यह दफ्तर ही के किसी आदमी का काम है। वे तो देवता थे। मुझसे यही कहते रहे कि मेरा किसी पर संदेह नहीं है, पर है यह किसी दफ्तरवाले ही का काम। आप से केवल इतनी विनती करती हूँ कि उस पापी को बच कर न जाने दीजिएगा। पुलिसवाले शायद कुछ रिश्वत ले कर उसे छोड़ दें। आपको देख कर उनका यह हौसला न होगा। अब हमारे सिर पर आपके सिवा और कौन है। किससे अपना दुःख कहें? लाश की यह दुर्गति होनी भी लिखी थी।

मदारीलाल के मन में एक बार ऐसा उबाल उठा कि सब कुछ खोल दें। साफ कह दें, मैं ही वह दुष्ट, वह अधम, वह पामर हूँ। विधवा के पैरों पर गिर पड़ें और कहें, वही छुरी इस हत्यारे की गर्दन पर फेर दो। पर जबान न खुली; इसी दशा में बैठे-बैठे उनके सिर में ऐसा चक्कर आया कि वे जमीन पर गिर पड़े।

5

तीसरे पहर लाश की परीक्षा समाप्त हुई। अर्थी जलाशय की ओर चली। सारा दफ्तर, सारे हुक्काम और हजारों आदमी साथ थे। दाह-संस्कार लड़कों को करना चाहिए था, पर लड़के नाबालिग थे। इसलिए विधवा चलने को तैयार हो रही थी कि मदारीलाल ने जा कर कहा—बहू जी, यह संस्कार मुझे करने दो। तुम क्रिया पर बैठ जाओगी, तो बच्चों को कौन सँभालेगा। सुबोध मेरे भाई थे। जिंदगी में उनके साथ कुछ सलूक न कर सका, अब जिंदगी के बाद मुझे दोस्ती का कुछ हक अदा कर लेने दो। आखिर मेरा भी तो उन पर कुछ हक था। रामेश्वरी ने रो कर कहा—आपको भगवान् ने बड़ा उदार हृदय दिया है भैया जी, नहीं तो मरने पर कौन किसको पूछता है। दफ्तर के और लोग जो आधी-आधी रात तक हाथ

बाँधे खड़े रहते थे, झूठी बात पूछने न आये कि जरा ढाढस होता।

मदारीलाल ने दाह-संस्कार किया। तेरह दिन तक क्रिया पर बैठे रहे। तेरहवें दिन पिंडदान हुआ; ब्राह्मणों ने भोजन किया, भिखारियों को अन्नदान दिया गया, मित्रों की दावत हुई, और यह मदारीलाल ने अपने खर्च से किया। रामेश्वरी ने बहुत कहा कि आपने जितना किया उतना ही बहुत है। अब मैं आपको और जेरबार नहीं करना चाहती। दोस्ती का हक इससे ज्यादा और कोई क्या अदा करेगा, मगर मदारीलाल ने एक न सुनी। सारे शहर में उनके यश की धूम मच गयी, मित्र हो तो ऐसा हो।

सोलहवें दिन विधवा ने मदारीलाल से कहा—भैया जी, आपने हमारे साथ जो उपकार और अनुग्रह किये हैं उनसे हम मरते दम तक उऋण नहीं हो सकते। आपने हमारी पीठ पर हाथ न रखा होता, तो न-जाने हमारी क्या गति होती। कहीं रूख की भी छाँह तो नहीं थी। अब हमें घर जाने दीजिए। वहाँ देहात में खर्च भी कम होगा और कुछ खेती-बारी का सिलसिला भी कर लूँगी। किसी न किसी तरह विपत्ति के दिन कट ही जायँगे। इसी तरह हमारे ऊपर दया रखिएगा।

मदारीलाल ने पूछा—घर पर कितनी जायदाद है ?

रामेश्वरी—जायदाद क्या है, एक कच्चा मकान है और दस-बारह बीघे की काश्तकारी है। पक्का मकान बनवाना शुरू किया था; मगर रुपये पूरे न पड़े। अभी अधूरा पड़ा हुआ है। दस-बारह हजार खर्च हो गये और अभी छत पड़ने की नौबत नहीं आयी।

मदारीलाल—कुछ रुपये बैंक में जमा हैं, या बस खेती ही का सहारा है ?

विधवा—जमा तो एक पाई भी नहीं है, भैया जी ! उनके हाथ में रुपये रहने ही नहीं पाते थे। बस, वही खेती का सहारा है।

मदारी.—तो उन खेतों में इतनी पैदावार हो जायगी कि लगान भी अदा हो जाय और तुम लोगों की गुजर-बसर भी हो ?

रामेश्वरी—और कर ही क्या सकते हैं, भैया जी ! किसी न किसी तरह जिंदगी तो काटनी ही है। बच्चे न होते तो मैं जहर खा लेती।

मदारी.—और अभी बेटी का विवाह भी तो करना है।

विधवा—उसके विवाह की अब कोई चिंता नहीं। किसानों में ऐसे बहुत से मिल जायेंगे, जो बिना कुछ लिये-दिये विवाह कर लेंगे।

मदारीलाल ने एक क्षण सोच कर कहा—अगर मैं कुछ सलाह दूँ, तो उसे मानेंगी आप ?

रामेश्वरी—भैया जी, आपकी सलाह न मानूँगी तो किसकी सलाह मानूँगी और दूसरा है ही कौन ?

मदारी.—तो आप अपने घर जाने के बदले मेरे घर चलिए। जैसे मेरे बाल-बच्चे रहेंगे, वैसे ही आप के भी रहेंगे। आपको कष्ट न होगा। ईश्वर ने चाहा तो कन्या का विवाह भी किसी अच्छे कुल में हो जायगा।

विधवा की आँखें सजल हो गयीं। बोली—मगर भैया जी, सोचिए...

मदारीलाल ने बात काट कर कहा—मैं कुछ न सोचूँगा और न कोई उज्र सुनूँगा। क्या दो भाइयों के परिवार एक साथ नहीं रहते ? सुबोध को मैं अपना भाई समझता था और

हमेशा समझूँगा।

विधवा का कोई उज्र न सुना गया। मदारीलाल सबको अपने साथ ले गये और आज दस साल से उनका पालन कर रहे हैं। दोनों बच्चे कालेज में पढ़ते हैं और कन्या का एक प्रतिष्ठित कुल में विवाह हो गया है। मदारीलाल और उनकी स्त्री तन-मन से रामेश्वरी की सेवा करते हैं और उनके इशारों पर चलते हैं। मदारीलाल सेवा से अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती', जनवरी, 1929 में प्रकाशित। मानसरोवर भाग-5 में संकलित। उर्दू रूप 'कुफ्फारा' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

खुचड़

बाबू कुन्दनलाल कचहरी से लौटे, तो देखा कि उनकी पत्नीजी एक कुँजड़िन से कुछ साग-भाजी ले रही हैं। कुँजड़िन पालक टके सेर कहती है, वह डेढ़ पैसे दे रही हैं। इस पर कई मिनट तक वाद-विवाद होता रहा। आखिर कुँजड़िन डेढ़ ही पैसे पर राजी हो गई। अब तराजू और बाट का प्रश्न छिड़ा। दोनों पल्ले बराबर न थे। एक में पसंगा था। बाट भी पूरे न उतरते थे। पड़ोसिन के घर से सेर आया। साग तुल जाने के बाद अब घाटे का प्रश्न उठा। पत्नीजी और माँगती थीं, कुँजड़िन कहती थी, अब क्या सेर दो सेर घाटे में ही ले लोगी बहूजी। खैर, आध घंटे में वह सौदा पूरा हुआ, और कुँजड़िन फिर कभी न आने की धमकी देकर बिदा हुई। कुन्दनलाल खड़े-खड़े यह तमाशा देखते रहे। कुँजड़िन के जाने के बाद पत्नीजी लोटे का पानी लाई तो आपने कहा—आज तो तुमने जरा-सा साग लेने में पूरे आध घंटे लगा दिये। इतनी देर में तो हजार-पाँच का सौदा हो जाता। जरा-जरा से साग के लिए इतनी ठाँय-ठाँय करने से तुम्हारा सिर भी नहीं दुखता ?

रामेश्वरी ने कुछ लज्जित होकर कहा—पैसे मुफ्त में तो नहीं आते !

'यह ठीक है; लेकिन समय का भी कुछ मूल्य है। इतनी देर में तुमने बड़ी मुश्किल से एक धेले की बचत की। कुँजड़िन ने भी दिल में कहा होगा कहाँ की गँवारिन है। अब शायद भूलकर भी इधर न आये।'

'तो, फिर मुझसे तो यह नहीं हो सकता कि पैसे की जगह धेले का सौदा लेकर बैठ जाऊँ।'

'इतनी देर में तो तुमने कम-से-कम बीस पन्ने पढ़े होते। कल महरी से घंटों सिर मारा। परसों दूधवाले के साथ घंटों शास्त्रार्थ किया। जिन्दगी क्या इन्हीं बातों में खर्च करने को दी गई है ?'

कुन्दनलाल प्रायः नित्य ही पत्नी को सदुपदेश देते रहते थे। यह उनका दूसरा विवाह था। रामेश्वरी को आये अभी दो ही तीन महीने हुए थे। अब तक तो बड़ी ननदजी ऊपर के काम किया करती थीं। रामेश्वरी की उनसे न पटी। उसको मालूम होता था, यह मेरा सर्वस्व ही लुटाये देती हैं। आखिर वह चली गई। तब से रामेश्वरी ही घर की स्वामिनी

है; वह बहुत चाहती है कि पति को प्रसन्न रखे। उनके इशारों पर चलती है; एक बार जो बात सुन लेती है, गाँठ बाँध लेती है। पर रोज ही तो कोई नई बात हो जाती है, और कुन्दनलाल को उसे उपदेश देने का अवसर मिल जाता है।

2

एक दिन बिल्ली दूध पी गई। रामेश्वरी दूध गर्म करके लाई और स्वामी के सिरहाने रखकर पान बना रही थी कि बिल्ली ने दूध पर अपना ईश्वरप्रदत्त अधिकार सिद्ध कर दिया। रामेश्वरी यह अपहरण स्वीकार न कर सकी। रूल लेकर बिल्ली को इतने जोर से मारा कि वह दो-तीन लुढ़कियाँ खा गई।

कुन्दनलाल लेटे-लेटे अखबार पढ़ रहे थे। बोले—और जो मर जाती ?

रामेश्वरी ने ढिठाई के साथ कहा—तो मेरा दूध क्यों पी गई ?

'उसे मारने से दूध मिल तो नहीं गया ?'

'जब कोई नुकसान कर देता है, तो उस पर क्रोध आता ही है।'

'न आना चाहिए। पशु के साथ आदमी भी क्यों पशु हो जाय ? आदमी और पशु में इसके सिवा और क्या अन्तर है ?'

कुन्दनलाल कई मिनट तक दया, विवेक और शांति की शिक्षा देते रहे। यहाँ तक कि बेचारी रामेश्वरी मारे ग्लानि के रो पड़ी।

इसी भाँति एक दिन रामेश्वरी ने एक भिक्षुक को दुत्कार दिया, तो बाबू साहब ने फिर उपदेश देना शुरू किया। बोले—तुमसे न उठा जाता हो, तो लाओ मैं दे आऊँ। गरीब को यों न दुत्कारना चाहिए।

रामेश्वरी ने त्यौरियाँ चढ़ाते हुए कहा—दिन भर तो ताँता लगा रहता है। कोई कहाँ तक दौड़े। सारा देश भिखमंगों ही से भर गया है शायद।

कुन्दनलाल ने उपेक्षा के भाव से मुस्कराकर कहा—उसी देश में तो तुम भी बसती हो !

'इतने भिखमंगे आ कहाँ से जाते हैं ? ये सब काम क्यों नहीं करते ?'

'कोई आदमी इतना नीच नहीं होता, जो काम मिलने पर भीख माँगे। हाँ, अपंग हो, तो दूसरी बात है। अपंगों का भीख के सिवा और क्या सहारा हो सकता है ?'

'सरकार इनके लिए अनाथालय क्यों नहीं खुलवाती ?'

'जब स्वराज्य हो जायगा, तब शायद खुल जायँ; अभी तो कोई आशा नहीं है मगर स्वराज्य भी धर्म ही से आयेगा।'

'लाखों साधु-संन्यासी, पंडे-पुजारी मुफ्त का माल उड़ाते हैं, क्या इतना धर्म काफी नहीं है ? अगर इस धर्म में से स्वराज्य मिलता, तो कब का मिल चुका होता।'

'इसी धर्म का प्रसाद है कि हिन्दू-जाति अभी तक जीवित है, नहीं कब की रसातल पहुँच चुकी होती। रोम, यूनान, ईरान, सीरिया किसी का अब निशान भी नहीं है। यह हिन्दू-जाति है, जो अभी तक समय के क्रूर आघातों का सामना करती चली जाती है।'

'आप समझते होंगे; हिन्दू-जाति जीवित है। मैं तो उसे उसी दिन से मरा हुआ समझती हूँ, जिस दिन से वह अधीन हो गई। जीवन स्वाधीनता का नाम है, गुलामी तो मौत है।'

कुन्दनलाल ने युवती को चकित नेत्रों से देखा, ऐसे विद्रोही विचार उसमें कहाँ से आ गये ? देखने में तो वह बिलकुल भोली थी। समझे, कहीं सुन-सुना लिया होगा। कठोर होकर बोले—क्या व्यर्थ का विवाद करती हो। लजाती तो नहीं, ऊपर से और बक-बक करती हो।

रामेश्वरी यह फटकार पाकर चुप हो गई। एक क्षण वहाँ खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे कमरे से चली गई।

3

एक दिन कुन्दनलाल ने कई मित्रों की दावत की। रामेश्वरी सबेरे से रसोई में घुसी तो शाम तक सिर न उठा सकी। उसे यह बेगार बुरी मालूम हो रही थी। अगर दोस्तों की दावत करनी थी तो खाना बनवाने का कोई प्रबन्ध क्यों नहीं किया ? सारा बोझ उसी के सिर क्यों डाल दिया ! उससे एक बार पूछ तो लिया होता कि दावत करूँ या न करूँ। होता तब भी यही; जो अब हो रहा था। वह दावत के प्रस्ताव का बड़ी खुशी से अनुमोदन करती, तब वह समझती, दावत मैं कर रही हूँ। अब वह समझ रही थी, मुझसे बेगार ली जा रही है। खैर, भोजन तैयार हुआ, लोगों ने भोजन किया और चले गये; मगर मुंशीजी मुँह फुलाये बैठे हुए थे। रामेश्वरी ने कहा—तुम क्यों नहीं खा लेते, क्या अभी सबेरा है ?

बाबू साहब ने आँखें फाड़कर कहा—क्या खा लूँ, यह खाना है, या बैलों की सानी !

रामेश्वरी के सिर से पाँव तक आग लग गई। सारा दिन चूल्हे के सामने जली; उसका यह पुरस्कार ! बोली—मुझसे जैसा हो सका बनाया। जो बात अपने बस की नहीं है, उसके लिए क्या करती ?

'पूड़ियाँ सब सेवर हैं !'

'होंगी।'

'कचौड़ी में इतना नमक था किसी ने छुआ तक नहीं।'

'होगा।'

'हलुआ अच्छी तरह भुना नहीं—कचाइयाँ आ रही थीं।'

'आती होंगी।'

'शोरबा इतना पतला था, जैसे चाय।'

'होगा।'

'स्त्री का पहला धर्म यह है कि वह रसोई के काम में चतुर हो।'

फिर उपदेशों का तार बँधा; यहाँ तक कि रामेश्वरी ऊब कर चली गई !

4

पाँच-छः महीने गुजर गये। एक दिन कुन्दनलाल के एक दूर के संबंधी उनसे मिलने आये। रामेश्वरी को ज्यों ही उनकी खबर मिली, जलपान के लिए मिठाई भेजी; और महरी से कहला भेजा—आज यहीं भोजन कीजिएगा। वह महाशय फूले न समाये। बोरिया-बँधना लेकर पहुँच गये और डेरा डाल दिया। एक हफ्ता गुजर गया; आप टलने का नाम भी नहीं

लेते। आवभगत में कोई कमी होती, तो शायद उन्हें कुछ चिन्ता होती; पर रामेश्वरी उनके सेवा-सत्कार में जी-जान से लगी हुई थी। फिर वह भला क्यों हटने लगे।

एक दिन कुन्दनलाल ने कहा—तुमने यह बुरा रोग पाला।

रामेश्वरी ने चौंककर पूछा—कैसा रोग ?

'इन्हें टहला क्यों नहीं देतीं ?'

'मेरा क्या बिगाड़ रहे हैं ?'

'कम-से-कम एक रुपये की रोज चपत दे रहे हैं। और अगर यही खातिरदारी रही, तो शायद जीते-जी टलेंगे भी नहीं।'

'मुझसे तो यह नहीं हो सकता कि कोई दो-चार दिन के लिए आ जाय, तो उसके सिर हो जाऊँ। जब तक उनकी इच्छा हो रहें।'

'ऐसे मुफ्तखोरों का सत्कार करना पाप है। अगर तुमने इतना सिर न चढ़ाया होता, तो अब तक लंबा हुआ होता। जब दिन में तीन बार भोजन और पचासों बार पान मिलता है, तो उसे कुत्ते ने काटा है, जो अपने घर जाय।'

'रोटी का चोर बनना तो अच्छा नहीं !'

'कुपात्र और सुपात्र का विचार तो कर लेना चाहिए। ऐसे आलसियों को खिलाना-पिलाना वास्तव में उन्हें जहर देना है, जहर से तो केवल प्राण निकल जाते हैं; यह खातिरदारी तो आत्मा का सर्वनाश कर देती है। अगर यह हजरत महीने भर भी यहाँ रह गये, तो फिर जिंदगी-भर के लिए बेकार हो जायँगे। फिर इनसे कुछ न होगा और इसका सारा दोष तुम्हारे सिर होगा।'

तर्क का ताँता बँध गया। प्रमाणों की झड़ी लग गई। रामेश्वरी खिसियाकर चली गई। कुन्दनलाल उससे कभी सन्तुष्ट भी हो सकते हैं, उनके उपदेशों की वर्षा कभी बन्द भी हो सकती है, यह प्रश्न उसके मन में बार-बार उठने लगा।

5

एक दिन देहात से भैंस का ताजा घी आया। इधर महीनों से बाजार का घी खाते-खाते नाक में दम हो रहा था। रामेश्वरी ने उसे खौलाया, उसमें लौंग डाली और कड़ाह से निकालकर एक मटकी में रख दिया। उसकी सोंधी-सोंधी सुगंध से सारा घर महक रहा था। महरी चौका-बर्तन करने आई तो उसने चाहा कि मटकी चौके से उठाकर छींके या आले पर रख दे। पर संयोग की बात, उसने मटकी उठाई, तो वह उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी। सारा घी बह गया। धमाका सुनकर रामेश्वरी दौड़ी, तो महरी खड़ी रो रही थी और मटकी चूर-चूर हो गई थी। तड़पकर बोली—मटकी कैसे टूट गई ? मैं तेरी तलब से काट लूँगी। राम-राम, सारा घी मिट्टी में मिला दिया ! तेरी आँखें फूट गई थीं क्या ? या हाथों में दम नहीं था ? इतनी दूर से मँगाया, इतनी मिहनत से गर्म किया; मगर एक बूँद भी गले के नीचे न गया। अब खड़ी बिसूर क्या रही है, जा अपना काम कर।

महरी ने आँसू पोंछकर कहा—बहूजी, अब तो चूक हो गई, चाहे तलब काटो, चाहे जान मारो। मैंने तो सोचा—उठाकर आले पर रख दूँ, तो चौका लगाऊँ। क्या जानती थी कि

भाग्य में यह लिखा है। न-जाने किसका मुँह देखकर उठी थी।

रामेश्वरी—मैं कुछ नहीं जानती, सब रुपये तेरी तलब से वसूल कर लूँगी। एक रुपया जुरमाना न किया तो कहना।

महरी—मर जाऊँगी सरकार, कहीं एक पैसे का ठिकाना नहीं है।

रामेश्वरी—मर जा या जी जा, मैं कुछ नहीं जानती।

महरी ने एक मिनट तक कुछ सोचा और बोली—अच्छा, काट लीजिएगा सरकार। आपसे सबर नहीं होता; मैं सबर कर लूँगी। यही न होगा, भूखों मर जाऊँगी। जीकर ही कौन-सा सुख भोग रही हूँ कि मरने को डरूँ। समझ लूँगी, एक महीना कोई काम नहीं किया। आदमी से बड़ा-बड़ा नुकसान हो जाता है, यह तो घी ही था।

रामेश्वरी को एक ही क्षण में महरी पर दया आ गई ! बोली—तू भूखों मर जायगी, तो मेरा काम कौन करेगा ?

महरी—काम कराना होगा, खिलाइएगा; न काम कराना होगा, भूखों मारिएगा। आज से आकर आप ही के द्वार पर सोया करूँगी।

रामेश्वरी—सच कहती हूँ, आज तूने बड़ा नुकसान कर डाला।

महरी—मैं तो आप ही पछता रही हूँ सरकार।

रामेश्वरी—जा गोबर से चौका लीप दे, मटकी के टुकड़े दूर फेंक दे। और बाजार से घी लेती आ।

महरी ने खुश होकर चौका गोबर से लीपा और मटकी के टुकड़े बटोर रही थी कि कुन्दनलाल आ गए, और हाँड़ी टूटी देखकर बोले—यह हाँड़ी कैसे टूट गई ?

रामेश्वरी ने कहा—महरी उठाकर ऊपर रख रही थी, उसके हाथ से छूट पड़ी।

कुन्दनलाल ने चिल्लाकर कहा—तो सब घी बह गया ?

'और क्या कुछ बच भी रहा !'

'तुमने महरी से कुछ कहा नहीं ?'

'क्या कहती ? उसने जान-बूझकर तो गिरा नहीं दिया ?'

'यह नुकसान कौन उठायेगा ?'

'हम उठायेंगे, और कौन उठायेगा। अगर मेरे ही हाथ से छूट पड़ती तो क्या हाथ काट लेती।'

कुन्दनलाल ने ओठ चबाकर कहा—तुम्हारी कोई बात मेरी समझ में नहीं आती। जिसने नुकसान किया है, उससे वसूल होना चाहिए। यही ईश्वरीय निगम है। आँख की जगह आँख, प्राण के बदले प्राण यह ईसामसीह-जैसे दयालु पुरुष का कथन है। अगर दण्ड का विधान संसार से उठ जाय, तो यहाँ रहे कौन ? सारी पृथ्वी रक्त से लाल हो जाय, हत्यारे दिनदहाड़े लोगों का गला काटने लगें। दण्ड ही से समाज की मर्यादा कायम है। जिस दिन दण्ड न रहेगा, संसार न रहेगा। मनु आदि स्मृतिकार बेवकूफ नहीं थे कि दण्ड-न्याय को इतना महत्त्व दे गये। और किसी विचार से नहीं, तो मर्यादा की रक्षा के लिए दण्ड अवश्य देना चाहिए। ये रुपये महरी को देने पड़ेंगे। उसकी मजदूरी काटनी पड़ेगी। नहीं तो आज उसने घी का घड़ा लुढ़का दिया है, कल कोई और नुकसान कर देगी।

रामेश्वरी ने डरते-डरते कहा—मैंने तो उसे क्षमा कर दिया है।

कुन्दनलाल ने आँखें निकालकर कहा—लेकिन मैं नहीं क्षमा कर सकता। महरी द्वार पर खड़ी यह विवाद सुन रही थी। जब उसने देखा कि कुन्दनलाल का क्रोध बढ़ता जाता है और मेरे कारण रामेश्वरी को धुड़कियाँ सुननी पड़ रही हैं, तो वह सामने जाकर बोली—बाबूजी, अब ती कसूर हो गया। अब सब रुपये मेरी तलब से काट लीजिए। रुपये नहीं हैं, नहीं तो अभी लाकर आपके हाथ पर रख देती।

रामेश्वरी ने उसे घुड़ककर कहा—जा भाग यहाँ से, तू क्या करने आई। बड़ी रुपयेवाली बनी है !

कुन्दनलाल ने पत्नी की ओर कठोर नेत्रों से देखकर कहा—तुम क्यों उसकी वकालत कर रही हो। यह मोटी-सी बात है और इसे एक बच्चा भी समझता है कि जो नुकसान करता है; उसे उसका दण्ड भोगना पड़ता है। मैं क्यों पाँच रुपये का नुकसान उठाऊँ ? बेवजह ? क्यों नहीं इसने मटके को सँभालकर पकड़ा, क्यों इतनी जल्दबाजी की, क्यों तुम्हें बुलाकर मदद नहीं ली ? यह साफ इसकी लापरवाही है।

यह कहते हुए कुन्दनलाल बाहर चले गये।

रामेश्वरी इस अपमान से आहत हो उठी। डाँटना ही था, तो कमरे में बुलाकर एकान्त में डाँटते। महरी के सामने उसे रुई की तरह धुन डाला। उसकी समझ ही में न आता था, यह किस स्वभाव के आदमी हैं। आज एक बात कहते हैं, कल उसी को काटते हैं, जैसे कोई झक्की आदमी हो। कहाँ तो दया और उदारता के अवतार बनते थे, कहाँ आज पाँच रुपये के लिए प्राण देने लगे। बड़ा मजा आ जाय, कल महरी बैठ रहे। कभी तो इनके मुख से प्रसन्नता का एक शब्द निकला होता ! अब मुझे भी अपनी स्वभाव बदलना पड़ेगा ! यह सब मेरे सीधे होनें का फल है। ज्यों-ज्यों मैं तरह देती हूँ, आप जामे से बाहर होते हैं। इसका इलाज यही है कि एक कहें, तो दो सुनाऊँ। आखिर कब तक और कहाँ तक सहूँ। कोई हद भी है ! जब देखो डाँट रहे हैं। जिसके मिजाज का कुछ पता ही न हो, उसे कौन खुश रख सकता है। उस दिन जरा-सा बिल्ली को मार दिया, तो आप दया का उपदेश करने लगे। आज वह दया कहाँ गई। उनको ठीक करने का उपाय यही है कि समझ लूँ, कोई कुत्ता भूँक रहा है। नहीं, ऐसा क्यों करूँ। अपने मन से कोई काम ही न करूँ; जो यह कहें, वही करूँ; न जौ-भर कम, न जौ-भर ज्यादा। जब इन्हें मेरा कोई काम पसन्द नहीं आता, मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो बरबस अपनी टाँग अड़ाऊँ। बस, यही ठीक है।

वह रात भर इसी उधेड़बुन में पड़ी रही। सबेरे कुन्दनलाल नदी स्नान करने गये। लौटे, तो नौ बज गये थे। घर में जाकर देखा, तो चौका-बर्तन न हुआ था। प्राण सूख गये। पूछा—क्या महरी नहीं आयी ?

रामे.—नहीं।

कुन्दन.—तो फिर ?

रामे.—जो आपकी आज्ञा।

कुन्दन.—यह तो बड़ी मुश्किल है।

रामे.—हाँ, है तो।

कुन्दन.—पड़ोस की महरी को क्यों न बुला लिया ?

रामे.—किसके हुक्म से बुलाती; अब हुक्म हुआ है, बुलाये लेती हूँ।

कुन्दन.—अब बुलाओगी, तो खाना कब बनेगा ? नौ बज गये और इतना तो तुम्हें अपनी अक्ल से काम लेना चाहिए था कि महरी नहीं आयी तो पड़ोसवाली को बुला लें।

रामे.—अगर उस वक्त सरकार पूछते, क्यों दूसरी महरी बुलाई, तो क्या जवाब देती ? अपनी अक्ल से काम लेना छोड़ दिया। अब तुम्हारी ही अक्ल से काम लूँगी। मैं यह नहीं चाहती कि कोई मुझे आँखें दिखाये।

कुन्दन.—अच्छा, तो इस वक्त क्या होगा ?

रामे.—जो हुजूर का हुक्म हो।

कुन्दन.—तुम मुझे बनाती हो।

रामे.—मेरी इतनी मजाल कि आप को बनाऊँ ! मैं तो हुजूर की लौंडी हूँ। जो कहिए, वह करूँ।

कुन्दन.—मैं तो जाता हूँ, तुम्हारा जो जी चाहे करो।

रामे.—जाइए, मेरा जी कुछ न चाहेगा और न कुछ करूँगी।

कुन्दन.—आखिर तुम क्या खाओगी ?

रामे.—जो आप देंगे, वही खा लूँगी।

कुन्दन.—लाओ, बाजार से पूड़ियाँ ला दूँ।

रामेश्वरी रुपया निकाल लाई। कुन्दनलाल पूड़ियाँ लाये। इस वक्त का काम चला। दफ्तर गये। लौटे, तो देर हो गयी थी। आते-ही-आते पूछा—महरी आयी ?

रामे.—नहीं।

कुन्दन.—मैंने तो कहा था, पड़ोसवाली को बुला लेना।

रामे.—बुलाया था। वह पाँच रुपये माँगती है।

कुन्दन.—तो एक ही रुपये का फर्क था, क्यों नहीं रख लिया ?

रामे.—मुझे यह हुक्म न मिला था। मुझसे जवाब-तलब होता कि एक रुपया ज्यादा क्यों दे दिया, खर्च की किफायत पर उपदेश दिया जाने लगता, तो क्या करती।

कुन्दन.—तुम बिलकुल मूर्ख हो।

रामे.—बिलकुल।

कुन्दन.—तो इस वक्त भी भोजन न बनेगा ?

रामे.—मजबूरी है।

कुन्दनलाल सिर थामकर चारपाई पर बैठ गये। यह तो नयी विपत्ति गले पड़ी। पूड़ियाँ उन्हें रुचती न थीं। जी में बहुत झुँझलाये। रामेश्वरी को दो-चार उल्टी-सीधी सुनायीं, लेकिन उसने मानो सुना ही नहीं। कुछ बस न चला, तो महरी की तलाश में निकले। जिसके यहाँ गये, मालूम हुआ, महरी काम करने चली गयी। आखिर एक कहार मिला। उसे बुला लाये। कहार ने दो आने लिये और बर्तन धोकर चलता बना।

रामेश्वरी ने कहा—भोजन क्या बनेगा ?

कुन्दन.—रोटी-तरकारी बना लो, या इसमें कुछ आपत्ति है ?

रामे.—तरकारी घर में नहीं है।

कुन्दन.—दिन भर बैठी रहीं, तरकारी भी न लेती बनी ? अब इतनी रात गये तरकारी

कहाँ मिलेगी ?

रामे.—मुझे तरकारी ले रखने का हुक्म न मिला था। मैं पैसा-धेला ज्यादा दे देती तो?

कुन्दनलाल ने विवशता से दाँत पीसकर कहा—आखिर तुम क्या चाहती हो ?

रामेश्वरी ने शान्त भाव से जवाब दिया—कुछ नहीं, केवल अपमान नहीं चाहती।

कुन्दन.—तुम्हारा अपमान कौन करता है ?

रामे.—आप करते हैं।

कुन्दन.—तो मैं घर के मामले में कुछ न बोलूँ ?

रामे.—आप न बोलेंगे; तो कौन बोलेगा ? मैं तो केवल हुक्म की ताबेदार हूँ।

रात रोटी-दाल पर कटी। दोनों आदमी लेटे। रामेश्वरी को तो तुरन्त नींद आ गयी। कुन्दनलाल बड़ी देर तक करवटें बदलते रहे। अगर रामेश्वरी इस तरह सहयोग न करेगी, तो एक दिन भी काम न चलेगा। आज ही बड़ी मुश्किल से भोजन मिला। इसकी समझ ही उलटी है। मैं तो समझाता हूँ, यह समझती है, डाँट रहा हूँ। मुझसे बिना बोले रहा भी तो नहीं जाता। लेकिन अगर बोलने का यह नतीजा है, तो फिर बोलना फिजूल है। नुकसान होगा, बला से; यह तो न होगा कि दफ्तर से आकर बाजार भागूँ। महरी से रुपये वसूल करने की बात इसे बुरी लगी और थी भी बेजा। रुपये तो न मिले, उलटे महरी ने काम छोड़ दिया।

रामेश्वरी को जगाकर बोले—कितना सोती हो तुम ?

रामे.—मजूरों को अच्छी नींद आती है।

कुन्दन.—चिढ़ाओ मत, महरी से रुपये न वसूल करना।

रामे.—वह तो लिये खड़ी है शायद।

कुन्दन.—उसे मालूम हो जायगा, तो काम करने आयेगी।

रामे.—अच्छी बात है कहला भेजूँगी।

कुन्दन.—आज से मैं कान पकड़ता हूँ, तुम्हारे बीच में न बोलूँगा।

रामे.—और जो मैं घर लुटा दूँ तो ?

कुन्दन.—लुटा दो, चाहे मिटा दो, मगर रूठो मत। अगर तुम किसी बात में मेरी सलाह पूछोगी, तो दे दूँगा; वरना मुँह न खोलूँगा।

रामे.—मैं अपमान नहीं सह सकती।

कुन्दन.—इस भूल को क्षमा करो।

रामे.—सच्चे दिल से कहते हो न ?

कुन्दन.—सच्चे दिल से।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', फरवरी, 1929 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित।]

न्याय

हजरत मुहम्मद को इलहाम हुए थोड़े ही दिन हुए थे। दस-पाँच पड़ोसियों तथा निकट सम्बन्धियों के सिवा और कोई उनके दीन पर ईमान न लाया था, यह तक कि उनकी

लड़की जैनब और दामाद अबुलआस भी जिनका विवाह इलहाम से पहले ही हो चुका था, अभी तक दीक्षित न हुए थे। जैनब कई बार अपने मैके गयी थी और अपने पूज्य पिता की ज्ञानमय वाणी सुन चुकी थी। वह दिल से इस्लाम पर ईमान ला चुकी थी; लेकिन अबुलआस धार्मिक मनोवृत्ति का आदमी न था। वह कुशल व्यापारी था। मक्के के खजूर, मेवे आदि जिन्सें लेकर बन्दरगाहों को चालान किया करता था। बहुत ही ईमानदार, लेन-देन का खरा, मेहनती आदमी था, जिसे इहलोक से इतनी फुरसत न थी कि परलोक की फिक्र करे।

जैनब के सामने कठिन समस्या थी। आत्मा धर्म की ओर थी, हृदय पति की ओर। न धर्मा को छोड़ सकती थी; न पति को। उसके घर के सभी आदमी मूर्तिपूजक थे। इस नये सम्प्रदाय से सारे नगर में हलचल मची हुई थी। जैनब सबसे अपनी लगन को-छिपाती, यहाँ तक कि पति से भी न कह सकती थी। वे धार्मिक सहिष्णुता के दिन न थे; बात-बात पर खून की नदी बह जाती थी, खानदान-के-खानदान मिट जाते थे। उन दिनों अरब की वीरता पारस्परिक कलहों में प्रकट होती थी ! राजनैतिक संगठन का जमाना न था। खून का बदला खून, धन-हानि का बदला खून, अपमान का बदला खून—मानव-रक्त ही से सभी झगड़ों का निबटारा होता था। ऐसी अवस्था में अपने धर्मानुराग को प्रकट करना अबुलआस के शक्तिशाली परिवार और मुहम्मद तथा इनके इने-गिने अनुयायियों में देवासुरों का संग्राम छेड़ना था। उधर प्रेम का बनधन पैरों को जकड़े हुए था। नये धर्म में दीक्षित होना अपने प्राणप्रिय पति से सदा के लिए बिछुड़ जाना था। कुरैश-जाति के ऐसे लोग मिश्रित विवाहों को परिवार के लिए कलंक समझने थे। माया और धर्म की दुविधा में पड़ी हुई जैनब कुढ़ती रहती थी।

2

धर्म का अनुराग एक दुर्बल वस्तु किन्तु जब उसका वेग होता है; तो हृदय के रोके नहीं रुकता। दोपहर का समय था, धूप इतनी तेज थी कि उसकी ओर ताकते आँखों से चिनगारियाँ निकलती थीं। हजरत मुहम्मद चिन्ता में डूबे हुए बैठे थे। निराशा चारों ओर अन्धकार के रूप मे दिखायी देती थी। खुदैजा भी सिर झुकाये पास ही बैठी हुई एक फटा कुरता सी रही थी। धन-सम्पत्ति सब कुछ इस लगन की भेंट हो चुकी थी। शत्रुओं का दुराग्रह दिनोंदिन बढ़ता जाता था। उसके मतानुयायियों को भाँति-भाँति की यन्त्रणाएँ दी जा रही थीं। स्वयं हजरत को घर से निकलना मुश्किल था। यह खौफ होता था कि कहीं लोग उन पर ईट-पत्थर न फेंकने लगें। खबर आती थी, आज फलां 'मुस्लिम' का घर लुट गया, आज फलां को लोगों ने आहत किया। हजरत ये खबरें सुन-सुनकर विकल हो जाते थे और बार-बार खुदा से धैर्य और क्षमा की याचना करते थे।

हरजत ने फरमाया—मुझे ये लोग अब यहाँ न रहने देंगे। मैं खुद सब कुछ झेल सकता हूँ, लेकिन अपने दोस्तों की तकलीफें नहीं देखी जातीं।

खुदैजा—हमारे चले जाने से इन बेचारों की और भी कोई शरण न रहेगी। अभी कम-से-कम तुम्हारे पास आकर रो तो लेते हैं। मुसीबत में रोने का सहारा ही बहुत होता है।

हजरत—तो मैं अकेले थोड़े ही जाना चाहता हूँ। मैं सब दोस्तों को साथ लेकर जाने का इरादा रखता हूँ। अभी हम लोग यहाँ बिखरे हुए हैं; कोई किसी की मदद को नहीं पहुँच सकता। हम सब एक ही जगह एक कुटुम्ब की तरह रहेंगे, तो किसी को हमारे ऊपर हमला करने का साहस न होगा। हम अपनी मिली हुई शक्ति से बालू का ढेर तो हो ही सकते हैं, जिस पर चढ़ने की किसी को हिम्मत न होगी।

सहसा जैनब घर में दाखिल हुई। उसके साथ न कोई आदमी था, न आदमजात। मालूम होता था, कहीं से भागी चली आ रही है। खुदैजा ने उसे गले लगाकर पूछा—क्या हुआ जैनब, खैरियत तो है ?

जैनब ने अपने अन्तर-संग्राम की कथा कह सुनायी और पिता से दीक्षा की याचना की।

हजरत मुहम्मद आँखों में आँसू भरकर बोले—बेटी, मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और कोई बात नहीं हो सकती; लेकिन जानता हूँ, तुम्हारा क्या हाल होगा।

जैनब—या हजरत ! खुदा की राह में सब कुछ त्याग देने का निश्चय कर लिया है! दुनिया के लिए अपनी नजात को नहीं खोना चाहती।

हजरत—जैनब, खुदा की राहों में काँटे हैं।

जैनब—अब्बाजान, लगन को काँटों की परवा नहीं होती !

हजरत—ससुराल से नाता टूट जायेगा।

जैनब—खुदा से तो नाता जुड़ जायगा।

हजरत—और अबुलआस ?

जैनब की आँखों में आँसू डबडबा आये। क्षीण स्वर में बोली—अब्बाजान, उन्होंने इतने दिनों मुझे बाँध रखा था, नहीं तो मैं कब की आपकी शरण आ चुकी होती। मैं जानती हूँ उनसे जुदा होकर मैं जिन्दा न रहूँगी और शायद उनसे भी मेरा वियोग न सहा जाय; पर मुझे विश्वास है कि वह किसी-न-किसी दिन जरूर खुदा पर ईमान लायेंगे और फिर मुझे उनकी सेवा का अवसर मिलेगा।

हजरत—बेटी, अबुलआस ईमानदार है, दयाशील है, सद्वक्ता है, किन्तु उसका अहंकार शायद अन्त तक उसे ईश्वर से विमुख रखे। वह तकदीर को नहीं मानता। रूह को नहीं मानता, स्वर्ग और नरक को नहीं मानता। कहता है, खुदा की जरूरत ही क्या है ? हम उससे क्यों डरें ? विवेक और बुद्धि की हिदायत हमारे लिए काफी है। ऐसा आदमी खुदा पर ईमान नहीं ला सकता। कुफ्र को तोड़ना आसान है; लेकिन वह जब दर्शन की सूरत पकड़ लेता है, तो उस पर किसी का जोर नहीं चलता।

जैनब ने दृढ़ होकर कहा—या हजरत, आत्मा का उपकार जिसमें हो, मुझे वही चाहिए। मैं किसी इन्सान को अपने और खुदा के बीच में न आने दूँगी।

हजरत ने कहा—खुदा तुझ पर दया करे बेटी ! तेरी बातों ने दिल खुश कर दिया।

यह कहकर उन्होंने जैनब को गले लगा लिया।

3

दूसरे दिन जैनब को यथाविधि आम मस्जिद में कलमा पढ़ाया गया।

कुरेशियों ने जब यह खबर पायी, तो जल उठे। गजब खुदा का। इस्लाम ने तो बड़े-बड़े घरों पर भी हाथ साफ करना शुरू किया ! अगर यही हाल रहा, तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि हमारे लिए उसका सामना करना कठिन हो जायगा। अबुलआस के घर पर एक बड़ी मजलिस हुई।

अबूसिफियान ने जो इस्लाम के दुश्मनों में सबसे प्रतिष्ठित मनुष्य था, अबुलआस से कहा—तुम्हें अपनी बीवी को तलाक देना पड़ेगा।

अबुलआस ने कहा—हरगिज नहीं।

अबूसिफियान—तो क्या तुम भी मुसलमान हो जाओगे।

अ. आ.—हरगिज नहीं।

अ. सि.—तो उसे मुहम्मद ही के घर रहना पड़ेगा।

अ. आ.—हरगिज नहीं। आप लोग मुझे आज्ञा दीजिए कि उसे अपने घर लाऊँ।

अ. सि.—हरगिज नहीं।

अ. आ.—क्या यह नहीं हो सकता कि वह मेरे घर में रहकर अपने इच्छानुसार खुदा की बन्दगी करे ?

अ. सि —हरगिज नहीं।

अ. आ.—मेरी कौम मेरे साथ इतनी सहानुभूति भी न करेगी ?

अ. सि.—हरगिज नहीं।

अ. आ.—तो फिर आप लोग मुझे समाज से पतित कर दीजिए। मुझे पतित होना मंजूर है। आप लोग और जो सजा चाहें दें, वह सब मंजूर है। मगर मैं अपनी बीवी को नहीं छोड़ सकता। मैं किसी की धार्मिक स्वाधीनता का अपहरण नहीं करना चाहता और वह भी अपनी बीवी की।

अ. सि.—कुरैश में क्या और लड़कियाँ नहीं हैं ?

अ. आ.—जैनब की-सी कोई नहीं है।

अ. सि.—हम ऐसी लड़कियाँ बता सकते हैं, जो चाँद को लज्जित कर दें।

अ. आ.—मैं सौन्दर्य का उपासक नहीं।

अ. सि.—ऐसी लड़कियाँ दे सकता हूँ, जो गृह-प्रबन्ध में निपुण हों, बातें ऐसी करें कि मुँह से फूल झड़ें, खाना ऐसा पकायें कि बीमार को भी रुचिकर हो, सीने-पिरोने में इतनी कुशल कि पुराने कपड़े को नया कर दें।

अ. आ—मैं इन गुणों में से किसी का भी उपासक नहीं। मैं प्रेम—और केवल प्रेम—का उपासक हूँ। और मुझे विश्वास है कि जैनब का-सा प्रेम मुझे सारी दुनिया में कहीं नहीं मिल सकता।

अ. सि.—प्रेम होता, तो तुम्हें छोड़कर यह बेवफाई करती ?

अ. आ.—मैं नहीं चाहता कि मेरे लिए वह अपने आत्म-स्वातंत्र्य का त्याग करे।

अ. सि.—इसका आशय यह है कि तुम समाज में समाज के विरोधी बनकर रहना चाहते हो। आँखों की कसम ! समाज तुम्हें अपने ऊपर यह अत्याचार न करने देगा ! मैं कहे देता हूँ इसके लिए तुम रोओगे।

4

अबूसिफियान और उनकी टोली के लोग तो धमकियाँ देकर उधर गये, इधर अबुलआस ने लकड़ी सँभाली और हजरत मुहम्मद के घर जा पहुँचे। शाम हो गयी थी। हजरत दरवाजे पर अपने मुरीदों के साथ मगरिब की नमाज पढ़ रहे थे। अबुलआस ने उन्हें सलाम किया और जब तक नमाज होती रही, गौर से देखते रहे। जमाअत का एक साथ उठना-बैठना और झुकना देखकर उनके मन में श्रद्धा की तरंगें उठने लगीं। उन्हें मालूम न होता था कि मैं क्या कर रहा हूँ; पर अज्ञात भाव से वह जमाअत के साथ बैठते, झुकते और खड़े हो जाते थे। वहाँ एक-एक परमाणु इस समय ईश्वरमय हो रहा था। एक क्षण के लिए अबुलआस भी उसी अन्तर-प्रवाह में बह गये।

जब नमाज खतम हुई और लोग सिधारे, तो अबुलआस ने हजरत केपास जाकर सलाम किया और कहा—मैं जैनब को विदा कराने आया हूँ।

हजरत ने विस्मित होकर पूछा—तुम्हें मालूम नहीं कि वह खुदा और उसके रसूल पर ईमान ला चुकी है।

अ. आ.—जी हाँ, मालूम है।

हजरत—इस्लाम ऐसे सम्बन्धों का निषेध करता है, यह भी तुम्हें मालूम है ?

अ. आ.—क्या इसका मतलब यह है कि जैनब ने मुझे तलाक दे दिया ?

हजरत—अगर यही मतलब हो, तो !

अ. आ.—तो कुछ नहीं। जैनब को अपने खुदा और रसूल को बंदगी मुबारक हो। मैं एक बार उससे मिलकर घर चला जाऊँगा और फिर कभी आपको अपनी सूरत न दिखाऊँगा; लेकिन उस दशा में अगर कुरैश-जाति आपसे लड़ने को तैयार हो जाय, तो उसका इलजाम मुझ पर न होगा।

हजरत—मैं कुरैश से इस वक्त नहीं लड़ना चाहता।

अ. अा.—तो जैनब को मेरे साथ जाने दीजिए। उस हालत में कुरैश के क्रोध का भाजन मैं होऊँगा। आप ओर आपके मुरादों पर कोई आफत नहीं होगी।

हजरत—तुम दबाव में आकर जैनब को खुदा की तरफ से फेरने का यत्न तो न करोगे ?

अ. आ.—मैं किसी के धर्म में बाध डालना सर्वथा अमानुषीय समझता हूँ।

हजरत—तुम्हें लोग जैनब को तलाक देने पर तो मजबूर न करेंगे ?

अ. आ.—मैं जैनब को तलाक देने के पहले जिन्दी को तलाक दे दूँगा।

हजरत को अबुलआस की बातों से इतमीनान हो गया। वह आस की इज्जत करते थे। आस को हरम में जैनब से मिलने का मौका दिया।

आस ने पूछा—जैनब, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलने आया हूँ; धर्म के बदलने से कहीं मन तो नहीं बदल गया ?

जैनब रोती हुई उनके पैरों पर गिर पड़ी और बोली—या मेरे आका ! धर्म बार-बार मिलता है, हृदय केवल एक बार। मैं आपकी हूँ, चाहे जहाँ रहूँ, लेकिन समाज मुझे आपकी सेवा में रहने देगा ?

आस—यदि समाज न रहने देगा, तो मैं समाज से ही निकल जाऊँगा। दुनिया में आराम से जीवन व्यतीत करने के लिए बहुत से स्थान हैं। रहा मैं, तुम जानती हो, मैं धार्मिक स्वाधीनता का पक्षपाती हूँ। मैं तुम्हारे धार्मिक विषयों में कभी हस्तक्षेप न करूँगा।

जैनब चली, तो खुदेजा ने रोते हुए उसे यमन के लालों का एक बहुमूल्य हार विदाई में दिया।

5

इस्लाम पर विधर्मियों के अत्याचार दिनोंदिन बढ़ने लगे। अवहेलना की दशा से निकलकर उसने भय के क्षेत्र में प्रवेश किया। शत्रुओं ने उसे समूल नाश करने की आयोजना करनी शरू की। दूर-दूर के कबीलों से मदद माँगी जाने लगी। इस्लाम मे इतनी शक्ति न थी कि शस्त्र-बल से विराधियों को दबा सके। हजरत मुहम्मद ने मक्का छोड़कर कहीं और चले जाने का निश्चय किया। मक्के में मुस्लिमों के घर सारे शहर में बिखरे हुए थे। एक की मदद को दूसरे मुसलमान न पहुँच सकते थे ! हजरत मुहम्मद किसी ऐसी जगह आबाद होना चाहते थे, जहाँ सब मिले हुए रहें और शत्रुओं की संगठित शक्ति का प्रतिकार कर सकें। अंत म उन्हांने मदीने को पसन्द किया और अपने समस्त अनुयायियों को सूचना दे दी। भक्तजन उनके साथ हुए और एक दिन मुस्लिमों ने मक्के से मदीने को प्रस्थान किया। यही हिजरत थी।

मदीने पहुँचकर मुसलमानों में एक नयी शक्ति, नयी स्फूर्ति का उदय हुआ। वे निश्शंक होकर अपने धर्म का पालन करने लगे। अब पड़ोसियों से दबने और छिपने की जरूरत न थी।

आत्मविश्वास बढ़ा। इधर भी विधर्मियों को स्वागत करने की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्ष सेना इकट्ठी करने लगे। विधर्मियों ने संकल्प किया कि संसार से इस्लाम का नाम ही मिटा देंगे। इस्लाम ने भी उनके दाँत खट्टे करने का निश्चय किया।

एक दिन अबुलआस ने आकर पत्नी से कहा—जैनब, हमारे नेताओ ने इस्लाम पर जिहाद करने की घोषणा कर दी है।

जैनब ने घबड़ाकर कहा—अब तो वे लोग यहाँ से चले गये ! फिर इस जिहाद की क्या जरूरत ?

अबुलआस—मक्के से चले गये, अरब से तो नहीं चले गये ! उन लोगों की ज्यादतियाँ बढ़ती जा रही हैं। जिहाद के सिवा और कोई उपाय नहीं है ! जिहाद में मेरा शरीक होना जरूरी है।

जैनब—अगर तुम्हारा दिल तुम्हें मजबूर करता है, तो शौक से जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

आस—मेरे साथ ?

जैनब—हाँ, वहाँ आहत मुसलमानों की सेवा-सुश्रूषा करूँगी।

आस—शौक से चलो।

6

घोर संग्राम हुआ। दोनों दलवालों ने खूब दिल के अरमान निकाले। भाई-भाई से बाप बेटे से लड़ा। सिद्ध हो गया कि मजहब का बन्धन रक्त और वीर्य के बन्धन से सुदृढ़ है !

दोनों दलवाले वीर थे ! अन्तर यह था कि मुसलमानों में नया धर्मानुराग था, मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग की आशा थी। दिलों में वह अटल विश्वास था, जो नवजात संप्रदायों का लक्षण है। विधर्मियों में 'बलिदान' का यह भाव लुप्त था।

कई दिन तक लड़ाई होती रही। मुसलमानों की संख्या बहुत कम थी, पर अन्त में उनके धर्मोत्साह ने मैदान मार लिया। विधर्मियों में कितने ही मारे गये, कितने ही घायल हुए और कितने ही कैद कर लिये गये। अबुलआस भी इन्हीं कैदियों में थे।

जैनब ने ज्योंही सुना कि अबुलआस पकड़ लिये गये, उसने तुरन्त हजरत मोहम्मद की सेवा में मुक्ति-धन भेजा। यह वही बहुमूल्य हार था, जो खुदैजा ने उसे दिया था। जैनब अपने पूज्य पिता को उस धर्म-संकट में एक क्षण के लिये भी न डालना चाहती थी, जो मुक्ति-धन के अभाव की दशा में उन पर पड़ता, किन्तु अबुलआस को इच्छा होते हुए भी पक्षपात भय से न छोड़ सके।

सब कैदी हजरत के सामने पेश किये गये। कितने ही तो ईमान लाये, कितनों के घरों से मुक्ति-धन आ चुका था, वे मुक्त कर दिये गये। हजरत ने अबुलआस को देखा, सबसे अलग सिर झुकाये खड़े हैं। मुख पर लज्जा का भाव झलक रहा है।

हजरत ने कहा—अबुलआस, खुदा ने इस्लाम की हिमायत की, वरना उसे यह विजय न प्राप्त होती।

अबुलआस—अगर आपके कथनानुसार संसार में एक खुदा है, तो वह अपने एक बन्दे को दूसरे का गला काटने में मदद नहीं दे सकता। मुसलमानों की विजय उनके रणोत्साह से हुई।

एक सहाबी ने पूछा—तुम्हारा फिदिया (मुक्ति धन) कहाँ है ?

हजरत ने फरमाया—अबुलआस का हार निहायत बेशकीमती है, इनके बारे में आप क्या फैसला करते हैं ? आपको मालूम है, यह मेरे दामाद हैं ?

अबूबकर—आज तुम्हारे घर में जैनब हैं, जिन पर ऐसे सैंकड़ों हार कुर्बान किये जा सकते हैं।

अबुलआस—तो आपका मतलब यह है कि जैनब मेरी फिदिया हो ?

जैद—बेशक हमारा मतलब है।

अबुलआस—उससे तो कहीं बेहतर था कि आप मुझे कत्ल कर देते।

अबूबकर—हम रसूल के दामाद को कत्ल नहीं करेंगे, चाहे वह विधर्मी ही क्यों न हो। तुम्हारी यहाँ उतनी खातिर होगी, जितनी हम कर सकते हैं।

अबुलआस के सामने विषम समस्या थी। इधर यहाँ की मेहमानी में अपमान था, उधर जैनब के वियोग की दारुण वेदना थी। उन्होंने निश्चय किया कि यह वेदना सहूँगा, किन्तु अपमान न सहूँगा। प्रेम, आत्मा को गौरव पर बलिदान कर दूँगा। बोले—मुझे आपका फैसला मंजूर है। जैनब मेरी फिदिया होगी।

7

मदीने में रसूल की बेटी की जितनी इज्जत होनी चाहिए, उतनी होती थी। सुख था, ऐश्वर्य था, धर्म था; पर प्रेम न था। अबुलआस के वियोग में रोया करती थी।

तीन वर्ष तीन युगों की भाँति बीते। अबुलआस के दर्शन न हुए।

उधर अबुलआस पर उसकी बिरादरी का दबाव पड़ रहा था कि विवाह कर लो; पर जैनब की मधुर स्मृतियाँ ही उसके प्रणय वंचित हृदय को तसकीन देने को काफी थीं, वह उत्तरोत्तर उत्साह के साथ अपने व्यवसाय में तल्लीन हो गया। महीनों घर न आता। धनोपार्जन ही अब उसके जीवन का मुख्य आधार था ! लोगों को आश्चर्य होता था कि अब यह धन के पीछे क्यों प्राण दे रहा है। निराशा और चिन्ता बहुधा शराब के नशे से शांत होती है; प्रेम उन्माद से। अबुलआस को धनोन्माद हो गया था। धन के आवरण में ढका हुआ यह प्रेम-नैराश्य था; माया के परदे में छिपा हुआ प्रेम-वैराग्य।

एक बार वह मक्के से माल लादकर ईराक की तरफ चला। काफिले में और भी कितने ही सौदागर थे। रक्षकों का एक दल भी साथ था। मुसलमानों के कई काफिले विधर्मियों के हाथों लुट चुके थे। उन्हें ज्योंही इस काफिले की खबर मिली, जैदने कुछ चुने हुए आदमियों के साथ उन पर धावा कर दिया। काफिले के रक्षक लड़े और मारे गये। काफिले वाले भाग निकले। अतुल धन मुसलमानों के हाथ लगा। अबुलआस फिर कैद हो गये।

दूसरे दिन हजरत मुहम्मद के सामने अबुलआस की पेशी हुई। हजरत ने एक बार उसकी तरफ करुण-दृष्टि डाली और सिर झुका लिया। साहिबियों ने कहा—या हजरत, अबुलआस के बारे में आप क्या फैसला करते हैं ?

मुहम्मह—इसके बारे में फैसला करना तुम्हारा काम है। यह मेरा दामाद है। सम्भव है, मैं पक्षपात का दोषी हो जाऊँ।

यह कहकर वह मकान में चले गये। जैनब रोकर पैरों पर गिर पड़ी और बोली—अब्बाजान, आपने औरों को तो आजाद कर दिया। अबुलआस क्या उन सबसे गया बीता है ?

हजरत—नहीं जैनब, न्याय के पद पर बैठने वाले आदमी को पक्षपात और द्वेष से मुक्त होना चाहिए। यद्यपि यह नीति मैंने ही बनायी है। तो भी अब उसका स्वामी नहीं, दास हूँ। मुझे अबुलआस से प्रेम है। मैं न्याय को प्रेमकलंकित नहीं कर सकता।

सहाबी हजरत की इस नीति-भक्ति पर मुग्ध हो गये। अबुलआस को सब माल-असबाब के साथ मुक्त कर दिया।

अबुलआस पर हजरत की न्याय-परायणता का गहरा असर पड़ा। मक्के आकर उन्होंने अपना हिसाब-किताब साफ किया, लोगों का माल लौटाया, कर्ज अदा किया और घर-बार त्याग कर हजरत मुहम्मद की सेवा में पहुँच गये। जैनब की मुराद पूरी हुई।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। 'माधुरी', मार्च, 1929 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। इस कहानी के पाठ और 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित 'नबी का नीति निर्वाह' शीर्षक कहानी के पाठ में काफी साम्य है।]

फातिहा

सरकारी अनाथालय से निकलकर मैं सीधा फौज में भरती किया गया। मेरा शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ था। साधारण मनुष्यों की अपेक्षा मेरे हाथ पैर कहीं लम्बे और स्नायु-युक्त थे। मेरी लम्बाई पूरी छह फुट नौ इंच थी। पलटन में 'देव' के नाम से विख्यात था। जब से मैं फौज में भरती हुआ, तब से मेरी किस्मत ने भी पलटा खाना शुरू किया और मेरे हाथ से कई ऐसे काम हुए, जिनसे प्रतिष्ठा के साथ-साथ मेरी आय भी बढ़ती गई। पलटन का हर एक जवान मुझे जानता था। मेजर सरदार हिम्मतसिंह की कृपा मेरे ऊपर बहुत थी; क्योंकि मैंने एक बार उनकी प्राण-रक्षा की थी। इसके अतिरिक्त न जाने क्यों उनको देख कर मेरे हृदय में भक्ति और श्रद्धा का संचार होता। मैं यही समझता कि यह मेरे पूज्य हैं और सरदार साहब का भी व्यवहार मेरे साथ स्नेह-युक्त और मित्रता-पूर्ण था।

मुझे अपने माता-पिता का पता नहीं है, और न उनकी कोई स्मृति ही है। कभी-कभी जब मैं इस प्रश्न पर विचार करने बैठता हूँ, तो कुछ धुँधले-से दृश्य दिखाती देते हैं—बड़े-बड़े पहाड़ों के बीच में रहता हुआ एक परिवार, और एक स्त्री का मुख, जो शायद मेरी माँ का होगा। पहाड़ी के बीच में तो मेरा पालन-पोषण ही हुआ है। पेशावर से अस्सी मील दूर पूर्व एक ग्राम है, जिसका नाम 'कुलाहा' है, वहीं पर एक सरकारी अनाथालय है। इसी में मैं पाला गया। यहाँ से निकल कर सीधा फौज में चला गया। हिमालय की जलवायु से मेरा शरीर बना है, और में वैसा ही दीर्घाकृति आदि बर्बर हूँ, जैसे कि सीमाप्रांत के रहने वाले अफ्रीदी, गिलजई महसूदी आदि पहाड़ी कबीलों के लोग होते हैं यदि उनके और मेरे जीवन में कुछ अंतर है तो वह सभ्यता का । मैं थोड़ा बहुत पढ़-लिख लेता हूँ, बातचीत कर लेता हूँ, अदब कायदा जानता हूँ, । छोटे-बड़े का लिहाज कर सकता हूँ, किन्तु मेरी आकृति वैसी ही है, जैसी कि किसी भी सरहदी पुरुष की हो सकती है।

कभी-कभी मेरे मन में यह इच्छा बलवती होती कि स्वछंद होकर पहाड़ों की सैर करूँ; लेकिन जीविका का प्रश्न मेरी इच्छा को दबा देता। उस सूखे देश में खाने का कुछ भी ठिकाना नहीं था। वहाँ के लोग एक रोटी के लिए मनुष्य की हत्या कर डालते, एक कपड़े के लिए मुरदे की लाश चीड़-फाड़ कर फेंक देते और एक बंदूक के लिए सरकारी फौज पर छापा मारते हैं। इसके अतिरिक्त उन जंगली जातियों का एक-एक मनुष्य मुझे जानता था और मेरे खून का प्यासा था। यदि मैं उन्हें मिल जाता, तो जरूर मेरा नाम-निशान दुनिया से मिट जाता। न जाने कितने अफ्रीदियों और ग़िलज़इयों को मैंने मारा था, कितनों को पकड़-पकड़ कर सरकारी जेलखानों में भर दिया था और न मालूम उनके कितने गाँवों को जला कर खाक कर दिया था। मैं भी बहुत सतर्क रहता, और जहाँ तक होता, एक स्थान पर हफ्ते से अधिक कभी न रहता।

2

एक दिन मैं मेजर सरदार हिम्मतसिंह के घर की ओर जा रहा था। उस समय दो बजे थे। आजकल छुट्टी-सी थी; क्योंकि अभी हाल ही में कई गाँव भस्मीभूत कर दिये गये थे और जल्दी उनकी तरफ से कोई आशंका नहीं थी। हम लोग निश्चिंत हो कर गप्प और

हँसी-खेल में दिन गुजारते थे। बैठे-बैठे दिल घबरा गया था। सिर्फ मन वहलाने के लिए सरदार साहब के घर की ओर चला; किंतु रास्ते में एक दुर्घटना हो गयी। एक बूढ़ा अफ्रीदी, जो अब भी एक हिन्दुस्तानी जवान का सिर मरोड़ देने के लिए काफी था, एक फौजी जवान से भिड़ा हुआ था। मेरे देखते-देखते उसने अपनी कमर से एक तेज छुरा निकाला और उसकी छाती में घुसेड़ दिया। उस जवान के पास एक कारतूसी बंदूक थी, बस उसी के लिए यह सब लड़ाई थी। पलक मारते-मारते, फौजी ज़वान का काम तमाम हो गया और बूढ़ा बंदूक ले कर भागा। मैं उसके पीछे दौड़ा; लेकिन दौड़ने में वह इतना तेज था कि बात-की-बात में आँखों से ओझल हो गया। मैं भी बेतहाशा उसका पीछा कर रहा था। आखिर सरहद पर पहुँचते-पहुँचते उससे बीस हाथ की दूरी पर रह गया। उसने पीछे फिर कर देखा, मैं अकेला उसका पीछा कर रहा था। उसने बंदूक का निशाना मेरी ओर साधा। मैं फौरन ही जमीन पर लेट गया और बूढ़े की बंदूक की गोली मेरे सामने पत्थर पर लगी। उसने समझा कि मैं गोली का शिकार हो गया। वह धीरे-धीरे सतर्क पदों से मेरी ओर बढ़ा। मैं साँस खींच कर लेट गया। जब वह बिलकुल मेरे पास आ गया, शेर की तरह उछल कर मैंने उसकी गरदन पकड़कर जमीन पर पटक दिया और छुरा निकाल कर उसकी छाती में घुसेड़ दिया। अफ्रीदी की जीवन-लीला समाप्त हो गयी। इसी समय मेरी पलटन के कई लोग भी आ पहुंचे। चारों तरफ से लोग मेरी प्रशंसा करने लगे। अभी तक मैं अपने आपे में न था; लेकिन अब मेरी सुध-बुध वापस आयी। न मालूम क्यों उस बुड्ढे को देखकर मेरा जी घबराने लगा। अभी तक न मालूम कितने ही अफ्रीदियों को मारा था; लेकिन कभी भी मेरा हृदय इतना घबराया न था। मैं जमीन पर बैठ गया और उस बुड्ढे की ओर देखने लगा। पलटन के जवान भी पहुँच गये और मुझे घायल जान कर अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगे। धीरे-धीरे मैं उठा और चुपचाप शहर की ओर चला। सिपाही मेरे पीछे-पीछे उसी बुड्ढे की लाश घसीटते हुए चले। शहर के निवासियों ने मेरी जय-जयकार का तॉता बाँध दिया। मैं चुपचाप मेजर सरदार हिम्मतसिंह के घर में घुस गया।

सरदार साहब उस समय अपने खास कमरे में बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। उन्होंने मुझे देख कर पूछा—क्यों, उस अफ्रीदी को मार आये ?

मैंने बैठते हुए कहा—जी हाँ, लेकिन सरदार साहब, न जाने क्यों मैं कुछ बुजदिल हो गया हूँ।

सरदार साहब ने आश्चर्य से कहा—असदखाँ और बुजदिल ! यह दोनों एक जगह होना नामुमकिन है।

मैंने उठते हुए कहा—सरदार साहब, यहाँ तबीयत नहीं लगती, उठकर बाहर बरामदे में बैठिए। न मालूम क्यों मेरा दिल घबड़ाता है।

सरदार साहब उठ कर मेरे पास आये और स्नेह से मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—असद, तुम दौड़ते-दौड़ते थक गये हो, और कोई बात नहीं है। अच्छा चलो बरामदे में बैठें। शाम की ठंडी हवा तुम्हें ताजा कर देगी।

सरदार साहब और मैं, दोनों बरामदे में जाकर कुर्सियों पर बैठ गये। शहर के चौमुहाने पर उसी वृद्ध की लाश रखी थी और उसके चारों ओर भीड़ लगी हुई थी। बरामदे

में जब मुझे बैठे हुए देखा, तो लोग मेरी ओर इशारा करने लगे। सरदार साहब ने यह दृश्य देख कर कहा—असदखाँ, देखा, लोगों की निगाह में तुम कितने ऊँचे हो? तुम्हारी वीरता को यहाँ का बच्चा-बच्चा सराहता है। अब भी तुम कहते हो कि मैं बुजदिल हूँ।

मैंने मुस्करा कर कहा—जब से इस बुड्ढे को मारा है, तब से मेरा दिल मुझे धिक्कार रहा है।

सरदार साहब ने हँस कर कहा—क्योंकि तुमने अपने से निर्बल को मारा है।

मैंने अपनी दिलजमई करते हुए कहा—मुमकिन है, ऐसा ही हो।

इसी समय एक अफ्रीदी रमणी धीरे-धीरे आ कर सरदार साहब के मकान के सामने खड़ी हो गयी। ज्यों ही सरदार साहब ने देखा, उनका मुँह सफेद पड़ गया। उनकी भयभीत दृष्टि उसकी ओर से फिर कर मेरी ओर हो गयी। मैं भी आश्चर्य से उनके मुँह की ओर निहारने लगा। उस रमणी का सा सुगठित शरीर मरदों का भी कम होता है। खाकी रंग के मोटे कपड़े का पायजामा और नीले रंग का मोटा कुरता पहने हुए थी। बलूची औरतों की तरह सिर पर रूमाल बाँध रखा था। रंग चंपई था और यौवन की आभा फूट-फूट कर बाहर निकली पड़ती थी। इस समय उसकी आँखों में ऐसी भीषणता थी, जो किसी के दिल में भय का संचार करती। रमणी की आँखें सरदार साहब की ओर से फिर कर मेरी ओर आयीं और उसने यों घूरना शुरू किया कि मैं भी भयभीत हो गया। रमणी ने सरदार साहब की ओर देखा और फिर जमीन पर थूक दिया और फिर मेरी ओर देखती हुई धीरे-धीरे दूसरी ओर चली गयी।

रमणी को जाते देख कर सरदार साहब की जान में जान आयी। मेरे सिर पर से भी एक बोझ हट गया।

मैंने सरदार साहब से पूछा—क्यों, क्या आप जानते हैं ? सरदार साहब ने एक गहरी ठंडी साँस लेकर कहा—हाँ, बखूबी। एक समय था, जब यह मुझ पर जान देती थी और वास्तव में अपनी जान पर खेल कर मेरी रक्षा भी की थी; लेकिन अब इसको मेरी सूरत से नफरत है। इसी ने मेरी स्त्री की हत्या की है। इसे जब कभी देखता हूँ। मेरे होश-हवास काफूर हो जाते हैं और वही दृश्य मेरी आँखों के सामने नाचने लगता है।

मैंने भय-विह्वल स्वर में पूछा—सरदार साहब, उसने मेरी ओर भी तो बड़ी भयानक दृष्टि से देखा था। न मालूम क्यों मेरे भी रोएँ खड़े हो गये थे।

सरदार साहब ने सिर हिलाते हुए बड़ी गम्भीरता से कहा—असदखाँ, तुम भी होशियार रहो। शायद इस बूढ़े अफ्रीदी से इसका संपर्क है। मुमकिन है, यह उसका भाई या बाप हो। तुम्हारी ओर उसका देखना कोई मानी रखता है। बड़ी भयानक स्त्री है।

सरदार साहब की बात सुनकर मेरी नस-नस काँप उठी। मैंने बातों का सिलसिला दूसरी ओर फेरते हुए कहा—सरदार साहब, आप इसको पुलिस के हवाले क्यों नहीं कर देते ? इसको फाँसी हो जायगी।

सरदार साहब ने कहा—भाई असदखाँ, इसने मेरे प्राण बचाये थे और शायद अब भी मुझे चाहती है। इसकी कथा बहुत लम्बी है। कभी अवकाश मिला तो कहूँगा।

सरदार की बातों से मुझे भी कुतूहल हो रहा था। मैंने उनसे वह वृत्तांत सुनाने के लिए आग्रह करना शुरू किया। पहल तो उन्होंने टालना चाहा; पर जब मैंने बहुत जोर

दिया तो विवश हो कर बोले—असद, मैं तुम्हें अपना भाई समझता हूँ; इसलिए तुमसे कोई परदा न रखूँगा। लो, सुनो—

3

असदखाँ, पाँच साल पहले मैं इतना वृद्ध न था, जैसा कि अब दिखायी पड़ता हूँ। उस समय मेरी आयु चालीस वर्ष से अधिक न थी। एक भी बाल सफेद न हुआ था और उस समय मुझमें इतना बल था कि दो जवानों को मैं लड़ा देता। जर्मनों से मैंने मुठभेड़ की है और न मालूम कितनों को यमलोक का रास्ता बता दिया। जर्मन-युद्ध के बाद मुझे यहाँ सीमाप्रांत पर काली पलटन का मेजर बना कर भेजा गया। जब पहले-पहल मैं यहाँ आया, तो यहाँ कठिनाइयाँ सामने आयीं; लेकिन मैंने उसकी जरा परवाह न की और धीरे-धीरे उन सब पर विजय पायी। सबसे पहले यहाँ आकर मैंने पश्तो सीखना शुरू किया। पश्तो के बाद और जबानें सीखीं; यहाँ तक कि मैं उनको बड़ी आसानी और मुहाविरों के साथ बोलने लगा; फिर इसके बाद कई आदमियों की टोलियाँ बना कर देश का अंतर्भाग भी छान डाला। इस पड़ताल में कई बार मैं मरते-मरते बचा; किंतु सब कठिनाइयाँ झेलते हुए मैं यहाँ पर सकुशल रहने लगा। उस जमाने में मेरे हाथ मे ऐसे-ऐसे काम हो गये, जिनसे सरकार में मेरी बड़ी नामवरी और प्रतिष्ठा भी हो गयी। एक बार कर्नल हैमिलटन की मेमसाहब को मैं अकेले छुड़ा लाया था और कितने ही देशी आदमियों और औरतों के प्राण मैंने बचाये हैं। यहाँ पर आने के तीन साल बाद से मेरी कहानी आरम्भ होती है।

एक रात को मैं अपने कमरे में लेटा हुआ था। अफ्रीदियों से लड़ाई हो रही थी। दिन के थके-माँदे सैनिक गाफिल पड़े हुए थे। कैम्प में सन्नाटा था। लेटे-लेटे मुझे भी नींद आ गयी। जब मेरी नींद खुली तो देखा कि छाती पर एक अफ्रीदी—जिसकी आयु मेरी आयु से लगभग दूनी होगी—सवार है और मेरी छाती में छुरा घुसेड़ने ही वाला है। मैं पूरी तरह से उसके अधीन था, कोई भी बचने का उपाय न था, किन्तु उस समय मैंने बड़े ही धैर्य से काम लिया और पश्तो भाषा में कहा—मुझे मारो नहीं, मैं सरकारी फौज में अफसर हूँ, मुझे पकड़ ले चलो, सरकार तुमको रुपया दे कर मुझे छुड़ायेगी।

ईश्वर की कृपा से मेरी बात उसके मन में बैठ गयी। कमर से रस्सी निकाल कर मेरे हाथ-पैर बाँधे और फिर कंधे पर बोझ की तरह लाद कर खेमे से बाहर आया। बाहर मार-काट का बाजार गर्म था। उसने एक विचित्र प्रकार से चिल्ला कर कुछ कहा और मुझे कंधे पर लादे वह जंगल की ओर भागा। यह मैं कह सकता हूँ कि उसको मेरा बोझ कुछ भी न मालूम होता था और बड़ी तेजी से भागा जा रहा था। उसके पीछे-पीछे कई आदमी, जो उसी के गिरोह के थे, लूट का माल लिये हुए भागे चले आ रहे थे।

प्रातःकाल हम लोग एक तालाब के पास पहुँचे। तालाब बड़े-बड़े पहाड़ों से घिरा हुआ था। उसका पानी बड़ा निर्मल था और जंगली पेड़ इधर-उधर उग रहे थे। तालाब के पास पहुँच कर हम सब लोग ठहरे। बुड्ढे ने, जो वास्तव में उस गिरोह का सरदार था, मुझे पत्थर पर डाल दिया। मेरी कमर में बड़ी ज़ोर से चोट लगी, ऐसा मालूम हुआ कि कोई हड्डी टूट गयी है; लेकिन ईश्वर की कृपा से हड्डी टूटी न थी। सरदार ने मुझे पृथ्वी पर

डालने के बाद कहा—क्यों, कितना रुपया दिलायेगा ?

मैंने अपनी वेदना दबाते हुए कहा—पाँच सौ रुपये।

सरदार ने मुँह बिगाड़ कर कहा—नहीं, इतना कम नहीं लेगा। दो हजार से एक पैसा भी कम मिला, तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—सरकार इतना रुपया काले आदमी के लिए नहीं खर्च करेगी।

सरदार ने छुरा बाहर निकालते हुए कहा—तब फिर क्यों कहा था कि सरकार इनाम देगी ! ले तो फिर यहीं मर।

सरदार छुरा लिए मेरी तरफ बढ़ा।

मैं घबड़ा कर बोला—अच्छा, सरदार, मैं तुमको दो हजार दिलवा दूँगा।

सरदार रुक गया और बड़े जोर से हँसा। उसकी हँसी की प्रतिध्वनि ने निर्जीव पहाड़ों को भी कँपा दिया। मैंने मन ही मन कहा—बड़ा भयानक आदमी है।

गिरोह के दूसरे आदमी अपनी-अपनी लूट का माल सरदार के सामने रखने लगे। उसमें कई बंदूकें, कारतूस, रोटियाँ और कपड़े थे। मेरी भी तलाशी ली गयी। मेरे पास एक छह फायर का तमंचा था। तमंचा पा कर सरदार उछल पड़ा, और उसे फिरा-फिरा कर देखने लगा। वहीं पर उसी समय हिस्सा-बाँट शुरू हो गया। बराबर का हिस्सा लगा; लेकिन मेरा रिवाल्वर उसमें नहीं शामिल किया गया। वह सरदार साहब की खास चीज थी।

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद, फिर यात्रा शुरू हुई। इस बार मेरे पैर खोल दिये गये और साथ-साथ चलने को कहा—मेरी आँखों पर पट्टी भी बाँध दी गयी, ताकि मैं रास्ता न देख सकूँ। मेरे हाथ रस्सी से बँधे हुए थे, और उसका एक सिरा एक अफ्रीदी के हाथ में था।

चलते-चलते मेरे पैर दुखने लगे, लेकिन उनकी मंजिल पूरी न हुई। सिर पर जेठ का सूरज चमक रहा था, पैर जले जा रहे थे, प्यास से गला सूखा जा रहा था; लेकिन वे बराबर चले जा रहे थे। वे आपस में बातें करते जाते थे; लेकिन अब मैं उनकी एक बात भी न समझ पाता। कभी-कभी एक-आध शब्द तो समझ जाता; लेकिन बहुत अंशों में मैं कुछ भी न समझ पाता था। वे लोग इस समय अपनी विजय पर प्रसन्न थे, और एक अफ्रीदी ने अपनी भाषा में एक गीत गाना शुरू किया। गीत बड़ा ही अच्छा था।

असदखाँ ने पूछा—सरदार साहब, वह गीत क्या था ?

सरदार साहब ने कहा—उस गीत का भाव याद है। भाव यह है कि एक अफ्रीदी जा रहा है, उसकी स्त्री कहती है—कहाँ जाते हो ?

युवक उत्तर देता है—जाते हैं तुम्हारे लिए रोटी और कपड़ा लाने।

स्त्री पूछती है—और कुछ अपने बच्चों के लिए नहीं लाओगे ?

युवक उत्तर देता है—बच्चे के लिए बंदूक लाऊँगा, ताकि वह जब बड़ा हो, तो वह भी लड़े और अपनी प्रेमिका के लिए रोटी और कपड़ा ला सके।

स्त्री कहती है—यह कहो, कब आओगे ?

युवक उत्तर देता है—आऊँगा तभी, जब कुछ जीत लाऊँगा; नहीं तो वहीं मर जाऊँगा।

स्त्री कहती है—शाबाश, जाओ, तुम वीर हो, तुम जरूर सफल होगे।

गीत सुन कर मैं मुग्ध हो गया। गीत समाप्त होते-होते हम लोग भी रुक गये। मेरी आँखें खोली गयीं। सामने बड़ा-सा मैदान था और चारों ओर गुफायें बनी हुई थीं, जो उन्हीं लोगों के रहने की जगह थी।

फिर मेरी तलाशी ली गयी और इस दफे सब कपड़े उतरवा लिये गये, केवल पायजामा रह गया। सामने एक बड़ा सा शिलाखंड रखा हुआ था। सब लोगों ने मिल कर उसे हटाया और मुझे उसी ओर ले चले। मेरी आत्मा काँप उठी। यह तो जिंदा कब्र में डाल देंगे। मैंने बड़ी ही वेदनापूर्ण दृष्टि से सरदार की ओर देख कर कहा—सरदार, सरकार तुम्हें रुपया देगी। मुझे मारो नहीं।

सरदार ने हँस कर कहा—तुम्हें मारता कौन है, कैद किया जाता है। इस घर में बंद रहोगे, जब रुपया आ जायगा, छोड़ दिये जाओगे।

सरदार की बात सुन कर मेरे प्राण में प्राण आये। सरदार ने मेरी पाकेटबुक और पेंसिल सामने रखते हुए कहा—लो, इसमें लिख दो। अगर एक पैसा भी कम आया, तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।

मैंने कमिश्नर साहब के नाम एक पत्र लिख कर दे दिया। उन लोगों ने मुझे उसी अंध कूप में लटका दिया और रस्सी खींच ली।

4

सरदार साहब ने एक लम्बी साँस ली और कहना शुरू किया—असदखाँ, जिस समय मैं उस कुएँ में लटकाया जा रहा था, मेरी अंतरात्मा काँप रही थी। नीचे घटाटोप अंधकार की जगह हल्की चाँदनी छायी हुई थी। भीतर से गुफा न बहुत छोटी और न बहुत बड़ी थी। फर्श खुरदरा था, ऐसा मालूम होता था कि बरसों यहाँ पर पानी की धारा गिरी है और यह गढ़ा तब जा कर तैयार हुआ है। पत्थर की मोटी दीवार से वह कूप घिरा हुआ था और उसमें जहाँ-तहाँ छेद थे, जिनसे प्रकाश और वायु आती थी। नीचे पहुँच कर मैं अपनी दशा का हेर-फेर सोचने लगा। दिल बहुत घबराता था। कालकोठरी की यंत्रणा भोगना भी भाग्य में विधाता ने लिख दिया था।

धीरे-धीरे संध्या का आगमन हुआ। उन लोगों ने अभी तक मेरी कुछ खोज-खबर न ली थी ! भूख से आत्मा व्याकुल हो रही थी। बार-बार विधाता और अपने को कोसता। जब मनुष्य निरुपाय हो जाता है, तो विधाता को कोसता है।

अंत में एक छेद से चार बड़ी-बड़ी रोटियाँ किसी ने बाहर से फेंकीं। जिस तरह कुत्ता एक रोटी के टुकड़े पर दौड़ता है, वैसे ही मैं दौड़ा और उठा कर उस छेद की ओर देखने लगा; लेकिन फिर किसी ने कुछ न फेंका, और न कुछ आदेश ही मिला। मैं बैठ कर रोटियाँ खाने लगा। थोड़ी देर बाद उसी छेद पर एक लोहे का प्याला रख दिया गया, जिसमें पानी भरा हुआ था। मैंने परमात्मा को धन्यवाद दे कर पानी उठा कर पिया। जब आत्मा कुछ तृप्त हुई, तो कहा—थोड़ा पानी और चाहिए।

इस पर दीवार की उस ओर एक भीषण हँसी की प्रतिध्वनि सुनायी दी और किसी ने खनखनाते हुए स्वर में कहा—पानी अब कल मिलेगा। प्याला दे दो, नहीं तो कल भी पानी नहीं मिलेगा।

क्या करता, हार कर प्याला वहीं पर रख दिया।

इसी प्रकार कई दिन बीत गये। नित्य दोनों समय चार रोटियों और एक प्याला पानी मिल जाता था। धीरे-धीरे मैं भी इस शुष्क जीवन का आदी हो गया। निर्जनता अब उतनी न खलती। कभी-कभी मैं अपनी भाषा में और कभी-कभी पश्तो में गाता। इससे तबियत कुछ बहल जाती और हृदय भी शांत हो जाता।

एक दिन रात्रि के समय मैं एक पश्तो गीत गा रहा था। मजनूं झुलसाने वाले बगुलों से कह रहा था—तुममें क्या वह हरारत नहीं है, जो काफिलों को जला कर खाक कर देती है ? आखिर वह गरमी मुझे क्यों नहीं जलाती ? क्या इसलिए कि मेरे अंदर खुद एक ज्वाला भरी हुई है ?

देखो, जब लैला ढूँढ़ती हुई यहाँ आवे, तो मेरा शरीर बालू से ढक देना, नहीं तो शीशे की तरह लैला का दिल टूट जायगा।

मैंने गाना बंद कर दिया। उसी समय छेद से किसी ने कहा—कैदी, फिर तो गाओ !

मैं चौंक पड़ा। कुछ खुशी भी हुई, कुछ आश्चर्य भी, पूछा—तुम कौन हो ?

उसी छेद से उत्तर मिला—मैं हूँ तूरया, सरदार की लड़की।

मैंने पूछा—क्या तुमको यह गाना पसंद है ?

तूरया ने उत्तर दिया—हाँ, कैदी गाओ, मैं फिर सुनना चाहती हूँ।

मैं हर्ष से गाने लगा। गीत समाप्त होने पर तूरया ने कहा—तुम रोज यही गीत मुझे सुनाया करो। इसके बदले में मैं तुमको और रोटियाँ और पानी दूँगी।

तूरया चली गयी। इसके बाद मैं सदा रात के समय वही गीत गाता, और तूरया सदा दीवार के पास आकर सुनती।

मेरे मनोरंजन का एक मार्ग निकल आया।

धीरे-धीरे एक मास बीत गया, पर किसी ने अभी तक मेरे छुड़ाने के लिए रुपया न भेजा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते मैं अपने जीवन से निराश होता जाता।

ठीक एक महीने बाद सरदार ने आकर कहा—कैदी, अगर कल तक रुपया न आयेगा, तो तुम मार डाले जाओगे। अब रोटियाँ नहीं खिला सकता। मुझे जीवन की कुछ आशा न रही। उस दिन न मुझसे खाया गया और न कुछ पिया ही गया। रात हुई, फिर रोटियाँ फेंक दी गयीं; लेकिन खाने की इच्छा नहीं हुई।

निश्चित समय पर तूरया ने आकर कहा—कैदी, गाना गाओ।

उस दिन मुझे कुछ अच्छा न लगता था। मैं चुप रहा।

तूरया ने फिर कहा—कैदी, क्या सो गया ?

मैंने बड़े ही मलिन स्वर में कहा—नहीं, आज सो कर क्या करूँ, कल सोऊँगा कि फिर जागना न पड़ेगा।

तूरया ने प्रश्न किया—क्यों क्या सरकार रुपया न भेजेगी ?

मैंने उत्तर दिया—भेजेगी तो; लेकिन कल तो मैं मार डाला जाऊँगा, मेरे मरने के बाद

रुपया आया भी, तो मेरे किस काम का !

तूरया ने सांत्वनापूर्ण स्वर में कहा–अच्छा, तुम गाओ, मैं कल तुम्हें मरने न दूँगी।

मैंने गाना शुरू किया। जाते समय तूरया ने पूछा–कैदी, तुम कटघरे में रहना पसंद करते हो।

मैंने सहर्ष उत्तर दिया–हाँ, किसी तरह इस नरक से तो छुटकारा मिले।

तूरया ने कहा–अच्छा, कल मैं अब्बा से कहूँगी।

दूसरे ही दिन मुझे अंध कूप से बाहर निकाला गया। मेरे दोनों पैर दो मोटी शहतीरों के छेदों में बंद कर दिये गये। और वह काठ की ही कीलों से प्राकृतिक गड्ढों में कस दिये गये।

सरदार ने मेरे पास आ कर कहा–कैदी, प्रन्द्रह दिन की अवधि और दी जाती है, इसके बाद तुम्हारी गर्दन तन से अलग कर दी जायगी। आज दूसरा खत अपने घर को लिखो। अगर ईद तक रुपया न आया, तो तुम्हीं को हलाल किया जायगा।

मैंने दूसरा पत्र लिख कर दे दिया।

सरदार के जाने के बाद तूरया आयी। यह वही रमणी थी, जो अभी गयी है। यही उस सरदार की लड़की थी। यही मेरा गाना सुनती थी और इसी ने सिफारिश करके मेरी जान बचायी थी।

तूरया ने आकर मुझे देखने लगी। मैं भी उसकी ओर देखने लगा।

तूरया ने पूछा–कैदी घर में तुम्हारे कौन-कौन हैं ?

मैंने बड़े ही कातर स्वर में कहा–दो छोटे-छोटे बालक; और कोई नहीं।

मुझे मालूम था कि अफ्रीदी बच्चों को बहुत प्यार करते हैं।

तूरया ने पूछा–उनकी माँ नहीं है ?

मैंने केवल दया उपजाने के लिए कहा–नहीं, उनकी माँ मर गयी है। वे अकेले हैं। मालूम नहीं, जीते हैं या मर गये, क्योंकि मेरे सिवाय उनकी देख-रेख करनेवाला और कोई न था।

कहते-कहते मेरी आँखों में आँसू भर आये। तूरया की भी आँखें सूखी न रहीं। तूरया ने अपना आवेग सँभालते हुए कहा–तो तुम्हारे कोई नहीं है ? बच्चे अकेले हैं? वे बहुत रोते होंगे !

मैंने मन ही मन प्रसन्न होते हुए कहा–हाँ, रोते जरूर होंगे। कौन जानता है, शायद मर भी गये हों ?

तूरया ने बात काट कर कहा–नहीं, अभी मरे न होंगे। अच्छा, तुम रहते कहाँ हो ? मैं जा कर पता लगा आऊँगी।

मैंने अपने घर का पता बता दिया। उसने कहा–उस जगह तो मैं कई बार हो आयी हूँ। बाजार से सौदा लेने मैं अक्सर जाती हूँ, अब जाऊँगी तो तुम्हारे बच्चों की भी खबर ले आऊँगी।

मैंने शंकित हृदय से पूछा–कब जाओगी ?

उसने कुछ सोच कर कहा–उस जुमेरात को जाऊँगी। अच्छा तुम वही गीत गाओ।

मैंने आज बड़ी उमंग और उत्साह से गाना शुरू किया। मैंने आज देखा कि उसका

असर तूरया पर कैसा पड़ता है। उसका शरीर काँपने लगा, आँखें डबडबा आयीं, गाल पीले पड़ गये और वह काँपती हुई बैठ गयी। उसकी दशा देखकर मैंने दूने उत्साह से गाना शुरू किया और अन्त में कहा—तूरया, अगर मैं मारा जाऊँ, तो मेरे बच्चों को मेरे मरने की खबर देना।

मेरी बात का पूरा असर पड़ा। तूरया ने भर्राये हुए स्वर में कहा—कैदी तुम मरोगे नहीं। मैं तुम्हारे बच्चों के लिए तुम्हें छोड़ दूँगी।

मैंने निराश हो कर कहा—तूरया, तुम्हारे छोड़ देने से भी मैं बच नहीं सकता। इस जंगल में मैं भटक-भटक कर मर जाऊँगा, और फिर तुम पर भी मुसीबत आ सकती है। अपनी जान के लिए तुमको मुसीबत में न डालूँगा।

तूरया ने कहा—मेरे लिए तुम चिन्ता न करो। मेरे ऊपर कोई शक न करेगा। मैं सरदार की लड़की हूँ, जो कहूँगी वही सब मान लेंगे, लेकिन क्या तुम जा कर रुपया भेज दोगे।

मैंने प्रसन्न हो कर कहा—हाँ तूरया, मैं रुपया भेज दूँगा।

तूरया ने जाते हुए कहा—तो मैं भी तुम्हें छुटकारा दिला दूँगी।

इस घटना के बाद तूरया सदैव मेरे बच्चों के सम्बन्ध में बातें करती। असदखाँ, सचमुच इन अफ्रीदियों को बच्चे बहुत प्यारे होते हैं। विधाता ने यदि उन्हें बर्बर हिंसक पशु बनाया है, तो मनुष्योचित प्रकृति से वंचित भी नहीं रखा है। आखिर जुमेरात आयी और अभी तक सरदार वापस न आया। न कोई उस गिरोह का आदमी ही वापस आया। उस दिन संध्या समय तूरया ने आ कर कहा—कैदी, अब मैं नहीं जा सकती; क्योंकि मेरा पिता अभी तक नहीं आया। यदि कल भी न आया, तो मैं तुम्हें रात को छोड़ दूँगी। तुम अपने बच्चों के पास जाना; लेकिन देखो, रुपया भेजना न भूलना। मैं तुम पर विश्वास करती हूँ।

मैंने उस दिन बड़े उत्साह से गाना गाया। आधी रात तक तूरया सुनती रही, फिर सोने चली गयी। मैं भी ईश्वर से मनाता रहा कि कल और सरदार न आये। काठ में बँधे-बँधे मेरा पैर बिलकुल निकम्मा हो गया था। तमाम शरीर दुःख रहा था। इससे तो मैं कालकोठरी में ही अच्छा था, क्योंकि वहाँ हाथ-पैर तो हिला-डुला सकता था।

दूसरे दिन भी गिरोह वापस न आया। उस दिन तूरया बहुत चिंतित थी। शाम को आ कर तूरया ने मेरे पैर खोल कर कहा—कैदी, अब तुम जाओ। चलो, मैं तुम्हें थोड़ी दूर पहुँचा दूँ।

थोड़ी देर तक मैं अवश लेटा रहा। धीरे-धीरे मेरे पैरे ठीक हुए और ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ मैं तूरया के साथ चल दिया।

तूरया को प्रसन्न करने के लिए मैं रास्ते-भर गीत गाता आया। तूरया बार-बार सुनती और बार-बार रोती। आधी रात के करीब मैं तालाब के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर तूरया ने कहा—सीधे चले जाओ; तुम पेशावर पहुँच जाओगे। देखो होशियारी से जाना, नहीं तो कोई तुम्हें अपनी गोली का शिकार बना डालेगा। यह लो, तुम्हारे कपड़े हैं; लेकिन रुपया जरूर भेज देना। तुम्हारी जमानत मैं लूँगी। अगर रुपया न आया, तो मेरे भी प्राण जायँगे, और तुम्हारे भी। अगर रुपया आ जायगा, तो कोई भी अफ्रीदी तुमपर हाथ न उठायेगा, चाहे

तुम किसी को मार भी डालो। जाओ, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और तुमको अपने बच्चों से मिलाये।

तूरया फिर ठहरी नहीं। गुनगुनाती हुई लौट पड़ी। रात दो-पहर बीत चुकी थी। चारों ओर भयानक निस्तब्धता छायी हुई थी, केवल वायु साँय-साँय करती हुई बह रही थी, आकाश के बीचों-बीच चंद्रमा अपनी सोलहों कला से चमक रहा था। तालाब के तट पर रुकना सुरक्षित न था। मैं धीरे-धीरे दक्षिण की ओर बढ़ा। बार-बार चारों ओर देखता जाता था। ईश्वर की कृपा से प्रातःकाल होते-होते मैं पेशावर की सरहद पर पहुँच गया।

सरहद पर सिपाहियों का पहरा था। मुझे देखते ही तमाम फौज भर में हलचल मच गयी। सभी लोग मुझे मरा समझे हुए थे। जीता-जागता लौटा हुआ देख कर सभी प्रसन्न हो गये।

कर्नल हैमिलटन साहब भी समाचार पाकर उसी समय मिलने आये और सब हाल पूछ कर कहा—मेजर साहब, मैं आपको मरा हुआ समझता था। मेरे पास तुम्हारे दो पत्र आये थे, लेकिन मुझे स्वप्न में भी विश्वास न हुआ था कि ये तुम्हार लिखे हुए हैं। मैं तो उन्हें जाली समझता था। ईश्वर को धन्यवाद है कि तुम जीते बच कर आ गये।

मैंने कर्नल साहब को धन्यवाद दिया और मन ही मन कहा—काले आदमी का लिखा हुआ जाली था और कहीं अगर गोरा आदमी लिखता, तो दो की कौन कहे, चार हजार रुपया पहुँच जाता। कितने ही गाँव जला दिये जाते, और न जाने क्या-क्या होता।

मैं चुपचाप अपने घर आया। बाल-बच्चों को पाकर आत्मा संतुष्ट हुई। उसी दिन एक विश्वासी अनुचर के द्वारा दो हजार रुपये तूरया के पास भेज दिया।

5

सरदार ने एक ठंडी साँस लेकर कहा—असदखाँ, अभी मेरी कहानी समाप्त नहीं हुई। अभी तो दुःखांत भाग अवशेष ही है। यहाँ आकर मैं धीरे-धीरे अपनी सब मुसीबतें भूल गया, लेकिन तूरया को न भूल सका। तूरया की कृपा से ही मैं अपनी स्त्री और बच्चों से मिल पाया था, यही नहीं, जीवन भी पाया था; फिर भला मैं उसे कैसे भूल जाता!

महीनों और सालों बीत गये। मैंने तूरया को और न उसके बाप को ही देखा। तूरया ने आने के लिए कहा भी लेकिन वह आयी नहीं, वहाँ से आ कर मैंने अपनी स्त्री को उसके मायके भेज दिया था; क्योंकि खयाल था कि शायद तूरया आये, तो फिर मैं झूठा बनूँगा। लेकिन जब तीन साल बीत गये और तूरया न आयी, तो मैं निश्चिंत हो गया और स्त्री को मायके से बुला लिया। हम लोग सुखपूर्वक दिन काट रहे थे कि अचानक फिर दुर्दशा की घड़ी आयी।

एक दिन संध्या के समय इसी बरामदे में बैठा हुआ अपनी स्त्री से बातें कर रहा था कि किसी ने बाहर का दरवाजा खटखटाया। नौकर ने दरवाजा खोल दिया और बेधड़क जीना चढ़ती हुई एक काबुली औरत ऊपर चली आयी। उसने बरामदे में आ कर विशुद्ध पश्तो भाषा में पूछा—सरदार साहब कहाँ हैं ?

मैंने कमरे के भीतर आ कर पूछा—तुम कौन हो, क्या चाहती हो ?

उसी स्त्री ने कुछ मूँगे निकालते हुए कहा—यह मूँगे मैं बेचने के लिए आयी हूँ, खरीदिएगा ?

यह कह कर उसने बड़े-बड़े मूँगे निकाल कर मेज पर रख दिये।

मेरी स्त्री भी मेरे साथ कमरे के भीतर आयी थी। वह मूँगे उठा कर देखने लगी। उसी काबुली स्त्री ने पूछा—सरदार साहब, यह कौन है आपकी ?

मैंने उत्तर दिया—मेरी स्त्री है, और कौन है ?

काबुली स्त्री ने कहा—आपकी स्त्री तो मर चुकी थी, क्या आपने दूसरा विवाह किया है ?

मैंने रोषपूर्ण स्वर में कहा—चुप बेवकूफ कहीं की, तू मर गयी होगी।

मेरी स्त्री पश्तो नहीं जानती थी, वह तन्मय होकर मूँगे देख रही थी।

किंतु मेरी बात सुन कर न मालूम क्यों काबुली औरत की आँखें चमकने लगीं। उसने बड़े ही तीव्र स्वर में कहा—हाँ, बेवकूफ न होती, तो तुम्हें छोड़ कैसे देती ? दोजखी पिल्ले, मुझसे झूठ बोला ! ले, अगर तेरी स्त्री न मरी थी, तो अब मर गयी !

कहते-कहते शेरनी की तरह लपक कर उसने एक तेज छुरा मेरी स्त्री की छाती में घुसेड़ दिया। मैं उसे रोकने के लिए आगे बढ़ा; लेकिन वह कूद कर आँगन में चली गयी और बोली—अब पहचान ले, मैं तूरया हूँ। मैं आज तेरे घर में रहने के लिए आयी थी। मैं तुझसे विवाह करती और तेरी हो कर रहती। तेरे लिए मैंने बाप, घर, सब कुछ छोड़ दिया था, लेकिन तू झूठा है, मक्कार है। तू अब अपनी बीवी के नाम को रो, मैं आज से तेरे नाम को रोऊँगी। यह कह कर वह तेजी से नीचे चली गयी !

अब मैं अपनी स्त्री के पास पहुँचा। छुरा ठीक हृदय में लगा था। एक ही वार ने उसका काम तमाम कर दिया था। डाक्टर बुलवाया; लेकिन वह मर चुकी थी।

कहते-कहते सरदार साहब की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने अपनी भीगी हुई आँखों को पोंछ कर कहा—असदखाँ, मुझे स्वप्न में भी अनुमान न था कि तूरया इतनी पिशाच-हृदय हो सकेगी। अगर मैं पहले उसे पहचान लेता तो यह आफत न आने पाती; लेकिन कमरे में अंधकार था; और इसके अतिरिक्त मैं उसकी ओर से निराश हो चुका था।

तब से फिर कभी तूरया नहीं आयी। अब जब कभी मुझे देखती है, तो मेरी ओर देख कर नागिन की भाँति फुफकारती हुई चली जाती है। इसे देखकर मेरा हृदय काँपने लगता है और मैं अवश हो जाता हूँ। कई बार कोशिश की, मैं इसे पकड़वा दूँ, लेकिन उसे देख कर मैं बिलकुल निकम्मा हो जाता हूँ हाथ-पैर बेकाबू हो जाते हैं, मेरी सारी वीरता हवा हो जाती है।

यही नहीं, तूरया का मोह अब भी मेरे ऊपर है। मेरे बच्चों को हमेशा वह कोई न कोई बहुमूल्य चीज दे जाती है। जिस दिन बच्चे उसे नहीं मिलते दरवाजे के भीतर फेंक जाती है। उनमें एक कागज का टुकड़ा बँधा होता है जिसमें लिखा रहता है—सरदार साहब के बच्चों के लिए।

मैं अभी तक इस स्त्री को नहीं समझ पाया। जितना ही समझने का यत्न करता हूँ, उतनी ही याद कठिन होती जाती है। नहीं समझ में आता कि यह मानवी है या राक्षसी !

इसी समय सरदार साहब के लड़के ने आ कर कहा—देखिए, वही औरत यह सोने

का तावीज दे गयी है।

सरदार ने मेरी ओर देख कर कहा–देखा, असदखाँ, मैं तुमसे कहता न था। देखो, आज भी यह तावीज दे गयी। न मालूम कितने ही तावीज और कितनी ही दूसरी चीजें अर्जुन और निहाल को दे गयी होगी। कहता हूँ कि तूरया बड़ी ही विचित्र स्त्री है ?

6

सरदार साहब से विदा हो कर मैं घर चला। चौरास्ते से बुड्ढे की लाश हटा दी गयी थी; पर वहाँ पहुँच कर मेरे रोएँ खड़े हो गये। मैं आप ही आप एक मिनट वहाँ खड़ा हो गया। सहसा पीछे देखा। छाया की भाँति एक स्त्री मेरे पीछे-पीछे चली आ रही थी। मुझे खड़ा देख कर वह स्त्री रुक गयी और एक दूकान में कुछ खरीदने लगी।

मैंने अपने हृदय से प्रश्न किया–क्या वह तूरया है।

हृदय ने उत्तर दिया–हाँ, शायद वही है।

तूरया मेरा पीछा क्यों कर रही है ? यह सोचता हुआ मैं घर पहुँचा और खाना खा कर लेटा; पर आज की घटनाओं का मुझ पर ऐसा असर पड़ा था कि किसी तरह भी नींद न आती थी। जितना ही मैं सोने का यत्न करता उतनी ही नींद मुझसे दूर भागती ।

फौजी घड़ियाल ने बारह बजाये, एक बजाये, दो बजाये; लेकिन मुझे नींद न थी। मैं करवटें बदलता हुआ सोने का उपक्रम कर रहा था। इसी उधेड़बुन में कब नींद ने मुझे धर दबाया; मुझे जरा भी याद नहीं।

यद्यपि मैं सो रहा था; लेकिन मेरा ज्ञान जाग रहा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री, जिसकी आकृति तूरया से बहुत कुछ मिलती थी लेकिन उससे कहीं अधिक भयावनी थी, दीवार फोड़ कर भीतर घुस आयी है। उसके हाथ में एक तेज छुरा है, जो लालटेन के प्रकाश में चमक रहा है। वह दबे पाँव सतर्क नेत्रों से ताकती हुई धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ रही है। मैं उसे देख कर उठना चाहता हूँ, लेकिन हाथ-पैर मेरे काबू में नहीं हैं। मानों उनमें जान है ही नहीं। वह स्त्री मेरे पास पहुँच गयी। थोड़ी देर तक मेरी ओर देखा, और फिर अपने छुरेवाली हाथ को ऊपर उठाया। मैं चिल्लाने का उपक्रम करने लगा; लेकिन मेरी घिग्गी बँध गयी। शब्द कंठ से फूटा ही नहीं। उसने मेरे दोनों हाथों को अपने घुटने के नीचे दबाया और मेरी छाती पर सवार हो गयी। मैं छटपटाने लगा और मेरी आँखें खुल गयीं ! सचमुच एक काबुली औरत मेरी छाती पर सवार थी। उसके हाथ में छुरा था। और वह छुरा मारना ही चाहती थी।

मैंने कहा–कौन, तूरया ?

यह वास्तव में तूरया ही थी । उसने मुझे बलपूर्वक दबाते हुए कहा–हाँ मैं तूरया ही हूँ। आज तूने मेरे बाप का खून किया है, उसके बदले में तेरी जान जायगी।

यह कह कर उसने अपना छुरा ऊपर उठाया। इस समय मेरे सामने जीवन और मरण का प्रश्न था। जीवन की लालसा ने मुझमें साहस का संचार किया मैं मरने के लिए तैयार न था। मेरे अरमान और उमंगें अब भी बाकी थीं। मैंने बलपूर्वक अपना दाहिना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया और एक ही झटके में मेरा हाथ छूट गया। मैंने अपनी पूरी ताकत से तूरया

का छुरावाला हाथ पकड़ लिया। न मालूम क्यों तूरया ने कुछ भी विरोध न किया। वह मेरे हाथ को देखती हुई मेरी छाती से उतर आयी। उसकी आँखें पथरायी हुई थीं और वह एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी।

मैंने हँस कर कहा—तूरया, अब तो पासा पलट गया। अब तेरे मरने की पारी है। तेरे बाप को मारा और अब तुझे भी मारता हूँ।

तूरया अब भी एकटक मेरे हाथ की ओर देख रही थी। उसने कछ भी उत्तर न दिया।

मैंने उसे झँझोड़ते हुए कहा—बोलती क्यों नहीं ? अब तो तेरी जान मेरी मुट्ठी में है।

तूरया का मोह टूटा। उसने बड़े गम्भीर और दृढ़ कंठ से कहा—तू मेरा भाई है। तूने अपने बाप को मारा है आज !

तूरया की बात सुन कर मुझे उस अवसर पर भी हँसी आ गयी।

मैंने हँसते हुए कहा—अफ्रीदी मक्कार भी होते हैं, यह आज ही मुझे मालूम हुआ।

तूरया ने शांत स्वर में कहा—तू मेरा खोया हुआ बड़ा भाई नाजिर है। वह जो तेरे हाथ में निशान है, वही बतला रहा है कि तू मेरा खोया हुआ भाई है।

बचपन से ही मेरे हाथ में एक साँप गुदा हुआ था। और यही मेरी पहचान फौजी रजिस्टर में भी लिखी हुई थी।

मैंने हँस कर कहा—तूरया, तू मुझे भुलावा नहीं दे सकती। मैं अब तुझे किसी तरह न छोड़ूँगा।

तूरया ने अपने हाथ से छुरा फेंक कर कहा—सचमुच तू मेरा भाई है। अगर तुझे विश्वास नहीं होता, तो देख, मेरे दाहिने हाथ में भी ऐसा ही साँप गुदा हुआ है।

मैंने तूरया के हाथ पर दृष्टि डाली, तो वहाँ भी बिलकुल मेरा ही जैसा साँप गुदा हुआ है।

मैंने कुछ सोचते हुए कहा—तूरया, मैं तेरा विश्वास नहीं कर सकता, यह इत्तफाक की बात है।

तूरया ने कहा—मेरा हाथ छोड़ दे। मैं तुझ पर वार न करूँगी ! अफ्रीदी झूठ नहीं बोलते।

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया, वह पृथ्वी पर बैठ गयी और मेरी ओर देखने लगी। थोड़ी देर बाद उसने कहा—अच्छा, तुझे अपने माँ-बाप का पता है ?

मैंने सिर हिलाकर उत्तर दिया—नहीं, मैं सरकारी अनाथालय में पाला गया हूँ।

मेरी बात सुन कर तूरया उठ खड़ी हुई और बोली—तब तू मेरा खोया हुआ बड़ा भाई नाजिर ही है। मेरे पैदा होने के एक साल पहले तू खोया था ! मेरे माँ-बाप तब सरकारी फौज पर छापा डालने के लिए आये थे और तू भी साथ था। मेरी माँ लड़ने में बड़ी होशियार थी। तू उनकी पीठ से बँधा हुआ था और वे लड़ रही थीं। इसी समय एक गोली उनके पैर में लगी और वे गिर कर बेहोश हो गयी बस, कोई तुझे खोल ले गया। मेरी माँ को मेरा बाप अपने कंधे पर उठा लाया; लेकिन तुझे खोज न सका। बहुत तलाश की; लेकिन कहीं भी तेरा पता न लगा। अम्माँ अक्सर तेरी चर्चा किया करती थीं। उनके हाथ में भी निशान था।

यह कह कर उसने फिर वही हाथ मुझे दिखलाया। मैं उसका और अपना साँप मिलाने लगा। वास्तव में दोनों साँप हूबहू एक-से थे, बाल भर भी अन्तर न था। मैं

हताश-सा हो कर चारपाई पर गिर पड़ा।

तूरया मेरे पास बैठ कर स्नेह से मेरे माथे का पसीना पोंछने लगी। उसने कहा –नाजिर, माँ कहती थीं कि तू मरा नहीं, जिन्दा है। एक दिन जरूर तू हम लोगों से मिलेगा।

तूरया की बात पर अब मुझे विश्वास हो चला था। जाने कौन मेरे हृदय में बैठा हुआ कह रहा था कि तूरया जो कहती है; ठीक है। मैंने एक लम्बी साँस ले कर कहा–क्यों तूरया, मैंने जिसे आज मारा है, वह हम लोगों का बाप था ?

तूरया के मुँह पर शोक का एक छोटा-सा बादल घिर आया। उसने बड़े ही दुःख पूर्ण स्वर में कहा–हाँ, नाजिर, वह अभागा हमारा बाप ही था। कौन जानता था कि वह अपने प्यारे लड़के के हाथों हलाल होगा।

फिर सांत्वनापूर्ण स्वर में बोली–लेकिन नाजिर, तूने तो अनजान में यह काम किया है। बाप के मरने से मैं बिल्कुल अकेली हो गयी थी; लेकिन अब तुझे पा कर बाप के रंज को भूल जाऊँगी। नाजिर, तू रंज न कर। तुझे क्या मालूम था कि कौन तेरा बाप है और कौन तेरी माँ है। देख, मैं ही तुझे मारने के लिए आयी थी। तुझे मार डालती; लेकिन खुदा की मेहरबानी से मैंने अपना खानदानी निशान देख लिया। खुदा की ऐसी ही मरजी थी।

तूरया से मालूम हुआ कि मेरे बाप का नाम हैदर खाँ था, जो अफ्रीदियों के एक गिरोह का सरदार था। मैंने सरदार हिम्मतसिंह के सम्बन्ध में भी तूरया से बातें कीं तो मालूम हुआ कि तूरया सरदार साहब को प्यार करने लगी थी। वह हमारे बाप से लड़-भिड़ कर सरदार साहब से निकाह करने आयी थी; लेकिन वहाँ इनकी स्त्री को पा कर वह ईर्ष्या और क्रोध से पागल हो गयी, और उसने उनकी स्त्री की हत्या कर डाली। काबुली औरत के भेष में जा कर वह कुछ मजाक करना चाहती थी; लेकिन घटना-चक्र उसे दूसरी ओर ले गया।

मैंने सरदार साहब की दशा का वर्णन किया। सुन कर वह कुछ सोचती रही और फिर कहा–नहीं वह आदमी झूठा और दगाबाज है। मैं उससे निकाह नहीं करूँगी। लेकिन तेरी खातिर अब सब भूल जाऊँगी। कल उनके बच्चों को ले आना, मैं प्यार करूँगी।

प्रातःकाल तूरया को देख कर मेरा नौकर आश्चर्य करने लगा। मैंने उससे कहा–यह मेरी बहन है।

नौकर को मेरी बात पर विश्वास न हुआ। तब मैंने विस्तापूर्वक सब हाल कहा और उसी समय अपने बाप की लाश की खबर लेने के लिए भेजा। नौकर ने आ कर कहा– लाश अभी तक थाने पर रखी हुई है।

मैंने बड़े साहब के नाम एक पत्र लिख कर सब हाल बता दिया और लाश पाने के लिए दरख्वास्त की। उसी समय साहब के यहाँ से स्वीकृति आ गयी।

एक पत्र लिख कर मेजर साहब को भी बुलवाया।

मेजर साहब ने आ कर कहा–क्या बात है असद ? इतनी जल्दी आने के लिए क्यों लिखा ?

मैंने हँसते हुए कहा–मेजर साहब, मेरा नाम अब असद नहीं रहा, मेरा असली नाम है नाजिर।

मेजर साहब ने साश्चर्य मेरी ओर देखते हुए कहा—रात भर में तुम पागल तो नहीं हो गये।

मैंने हँसते हुए कहा—नहीं सरदार साहब, अभी और सुनिए। तूरया मेरी सगी बहन है, और जिसे कल मैंने मारा वह मेरा बाप था।

सरदार साहब मेरी बात सुन कर मानों आकाश से गिर पड़े। उनकी आँखें कपाल पर चढ़ गयीं। उन्होंने कहा—क्यों असद, तुम मुझे पागल कर डालोगे ?

मैंने सरदार साहब का हाथ पकड़ कर कहा—आइए, तूरया के मुँह से ही सब हाल सुन लीजिए। तूरया मेरे यहाँ बैठी हुई आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

सरदार साहब सकते की हालत में मेरे पीछे-पीछे चले। तूरया उन्हें आते देख कर उठ खड़ी हुई और हँसती हुई बोली—कैदी, तुम वही गीत फिर गाओ। तूरया की बात सुन कर मैं और सरदार साहब भी हँसने लगे।

सरदार साहब को बिठा कर मैंने विस्तारपूर्वक सब हाल कहा। कहानी सुन कर सरदार साहब ने मुझसे कहा—नाजिर, अब तुम्हें नाजिर ही कहूँगा। तूरया को मैं तुमसे माँगता हूँ ! मैं इसके साथ विवाह करूँगा।

मैंने हँस कर कहा—लेकिन आप हिंदू हैं, और हम लोग मुसलमान।

सरदार साहब ने हँस कर कहा—पलटनियों की कोई जाति-पाँति नहीं है।

तूरया ने उसी समय कहा—लेकिन सरदार साहब, मैं तुमसे विवाह नहीं करूँगी। हाँ, अगर तुम अपने दोनों बच्चों को मेरे पास भेज दो तो मैं उनकी माँ बन जाऊँगी।

सरदार साहब हँसते हुए विदा हुए।

उसी दिन शाम को हमने सरदार साहब, तूरया और दूसरे पलटनियों के साथ जा कर अपने बाप की लाश दफनायी।

सूरज डूब रहा था। धीरे-धीरे अँधेरा हो रहा था; और हम दोनों, तूरया और मैं, अपने बाप की कब्र पर फातिहा पढ़ रहे थे।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'विशाल भारत', मार्च, 1929 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित।]

प्रेम की होली

गंगी का सत्रहवाँ साल था, पर वह तीन साल से विधवा थी, और जानती थी कि मैं विधवा हूँ, मेरे लिए संसार के सुखों के द्वार बन्द हैं। फिर वह क्यों रोये और कलपे? मेले से सभी तो मिठाई के दोने और फूलों के हार लेकर नहीं लौटते ? कितनों ही का तो मेले की सजी हुई दूकानें और उन पर खड़े नर-नारी देखकर ही मनोरंजन हो जाता है। गंगी खाती-पीती थी, हँसती-बोलती थी, किसी ने उसे मुँह लटकाये, अपने भाग्य को रोते नहीं देखा। घड़ी रात को उठकर गोबर निकालकर, गाय-बैलों को सानी देना, फिर उपले पाथना, उसका नित्य का नियम था। तब वह अपने भैया को गाय दुहाने के लिए जगाती थी। फिर कुएँ

से पानी लाती, चौके का धन्धा शुरू हो जाता। गाँव की भावजें उससे हँसी करतीं, पर एक विशेष प्रकार की हँसी छोड़कर, सहेलियाँ ससुराल से आकर उससे सारी कथा कहतीं, पर एक विशेष प्रसंग बचाकर। सभी उसके वैधव्य का आदर करते थे। जिस छोटे से अपराध के लिए उसकी भावज पर घुड़कियाँ पड़तीं, उसकी माँ को गालियाँ मिलतीं, उसके भाई पर मार पड़ती, वह उसके लिए क्षम्य था। जिसे ईश्वर ने मारा है, उसे क्या कोई मारे ! जो बातें उसके लिए वर्जित थीं उनकी ओर उसका मन ही न जाता था। उसके लिए उसका अस्तित्व ही न था। जवानी के इस उमड़े हुए सागर में मतवाली लहरें न थीं, डरावनी गरज न थी, अचल शान्ति का साम्राज्य था।

2

होली आई, सबने गुलाबी साड़ियाँ पहनीं, गंगी की साड़ी न रंगी गई। माँ ने पूछा—बेटी, तेरी साड़ी भी रंग दूँ। गंगी ने कहा—नहीं अम्माँ, यों ही रहने दो। भावज ने फाग गया। वह पकवान बनाती रही। उसे इसी में आनन्द था।

तीसरे पहर दूसरे गाँवों के लोग होली खेलने आये। यह लोग भी होली लौटाने जायँगे। गाँवों में यही परम्पर व्यवहार है। मैकू महतों ने भंग बनवा रखी थी, चरस-गाँजा, माजूम सब कुछ लाये थे। गंगी ने ही भंग पीसी थी, मीठी अलग बनाई थी, नमकीन अलग। उसका भाई पिलाता था, वह हाथ धुलाती थी। जवान सिर नीचा किये पीकर चले जाते, बूढ़े, गंगी से पूछ लेते—अच्छी तरह हो न बेटी, या चुहल करते—क्यों री गंगिया, भावज तुझे खाना नहीं देती क्या, जो इतनी दुबली हो गई है! गंगिया हँसकर रह जाती। देह क्या उसके बस की थी। न जाने क्यों वह मोटी हुई थी।

भंग पीने के बाद लोग फाग गाने लगे। गंगिया अपनी चौखट पर खड़ी सुन रही थी। एक जवान ठाकुर गा रहा था। कितना अच्छा स्वर था, कैसा मीठा। गंगिया को बड़ा आनन्द आ रहा था। माँ ने कई बार पुकारा—सुन जा। वह न गई। एक बार
गई भी तो जल्दी से लौट आई। उसका ध्यान उसी गाने पर था। न जाने क्या बात उसे खींचे लेती थी, बाँधे लेती थी। जवान ठाकुर भी बार-बार गंगिया की ओर देखता और मस्त हो-होकर गाता। उसके साथ वालों को आश्चर्य हो रहा था। ठाकुर को यह सिद्धि कहाँ मिल गई ! वह लोग बिदा हुए तब भी गंगिया चौखट पर खड़ी थी। जवान ठाकुर ने भी उसकी ओर देखा और चला गया।

गंगिया ने अपने बाप से पूछा—कौन गाता था दादा ?

मैकू ने कहा—कोठार के बुद्धू सिंह का लड़का है, गरीबसिंह। बुद्धू रीति व्यवहार में आते-जाते थे। उनके मरने के बाद अब वही लड़का आने-जाने लगा।

गंग—यहाँ तो पहले पहल आया है ?

मैकू—हाँ, और तो कभी नहीं देखा। मिजाज बिलकुल बाप का सा है और वैसी ही मीठी बोली है। घमंड तो छू नहीं गया। बुद्धू के बखार में अनाज रखने की जगह न थी, पर चमार को भी देखते तो पहले हाथ उठाते। वही इसका स्वभाव है। गोरू आ रहे थे। गंगी पगहिया लेने भीतर चली गई। वही स्वर उसके कानों में गूँज रहा था।

कई महीने गुजर गये। एक दिन गंगी गोबर पाथ रही थी। सहसा उसने देखा, वही ठाकुर सिर झुकाये द्वार पर से चला जा रहा हें वह गोबर छोड़कर उठ खड़ी हुई। घर में कोई मर्द न था। सब बाहर चले गये थे। यह कहना चाहती थी—ठाकुर ! बैठो, पानी पीते जाव। पर उसके मुँह से बात न निकली। उसकी छाती कितने जोर से धड़क रही थी। उसे एक विचित्र घबराहट होने लगी—क्या करे, कैसे उसे रोक ले। गरीबसिंह ने एक बार उसकी ओर ताका और फिर आँखें नीची कर लीं। उस दृष्टि में क्या बात थी कि गंगी के रोएँ खड़े हो गये। वह दौड़ी घर में गई और माँ से बोली—अम्माँ, ठाकुर जा रहे हैं, गरीबसिंह। माँ ने कहा—किसी काम से आये होंगे। गंगी बाहर आई तो ठाकुर चला गया था। वह फिर गोबर पाथने लगी, पर उपले टूट-टूट जाते थे, आप ही आप हाथ बन्द हो जाते, मगर फिर चौंककर पाथने लगती, जैसे कहीं दूर से उसके कानों में आवाज आ रही हो। वही दृष्टि आँखों के सामने थी। उसमें क्या जादू था ? क्या मोहिनी थी ? उसने अपनी मूक भाषा में कुछ कहा। गंगी ने भी कुछ सुना। क्या कहा ? यह वह नहीं जानती, पर वह दृष्टि उसकी आँखों में बसी हुई थी।

रात को लेटी तब भी वही दृष्टि सामने थी। स्वप्न में भी वही दृष्टि दिखाई दी।

फिर कई महीने गुजर गये। एक दिन संध्या समय मैकू द्वार पर बैठे सन कात रहे थे और गंगी बैलों को सानी चला रही थी कि सहसा चिल्ला उठी—दादा, दादा ठाकुर।

मैकू ने सिर उठाया तो द्वार पर गरीबसिंह चला आ रहा था। राम-राम हुआ।

मैकू ने पूछा—कहाँ गरीबसिंह ! पानी तो पीते जाव।

गरीब आकर एक माची पर बैठ गया। उसका चेहरा उतरा हुआ थ। कुछ वह बीमार-सा जान पड़ता था। मैकू ने कहा—कुछ बीमार थे क्या ?

गरीब—नहीं तो दादा !

मैकू—कुछ मुँह उतरा हुआ है, क्या सूद-ब्याज की चिन्ता में पड़ गये ?

गरीब—तुम्हारे जीते मुझे क्या चिन्ता है दादा !

मैकू—बाकी दे दी न।

गरीब—हाँ दादा, सब बेबाक कर दिया।

मैकू ने गंगी से कहा—बेटी जा, कुछ ठाकुर को पानी पीने को ला। भैया हो तो कह देना चिलम दे जाय।

गरीब ने कहा—चिलम रहने दो दादा ! मैं नहीं पीता।

मैकू—अबकी घर ही तमाकू बनी है, सवाद तो देखों पीते तो हो ?

गरीब—इतना बेअदब न बनाओ दादा। काका के सामने चिलम नहीं छुई। मैं तुमको उन्हीं की जगह देता हूँ।

यह कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं। मैकू का हृदय भी गद्गद् हो उठा। गंगी हाथ की टोकरी लिये मूर्ति के समान खड़ी थी। उसकी सारी चेतना, सारी भावना, गरीबसिंह की बातों की ओर खिंची हुई थी ! उसमें और कुछ सोचने की, और कुछ करने की शक्ति न थी। ओह ! कितनी नम्रता है, कितनी सज्जनता, कितना अदब।

मैकू ने फिर कहा—सुना नहीं बेटी, जाकर कुछ पानी पीने को लाव ! गंगी चौंक पड़ी। दौड़ी हुई घर में गई। कटोरा माँजा, उसमें थोड़ी-सी राब निकाली। फिर लोटा-गिलास

माँजकर शर्बत बनाया।

माँ ने पूछा—कौन आया है गंगिया ?

गंगी—वह हैं ठाकुर गरीबसिंह। दूध तो नहीं है अम्माँ, रस में मिला देती ?

माँ—है क्यों नहीं, हाड़ी में देख।

गंगी ने सारी मलाई उतारकर रस में मिला दी और लोटा-गिलास लिये बाहर निकली। ठाकुर ने उसकी ओर देखा। गंगी ने सिर झुका लिया। यह संकोच उसमें कहाँ से आ गया ?

ठाकुर ने रस पिया और राम-राम करके चला गया।

मैकू बोला—कितना दुबला हो गया है।

गंगी—बीमार हैं क्या ?

मैकू—चिन्ता है और क्या ? अकेला आदमी है, इतनी बड़ी गिरस्थी; क्या करे।

गंगी को रात-भर नींद नहीं आई। उन्हें कौन-सी चिन्ता है। दादा से कुछ कहा भी तो नहीं। क्यों इतने सकुचाते हैं। चेहरा कैसा पीला पड़ गया है।

सबेरे गंगी ने माँ से कहा—गरीबसिंह अबकी बहुत दुबल हो गये हैं अम्माँ !

माँ—अब वह बेफिक्री कहाँ है बेटी। बाप के जमाने में खाते थे और खेलते थे। अब तो गिरस्ती का जंजाल सिर पर है।

गंगी को इस जवाब से सन्तोष न हुआ। बाहर जाकर मैकू से बोली—दादा, तुमने गरीबसिंह को समझा नहीं दिया—क्यों इतनी चिन्ता करे हो ?

मैकू ने आँखें फाड़कर देखा और कहा—जा, अपना काम कर।

गंगी पर मानो वज्रपात हो गया। यह कठोर उत्तर और दादा के मुँह से। हाय! दादा को भी उनका ध्यान नहीं। कोई उसका मित्र नहीं। उन्हें कौन समझाये ! अबकी वह आयेंगे तो मैं खुद उन्हें समझाऊँगी।

गंगी रोज सोचती—वह आते होंगे, पर ठाकुर न आये। फिर होली आई। फिर गाँव में फाग होने लगा। रमणियों ने फिर गुलाबी साड़ियाँ पहनीं। फिर रंग घोला गया। मैकू ने भंग, चरस, गाँजा मँगवाया। गंगी ने फिर मीठी और नमकीन भंग बनाई ! द्वार पर टाट बिछ गया। व्यवहारी लोग आने लगे। मगर कोठार से कोई नहीं आया। शाम हो गई। किसी का पता नहीं ! गंगी बेकरार थी। कभी भीतर जाती, कभी बाहर आती। भाई से पूछती—क्या कोठारवाले नहीं आये ? भाई कहता—नहीं। दादा से पूछती—भंग तो नहीं बची, कोठारवाले आवेंगे तो क्या पीयेंगे ? दादा कहते—अब क्या रात को आवेंगे, सामने तो गाँव है। आते होते तो दिखायी देते।

रात हो गई, पर गंगी को अभी तक आशा लगी हुई थी। वह मन्दिर के ऊपर चढ़ गई और कोठार की ओर निगाह दौड़ाई। कोई न आता था।

सहसा उसे उसी सिवाने की ओर दहकती [illegible] दिखाई दी। देखते-देखते ज्वाला प्रचण्ड हो गई। यह क्या ! वहां आज होली जल रही है। होली तो कल ही जल गई। कौन जाने वहाँ पण्डितों ने आज होली चलाने की सायत बताई हो। तभी वे लोग आज नहीं आये। कल आयेंगे।

उसने घर आकर मैकू से कहा—दादा, कोठार में तो आज होली जली है।

मैकू–दुत् पगली ! होली सब जगह कल जल गई।

गंगी–तुम मानते नहीं हो, मैं मन्दिर पर से देख आई हूँ। होली जल रही है। न पतियाते हो तो चलो, मैं दिखा दूँ।

मैकू–अच्छा चल देखूँ।

मैकू ने गंगी के साथ मन्दिर की छत पर आकर देखा। एक मिनट तक देखते रहे। फिर बिना कुछ बोले नीचे उतर आए।

गंगी ने कहा–है होली कि नहीं, तुम मानते थे ?

मैकू–होली नहीं है पगली–चिता है। कोई मर गया है। तभी आज कोठारवाले नहीं आये।

गंगी का कलेजा धक्-से हो गया। इतने में किसी ने नीचे से पुकारा–मैकू महतो, कोठार के गरीबसिंह गुजर गये।

मैकू नीचे चले गये, पर गंगी वहीं स्तम्भित खड़ी रही। कुछ खबर न रही–मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ, मालूम हुआ जैसे गरीबसिंह उस सुदूर चिता से निकलकर उसकी ओर देख रहा है–वही दृष्टि थी, वही चेहरा, क्या उसे वह भूल सकती थी ? उस दिवस से गिर कभी होली देखने नहीं गई। होली हर साल आती थी, हर साल उसी तरह भंग बनती थी, हर साल उसी तरह फाग होता था; हर साल अबीर-गुलाल उड़ती थी, पर गंगी के लिए होली सदा के लिए चली गई।

[केवल हिन्दी में प्रकाशित। पाक्षिक पत्र 'मतवाला', 23 मार्च, 1929 में प्रकाशित। कहानी-संग्रह 'कफन' में संकलित।]

पर्वत-यात्रा

प्रातःकाल मुं. गुलबाजखां ने नमाज पढ़ी, कपड़े पहने और महरी से किराये की गाड़ी लाने को कहा। शीरीं बेगम ने पूछा–आज सबेरे-सबेरे कहां जाने का इरादा है ?

गुल–जरा छोटे साहब को सलाम करने जाना है।

शीरीं–तो पैदल क्यों नहीं चले जाते ? कौन बड़ी दूर है।

गुल–जो बात तुम्हारी समझ में न आये, उसमें जुबान न खोला करो।

शीरीं–पूछती तो हूं पैदल चले जाने में क्या हरज है ? गाड़ीवाला एक रुपये से कम न लेगा।

गुल–(हंसकर) हुक्काम किराया नहीं देते। उसकी हिम्मत है कि मुझसे किराया मांगे ! चालान करवा दूं।

शीरीं–तुम तो हाकिम भी नहीं हो, तुम्हें वह क्यों ले जाने लगा !

गुल–हाकिम कैसे नहीं हूं ? हाकिम के क्या सींग-पूंछ होती है, जो मेरे नहीं है ? हाकिम का दोस्त हाकिम से कम रोब नहीं रखता। अहमक नहीं हूं कि सौ काम छोड़कर हुक्काम की सलामी बजाया करता हूं। यह इसी की बरकत है कि पुलिस, माल, दीवानी के

अहलकार मुझे झुक-झुककर सलाम करते हैं। थानेदार ने कल जो सौगात भेजी थी, वह किसलिए ? मैं उनका दामाद तो नहीं हूं। सब मुझसे डरते हैं।

इतने में महरी एक तांगा लायी। खां साहब ने फौरन साफा बांधा और चले। शीरीं ने कहा—अरे तो, पान तो खाते जाओ !

गुल—हां, लाओ हाथ में मेहंदी भी लगा दो। अरी नेकबख्त, हुक्काम के सामने पान खाकर जाना बेअदबी है।

शीरीं—आओगे कब तक ? खाना तो यहीं खाओगे ?

गुल—तुम मेरे खाने की फिक्र न करना, शायद कुंअर साहब के यहां चला जाऊं। कोई मुझे पूछे तो कहला देना, बड़े साहब से मिलने गये हैं।

खां साहब आकर तांगे पर बैठे। तांगे वाले ने पूछा—हुजूर, कहां चलूं ?

गुल—छोटे साहब के बंगले पर। सरकारी काम से जाना है।

तांगे.—हुजूर को वहां कितनी देर लगेगी ?

गुल—यह मैं कैसे बता दूं, यह तो हो नहीं सकता कि साहब मुझसे बार-बार बैठने को कहें और मैं उठकर चला आऊं। सरकारी काम है, न जाने कितनी देर लगे। बड़े अच्छे आदमी हैं बेचारे मजाल नहीं कि जो बात कह दूं, उससे इन्कार कर दें। आदमी को गरूर न करना चाहिए। गरूर करना शैतान का काम है। मगर कई थानेदारों से जवाबतलब कर चुका हूं। जिसको देखा कि रिआया को ईजा पहुंचाता है, उसके पीछे पड़ जाता हूं।

तांगे.—हुजूर, पुलिस बड़ा अंधेर करती है। जब देखो बेगार, कभी आधी रात को बुला भेजा, कभी फजिर को। मरे जाते हैं हुजूर। उस पर हर मोड़ पर सिपाहियों को पैसे चाहिए। न दें, तो झूठा चालान कर दें।

गुल—सब जानता हूं जी, अपनी झोंपड़ी में बैठा सारी दुनिया की सैर किया करता हूं। वहीं बैठे-बैठे बदमाशों की खबर लिया करता हूं। देखो तांगे को बंगले के भीतर न ले जाना। बाहर फाटक पर रोक देना।

तांगे.—अच्छा हुजूर। अच्छा अब देखिए, वह सिपाही मोड़ पर खड़ा है। पैसे के लिए हाथ फैलायेगा। न दूं तो ललकारेगा। मगर आज कसम कुरान की, टका-सा जवाब दे दूंगा। हुजूर बैठे हैं, तो क्या कर सकता है।

गुल—नहीं, नहीं, जरा-जरा-सी बात पर मैं इन छोटे आदमियों से नहीं लड़ता। पैसे दे देना। मैं तो पीछे से बच्चा की खबर लूंगा। मुअत्तल न करा दूं तो सही। दूबदू गाली-गलौज करना, इन छोटे आदमियों के मुंह लगना मेरी आदत नहीं।

तांगे वाले को भी यह बात पसन्द आई। मोड़ पर उसने सिपाही को पैसे दे दिये। तांगा साहब के बंगले पर पहुंचा। खां साहब उतरे, और जिस तरह कोई शिकारी पैर दबा-दबाकर चौकन्नी आंखों से देखता हुआ चलता है, उसी तरह आप बंगले के बरामदे में जाकर खड़े हो गए। बैरा बरामदे में बैठा था। आपने उसे देखते ही सलाम किया।

बैरा—हुजूर तो अंधेर करते हैं। सलाम हमको करना चाहिए और आप पहले ही हाथ उठा देते हैं।

गुल—अजी इन बातों में क्या रखा है। खुदा की निगाह में सब इन्सान बराबर हैं।

बैरा—हुजूर को अल्लाह सलामत रखे, क्या बात कही है। हक तो यही है, पर आदमी

अपने को कितना भूल जाता है ! यहां तो छोटे-छोटे अमले भी इन्तजार करते हैं कि यह हाथ उठावे। साहब को इत्तला दूं ?

गुल—आराम में हो तो रहने दो, अभी ऐसी कोई जल्दी नहीं।

बैरा—जी नहीं हुजूर, हाजिरी पर से तो कभी के उठ चुके, कागज-वागज पढ़ते होंगे।

गुल—अब इसका तुम्हें अख्तियार है, जैसा मौका हो वैसा करो। मौका-महल पहचानना तुम्हीं लोगों का काम है। क्या हुआ, तुम्हारी लड़की तो खैरियत से है न ?

बैरा—हां हुजूर, अब बहुत मजे में है। जब से हुजूर ने उसके घर वालों को बुलाकर डांट दिया है, तब से किसी ने चूं भी नहीं किया। लड़की हुजूर की जान-माल को दुआ देती है।

बैरे ने साहब को खां साहब की इत्तला की और एक क्षण में खां साहब जूते उतारकर साहब के सामने जा खड़े हुए और सलाम करके फर्श पर बैठ गए। साहब का नाम काटन था।

काटन—ओ ! ओ ! यह आप क्या करता है, कुर्सी पर बैठिये। कुर्सी पर बैठिये।

खां—बहुत मजे में बैठा हूं हुजूर। आपके बराबर भला बैठ सकता हूं। आप बादशाह, मैं रैयत।

काटन—नहीं, नहीं आप हमारा दोस्त है।

खां—हुजूर चाहे मेरे को आफताब बना दें, पर मैं तो अपनी हकीकत समझता हूं। बन्दा उन लोगों में नहीं है जो हुजूर के करम से चार हरफ पढ़कर जमीन पर पांव नहीं रखते और हुजूर लोगों की बराबरी करने लगते हैं।

काटन—खां साहब, आप बहुत अच्छा आदमी है। हम आज के पांचवें दिन नैनीताल जा रहा है। वहां से लौटकर आपसे मुलाकात करेगा। आप तो कई बार नैनीताल गया होगा। अब तो सब रईस लोग वहां जाता है।

खां साहब नैनीताल क्या, बरेली तक भी न गए थे, पर इस समय कैसे कह देते कि मैं वहां कभी नहीं गया। साहब की नजरों से गिर न जाते। साहब समझते कि यह रईस नहीं, कोई चरकटा है। बोले—हां हुजूर, कई बार हो आया हूं।

काटन—आप कई बार हो आया है ? हम तो पहली दफा जाता है। सुना बहुत अच्छा शहर है ?

खां—बहुत बड़ा शहर है, मगर कुछ ऐसा बड़ा भी नहीं है।

काटन—आप कहां ठहरता है ? वहां होटलों में तो बहुत पैसा लगता है।

खां—मेरी हुजूर न पूछें, कभी कहीं ठहर गया, कभी कहीं ठहर गया। हुजूर के अकबाल से सभी जगह दोस्त हैं।

काटन—आप वहां किसी के नाम चिट्ठी दे सकता है कि मरे ठहरने का बंदोबस्त कर दे ? हम किफायत से काम करना चाहता है। आप तो हर साल जाता है, हमारे साथ क्यों नहीं चलता।

खां साहब बड़ी मुश्किल में फंसे। अब बचाव का कोई उपाय न था। कहना पड़ा—जैसा हुजूर का हुक्म, हुजूर के साथ ही चला चलूंगा। मगर मुझे अभी देर है हुजूर।

काटन—ओ कुछ परवाह नहीं, हम आपके लिए एक हफ्ता ठहर सकता है। अच्छा

सलाम। आज ही आप अपने दोस्त को जगह का इन्तजाम करने को लिख दें। आज के सातवें दिन हम और आप साथ चलेगा। हम आपको रेलवे स्टेशन पर मिलेगा।

खां साहब ने सलाम किया और बाहर निकले। तांगे वाले से कहा—कुंअर शमशेरसिंह की कोठी पर चलो।

2

कुंअर शमशेरसिंह खानदानी रईस थे। उन्हें अभी तक अंग्रेजी रहन-सहन की हवा न लगी थी। दस बजे दिन तक सोना, फिर दोस्तों और मुसाहिबों के साथ गपशप करना, दो बजे खाना खाकर फिर सोना, शाम को चौक की हवा खाना और घर आकर बारह-एक बजे रात तक किसी परी का मुजरा देखना, यही उनकी दिनचर्या थी। दुनिया में क्या होता है, इसकी उन्हें कुछ खबर न होती थी। या हुई भी तो सुनी-सुनाई। खां साहब उनके दोस्तों में थे।

जिस वक्त खां साहब कोठी में पहुंचे दस बज गए थे, कुंअर साहब निकल आये थे, मित्रगण जमा थे। खां साहब को देखते ही कुंअर साहब ने पूछा, कहिए खां साहब, किधर से ?

खां साहब जरा साहब से मिलने गया था। कई दिन बुला-बुला भेजा, मगर फुर्सत ही न मिलती थी। आज उनका आदमी जबर्दस्ती खींच ले गया। क्या करता, जाना ही पड़ा। कहां तक बेरुखी करूं।

कुंअर—यार, तुम न जाने अफसरों पर क्या जादू कर देते हो कि जो जाता है तुम्हारा दम भरने लगता है। मुझे वह मन्त्र क्यों नहीं सिखा देते।

खां—मुझे खुद ही नहीं मालूम कि क्यों हुक्काम मुझ पर इतने मेहरबान रहते हैं। आपको यकीन न आवेगा, मेरी आवाज सुनते ही कमरे के दरवाजे पर आकर खड़े हो गए और ले जाकर अपनी खास कुर्सी पर बैठा दिया।

कुंअर—अपनी खास कुर्सी पर ?

खां—हां साहब, हैरत में आ गया, मगर बैठना ही पड़ा। फिर सिगार मंगवाया, इलायची, मेवे चाय सभी कुछ आ गए। यों कहिए कि खासी दावत हो गयी। यह मेहमानदारी देखकर मैं दंग रह गया।

कुंअर—तो यह सब दोस्ती भी करना जानते हैं।

खां—अजी दूसरा क्या खा के दोस्ती करेगा। अब हद हो गई कि मुझे अपने साथ नैनीताल चलने को मजबूर किया।

कुंअर—सच ?

खां—कसम कुरान की। हैरान था कि क्या जवाब दूं। मगर जब देखा कि किसी तरह नहीं मानते, तो वादा करना ही पड़ा। आज ही के दिन कूच है।

कुंअर—क्यों यार, मैं भी चला चलूं तो क्या हरज है ?

खां—सुभानअल्लाह, इससे बढ़कर क्या बात होगी।

कुंअर—भई, लोग तरह-तरह की बातें करते हैं, इससे जाते डर लगता है। आप तो हो आए होंगे ?

खां–कई बार हो आया हूं। हां, इधर कई साल से नहीं गया।

कुंअर–क्यों साहब, पहाड़ों पर चढ़ते-चढ़ते दम फूल जाता होगा ?

राधाकान्त व्यास बोले–धर्मावतार, चढ़ने को तो किसी तरह चढ़ भी जाइये, पर पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि एक बार लग गया तो प्राण ही लेकर छोड़ता है। बदरीनाथ की यात्रा करने जितने यात्री जाते हैं, उनमें बहुत कम जीते लौटते हैं और संग्रहणी तो प्रायः सभी को हो जाती है।

कुंअर–हां, सुना तो हमने भी है कि पहाड़ों का पानी बहुत लगता है।

लाला सुखदयाल ने हामी भरी–गोसाईंजी ने भी तो पहाड़ के पानी की निन्दा की है–

लागत अति पहाड़ कर पानी।
बड़ दुख होत न जाइ बखानी।।

खां–तो यह इतने अंग्रेज वहां क्यों जाते हैं साहब ? ये लोग अपने वक्त के लुकमान हैं। इनका कोई काम मसलहत से खाली नहीं होता। पहाड़ों की सैर से कोई फायदा न होता तो क्यों जाते, जरा यह तो सोचिये।

व्यास–यही सोच-सोचकर तो हमारे रईस अपना सर्वनाश कर रहे हैं। उनकी देखा-देखी धन का नाश, धर्म का नाश, बल का नाश होता चला जाता है, फिर भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं।

लाला–मेरे पिताजी एक बार किसी अंग्रेज के साथ पहाड़ पर गए। वहां से लौटे तो मुझे वसीयत की कि खबरदार कभी पहाड़ पर न जाना। आखिर कोई बात देखी होगी, जभी तो यह वसीयत की।

वाजिद–हुजूर, खां साहब जाते हैं जाने दीजिए, आपको मैं जाने की सलाह न दूंगा। जरा सोचिये, कोसों की चढ़ाई फिर रास्ता इतना खतरनाक कि खुदा की पनाह! जरा-सी पगडंडी और दोनों तरफ कोसों का खड्ड। नीचे देखा और थरथराकर आदमी गिर पड़ा ओर जो कहीं पत्थरों में आग लग गई तो चलिए वारा-न्यारा हो गया। जल-भुन के कबाब हो गए।

खां–और जो लाखों आदमी पहाड़ों पर रहते हैं ?

वाजिद–उनकी और बात है भाई साहब।

खां–और बात कैसी ? क्या वे आदमी नहीं हैं ?

वाजिद–लाखों आदमी दिन-भर हल जोतते हैं, फावड़े चलाते हैं, लकड़ी फाड़ते हैं, आप करेंगे ? है आपमें इतना दम ? हुजूर उस चढ़ाई पर चढ़ सकते हैं ?

खां–क्यों नहीं, टट्टुओं पर जायेंगे।

वाजिद–टट्टुओं पर छः कोस की चढ़ाई ! होश की दवा कीजिए।

कुंअर–टट्टू पर ! भई हमसे न जाया जाएगा। कहीं टट्टू भड़के तो कहीं के न रहे।

लाला–गिरे तो हड्डियां तक न मिलें !

व्यास–प्राण तक चूर-चूर हो जाए।

वाजिद–खुदावन्द, एक जरा-सी ऊंचाई पर से आदमी देखता है, तो कांपने लगता

है, न कि पहाड़ की चढ़ाई।

कुंअर–वहां सड़कों पर इधर-उधर ईट या पत्थर की मुंडेर नहीं बनी हुई है ?

वाजिद–खुदावन्द, मंजिलों के रास्ते में मुंडेर कैसी ?

कुंअर–आदमी का काम तो नहीं है।

लाला–सुना वहां घेघा निकल आता है।

कुंअर–अरे भई, यह बुरा रोग है। तब मैं वहां जाने का नाम भी न लूंगा।

खां–आप लाला साहब से पूछें कि साहब लोग जो वहां रहते हैं, उनको घेघा क्यों नहीं हो जाता।

लाला–वह लोग ब्रांडी पीते हैं। हम और आप उनकी बराबरी कर सकते हैं भला। फिर उनका अकबाल !

वाजिद–मुझे तो यकीन नहीं आता कि खां साहब कभी नैनीताल गए हों। इस वक्त डींग मार रहे हैं। क्यों साहब, आप कितने दिन वहां रहे ?

खां–कोई चार बरस तक रहा था।

वाजिद–आप वहां किस मुहल्ले में रहते थे ?

खां (हड़बड़ाकर) जी–मैं ?

वाजिद–आखिर आप चार बरस कहां रहे ?

खां–देखिये याद आ जाए तो कहूं।

वाजिद–जाइए भी। नैनीताल की सूरत तक तो देखी नहीं, गप हांक दी कि वहा चार बरस तक रहे !

खां–अच्छा साहब, आप ही का कहना सही। मैं कभी नैनीताल नहीं गया। बस अब तो खुश हुए ?

कुंअर–आखिर आप क्यों नहीं बताते कि नैनीताल में आप कहां ठहरे थे।

वाजिद–कभी गए हों, तब न बतायें।

खां–कह तो दिया कि मैं नहीं गया, चाहिए छुट्टी हुई। अब आप फरमाइए कुंअर साहब, आपको चलना है या नहीं ? ये लोग जो कहते हैं सब ठीक। वहां घेघा निकल आता है, वहां का पानी इतना खराब कि खाना बिल्कुल नहीं हजम होता, वहां हर रोज दस-पांच आदमी खड्ड में गिरा करते हैं। अब आप क्या फैसला करते हैं ? वहां जो मजे हैं वह यहां ख्वाब में भी नहीं मिल सकते। जिन हुक्काम के दरवाजे पर घण्टों खड़े रहने पर भी मुलाकात नहीं होती, उनसे वहां चौबीसों घण्टों का साथ रहेगा। मिसों के साथ झील में सैर करने का मजा अगर मिल सकता है तो वहीं। अजी सैकड़ों अंग्रेजों से दोस्ती हो जाएगी। तीन महीने वहां रहकर आप नाम हासिल कर सकते हैं जितना यहां जिन्दगी-भर भी न होगा। बस, और क्या कहूं।

कुंअर–वहां बड़े-बड़े अंग्रेजों से मुलाकात हो जाएगी ?

खां–जनाब, दावतों के मारे आपको दम मारने की मोहलत न मिलेगी।

कुंअर–जी तो चाहता है कि एक बार देख ही आयें।

खां–तो बस तैयारी कीजिए।

सभाजन ने देखा कि कुंअर साहब नैनीताल जाने के लिए तैयार हो गए तो

सब-के-सब हां में हां मिलाने लगे।

व्यास—पर्वत-कंदराओं में कभी-कभी योगियों के दर्शन हो जाते हैं।

लाला—हां साहब, सुना है—दो-दो सौ साल के योगी वहां मिलते हैं। जिसकी ओर एक बार आंख उठाकर देख लिया, उसे चारों पदार्थ मिल गए।

वाजिद—मगर हुजूर चलें, तो इस ठाठ से चलें कि वहां के लोग भी कहें कि लखनऊ के कोई रईस आये हैं।

लाला—लक्ष्मी हथिनी को जरूर ले चलिए। वहां कभी किसी ने हाथी की सूरत काहे को देखी होगी। जब सरकार सवार होकर निकलेंगे और गंगा-जमुनी हौदा चमकेगा तो लोग दंग हो जायेंगे।

व्यास—एक डंका भी हो, तो क्या पूछना।

कुंअर—नहीं साहब, मेरी सलाह डंके की नहीं है। देश देखकर भेस बनाना चाहिए।

लाला—हां, डंके की सलाह तो मेरी भी नहीं है। पर हाथी के गले में घण्टा जरूर हो।

खां—तब तक वहां किसी दोस्त को तार दे दीजिए कि एक पूरा बंगला ठीक कर रखे। छोटे साहब को भी उसी में ठहरा लेंगे।

कुंअर—वह हमारे साथ क्यों ठहरने लगे। अफसर हैं।

खां—उनको लाने का जिम्मा हमारा। खींच-खांचकर किसी-न-किसी तरह ले ही आऊंगा।

कुंअर—अगर उनके साथ ठहरने का मौका मिले, तब तो मैं समझूं नैनीताल का जाना पारस हो गया।

3

एक हफ्ता गुजर गया। सफर की तैयारियां हो गयीं। प्रातःकाल काटन साहब का खत आया कि आप हमारे यहां आयेंगे या मुझसे स्टेशन पर मिलेंगे। कुंअर साहब ने जवाब लिखवाया कि आप इधर ही आ जाइएगा। स्टेशन का रास्ता इसी तरफ से है। मैं तैयार रहूंगा। वह खत लिखवाकर कुंअर साहब अन्दर गए तो देखा कि उनकी बड़ी साली रामेश्वरीदेवी बैठी हुई हैं। उन्हें देखकर बोलीं—क्या आप सचमुच नैनीताल जा रहे हैं?

कुंअर—जी हां, आज रात को तैयारी है।

रामेश्वरी—हरे ! आज ही रात को ! यह नहीं हो सकता। कल बच्चा का मुंडन है। मैं एक न मानूंगी। आप ही न होंगे तो और लोग आकर क्या करेंगे।

कुंअर—तो आपने पहले ही क्यों न कहला दिया, पहले से मालूम होता तो मैं कल जाने का इरादा ही क्यों करता।

रामेश्वरी—तो इसमें लाचारी की कौन-सी बात है, कल न सही दो-चार दिन बाद सही।

कुंअर साहब की पत्नी सुशीला देवी बोलीं—हां और क्या, दो-चार दिन बाद ही जाना, क्या साइत टली जाती है।

कुंअर—आह ! छोटे साहब से वादा कर चुका हूं, वह रात ही को मुझे लेने आयेंगे।

आखिर वह अपने दिल में क्या कहेंगे ?

रामेश्वरी—ऐसे-ऐसे वादे हुआ ही करते हैं। छोटे साहब के हाथ कुछ बिक तो गए नहीं हो।

कुंअर—मैं क्या कहूं कि कितना मजबूर हूं ! बहुत लज्जित होना पड़ेगा।

रामेश्वरी—तो गोया जो कुछ हैं, वह छोटे साहब ही हैं, मैं कुछ भी नहीं।

कुंअर—आखिर साहब से क्या कहूं, कौन बहाना करूं ?

रामेश्वरी—कह दो कि हमारे भतीजे का मुंडन है, हम एक सप्ताह तक नहीं चल सकते। बस, छुट्टी हुई।

कुंअर—(हंसकर) कितना आसान कर दिया है आपने इस समस्या को। ऐसा हो सकता है कहीं। कहीं मुंह दिखाने लायक न रहूंगा।

सुशीला—क्यों, हो सकने को क्या हुआ ? तुम उसके गुलाम तो नहीं हो ?

कुंअर—तुम लोग बाहर तो निकलती-बैठती नहीं हो, तुम्हें क्या मालूम कि अंग्रेजों के विचार कैसे होते हैं।

रामेश्वरी—अरे भगवान् ! आखिर उसके कोई लड़का-बाला है, या निगोड़ा नाठा है ? त्योहार और ब्योहार हिन्दू-मुसलमान सबके यहां होते हैं।

कुंअर—भई हमसे कुछ करते-धरते नहीं बनता।

रामेश्वरी—हमने कह दिया, हम जाने नहीं देंगे। अगर तुम चले गए तो मुझे बड़ा रंज होगा। तुम्हीं लोगों से तो महफिल की शोभा होगी और अपना कौन बैठा हुआ है।

कुंअर—अब तो साहब को लिख भेजने का भी मौका नहीं है। वह दफ्तर चले गए होंगे। मेरा सब असबाब बंध चुका है। नौकरों को पेशगी रुपया दे चुका कि चलने की तैयारी करें। अब कैसे रुक सकता हूं।

रामेश्वरी—कुछ भी हो, जाने न पाओगे।

सुशीला—दो-चार दिन बाद जाने में ऐसी कौन-सी बड़ी हानि हुई जाती है ? वहां कौन लड्डू धरे हैं ?

कुंअर साहब बड़े धर्मसंकट में पड़े, अगर नहीं जाते तो छोटे साहब से झूठे पड़ते हैं। वह अपने दिल में कहेंगे कि अच्छे बेहूदे आदमी के साथ पाला पड़ा। अगर जाते हैं तो स्त्री से बिगाड़ होता है, साली मुंह फुलाती है। इसी चक्कर में पड़े हुए बाहर आए तो मियां वाजिद बोले—हुजूर इस वक्त कुछ उदास मालूम होते हैं।

व्यास—मुद्रा तेजहीन हो गई है।

कुंअर—भई, कुछ न पूछो, बड़े संकट में हूं।

वाजिद—क्या हुआ हुजूर, कुछ फरमाइए तो ?

कुंअर—यह भी एक विचित्र ही देश है।

व्यास—धर्मावतार, प्राचीन काल से यह ऋषियों की तपोभूमि है।

लाल—क्या कहना है, संसार में ऐसा देश दूसरा नहीं।

कुंअर—जी हां, आप जैसे गौखे और किस देश में होंगे। बुद्धि तो हम लोगों को छू भी नहीं गई।

वाजिद—हुजूर, अक्ल के पीछे तो हम लोग लट्ठ लिए फिरते हैं।

व्यास—धर्मावतार, कुछ कहते नहीं बनता। बड़ी हीन दशा है।

कुंअर—नैनीताल जाने को तैयार था। अब बड़ी साली कहती हैं कि मेरे बच्चे का मुंडन है, मैं न जाने दूंगी, चले जाओगे तो मुझे रंज होगा। बतलाइए, अब क्या करूं ? ऐसी मूर्खता और कहां देखने में आएगी। पूछो मुंडन नाई करेगा, नाच-तमाशा देखने वालों की शहर में कमी नहीं, एक मैं न हूंगा न सही, मगर उनको कौन समझावे।

व्यास—दीनबन्धु, नारि-हठ तो लोकप्रसिद्ध ही है।

कुंअर—अब यह सोचिए कि छोटे साहब से क्या बहाना किया जाएगा।

वाजिद—बड़ा नाजुक मुआमला आ पड़ा हुजूर।

लाला—हाकिम का नाराज हो जाना बुरा है।

वाजिद—हाकिम मिट्टी का भी हो, फिर भी हाकिम ही है।

कुंअर—मैं तो बड़ी मुसीबत में फंस गया।

लाला—हुजूर, अब बाहर न बैठें। मेरी तो यही सलाह है। जो कुछ सिर पर पड़ेगी, हम ओढ़ लेंगे।

वाजिद—अजी, पसीने की जगह खून गिरा देंगे। नमक खाया है कि दिल्लगी है।

कुंअर—हां, मुझे भी यही मुनासिब मालूम होता है। आप लोग कह दीजिए बीमार हो गये हैं।

अभी यह बातें हो ही रही थीं कि खिदमतगार ने आकर हांफते हुए कहा—सरकार, कोऊ आवा है, तौन सरकार का बलावत है।

कुंअर—कौन है पूछा नहीं ?

खिदमतगार—कोऊ रंगरेज है सरकार, लाल-लाल मुंह है, घोड़ा पर सवार है।

कुंअर—कहीं छोटे साहब तो नहीं हैं, भई मैं तो भीतर जाता हूं। अब आबरू तुम्हारे हाथ है।

कुंअर साहब ने तो भीतर घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया। वाजिदअली ने खिड़की से झांककर देखा, तो छोटे साहब खड़े थे। हाथ-पांव फूल गये। अब साहब के सामने कौन जाय ? किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। एक-दूसरे को ठेल रहा है।

लाला—बढ़ जाओ वाजिदअली। देखो क्या कहते हैं ?

वाजिद—आप ही क्यों नहीं चले जाते ?

लाला—आदमी ही तो वह भी है, कुछ खा तो न जायगा।

वाजिद—तो चले क्यों नहीं जाते !

काटन साहब दो-तीन मिनट खड़े रहे। जब यहां से कोई न निकला तो बिगड़कर बोले—यहां कौन आदमी है ? कुंअर साहब से बोलो, काटन साहब खड़ा है।

मियां वाजिद बौखलाए हुए आगे बढ़े और हाथ बांधकर बोले—खुदावन्द कुंअर साहब ने आज बहुत देर से खाना खाया, तो तबियत कुछ भारी हो गयी है। इस वक्त आराम में हैं, बाहर नहीं आ सकते।

काटन—ओह ! तुम यह क्या बोलता है। वह तो हमारे साथ नैनीताल जाने वाला था। उसने हमको खत लिखा था।

वाजिद—हां, हुजूर, जाने वाले तो थे पर बीमार हो गए।

काटन—बहुत रंज हुआ।

वाजिद—हुजूर इत्तफाक है।

काटन—हमको बहुत अफसोस है। कुंअर साहब से जाकर बोलो, हम उनको देखना मांगता है।

वाजिद—हुजूर बाहर नहीं आ सकते।

काटन—कुछ परवा नहीं, हम अन्दर जाकर देखेगा।

कुंअर साहब दरवाजे से चिमटे हुए काटन साहब की बातें सुन रहे थे। नीचे की सांस नीचे थी, ऊपर की ऊपर। काटन साहब की घोड़ो से उतरकर दरवाजे की तरफ आते देखा, तो गिरते-पड़ते दौड़े और सुशीला से बोले—दुष्ट मुझे देखने घर में आ रहा है। मैं चारपाई पर लेट जाता हूं, चटपट लिहाफ निकलवाओ और मुझे ओढ़ा दो। दस पांच शीशियां लाकर इस गोल मेज पर रखवा दो।

इतने में वाजिदअली ने द्वार खटखटाकर कहा—महरी, जरा दरवाजा खोल दो, साहब बहादुर कुंअर साहब को देखना चाहते हैं। सुशीला ने लिहाफ मांगा. पर गर्मी के दिन थे, जाड़े के कपड़े सन्दूकों में बन्द पड़े थे। चटपट सन्दूक खोलकर दो-तीन मोटे लिहाफ लाकर कुंअर साहब को ओढ़ा दिए। फिर अल्मारी से कई शीशियां और कई बोतल निकालकर मेज पर चुन दिए और महरी से कहा—जरा किवाड़ खोल दो, मैं ऊपर चली जाती हूं।

काटन साहब ज्यों ही कमरे में पहुंचे, कुंअर साहब ने लिहाफ से मुंह निकाल दिया और कराहते हुए बोले—बड़ा कष्ट है हुजूर। सारा शरीर फुंका जाता है।

काटन—आप दोपहर तक तो अच्छा था, खां साहब हमसे कहता था कि आप तैयार हैं, कहां दरद है ?

कुंअर—हुजूर, पेट में बहुत दर्द है। बस, यही मालूम होता है कि दम निकल जायगा।

काटन—हम जाकर सिविल सर्जन को भेज देता है। वह पेट का दर्द अभी अच्छा कर देगा। आप घबरायें नहीं, सिविल सर्जन हमारा दोस्त है।

काटन चला गया तो कुंअर साहब फिर बाहर आ बैठे। रोजा बख्शाने गये थे, नमाज गले पड़ी। अब यह फिक्र पैदा हुई कि सिविल सर्जन को कैसे टाला जाय।

कुंअर—भई, यह तो नई बला गले पड़ी।

वाजिद—यहां तो हुजूर, हमारी अक्ल भी काम नही करती।

कुंअर—कोई जाकर खां साहब को बुला लाओ। कहना, अभी चलिए। ऐसा न हो कि वह देर करें और सिविल सर्जन यहां सिर पर सवार हो जाय।

लाला—सिविल सर्जन की फीस भी बहुत होगी ?

कुंअर—अजी तुम्हें फीस की पड़ी है, यहां जान आफत में है। अगर सौ-दो सौ देकर गला छूट जाय तो अपने को भाग्यवान समझूं।

वाजिदअली ने फिटन तैयार करायी और खां साहब के घर पहुंचे। देखा तो वह असबाव बंधवा रहे हैं। उनसे सारा किस्सा बयान किया और कहा—अभी चलिए। आपको बुलाया है।

खां—मामला बहुत टेढ़ा है। बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ेगी। कसम खुदा की, तुम सब

के सब मार देने के लायक हो। जरा देर के लिए मैं टल क्या गया कि सारा खेल ही बिगाड़ दिया।

वाजिद—खां साहब, हमसे तो उड़िये नहीं। कुंअर साहब बौखलाये हैं। दो-चार सौ का वारा-न्यारा है। चलकर सिविल सर्जन को मना कर दीजिए।

खां—चलो, शायद कोई तदबीर सूझ जाय।

दोनों आदमी सिविल सर्जन के बंगले की तरफ चले। वहां मालूम हुआ कि साहब कुंअर साहब के मकान पर गए हैं। फौरन फिटन घुमा दी और कुंअर साहब की कोठी पर पहुंचे। देखा तो सर्जन साहब एनीमा लिए हुए कुंअर साहब की चारपाई के सामने बैठे हुए हैं।

खां—मैं तो हुजूर के बंगले से चला आ रहा हूं। कुंअर साहब का क्या हाल है?

डॉक्टर—पेट में दर्द है। अभी पिचकारी लगाने से अच्छा हो जायगा।

कुंअर—हुजूर, अब दर्द बिल्कुल नहीं है। मुझे कभी-कभी यह मर्ज हो जाता है और आप ही आप अच्छा हो जाता है।

डॉक्टर—ओ, आप डरता है। डरने की कोई बात नहीं है। आप एक मिनट में अच्छा हो जायगा।

कुंअर—हुजूर, मैं बिल्कुल अच्छा हूं। अब कोई शिकायत नहीं है।

डॉक्टर—डरने की कोई बात नहीं, यह सब आदमी यहां से हट जाय, हम एक मिनट में अच्छा कर देगा।

खां साहब ने डॉक्टर के कान में कहा—हुजूर, अपनी रात की डबल फीस और गाड़ी का किराया लेकर चले जायं, इन रईसों के फेर में न पड़ें, यह लोग बारहों महीने इसी तरह बीमार रहते हैं। एक हफ्ते तक आकर एक बार देख लिया कीजिए।

डॉक्टर साहब की समझ में यह बात आ गयी। कल फिर आने का वादा करके चले गए। लोगों के सिर से बला टली। खां साहब की कारगुजारी की तारीफें होने लगीं।

कुंअर—खां साहब, आप वक्त पर काम आये। जिन्दगी-भर आपका एहसान मानूंगा।

खां—जनाब, दो सौ चटाने पड़े। कहता था छोटे साहब का हुक्म है। मैं बिला पिचकारी लगाये न जाऊंगा। अंग्रेजों का हाल तो आप जानते हैं। बात के पक्के होते हैं।

कुंअर—यह भी कह दिया न कि छोटे साहब को मेरी बीमारी की इत्तला कर दें और कह दें, वह सफर करने लायक नहीं हैं।

खां—हां साहब, और रुपये दिये किसलिए, क्या मेरा कोई रिश्तेदार था ? मगर छोटे साहब को होगी बड़ी तकलीफ। बेचारे ने आपके बंगले के आसरे पर होटल का इन्तजाम भी न किया था। मामला बेढब हुआ।

कुंअर—तो भई, मैं क्या करता, आप ही सोचिए।

खां—यह चाल उल्टी पड़ी। जिस वक्त काटन साहब यहां आये थे, आपको उन से मिलना चाहिए था। साफ कह देते, आज एक सख्त जरूरत से रुकना पड़ा। लेकिन खैर, मैं साहब के साथ रहूंगा, कोई इन्तजाम हो ही जायगा।

कुंअर—क्या अभी आप जाने का इरादा कर ही रहे हैं। हलफ से कहता हूं, मैं आपको

न जाने दूंगा, यहां न जाने कैसी पड़े कैसी न पड़े। मियां वाजिद, देखो, आपके घर कहला दो, बाहर न जायेंगे।

खां—आप अपने साथ मुझे डुबाना चाहते हैं। छोटे साहब आपसे नाराज भी हो जाएं तो क्या कर लेंगे, लेकिन मुझसे नाराज हो गए, तो खराब ही कर डालेंगे।

कुंअर—जब तक हम जिन्दा हैं भाई साहब, आपको कोई तिरछी नजर से नहीं देख सकता। जाकर छोटे साहब से कहिए, कुंअर साहब की हालत अच्छी नहीं, मैं अब नहीं जा सकता। इसमें मेरी तरफ से भी साफ हो जाएगा और आपकी दोस्ती देखकर आपकी और भी इज्जत करने लगेगा।

खां—अब वह इज्जत करे या न करे, अब आप इतना इसरार कर रहे हैं तो मैं भी इतना बे-मुरौवत नहीं हूं कि आपको छोड़कर चला जाऊं। यह तो हो ही नहीं सकता। जरा देर के लिए घर चला गया, उसका तो इतना तावान देना पड़ा। नैनीताल चला जाऊं तो शायद कोई आपको उठा ही ले जाय।

कुंवर—मजे से दो-चार दिन जलसे देखेंगे, नैनीताल में यह मजे कहां मिलते। व्यास जी, अब तो यों नहीं बैठा जाता। देखिए आपके भंडार में कुछ है, दो-चार बोतलें निकालिए, कुछ रंग जमे।(रतननाथ सरशार कृत 'सैरे कोहसार' के आधार पर)।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक-पत्रिका 'माधुरी', अप्रैल, 1929 में प्रकाशित. केवल हिन्दी में प्रकाशित। 'कफन' में संकलित। 'गुप्तधन' भाग-2 में अमृतराय द्वारा संकलित की गई]

माँ

आज बंदी छूटकर घर आ रहा है। करुणा ने एक दिन पहले ही घर लीप-पोत रक्खा था, इन तीन वर्षो में उसने कठिन तपस्या करके जो दस-पाँच रुपये जमा कर रखे थे, वह सब पति के सत्कार और स्वागत की तैयारियों में खर्च कर दिये। पति के लिए धोतियों का जोड़ा लायी थी, नये कुरते बनवाये थे, बच्चे के लिए नये कोट और टोपी की आयोजना की थी। बार-बार बच्चे को गले लगाती, और प्रसन्न होती। अगर इस बच्चे ने सूर्य की भाँति उदय होकर उसके अंधेरे जीवन को प्रदीप्त न कर दिया होता, तो कदाचित् ठोकरों ने उसके जीवन का अन्त कर दिया होता। पति के कारावास दंड के तीन ही महीने बाद इस बालक का जन्म हुआ। उसी का मुँह देख-देखकर करुणा ने यह तीन साल काट दिये थे। वह सोचती—जब मैं बालक को उनके सामने ले जाऊँगी, तो वह कितने प्रसन्न होंगे ! उसे देखकर पहले तो चकित हो जायेंगे, फिर गोद में उठा लेंगे, और कहेंगे—करुणा, तुमने यह रत्न देकर मुझे निहाल कर दिया। कैद के सारे कष्ट बालक की तोतली बातों में भूल जायेंगे, उसकी एक सरल, पवित्र, मोहक दृष्टि हृदय की सारी व्यथाओं को धो डालेगी। इस कल्पना का आनन्द लेकर वह फूली न समाती थी। वह सोच रही थी—आदित्य के साथ बहुत से आदमी होंगे। जिस समय वह द्वार पर पहुँचेंगे, 'जय-जय शंकर' की ध्वनि से आकाश गूँज उठेगा। वह कितना स्वर्गीय दृश्य होगा। उन आदमियों के बैठने के लिए

करुणा ने एक फटा-सा टाट बिछा दिया था, कुछ पान बना लिये थे और बार-बार आशामय नेत्रों से द्वार की ओर ताकती थी। पति की वह सुदृढ़, उदार, तेजपूर्ण मुद्रा बार-बार आँखों में फिर जाती थी, उनकी वे बातें बार-बार याद आती थीं, जो चलते समय उनके मुख स निकली थीं, उनका वह धैर्य, वह आत्मबल, जो पुलिस के प्रहारों के सामने भी अटल रहा था, वह मुस्कराहट जो उस समय भी उनके अधरों पर खेल रही थी; वह आत्माभिमान जो उस समय भी उनके मुख से टपक रहा था, क्या करुणा के हृदय से कभी विस्मृत हो सकता था ? उनका स्मरण आते ही करुणा के निस्तेज मुख पर आत्मगौरव की लालिमा छा गयी। यही वह आलम्बन था, जिसने इन तीन वर्षों की घोर यातनाओं में भी उसके हृदय को आश्वासन दिया था। कितनी ही रातें फाकों से गुजरीं, बहुधा घर में दीपक जलने की नौबत भी न आती थी; पर दीनता के आँसू कभी उसकी आँखों से न गिरे। आज उन सारी विपत्तियों का अन्त हो जायगा। पति के प्रगाढ़ आलिंगन में वह सब कुछ हँसकर झेल लेगी। वह अनन्त निधि पाकर फिर उसे कोई अभिलाषा न रहेगी।

गगन-पथ का चिरगामी पथिक लपका हुआ विश्राम की ओर चला जाता था, जहाँ सन्ध्या ने सुनहरी फ़र्श सजाया था और उज्ज्वल पुष्पों की सेज बिछा रखी थी। उसी समय करुणा को एक आदमी लाठी टेकता आता दिखाई दिया, मानों किसी जीर्ण मनुष्य की वेदना-ध्वनि हो। पग-पग पर रुककर खाँसने लगता था। उसका सिर झुका हुआ था; करुणा उसका चेहरा न देख सकती थी; लेकिन चाल-ढाल से कोई बूढ़ा आदमी मालूम होता था, पर एक क्षण में जब वह समीप आ गया, तो करुणा उसे पहचान गयी। वह उसका प्यारा पति ही था; किन्तु शोक। उसकी सूरत कितनी बदल गयी थी। वह जवानी, वह तेज, वह चपलता, वह सुगठन सब प्रस्थान कर चुका था। केवल हड्डियों का एक ढाँचा रह गया था। न कोई संगी, न साथी, न यार, न दोस्त। करुणा उसे पहचानते ही बाहर निकल आयी, पर आलिंगन की कामना हृदय में दबकर ही रह गयी। सारे मंसूबे धूल में मिल गये। सारा मनोल्लास आँसुओं के प्रवाह में बह गया, विलीन हो गया।

आदित्य ने घर में कदम रखते ही मुसकिराकर करुणा को देखा। पर उस मुसक्यान में वेदना का एक संसार भरा हुआ था। करुणा ऐसी शिथिल हो गयी, मानो हृदय का स्पन्दन रुक गया हो। वह फटी हुई आँखों से स्वामी की ओर टकटकी बाँधें खड़ी थी, मानों उसे अपनी आँखों पर अब भी विश्वास न आता हो। स्वागत या दुख का एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। बालक भी उसकी गोद में बैठा हुआ सहमी आँखों से इस कंकाल को देख रहा था और माता की गोद में चिपटा जाता था।

आखिर उसने कातर स्वर में कहा—यह तुम्हारी क्या दशा है ? बिल्कुल पहचाने नहीं जाते।

आदित्य ने उसकी चिंता को शांत करने के लिए मुसकिराने की चेष्टा करके कहा—कुछ नहीं, जरा दुबला हो गया हूँ। तुम्हारे हाथों का भोजन पाकर फिर स्वस्थ हो जाऊँगा।

करुणा—छी ! सूखकर काँटा हो गये। क्या वहाँ भरपेट भोजन भी नहीं मिलता! तुम कहते थे, राजनैतिक आदमियों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया जाता है, और वह तुम्हारे साथी क्या हो गये, जो तुम्हें आठों पहर घेरे रहते थे और तुम्हारे पसीने की जगह खून बहाने

को तैयार रहते थे।

आदित्य की त्यौरियों पर बल पड़ गये। बोले—यह बड़ा ही कटु अनुभव है करुणा। मुझे न मालूम था कि मेरे कैद होते ही लोग मेरी ओर से यों आँखें फेर लेंगे, कोई बात भी न पूछेगा। राष्ट्र के नाम पर मिटनेवालों का यही पुरस्कार है, यह मुझे न मालूम था। जनता अपने सेवकों को बहुत जल्द भूल जाती है, यह तो मैं जानता था; लेकिन अपने सहयोगी और सहायक इतने बेवफा होते हैं, इसका मुझे यह पहला ही अनुभव हुआ; लेकिन मुझे किसी से शिकायत नहीं। सेवा स्वयं अपना पुरस्कार है। मेरी भूल थी कि मैं इसके लिए यश और नाम चाहता था।

करुणा—तो क्या वहाँ भोजन भी न मिलता था ?

आदित्य—यह न पूछो करुणा, बड़ी करुण कथा है। बस यही गनीमत समझो की जीता लौट आया। तुम्हारे दर्शन बदे थे; नहीं कष्ट तो ऐसे-ऐसे उठाये कि अब तक मुझे प्रस्थान कर जाना चाहिए था। मैं जरा लेटूँगा। खड़ा नहीं रहा जाता। दिन भर में इतनी दूर आया हूँ।

करुणा—चलकर कुछ खा लो; आराम से लेटो। (बालक को गोद में उठाकर) बाबू जी हैं बेटा, तुम्हारे बाबू जी। इनकी गोद में जाओ तुम्हें प्यार करेंगे।

आदित्य ने आँसू-भरी आँखों से बालक को देखा और उनका एक-एक रोम उनका तिरस्कार करने लगा। अपनी जीर्ण दशा पर उन्हें कभी इतना दुःख न हुआ था। ईश्वर की असीम दया से यदि उनकी दशा सँभल जाती, तो वह फिर कभी राष्ट्रीय आन्दोलनों के समीप न जाते। इस फूल-से बच्चे को यों संसार में लाकर दरिद्रता और दीनता की आग में झोंकने का उन्हें क्या अधिकार था ? वह अब लक्ष्मी की उपासना करेंगे; और अपना क्षुद्र जीवन बच्चे के लालन-पालन के लिए अर्पित कर देंगे। उन्हें उस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि बालक उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है; मानो कह रहा है—'मेरे साथ आपने अपना कौन-सा कर्तव्य पालन किया ?' उनकी सारी कामना, सारा प्यार बालक को हृदय से लगा लेने के लिए अधीर हो उठा; पर हाथ फैला न सके। हाथों में शक्ति ही न थी।

करुणा बालक को लिये हुए उठी, और थाली में कुछ भोजन निकालकर लायी। आदित्य ने क्षुधा-पूर्ण नेत्रों से थाली की ओर देखा, मानो आज बहुत दिनों के बाद कोई खाने की चीज सामने आयी है। जानता था कि कई दिनों के उपवास के बाद और आरोग्य की इस गयी-गुजरी दशा में उसे जबान को काबू में रखना चाहिए; पर सब्र न कर सका; थाली पर टूट पड़ा और देखते-देखते थाली साफ कर दी। करुणा संशक हो गयी। उसने दोबारा किसी चीज के लिए न पूछा। थाली उठाकर चली गयी, पर उसका दिल कह रहा था—इतना तो यह कभी न खाते थे।

करुणा बच्चे को कुछ खिला रही थी कि एकाएक कानों में आवाज आयी—करुणा !

करुणा ने आकर पूछा—क्या तुमने मुझे पुकारा है ?

आदित्य का चेहरा पीला पड़ गया था, और साँस जोर-जोर से चल रही थी। हाथों के सहारे वहीं टाट पर लेट गये थे। करुणा उनकी यह हालत देखकर घबड़ा गयी। बोली—जाकर किसी वैद को बुला लाऊँ ?

आदित्य ने हाथ के इशारे से उसे मना करके कहा—व्यर्थ है करुणा ! अब तुमसे

छिपाना व्यर्थ है, मुझे सिल हो गया है। कई बार मरते-मरते बच गया हूँ। तुम लोगों के दर्शन बदे थे। इसलिए प्राण न निकलते थे। देखो प्रिये, रोओ मत।

करुणा ने सिसकियों को दबाते हुए कहा—मैं वैद जी को लेकर अभी आती हूँ।

आदित्य ने फिर सिर हिलाया—नहीं करुणा, केवल मेरे पास बैठी रहो। अब किसी से कोई आशा नहीं है। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। मुझे तो यही आश्चर्य है कि यहाँ पहुँच कैसे गया। न जाने कौन-सी दैवी शक्ति मुझे वहाँ से खींच लायी। कदाचित् यह इस बुझते हुए दीपक की अन्तिम झलक थी। आह ! मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। इसका मुझे हमेशा दुःख रहेगा। मैं तुम्हें कोई आराम न दे सका। तुम्हारे लिए कुछ न कर सका। केवल सोहाग का दाग लगाकर और एक बालक के पालन का भार छोड़कर चला जा रहा हूँ। आह !

करुणा ने हृदय को दृढ़ करके कहा—तुम्हें कहीं दर्द तो नहीं हो रहा है ? आग बना लाऊँ। कुछ बताते क्यों नहीं ?

आदित्य ने करवट बदलकर कहा—कुछ करने की जरूरत नहीं प्रिये। कहीं दर्द नहीं। बस, ऐसा मालूम हो रहा है कि दिल बैठा जाता है, जैसे पानी में डूबा जाता हूँ। जीवन की लीला समाप्त हो रही है। दीपक को बुझते हुए देख रहा हूँ। कह नहीं सकता, कब आवाज बन्द हो जाय। जो कुछ कहना है, वह कह डालना चाहता हूँ। क्यों वह लालसा ले जाऊँ ? मेरे एक प्रश्न का जवाब दोगी, पूछूँ ?

करुणा के मन की सारी दुर्बलता, सारा शोक, सारी वेदना मानो लुप्त हो गयी, और उनकी जगह उस आत्म-बल का उदय हुआ, जो मृत्यु पर हँसता है, और विपत्ति के साँपों से खेलता है। रत्न-जड़ित, मखमली म्यान में जैसे तेज तलवार छिपी रहती है, जल के कोमल प्रवाह में जैसे असीम शक्ति छिपी रहती है, वैसे ही रमणी का कोमल हृदय साहस और धैर्य को अपनी गोद में छिपाये रहता है। क्रोध जैसे तलवार को बाहर खींच लेता है, विज्ञान जैसे जल-शक्ति का उद्घाटन कर लेता है, वैसे ही प्रेम रमणी के साहस और धैर्य को प्रदीप्त कर देता है।

करुणा ने पति के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—पूछते क्यों नहीं प्यारे !

आदित्य ने करुणा के हाथों के कोमल स्पर्श का अनुभव करते हुए कहा—तुम्हारे विचार में मेरा जीवन कैसा था। बधाई के योग्य ? देखो, तुमने मुझसे कभी परदा नहीं रखा। इस समय भी स्पष्ट ही कहना। तुम्हारे विचार में मुझे अपने जीवन पर हँसना चाहिये या रोना चाहिये ?

करुणा ने उल्लास के साथ कहा—यह प्रश्न क्यों करते हो प्रियतम ? क्या मैंने तुम्हारी कभी उपेक्षा की है ? तुम्हारा जीवन देवताओं का-सा जीवन था, निःस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श ! विघ्न-बाधाओं से तंग आकर मैंने तुम्हें कितनी ही बार संसार की ओर खींचने की चेष्टा की है; पर उस समय भी मैं मन में जानती थी कि मैं तुम्हें ऊँचे आसन से गिरा रही हूँ। अगर तुम माया-मोह में फँसे होते, कदाचित् मेरे मन को अधिक सन्तोष होता; लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास न होता, जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बड़े-से-बड़ा आशीर्वाद दे सकती हूँ, तो वह यही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।

यह कहते-कहते करुणा का आभाहीन मुखमण्डल ज्योतिर्मय हो गया, मानो उसकी आत्मा दिव्य हो गयी हो। आदित्य ने सगर्व नेत्रों से करुणा को देखकर कहा—बस, अब मुझे सन्तोष हो गया करुणा, इस बच्चे की ओर से मुझे कोई शंका नहीं है। मैं उसे इससे अधिक कुशल हाथों में नहीं छोड़ सकता। मुझे विश्वास है कि जीवन का यह ऊँचा और पवित्र आदर्श सदैव तुम्हारे सामने रहेगा। अब मैं मरने को तैयार हूँ।

2

सात वर्ष बीत गये।

बालक प्रकाश अब दस साल का रूपवान, बलिष्ठ, प्रसन्नमुख कुमार था, बला का तेज, साहसी और मनस्वी। भय तो उसे छू भी नहीं गया था। करुणा का संतप्त हृदय उसे देखकर शीतल हो जाता। संसार करुणा को अभागिनी और दीन समझे। वह कभी भाग्य का रोना नहीं रोती। उसने उन आभूषणों को बेच डाला, जो पति के जीवन में उसे प्राणों से भी प्रिय थे, और उस धन से कुछ गायें और भैंसें मोल लीं। वह कृषक की बेटी थी, और गो-पालन उसके लिए कोई नया व्यवसाय न था। इसी को उसने अपनी जीविका का साधन बनाया। विशुद्ध दूध कहाँ मयस्सर होता है ? सब दूध हाथों-हाथ बिक जाता। करुणा को पहर दिन से पहर रात तक काम में लगा रहना पड़ता; पर वह प्रसन्न थी। उसके मुख पर निराशा या दीनता की छाया नहीं, संकल्प और साहस का तेज है। उसके एक-एक अंग से आत्म-गौरव की ज्योति-सी निकल रही है; आँखों में एक दिव्य प्रकाश है—गंभीर, अथाह और असीम। सारी वेदनाएँ—वैधव्य का शोक और विधि का निर्दय प्रहार—सब उस प्रकाश की गहराई में विलीन हो गया है। प्रकाश पर वह जान देती है। उसका आनन्द, उसकी अभिलाषा, उसका संसार, उसका स्वर्ग, सब प्रकाश पर न्योछावर है; पर यह मजाल नहीं कि प्रकाश कोई शरारत करे और करुणा आँखें बन्द कर ले। नहीं, वह उसके चरित्र की बड़ी कठोरता से देखभाल करती है। वह प्रकाश की माँ ही नहीं, माँ-बाप दोनों है। उसके पुत्र-स्नेह में माता की ममता के साथ पिता की कठोरता भी मिली हुई है। पति के अन्तिम शब्द अभी तक उसके कानों में गूँज रहे हैं। वह आत्मोल्लास जो उनके चेहरे पर झलकने लगा था, वह गर्वमयी लाली जो उनकी आँखों में छा गयी थी, अभी तक उसकी आँखों में फिर रही है। निरन्तर पति-चिंतन ने आदित्य को उसकी आँखों में प्रत्यक्ष कर दिया है। वह सदैव उनकी उपस्थिति का अनुभव किया करती है। उसे ऐसा जान पड़ता है कि आदित्य की आत्मा सदैव उसकी रक्षा करती रहती है। उसकी यही हार्दिक अभिलाषा है कि प्रकाश जवान होकर पिता का पदगामी हो।

संध्या हो गयी थी। एक भिखारिन द्वार पर आकर भीख माँगने लगी। करुणा उस समय गऊओं को सानी दे रही थी। प्रकाश बाहर खेल रहा था। बालक ही तो था। शरारत सूझी ! घर में गया, और कटोरे में थोड़ा-सा भूसा लेकर बाहर निकला। भिखारिन ने अपनी झोली फैला दी। प्रकाश ने भूसा उसकी झोली में डाल दिया और जोर-जोर से तालियाँ बजाता हुआ भागा।

भिखारिन ने अग्निमय नेत्रों से देखकर कहा—वाह रे लाडले ! मुझसे हँसी करने

चला है ! यही माँ-बाप ने सिखाया है ! तब तो खूब कुल का नाम जगाओगे।

करुणा उसकी बोल सुनकर बाहर निकल आयी, और पूछा—क्या है माता ? किसे कह रही हो ?

भिखारिन ने प्रकाश की तरफ इशारा करके कहा—वह तुम्हारा लड़का है न। देखो, कटोरे में भूसा भरकर मेरी झोली में डाल गया है। चुटकी-भर आटा था, वह भी मिट्टी में मिल गया। कोई इस तरह दुखियों को सताता है ? सबके दिन एक से नहीं रहते। आदमी को घमण्ड न करना चाहिए।

करुणा ने कठोर स्वर में पुकारा—प्रकाश !

प्रकाश लज्जित न हुआ। अभिमान से सिर उठाये हुए आया और बोला—यह हमारे घर भीख माँगने क्यों आयी है। कुछ काम क्यों नहीं करती ?

करुणा ने उसे समझाने की चेष्टा करके कहा शर्म तो नहीं आती, उलटे और आँखें दिखाते हो।

प्रकाश—शर्म क्यों आये ? यह क्यों रोज भीख माँगने आती है ? हमारे यहाँ क्या कोई चीज मुफ्त आती है !

करुणा—तुम्हें कुछ न देना था तो सीधे से कह देते, जाओ। तुमने यह शरारत क्यों की ?

प्रकाश—उसकी आदत कैसे छूटती ?

करुणा ने बिगड़कर कहा—तुम अब पिटोगे, मेरे हाथों।

प्रकाश—पिटूँगा क्यों, आप जबरदस्ती पीटेंगी ? दूसरे मुल्कों में अगर कोई भीख माँगे, तो कैद कर लिया जाय। यह नहीं कि उलटे भिखमगों को और शह दिया जाय।

करुणा—जो अपंग है, वह कैसे काम करे ?

प्रकाश—तो जाकर डूब मरे, जिन्दा क्यों रहती है।

करुणा निरुत्तर हो गयी। बुढ़िया को तो उसने आटा-दाल देकर विदा किया; किन्तु प्रकाश का कुतर्क उसके हृदय में फोड़े के समान टीसता रहा। इसने यह धृष्टता, यह अविनय कहाँ सीखा। रात को भी उसे बार-बार यही खयाल सताता रहा।

आधी रात के समीप एकाएक प्रकाश की नींद टूटी, तो देखा। लालटेन जल रही है और करुणा बैठी रो रही है। उठ बैठा और बोला—अम्माँ, अभी तुम सोई नहीं ?

करुणा ने मुँह फेरकर कहा—नींद नहीं आयी। तुम कैसे जाग गये ? प्यास तो नहीं लगी है ?

प्रकाश—नहीं अम्माँ, न जाने क्यों आँख खुल गयी। मुझसे आज बड़ा अपराध हुआ अम्माँ।

करुणा ने उसके मुख की ओर स्नेह के नेत्रों से देखा।

प्रकाश—मैंने आज बुढ़िया के साथ बड़ी नटखटी की। मुझे क्षमा करो। फिर कभी ऐसी शरारत न करूँगा।

यह कहकर वह रोने लगा। करुणा ने स्नेहाद्र होकर उसे गले लगा लिया और उसके कपोलों का चुम्बन करके बोली—बेटा, मुझे खुश करने के लिए यह कह रहे हो; या तुम्हारे मन में सचमुच पछतावा हो रहा है ?

प्रकाश ने सिसकते हुए कहा—नहीं अम्माँ, मुझे दिल से अफसोस हो रहा है। अबकी वह बुढ़िया आयेगी, तो मैं उसे बहुत से पैसे दूँगा।

करुणा का हृदय मतवाला हो गया। ऐसा जान पड़ा, आदित्य सामने खड़े बच्चे को आशीर्वाद दे रहे थे और कह रहे हैं, करुणा, क्षोभ मत कर ! प्रकाश अपने पिता का नाम रोशन करेगा। तेरी संपूर्ण कामनाएँ पूरी हो जायँगी।

3

लेकिन प्रकाश के कर्म और वचन में मेल न था, और दिनों के साथ उसके चरित्र का यह अग प्रत्यक्ष होता जाता था। जहीन था ही, विश्वविद्यालय से उसे वजीफे मिलते थे, करुणा भी उसकी यथेष्ट सहायता करती रहती थी, फिर भी उसका खर्च पूरा न पड़ता था। वह मितव्ययिता और सरल जीवन पर विद्वत्ता से भरे हुए व्याख्यान दे सकता था; पर उसका रहन-सहन फैशन के अंधभक्तों से जौ भर भी घट कर न था। प्रदर्शन की धुन हमेशा सवार रहती थी। उसके मन और बुद्धि में निरन्तर द्वन्द्व होता रहता था। मन जाति की ओर था, बुद्धि, अपनी ओर। बुद्धि मन को दबाये रखती थी। उसके सामने मन की एक न चलती थी। जाति-सेवा ऊसर की खेती है, वहाँ बड़े-से-बड़ा उपहार जो मिल सकता है, वह है गौरव और यश; पर वह भी स्थायी नहीं, इतना अस्थिर कि एक क्षण में जीवन भर की कमाई पर पानी फिर सकता है। अतएव उसका अंतःकरण अनिवार्य वेग के साथ विलासमय जीवन की ओर झुकता था। यहाँ तक कि धीरे-धीरे उसे त्याग और निग्रह से घृणा होने लगी। वह दुरवस्था और दरिद्रता को हेय समझता था। उसके हृदय न था, भाव न थे, केवल मस्तिष्क था। मस्तिष्क में दर्द कहाँ, दया कहाँ ! वहाँ तो तर्क है, हौसला है, मंसूबे हैं।

सिंध में बाढ़ आयी। हजारों आदमी तबाह हो गये। विद्यालय ने वहाँ एक सेवा समिति भेजी। प्रकाश के मन में द्वन्द्व होने लगा—जाऊँ या न जाऊँ। इतने दिनों अगर वह परीक्षा की तैयारी करे तो प्रथम श्रेणी में पास हो। चलते समय उसने बीमारी का बहाना कर दिया। करुणा ने लिखा, तुम सिंध न गये, इसका मुझे खेद है। तुम बीमार रहते हुए भी वहाँ जा सकते थे। समिति में चिकित्सक भी तो थे ! प्रकाश ने पत्र का उत्तर न दिया।

उड़ीसा में अकाल पड़ा। प्रजा मक्खियों की तरह मरने लगी। कांग्रेस ने पीड़ितों के लिए मिशन तैयार किया। उन्हीं दिनों विद्यालय ने इतिहास के छात्रों को ऐतिहासिक खोज के लिए लंका भेजने का निश्चय किया। करुणा ने प्रकाश को लिखा तुम उड़ीसा जाओ, किन्तु प्रकाश लंका जाने को लालायित था। वह कई दिन इसी दुविधा में रहा। अन्त को सीलोन ने उड़ीसा पर विजय पायी। करुणा ने अबकी उसे कुछ न लिखा। चुपचाप रोती रही।

सीलोन से लौटकर प्रकाश छुट्टियों में घर गय. करुणा उससे खिंची-खिंची रही। प्रकाश मन में लज्जित हुआ और संकल्प किया कि अबकी कोई अवसर आया, तो अम्माँ को अवश्य प्रसन्न करूँगा। यह निश्चय करके वह विद्यालय लौटा। लेकिन यहाँ आते ही फिर परीक्षा की फिक्र सवार हो गयी। यहाँ तक कि परीक्षा के दिन आ गये; मगर इम्तहान से फुरसत पाकर भी प्रकाश घर न गया। विद्यालय के एक अध्यापक काश्मीर सैर करने जा

रहे थे। प्रकाश उन्हीं के साथ काश्मीर चल खड़ा हुआ। जब परीक्षा-फल निकले और प्रकाश प्रथम आया, तब उसे घर की याद आयी। उसने तुरन्त करुणा को पत्र लिखा, और अपने आने की सूचना दी। माता को प्रसन्न करने के लिए उसने दो-चार शब्द जाति-सेवा के विषय में भी लिखे—अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। मैंने शिक्षा-सम्बन्धी कार्य करने का निश्चय किया है। इसी विचार से मैंने यह विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। हमारे नेता भी तो विद्यालयों के आचार्यों ही का सम्मान करते हैं—अभी तक इन उपाधियों के मोह से मुक्त नहीं हुए हैं। यह उपाधि लेकर वास्तव में मैंने अपने सेवा-मार्ग से एक बाधा हटा दी है। हमारे नेता भी योग्यता, सदुत्साह, लगन का उतना सम्मान नहीं करते, जितना उपाधियों का ! अब सब मेरी इज्जत करेंगे, और जिम्मेदारी का काम सौपेंगे, जो पहले माँगे भी न मिलता।

करुणा की आस फिर बँधी।

4

विद्यालय खुलते ही प्रकाश के नाम रजिस्ट्री का पत्र पहुँचा। उन्होंने प्रकाश को इंगलैंड जाकर विद्याभ्यास करने के लिए सरकार के वजीफे की मंजूरी की सूचना दी थी। प्रकाश पत्र हाथ में लिये हर्ष के उन्माद में जाकर माँ से बोला—अम्माँ, इंगलैंड जाकर पढ़ने के लिए सरकारी वजीफा मिल गया।

करुणा ने उदासीन भाव से पूछा—तो तुम्हारा क्या इरादा है ?

प्रकाश—मेरा इरादा ? ऐसा अवसर पाकर भला कौन छोड़ता है !

करुणा—तुम तो स्वयंसेवकों में भरती होने जा रहे थे ?

प्रकाश—तो क्या आप समझती हैं, स्वयंसेवक बन जाना ही जाति-सेवा है ? मैं इंग्लैंड से आकर भी तो सेवा-कार्य कर सकता हूँ, और अम्माँ सच पूछो, तो एक मैजिस्ट्रेट अपने देश का जितना उपकार कर सकता है, उतना एक हजार स्वयंसेवक मिलकर भी नहीं कर सकते। मैं तो सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठूँगा, और मुझे विश्वास है कि सफल हो जाऊँगा।

करुणा ने चकित होकर पूछा—तो क्या तुम मैजिस्ट्रेट हो जाओगे ?

प्रकाश—सेवा-भाव रखने वाला एक मैजिस्ट्रेट कांग्रेस के एक हजार सभापतियों से ज्यादा उपकार कर सकता है। अखबारों मे उसकी लम्बी-लम्बी तारीफें न छपेंगी, उसकी वक्तृताओं पर तालियाँ न बजेंगी, जनता उसके जुलूस की गाड़ी न खींचेगी, और न विद्यालयों के छात्र उसको अभिनन्दन-पत्र देंगे; पर सच्ची सेवा मैजिस्ट्रेट ही कर सकता है।

करुणा ने आपत्ति के भाव से कहा—लेकिन यही मैजिस्ट्रेट जो जाति के सेवकों को सजाएँ देते हैं, उन पर गोलियाँ चलाते हैं ?

प्रकाश—अगर मैजिस्ट्रेट के हृदय में परोपकार का भाव है तो वह नरमी से वही काम कर सकता है, जो दूसरे गोलियाँ चलाकर भी नहीं कर सकते।

करुणा—मैं यह न मानूँगी। सरकार अपने नौकरों को इतनी स्वाधीनता नहीं देती। वह एक नीति बना देती है, और हर एक सरकारी नौकर को उसका पालन करना पड़ता है।

सरकार की पहली नीति यह है कि वह दिन-दिन अधिक संगठित और दृढ़ हो। इसके लिए स्वाधीनता के भावों का दमन करना जरूरी है, अगर कोई मैजिस्ट्रेट इस नीति के विरुद्ध काम करता है, तो वह मैजिस्ट्रेट न रहेगा। वह हिन्दुस्तानी मैजिस्ट्रेट था, जिसने तुम्हारे बाबू जी को जरा-सी बात पर तीन साल की सजा दे दी। इस सजा ने उनके प्राण लिये। बेटा, मेरी इतनी बात मानो। सरकारी पदों पर न गिरो। मुझे यह मंजूर है कि तुम मोटा खाकर और मोटा पहनकर अपने देश की कुछ सेवा करो इसके बदले कि तुम हाकिम बन जाओ; और शान से जीवन बिताओ। यह समझ लो कि जिस दिन तुम हाकिम की कुरसी पर बैठोगे, उस दिन से तुम्हारा दिमाग हाकिमों का-सा हो जायगा। तुम यही चाहोगे कि अफसरों में तुम्हारी नेकनामी और तरक्की हो। एक गँवारू मिसाल लो। लड़की जब तक मैके में क्वाँरी रहती है, वह अपने को उसी घर का समझती है; लेकिन जिस दिन ससुराल चली जाती है, वह अपने घर को दूसरों का घर समझने लगती है। माँ-बाप, भाई-बंद सब वहीं रहते हैं; लेकिन वह घर अपना नहीं रहता। यही दुनिया का दस्तूर है।

प्रकाश ने खीझकर कहा—तो क्या आप यही चाहती हैं कि मैं जिन्दगी भर चारों तरफ ठोकरें खाता फिरूँ ?

करुणा कठोर नेत्रों से देखकर बोली—अगर ठोकर खाकर आत्मा स्वाधीन रह सकती है, तो मैं कहूँगी, ठोकर खाना अच्छा है !

प्रकाश ने निश्चयात्मक भाव से पूछा—तो आपकी यही इच्छा है ?

करुणा ने उसी स्वर में उत्तर दिया—हाँ, मेरी यही इच्छा है।

प्रकाश ने कुछ जवाब न दिया। उठकर बाहर चला गया, और तुरन्त रजिस्ट्रार को इनकारी-पत्र लिख भेजा, मगर उसी क्षण से मानो उसके सिर पर विपत्ति ने आसन जमा लिया। विरक्त और विमन अपने कमरे में पड़ा रहता, न कहीं घूमने जाता, न किसी से मिलता। मुँह लटकाये भीतर आता; दो-चार कौर खाता, और फिर बाहर चला जाता, यहाँ तक कि एक महीना गुजर गया। न चेहरे पर वह लाली रही, न वह ओज। आँखें अनाथों के मुख की भाँति याचना से भरी हुई, ओठ हँसना भूल गये, मानो उस इनकारी-पत्र के साथ उसकी सारी सजीवता, सारी चपलता, सारी सरसता बिदा हो गयी। करुणा उसके मनोभाव समझती थी, और उसके शोक को भुलाने की चेष्टा करती थी; पर रूठे देवता प्रसन्न न होते थे।

आखिर एक दिन उसने प्रकाश से कहा—बेटा, अगर तुमने विलायत जाने को ठान ली है, तो चले जाओ। मैं मना न करूँगी। मुझे खेद है कि मैंने तुम्हें रोका। अगर मैं जानती कि तुम्हें इतना आघात पहुँचेगा, तो कभी न रोकती। मैंने तो केवल एक विचार से रोका था कि तुम्हें जाति-सेवा में मग्न देखकर तुम्हारे बाबू जी की आत्मा प्रसन्न होगी। उन्होंने चलते समय यह वसीयत की थी।

प्रकाश ने रूखाई से जवाब दिया—अब क्या जाऊँगा। इनकारी-खत लिख चुका। मेरे लिए कोई अब तक बैठा थोड़े ही होगा। कोई दूसरा लड़का चुन लिया गया होगा। और फिर करना ही क्या है। जब आपकी मर्जी है कि गाँव-गाँव की खाक छानता फिरूँ, तो वही सही।

करुणा का गर्व चूर-चूर हो गया। इस अनुमति से उसने बाधा का काम लेना चाहा था; पर सफल न हुई। बोली—अभी न चुना गया होगा। लिख दो, मैं जाने को तैयार हूँ।

प्रकाश ने झुँझलाकर कहा—अब कुछ नहीं हो सकता। लोग हँसी उड़ायेंगे। मैंने तय कर लिया है कि जीवन को आपकी इच्छा के अनुकूल बनाऊँगा ?

करुणा—तुमने अगर शुद्ध मन से यह इरादा किया होता, तो यों न रहते। तुम मुझसे सत्याग्रह कर रहे हो; अगर मन को दबाकर, मुझे अपनी राह का काँटा समझकर, तुमने मेरी इच्छा पूरी भी की, तो क्या। मैं तो जब जानती कि तुम्हारे मन में आप-ही-आप सेवा का भाव उत्पन्न होता। तुम आज ही रजिस्ट्रार साहब को पत्र लिख दो।

प्रकाश-·अब नहीं लिख सकता।

'तो इसी शोक में तने बैठे रहोगे ?'

'लाचारी है।'

करुणा ने कुछ और न कहा। जरा देर में प्रकाश ने देखा कि वह कहीं जा रही है; मगर वह कुछ बोला नहीं। करुणा के लिए बाहर आना-जाना कोई असाधारण बात न थी; लेकिन जब संध्या हो गयी, और करुणा न आयी, तो प्रकाश को चिन्ता होने लगी। अम्माँ कहाँ गयीं ? यह प्रश्न बार-बार उसके मन में उठने लगा।

प्रकाश सारी रात द्वार पर बैठा रहा। भाँति-भाँति की शंकाएँ मन में उठने लगीं। उसे अब याद आया, चलते समय करुणा कितनी उदास थी, उसकी आँखें कितनी लाल थीं। यह बातें प्रकाश को उस समय क्यों न नजर आयीं ? वह क्या स्वार्थ में अन्धा हो गया था?

हाँ अब प्रकाश को याद आया—माता ने साफ-सुथरे कपड़े पहने थे। उसके हाथ में छतरी भी थी, तो क्या वह कहीं बहुत दूर गयी हैं ? किससे पूछे ? अनिष्ट के भय से प्रकाश रोने लगा।

श्रावण की अंधेरी, भयानक रात थी। आकाश में श्याम मेघमालाएं भीषण स्वप्न की भाँति छाई हुई थीं। प्रकाश रह-रहकर आकाश की ओर देखता था, मानो करुणा उन्हीं मेघमालाओं में छिपी बैठी है। उसने निश्चय किया, सबेरा होते ही माँ को खोजने चलूँगा और अगर...

किसी ने द्वार खटखटाया। प्रकाश ने दौड़कर खोला, तो देखा, करुणा खड़ी है! उसका मुख-मंडल इतना खोया हुआ, इतना करुण था, जैसे आज ही उसका सोहाग उठ गया है, जैसे अब संसार में उसके लिए कुछ नहीं रहा, जैसे वह नदी के किनारे खड़ी अपनी लदी हुई नाव को डूबती देख रही है और कुछ कर नहीं सकती।

प्रकाश ने अधीर होकर पूछा—अम्माँ, कहीं चली गयी थीं ? बहुत देर लगाई ?

करुणा ने भूमि की ओर ताकते हुए जवाब दिया—एक काम से गयी थी देर हो गयी।

यह कहते हुए उसने प्रकाश के सामने एक बंद लिफाफा फेंक दिया। प्रकाश ने उत्सुक होकर लिफाफा उठा लिया। ऊपर ही विद्यालय की मुहर थी। तुरन्त ही लिफाफा खोलकर पढ़ा। हलकी-सी लालिमा चेहरे पर दौड़ गयी। पूछा—यह तुम्हें कहाँ मिल गया अम्माँ ?

करुणा—तुम्हारे रजिस्ट्रार के पास से लायी हूँ।

'क्या तुम वहाँ चली गयी थीं ?'

'और क्या करती।'

'कल तो गाड़ी का समय न था ?'

'मोटर ले ली थी !'

प्रकाश एक क्षण तक मौन खड़ा रहा। फिर कुण्ठित स्वर में बोला—जब तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो क्यों मुझे भेज रही हो ?

करुणा ने विरक्त भाव से कहा—इसलिए कि तुम्हारी जाने की इच्छा है। तुम्हारा यह मलिन वेश नहीं देखा जाता। अपने जीवन के बीस वर्ष तुम्हारी हित-कामना पर अर्पित कर दिये; अब तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा की हत्या नहीं कर सकती। तुम्हारी यात्रा सफल हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

करुणा का कण्ठ रुँध गया और कुछ न कह सकी।

5

प्रकाश उसी दिन से यात्रा की तैयारियाँ करने लगा। करुणा के पास जो कुछ था, वह सब खर्च हो गया। कुछ ऋण भी लेना पड़ा। नये सूट बने, सूटकेस लिये गये। प्रकाश अपनी धुन में मस्त था। कभी किसी चीज की फरमाइश लेकर आता, कभी किसी चीज की।

करुणा इस एक सप्ताह में कितनी दुर्बल हो गयी है, उसके बालों पर कितनी सफेदी आ गयी है, चेहरे पर कितनी झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, यह उसे कुछ न नजर आता। उसकी आँखों में इंगलैंड के दृश्य समाये हुए थे। महत्त्वाकांक्षा आँखों पर परदा डाल देती है।

प्रस्थान का दिन आया। आज कई दिन के बाद धूप निकली थी। करुणा स्वामी के पुराने कपड़ों को बाहर निकाल रही थी। उनकी गाढ़े की चादरें, खद्दर के कुरते, पाजामे और लिहाफ अभी तक संदूक में संचित थे। प्रतिवर्ष वे धूप में सुखाये जाते और झाड़-पोंछकर रख दिये जाते थे। करुणा ने आज फिर उन कपड़ों को निकाला, मगर सुखाकर रखने के लिए नहीं, गरीबों को बाँट देने के लिए। वह आज पति से नाराज है। वह लुटिया, डोर और घड़ी जो आदित्य की चिरसंगिनी थीं और जिनकी आज बीस वर्ष से करुणा ने उपासना की थी, आज निकालकर आँगन में फेंक दी गयीं; वह झोली जो बरसों आदित्य के कन्धों पर आरूढ़ रह चुकी थी, आज कूड़े में डाल दी गयी; वह चित्र जिसके सामने आज बीस वर्ष से करुणा सिर झुकाती थी, आज बड़ी निर्दयता से भूमि पर डाल दिया गया। पति का कोई स्मृति-चिह्न वह अब अपने घर में नहीं रखना चाहती। उसका अन्तःकरण शोक और निराशा से विदीर्ण हो गया है, और पति के सिवा वह किस पर क्रोध उतारे ? कौन उसका अपना है ? वह किससे अपनी व्यथा कहे ? किसे अपनी छाती चीरकर दिखाये ? वह होते तो क्या आज प्रकाश दासता की जंजीर गले में डालकर फूला न समाता ! उसे कौन समझाये कि आदित्य भी इस अवसर पर पछताने के सिवा और कुछ न कर सकते।

प्रकाश के मित्रों ने आज उसे विदाई का भोज दिया था। वहाँ से वह सन्ध्या समय कई मित्रों के साथ मोटर पर लौटा। सफर का सामान मोटर पर रख दिया गया। तब वह अन्दर जाकर माँ से बोला—अम्माँ, जाता हूँ। बम्बई पहुँचकर पत्र लिखूँगा। तुम्हें मेरी कसम, रोना मत, और मेरे खतों का जवाब बराबर देना।

जैसे किसी लाश को बाहर निकालते समय सम्बन्धियों का धैर्य छूट जाता है, रुके हुए आँसू निकल पड़ते हैं और शोक की तरंगे उठने लगती हैं, वही दशा करुणा की हुई। कलेजे में एक हाहाकार हुआ, जिसने उसकी दुर्बल आत्मा के एक-एक अणु को कँपा दिया। मालूम हुआ, पाँव पानी में फिसल गया है, और मैं लहरों में बही जा रही हूँ। उसके मुख से शोक या आशीर्वाद का एक शब्द भी न निकला। प्रकाश ने उसके चरण छुए, अश्रुजल से माता के चरणों को पखारा, फिर बाहर चला गया। करुणा पाषाण-मूर्ति की भाँति खड़ी थी।

सहसा ग्वाले ने आकर कहा—बहूजी, भइया चले गये ! बहुत रोते थे।

तब करुणा की समाधि टूटी। देखा, सामने कोई नहीं है। घर में मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया हुआ है, और मानो हृदय की गति बन्द हो गयी है।

सहसा करुणा की दृष्टि ऊपर उठ गयी। उसने देखा कि आदित्य अपनी गोद में प्रकाश की निर्जीव देह लिये खड़े रो रहे हैं। करुणा पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

6

करुणा जीवित थी; पर संसार से उसका कोई नाता न था। उसका छोटा-सा संसार जिसे उसने अपनी कल्पनाओं के हृदय में रचा था, स्वप्न की भाँति अनन्त में विलीन हो गया था। जिस प्रकाश को सामने देखकर वह जीवन की अंधेरी रात में भी हृदय में आशाओं की संपत्ति लिये जी रही थी, वह बुझ गया और संपत्ति लुट गयी। अब न कोई आश्रय था, और न उसकी जरूरत। जिन गउओं को वह दोनों वक्त अपने हाथों से दाना-चारा देती और सहलाती थी, अब खूँटे पर बँधी निराश नेत्रों से द्वार की ओर ताकती रहती थीं। बछड़ों को गले लगाकर चुमकारने वाला अब कोई न था। किसके लिए दूध दुहे, मस्का निकाले ? खानेवाला कौन था ? करुणा ने अपने छोटे-से संसार को अपने ही अन्दर समेट लिया था।

किन्तु एक ही सप्ताह में करुणा के जीवन ने फिर रंग बदला। उसका छोटा-सा संसार फैलते-फैलते विश्वव्यापी हो गया। जिस लंगर ने नौका को तट से एक केन्द्र पर बाँध रखा था, वह उखड़ गया। अब नौका सागर के अशेष विस्तार में भ्रमण करेगी, चाहे वह उद्दाम तरंगों के वक्ष में ही क्यों न विलीन हो जाय।

करुणा द्वार पर जा बैठती, और मुहल्ले भर के लड़कों को जमा करके दूध पिलाती। दोपहर तक मक्खन निकालती, और वह मक्खन मुहल्ले के लड़के खाते। फिर भाँति-भाँति के पकवान बनाती और कुत्तों को खिलाती। अब यही उसका नित्य का नियम हो गया। चिड़ियाँ, कुत्ते, बिल्लियाँ, चींटे-चींटियाँ सब अपने हो गये। प्रेम का वह द्वार अब किसी के लिए बन्द न था। उस अंगुल भर जगह में, जो प्रकाश के लिए भी काफी न थी, अब समस्त संसार समा गया।

एक दिन प्रकाश का पत्र आया। करुणा ने उसे उठाकर फेंक दिया। फिर थोड़ी देर के बाद उसे उठाकर फाड़ डाला, और चिड़ियों को दाना चुगाने लगी; मगर जब निशा-योगिनी ने अपनी धूनी जलाई, और वेदनाएँ उससे वरदान माँगने के लिए विकल हो-होकर चलीं, तो करुणा की मनोवेदना भी सजग हो उठी—प्रकाश का पत्र पढ़ने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा। उसने सोचा प्रकाश मेरा कौन है ? मेरा उससे क्या प्रयोजन ? हाँ, प्रकाश मेरा कौन है ? हृदय ने उत्तर दिया; प्रकाश तेरा सर्वस्व है, वह तेरे उस अमर प्रेम की निशानी है, जिससे तू सदैव के लिए वंचित हो गयी। वह तेरे प्राणों का प्राण है, जीवन-दीपक का प्रकाश, तेरे संचित कामनाओं का माधुर्य, तेरे अश्रुजल में विहार करने वाला हास। करुणा उस पत्र के टुकड़ों को जमा करने लगी, मानो उसके प्राण बिखर गये हों। एक-एक टुकड़ा उसे अपने खोये हुए प्रेम का एक-एक पदचिह्न मालूम होता था। जब सारे पुरजे जमा हो गये, तो करुणा दीपक के सामने बैठकर उन्हें जोड़ने लगी, जैसे कोई वियोगी हृदय प्रेम के टूटे हुए तारों को जोड़ रहा हो। हाय री ममता ! वह अभागिनी सारी रात उन पुरजों को जोड़ने में लगी रही। पत्र दोनों ओर लिखा हुआ था, इसलिए पुरजों को ठीक स्थान पर रखना और भी कठिन था। कोई शब्द, कोई वाक्य बीच में गायब हो जाता। उस एक टुकड़े को वह फिर खोजने लगती। सारी रात बीत गयी; पर, पत्र अभी अपूर्ण था।

दिन चढ़ आया, मुहल्ले के लौंडे मक्खन और दूध की चाट में एकत्र हो गये, कुत्तों और बिल्लियों का आगमन हुआ, चिड़ियाँ आ-आकर आँगन में फुदकने लगीं, कोई ओखली पर बैठी, कोई तुलसी के चौतरे पर; पर करुणा को सर उठाने की फुरसत नहीं।

दोपहर हुआ। करुणा ने सिर न उठाया। न भूख थी, न प्यास थी। फिर सन्ध्या हो गयी; पर वह पत्र अभी तक अधूरा था। पत्र का आशय समझ में आ रहा था—प्रकाश का जहाज कहीं-से-कहीं जा रहा है। उसके हृदय में कुछ उठा हुआ है। क्या उठा हुआ है ? पर करुणा न सोच सकी। प्यास से तड़पते हुए आदमी की प्यास क्या ओस से बुझ सकती है? करुणा पुत्र की लेखनी से निकले हुए एक-एक शब्द को पढ़ना और उसे अपने हृदय पर अंकित कर लेना चाहती थी।

इस भाँति तीन दिन गुजर गये। सन्ध्या हो गयी थी। तीन दिन की जगी आँखें ज़रा झपक गयीं। करुणा ने देखा, एक लम्बा-चौड़ा कमरा है; उसमें मेज़े और कुर्सियाँ लगी हुई हैं, बीच में एक ऊँचे मंच पर कोई आदमी बैठा हुआ है। करुणा ने ध्यान से देखा, वह प्रकाश था।

एक क्षण में एक कैदी उसके सामने लाया गया, उसके हाथ-पाँव में जंजीर थी, कमर झुकी हई, यह आदित्य थे।

करुणा की आँखें खुल गयीं। आँसू बहने लगे। पत्र के टुकड़ों को फिर समेट लिया और उसे जलाकर राख कर डाला। राख की एक चुटकी के सिवा वहाँ कुछ न रहा। यही उस ममता की चिता थी, जो उसके हृदय को विदीर्ण किये डालती थी। इसी एक चुटकी राख में उसका गुड़ियों वाला बचपन, उसका संतप्त यौवन और उसका तृष्णामय वैधव्य सब समा गया।

प्रातःकाल लोगों ने देखा, तो पक्षी पिंजड़े से उड़ चुका था। आदित्य का चित्र अब भी

उसके शून्य हृदय से चिपका हुआ था। वह भग्न हृदय पति की स्नेह-स्मृति में विश्राम कर रहा था और प्रकाश का जहाज योरप चला जा रहा था !!

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', जुलाई, 1929 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'प्रेम चालीसी' (उर्दू कहानी संग्रह) में संकलित।]

कानूनी कुमार

मि. कानूनी कुमार, एम.एल.ए. अपने ऑफिस में समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और रिपोर्टों का एक ढेर लिए बैठे हैं। देश की चिन्ताओं से उनकी देह स्थूल हो गयी है; सदैव देशोद्धार की फिक्र में पड़े रहते हैं। सामने पार्क है। उसमे कई लड़के खेल रहे हैं। कुछ परदेवाली स्त्रियाँ भी हैं, फेंसिंग के सामने बहुत से भिखमंगे बैठे हैं, एक चायवाला एक वृक्ष के नीचे चाय बेच रहा है।

कानूनी कुमार—(आप-ही-आप) देश की दशा कितनी खराब होती चली जाती है। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है। (पार्क की ओर देखकर) आह ! यह कोमल कुमार सिगरेट पी रहे हैं। शोक ! महाशोक ! कोई कुछ नहीं कहता, कोई इसको रोकने की कोशिश भी नहीं करता। तम्बाकू कितनी जहरीली चीज है, बालकों को इससे कितनी हानि होती है, यह कोई नहीं जानता। (तम्बाकू की रिपोर्ट देखकर) ओफ ! रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जितने बालक अपराधी होते हैं, उनमें पिचतर प्रति सैकड़े सिगरेटबाज होते हैं। बड़ी भयंकर दशा है। हम क्या करें ! लाख स्पीचें दो कोई सुनता ही नहीं। इसको कानून से रोकना चाहिए, नहीं तो अनर्थ हो जायगा। (कागज पर नोट करता है) तम्बाकू-बहिष्कार-बिल पेश करूँगा। कौंसिल खुलते ही यह बिल पेश कर देना चाहिए।

(एक क्षण के बाद फिर पार्क की ओर ताकता है, और पहरेदार महिलाओं को घास पर बैठे देखकर लम्बी साँस लेता है)

गजब है, गजब है; कितना घोर अन्याय ! कितना पाशविक व्यवहार !! यह कोमलांगी सुन्दरियाँ चादर में लिपटी हुई कितनी भद्दी, कितनी फूहड़ मालूम होती हैं। अभी तो देश का यह हाल हो रहा है। (रिपोर्ट देखकर) स्त्रियों की मृत्यु-संख्या बढ़ रही है। तपेदिक उछलता चला आता है, प्रसूत की बीमारी आँधी की तरह चढ़ी आती है और हम हैं कि आँखें बन्द किये पड़े हैं। बहुत जल्दी ऋषियों की यह भूमि, यह वीर-प्रसविनी जननी रसातल को चली जायगी, इसका कहीं निशान भी न रहेगा। गवर्नमेंट को क्या फिक्र ! लोग कितने पाषाण हो गये हैं। आँखों के सामने यह अत्याचार देखते हैं और जरा भी नहीं चौंकते। यह मृत्यु का शैथिल्य है। यहाँ भी कानूनी जरूरत है। एक ऐसा कानून बनना चाहिए, जिससे कोई स्त्री परदे में न रह सके। अब समय आ गया है कि इस विषय में सरकार कदम बढ़ावे। कानून की मदद के बगैर कोई सुधार नहीं हो सकता और यहाँ कानूनी मदद की जितनी जरूरत है, उतनी और कहाँ हो सकती है। माताओं पर देश का

भविष्य अवलम्बित है। परदा-हटाव-बिल पेश होना चाहिए। जानता हूँ बड़ा विरोध होगा; लेकिन गवर्नमेंट को साहस से काम लेना चाहिए, ऐसे नपुंसक विरोध के भय से उद्धार के कार्य में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। (कागज पर नोट करता है) यह बिल भी असेंबली के खुलते ही पेश कर देना होगा। बहुत विलम्ब हो चुका, अब विलम्ब की गुंजाइश नहीं है। वरना मरीज का अन्त हो जायगा।

(मसौदा बनाने लगता है—हेतु और उद्देश्य—)

सहसा एक भिक्षुक सामने आकर पुकारता है—जय हो सरकार की, लक्ष्मी फूलें-फलें।

कानूनी—हट जाओ, यू सुअर कोई काम क्यों नहीं करता ?

भिक्षुक—बड़ा धर्म होगा सरकार, मारे भूख के आँखों-तले अँधेरा....

कानूनी—चुप रहो सुअर; हट जाओ सामने से, अभी निकल जाओ, बहुत दूर निकल जाओ।

(मसौदा छोड़कर फिर आप-ही-आप)

यह ऋषियों की भूमि आज भिक्षुकों की भूमि हो रही है। जहाँ देखिए, वहाँ रेवड़-के-रेवड़ और दल-के-दल भिखारी ! यह गवर्नमेंट की लापरवाही की बरकत है। इंगलैण्ड में कोई भिक्षुक भीख नहीं माँग सकता। पुलिस पकड़कर काल-कोठरी में बन्द कर दे। किसी सभ्य देश में इतने भिखमंगे नहीं हैं। यह पराधीन गुलाम भारत है, जहाँ ऐसी बातें इस बीसवीं सदी में भी सम्भव हैं। उफ ! कितनी शक्ति का अपव्यय हो रहा है। (रिपोर्ट निकालकर) ओह ! पचास लाख ! पचास लाख आदमी केवल भिक्षा माँगकर गुजर करते हैं और क्या ठीक है कि संख्या इसकी दुगनी न हो। यह पेशा लिखाना कौन पसन्द करता है। एक करोड़ से कम भिखारी इस देश में नहीं हैं। यह तो भिखारियों की बात हुई, जो द्वार-द्वार झोली लिये घूमते हैं। इसके उपरांत टीकाधारी, कोपीनधारी और जटाधारी समुदाय भी तो है, जिनकी संख्या कम-से-कम दो करोड़ होगी। जिस देश में इतने हरामखोर, मुफ्त का माल उड़ानेवाले; दूसरों की कमाई पर मोटे होने वाले प्राणी हों, उसकी दशा क्यों न इतनी हीन हो। आश्चर्य यही है कि अब तक यह देश जीवित कैसे है ? (नोट करता है) एक बिल की सख्त जरूरत है, परन्तु पेश करना चाहिए—नाम हो 'भिखमंगा-बहिष्कार-बिल।' खूब जूतियाँ चलेंगी, धर्म के सूत्राधार खूब नाचेंगे, खूब गालियाँ देंगे, गवर्नमेंट भी कन्नी काटेगी; मगर सुधार का मार्ग तो कंटकाकीर्ण है ही। तीनों बिल मेरे ही नाम से हो, फिर देखिए, कैसी खलबली मचती है।

(आवाज आती है—चाय गरम ! चाय गरम !! मगर ग्राहकों की संख्या बहुत कम है। कानूनी कुमार का ध्यान चायवाले की ओर आकर्षित हो जाता है।)

कानूनी (आप-ही-आप) चायवाले की दूकान पर एक भी ग्राहक नहीं कैसा मूर्ख देश है ! इतनी बलवर्द्धक वस्तु और ग्राहक कोई नहीं ! सभ्य देशों में पानी की जगह चाय पी जाती है। (रिपोर्ट देखकर) इंग्लैंड में पाँच करोड़ पौण्ड की चाय जाती है। इंग्लैंड वाले मूर्ख नहीं हैं। उनका आज संसार पर आधिपत्य है, इसमें चाय का कितना बड़ा भाग है, कौन इसका अनुमान कर सकता है ? यहाँ बेचारा चायवाला खड़ा है और कोई उसके पास नहीं फटकता। चीनवाले चाय पी-पीकर स्वाधीन हो गये; मगर हम चाय न पियेंगे। क्या अकल

है। गवर्नमेंट का सारा दोष है। कीटों से भरे हुए दूध के लिए इतना शोर मचता है; मगर चाय को कोई नहीं पूछता, जो कीटों से खाली, उत्तेजक और पुष्टिकारक है ! सारे देश की मति मारी गयी है। (नोट करता है) गवर्नमेंट से प्रश्न करना चाहिए। असेंबली खुलते ही प्रश्नों का ताँता बाँध दूँगा।

प्रश्न—क्या गवर्नमेंट बतायेगी कि गत पाँस सालों में भारतवर्ष में चाय की खपत कितनी बढ़ी है और उसका सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए गवर्नमेंट ने क्या कदम लिए हैं ?

(एक रमणी का प्रवेश। कटे हुए केश, आड़ी माँग, पारसी रेशमी साड़ी, कलाई पर घड़ी, आँखों पर ऐनक, पाँव में ऊँची एड़ी का लेडी शू, हाथ में एक बटुआ लटकाये हुए, साड़ी में ब्रूच है, गले में मोतियों का हार।

कानूनी—(हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज बोस ! आप खूब आयीं, कहिए, किधर की सैर हो रही है ? अबकी तो 'आलोक' में आपकी कविता बड़ी सुन्दर थी। मैं तो पढ़कर मस्त हो गया। इस नन्हे-से हृदय में इतने भाव कहाँ से आ जाते हैं, मुझे आश्चर्य होता है। शब्द-विन्यास की तो आप रानी हैं। ऐसे-ऐसे चोट करने वाले भाव आपको कैसे सूझ जाते हैं।

मिसेजबोस—दिल जलता है, तो उसमें आप-से-आप धुएँ के बादल निकलते हैं। जब तक स्त्री-समाज पर पुरुषों का अत्याचार रहेगा, ऐसे भावों की कमी न रहेगी।

कानूनी—क्या इधर कोई नयी बात हो गयी ?

बोस—रोज ही तो होती रहती है। मेरे लिए डॉक्टर बोस की आज्ञा नहीं कि किसी से मिलने जाओ, या कहीं सैर करने जाओ। अबकी कैसी गरमी पड़ी है कि सारा रक्त जल गया, पर मैं पहाड़ों पर न जा सकी। मुझसे यह अत्याचार, यह गुलामी नहीं सही जाती।

कानूनी—डॉक्टर बोस खुद भी तो पहाड़ों पर नहीं गये।

बोस—वह न जायँ, उन्हें धन की हाय-हाय पड़ी है। मुझे क्यों अपने साथ लिये मरते हैं ? वह क्लब में नहीं जाना चाहते, उनका समय रुपये उगलता है, मुझे क्यों रोकते हैं ! वह खद्दर पहनें, मुझे क्यों अपने पसन्द के कपड़े पहनने से रोकते हैं ! वह अपनी माता और भाइयों के गुलाम बने रहें, मुझे क्यों उनके साथ रो-रोकर दिन काटने पर मजबूर करते हैं मुझसे यह बर्दाश्त नहीं हो सकता। अमेरिका में एक कटुवचन कहने पर सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। पुरुष जरा देर में घर आया और स्त्री ने तलाक दिया। वह स्वाधीनता का देश है, वहाँ लोगों के विचार स्वाधीन हैं। यह गुलामों का देश है, यहाँ हर एक बात में उसी गुलामी की छाप है। मैं अब डॉक्टर बोस के साथ नहीं रह सकती। नाकों दम आ गया। इसका उत्तरदायित्व उन्हीं लोगों पर है जो समाज के नेता और व्यवस्थापक बनते हैं। अगर आप चाहते हैं कि स्त्रियों को गुलाम बनाकर स्वाधीन हो जायँ, तो यह अनहोनी बात है। जब तक तलाक का कानून न जारी होगा, आपका स्वराज्य आकाश-कुसुम ही रहेगा। डॉक्टर बोस को आप जानते हैं, धर्म में उनकी कितनी श्रद्धा है ! खब्त कहिए। मुझे धर्म के नाम से घृणा है। इसी धर्म ने स्त्री-जाति को पुरुष की दासी बना दिया है। मेरा बस चले, तो मैं सारे धर्म की पोथियों को उठाकर परनाले में फेंक दूँ।

(मिसेज़ ऐयर का प्रवेश। गोरा रंग, ऊँचा कद, ऊँचा गाउन, गोली हाँड़ी की-सी टोपी, आँखों पर ऐनक, चेहरे पर पाउडर, गालों और ओठों पर सुर्ख पेंट, रेशमी जुर्राबें और ऊँची एड़ी के जूते।)

कानूनी–(हाथ बढ़ाकर) हल्लो मिसेज़ ऐयर ! आप खूब आयीं। कहिए, किधर की सैर हो रही है। 'आलोक' में अबकी आपका लेख अत्यन्त सुन्दर था, मैं तो पढ़कर दंग रह गया।

मिसेज़ ऐयर–(मिसेज बोस की ओर मुस्कराकर) दंग ही तो रह गये या कुछ किया भी। हम स्त्रियाँ अपना कलेजा निकालकर रख दें; लेकिन पुरुषों का दिल न पसीजेगा।

बोस–सत्य ! बिलकुल सत्य।

ऐयर–मगर इस पुरुष-राज का बहुत जल्द अन्त हुआ जाता है। स्त्रियाँ अब कैद में नहीं रह सकतीं। मि. ऐयर की सूरत मैं नहीं देखना चाहती।

(मिसेज़ बोस मुँह फेर लेती हैं)

कानूनी–(मुस्कराकर) मि. ऐयर तो खूबसूरत आदमी है।

लेडी ऐयर–उनकी सूरत उन्हें मुबारक रहे। मैं खूबसूरत पराधीनता नहीं चाहती, बदसूरत स्वाधीनता चाहती हूँ। वह मुझे अबकी जबरदस्ती पहाड़ पर ले गये। वहाँ की शीत मुझसे नहीं सही जाती, कितना कहा कि मुझे मत ले जाओ; मगर किसी तरह न माने। मैं किसी के पीछे-पीछे कुतिया की तरह नहीं चलना चाहती।

(मिसेज़ बोस उठकर खिड़की के पास चली जाती है)

कानूनी–अब मुझे मालूम हो गया कि तलाक का बिल असेम्बली में पेश करना पड़ेगा !

ऐयर–खैर, आपको मालूम तो हुआ; मगर शायद कयामत में।

कानूनी–नहीं मिसेज़ ऐयर, अबकी छुट्टियों के बाद ही यह बिल पेश होगा और धूमधाम के साथ पेश होगा। बेशक पुरुषों का अत्याचार बढ़ रहा है. जिस प्रथा का विरोध आप दोनों महिलाएँ कर रही हैं, वह अवश्य हिन्दू समाज के लिए घातक है। अगर हमें सभ्य बनना है, तो सभ्य देशों के पदचिह्नों पर चलना पड़ेगा। धर्म के ठीकेदार चिल्ल-पों मचायेंगे, कोई परवाह नहीं। उनकी खबर लेना आप दोनों महिलाओं का काम होगा। ऐसा बनाना कि मुँह न दिखा सकें।

लेडी ऐयर–पेशगी धन्यवाद देती हूँ। (हाथ मिलाकर चली जाती है।)

मिसेज़ बोस–(खिड़की के पास से आकर) आज इसके घर में घी का चिराग जलेगा। यहाँ से सीधे बोस के पास गयी होगी ! मैं भी जाती हूँ।

(चली जाती है)

कानूनी कुमार एक कानून की किताब उठाकर उसमें तलाक की व्यवस्था देखने लगता है कि मि. आचार्य आते हैं। मुँह साफ, एक आँख पर ऐनक, खाली आधे बाँह का शर्ट, निकर, ऊनी मोजे, लम्बे बूट। पीछे एक टेरियर कुत्ता भी है।

कानूनी–हल्लो मि. आचार्य ! आप खूब आये, आज किधर की सैर हो रही है। होटल का क्या हाल है।

आचार्य—कुत्ते की मौत मर रहा हूँ। इतना बढ़िया भोजन, इतना साफ-सुथरा मकान, ऐसी रोशनी, इतना आराम फिर भी मेहमानों का दुर्भिक्ष। समझ में नहीं आता, अब कितना निर्ख घटाऊँ। इन दामों अलग घर में मोटा खाना भी नसीब नहीं हो सकता। उस पर सारे जमाने की झंझट, कभी नौकर का रोना, कभी दूधवाले का रोना, कभी धोबी का रोना, कभी मेहतर का रोना; यहाँ सारे जंजाल से मुक्ति हो जाती है। फिर भी आधे कमरे खाली पड़े हैं।

कानूनी—यह तो आपने बुरी खबर सुनायी।

आचार्य—पच्छिम में क्यों इतना सुख और शान्ति है, क्यों इतना प्रकाश और धन है, क्यों इतनी स्वाधीनता और बल है। इन्हीं होटलों के प्रसाद से। होटल पश्चिमी गौरव का मुख्य अंग हैं, पश्चिमी सभ्यता का प्राण हैं। अगर आप भारत को उन्नति के शिखर पर देखना चाहते हैं, तो होटल-जीवन का प्रचार कीजिए। इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है। जब तक छोटी-छोटी घरेलू चिन्ताओं से मुक्त न हो जायँगे, आप उन्नति कर ही नहीं सकते। राजों, रईसों को अलग घरों में रहने दीजिए, वह एक की जगह दस खर्च कर सकते हैं। मध्यम श्रेणीवालों के लिए होटल के प्रचार में ही सब कुछ है। हम अपने सारे मेहमानों की फिक्र अपने सिर लेने को तैयार हैं, फिर भी जनता की आँखें नहीं खुलतीं। इन मूर्खों की आँखें उस वक्त न खुलेंगी, जब तक कानून न बन जाय।

कानूनी—(गम्भीर भाव से) हाँ, मैं सोच रहा हूँ। जरूर कानून से मदद लेनी चाहिए। एक ऐसा कानून बन जाय, कि जिन लोगों की आय पाँच सौ रुपये से कम हो, होटलों में रहें। क्यों ?

आचार्य—आप अगर यह कानून बनवा दें, तो आनेवाली संतान आपको अपना मुक्तिदाता समझेगी। आप एक कदम में देश को पाँच सौ वर्ष की मंजिल तय करा देंगे।

कानूनी—तो लो, अबकी यह कानून भी असेंबली खुलते ही पेश कर दूँगा। बड़ा शोर मचेगा। लोग देशद्रोही और जाने क्या-क्या कहेंगे, पर इसके लिए तैयार हूँ। कितना दुःख होता है, जब लोगों को अहिर के द्वार पर लुटिया लिये खड़ा देखता हूँ। स्त्रियों का जीवन तो नरक-तुल्य हो रहा है। सुबह से दस-बारह बजे रात तक घर के धन्धों से फुरसत नहीं। कभी बरतन माँजो, कभी भोजन बनाओ, कभी झाड़ू लगाओ। फिर स्वास्थ्य कैसे बने, जीवन कैसे सुखी हो, सैर कैसे करें, जीवन के आमोद-प्रमोद का आनन्द कैसे उठावें, अध्ययन कैसे करें ? आपने खूब कहा, एक कदम में पाँच सौ सालों की मंजिल पूरी हुई जाती है।

आचार्य—तो अबकी बिल पेश कर दीजिएगा ?

कानूनी—अवश्य !

(आचार्य हाथ मिलाकर चला जाता है)

कानूनी कुमार खिडकी के सामने खड़ा होकर 'होटल-प्रचार-बिल' का मसविदा सोच रहा है। सहसा पार्क में एक स्त्री सामने से गुजरती है। उसकी गोद में एक बच्चा है, दो बच्चे पीछे-पीछे चल रहे हैं और उदर के उभार से मालूम होता है कि गर्भवती भी है। उसका कृश शरीर, पीला मुख और मन्द गति देखकर अनुमान होता कि उसका स्वास्थ्य बिगड़ा

हुआ है और इस भार का वहन करना उसे कष्टप्रद है।

कानूनी कुमार—(आप-ही-आप) इस समाज का, इस देश का और इस जीवन का सत्यानाश हो, जहाँ रमणियों को केवल बच्चा जनने की मशीन समझा जाता है। इस बेचारी को जीवन का क्या सुख ! कितनी ही ऐसी बहनें इसी जंजाल में फँसकर बत्तीस, पैंतीस की अवस्था में जब कि वास्तव में जीवन को सुखी होना चाहिए, रुग्ण होकर संसार-यात्रा समाप्त कर देती हैं। हा भारत ! यह विपत्ति तेरे सिर से कब टलेगी ? संसार में ऐसे-ऐसे पाषाण-हृदय मनुष्य पड़े हुए हैं, जिन्हें इस दुखियारियों पर जरा भी दया नहीं आती। ऐसे अन्धे, ऐसे पाषाण, ऐसे पाखंडी समाज को, जो स्त्री को अपनी वासनाओं की वेदी पर बलिदान करता है, कानून के सिवा और किस विधि से सचेत किया जाय ? और कोई उपाय ही नहीं है। नर-हत्या का जो दंड है, वही दण्ड ऐसे मनुष्यों को मिलना चाहिए। मुबारक होगा वह दिन, जब भारत में इस नाशिनी प्रथा का अन्त हो जायगा—स्त्री का मरण, बच्चों का मरण और जिस समाज का जीवन ऐसी सन्तानों पर आधारित हो, उसका मरण ! ऐसे बदमाशों को क्यों न दण्ड दिया जाय? कितने अन्धे लोग हैं। बेकारी का यह हाल कि भर-पेट किसी को रोटियाँ नहीं मिलतीं, बच्चों को दूध स्वप्न में नहीं मिलता और ये अन्धे हैं कि बच्चे-पर-बच्चे पैदा करते जाते हैं। 'सन्तान-निग्रह-बिल' की जितनी जरूरत है, इस देश को उतनी और किसी कानून की नहीं। असेंबली खुलते ही यह बिल पेश करूँगा। प्रलय हो जायगा, यह जानता हूँ, पर और उपाय ही क्या है ? दो बच्चों से ज्यादा जिसके हों, उसे कम-से-कम पाँच वर्ष की कैद, उसमें पाँच महीने से कम काल-कोठरी न हो। जिसकी आमदनी सौ रुपये से कम हो, उसे संतानोत्पत्ति का अधिकार ही न हो। (मन में बिल के बाद की अवस्था का आनन्द लेकर) कितना सुखमय जीवन हो जायेगा। हाँ, एक दफा यह भी रहे कि एक संतान के बाद कम-से-कम सात वर्ष तक दूसरी सन्तान न आने पावे। तब इस देश में सुख और सन्तोष का साम्राज्य होगा, तब स्त्रियों और बच्चों के मुँह पर खून की सुर्खी नजर आयेगी, तब मजबूत हाथ-पाँव और मजबूत दिल और जिगर के पुरुष उत्पन्न होंगे।

(मिसेज़ कानूनी कुमार का प्रवेश)

कानूनी कुमार जल्दी से रिपोर्टों और पत्रों को समेट लेता है और एक उपन्यास खोलकर बैठ जाता है।

मिसेज़—क्या कर रहे हो ? वही धुन !

कानूनी—उपन्यास पढ़ रहा हूँ।

मिसेज़—तुम सारी दुनिया के लिए कानून बनाते हो, एक कानून मेरे लिए भी बना दो। इससे देश का जितना बड़ा उपकार होगा, उतना और किसी कानून से न होगा। तुम्हारा नाम अमर हो जायगा और घर-घर तुम्हारी पूजा होगी !

कानूनी—अगर तुम्हारा खयाल है कि मैं नाम और यश के लिए देश की सेवा कर रहा हूँ, तो मुझे यही कहना पड़ेगा कि तुमने मुझे रत्ती-भर भी नहीं समझा।

मिसेज़—नाम के लिए काम कोई बुरा काम नहीं है, तुम्हें यश की आकांक्षा हो, तो मैं उसकी निन्दा न करूँगी, भूलकर भी नहीं। मैं तुम्हें एक ऐसी ही तदबीर बता दूँगी, जिससे

तुम्हें इतना यश मिलेगा कि तुम ऊब जाओगे। फूलों की इतनी वर्षा होगी कि तुम उसके नीचे दब जाओगे। गले में इतने हार पड़ेंगे कि तुम गरदन सीधी न कर सकोगे।

कानूनी—(उत्सुकता को छिपाकर)—कोई मजाक की बात होगी। देखा मिन्नी, काम करनेवाले आदमी के लिए इससे बड़ी दूसरी बाधा नहीं है कि उसके घरवाले उसके काम की निन्दा करते हों। मैं तुम्हारे इस व्यवहार से निराश हो जाता हूँ।

मिसेज़—तलाक का कानून तो बनाने जा रहे हो, अब क्या डर है।

कानूनी—फिर वही मजाक ! मैं चाहता हूँ तुम इन प्रश्नों पर गम्भीर विचार करो।

मिसेज़—मैं बहुत गम्भीर विचार करती हूँ ! सच मानो। मुझे इसका दुःख है कि तुम मेरे भावों को नहीं समझते। मैं इस वक्त तुमसे जो बात करने जा रही हूँ, उसे मैं देश की उन्नति के लिए आवश्यक ही नहीं, परमावश्यक समझती हूँ। मुझे इसका पक्का विश्वास है।

कानूनी—पूछने की हिम्मत तो नहीं पड़ती। (अपनी झेंप मिटाने के लिए हँसता है।)

मिसेज़—मैं खुद ही कहने आयी हूँ। हमारा वैवाहिक-जीवन कितना लज्जास्पद है; तुम खूब जानते हो। रात-दिन रगड़ा-झगड़ा मचा रहता है।

कहीं पुरुष स्त्री पर हाथ साफ कर लेता है, कहीं स्त्री पुरुष की मूँछों के बाल नोचती है। हमेशा एक-न-एक गुल खिला ही करता है। कहीं एक मुँह फुलाये बैठा है, कहीं दूसरा घर छोड़कर भाग जाने की धमकी दे रहा है। कारण जानते हो क्या है। कभी सोचा है ? पुरुषों की रसिकता और कृपणता ! यही दोनों ऐब मनुष्यों के जीवन को नरक-तुल्य बनाये हुए हैं। जिधर देखो, अशान्ति है, विद्रोह है, बाधा है। साल में लाखों हत्याएँ इन्हीं बुराइयों के कारण हो जाती हैं, लाखों स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं, पुरुष मद्य-सेवन करने लगते हैं, यह बात है या नहीं ?

कानूनी—बहुत-सी बुराइयाँ ऐसी हैं, जिन्हें कानून नहीं रोक सकता।

मिसेज़—(कहकहा मारकर) अच्छा, क्या आप भी कानून की अक्षमता स्वीकार करते हैं ? मैं यह नहीं समझती थी। मैं तो कानून को ईश्वर से ज्यादा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् समझती हूँ।

कानूनी—फिर तुमने मजाक शुरू किया।

मिसेज़—अच्छा, लो कान पकड़ती हूँ। अब न हँसूँगी। मैंने उन बुराइयों को रोकने का एक कानून सोचा है। उसका नाम होगा—'दम्पत्ति-सुख-शान्ति बिल' उसकी दो मुख्य धाराएँ होंगी और कानूनी बारीकियाँ तुम ठीक कर लेना। एक धारा होगी कि पुरुष अपनी आमदनी का आधा बिना कान-पूँछ हिलाये स्त्री को दे दे; अगर न दे, तो पाँच साल कठिन कारावास और पाँच महीने काल-कोठरी। दूसरी धारा होगी, पन्द्रह से पचास तक के पुरुष घर से बाहर न निकलने पावें, अगर कोई निकले, तो दस साल कारावास और दस महीने काल-कोठरी। बोलो मंजूर है ?

कानूनी—(गम्भीर होकर) असम्भव, तुम प्रकृति को पलट देना चाहती हो। कोई पुरुष घर में कैदी बनकर रहना स्वीकार न करेगा।

मिसेज़—वह करेगा और उसका बाप करेगा ! पुलिस डंडे के जोर से करायेगी। न

करेगा, तो चक्की पीसनी पड़ेगी। करेगा कैसे नहीं। अपनी स्त्री को घर की मुर्गी समझना और दूसरी स्त्रियों के पीछे दौड़ना, क्या खालाजी का घर है ? तुम अभी इस कानून को अस्वाभाविक समझते हो। मत घबड़ाओ। स्त्रियों का अधिकार होने दो। यह पहला कानून न वन जावे, तो कहना कि कोई कहता था। स्त्री एक-एक पैसे के लिए तरसे और आप गुलछर्रे उड़ायें। दिल्लगी है ! आधी आमदनी स्त्री को दे देनी पड़ेगी, जिसका उससे कोई हिसाब न पूछा जा सकेगा।

कानूनी–तुम मानव-समाज को मिट्टी का खिलौना समझती हो।

मिसेज़–कदापि नहीं। मैं यही समझती हूँ कि कानून सब कुछ कर सकता है। मनुष्य का स्वभाव भी बदल सकता है।

कानूनी–कानून यह नहीं कर सकता।

मिसेज़–कर सकता है ?

कानूनी–नहीं कर सकता।

मिसेज़–कर सकता है; अगर वह जवरदस्ती लड़कों को स्कूल भेज सकता है; अगर वह जबरदस्ती विवाह की उम्र नियत कर सकता है; अगर वह जबरदस्ती बच्चों को टीका लगवा सकना है, तो वह जबरदस्ती पुरुषों को घर में बंद भी कर सकता है, उसकी आमदनी का आधा स्त्रियों को भी दिला सकता है। तुम कहोगे, पुरुप को कष्ट होगा। जबरदस्ती जो काम कराया जाता है, उसमें करने वाले को कष्ट होता है। तुम उस कष्ट का अनुभव नहीं करते; इसीलिये वह तुम्हें नहीं अखरता। मैं यह नहीं कहती कि सुधार जरूरी नहीं है। मैं भी शिक्षा का प्रचार चाहती हूँ, मैं भी बाल-विवाह बंद करना चाहती हूँ, मैं भी चाहती हूँ कि बीमारियाँ न फैलें, लेकिन कानून बनाकर जबरदस्ती यह सुधार नहीं करना चाहती। लोगों में शिक्षा और जागृति फैलाओ, जिसमें कानूनी भय के बगैर वह सुधार हो जाय। आपसे कुर्सी तो छोड़ी जाती नहीं, घर से निकला जाता नहीं, शहरों की विलासिता को एक दिन के लिए भी नहीं त्याग सकते और सुधार करने चले हैं आप देश का ! इस तरह सुधार न होगा। हाँ, पराधीनता की बेड़ी और भी कठोर हो जायगी।

(मिसेज़ कुमार चली जाती हैं, और कानूनी कुमार अव्यवस्थित-चित्त-सा कमरे में टहलने लगता है।)

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अगस्त, 1929 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित।]

ग़मी

मुझे जब कोई काम–जैसे बच्चों का खेलना, ताश खेलना, हारमोनियम बजाना, सड़क पर आने-जाने वालों को देखना–नहीं होता तो अखबार उलट लिया करता हूँ। अख़बार में पहले उन मुक़दमों की रिपोर्ट पढ़ता हूँ, जिसमें किसी स्त्री की चर्चा होती है–जैसे आशनाई के, या भगा ले जाने के, या तलाक के या बलात्कार के। विशेषकर बलात्कार के मुकदमे मैं

बड़े शौक से पढ़ता हूँ, तन्मय हो जाता हूँ।

कल संयोग से अखबार में ऐसा ही एक मुकदमा मिल गया। मैं संभल गया। ताबेदार से चिलम भरवाई और घड़ी-दो-घड़ी असीम आनन्द की कल्पना करके अखबार पढ़ने लगा–

यकायक किसी ने पुकारा–"बाबूजी...?"

मुझे यह 'मुदाखलत बेजा' बुरी तो लगी, लेकिन कभी-कभी इसी तरह निमंत्रण भी आ जाया करते हैं, इसलिए मैंने कमरे के बाहर आकर आदमी से पूछा–"क्या काम है मुझसे ? कहाँ से आया है ?"

उस आदमी के हाथ में न कोई निमंत्रण-पत्र था, न निमंत्रित सज्जनों की नामावली। इससे मेरा क्रोध और दहक उठा। मैंने अंग्रेज़ी में दो-चर गालियाँ दीं और उसके जवाब की अपेक्षा करने लगा।

आदमी ने कहा–"बाबू भागीरथप्रसाद के घर से आया हूँ। उनके घर में ग़मी हो गयी है।"

मैंने चिन्तित होकर पूछा–"कौन मर गया है ?"

आदमी–"हुज़ूर, यह तो मुझे नहीं मालूम। बस इतना ही कहा है कि ग़मी की सूचना दे आ।"

यह कहकर वह चलता बना और मेरे मन में भ्रांति का एक तूफ़ान छोड़ गया–कौन मर गया ? स्त्री तो बीमार न थी, न कोई बच्चा ही बीमार था। फिर मर कौन गया ? अच्छा, समझ गया। स्त्री के बाल-बच्चा होने वाला था। उसी में कुछ गोलमाल हो गया होगा। बेचारी मर गयी होगी। घर उजड़ गया। कई छोटे-छोटे बच्चे हैं। कौन उन्हें पालेगा ? और तो और, इस जाड़े-पाले में नदी जाना और वह भी नंगे पैर और रात को नदी में स्नान। उसकी मृत्यु क्या हुई, हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो हवा जुकाम हुआ करती है, रात को नहाना तो मौत के मुँह में जाना है।

इस सोच में मैं कई मिनट मूढ़ बना खड़ा रहा। फिर घर में जाकर कपड़े उतारे, धोती ली और नंगे पाँव चला। भागीरथप्रसाद के घर पहुंचा तो चिराग जल गये थे। द्वार पर कई आदमी मेरी ही तरह धोतियाँ लिये एक तख्त पर बैठे हुए थे।

मैंने पूछा–"आप लोगों को तो मालूम होगा कौन मर गया है ?" एक महाशय बोले–"जी नहीं। नाई ने तो इतना ही कहा था, ग़मी हो गयी है। शायद स्त्री का देहांत हो गया है। भागीरथलाल को बुलाना चाहिए। देर क्यों कर रहे हैं ? मालूम नहीं कफन मँगवा लिया है या नहीं। अभी तो कहीं बाँस-फाँस का भी पता नहीं। सारी रात मरन है।"

मैंने द्वार पर जाकर पुकारा–"कहाँ हो भाई, क्या हम लोग अन्दर आ जायें ? चारपाई से तो उतार लिया है न ?"

भागीरथप्रसाद एक मिनिट में पान और इलायची की तश्तरी लिये, फला-लेन का कुरता पहने, पान खाते हुए बाहर निकले। बाहर बैठी हुई शोक-मण्डली उन्हें देखकर चकित हो गयी। यह बात क्या है ? न लाश, न कफन, न रोना, न पीटना...यह कैसी ग़मी है। आखिर मैंने डरते-डरते कहा–कौन यानी किसके विषय में यही आदमी जो आपने भेजा था ? तो क्या देर है ? भागीरथ ने कुर्सी पर बैठकर कहा, "पहले आराम से बैठिये,

पान खाइये, तब वह बात भी होगी। मैं आपका मतलब समझ गया। बात सोलहों आने ठीक है।"

"तो फिर जल्दी कीजिये, रात हो ही गयी है। कौन है ?"

भागीरथ ने अब की गम्भीर होकर कहा, "वही जो सबसे प्यारा, मेरा मित्र, मेरे जीवन का आधार, मेरा सर्वस्व, बेटे से भी प्यारा, स्त्री से भी निकट, मेरे 'आनन्द' की मृत्यु हो गयी। एक बालक का जन्म हुआ, पर मैं इसे आनन्द का विषय नहीं, शोक की बात समझता हूँ। आप लोग जानते हैं मेरे दो बालक मौजूद हैं। उन्हीं का पालन मैं अच्छी तरह नहीं कर सकता। दूध भी कभी नहीं पिला सकता, फिर इस तीसरे बालक के जन्म पर मैं आनन्द कैसे मनाऊँ ! इसने मेरे सुख और शान्ति में बड़ी भारी बाधा डाल दी। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि इसके लिए दाई रख सकूँ। माँ इसको खिलाये; उसका पालन करे या घर के दूसरे काम करे ? फर्ज़ यह होगा कि मुझे सब काम छोड़कर इसकी सुश्रूषा करनी पड़ेगी। दस-पाँच मिनट जो मनोरंजन या सैर में जाते थे अब इसकी सत्कार की भेंट होंगे। मैं इसे विपत्ति समझता हूँ, और इसीलिए इस जन्म को ग़मी कहता हूँ। आप लोगों को कष्ट हुआ। क्षमा कीजिये। आप लोग गंगा-स्नान के लिए तैयार होकर आये। चलिये, मैं भी चलता हूँ। अगर शव को कन्धे पर रखकर चलना ही अभीष्ट हो तो मेरे ताश और चौसर को लेते चलिये। इन्हें चिता में जला देंगे। वहाँ मैं गंगाजल हाथ में लेकर प्रतिज्ञा करूँगा कि अब ऐसी महान मूर्खता फिर न करूँगा।"

हम लोगों ने खूब कहकहे मारे, दावत खायी और घर चले आये पर भागीरथप्रसाद का कथन अभी तक मेरे कानों में गूँज रहा है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'मतवाला', 31 अगस्त, 1929 में प्रकाशित। हिन्दी मासिक पत्रिका 'आजकल', मई, 1977 मे पुनः प्रकाशित। 'सोलह अप्राप्य कहानियां' तथा 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में सकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

अलग्योझा

भोला महतो ने पहली स्त्री के मर जाने के बाद दूसरी सगाई की तो उसके लड़के रग्घू के लिये बुरे दिन आ गये। रग्घू की उम्र उस समय केवल दस वर्ष की थी। चैन से गाँव में गुल्ली-डंडा खेलता फिरता था। माँ के आते ही चक्की में जुतना पड़ा। पन्ना रूपवती स्त्री थी और रूप और गर्व में चोली-दामन का नाता है। वह अपने हाथों से कोई मोटा काम न करती। गोबर रग्घू निकालता, बैलों को सानी रग्घू देता। रग्घू ही जूठे बरतन माँजता। भोला की आँखें कुछ ऐसी फिरीं कि उसे अब रग्घू में सब बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ नजर आतीं। पन्ना की बातों को वह प्राचीन मर्यादानुसार आँखें बन्द करके मान लेता था। रग्घू की शिकायतों की जरा भी परवाह न करता। नतीजा यह हुआ कि रग्घू ने शिकायत करना छोड़ दिया। किसके सामने रोये ? बाप ही नहीं, सारा गाँव उसका दुश्मन था। बड़ा जिद्दी लड़का है, पन्ना को कुछ समझता ही नहीं; बेचारी उसका दुलार करती है, खिलाती-पिलाती है। यह उसी का फल है। दूसरी औरत होती, तो निबाह न होता ! वह

तो कहो, पन्ना इतनी सीधी-सादी है कि निबाह होता जाता है। सबल की शिकायतें सब सुनते हैं, निर्बल की फ़रियाद भी कोई नहीं सुनता। रग्घू का हृदय माँ की ओर से दिन-दिन फटता जाता था। यहाँ तक कि आठ साल गुजर गये। और एक दिन भोला के नाम मृत्यु का सन्देश आ पहुँचा।

पन्ना के चार बच्चे थे—तीन बेटे और एक बेटी। इतना बड़ा खर्च और कमानेवाला कोई नहीं। रग्घू अब क्यों बात पूछने लगा। यह मानी हुई बात थी। अपनी स्त्री लायेगा और अलग रहेगा। स्त्री आकर और भी आग लगायेगी। पन्ना के चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा दिखाई देता था। पर कुछ भी हो, वह रग्घू की आसरैत बनकर घर में न रहेगी। जिस घर में उसने राज किया, उसमें अब लौंडी न बनेगी। जिस लौंडे को अपना गुलाम समझा, उसका मुँह न ताकेगी। वह सुन्दर थी, अवस्था भी कुछ ऐसी ज्यादा न थी। जवानी अपनी पूरी बहार पर थी। क्या वह कोई दूसरा घर नहीं कर सकती ? यही न होगा, लोग हँसेंगे। बला से ! उसकी बिरादरी में क्या ऐसा होता नहीं। ब्राह्मण-ठाकुर थोड़े ही थी कि नाक कट जायगी। यह तो ऊँची जातों में होता है कि घर में चाहे जो कुछ करो, बाहर परदा ढँका रहे। वह तो संसार को दिखाकर दूसरा घर कर सकती है। फिर वह रग्घू की दबैल बनकर क्यों रहे ?

भोला को मरे एक महीना गुजर चुका था। संध्या हो गई थी। पन्ना इसी चिन्ता में पड़ी हुई थी कि सहसा उसे ख्याल आया, लड़के घर में नहीं हैं। यह बैलों को लौटने की बेला है, कहीं कोई लड़का उनके नीचे न आ जाय। अब द्वार पर कौन है, जो उनकी देखभाल करेगा। घर से बाहर निकली, तो देखा रग्घू सामने झोंपड़े में बैठा ऊख की गंडेरियां बना रहा है, तीनों लड़के उसे घेरे खड़े हैं और छोटी लड़की गर्दन में हाथ डाले उसकी पीठ पर सवार होने की चेष्टा कर रही है। पन्ना को अपनी आँखों पर विश्वास न आया। आज तो यह नई बात है ! शायद दुनिया को दिखाता है कि मैं अपने भाइयों को कितना चाहता हूँ और मन में छुरी रक्खी हुई है। घात मिले तो जान ही ले ले। काला सांप है, काला सांप। कठोर स्वर में बोली—तुम सब-के-सब वहां क्या करते हो ? घर में आओ, सांझ की बेला है, गोरू आते होंगे।

रग्घू ने विनीत नेत्रों से देखकर कहा—मैं तो हूं ही काकी, डर किस बात का है ?

बड़ा लड़का केदार बोला—काकी, रग्घू दादा ने हमारे लिए दो गाड़ियाँ बना दी हैं। यह देख, एक पर हम और खुन्नू बैठेंगे, दूसरी पर लक्ष्मन और झुनिया। दादा दोनों गाड़ियां खींचेंगे।

यह कहकर वह कोने से छोटी-छोटी गाड़ियां निकाल लाया, चार-चार पहिए लगे थे, बैठने के लिए तख्ते और रोक के लिए दोनों तरफ बाजू थे।

पन्ना ने आश्चर्य से पूछा—ये गाड़ियां किसने बनायीं ?

केदार ने चिढ़कर कहा—रग्घू दादा ने बनायी हैं, और किसने। भगत के घर से बसूला और रुखानी माँग लाये और झटपट बना दीं। खूब दौड़ती हैं काकी। बैठ खुन्नू, मैं खींचूं।

खुन्नू गाड़ी में बैठ गया। केदार खींचने लगा। चर-चर का शोर हुआ, मानो गाड़ी भी इस खेल में लड़कों के साथ शरीक है।

लछमन ने दूसरी गाड़ी पर बैठकर कहा—दादा खींचो।

रग्घू ने झुनिया को भी गाड़ी में बैठा दिया और गाड़ी खींचता हुआ दौड़ा। तीनों लड़के तालियाँ बजाने लगे। पन्ना चकित नेत्रों से यह दृश्य देख रही थी और सोच रही थी कि यह वही रग्घू है या और।

थोड़ी देर के बाद दोनों गाड़ियाँ लौटीं; लड़के घर में आकर इस यान-यात्रा के अनुभव बयान करने लगे। कितने खुश थे सब, मानों हवाई जहाज पर बैठ आये हों।

खुन्नू ने कहा—काकी सच, पेड़ दौड़ रहे थे।

लछमन—और बछिया कैसी भागी, सब-की-सब दौड़ीं।

केदार—काकी, रग्घू दादा दोनों गाड़ियाँ एक साथ खींच ले जाते हैं।

झुनिया सबसे छोटी थी। उसकी व्यंजनाशक्ति उछल-कूद और नेत्रों तक परिमित थी—तालियाँ बजा-बजाकर नाच रही थी।

खुन्नू—अब हमारे घर गाय भी आ जायगी काकी। रग्घू दादा ने गिरधारी से कहा है कि हमें एक गाय ला दो।

गिरधारी बोला—कल लाऊँगा।

केदार—तीन सेर दूध देती है काकी। खूब दूध पीयेंगे।

इतने में रग्घू भी अन्दर आ गया। पन्ना ने अवहेलना की दृष्टि से देखकर पूछा—क्यों रग्घू, तुमने गिरधारी से कोई गाय माँगी है ?

रग्घू ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—हाँ माँगी तो है, कल लावेगा।

पन्ना—रुपये किसके घर से आवेंगे ? यह भी सोचा है।

रग्घू—सब सोच लिया है काकी। मेरी यह मुहर नहीं है। इसके पच्चीस रुपये मिल रहे हैं; पाँच रुपये बछिया के मुजरा दे दूँगा। बस गाय अपनी हो जायेगी।

पन्ना सन्नाटे में आ गयी । अब उसका अविश्वासी मन भी रग्घू के प्रेम और सज्जनता को अस्वीकार न कर सका। बोली—मुहर को क्यों बेचे देते हो ? गाय की अभी कौन जल्दी है। हाथ में पैसे हो जायँ, तो ले लेना। सूना-सूना गला अच्छा न लगेगा। इतने दिनों गाय नहीं रही; तो क्या लड़के नहीं जिये ?

रग्घू दार्शनिक भाव से बोला—बच्चों के खाने-पीने के यही दिन हैं काकी। इस उम्र में न खाया, तो फिर क्या खायेंगे। मुहर पहनना मुझे अच्छा भी नहीं मालूम होता, लोग समझते होंगे कि बाप तो मर गया, इसे मुहर पहनने की सूझी है।

भोला महतो तो गाय की चिन्ता ही में चल बसे, न रुपये आये और न गाय मिली, मजबूर थे। रग्घू ने वह समस्या कितनी सुगमता से हल कर दी। आज जीवन में पहली बार, पन्ना को रग्घू पर विश्वास आया, बोली—जब गहना ही बेचना है, तो अपनी मुहर क्यों बेचोगे। मेरी हँसली ले लेना।

रग्घू—नहीं काकी ! वह तुम्हारे गले में बहुत अच्छी लगती है। मर्दों को क्या, मुहर पहने या न पहने।

पन्ना—चल, मैं बूढ़ी हुई। मुझे अब हँसली पहनकर क्या करना है। तू अभी लड़का है, तेरा सूना गला अच्छा न लगेगा।

रग्घू मुस्करा कर बोला—तुम अभी से कैसे बूढ़ी हो गयीं ? गाँव में, कौन तुम्हारे बराबर है ?

रग्घू की सरल आलोचना ने पन्ना को लज्जित कर दिया। उसके रूखे-मुरझाये मुख पर प्रसन्नता की लाली दौड़ गयी।

2

पाँच साल गुजर गये। रग्घू का-सा मेहनती, ईमानदार, बात का धनी दूसरा किसान गाँव में न था। पन्ना की इच्छा के बिना कोई काम न करता। उसकी उम्र अब तैईस साल की हो गयी थी। पन्ना बार-बार कहती—भइया बहू को बिदा करा लाओ। कब तक नैहर में पड़ी रहेगी। सब लोग मुझी को बदनाम करते हैं कि यही बहू को नहीं आने देती, मगर रग्घू टाल देता था। कहता कि अभी जल्दी क्या है। उसे अपनी स्त्री के रंग-ढंग का कुछ परिचय दूसरों से मिल चुका था। ऐसी औरत को घर में लाकर वह अपनी शान्ति में बाधा नहीं डालना चाहता था।

आखिर एक दिन पन्ना ने जिद करके कहा—तो तुम न लाओगे ?

'कह दिया कि अभी कोई जल्दी नहीं है।'

'तुम्हारे लिए जल्दी न होगी, मेरे लिए तो जल्दी है। मैं आज आदमी भेजती हूँ।'

'पछताओगी काकी, उसका मिजाज अच्छा नहीं है।'

'तुम्हारी बला से। जब मैं उससे बोलूँगी ही नहीं; तो क्या हवा से लड़ेगी। रोटियाँ तो बना लेगी। मुझसे भीतर-बाहर का सारा काम नहीं होता, मैं आज बुलाये लेती हूँ ?'

'बुलाना चाहती हो, बुला लो; मगर फिर यह न कहना कि यह मेहरिया को ठीक नहीं करता, उसका गुलाम हो गया।'

'न कहूँगी, जाकर दो साड़ियाँ और मिठाई ले आ।'

तीसरे दिन मुलिया मैके से आ गई। दरवाजे पर नगाड़े बजे। शहनाइयों की मधुर ध्वनि आकाश में गूँजने लगी। मुँह-दिखावे की रस्म अदा हुई। वह इस मरुभूमि में निर्मल जल-धारा थी। गेहूँआ रंग था, बड़ी-बड़ी नोकीली पलकें, कपोलों पर हल्की सुर्खी, आँखों में प्रबल आकर्षण, रग्घू उसे देखते ही मन्त्र-मुग्ध हो गया।

प्रातःकाल पानी का घड़ा लेकर चलती, तब उसका गेहूँआ रंग प्रभात की सुनहली किरणों से कुन्दन हो जाता, मानो उषा अपनी सारी सुगन्ध सारा विकास और सारा उन्माद लिये मुसकराती चली जाती हो।

3

मुलिया मैके से ही जली-भुनी आयी थी, मेरा शौहर छाती फाड़कर काम करे, और पन्ना रानी बनी बैठी रहें, उसके लड़के रईसजादे बने घूमें। मुलिया से यह बरदाश्त न होगा। वह किसी की गुलामी न करेगी। अपने लड़के तो अपने होते ही नहीं, भाई किसके होते हैं। जब तक पर नहीं निकलते हैं, रग्घू को घेरे हुए हैं। ज्योंही जरा सयाने हुये, पर झाड़कर

निकल जायँगे। बात भी न पूछेंगे।

उस दिन उसने रग्घू से कहा—तुम्हें इस तरह गुलामी करनी हो तो करो, मुझसे न होगी।

रग्घू—तो फिर क्या करूँ, तू ही बता ? लड़के तो अभी घर का काम करने लायक भी नहीं हैं।

मुलिया—लड़के रावत के हैं, कुछ तुम्हारे नहीं हैं। यही पन्ना है, जो तुम्हें दाने-दाने को तरसाती थीं। सब सुन चुकी हूँ। मैं लौंडी बनकर न रहूँगी। रुपये-पैसे का मुझे कुछ हिसाब नहीं मिलता। न जाने तुम क्या लाते हो ? और वह क्या करती है। तुम समझते हो रुपये घर ही में तो हैं; मगर देख लेना, तुम्हें जो एक फूटी कौड़ी भी मिले।

रग्घू—रुपये-पैसे तेरे हाथ में देने लगूँ, तो दुनिया क्या कहेगी, यह तो सोच।

मुलिया—दुनिया जो चाहे कहे। दुनिया के हाथों बिकी नहीं हूँ। देख लेना, भाड़ लीपकर हाथ काला ही रहेगा। फिर तुम अपने भाइयों के लिए मरो, मैं क्यों मरूँ ?

रग्घू ने जवाब न दिया—उसे जिस बात का भय था, वह इतनी जल्द सिर पर आ पड़ी। अब अगर उसने बहुत तत्थोथंभी किया, तो साल-छः महीने और काम चलेगा। बस, आगे यह डोंगा चलता नजर नहीं आता। बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी ?

एक दिन पन्ना ने महुए का सुखावन डाला। बरसात शुरू हो गई थी। बखार में अनाज गीला हो रहा था। मुलिया से बोली—बहू, जरा देखती रहना, मैं तालाब से नहा आऊँ।

मुलिया ने लापरवाही से कहा—मुझे नींद आ रही है, तुम बैठकर देखो, एक दिन न नहाओगी तो क्या होगा।

पन्ना ने साड़ी उठाकर रख दी, नहाने न गई। मुलिया का वार खाली गया।

कई दिन के बाद एक शाम को पन्ना धान रापकर लौटी, अंधेरा हो गया था। दिन भर की भूखी थी, आशा थी, बहू ने रोटी बना रखी होगी, मगर देखा तो यहाँ चूल्हा ठंडा पड़ा हुआ था, और बच्चे मारे भूख के तड़प रहे थे। मुलिया से आहिस्ते से पूछा—आज अभी चूल्हा नहीं जला ?

केदार ने कहा—आज दोपहर को भी चूल्हा नहीं जला काकी ! भाभी ने कुछ बनाया ही नहीं।

पन्ना—तो तुम लोगों ने खाया क्या ?

केदार—कुछ नहीं, रात की रोटियाँ थीं, खुन्नू और लछमन ने खायीं। मैंने सत्तू खा लिया।

पन्ना—और बहू ?

केदार—वह तो पड़ी सो रही है, कुछ नहीं खाया।

पन्ना ने उसी वक्त चूल्हा जलाया और खाना बनाने बैठ गयी। आटा गूँथती थी और रोती थी। क्या नसीब है, दिन-भर खेत में जली, घर आई तो चूल्हे के सामने जलना पड़ा।

केदार का चौदहवाँ साल था। भाभी के रंग-ढंग देखकर सारी स्थिति समझ रहा था।

बोला—काकी, भाभी अब तुम्हारे साथ रहना नहीं चाहती। पन्ना ने चौंककर पूछा—क्या, कुछ कहती थी ?

केदार—कहती कुछ नहीं थी; मगर है उसके मन में यही बात। फिर तुम क्यों नहीं छोड़ देतीं ? जैसे चाहे रहे; हमारा भी भगवान है।

पन्ना ने दाँतों से जीभ दबाकर कहा—चुप, मेरे सामने ऐसी बात भूल कर भी न कहना। रग्घू तुम्हारा भाई नहीं, तुम्हारा बाप है। मुलिया से कभी बोलोगे तो समझ लेना जहर खा लूँगी।

4

दशहरे का त्योहार आया। इस गाँव से कोस-भर पर एक पुरवे में मेला लगता था। गाँव के सब लड़के मेला देखने चले। पन्ना भी लड़कों के साथ चलने को तैयार हुई, मगर पैसे कहाँ से आयें ? कुंजी तो मुलिया के पास थी।

रग्घू ने आकर मुलिया से कहा—लड़के मेले जा रहे हैं, सबों को दो-दो आने पैसे दे दे।

मुलिया ने त्योरियाँ चढ़ाकर कहा—पैसे घर में नहीं हैं।

रग्घू—अभी तो तेलहन बिका था, क्या इतनी जल्दी रुपये उठ गये ?

मुलिया—हाँ, उठ गये।

रग्घू—कहाँ उठ गये ? जरा सुनूँ, आज त्योहार के दिन लड़के मेला देखने न जायँगे ?

मुलिया—अपनी काकी से कहो, पैसे निकालें, गाड़कर क्या करेंगी।

खूँटी पर कुंजी लटक रही थी। रग्घू ने कुंजी उतारी और चाहा कि संदूक खोले कि मुलिया ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—कि कुंजी मुझे दे दो, नहीं तो ठीक न होगा। खाने-पहनने को भी चाहिये, कागज-किताब को भी चाहिये, उस पर मेला देखने को भी चाहिये। हमारी कमाई इसलिये नहीं है कि दूसरे खायँ और मूँछों पर ताव दें।

पन्ना ने रग्घू से कहा—भइया, पैसे क्या होंगे। लड़के मेले देखने न जायँगे।

रग्घू ने झिड़ककर कहा—मेला देखने क्यों न जायँगे ? सारा गाँव जा रहा है। हमारे ही लड़के न जायँगे।

यह कहकर रग्घू ने अपना हाथ छुड़ा लिया और पैसे निकालकर लड़कों को दे दिये, मगर कुंजी जब मुलिया को देने लगा, तब उसने उसे आँगन में फेंक दिया और मुँह लपेटकर लेट गयी। लड़के मेला देखने न गये।

इसके बाद दो दिन गुजर गये। मुलिया ने कुछ नहीं खाया, और पन्ना भी भूखी रही। रग्घू कभी उसे मनाता, कभी उसे; पर न यह उठती न वह। आखिर रग्घू ने हैरान होकर मुलिया से पूछा—कुछ मुँह से कह, चाहती क्या है ?

मुलिया ने धरती को सम्बोधित करके कहा—मैं कुछ नहीं चाहती, तू मुझे मेरे घर पहुँचा दे।

रग्घू—अच्छा उठ, बना खा। पहुँचा दूँगा।

मुलिया ने रग्घू की ओर आँखें उठाई। रग्घू उसकी सूरत देखकर डर गया। वह माधुर्य, वह मोहकता, वह लावण्य गायब हो गया था। दाँत निकल आये थे, आँखें फट गयी थीं और नथुने फड़क रहे थे। अंगारे की-सी लाल आँखों से देखकर बोली--अच्छा, तो काकी ने यह सलाह दी है, यह मन्त्र पढ़ाया है ? तो यहाँ ऐसी कच्ची नहीं हूँ। तुम दोनों की छाती पर मूँग दलूँगी। हो किस फेर में।

रग्घू--अच्छा, तो मूँग ही दल लेना। कुछ खा-पी लेगी, तभी तो मूँग दल सकेगी।

मुलिया--अब तो तभी मुँह में पानी डालूँगी, जब घर अलग हो जायगा। बहुत झेल चुकी, अब नहीं झेला जाता।

रग्घू सन्नाटे में आ गया, एक मिनट तक तो उसके मुँह से आवाज ही न निकली। अलग होने की उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी। उसने गाँव में दो चार परिवारों को अलग होते देखा था। वह खूब जानता था, रोटी के साथ लोगों के हृदय भी अलग हो जाते हैं। अपने हमेशा के लिए गैर हो जाते हैं। फिर उसमें वही नाता रह जाता है, जो गाँव के और आदमियों में। रग्घू ने मन में ठान लिया था कि इस विपत्ति को घर न आने दूँगा; मगर होनहार के सामने उसकी एक न चली। आह ! मेरे मुँह में कालिख लगेगी, दुनिया यही कहेगी कि बाप के मर जाने पर दस साल भी एक में निबाह न हो सका। फिर किससे अलग हो जाऊँ। जिनको गोद में खिलाया, जिनको बच्चों की तरह पाला, जिनके लिए तरह-तरह के कष्ट झेले, उन्हीं से अलग हो जाऊँ। अपने प्यारों को घर से निकाल बाहर करूँ। उसका गला फँस गया। काँपते हुए स्वर में बोला--तू क्या चाहती है कि मैं अपने भाइयों से अलग हो जाऊँ ? भला सोच तो; कहीं मुँह दिखाने लायक रहूँगा ?

मुलिया--तो मेरा इन लोगों के साथ निबाह न होगा ?

रग्घू--तो तू अलग हो जा। मुझे अपने साथ क्यों घसीटती है।

मुलिया--तो मुझे क्या तुम्हारे घर में मिठाई मिलती है, मेरे लि‍ए क्या संसार में जगह नहीं है ?

रग्घू--तेरी जैसी मर्जी, जहाँ चाहे रह। मैं अपने घरवालों से अलग नहीं हो सकता। जिस दिन इस घर में दो चूल्हें जलेंगे, उस दिन मेरे कलेजे के दो टुकड़े हो जायँगे। मैं यह चोट नहीं सह सकता। तुझे जो तकलीफ हो, वह मैं दूर कर सकता हूँ। माल-असबाब की मालकिन तू है ही, अनाज-पानी तेरे ही हाथ है, अब रह क्या गया है ? अगर कुछ काम-धन्धा करना नही चाहती, मत कर। भगवान ने मुझे समाई दी होती, तो तुझे तिनका तक उठाने न देता। तेरे यह सुकुमार हाथ-पाँव मेहनत-मजूरी करने के लिए बनाये ही नहीं गये हैं; मगर क्या करूँ अपना कुछ बस ही नहीं है। फिर भी तेरा जी कोई काम करने को न चाहे, मत कर; मगर मुझसे अलग होने को न कह, तेरे पैरों पड़ता हूँ।

मुलिया ने सिर से आंचल खिसकाया और जरा समीप आकर बोली--मैं काम करने से नहीं डरती, न बैठे-बैठे खाना चाहती हूँ; मगर मुझसे किसी की धौंस नहीं सही जाती। तुम्हारी ही काकी घर का काम-काज करती हैं, तो अपने लिए करती हैं, अपने बाल-बच्चों के लिए करती हैं। मुझ पर कुछ एहसान नहीं करतीं। फिर मुझ पर धौंस क्यों जमाती हैं।

उन्हें अपने बच्चे प्यारे होंगे, मुझे तो तुम्हारा आसरा है। मैं अपनी आँखें से यह नहीं देख सकती कि सारा घर तो चैन करे, जरा-जरा से बच्चे तो दूध पीयें, और जिसके बल-बूते पर गृहस्थी थमी हुई है, वह मट्ठे को तरसे। कोई उसका पूछनेवाला न हो। जरा अपना मुँह तो देखो, कैसे सूरत निकल आयी है। औरों के तो चार बरस में अपने पट्ठे तैयार हो जायेंगे। तुम तो दस साल में खाट पर पड़ जाओगे। बैठ जाओ, खड़े क्यों हो ? क्या मारकर भागोगे! मैं तुम्हें जबरदस्ती न बाँध लूँगी या ऐसे निर्मोहिये से पाला पड़ेगा, तो इस घर में भूल से न आती। आती भी तो मन न लगाती, मगर अब तो मन तुमसे लग गया। घर भी जाऊँ, तो मन यहाँ ही रहेगा। और तुम जो हो, मेरी बात नहीं पूछते।

मुलिया की ये रसीली बातें रग्घू पर कोई असर न डाल सकीं। वह उसी रुखाई से बोला—मुलिया, मुझसे यह न होगा। अलग होने का ध्यान करते ही मेरा मन न जाने कैसा हो जाता है। यह चोट मुझसे न सही जायगी।

मुलिया ने परिहास करके कहा—तो चूड़ियाँ पहनकर अन्दर बैठो न। लाओ मैं मूँछें लगा लूँ। मैं तो समझती थी कि तुममें भी कुछ कस-बल है। अब देखती हूँ, तो निरे मिट्टी के लोंदे हो।

पन्ना दालान में खड़ी दोनों की बातचीत सुन रही थी। अब उससे न रहा गया। सामने आकर रग्घू से बोली—जब वह अलग होने पर तुली हुई है, फिर तुम क्यों उसे जबरदस्ती मिलाये रखना चाहते हो ? तुम उसे लेकर रहो, हमारे भगवान मालिक हैं। जब महतो मर गये थे, और कहीं पत्ती की भी छाँह न थी, जब उस वक्त भगवान ने निवाह दिया, तो अब क्या डर ? अब तो भगवान की दया से तीनों लड़के सयाने हो गए हैं। अब कोई चिन्ता नहीं।

रग्घू ने आँसू भरी आँखों से पन्ना को देखकर कहा—काकी, तू भी पागल हो गयी है क्या ? जानती नहीं, दो रोटियाँ होते ही दो मन हो जाते हैं।

पन्ना—जब वह मानती ही नहीं, तब तुम क्या करोगे ? भगवान की यही मरजी होगी, तो कोई क्या करेगा। परालब्ध में जितने दिन एक साथ रहना लिखा था, उतने दिन रहे, अब उसकी यही मरजी है, तो यही सही। तुमने मेरे बाल-बच्चों के लिए जो कुछ किया, वह मैं भूल नहीं सकती। तुमने इनके सिर पर हाथ न रक्खा होता तो आज इनकी न जाने क्या गति होती, न जाने किसके द्वार पर ठोकरें खाते होते, न जाने कहाँ-कहाँ भीख माँगते फिरते। तुम्हारा जस मरते दम तक गाऊँगी, अगर मेरी खाल तुम्हारे जूते बनाने के काम आये, तो खुशी से दे दूँ। चाहे तुमसे अलग हो जाऊँ, पर जिस घड़ी तुम पुकारोगे, कुत्ते की तरह दौड़ी आऊँगी। यह भूलकर भी न सोचना की तुमसे अलग होकर मैं तुम्हारा बुरा चेतूँगी। जिस दिन तुम्हारा अनभल मेरे मन में आयेगा, उसी दिन विष खाकर मर जाऊँगी। भगवान करे, तुम दूधों नहाव, पूतों फलो। मरते दम तक यही असीस मेरे रोएँ-रोएँ से निकलती रहेगी। और अगर लड़के भी अपने बाप के हैं, तो मरते दम तुम्हारा पोस मानेंगे।

यह कहकर पन्ना रोती हुई वहाँ से चली गई। रग्घू वहीं मूर्ति की तरह खड़ा रहा। आसमान की ओर टकटकी लगी थी और आँखों से आँसू बह रहे थे।

5

पन्ना की बातें सुनकर मुलिया समझ गयी कि अब अपने पौ बारह हैं। चटपट उठी, घर में झाड़ू लगाया, चूल्हा जलाया और कुएँ से पानी लाने चली। उसकी टेक पूरी हो गयी थी।

गाँव में स्त्रियों के दो दल होते हैं—एक बहुओं का, दूसरा सासों का। बहुएँ सलाह और सहानुभूति के लिए अपने दल में जाती हैं, सासें अपने दल में। दोनों की पंचायतें अलग होती हैं। मुलिया को कुएँ पर दो-तीन बहुएँ मिल गयीं। एक ने पूछा—आज तो तुम्हारी बुढ़िया बहुत रो-धो रही थी।

मुलिया ने विजय के गर्व से कहा—इतने दिनों से घर की मालकिन बनी हुई हैं, राज-पाट छोड़ते किसे अच्छा लगता है। बहन, मैं उनका बुरा नहीं चाहती; लेकिन एक आदमी की कमाई में कहाँ तक बरकत होगी। मेरे भी तो यही खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने के दिन है। अभी उनके पीछे मरो, फिर बाल-बच्चे हो जायँ, उनके पीछे मरो। सारी जिन्दगी रोते ही कट जाय।

एक बहू—बुढ़िया यही चाहती है कि यह बस जन्म भर लौंडी बनी रहे। मोटा-झोटा खाएँ और पड़ी रहें।

दूसरी बहू—किस भरोसे पर कोई मरे। अपने लड़के तो बात नहीं पूछते, पराये लड़कों का क्या भरोसा ? कल इनके हाथ-पाँव हो जायेंगे, फिर कौन पूछता है। अपनी-अपनी मेहरियों का मुँह देखेंगे। पहले से ही फटकार देना अच्छा है। फिर तो कोई कलंक न होगा।

मुलिया पानी लेकर गयी, खाना बनाया और रग्घू से बोली—'जाओ, नहा आओ, रोटी तैयार है।'

रग्घू ने मानो सुना ही नहीं। सिर पर हाथ रखकर द्वार की तरफ ताकता रहा।

मुलिया—क्या कहती हूँ, कुछ सुनाई देता है ? रोटी तैयार है, जाओ नहा आओ।

रग्घू—सुन तो रहा हूँ, क्या बहरा हूँ ? रोटी तैयार है, तो जाकर खा ले। मुझे भूख नहीं है।

मुलिया ने फिर कुछ नहीं कहा। जाकर चूल्हा बुझा दिया, रोटियाँ उठाकर छींके पर रख दीं और मुँह ढाँककर लेट रही।

जरा देर में पन्ना आकर बोली—खाना तो तैयार है, नहा-धोकर खा लो ! वह भी तो भूखी होगी ?

रग्घू ने झुँझलाकर कहा—काकी, तू घर में रहने देगी कि मुँह में कालिख लगाकर कहीं निकल जाऊँ ? खाना तो खाना ही है, आज न खाऊँगा, कल खाऊँगा; लेकिन अभी मुझसे न खाया जायगा। केदार क्या अभी मदरसे से नहीं आया ?

पन्ना—अभी तो नहीं आया, आता ही होगा।

पन्ना समझ गयी कि जब तक वह खाना बनाकर लड़कों को न खिलायेगी और खुद न खायगी, रग्घू न खाएगा। इतना ही नहीं, उसे रग्घू से लड़ाई करनी पड़ेगी, उसे जली-कटी सुनानी पड़ेगी, उसे यह दिखाना पड़ेगा कि मैं ही उससे अलग होना चाहती हूँ, नहीं तो वह इसी चिन्ता में घुल-घुलकर प्राण दे देगा। यह सोचकर उसने अलग चूल्हा जलाया और

खाना बनाने लगी। इतने में केदार और खुन्नू मदरसे से आ गये। पन्ना ने कहा—'आओ बेटा, खा लो रोटी तैयार है।'

केदार ने पूछा—भइया को बुला लूँ न ?

पन्ना—तुम आकर खा लो। उनकी रोटी बहू ने अलग बनायी है।

खुन्नू—जाकर भइया से पूछ न आऊँ ?

पन्ना—जब उनका जी चाहेगा, खायेंगे। तू बैठकर खा, तुझे इन बातों से क्या मतलब। जिसका जी चाहेगा, खायगा, जि[illegible] जी न चाहेगा न खाएगा। जब वह और उसकी बीवी अलग रहने पर तुले हैं, तो कौ[illegible] ?

केदार—तो क्या अम्माँजी, क्या [illegible] घर में रहेंगे ?

पन्ना—उनका जी चाहे एक घर [illegible] चाहे आँगन में दीवार डाल लें।

खुन्नू ने दरवाजे पर आकर झाँका, [illegible] फूस की झोपड़ी थी, वहीं खाट पर पड़ा रग्घू नारियल पी रहा था।

खुन्नू—भइया तो अभी नारियल लिये बैठे हैं।

पन्ना—जब जी चाहेगा खायेंगे।

केदार—भइया ने भाभी को डाँटा नहीं ?

मुलिया अपनी कोठरी में पड़ी सुन रही थी। बाहर आकर बोली—भइया ने तो नहीं डाँटा, अब तुम आकर डाँटो।

केदार के चेहरे का रंग उड़ गया। फिर जबान न खोली। तीनों लड़कों ने खाना खाया, और बाहर निकले। लू चलने लगी थी। आम के बाग में गाँव के लड़के-लड़कियाँ हवा से गिरे हुए आम चुन रहे थे। केदार ने कहा—आज हम भी आम चुनने चलें, खूब आम गिर रहे हैं।

खुन्नू—दादा जी बैठे हैं...

लक्षमन—मैं न जाऊँगा, दादा घुड़केंगे।

केदार—वह तो अब अलग हो गये।

लक्षमन—तो अब हमको कोई मारेगा, तब भी दादा न बोलेंगे ?

केदार—वाह, तब क्यों न बोलेंगे ?

रग्घू ने तीनों लड़कों को दरवाजे पर खड़े देखा, पर कुछ बोला नहीं ! पहले तो वह घर से बाहर निकलते ही उन्हें डाँट बैठता था; पर आज वह मूर्ति के समान निश्चल बैठा रहा। अब लड़कों को कुछ साहस हुआ। कुछ दूर और आगे बढ़े रग्घू अब भी न बोला, कैसे बोले। वह सोच रहा था, काकी ने लड़कों को खिला-पिला दिया, मुझसे पूछा तक नहीं। क्या उसकी आँखों पर भी परदा पड़ गया है; अगर मैंने लड़कों को पुकारा और वह न आये तो ? मैं उनको मार-पीट तो सकूँगा। लू में सब-के-सब मारे-मारे फिरेंगे। कहीं बीमार न पड़ जायें। उसका दिल मसोसकर रह जाता था; लेकिन मुँह से कुछ कह न सकता था। लड़कों ने देखा कि यह बिल्कुल नहीं बोलते, तो निर्भय होकर चल पड़े।

सहसा मुलिया ने आकर कहा—अब तो उठोगे कि अब भी नहीं ? जिनके नाम पर फाका कर रहे हो, उन्होंने मजे से लड़कों को खिलाया और आप खाया अब आराम से सो

रही हैं। 'मोर पिया बात न पूछें मोर सुहागिन नाँव।' एक भी तो मुँह से न फटा कि भइया, खा लो।

रघू को इस समय मर्मान्तक पीड़ा हो रही थी। मुलिया के इन कठोर शब्दों ने घाव पर नमक छिड़क दिया। दुःखित नेत्रों से देखकर बोला–तेरी जो मर्जी थी, वही तो हुआ। अब जा ढोल बजा !

मुलिया--नहीं, तुम्हारे लिए थाली परोसे बैठी है।

रघू–मुझे चिढ़ा मत। तेरे पीछे मैं भी बदनाम हो रहा हूँ। जब तू किसी की होकर नहीं रहना चाहती; तो दूसरे को क्या गरज है, जो तेरी खुशामद करे। जाकर काकी से पूछ, लड़के आम चुनने गये हैं, उन्हें पकड़ लाऊँ।

मुलिया अंगूठा दिखाकर बोली--यह जाता है ! तुम्हें सौ बार गरज हो जाकर पूछो।

इतने में पन्ना भी भीतर से निकल आयी। रघू ने पूछा–लड़के बगीचे में चले गये काकी, लू चल रही है।

पन्ना--अब उनका कौन पुछत्तर है। बगीचे में जायें, पेड़ पर चढ़ें, पानी में डूबें। मैं अकेली क्या-क्या करूँ ?

रघू–जाकर पकड़ लाऊँ ?

पन्ना--जब तुम्हें अपने मन से नहीं जाना है, तो फिर मैं जाने को क्यों कहूँ ? तुम्हें रोकना होता, तो रोक न देते ? तुम्हारे सामने ही तो गये होंगे।

पन्ना की बात पूरी न हुई थी कि रघू ने नारियल कोने में रख दिया और बाग की तरफ चला।

6

रघू लड़कों को लेकर बाग से लौटा, तो देखा मुलिया अभी तक झोपड़े में खड़ी है। बोला--तू जाकर खा क्यों नहीं लेती। मुझे तो इस बेला भूख नहीं है।

मुलिया ऐंठकर बोली--हाँ, भूख क्यों लगेगी। भाइयों ने खाया, वह तुम्हारे पेट में पहुंच ही गया होगा।

रघू ने दाँत पीसकर कहा--मुझे जला मत मुलिया, नहीं तो अच्छा न होगा। खाना कहीं भागा नहीं जाता। एक बेला न खाऊंगा, तो मर न जाऊँगा। क्या तू समझती है, घर में आज कोई छोटी बात हो गई है ? तूने घर में चूल्हा नहीं जलाया, मेरे कलेजे में आग लगाई है। मुझे घमण्ड था कि और चाहे कुछ हो जाय, पर मेरे घर में फूट का रोग न आने पावेगा, पर तूने मेरा घमंड चूर कर दिया। परालब्ध की बात है।

मुलिया तिनककर बोली–सारा मोह-छोह तुम्हीं को है कि और किसी को भी है ? मैं तो किसी को तुम्हारी तरह बिसूरते नहीं देखती।

रघू ने ठण्डी साँस खींचकर कहा–मुलिया घाव पर नोन न छिड़क। तेरे ही कारन मेरी पीठ में धूल लग रही है। मुझे इस गृहस्थी का मोह न होगा, तो किसे होगा ? मैंने ही तो इसे मर-मर जोड़ा। जिनको गोद में खेलाया, वही अब मेरे पट्टीदार होंगे। जिन बच्चों को मैं डाँटता था, उन्हें आज कड़ी आँखों से भी नहीं देख सकता। मैं उनके भले के लिए भी

कोई बात करूँ, तो दुनिया यही कहेगी कि यह अपने भाइयों को लूटे लेता है। जा, मुझे छोड़ दे, अभी मुझसे कुछ न खाया जायगा।

मुलिया—मैं कसम रखा दूँगी, नहीं चुपके से चले चलो।

रग्घू—देख, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अपनी हट छोड़ दे।

मुलिया—हमारा ही लहू पिये, जो खाने न उठे।

रग्घू ने कानों पर हाथ रखकर कहा—यह तूने क्या किया मुलिया ? मैं तो उठ ही रहा था। चल खा लूँ। नहाने-धोने कौन जाय, लेकिन इतना कहे देता हूँ कि चाहे चार की जगह छः रोटियाँ खा जाऊँ, चाहे तू मुझे घी के मटके में ही डुबो दे ; पर यह दाग मेरे दिल से न मिटेगा।

मुलिया—दाग-साग सब मिट जायगा। पहले सबको ऐसा ही लगता है। देखते नहीं हो, उधर कैसी चैन की बंसी बज रही है। वह तो मना ही रही थी किसी तरह यह सब अलग हो जायँ। अब वह पहले की-सी चाँदी तो नहीं है कि जो कुछ घर में आवे, सब गायब ! अब क्यों हमारे साथ रहने लगीं।

रग्घू ने आहत स्वर में कहा—इसी बात का तो मुझे गम है। काकी से ऐसी आशा न थी।

रग्घू खाने बैठा, तो कौर विष के घूँट-सा लगता था। जान पड़ता था, रोटियाँ भूसी की हैं। दाल पानी-सी लगती थी। पानी भी कंठ के नीचे न उतरता था। दूध की तरफ़ देखा तक नहीं। दो-चार ग्रास खाकर उठ आया, जैसे किसी प्रियजन के श्राद्ध का भोजन हो।

रात का भोजन भी उसने इसी तरह किया। भोजन क्या किया, कसम पूरी की। रात-भर उसका चित्त उद्विग्न रहा। एक अज्ञात शंका उसके मन पर छाई हुई थी, जैसे भोला महतो द्वार पर बैठा रो रहा हो। वह कई बार चौंककर उठा। ऐसा जान पड़ा, भोला उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देख रहा है।

वह दोनों जून का भोजन करता था; पर जैसे शत्रु के घर। भोला की शोकमग्न मूर्ति आँखों से न उतरती थी। रात को उसे नींद न आती। वह गाँव में निकलता, तो इस तरह मुँह चुराये, सिर झुकाये, मानो गोहत्या की हो।

7

पाँच साल गुजर गये। रग्घू अब दो लड़कों का बाप था। आँगन में दीवार खिंच गई थी, खेतों में मेड़ें डाल दी गयी थीं, और बैल-बधिये बाँट लिये गये थे। केदार की उम्र अब सोलह साल की हो गई थी। उसने पढ़ना छोड़ दिया था और खेती का काम करता था। खुन्नू गाय चराता था। कंवल लछमन अब तक मदरसे जाता था। पन्ना और मुलिया दोनों एक दूसरे की सूरत से जलती थीं। मुलिया के दोनों लड़के बहुधा पन्ना के पास ही रहते। वही उन्हें उबटन मलती, वही काजल लगाती, वही गोद में लिए फिरती; मगर मुलिया के मुँह से अनुग्रह का एक शब्द भी न निकलता। न पन्ना ही इसकी इच्छुक थी। वह जो कुछ करती निर्व्याज भाव से करती थी। उसके दो-दो लड़के कमाऊ हो गए थे। लड़की खाना

पका लेती थी। वह खुद ऊपर का काम-काज कर लेती। इसके विरुद्ध रग्घू अपने घर का अकेला था, वह भी दुर्बल, अशक्त और जवानी में बूढ़ा। अभी आयु तीस वर्ष से अधिक न थी; लेकिन बाल खिचड़ी हो गये थे, कमर भी झुक चली थी। खाँसी ने जीर्ण कर रक्खा था। देखकर दया आती थी। और खेती पसीने की वस्तु है। खेतों की जैसी सेवा होनी चाहिए, वह उससे न हो पाती। फिर अच्छी फसल कहाँ से आती ! कुछ ऋणी भी हो गया था। वह चिन्ता और भी मारे डालती थी। चाहिए तो यह था कि अब उसे कुछ आराम मिलता। इतने दिनों के निरन्तर परिश्रम के बाद सिर का बोझ कुछ हल्का होता; किन्तु मुलिया की स्वार्थपरता और अदूरदर्शिता ने लहराती हुई खेती उजाड़ दी; अगर सब एक साथ रहते, तो वह अब तक पेंशन पा जाता, मजे से द्वार पर बैठा हुआ नारियल पीता। भाई काम करता, वह सलाह देता। महतो बना फिरता। कहीं किसी के झगड़े चुकाता। कहीं साधु-सन्तों की सेवा करता; पर वह अवसर हाथ से निकल गया। अब तो चिन्ताभार दिन-दिन बढ़ता जाता था।

आखिर उसे धीमा-धीमा ज्वर रहने लगा। हृदय-शूल, चिन्ता, कड़े परिश्रम और अभाव का यही पुरस्कार है। पहले कुछ परवाह न की। समझा आप ही अच्छा हो जायगा; मगर कमज़ोरी बढ़ने लगी, तो दवा की फिक्र हुई। जिसने जो बता दिया, खा लिया। डाक्टरों और वैद्यों के पास जाने की सामर्थ्य कहाँ ? और सामर्थ्य भी होती, तो रुपये खर्च कर देने के सिवा और नतीजा ही क्या था। जीर्ण ज्वर की औषधि आराम है और पुष्टिकारक भोजन। न वह वसन्त-मालती का सेवन कर सकता था और न आराम से बैठकर बलवर्धक भोजन कर सकता था, कमज़ोरी बढ़ती ही गयी।

पन्ना को अवसर मिलता तो वह आकर उसे तसल्ली देती; लेकिन उसके लड़के अब रग्घू से बात भी न करते थे। दवा-दारू तो क्या करते, उसका और मजाक उड़ाते। भैया समझते थे कि हम लोगों से अलग होकर सोने की ईंट रख लेंगे। भाभी भी समझती थीं, सोने से लद जाऊँगी। अब देखें, कौन पूछता है। सिसक-सिसककर न मरें, तो कह देना। बहुत 'हाय ! हाय !' भी अच्छी नहीं होती। आदमी उतना काम करे, जितना हो सके। यह नहीं कि रुपये के लिए जान ही दे दे।

पन्ना कहती—रग्घू बेचारे का कौन दोष है।

केदार कहता—चल, मैं खूब समझता हूँ। भैया की जगह मैं होता तो डंडे से बात करता। मजाल थी कि औरत यों जिद करती। यह सब भैया की चाल थी। सब सधी-बदी बात थी।

आखिर एक दिन रग्घू का टिमटिमाता हुआ जीवन-दीपक बुझ गया। मौत ने सारी चिन्ताओं का अन्त कर दिया।

अन्त समय उसने केदार को बुलाया था, पर केदार को ऊख में पानी देना था। डरा, कहीं दवा के लिए न भेज दें। बहाना बता दिया।

8

मुलिया का जीवन अन्धकारमय हो गया। जिस भूमि पर उसने मंसूबों की दीवार खड़ी की

थी, अब नीचे से खिसक गई थी। जिस खूँटे के बल पर वह उछल रही थी, वह उखड़ गया था। गाँववालों ने कहना शुरू किया, ईश्वर ने कैसा तत्काल दण्ड दिया। बेचारी मारे लाज के अपने बच्चों को लिये रोया करती। गाँव में किसी को मुँह दिखाने का साहस न होता। प्रत्येक प्राणी उससे यह कहता हुआ मालूम होता था—'मारे घमण्ड के धरती पर पाँव न रखती थी, आखिर सजा मिल गई कि नहीं।' अब इस घर में कैसे निबाह होगा ? वह किसके सहारे रहेगी ? किसके बल पर खेती होगी। बेचारा रग्घू बीमार था, दुर्बल था; पर जब तक जीता रहा, अपना काम करता रहा। मारे कमजोरी के कभी-कभी सिर पकड़कर बैठ जाता, और जरा दम लेकर फिर हाथ चलाने लगता था। सारी खेती तहस-नहस हो रही थी, उसे कौन सँभालेगा ? अनाज की डाँठें खलियान में पड़ी थीं, ऊख अलग सूख रही थी। वह अकेली क्या-क्या करेगी ? फिर सिंचाई अकेले आदमी का तो काम नहीं। तीन-तीन मजूरों को कहाँ से लाये ? गाँव में मजूर थे ही कितने ? आदमियों के लिए खींचातानी हो रही थी। क्या करे, क्या न करे ?

इस तरह तेरह दिन बीत गये। क्रिया-कर्म से छुट्टी मिली। दूसरे ही दिन सवेरे मुलिया ने दोनों बालकों को गोद में उठाया और अनाज माँड़ने चली। खलिहान में पहुँचकर उसने एक को तो पेड़ के नीचे घास के नर्म बिस्तर पर सुला दिया और दूसरे को वहीं बैठाकर अनाज माँड़ने लगी। बैलों को हाँकती थी और रोती थी। क्या इसीलिए भगवान् ने उसको जन्म दिया था ? देखते-देखते क्या-से-क्या हो गया ? इन्हीं दिनों पिछले साल भी अनाज माँड़ा गया था, वह रग्घू के लिए लोटे में शरबत और मटर की घुँघनी लेकर आयी थी। आज कोई उसके न आगे है न पीछे ! लेकिन किसी की लौंडी तो नहीं हूँ ? उसे अलग होने का अब भी पछतावा न था।

एकाएक छोटे बच्चे का रोना सुनकर उसने उधर ताका, तो बड़ा लड़का उसे चुमकारकर कह रहा था—बैया, तुप रहो, तुप रहो। धीरे-धीरे उसके मुंह पर हाथ फेरता था और चुप करने के लिए विकल था। जब बच्चा किसी तरह न चुप हुआ तो वह खुद उसके पास लेट गया और उसे छाती से लगाकर प्यार करने लगा; मगर जब यह प्रयत्न भी सफल न हुआ, तो वह रोने लगा।

उसी समय पन्ना दौड़ी आयी और छोटे बालक को गोद में उठाकर प्यार करती हुई बोली—लड़कों को मुझे क्यों न दे आयी बहू ? हाय ! हाय ! अभी बेचारा धरती पर पड़ा लोट रहा है। जब मैं मर जाऊँ, तो जो चाहे करना, अभी तो जीती हूँ। अलग हो जाने से बच्चे तो नहीं अलग हो गये।

मुलिया ने कहा—तुम्हें भी तो छुट्टी नहीं थी अम्माँ, क्या करती।

पन्ना—तो तुझे यहाँ आने की ऐसी क्या जल्दी थी। डाँठ माँड़ न जाती तीन-तीन लड़के तो हैं, और किस दिन काम आयेंगे। केदार तो कल ही माँड़ने को कह रहा था; पर मैंने कहा—पहले ऊख में पानी दे लो; फिर अनाज माँड़ना। मँड़ाई तो दस दिन बाद भी हो सकती है, ऊख की सिंचाई न हुई तो सूख जायगी। कल से पानी चढ़ा हुआ है, परसों तक खेत पुर जायगा। तब मँड़ाई हो जायगी। तुझे विश्वास न आवेगा, जब से भैया मरे हैं, केदार को बड़ी चिंता हो गयी है। दिन में सौ-सौ बार पूछता है, भाभी बहुत रोती तो नहीं हैं ? देख, लड़के भूखे तो नहीं हैं। कोई लड़का रोता है, तो दौड़ा आता है देख अम्माँ क्या हुआ,

बच्चा क्यों रोता है ? कल रोकर बोला—अम्माँ, मैं जानता कि भैया इतनी जल्दी चले जायँगे, तो उनकी सेवा कर लेता। कहाँ जगाये-जगाये उठता था, अब देखती हो; पहर रात से उठकर काम में लग जाता है। खुन्नू कल जरा-सा बोला—पहले हम अपनी ऊख में पानी दे लेंगे, तब भैया की ऊख में देंगे। उस पर केदार ने ऐसा डाँटा कि खुन्नू के मुँह से फिर बात न निकली। बोला—कैसी तुम्हारी और कैसी हमारी ऊख! भैया ने जिला न लिया होता, तो आज या तो मर गये होते या कहीं भीख माँगते। आज तुम बड़े ऊखवाले बने हो! यह उन्हीं का पुन-परताप है कि आज भले आदमी बने बैठे हो। परसों रोटी खाने को बुलाने गयी; तो मड़ैया में बैठा रो रहा था। पूछा—क्यों रोता है ? तो बोला—अम्माँ, भैया इसी 'अलग्योझे' के दुख से मर गये, नहीं अभी उनकी उमिर ही क्या थी। यह उस बखत न सूझा; नहीं उनसे क्यों बिगाड़ करते।

यह कहकर पन्ना ने मुलिया की ओर संकेतपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—तुम्हें वह अलग न रहने देगा बहू; कहता है, भैया हमारे लिये मर गये तो हम भी उनके बाल-बच्चों के लिए मर जायँगे।

मुलिया की आँखों से आँसू जारी थे, पन्ना की बातों में आज सच्ची वेदना, सच्ची सान्त्वना, सच्ची सद्‌चिन्ता भरी हुई थी। मुलिया का मन कभी उसकी ओर इतना आकर्षित न हुआ था। जिनसे उसे व्यंग्य और प्रतिकार का भय था, वे इतने दयालु, इतने शुभेच्छु हो गये थे।

आज पहली बार उसे अपनी स्वार्थपरता पर लज्जा आयी, पहली बार आत्मा ने अलग्योझे पर धिक्कारा !

9

इस घटना को हुए पाँच साल गुजर गये। पन्ना आज बूढ़ी हो गयी है। केदार घर का मालिक है। मुलिया घर की मालकिन है। खुन्नू और लछमन के विवाह हो चुके हैं; मगर केदार अभी तक क्वाँरा है। कहता है—मैं विवाह न करूँगा। कई जगहों से बातचीत हुई, कई सगाइयाँ आयीं; पर उसने हामी न भरी। पन्ना ने कम्पे लगाये, जाल फैलाये; पर वह न फँसा। कहता—औरतों में कौन सुख। मेहरिया घर में आयी और आदमी का मिजाज बदला। फिर जो कुछ है, वह मेहरिया है। माँ-बाप, भाई-बन्धु सब पराये हैं। जब भैया-जैसे आदमी का मिजाज बदल गया, तो फिर दूसरों की क्या गिनती। दो लड़के भगवान के दिए हैं, और क्या चाहिये। बिना ब्याह किये दो बेटे मिल गये, इससे बढ़कर और क्या होगा। जिसे अपना समझो, वह अपना है, जिसे गैर समझो, वह गैर है।

एक दिन पन्ना ने कहा—तेरा वंश कैसे चलेगा ?

केदार—मेरा वंश तो चल रहा है। दोनों लड़कों को अपना ही समझता हूँ।

पन्ना—समझने ही पर है, तो तू मुलिया को भी अपनी मेहरिया समझता होगा।

केदार ने झेंपते हुए कहा—तुम तो गाली देती हो अम्माँ !

पन्ना—गाली कैसी, तेरी भाभी ही तो है।

केदार—मेरे जैसे लट्ठ-गंवार को वह क्या पूछने लगी !

पन्ना–तू करने को कह, तो मैं उससे पूछूँ ?

केदार–नहीं मेरी अम्मा, कहीं रोने-गाने न लगे।

पन्ना–तेरा मन हो, तो मैं बातों-बातों में उसके मन की थाह लूँ ?

केदार–मैं नहीं जानता, जो चाहे कर।

पन्ना केदार के मन की बात समझ गयी। लड़के का दिल मुलिया पर आया हुआ है; पर संकोच और भय के मारे कुछ नहीं कहता।

उसी दिन उसने मुलिया से कहा–'क्या करूँ बहू, मन की लालसा मन में ही रही जाती है। केदार का घर भी बस जाता; तो मैं निश्चिन्त हो जाती।

मुलिया–वह तो करने ही नहीं कहते।

पन्ना–कहता है, ऐसी औरत मिले, जो घर में मेल से रहे, तो कर लूँ।

मुलिया–ऐसी औरत कहाँ मिलेगी ? कहीं ढूँढो।

पन्ना–मैंने तो ढूँढ लिया है।

मुलिया–सच ! किस गाँव की है ?

पन्ना–अभी न बताऊँगी, मुदा यह जानती हूँ कि उससे केदार की सगाई हो जाय, तो घर बस जाय और केदार की जिन्दगी भी सफल हो जाय। न जाने लड़की मानेगी कि नहीं !

मुलिया–मानेगी क्यों नहीं अम्माँ; ऐसा सुन्दर, कमाऊ, सुशील वर और कहाँ मिला जाता है। उस जनम का कोई साधु-महात्मा है, नहीं तो लड़ाई-झगड़े के डर से कौन बिन ब्याहा रहता है। कहाँ रहती है, मैं जाकर उसे मना लाऊँ।

पन्ना–तू चाहे, तो मना ले। तेरे ही ऊपर है।

मुलिया–मैं आज ही चली जाऊँगी अम्माँ ! उसके पैरों पड़कर मना लाऊँगी।

पन्ना–बता दूँ ! वह तू ही है !

मुलिया लजाकर बोली–तुम तो अम्माँ जी, गाली देती हो।

पन्ना–गाली कैसी, देवर ही तो है।

मुलिया–मुझ जैसी बुढ़िया को वह क्यों पूछेंगे।

पन्ना–वह तुझी पर दाँत लगाये बैठा है। तेरे सिवा कोई और उसे भाती ही नहीं। डर के मारे कहता नहीं; पर उसके मन की बात मैं जानती हूँ।

वैधव्य के शोक से मुरझाया हुआ मुलिया का पीत बदन कमल की भाँति अरुण हो उठा। दस वर्षों में जो कुछ खोया था, उसी एक क्षण में मानो ब्याज के साथ मिल गया। वही लावण्य, वही विकास, वही आकर्षण, वही लोच !

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अक्टूबर, 1929 मे प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'अलहेदगी' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना', फरवरी, 1930 में प्रकाशित। उर्दू कहानी संग्रह 'खाके परवाना' में संकलित।]

घरजमाई

हरिधन जेठ की दुपहरी में ऊख में पानी देकर आया और बाहर बैठा रहा। घर में से धुआँ उठता नजर आता था। छन-छन की आवाज भी आ रही थी। उसके दोनों साले उसके बाद आये और घर में चले गए। दोनों सालों के लड़के भी आये और उसी तरह अंदर दाखिल हो गये; पर हरिधन अंदर न जा सका। इधर एक महीने से उसके साथ यहाँ जो बर्ताव हो रहा था और विशेषकर कल उसे जैसी फटकार सुननी पड़ी थी, वह उसके पॉव में बेड़ियाँ-सी डाले हुए था। कल उसकी सास ही ने तो कहा था, मेरा जी तुमसे भर गया, मैं तुम्हारी जिन्दगी-भर का ठीका लिये बैठी हूँ क्या—और सबसे बढ़कर अपनी स्त्री की निष्ठुरता ने उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे। वह बैठी यह फटकार सुनती रही; पर एक बार तो उसके मुँह से न निकला, अम्माँ, तुम क्यों इनका अपमान कर रही हो ! बैठी गट-गट सुनती रही। शायद मेरी दुर्गति पर खुश हो रही थी। इस घर में वह कैसे जाय ? क्या फिर वही गालियाँ खाने, वही फटकार सुनने के लिए ? और आज इस घर में जीवन के दस साल गुजर जाने पर यह हाल हो रहा है। मैं किसी से कम काम करता हूँ ? दोनों साले मीठी नींद सो रहते हैं और मैं बैलों को सानी-पानी देता हूँ; छाँटी काटता हूँ। वहाँ सब लोग पल-पल पर चिलम पीते हैं, मैं आँखें बन्द किये अपने काम में लगा रहता हूँ। संध्या समय घरवाले गाने-बजाने चले जाते हैं, मैं घड़ी रात तक गाय-भैंसे दुहता रहता हूँ। उसका यह पुरस्कार मिल रहा है कि कोई खाने को भी नहीं पूछता। उल्टे गालियाँ मिलती हैं।

उसकी स्त्री घर में से डोल लेकर निकली और बोली—जरा इसे कुएँ से खींच लो। एक बूँद पानी नहीं है।

हरिधन ने डोल लिया और कुएँ से पानी भर लाया। उसे जोर की भूख लगी हुई थी, समझा अब खाने को बुलाने आवेगी; मगर स्त्री डोल लेकर अन्दर गई तो वहीं की हो रही। हरिधन थका-माँदा क्षुधा से व्याकुल पड़ा-पड़ा सो गया।

सहसा उसकी स्त्री गुमानी ने आकर उसे जगाया।

हरधिन ने पड़े-पड़े कहा—क्या है ? क्या पड़ा भी न रहने देगी या और पानी चाहिए।

गुमानी कटु स्वर में बोली—गुर्राते क्या हो, खाने को तो बुलाने आई हूँ।

हरिधन ने देखा, उसके दोनों साले और बड़े साले के दोनों लड़के भोजन किये चले आ रहे थे। उसकी देह में आग लग गई। मेरी अब यह नौबत पहुँच गई कि इन लोगों के साथ बैठकर खा भी नहीं सकता। ये लोग मालिक हैं। मैं इनकी जूठी थाली चाटने वाला हूँ। मैं इनका कुत्ता हूँ, जिसे खाने के बाद एक टुकड़ा रोटी डाल दी जाती है। यही घर है जहाँ आज से दस साल पहले उसका कितना आदर-सत्कार होता था। साले गुलाम बने रहते थे। सास मुँह जोहती रहती थी। स्त्री पूजा करती थी। तब उसके पास रुपये थे, जायदाद थी। अब वह दरिद्र है, उसकी सारी जायदाद को इन्हीं लोगों ने कूड़ा कर दिया। अब उसे रोटियों के भी लाले हैं। उसके जी में एक ज्वाला-सी उठी कि इसी वक्त अन्दर जाकर सास को और सालों को भिगो-भिगोकर लगाये; पर जब्त करके रह गया। पड़े-पड़े बोला—मुझे भूख नहीं है। आज न खाऊँगा।

गुमानी ने कहा—न खाओगे मेरी बला से, हाँ नहीं तो ! खाओगे, तुम्हारे ही पेट में

जायगा, कुछ मेरे पेट में थोड़े ही चला जायगा।

हरिधन का क्रोध आँसू बन गया। यह मेरी स्त्री है, जिसके लिए मैंने अपना सर्वस्व मिट्टी में मिला दिया। मुझे उल्लू बनाकर यह सब अब निकाल देना चाहते हैं। वह अब कहाँ जाय ! क्या करे !

उसकी सास आकर बोली—चलकर खा क्यों नहीं लेते जी, रूठते किस पर हो ? यहाँ तुम्हारे नखरे सहने का किसी में बूता नहीं है। जो देते हो वह मत देना और क्या करोगे। तुमसे बेटी ब्याही है, कुछ तुम्हारी जिन्दगी का ठीका नहीं लिखा है।

हरिधन ने मर्माहत होकर कहा—हाँ अम्माँ, मेरी भूल थी कि मैं यही समझ रहा था। अब मेरे पास क्या है कि तुम मेरी जिन्दगी का ठीका लोगी। जब मेरे पास भी धन था तब सब कुछ आता था। अब दरिद्र हूँ, तुम क्यों बात पूछोगी।

बूढ़ी सास भी मुँह फुलाकर भीतर चली गई।

2

बच्चों के लिए बाप एक फालतू-सी चीज—एक विलास की वस्तु—है, जैसे घोड़े के लिए चने या बाबुओं के लिए मोहनभोग। माँ रोटी-दाल है। मोहन भोग उम्र-भर न मिले तो किसका नुकसान है; मगर एक दिन रोटी-दाल के दर्शन न हों, तो फिर देखिए, क्या हाल होता है। पिता के दर्शन कभी-कभी शाम-सबेरे हो जाते हैं, वह बच्चे को उछालता है, दुलारता है, कभी गोद में लेकर या उंगली पकड़कर सैर कराने ले जाता है और बस, यही उसके कर्तव्य की इति है। वह परदेश चला जाय, बच्चे को परवाह नहीं होती; लेकिन माँ तो बच्चे का सर्वस्व है। बालक एक मिनिट के लिए भी उसका वियोग नहीं सह सकता। पिता कोई हो, उसे परवाह नहीं, केवल एक उछलने-कूदनेवाला आदमी होना चाहिए; लेकिन माता तो अपनी ही होनी चाहिए, सोलहों आने अपनी; वही रूप, वही रंग, वही प्यार, वही सब कुछ। वह अगर नहीं है तो बालक के जीवन का स्रोत मानो सूख जाता है, फिर वह शिव का नन्दी है, जिस पर फूल या जल चढ़ाना लाजिमी नहीं, अख्तियारी है। हरिधन की माता का आज दस साल हुए देहांत हो गया था; उस वक्त उसका विवाह हो चुका था। वह सोलह साल का कुमार था। पर माँ के मरते ही उसे मालूम हुआ, मैं कितना निस्सहाय हूँ। जैसे उस पर उसका कोई अधिकार ही न रहा हो। बहनों के विवाह हो चुके थे। भाई कोई दूसरा न था। बेचारा अकेले घर में जाते भी डरता था। माँ के लिए रोता था; पर माँ की परछाईं से डरता था। जिस कोठरी में उसने देह-त्याग किया था, उधर वह आँखें तक न उठाता। घर में एक बुआ थी, वह हरिधन का बहुत दुलार करती। हरिधन को अब दूध ज्यादा मिलता, काम भी कम करना पड़ता। बुआ बार-बार पूछती—बेटा ! कुछ खाओगे? बाप भी अब उसे ज्यादा प्यार करता, उसके लिए अलग एक गाय मँगवा दी, कभी-कभी उसे कुछ पैसे दे देता कि जैसे चाहे खर्च करे। पर इन मरहमों से वह घाव न पूरा होता था; जिसने उसकी आत्मा को आहत कर दिया था। यह दुलार और प्यार उसे बार-बार माँ की याद दिलाता। माँ की घुड़कियों में जो मजा था; वह क्या इस दुलार में था ? माँ से माँगकर, लड़कर, ठुनककर, रूठकर लेने में जो आनन्द था, वह क्या इस भिक्षादान में था ? पहले वह स्वस्थ था, माँगकर खाता, लड़-लड़कर खाता, अब वह बीमार था, अच्छे-से-अच्छे

पदार्थ उसे दिये जाते थे; पर भूख न थी।

साल-भर तक वह इस दशा में रहा। फिर दुनिया बदल गयी। एक नयी स्त्री जिसे लोग उसकी माता कहते थे, उसके घर में आयी और देखते-देखते एक काली घटा की तरह उसके संकुचित भूमंडल पर छा गयी—सारी हरियाली, सारे प्रकाश पर अन्धकार का परदा पड़ गया। हरिधन ने इस नकली माँ से बात तक न की, कभी उसके पास गया तक नहीं। एक दिन घर से निकला और ससुराल चला आया।

बाप ने बार-बार बुलाया; पर उनके जीते-जी वह फिर उस घर में न गया। जिस दिन उसके पिता के देहान्त की सूचना मिली, उसे एक प्रकार का ईर्ष्यामय हर्ष हुआ। उसकी आँखों से आँसू की एक बूँद भी न आयी।

इस नये संसार में आकर हरिधन को एक बार फिर मातृ-स्नेह का आनन्द मिला। उसकी सास ने ऋषि-वरदान की भाँति उसके शून्य जीवन को विभूतियों से परिपूर्ण कर दिया। मरुभूमि में हरियाली उत्पन्न हो गयी। सालियों की चुहल में, सास के स्नेह में, सालों के वाक्-विलास में और स्त्री के प्रेम में उसके जीवन की सारी आकांक्षाएँ पूरी हो गयीं। सास कहती—बेटा, तुम इस घर को अपना ही समझो, तुम्हीं मेरी आँखों के तारे हो। वह उससे अपने लड़कों की, बहुओं की शिकायत करती। वह दिल में समझता था, सास जी मुझे अपने बेटों से भी ज्यादा चाहती है। बाप के मरते ही वह घर गया और अपने हिस्से की जायदाद को कूड़ा करके, रुपयों की थैली लिए हुए आ गया। अब उसका दूना आदर-सत्कार होने लगा। उसने अपनी सारी सम्पत्ति सास के चरणों पर अर्पण करके अपने जीवन को सार्थक कर दिया। अब तक उसे कभी-कभी घर की याद आ जाती थी। अब भूलकर भी उसकी याद न आती, मानो वह उसके जीवन का कोई भीषण कांड था, जिसे भूल जाना ही उसके लिए अच्छा था। वह सबसे पहले उठता, सबसे ज्यादा काम करता, उसका मनोयोग, उसका परिश्रम देखकर गाँव के लोग दाँतों उंगली दबाते थे। उसके ससुर का भाग बखानते, जिसे ऐसा दामाद मिल गया; लेकिन ज्यों-ज्यों दिन गुजरते गये, उसका मान-सम्मान घटता गया। पहले देवता, फिर घर का आदमी, अन्त में घर का दास हो गया। रोटियों में भी बाधा पड़ गयी। अपमान होने लगा। अगर घर के लोग भूखों मरते और साथ ही उसे भी मरना पड़ता, तो उसे जरा भी शिकायत न होती। लेकिन जब देखता, और लोग मूँछों पर ताव दे रहे हैं, केवल मैं ही दूध की मक्खी बना दिया गया हूँ, तो उसके अन्तःस्तल से एक लम्बी, ठंडी आह निकल आती। अभी उसकी उम्र पच्चीस ही साल की तो थी। इतनी उम्र इस घर में कैसे गुजरेगी ? और तो और, उसकी स्त्री ने भी आँखें फेर लीं। यह उस विपत्ति का सबसे क्रूर दृश्य था।

3

हरिधन तो उधर भूखा-प्यासा चिन्ता-दाह में जल रहा था, इधर घर में सास जी और दोनों सालों में बातें हो रही थीं। गुमानी भी हाँ-में-हाँ मिलाती जाती थी।

बड़े साले ने कहा—हम लोगों की बराबरी करते हैं। यह नहीं समझते कि किसी ने उनकी जिन्दगी भर का बीड़ा थोड़े ही लिया है। दस साल हो गये। इतने दिनों में क्या दो-तीन हजार न हड़प गये होंगे ?

छोटे साले बोले—मजूर हो तो आदमी घुड़के भी, डाँटे भी, अब इनसे कोई क्या कहे। न जाने इनसे कभी पिंड छूटेगा भी या नहीं। अपने दिल में समझते होंगे, मैंने दो हज़ार रुपये नहीं दिये हैं ? यह नहीं समझते कि उनके दो हजार कब के उड़ चुके। सवा सेर तो एक जून को चाहिये।

सास ने गम्भीर भाव से कहा—बड़ी भारी खोराक है !

गुमानी माता के सिर से जूँ निकाल रही थी। सुलगते हुए हृदय से बोली—निकम्मे आदमी को खाने के सिवा और काम ही क्या रहता है ?

बड़े—खाने की कोई बात नहीं है। जिसकी जितनी भूख हो उतना खाय, लेकिन कुछ पैदा भी तो करना चाहिये। यह नहीं समझते कि पहुनई में किसी के दिन कटे हैं !

छोटे—मैं तो एक दिन कह दूँगा, अब अपनी राह लीजिये, आपका करजा नहीं खाया है।

गुमानी घरवालों की ऐसी-ऐसी बातें सुनकर अपने पति से द्वेष करने लगी थी। अगर वह बाहर से चार पैसे लाता, तो इस घर में उसका कितना मान-सम्मान होता, वह भी रानी बनकर रहती। न जाने क्यों, कहीं बाहर जाकर कमाते उसकी नानी मरती है। गुमानी की मनोवृत्तियाँ अभी तक बिल्कुल बालपन की-सी थीं। उसका अपना कोई घर न था। उसी घर का हित-अहित उसके लिए भी प्रधान था। वह भी उन्हीं शब्दों में विचार करती, इस समस्या को उन्हीं आँखों से देखती जैसे उसके घर वाले देखते थे। सच तो, दो हजार रुपये में क्या किसी को मोल ले लेंगे ? दस साल में दो हजार होते ही क्या हैं। दो सौ ही तो साल भर के हुए। क्या दो आदमी साल भर में दो सौ भी न खायेंगे। फिर कपड़े-लत्ते, दूध-घी, सभी कुछ तो है। दस साल हो गये, एक पीतल का छल्ला नहीं बना। घर से निकलते तो जैसे इनके प्रान निकलते हैं। जानते हैं जैसे पहले पूजा होती थी वैसे ही जनम-भर होती रहेगी। यह नहीं सोचते कि पहले और बात थी, अब और बात है। बहू तो पहले ससुराल जाती है तो उसका कितना महातम होता है। उसके डोली से उतरते ही बाजे बजते हैं, गाँव-मुहल्ले की औरतें उसका मुँह देखने आती हैं और रुपये देती हैं। महीनों उसे घर भर से अच्छा खाने को मिलता है, अच्छा पहनने को, कोई काम नहीं लिया जाता; लेकिन छः महीनों के बाद कोई उसकी बात भी नहीं पूछता, वह घर-भर की लौंडी हो जाती है। उनके घर में मेरी भी तो वही गति होती। फिर काहे का रोना। जो यह कहो कि मैं तो काम करता हूँ, तो तुम्हारी भूल है, मजूर की और बात है। उसे आदमी डाँटता भी है, मारता भी है, जब चाहता है, रखता है, जब चाहता है, निकाल देता है। कसकर काम लेता है। यह नहीं कि जब जी में आया, कुछ काम किया, जब जी में आया, पड़कर सो रहे।

4

हरिधन अभी पड़ा अन्दर-ही-अन्दर सुलग रहा था, कि दोनों साले बाहर आये और बड़े साहब बोले—भैया, उठो तीसरा पहर ढल गया, कब तक सोते रहोगे ? सारा खेत पड़ा हुआ है।

हरिधन चट उठ बैठा और तीव्र स्वर में बोला—क्या तुम लोगों ने मुझे उल्लू समझ लिया है।

दोनों साले हक्का-बक्का हो गये। जिस आदमी ने कभी जबान नहीं खोली, हमेशा गुलामों की तरह हाथ बाँधे हाजिर रहा, वह आज एकाएक इतना आत्माभिमानी हो जाय, यह उनको चौंका देने के लिए काफी था। कुछ जवाब न सूझा।

हरिधन ने देखा, इन दोनों के कदम उखड़ गये हैं, तो एक धक्का और देने की प्रबल इच्छा को न रोक सका। उसी ढंग से बोला—मेरी भी आँखें हैं। अंधा नहीं हूँ, न बहरा ही हूँ। छाती फाड़कर काम करूँ और उस पर भी कुत्ता समझा जाऊँ; ऐसे गधे और कहीं और होंगे!

अब बड़े साले भी गर्म पड़े—तुम्हें किसी ने यहाँ बाँध तो नहीं रक्खा है।

अबकी हरिधन लाजवाब हुआ। कोई बात न सूझी।

बड़े ने फिर उसी ढंग से कहा—अगर तुम यह चाहो कि जन्म-भर पाहुने बने रहो और तुम्हारा वैसा ही आदर-सत्कार होता रहे, तो यह हमारे वश की बात नहीं है।

हरिधन ने आँखें निकालकर कहा—क्या मैं तुम लोगों से कम काम करता हूँ ?

बड़े—यह कौन कहता है ?

हरिधन—तो तुम्हारे घर की नीति है कि जो सबसे ज्यादा काम करे वही भूखों मारा जाय ?

बड़े—तुम खुद खाने नहीं गये। क्या कोई तुम्हारे मुँह में कौर डाल देता ?

हरिधन ने ओठ चबाकर कहा—मैं खुद खाने नहीं गया ? कहते तुम्हें लाज नहीं आती ?

'नहीं आयी थी बहन तुम्हें बुलाने ?'

छोटे साले ने कहा—अम्माँ भी तो आयी थीं। तुमने कह दिया, मुझे भूख नहीं है, तो क्या करतीं।

सास भीतर से लपकी चली आ रही थीं। यह बात सुनकर बोली—कितना कहकर हार गई, कोई उठे न तो मैं क्या करूँ ?

हरिधन ने विष, खून और आग से भरे हुए स्वर में कहा—मैं तुम्हारे लड़कों का झूठा खाने के लिए हूँ ? मैं कुत्ता हूँ कि तुम लोग खाकर मेरे सामने रूखी रोटी का टुकड़ा फेंक दो ?

बुढ़िया ने ऐंठकर कहा—तो क्या तुम लड़कों की बराबरी करोगे ?

हरिधन परास्त हो गया। बुढ़िया ने एक ही वाक्-प्रहार में उसका काम तमाम कर दिया। उसकी तनी हुई भवें ढीली पड़ गयीं, आँखों की आग बुझ गयी, फड़कते हुए नथने शांत हो गये। किसी आहत मनुष्य की भाँति वह जमीन पर गिर पड़ा। 'क्या तुम मेरे लड़कों की बराबरी करोगे ?' यह वाक्य एक लम्बे भाले की तरह उसके हृदय में चुभता चला जाता था—न हृदय का अन्त था, न उस भाले का !

5

सारे घर ने खाया; पर हरिधन न उठा। सास ने मनाया, सालियों ने मनाया, ससुर ने मनाया, दोनों साले मनाकर थक गये। हरिधन न उठा; वहीं द्वार पर एक टाट पर पड़ा था। उसे उठाकर सबसे अलग कुएँ पर ले गया और जगत पर बिछाकर पड़ा रहा।

रात भीग चुकी थी। अनन्त प्रकाश में उज्जवल तारे बालकों की भाँति क्रीड़ा कर रहे

थे। कोई नाचता था, कोई उछलता था, कोई हँसता था, कोई आँखें मींचकर फिर खोल देता था। रह-रहकर कोई साहसी बालक सपाटा भरकर एक पल में उस विस्तृत क्षेत्र को पार कर लेता था और न जाने कहाँ छिप जाता था। हरिधन को अपना बचपन याद आया, जब वह भी इसी तरह क्रीड़ा करता था। उसकी बाल-स्मृतियाँ उन्हीं चमकीले तारों की भाँति प्रज्वलित हो गयीं। वह अपना छोटा-सा घर, वह आम के बाग जहाँ वह केरियाँ चुना करता था, वह मैदान जहाँ वह कबड्डी खेला करता था, सब उसे याद आने लगे। फिर अपनी स्नेहमयी माता की सदय मूर्ति उसके सामने खड़ी हो गई। उन आँखों में कितनी करुणा थी, कितनी दया थी। उसे ऐसा जान पड़ा मानो माता आँखों में आँसू भरे, उसे छाती से लगा लेने के लिए हाथ फैलाये उसकी ओर चली आ रही है। वह उस मधुर भावना में अपने को भूल गया। ऐसा जान पड़ा मानो माता ने उसे छाती से लगा लिया है और उसके सिर पर हाथ फेर रही है। वह रोने लगा, फूट-फूटकर रोने लगा। उसी आत्म-सम्मोहित दशा में उसके मुँह से यह शब्द निकला—अम्मा, तुमने मुझे इतना भुला दिया। देखो, तुम्हारे प्यारे लाल की क्या दशा हो रही है ? कोई उसे पानी को भी नहीं पूछता। क्या जहाँ तुम हो, वहाँ मेरे लिए जगह नहीं है ?

सहसा गुमानी ने आकर पुकारा--क्या सो गये तुम, नौज किसी को ऐसी राक्षसी नींद आये। चलकर खा क्यों नहीं लेते ? कब तक कोई तुम्हारे लिए बैठा रहे ?

हरिधन उस कल्पना-जगत् से क्रूर प्रत्यक्ष में आ गया। वही कुएं की जगत थी, वही फटा हुआ टाट और गुमानी सामने खड़ी कह रही थी—कब तक कोई तुम्हारे लिए बैठा रहे!

हरिधन उठ बैठा और मानो तलवार म्यान से निकालकर बोला—भला तुम्हें मेरी सुध तो आयी। मैंने तो कह दिया था, मुझे भूख नहीं है।

गुमानी—तो कै दिन न खाओगे ?

'अब इस घर का पानी भी न पीऊँगा, तुझे मेरे साथ चलना है या नहीं ?'

दृढ़ संकल्प से भरे हुए इन शब्दों को सुनकर गुमानी सहम उठी। बोली—कहाँ जा रहे हो।

हरिधन ने मानो नशे में कहा—तुझे इससे क्या मतलब ? मेरे साथ चलेगी या नहीं ? फिर पीछे से न कहना, मुझसे कहा नहीं।

गुमानी आपत्ति के भाव से बोली—तुम बताते क्यों नहीं, कहाँ जा रहे हो ?

'तू मेरे साथ चलेगी या नहीं ?'

'जब तक तुम बता न दोगे, मैं नहीं जाऊँगी।'

'तो मालूम हो गया, तू नहीं जाना चाहती। मुझे इतना ही पूछना था, नहीं अब तक मैं आधी दूर निकल गया होता।'

यह कहकर वह उठा और अपने घर की ओर चला। गुमानी पुकारती रही—'सुन लो' 'सुन लो'; पर उसने पीछे फिर कर भी न देखा।

6

तीस मील की मंजिल हरिधन ने पाँच घण्टों में तय की। जब वह अपने गाँव की अमराइयों के सामने पहुँचा, तो उसकी मातृ-भावना ऊषा की सुनहरी गोद में खेल रही थी। उन वृक्षों

को देखकर उसका विह्वल हृदय नाचने लगा। मंदिर का वह सुनहरा कलश देखकर वह इस तरह दौड़ा मानो एक छलांग में उसके ऊपर जा पहुँचेगा। वह वेग में दौड़ा जा रहा था मानो उसकी माता गोद फैलाये उसे बुला रही हो। जब वह आमों के बाग में पहुँचा, जहाँ डालियों पर बैठकर वह हाथी की सवारी का आनन्द पाता था, जहाँ की कच्ची बेरों और लिसोड़ों में एक स्वर्गीय स्वाद था, तो वह बैठ गया और भूमि पर सिर झुका कर रोने लगा, मानो अपनी माता को अपनी विपत्ति-कथा सुना रहा हो। वहाँ की वायु में, वहाँ के प्रकाश में, मानो उसकी विराट रूपिणी माता व्याप्त हो रही थी, वहाँ की अंगुल-अंगुल भूमि माता के पद-चिह्नों से पवित्र थी, माता के स्नेह में डूबे हुए शब्द अभी तक मानो आकाश में गूँज रहे थे। इस वायु और इस आकाश में न जाने कौन-सी संजीवनी थी जिसने उसके शोकार्त्त हृदय को बालोत्साह से भर दिया। वह एक पेड़ पर चढ़ गया और अधर से आम तोड़-तोड़कर खाने लगा। सास के वह कठोर शब्द, स्त्री का वह निष्ठुर आघात, वह सारा अपमान वह भूल गया। उसके पाँव फूल गये थे, तलवों में जलन हो रही थी; पर इस आनन्द में उसे किसी बात का ध्यान न था।

सहसा रखवाले ने पुकारा—वह कौन ऊपर चढ़ा हुआ है रे ? उतर अभी नहीं तो ऐसा पत्थर खींचकर मारूँगा कि वहीं ठण्डे हो जाओगे।

उसने कई गालियाँ भी दीं। इस फटकार और इन गालियों में इस समय हरिधन को अलौकिक आनन्द मिल रहा था। वह डालियों में छिप गया, कई आम काट-काटकर नीचे गिराये, और जोर से ठट्ठा मारकर हँसा। ऐसी उल्लास से भरी हुई हँसी उसने बहुत दिन से न हँसी थी।

रखवाले को वह हँसी परिचित-सी मालूम हुई। मगर हरिधन यहाँ कहाँ ? वह तो ससुराल की रोटियाँ तोड़ रहा है। कैसा हँसोड़ा था कितना चिबिल्ला। न जाने बेचारे का क्या हाल हुआ ? पेड़ की डाल से तालाब में कूद पड़ता था। अब गाँव में ऐसा कौन है ?

डाँटकर बोला—वहाँ बैठे-बैठे हँसोगे, तो आकर सारी हँसी निकाल दूँगा, नहीं सीधे से उतर आओ।

वह गालियाँ देने जा रहा था कि एक गुठली आकर उसके सिर पर लगी। सिर सहलाता हुआ बोला—यह कौन सैतान है ? नहीं मानता, ठहर तो, मैं आकर तेरी खबर लेता हूँ।

उसने अपनी लकड़ी नीचे रख दी और बन्दरों की तरह चटपट ऊपर चढ़ गया। देखा तो हरिधन बैठा मुसकिरा रहा है। चकित होकर बोला—अरे हरिधन ! तुम यहाँ कब आये। इस पेड़ पर कब से बैठे हो ?

दोनों बचपन सखा वहीं गले मिले।

'यहाँ कब आये ? चलो, घर चलो भले आदमी, क्या वहाँ आम भी मयस्सर न होते थे ?'

हरिधन ने मुस्किराकर कर कहा—मंगरू, इन आमों में जो स्वाद है, वह और कहीं के आमों में नहीं है। गाँव का क्या रंग-ढंग है ?

मँगरू—सब चैन चान है भैया ! तुमने तो जैसे नाता ही तोड़ लिया। इस तरह कोई अपना गाँव-घर छोड़ देता है ? जब से तुम्हारे दादा मरे सारी गिरस्ती चौपट हो गयी। दो

छोटे-छोटे लड़के हैं उनके किये क्या होता है ?

हरिधन—मुझे अब उस गिरस्ती से क्या वास्ता है भाई ? मैं तो अपना ले-दे चुका। मजूरी तो मिलेगी न ? तुम्हारी गैया मैं ही चरा दिया करूँगा; मुझे खाने को दे देना।

मँगरू ने अविश्वास के भाव से कहा—अरे भैया कैसी बात करते हो, तुम्हारे लिए जान तक हाजिर है। क्या ससुराल में अब न रहोगे ? कोई चिंता नहीं। पहले तो तुम्हारा घर ही है। उसे सँभालो। छोटे-छोटे बच्चे हैं, उनको पालो। तुम नई अम्माँ से नाहक डरते थे। बड़ी सीधी है बेचारी। बस, अपनी माँ ही समझो, तुम्हें पाकर तो निहाल हो जायगी। अच्छा घरवाली को भी तो लाओगे ?

हरिधन—उसका अब मुँह न देखूँगा। मेरे लिए वह मर गयी।

मँगरू—तो दूसरी सगाई हो जायगी। अबकी ऐसी मेहरिया ला दूँगा कि उसके पैर धो-धोकर पिओगे; लेकिन कहीं पहली भी आ गयी तो ?

हरिधन—वह न आयेगी।

7

हरिधन अपने घर पहुँचा तो दोनों भाई, 'भैया आये ! भैया आये !' कहकर भीतर दौड़े और माँ को खबर दी।

उस घर में कदम रखते ही हरिधन को ऐसी शान्त महिमा का अनुभव हुआ मानो वह अपनी माँ की गोद में बैठा हुआ है। इतने दिनों ठोकरें खाने से उसका हृदय कोमल हो गया था। जहाँ पहले अभिमान था, आग्रह था, हेकड़ी थी, वहाँ अब निराशा थी, पराजय थी और याचना थी। बीमारी का जोर कम हो चला था; अब उस पर मामूली दवा भी असर कर सकती थी, किले की दीवारें छिद चुकी थीं, अब उसमें घुस जाना असाध्य न था। वही घर जिससे वह एक दिन विरक्त हो गया था, अब गोद फैलाये उसे आश्रय देने को तैयार था। हरिधन का निरवलम्ब मन यह आश्रय पाकर मानो तृप्त हो गया।

शाम को विमाता ने कहा—बेटा, तुम घर आ गये, हमारे धन भाग। अब इन बच्चों को पालो; माँ का नाता न सही, बाप का नाता तो है ही। मुझे एक रोटी दे देना, खाकर एक कोने में पड़ी रहूँगी। तुम्हारी अम्माँ से मेरा बहन का नाता है। उस नाते से भी तो तुम मेरे लड़के होते हो ?

हरिधन की मातृ-विह्वल आँखों को विमाता के रूप में अपनी माता के दर्शन हुए। घर के एक-एक कोने में मातृ-स्मृतियों की छटा चाँदनी की भाँति छिटकी हुई थी, विमाता का प्रौढ़ मुखमण्डल भी उसी छटा से रंजित था।

दूसरे दिन हरिधन फिर कन्धे पर हल रखकर खेत को चला। उसके मुख पर उल्लास था और आँखों में गर्व। वह अब किसी का आश्रित नहीं; आश्रयदाता था; किसी के द्वार का भिक्षुक नहीं, घर का रक्षक था।

एक दिन उसने सुना, गुमानी ने दूसरा घर कर लिया। माँ से बोला—तुमने सुना काकी ! गुमानी ने घर कर लिया।

काकी ने कहा—घर क्या कर लेगी, ठट्ठा है ? बिरादरी में ऐसा अंधेर ? पंचायत नहीं, अदालत तो है ?

हरिधन ने कहा—नहीं काकी, बहुत अच्छा हुआ। ला, महाबीर जी को लडडू चढ़ा आऊँ। मैं तो डर रहा था, कहीं मेरे गले न आ पड़े। भगवान् ने मेरी सुन ली। मैं वहाँ से यही ठानकर चला था, अब उसका मुँह न देखूँगा।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका। 'माधुरी', नवम्बर, 1929 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'खान-ए-दामाद' शीर्षक से प्रकाशित एवं 'जादे राह' में संकलित।]

जिहाद

बहुत पुरानी बात है। हिंदुओं का एक काफ़िला अपने धर्म की रक्षा के लिए पश्चिमोत्तर के पर्वत-प्रदेश से भागा चला आ रहा था। मुद्दतों से उस प्रांत में हिंदू और मुसलमान साथ-साथ रहते चले आये थे। धार्मिक द्वेष का नाम न था। पठानों के जिरगे हमेशा लड़ते रहते थे। उनकी तलवारों पर कभी जंग न लगने पाता था। बात-बात पर उनके दल संगठित हो जाते थे। शासन की कोई व्यवस्था न थी। हरएक जिरगे और कबीले की व्यवस्था अलग थी। आपस के झगड़ों को निपटाने का भी तलवार के सिवा और कोई साधन न था। जान का बदला जान था, खून का बदला खून; इस नियम में कोई अपवाद न था। यही उनका धर्म था, यही ईमान; मगर उस भीषण रक्तपात में भी हिंदू परिवार शांति से जीवन व्यतीत करते थे। पर एक महीने से देश की हालत बदल गयी है। एक मुल्ला ने न जाने कहाँ से आ कर अनपढ़ धर्मशून्य पठानों में धर्म का भाव जागृत कर दिया ? उसकी वाणी में कोई ऐसी मोहिनी है कि बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष खिंचे चले आते हैं। वह शेरों की तरह गरज कर कहता है—खुदा ने तुम्हें इसलिए पैदा किया है कि दुनिया को इस्लाम की रोशनी से रोशन कर दो, दुनिया से कुफ्र का निशान मिटा दो। एक काफिर के दिल को इस्लाम के उजाले से रोशनी कर देने का सब सारी उम्र के रोजे, नमाज और जकात से कहीं ज्यादा है। जन्नत की हूरें तुम्हारी बलाएँ लेंगी और फरिश्ते तुम्हारे कदमों की खाक माथे पर मलेंगे, खुदा तुम्हारी पेशानी पर बोसे देगा। और सारी जनता यह आवाज सुन कर मजहब के नारों से मतवाली हो जाती है। उसी धार्मिक उत्तेजना ने कुफ्र और इस्लाम का भेद उत्पन्न कर दिया है। प्रत्येक पठान जन्नत का सुख भोगने के लिए अधीर हो उठा है। उन्हीं हिंदुओं पर जो सदियों से शांति के साथ रहते थे, हमले होने लगे हैं। कहीं उनके मंदिर ढाये जाते हैं, कहीं उनके देवताओं को गालियाँ दी जाती हैं। कहीं उन्हें जबरदस्ती इस्लाम की दीक्षा दी जाती है। हिंदू संख्या में कम हैं, असंगठित हैं; बिखरे हुए हैं, इस नयी परिस्थिति के लिए बिलकुल तैयार नहीं। उनके हाथ-पाँव फूले हुए हैं, कितने ही तो अपनी जमा-जथा छोड़ कर भाग खड़े हुए हैं, कुछ इस आँधी के शांत हो जाने का अवसर देख रहे हैं। यह काफिला भी उन्हीं भागनेवालों में था। दोपहर का समय था। आसमान से आग बरस रही थी। पहाड़ों से ज्वाला सी निकल रही थी। वृक्ष का कहीं नाम न था। ये लोग राज-पथ से हटे हुए, पेचीदा औघट रास्तों से चले आ रहे थे। पग-पग पर पकड़ लिये जाने का खटका लगा हुआ था। यहाँ तक कि भूख, प्यास और ताप से विकल होकर अंत

को लोग एक उभरी हुई शिला की छाँह में विश्राम करने लगे। सहसा कुछ दूर पर एक कुआँ नजर आया। वहीं डेरे डाल दिये। भय लगा हुआ था कि जेहादियों का कोई दल पीछे से न आ रहा हो। दो युवकों ने बंदूक भर कर कंधे पर रखीं और चारों तरफ गश्त करने लगे। बूढ़े कम्बल बिछा कर कमर सीधी करने लगे। स्त्रियाँ बालकों को गोद से उतार कर माथे का पसीना पोंछने और बिखरे हुए केशों को सँभालने लगीं। सभी के चेहरे मुरझाये हुए थे। सभी चिंता और भय से त्रस्त हो रहे थे, यहाँ तक कि बच्चे जोर से न रोते थे।

दोनों युवकों में एक लम्बा, गठीला रूपवान है। उसकी आँखों से अभिमान की रेखाएँ-सी निकल रही हैं, मानों वह अपने सामने किसी की हकीकत नहीं समझता, मानों उसकी एक-एक गत पर आकाश के देवता जयघोष कर रहे हैं। दूसरा कद का दुबला-पतला, रूपहीन-सा आदमी है, जिसके चेहरे से दीनता झलक रही है, मानों उसके लिए संसार में कोई आशा नहीं, मानों वह दीपक की भाँति रो-रो कर जीवन व्यतीत करने ही के लिए बनाया गया है। उसका नाम धर्मदास है; इसका ख़ज़ाँचन्द।

धर्मदास ने बंदूक को जमीन पर टिका कर एक चट्टान पर बैठते हुए कहा—तुमने अपने लिए क्या सोचा ? कोई लाख-सवा लाख की सम्पत्ति रही होगी तुम्हारी ?

ख़ज़ाँचंद ने उदासीन भाव से उत्तर दिया—लाख-सवा लाख की तो नहीं, हाँ, पचास-साठ हजार तो नकद ही थे।

'तो अब क्या करोगे ?'

'जो कुछ सिर पर आयेगा, झेलूँगा ! रावलपिंडी में दो-चार सम्बन्धी हैं, शायद कुछ मदद करें। तुमने क्या सोचा है ?'

'मुझे क्या गम ! अपने दोनों हाथ अपने साथ हैं। वहाँ इन्हीं का सहारा था, आगे भी इन्हीं का सहारा है।'

'आज और कुशल से बीत जाये तो फिर कोई भय नहीं।'

'मैं तो मना रहा हूँ कि एकाध शिकार मिल जाय। एक दरजन भी आ जायँ तो भून कर रख दूँ।

इतने में चट्टानों के नीचे से एक युवती हाथ में लोटा-डोर लिए निकली और सामने कुएँ की ओर चली। प्रभात की सुनहरी, मधुर, अरुणिमा मूर्तिमान हो गयी थी।

दोनों युवक उसकी ओर बढ़े लेकिन ख़ज़ाँचंद तो दो-चार कदम चल कर रुक गया, धर्मदास ने युवती के हाथ से लोटा-डोर ले लिया और ख़ज़ाँचंद की ओर सगर्व नेत्रों से ताकता हुआ कुएँ की ओर चला। ख़ज़ाँचंद ने फिर बंदूक सँभाली और अपनी झेंप मिटाने के लिए आकाश की ओर ताकने लगा। इसी तरह कितनी ही बार धर्मदास के हाथों पराजित हो चुका था। शायद उसे इसका अभ्यास हो गया था। अब इसमें लेशमात्र भी संदेह न था कि श्यामा का प्रेमपात्र धर्मदास है। ख़ज़ाँनंद की सारी सम्पत्ति धर्मदास के रूपवैभव के आगे तुच्छ थी। परोक्ष ही नहीं, प्रत्यक्ष रूप से भी श्यामा कई बार ख़ज़ाँचंद को हताश कर चुकी थी; पर वह अभागा निराश हो कर भी न जाने क्यों उस पर प्राण देता था। तीनों एक ही बस्ती के रहनेवाले थे। श्यामा के माता-पिता पहले ही मर चुके थे। उसकी बुआ ने उसका पालन-पोषण किया था। अब भी वह बुआ ही के साथ रहती थी। उसकी अभिलाषा थी कि ख़ज़ाँचंद उसका दामाद हो, श्यामा सुख से रहे और उसे भी जीवन के

अंतिम दिनों के लिए कुछ सहारा हो जाये; लेकिन श्यामा धर्मदास पर रीझी हुई थी। उसे क्या खबर थी कि जिस व्यक्ति को वह पैरों से ठुकरा रही है, वही उसका एकमात्र अवलम्ब है। खजाँचंद ही वृद्धा का मुनीम, खजांची, कारिंदा सब कुछ था और यह जानते हुए भी कि श्यामा उसे जीवन में नहीं मिल सकती। उनके धन का यह उपयोग न होता, तो वह शायद अब तक उसे लुटा कर फकीर हो जाता।

2

धर्मदास पानी लेकर लौट ही रहा था कि उसे पश्चिम की ओर से कई आदमी घोड़ों पर सवार आते दिखायी दिये। जरा और समीप आने पर मालूम हुआ कि कुल पाँच आदमी हैं। उनकी बंदूक की नलियाँ धूप में साफ चमक रही थीं। धर्मदास पानी लिए हुए दौड़ा कि कहीं रास्ते ही में सवार उसे न पकड़ लें लेकिन कंधे पर बंदूक और एक हाथ में लोटा-डोर लिए वह बहुत तेज न दौड़ सकता था। फासला दो सौ गज से कम न था। रास्ते में पत्थरों के ढेर टटे फटे पडे हुए थे। भय होता था कि कहीं ठोकर न लग जाय, कहीं पैर न फिसल जायँ। इधर सवार प्रतिक्षण समीप होते जाते थे। अरबी घोड़ों से उसका मुकाबला ही क्या, उस पर मंजिलों का धावा हुआ। मुश्किल से पचास कदम गया होगा कि सवार उसके सिर पर आ पहुँचे और तुरंत उसे घेर लिया। धर्मदास बड़ा साहसी था; पर मृत्यु को सामने खड़ी देख कर उसकी आँखों में अँधेरा छा गया, उसके हाथ से बंदूक छूट कर गिर पड़ी। पाँचों उसी के गाँव के महसूदी पठान थे। एक पठान ने कहा—उडा दो सिर मरदूद का। दगाबाज़ काफिर ।

दूसरा—नहीं नहीं, ठहरो, अगर यह इस वक्त भी इस्लाम कबूल कर ले, तो हम इसे मुआफ कर सकते हैं। क्यों धर्मदास तुम्हें इस दगा की क्या सजा दी जाय ? हमने तुम्हें रात-भर का वक्त फैसला करने के लिए दिया था। मगर तुम इस वक्त जहन्नुम पहुँचा दिये जाओ; लेकिन हम तुम्हें फिर मौका देते हैं। यह आखिरी मौका है। अगर तुमने अब भी इस्लाम न कबूल किया, तो तुम्हें दिन की रोशनी देखनी नसीब न होगी।

धर्मदास ने हिचकिचाते हुए कहा—जिस बात को अक्ल नहीं मानती, उसे कैसे...

पहले सवार ने आवेश में आकर कहा—मजहब को अक्ल से कोई वास्ता नहीं।

तीसरा—कुफ्र है ! कुफ्र है !

पहला— उड़ा दो सिर मरदूद का, धुआँ इस पार।

दूसरा—ठहरो-ठहरो, मार डालना मुश्किल नहीं, जिला लेना मुश्किल है। तुम्हारे और साथी कहाँ हैं। धर्मदास ?

धर्मदास—सब मेरे साथ ही हैं।

दूसरा—कलामे शरीफ की कसम; अगर तुम सब खुदा और उनके रसूल पर ईमान लाओ, तो कोई तुम्हें तेज निगाहों से देख भी न सकेगा।

धर्मदास—आप लोग सोचने के लिये और कुछ मौका न देंगे।

इस पर चारों सवार चिल्ला उठे—नहीं, नहीं, हम तुम्हें न जाने देंगे, यह आखिरी मौका है।

इतना कहते ही पहले सवार ने बंदूक छतिया ली और नली धर्मदास की छाती की ओर करके बोला—बस बोलो, क्या मंजूर है ?

धर्मदास सिर से पैर तक काँप कर बोला—अगर मैं इस्लाम कबूल कर लूँ तो मेरे साथियों को तो कोई तकलीफ न दी जायेगी ?

दूसरा—हाँ, अगर तुम जमानत करो कि वे भी इस्लाम कबूल कर लेंगे।

पहला—हम इस शर्त को नहीं मानते। तुम्हारे साथियों से हम खुद निपट लेंगे। तुम अपनी कहो। क्या चाहते हो ? हाँ या नहीं ?

धर्मदास ने जहर का घूँट पी कर कहा—मैं खुदा पर ईमान लाता हूँ।

पाँचों ने एक स्वर से कहा—अलहमद व लिल्लाह ! और बारी-बारी से धर्मदास को गले लगाया।

३

श्यामा हृदय को दोनों हाथों से थामे यह दृश्य देख रही थी। वह मन में पछता रही थी कि मैंने क्यों इन्हें पानी लाने भेजा ? अगर मालूम होता कि विधि यों धोखा देगा, तो मैं प्यासों मर जाती, पर इन्हें न जाने देती। श्यामा से कुछ दूर ख़जाँचंद भी खड़ा था। श्यामा ने उसकी ओर क्षुब्ध नेत्रों से देख कर कहा—अब इनकी जान बचती नहीं मालूम होती।

ख़ज़ाँचंद—बंदूक भी हाथ से छूट पड़ी है।

श्यामा न जाने क्या बातें हो रही हैं। अरे गजब। दुष्ट ने उनकी ओर बंदूक तानी है!

ख़ज़ाँ.—जरा और समीप आ जायँ, तो मैं बंदूक चलाऊँ। इतनी दूर की मार इसमें नहीं है।

श्यामा—अरे ! देखो, वे सब धर्मदास को गले लगा रहे हैं। यह माजरा क्या है ?

ख़ज़ाँ.—कुछ समझ में नहीं आता।

श्यामा—कहीं इसने कलमा तो नहीं पढ़ लिया ?

ख़ज़ाँ.—नहीं, ऐसा क्या होगा, धर्मदास से मुझे ऐसी आशा नहीं है।

श्यामा—मैं समझ गयी। ठीक यही बात है। बंदूक चलाओ।

ख़ज़ाँ.—धर्मदास बीच में हैं। कहीं उन्हें न लग जाय।

श्यामा—कोई हर्ज नहीं। मैं चाहती हूँ, पहला निशाना धर्मदास ही पर पड़े। कायर ! निर्लज्ज ! प्राणों के लिए धर्म त्याग किया। ऐसी बेहयाई की जिंदगी से मर जाना कहीं अच्छा है। क्या सोचते हो। क्या तुम्हारे भी हाथ-पाँव फूल गये। लाओ, बंदूक मुझे दे दो। मैं इस कायर को अपने हाथों से मारूँगी।

ख़ज़ाँ.—मुझे तो विश्वास नहीं होता कि धर्मदास....।

श्यामा—तुम्हें कभी विश्वास न आयेगा। लाओ, बंदूक मुझे दो। खड़े ताकते हो। क्या जब वे सिर पर आ जायँगे, तब बंदूक चलाओगे ? क्या तुम्हें भी यह मंजूर है कि मुसलमान हो कर जान बचाओ ? अच्छी बात है, जाओ। श्यामा अपनी रक्षा आप कर सकती है; मगर उसे अब मुँह न दिखाना।

ख़ज़ाँचंद ने बंदूक चलायी। एक सवार की पगड़ी को उड़ाती हुई निकल गयी।

जिहादियों ने 'अल्लाहो अकबर !' की हाँक लगायी। दूसरी गोली चली और घोड़े की छाती पर बैठी। घोड़ा वहीं गिर पड़ा। जिहादियों ने फिर 'अल्लाहो अकबर !' की सदा लगायी और आगे बढ़े। तीसरी गोली आयी। एक पठान लोट गया; पर इसके पहले कि चौथी गोली छूटे, पठान ख़ज़ाँचंद के सिर पर पहुँच गये और बंदूक उसके हाथ से छीन ली।

एक सवार ने खज़ाँचंद की ओर बंदूक तान कर कहा—उड़ा दूँ सिर मरदूद का इससे खून का बदला लेना है।

दूसरे सवार ने जो इनका सरदार मालूम होता था, कहा—नहीं-नहीं, यह दिलेर आदमी है। ख़ज़ाँचंद, तुम्हारे ऊपर दगा, खून और कुफ्र, ये तीन इल्ज़ाम हैं, और तुम्हें कत्ल कर देना ऐन सवाब है, लेकिन हम तुम्हें एक मौका और देते हैं। अगर तुम अब भी खुदा और रसूल पर ईमान लाओ, तो हम तुम्हें सीने से लगाने को तैयार हैं। इसके सिवा तुम्हारे गुनाहों का और कोई कफारा (प्रायश्चित्त) नहीं है। यह हमारा आखिरी फैसला है। बोलो, क्या मंजूर है ?

चारों पठानों ने कमर से तलवारें निकाल लीं, और उन्हें ख़ज़ाँचंद के सिर पर तान दिया मानों 'नहीं' का शब्द मुँह से निकलते ही चारों तलवारें उसकी गर्दन पर चल जायँगी।

ख़ज़ाँचंद का मुख-मंडल विलक्षण तेज से आलोकित हो उठा। उसकी दोनों आँखें स्वर्गीय ज्योति से चमकने लगीं। दृढ़ता से बोला—तुम एक हिन्दू से यह प्रश्न कर रहे हो ? क्या तुम समझते हो कि जान के खौफ से वह अपना ईमान बेच डालेगा ? हिंदू को अपने ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी नबी, वली या पैगम्बर की जरूरत नहीं ! चारों पठानों ने कहा—काफिर ! काफिर !

ख़ज़ाँ.—अगर तुम मुझे काफिर समझे हो तो समझो। मैं अपने को तुमसे ज्यादा खुदापरस्त समझता हूँ। मैं उस धर्म को मानता हूँ, जिसकी बुनियाद अक्ल पर है। आदमी में अक्ल ही खुदा का नूर(प्रकाश) है और हमारा ईमान हमारी अक्ल...

चारों पठानों के मुँह से निकला 'काफिर ! काफिर !' और चारों तलवारें एक साथ ख़ज़ाँचंद की गर्दन पर गिर पड़ीं। लाश जमीन पर फड़कने लगी। धर्मदास सिर झुकाये खड़ा रहा। वह दिल में खुश था कि अब ख़ज़ाँचंद की सारी सम्पत्ति उसके हाथ लगेगी और वह श्यामा के साथ सुख से रहेगा; पर विधाता को कुछ और ही मंजूर था। श्यामा अब तक मर्माहत-सी खड़ी यह दृश्य देख रही थी। ज्योंही ख़ज़ाँचंद की लाश जमीन पर गिरी, वह झपट कर लाश के पास आयी और उसे गोद में लेकर आँचल से रक्त-प्रवाह को रोकने की चेष्टा करने लगी। उसके सारे कपड़े खून से तर हो गये। उसने बड़ी सुंदर बेल-बूटोंवाली साड़ियाँ पहनी होंगी, पर इस रक्त-रंजित साड़ी की शोभा अतुलनीय थीं। बेल-बूटोंवाली साड़ियाँ रूप की शोभा बढ़ाती थीं, यह रक्त-रंजित साड़ी आत्मा की छवि दिखा रही थी।

ऐसा जान पड़ा मानों ख़ज़ाँचंद की बुझती आँखें एक अलौकिक ज्योति से प्रकाशमान् हो गयी हैं। उन नेत्रों में कितना संतोष, कितनी तृप्ति, कितनी उत्कंठा भरी हुई थी। जीवन में जिसने प्रेम की भिक्षा भी न पायी, वह मरने पर उत्सर्ग जैसे स्वर्गीय रत्न का स्वामी बना हुआ था।

4

धर्मदास ने श्यामा का हाथ पकड़ कर कहा श्यामा, होश में आओ, तुम्हारे सारे कपड़े खून से तर हो गये हैं। अब रोने से क्या हासिल होगा ? ये लोग हमारे मित्र हैं, हमें कोई कष्ट न देंगे। हम फिर अपने घर चलेंगे और जीवन के सुख भोगेंगे ?

श्यामा ने तिरस्कार-पूर्ण नेत्रों से देख कर कहा—तुम्हें अपना घर बहुत प्यारा है, तो जाओ। मेरी चिंता मत करो, मैं अब न जाऊँगी। हाँ, अगर अब भी मुझसे कुछ प्रेम हो तो इन लोगों से इन्हीं तलवारों से मेरा भी अंत करा दो।

धर्मदास करुणा-कातर स्वर से बोला—श्यामा, यह तुम क्या कहती हो, तुम भूल गयीं कि हमसे-तुमसे क्या बातें हुई थीं ? मुझे खुद ख़ज़ाँचंद के मारे जाने का शोक है; पर भावी को कौन टाल सकता है ?

श्यामा—अगर यह भावी थी, तो यह भी भावी है कि मैं अपना अधम जीवन उस पवित्र आत्मा के शोक में काटूँ, जिसका मैंने सदैव निरादर किया। यह कहते-कहते श्यामा का शोकोद्गार, जो अब तक क्रोध और घृणा के नीचे दबा हुआ था, उबल पड़ा और वह ख़ज़ाँचंद के निस्पंद हाथों को अपने गले में डाल कर रोने लगी।

चारों पठान यह अलौकिक अनुराग और आत्म-समर्पण देख कर करुणार्द्र हो गये। सरदार ने धर्मदास से कहा—तुम इस पाकीजा खातून से कहो, हमारे साथ चले। हमारी जाति से इसे कोई तकलीफ न होगी। हम इसकी दिल से इज्जत करेंगे।

धर्मदास के हृदय में ईर्ष्या की आग धधक रही थी। वह रमणी, जिसे वह अपनी समझे बैठा था, इस वक्त उसका मुँह भी नहीं देखना चाहती थी। बोला—श्यामा, तुम चाहो इस लाश पर आँसुओं की नदी बहा दो, पर यह जिंदा न होगी। यहाँ से चलने की तैयारी करो। मैं साथ के और लोगों को भी जा कर समझाता हूँ। खान लोग हमारी रक्षा करने का जिम्मा ले रहे हैं। हमारी जायदाद, जमीन, दौलत सब हमको मिल जायगी। ख़ज़ाँचंद की दौलत के भी हमी मालिक होंगे। अब देर न करो। रोने-धोने से अब कुछ हासिल नहीं।

श्यामा ने धर्मदास को आग्नेय नेत्रों से देख कर कहा—और इस वापसी की कीमत क्या देनी होगी ? वही जो तुमने दी है ?

धर्मदास यह व्यंग्य न समझ सका। बोला—मैंने तो कोई कीमत नहीं दी। मेरे पास था ही क्या ?

श्यामा—ऐसा न कहो। तुम्हारे पास वह खज़ाना था, जो तुम्हें आज कई लाख वर्ष हुए ऋषियों ने प्रदान किया था। जिसकी रक्षा रघु और मनु, राम और कृष्ण, बुद्ध और शंकर, शिवाजी और गोविंदसिंह ने की थी। उस अमूल्य भंडार को आज तुमने तुच्छ प्राणों के लिए खो दिया। इन पाँवों पर लौटना तुम्हें मुबारक हो! तुम शौक से जाओ। जिन तलवारों ने वीर ख़ज़ाँचंद के जीवन का अंत किया, उन्होंने मेरे प्रेम का भी फैसला कर दिया। जीवन में इस वीरात्मा का मैंने जो निरादर और अपमान किया, इसके साथ जो उदासीनता दिखायी उसका अब मरने के बाद प्रायश्चित्त करूँगी। यह धर्म पर मरने वाला वीर था, धर्म को बेचनेवाला कायर नहीं ! अगर तुममें अब भी कुछ शर्म और हया है, तो इसका क्रिया-कर्म करने में मेरी मदद करो और यदि तुम्हारे स्वामियों को यह भी पसंद न हो, तो रहने दो, मैं सब कुछ कर लूँगी।

पठानों के हृदय दर्द से तड़प उठे। धर्मान्धता का प्रकोप शांत हो गया। देखते-देखते वहाँ लकड़ियों का ढेर लग गया। धर्मदास ग्लानि से सिर झुकाये बैठा था और चारों पठान लकड़ियाँ काट रहे थे। चिता तैयार हुई और जिन निर्दय हाथों ने ख़ज़ाँचंद की जान ली थी उन्हीं ने उसके शव को चिता पर रखा। ज्वाला प्रचंड हुई। अग्निदेव अपने अग्निमुख से उस धर्मवीर का यश गा रहे थे।

5

पठानों ने ख़ज़ाँचंद की सारी जंगम सम्पत्ति ला कर श्यामा को दे दी। श्यामा ने वहीं पर एक छोटा-सा मकान बनवाया और वीर ख़ज़ाँचंद की उपासना में जीवन के दिन काटने लगी। उसकी वृद्धा बुआ तो उसके साथ रह गयी, और सब लोग पठानों के साथ लौट गये, क्योंकि अब मुसलमान होने की शर्त न थी। ख़ज़ाँचंद के बलिदान ने धर्म के भूत को परास्त कर दिया। मगर धर्मदास को पठानों ने इस्लाम की दीक्षा लेने पर मजबूर किया। एक दिन नियत किया गया। मसजिद में मुल्लाओं का मेला लगा और लोग धर्मदास को उसके घर से बुलाने आये; पर उसका वहाँ पता न था। चारों तरफ तलाश हुई । कहीं निशान न मिला।

साल-भर गुजर गया। संध्या का समय था। श्यामा अपने झोपड़े के सामने बैठी भविष्य की मधुर कल्पनाओं में मग्न थी। अतीत उसके लिए दुःख से भरा हुआ था। वर्तमान केवल एक निराशामय स्वप्न था। सारी अभिलाषाएँ भविष्य पर अवलम्बित थीं। और भविष्य भी वह, जिसका इस जीवन से कोई सम्बन्ध न था ! आकाश पर लालिमा छायी हुई थी। सामने की पर्वतमाला स्वर्णमयी शांति के आवरण से ढकी हुई थी। वृक्षों की काँपती हुई पत्तियों से सरसराहट की आवाज निकल रही थी, मानों कोई वियोगी आत्मा पत्तियों पर बैठी हुई सिसकियाँ भर रही हो।

उसी वक्त एक भिखारी फटे हुए कपड़े पहने झोपड़ी के सामने खड़ा हो गया। कुत्ता जोर से भूँक उठा। श्यामा ने चौंक कर देखा और चिल्ला उठी—धर्मदास !

धर्मदास ने वहीं जमीन पर बैठते हुए कहा—हाँ श्यामा, मैं अभागा धर्मदास ही हूँ। साल-भर से मारा-मारा फिर रहा हूँ। मुझे खोज निकालने के लिए इनाम रख दिया गया है। सारा प्रांत मेरे पीछे पड़ा हुआ है। इस जीवन से अब ऊब उठा हूँ; पर मौत भी नहीं आती।

धर्मदास एक क्षण के लिए चुप हो गया। फिर बोला—क्यों श्यामा, क्या अभी तुम्हारा हृदय मेरी तरफ से साफ नहीं हुआ ! तुमने मेरा अपराध क्षमा नहीं किया !

श्यामा ने उदासीन भाव से कहा—मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी।

'मैं अब भी हिंदू हूँ। मैंने इस्लाम नहीं कबूल किया है।'

'जानती हूँ !'

'यह जान कर भी तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती !'

श्यामा ने कठोर नेत्रों से देखा और उत्तेजित होकर बोली—तुम्हें अपने मुँह से ऐसी बातें निकालते शर्म नहीं आती ! मैं उस धर्मवीर की ब्याहता हूँ, जिसने हिंदू-जाति का मुख उज्ज्वल किया है। तुम समझते हो कि वह मर गया ! यह तुम्हारा भ्रम है। वह अमर है। मैं इस समय भी उसे स्वर्ग में बैठा देख रही हूँ। तुमने हिंदू-जाति को कलंकित किया

है। मेरे सामने से दूर हो जाओ।

धर्मदास ने कुछ जवाब न दिया ! चुपके से उठा, एक लम्बी साँस ली और एक तरफ चल दिया।

प्रातःकाल श्यामा पानी भरने जा रही थी, तब उसने रास्ते में एक लाश पड़ी हुई देखी। दो-चार गिद्ध उस पर मँडरा रहे थे। उसका हृदय धड़कने लगा। समीप जा कर देखा और पहचान गयी। यह धर्मदास की लाश थी।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। मूल स्रोत तथा प्रकाशन तिथि अज्ञात। हिन्दी कहानी-संग्रह 'पांच फूल' (प्रथम संस्करण : नवम्बर 1929) में प्रथम बार संकलित-प्रकाशित, उर्दू रूप इसी शीर्षक से कहानी संग्रह 'प्रेमचालीसी' में संकलित।]

कवच

बहुत दिनों की बात है। मैं एक बड़ी रियासत का एक विश्वस्त अधिकारी था। जैसी मेरी आदत है। मैं रियासत की धड़ेबन्दियों से पृथक रहता, न इधर, न उधर, अपने काम से काम रखता। काजी की तरह शहर के अंदेशे से दुबला न होता था। महल में आये दिन नये-नये शिगूफे खिलते रहते थे, नये-नये तमाशे होते रहते थे, नये-नये षड्यन्त्रों की रचना होती रहती थी, पर मुझे किसी पक्ष से सरोकार न था। किसी की बात में दखल न देता था, न किसी की शिकायत करता, न किसी की तारीफ। शायद इसीलिए राजा साहब की मुझ पर कृपादृष्टि रहती थी। राजा साहब शीलवान, दयालु, निर्भीक, उदार और कुछ स्वेच्छाचारी थे। रेजीडेण्ट की खुशामद करना उन्हें पसन्द न था। जिन समाचारपत्रों से दूसरी रियासतें भयभती रहती थीं और अपने इलाके में उन्हें आने न देती थीं, वे सब हमारी रियासत में बेरोक-टोक आते थे। एक-दो बार रेजीडेण्ट ने इस बारे में कुछ इशारा भी किया था, लेकिन राजा साहब ने इसकी बिल्कुल परवाह न की। अपने आन्तरिक शासन में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप न चाहते थे, इसीलिए रेजीडेण्ट भी उनसे मन-ही-मन द्वेष करता था।

लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि राजा साहब प्रजावत्सल दूरदर्शी, नीतिकुशल या मितव्ययी शासक थे। यह बात न थी। वे बड़े ही विलासप्रिय, रसिक और दुर्व्यसनी थे। उनका अधिकांश समय विषय-वासना की ही भेंट होता था। रनिवास में दर्जनों रानियां थीं, फिर भी आये दिन नयी-नयी चिड़ियां आती रहती थीं। इस मन में लेशमात्र भी किफायत या कंजूसी न की जाती थी। सौन्दर्य की उपासना उनका गौण स्वभाव-सा हो गया था। इसके लिए वह दीन और ईमान तक की हत्या करने को तैयार रहते थे। वे स्वच्छन्द रहना चाहते थे, और चूंकि सरकार उन्हें बन्धनों में डालना चाहती थीं, वे उन्हें चिढ़ाने के लिए ऐसे मामले में असाधारण अनुराग और उत्साह दिखाते थे, जिनमें उन्हें प्रजा की सहायता और सहानुभूति का पूरा विश्वास होता था, इसलिए प्रजा उनके दुर्गुणों को भी सद्गुण समझती थी, और अखबार वाले भी सदैव उनकी निर्भीकता और प्रजा-प्रेम के राग अलापते

रहते थे।

इधर कुछ दिनों से एक पंजाबी औरत रनिवास में दाखिल हुई थी। उसके विषय में तहर-तरह की अफवाहें फैली हुई थीं। कोई कहता था, मामूली वेश्या है, कोई ऐक्ट्रेस बतलाता था, कोई भले घर की लड़की। न वह बहुत रूपवती थी, न बहुत तरहदार, फिर भी राजा साहब उस पर दिलोजान से फिदा थे। राज-काज से उन्हें यों ही बहुत प्रेम न था, मगर अब तो वे उसी के हाथों बिक गये थे, वही उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गयी थी। उसके लिए एक नया राजप्रासाद बन रहा था। नित नये-नये उपहार आते रहते थे। भवन की सजावट के लिए योरोप से नयी-नयी सामग्रियां मंगवायी थीं। उसे गाना और नाचना सिखाने के लिए इटली, फ्रांस और जर्मनी के उस्ताद बुलाये गये थे। सारी रियासत में उसी का डंका बजता था। लोगों को आश्चर्य होता था कि इस रमणी में ऐसा कौन-सा गुण है, जिसने राजा साहब को इतना आसक्त और आकर्षित कर रखा है।

एक दिन रात को मैं भोजन करके लेटा ही था कि राजा साहब ने याद फर्माया। मन में एक प्रकार का संशय हुआ कि इस समय खिलाफ मामूल क्यों मेरी तलबी हुई ! मैं राजा साहब के अन्तरंग मंत्रियों में से न था, इसलिए भय हुआ कि कहीं कोई विपत्ति तो नहीं आने वाली है। रियासतों में ऐसी दुर्घटनाएं अक्सर होती रहती हैं। जिसे प्रातःकाल राजा साहब की बगल में बैठे हुए देखिए, उसे संध्या समय अपनी जान लेकर रियासत के बाहर भागते हुए भी देखने में आया है। मुझे सन्देह हुआ, किसी ने मेरी शिकायत तो नहीं कर दी! रियासतों में निष्पक्ष रहना भी खतरनाक है। ऐसे आदमी का अगर कोई शत्रु नहीं होता तो कोई मित्र भी नहीं होता। मैंने तुरन्त कपड़े पहने और मन में तरह-तरह की दुष्कल्पनाएं करता हुआ राजा साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। लेकिन पहली ही निगाह में मेरे सारे संशय मिट गये। राजा साहब के चेहरे पर क्रोध की जगह विषाद और नैराश्य का गहरा रंग झलक रहा था। आंखों में एक विचित्र याचना झलक रही थी। मुझे देखते ही उन्होंने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया, और बोले—"क्यों जी सरदार साहब, तुमने कभी प्रेम किया है? किसी के प्रेम में अपने आप को खो बैठे हो ?"

मैं समझ गया कि इस वक्त अदब और लिहाज की जरूरत नहीं। राजा साहब किसी व्यक्तिगत विषय में मुझसे सलाह करना चाहते हैं। निःसंकोच होकर बोला—"दीनबन्धु, मैं तो कभी इस जाल में नहीं फंसा।"

राजा साहब ने मेरी तरफ खासदान बढ़ाकर कहा—"तुम बड़े भाग्यवान हो, अच्छा हुआ कि तुम इस जाल में नहीं फंसे। यह आंखों को लुभाने वाला सुनहरा जाल है, यह मीठा किन्तु घातक विष है, यह वह मधुर संगीत है जो कानों को तो भला मालूम होता है, पर हृदय को चूर-चूर कर देता है, यह वह मायामृग है, जिसके पीछे आदमी अपने प्राण ही नहीं, अपनी इज्जत तक खो बैठता है।"

उन्होंने गिलास में शराब उंडेली और एक चुस्की लेकर बोले—जानते हो मैंने इस सराफराज के लिए कैसी-कैसी परेशानियां उठायीं ? मैं उसके भौंहों के एक इशारे पर अपना यह सिर उसके पैरों पर रख सकता था, यह सारी रियासत उसके चरणों पर अर्पित कर सकता था। इन्हीं हाथों से मैंने उसका पलंग बिछाया है, उसे हुक्का भर-भरकर पिलाया है, उसके कमरे में झाड़ू लगायी है। वह पलंग से उतरती थी, तो मैं उसकी जूती सीधी करता

था। इस खिदमतगुजारी में मुझे कितना आनन्द प्राप्त होता था, तुमसे बयान नहीं कर सकता। मैं उसे सामने जाकर उसके इशारों का गुलाम हो जाता था। प्रभुता और रियासत का गरूर मेरे दिल से लुप्त हो जाता था। उसकी सेवा-शुश्रूषा में मुझे तीनों लोक का राज मिल जाता था, पर इस जालिम ने हमेशा मेरी उपेक्षा की। शायद वह मुझे अपने योग्य ही नहीं समझती थी। मुझे यह अभिलाषा ही रह गयी कि वह एक बार अपनी उन मस्ताना रसीली आंख़ों से, एक बार उन ईंगुर भरे हुए होंठों से मेरी तरफ मुस्कराती। मैंने समझा था शायद वह उपासना की ही वस्तु है, शायद वह प्रकृति ही से निष्ठुर है, शायद वह प्रणय के भाव से ही वंचित है, शायद उसे इन रहस्यों का ज्ञान ही नहीं। हां, मैंने समझा था, शायद अभी अल्हड़पन उसके प्रेमोद्‌गारों पर मुहर लगाये हुए है। मैं इस आशा से अपने व्यथित हृदय को तसकीन देता था कि कभी तो मेरी अभिलाषाएं पूरी होंगी, कभी तो उसकी सोयी हुई कल्पना जागेगी।

राजा साहब एकाएक चुप हो गये। फिर कदेआदम शीशे की तरफ देखकर शान्त भाव से बोले—मैं इतना कुरूप तो नहीं हूं कि कोई रमणी मुझसे इतनी घृणा करे।

राजा साहब बहुत ही रूपवान आदमी थे। ऊंचा कद था, भरा हुआ बदन, सेब का-सा रंग, चेहरे से तेज झलकता था।

मैंने निर्भीक होकर कहा—इस विषय में तो प्रकृति ने हुजूर के साथ बड़ी उदारता के साथ काम लिया है।

राजा साहब के चेहरे पर एक क्षीण उदास मुस्कराहट दौड़ गई, मगर फिर वही नैराश्य छा गया। बोले—सरदार साहब, मैंने इस बाजार की खूब सैर की है। सम्मोहन और वशीकरण के जितने लटके हैं, उन सबों से परिचित हूं, मगर जिन मंत्रों से मैंने अब तक हमेशा विजय पाई है, वे सब इस अवसर पर निरर्थक सिद्ध हुए। अन्त को मैंने यही निश्चय किया कि यह कुआं ही अन्धा है, इसमें प्यास को शान्त करने की सामर्थ्य नहीं। मगर शोक, कल मुझ पर इस निष्ठुरता और उपेक्षा का रहस्य खुल गया। आह ! काश, यह रहस्य कुछ दिन और मुझसे छिपा रहता, कुछ दिन और मैं इसी भ्रम, इसी अज्ञान अवस्था में पड़ा रहता।

राजा साहब का उदास चेहरा एकाएक कठोर हो गया, उन शीतल नेत्रों में ज्वाला-सी चमक उठी, बोले—"देखिए, ये वह पत्र हैं, जो कल गुप्त रूप से मेरे हाथ लगे हैं। मैं इस वक्त इस बात की जांच-पड़ताल करना व्यर्थ समझता हूं कि ये पत्र मेरे पास किसने भेजे? उसे ये कहां मिले ? अवश्य ही ये सरफराज की अहित कामना के इरादे से भेजे गये होंगे। मुझे तो केवल यह निश्चय करना है कि ये पत्र असली हैं या नकली, मुझे तो उनके असली होने में अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। मैंने सरफराज की लिखावट देखी है, उसकी बातचीत के अन्दाज से अनभिज्ञ नहीं हूं, उसकी जुबान पर जो वाक्य चढ़े हुए हैं, उन्हें खूब जानता हूं। इन पत्रों में वही लिखावट है, बाल बराबर भी फर्क नहीं, वही अन्दाज है, वही शैली है, वही वाक्य हैं। कितनी भीषण परिस्थिति है। इधर मैं तो एक मधुर मुस्कान, एक मीठी अदा के लिए तरसता हूं, उधर प्रेमियों के नाम प्रेमपत्र लिखे जाते हैं, वियोग-वेदना का वर्णन किया जाता है। मैंने इन पत्रों को पढ़ा है, पत्थर-सा दिल करके पढ़ा है, खून का घूंट पी-पीकर पढ़ा है और अपनी बोटियों को नोच-नोचकर पढ़ा है। आंखों से रक्त बूंदें

निकल-निकल आई हैं। यह दगा ! यह त्रियाचरित्र !! मेरे महल में रहकर, मेरी कामनाओं को पैरों से कुचलकर, मेरी आशाओं को ठुकराकर ये क्रीड़ाएं होती हैं ! मेरे लिए खारे पानी की एक बूंद भी नहीं दूसरे पर सुधा-जल की वर्षा हो रही है ! मेरे लिए एक चुटकी भर आटा नहीं, दूसरे के लिए षट्रस पदार्थ परसे जा रहे हैं। तुम अनुमान नहीं कर सकते कि इन पत्रों को पढ़कर मेरी क्या दशा हुई।

"पहला उद्वेग जो मेरे हृदय में उठा, वह यह था कि इसी वक्त तलवार लेकर जाऊं और उस बेदर्द के सामने यह कटार अपनी छाती में भोंक लूं। उसी की आंखों के सामने एड़ियां रगड़-रगड़कर मर जाऊं। शायद मेरे बाद मेरे प्रेम की कद्र करे, शायद मेरे खून के गर्म छींटे उसके वज्र-कठोर हृदय को द्रवित करते, लेकिन अन्तस्तल के न मालूम किस प्रदेश से आवाज आयी—यह सरासर नादानी है। तुम मर जाओगे और यह छलनी तुम्हारे प्रेमोपहारों से दामन भरे, दिल में तुम्हारी मूर्खता पर हंसती हुई, दूसरे ही दिन अपने प्रियतम के पास चली जाएगी। दोनों तुम्हारी दौलत के मजे उड़ायेंगे और तुम्हारी वंचित-दलित आत्मा को तड़पायेंगे।

"सरदार साहब, विश्वास मानिए, यह आवाज मुझे अपने ही हृदय के किसी स्थल से सुनाई दी। मैंने उसी वक्त तलवार निकालकर कमर से रख दी। आत्महत्या का विचार जाता रहा और एक ही क्षण में बदले का प्रबल उद्वेग हृदय में चमक उठा। देह का एक-एक परमाणु एक आन्तरिक ज्वाला से उत्तप्त हो उठा। एक-एक रोएं से आग-सी निकलने लगी। इसी वक्त जाकर उसकी कपट-लीला का अन्त कर दूं। जिन आंखों की एक निगाह के लिए अपने प्राण तक निछावर करता था, उन्हें सदैव के लिए ज्योतिहीन कर दूं। उन विषाक्त अधरों को सदैव के लिए स्वरहीन कर दूं। जिस हृदय में इतनी निष्ठुरता, इतनी कठोरता और इतना कपट भरा हुआ हो, उसे चीरकर पैरों से कुचल डालूं। खून-सा सिर पर सवार हो गया। सरफराज की सारी महत्ता, सारा माधुर्य, सारा भाव-विलास दूषित मालूम होने लगा। उस वक्त अगर मुझे मालूम हो जाता कि सरफराज की किसी ने हत्या कर डाली है, तो शायद मैं उस हत्यारे के पैरों का चुम्बन करता। अगर सुनता कि वह मरणासन्न है, तो उसके दम तोड़ने का तमाशा करता। खून का दृढ़ संकल्प करके मैंने दुहरी तलवारें कमर में लगायीं और उसके शयनागार में दाखिल हुआ। जिस द्वार पर जाते ही आशा और भय का संग्राम होने लगता था, वहां पहुंचकर इस वक्त मुझे वह आनन्द हुआ जो शिकारी को शिकार करने में होता है। सरदार साहब, उन भावनाओं और उद्गारों का जिक्र न करूंगा, जो उस समय मेरे हृदय को आन्दोलित करने लगे। अगर वाणी में इतनी सामर्थ्य हो भी तो मन को इस चर्चा से उद्विग्न नहीं करना चाहता। मैंने दबे पांव कमरे में कदम रखा। सरफराज विलासमय निद्रा में मग्न थी। मगर उसे देखकर मेरे हृदय में एक विचित्र करुणा उत्पन्न हुई। जी हां, वह क्रोध और उत्ताप न जाने कहां गायब हो गया। उसका क्या अपराध है ? यह प्रश्न आकस्मिक रूप से मेरे हृदय में पैदा हुआ। उसका क्या अपराध है ? अगर उसका वही अपराध है, जो इस समय मैं कर रहा हूं, तो मुझे उससे बदला लेने का अधिकार है ? अगर वह अपने प्रियतम के लिए उतनी ही विकल, उतनी ही अधीर, उतनी ही आतुर है, जितना मैं हूं, तो उसका क्या दोष है ? जिस तरह मैं अपने दिल से मजबूर हूं, क्या वह अपने दिल से मजबूर नहीं हो सकती ? अगर मुझे कोई

औरत बन्धन में डाल दे और बहुमूल्य रत्नों से मेरे प्रेम को बिसाहना चाहे, तो क्या मैं उसके प्रेम में अनुरक्त हो जाऊंगा ? शायद नहीं। मैं मौका पाते ही भाग निकलूंगा। यह मेरा अन्याय है। अगर मुझमें वह गुण होते, जो इसके अज्ञात प्रियतम में हैं, तो उसकी तबीयत क्यों मेरी ओर आकर्षित न होती ? मुझमें वे बातें नहीं हैं कि मैं उसका जीवन-सर्वस्व बन सकूं। अगर मुझे कोई कड़वी चीज अच्छी नहीं लगती, तो मैं स्वभावतः हलवाई की दुकान की तरफ जाऊंगा, जो मिठाइयां बेचता है। सम्भव है धीरे-धीरे मेरी रुचि बदल जाए और मैं कड़वी चीजें पसन्द करने लगूं, लेकिन बलात् तलवार की नोक पर कोई कड़वी चीज मेरे मुंह में नहीं डाल सकता।

"इन विचारों ने मुझे पराजित कर दिया। वह सूरत, जो एक क्षण पहले मुझे काटे खाती थी, उसमें पहले शतगुणा आकर्षण था। अब तक मैंने उसको निद्रामग्न न देखा था। निद्रावस्था में उसका रूप और भी निष्कलंक और अनिन्द्य मालूम हुआ। जागृति में निगाह कभी आंखों के दर्शन करती, कभी अधरों के, कभी कपोलों के, इस नींद में उसका रूप अपनी सम्पूर्ण कलाओं से चमक रहा था। रूप-छटा का एक दीपक जल रहा था।"

राजा साहब ने फिर प्याला मुंह से लगाया और बोले—सरदार साहब, मेरा जोश ठण्डा हो गया। जिससे प्रेम हो गया, उससे द्वेष नहीं हो सकता, चाहे वह हमारे साथ कितना ही अन्य क्यों न करे। जहां प्रेमिका प्रेमी के हाथों कत्ल हो, वहां समझ लीजिए कि प्रेम न था, केवल विषय-लालसा थी। मैं वहां से चला आया, लेकिन चित्त किसी तरह शान्त नहीं होता। तब से अब तक मैंने क्रोध को जीतने की भरसक कोशिश की, मगर असफल रहा। जब तक वह शैतान जिन्दा है, मेरे पहलू में एक कांटा-सा खटकता रहेगा, मेरी छाती पर सांप लोटता रहेगा। वही काला नाग फन उठाए हुए उस रत्न-राशि पर बैठा हुआ है, वही मेरे और सरफराज के बीच में लोहे की दीवार बना हुआ है, वही इस दूध की मक्खी है। उस सांप का सिर कुचलना होगा, उस दीवार को जड़ से खोदकर फेंक देना होगा, उस मक्खी को निकाल देना होगा। जब तक मैं अपनी आंखों से उसकी धज्जियां बिखरते न देखूंगा, मेरी आत्मा को संतोष न होगा। परिणाम की कोई चिन्ता नहीं, कुछ भी हो, मगर उस नर-पिशाच को जहन्नुम वासिल करके दम लूंगा।

यह कहकर राजा साहब ने मेरी ओर पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—बतलाइए आप मेरी क्या मदद कर सकते हैं ?

मैंने विस्मय से कहा—मैं ?

राजा साहब ने मेरा उत्साह बढ़ाते हुए कहा—हां, आप। आप जानते हैं, मैंने इतने आदमियों को छोड़कर आपको क्यों अपना विश्वासपात्र बनाया और क्यों आपसे यह भिक्षा मांगी ? यहां ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, जो मेरा इशारा पाते ही उस दुष्ट के टुकड़े उड़ा देंगे, सरेबाजार उसके रक्त से भूमि को रंग देंगे। जी हां, एक इशारे से उसकी हड्डियों का बुरादा बना सकता हूं, उसके नहों में कीलें ठुकवा सकता हूं, मगर मैंने सबको छोड़कर आपको छांटा, जानते हो क्यों ? इसलिए कि मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास है। वह विश्वास, जो मुझे अपने निकटतम आदमियों पर भी नहीं। मैं जानता हूं कि तुम्हारे हृदय में यह भेद उतना ही गुप्त रहेगा, जितना मेरे। मुझे विश्वास है कि प्रलोभन अपनी चरम शक्ति का उपयोग करके भी तुम्हें नहीं डिगा सकता। पाशविक अत्याचार भी तुम्हारे अधरों को नहीं

खोल सकते। तुम बेवफाई न करोगे, दया न करोगे, इस अवसर से अनुचित लाभ न उठाओगे। जानते हो, इसका पुरस्कार क्या होगा ? इसके विषय में तुम कुछ भी शंका न करो। मुझमें और चाहे कितने ही दुर्गुण हों, कृतघ्नता का दोष नहीं है। बड़े से बड़ा पुरस्कार जो मेरे अधिकार में है, वह तुम्हें दिया जाएगा। मनसब, जागीर, धन, सम्मान–सब तुम्हारी इच्छानुसार दिये जाएंगे। इसका सम्पूर्ण अधिकार तुमको दिया जाएगा, कोई दखल न देगा। तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा को उच्चतम शिखर तक उड़ने की आजादी होगी। तुम खुद फरमान लिखोगे और मैं उस पर आंखें बन्द करके दस्तखत करूंगा। बोलो, कब जाना चाहते हो ? उसका नाम और पता इस कागज पर लिखा हुआ है, इसे अपने हृदय पर अंकित कर लो और कागज फाड़ डालो। तुम खुद समझ सकते हो कि मैंने कितना बड़ा भार तुम्हारे ऊपर रखा है। मेरी आबरू, मेरी जान तुम्हारी मुट्ठी में है। मुझे विश्वास है कि तुम इस काम को सुचारु रूप से पूरा करोगे। जिन्हें अपना सहयोगी बनाओगे, वे भरोसे के आदमी होंगे। तुम्हें अधिकतम बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और धैर्य से काम लेना पड़ेगा। एक असंयत शब्द, एक क्षण का विलम्ब, जरा-सी लापरवाही मेरे और तुम्हारे दोनों के लिए प्राणघातक होगी। दुश्मन घात में बैठा हुआ है, 'कर तो डर, न कर तो डर' का मामला है। यों ही गद्दी से उतारने के मंसूबे सोचे जा रहे हैं, इस रहस्य के खुल जाने पर क्या दुर्गति होगी, इसका अनुमान तुम स्वयं कर सकते हो। मैं बर्मा में नजरबन्द कर दिया जाऊंगा, रियासत गैरों के हाथ में चली जाएगी और मेरा जीवन नष्ट हो जाएगा। मैं चाहता हूं कि आज ही चले जाओ। यह इम्पीरियल बैंक का चैकबुक है। मैंने चैकों पर दस्तखत कर दिये हैं, जब जितने रुपयों की जरूरत हो, ले लेना।

मेरा दिमाग सातवें आसमान पर जा पहुंचा। अब मुझे मालूम हुआ कि प्रलोभन में ईमान को बिगाड़ने की कितनी शक्ति है। मुझे जैसे कोई नशा हो गया। मैंने एक किताब में पढ़ा था कि अपने भाग्य-निर्माण का अवसर हर एक आदमी को मिलता है, और एक ही बार। जो इस अवसर को दोनों हाथों से पकड़ लेता है, वह मर्द है, जो आगा-पीछा में पड़कर उसे छोड़ देता है, वह कायर है। एक को धन, यश गौरव नसीब होता है और दूसरा खेद, लज्जा और दुर्दशा में रो-रोकर जिन्दगी के दिन काटता है। फैसला करने के लिए केवल एक क्षण का समय मिलता है। वह समय कितना बहुमूल्य होता है। मेरे जीवन में यह वही अवसर था। मैंने उसे दोनों हाथों से पकड़ने का निश्चय कर लिया। सौभाग्य अपनी सर्वोत्तम सिद्धियों का थाल लिए मेरे सामने हाजिर है, वह सारी विभूतियां, जिनके लिए आदमी जीता-मरता है, मेरा स्वागत करने के लिए खड़ी हैं। अगर इस समय मैं उनकी उपेक्षा करूं, तो मुझ जैसा अभागा आदमी संसार में न होगा। माना कि बड़े जोखिम का काम है, लेकिन पुरस्कार तो देखो। दरिया में गोता लगाने ही से तो मोती मिलता है, तख्त पर बैठे हुए कायरों के लिए कौड़ियों और घोंघों के सिवा और क्या है ? माना कि बेगुनाह के खून से हाथ रंगना पड़ेगा। क्या मुजायका ! बलिदान से ही वरदान मिलता है। संसार समरभूमि है। यहां लाशों का जीना बनाकर उन्नति के शिखर पर चढ़ना पड़ता है। खून के नालों में तैरकर ही विजय-तट मिलता है। संसार का इतिहास देखो, सफल पुरुषों का चरित्र रक्त के अक्षरों में लिखा हुआ है। वीरों ने सदैव खून के दरिया में गोते लगाये हैं, खून की होलियां खेली हैं। खून का डर दुर्बलता और कमहिम्मती का चिह्न है। कर्मयोगी

की दृष्टि लक्ष्य पर रहती है, मार्ग पर नहीं, शिखर पर रहती है, मध्यवर्ती चट्टानों पर नहीं। मैंने खड़े होकर अर्ज की—गुलाम इस खिदमत के लिए हाजिर है।

राजा साहब ने सम्मान की दृष्टि से देखकर कहा—मुझे तुमसे यही आशा थी। तुम्हारा दिल कहता है कि यह काम पूरा कर आओगे ?

"मेरा विश्वास है।"

मेरा भी यही विचार था। "देखो, एक-एक क्षण का समाचार भेजते रहना।"

"ईश्वर ने चाहा तो हुजूर को शिकायत का कोई मौका न मिलेगा।"

"ईश्वर का नाम न लो, ईश्वर ऐसे मौके के लिए नहीं है। ईश्वर की मदद उस वक्त मांगो, जब अपना दिल कमजोर हो। जिसकी बांहों में शक्ति, मन में संकल्प, बुद्धि में बल और साहस है, वह ईश्वर का आश्रय क्यों ले ? अच्छा जाओ और जल्द सुर्खरू होकर लौटो, आंखें तुम्हारी तरफ लगी रहेंगी।"

2

मैंने आत्मा की आलोचनाओं को सिर तक न उठाने दिया। उस दुष्ट को क्या अधिकार था कि सरफराज से ऐसा कुत्सित सम्बन्ध रखे, जब उसे मालूम था कि राजा साहब ने उसे अपने हरम में दाखिल कर लिया है ? यह लगभग उतना ही गर्हित अपराध है, जितना किसी विवाहिता स्त्री को भगा ले जाना। सरफराज एक प्रकार से विवाहिता है, ऐसी स्त्री से पत्र-व्यवहार करना और उस पर डोरे डालना किसी दशा में भी क्षम्य नहीं हो सकता। ऐसे संगीन अपराध की सजा भी उतनी ही संगीन होनी चाहिए। अगर मेरे हृदय में उस वक्त तक कुछ दुर्बलता, कुछ संशय, कुछ अविश्वास था, तो इस तर्क ने उसे दूर कर दिया। सत्य का विश्वास सत्-साहस.का मंत्र है। अब वह खून मेरी नजरों में पापमय हत्या नहीं, जायज खून था और उससे मुंह मोड़ना लज्जाजनक कायरता।

गाड़ी के जाने में अभी दो घण्टे की देर थी। रात-भर का सफर था, लेकिन भोजन की ओर बिल्कुल रुचि न थी। मैंने सफर की तैयारी शुरू की। बाजार से एक नकली दाढ़ी लाया, ट्रंक में दो रिवाल्वर रख लिये, फिर सोचने लगा, किसे अपने साथ ले चलूं ? यहां से किसी को ले जाना तो नीति-विरुद्ध है। फिर क्या अपने भाई साहब को तार दूं ? हां, यही उचित है। उन्हें लिख दूं कि मुझसे बम्बई में आकर मिलें, लेकिन नहीं, भाई साहब को क्यों फंसाऊं ? कौन जाने क्या हो ? बम्बई में ऐसे आदमी की क्या कमी ? एक लाख रुपये का लालच दूंगा। चुटकियों में काम हो जाएगा। वहां एक से एक शातिर पड़े हैं, जो चाहें तो फरिश्तों का भी खून कर आयें। बस, इन महाशय को किसी हिकमत से किसी वेश्या के कमरे में बुलाया जाए और वहीं उनका काम तमाम कर दिया जाए। या समुद्र के किनारे पर जब वह हवा खाने निकलें, तो वहीं मारकर लाश समुद्र में डाल दी जाए।

अभी चूंकि देर थी, मैंने सोचा, आओ सन्ध्या कर लूं। ज्यों ही सन्ध्या के कमरे में कदम रखा, माताजी के तिरंगे चित्र पर नजर पड़ी। मैं मूर्तिपूजक नहीं हूं, धर्म की ओर मेरी प्रवृत्ति भी नहीं है, न कभी कोई व्रत रखता हूं, लेकिन न जाने क्यों, उस चित्र को देखकर अपनी आत्मा में एक प्रकाश का अनुभव करता हूं। उन आंखों में मुझे अब भी वही वात्सल्यमय ज्योति, वही दैवी आशीर्वाद मिलता है, जिसकी बाल-स्मृति अब भी मेरे हृदय

को गद्‌गद कर देती है। वह चित्र मेरे लिए चित्र नहीं, बल्कि सजीव प्रतिमा है, जिसने मेरी सृष्टि की है और अब भी मुझे जीवन प्रदान कर रही है। उस चित्र को देखकर मैं यकायक चौंक पड़ा, जैसे कोई आदमी उस वक्त चोर के कंधे पर हाथ रख दे जब वह सेंध मार रहा हो। इस चित्र को रोज ही देखा करता था, दिन में कई बार उस पर निगाह पड़ती थी, पर आज मेरे मन की जो दशा हुई, वह कभी न हुई थी। मालूम हुआ कि वह आंखें मुझे धिक्कार रही हैं। उनमें कितनी वेदना थी, कितनी लज्जा और कितना क्रोध ! मानो वह कह रही थीं, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मैं उस तरफ ताक न सका। फौरन आंखें झुका लीं। उन आंखों के सामने खड़े होने की हिम्मत मुझे न हुई। वह तस्वीर की आंखें न थीं, सजीव, तीव्र और ज्वालामय, हृदय में पैठने वाली, नोकदार भाले की तरह हृदय में चुभने वाली आंखें थीं। मुझे ऐसा मालूम हुआ, गिर पड़ूंगा। मैं वहीं फर्श पर बैठ गया। मेरा सिर आप ही आप झुक गया। बिल्कुल अज्ञातरूप से मानो किसी दैवी प्रेरणा से मेरे संकल्प में एक क्रांति-सी हो गयी। उस सत्य के पुतले, उस प्रकाश की प्रतिमा ने मेरी आत्मा को सजग कर दिया। मन में क्या-क्या भाव उत्पन्न हुए, क्या-क्या विचार उठे, इसकी मुझे खबर नहीं। मैं इतना ही जानता हूं कि मैं एक सम्मोहित दशा में घर से निकला, मोटर तैयार करायी और दस बजे राजा साहब की सेवा में जा पहुंचा। मेरे लिए उन्होंने विशेष रूप से ताकीद कर दी थी कि जिस वक्त चाहूं, उनसे मिल सकूं। कोई अड़चन न पड़ी। मैं जाकर नम्र भाव से बोला–हुजूर, कुछ अर्ज करना चाहता हूं।

राजा साहब अपने विचार में इस समस्या को सुलझाकर इस वक्त इत्मीनान की सांस ले रहे थे। मुझे देखकर उन्हें किसी नयी उलझन का सन्देह हुआ। त्योरियों पर बल पड़ गये, मगर एक ही क्षण में नीति ने विजय पायी, मुस्कराकर बोले–हां-हां, कहिए, कोई खास बात ?

मैंने निर्भीक होकर कहा–मुझे क्षमा कीजिए, मुझसे यह काम न होगा।

राजा साहब का चेहरा पीला पड़ गया, मेरी ओर विस्मय से देखकर बोले–इसका मतलब ?

"मैं यह काम न कर सकूंगा।"

"क्यों ?"

"मुझमें वह सामर्थ्य नहीं है।"

राजा साहब ने व्यंग्यपूर्ण नेत्रों से देखकर कहा–शायद आत्मा जागृत हो गयी, क्यों ? वही बीमारी, जो कायरों और नामर्दों को हुआ करती है। अच्छी बात है, जाओ।

"हुजूर, आप मुझसे नाराज न हों, मैं अपने में वह...।"

राजा साहब ने सिंह की भांति आग्नेय नेत्रों से देखते हुए गरजकर कहा–मत बको, नमक...

फिर कुछ नम्र होकर बोले–तुम्हारे भाग्य में ठोकरें खाना ही लिखा है। मैंने तुम्हें वह अवसर दिया था, जिसे कोई दूसरा आदमी दैवी वरदान समझता, मगर तुमने उसकी कद्र न की। तुम्हारी तकदीर तुमसे फिरी हुई है। हमेशा गुलामी करोगे और धक्के खाओगे। तुम जैसे आदमियों के लिए गेरुए बाने हैं और कमण्डल तथा पहाड़ की एक गुफा। इस धर्म और अधर्म की समस्या पर विचार करने के लिए उसी वैराग्य की जरूरत है। संसार

मर्दों के लिए है।

मैं पछता रहा था कि मैंने पहले ही क्यों न इन्कार कर दिया।

राजा साहब ने एक क्षण के बाद फिर कहा—अब भी मौका है, फिर सोचो।

मैंने उसी निःशंक तत्परता के साथ कहा—हुजूर, मैंने खूब सोच लिया है।

राजा साहब होंठ दांतों से काटकर बोले—बेहतर है, जाओ और आज ही रात को मेरे राज्य की सीमा के बाहर निकल जाओ। शायद कल तुम्हें इसका अवसर न मिले ! मैं न मालूम क्या समझकर तुम्हारी जान बख्शिश कर रहा हूं। न जाने कौन मेरे हृदय में बैठा हुआ तुम्हारी रक्षा कर रहा है। मैं इस वक्त अपने-आप में नहीं हूं, लेकिन मुझे तुम्हारी शराफत पर भरोसा है। मुझे अब भी विश्वास है कि इस मामले को तुम दीवार के सामने भी जुबान पर न लाओगे।

मैं चुपके से निकल आया और रातों-रात राज्य के बाहर पहुंच गया। मैंने उस चित्र के सिवा और कोई चीज अपने साथ न ली।

इधर सूर्य ने पूर्व की सीमा में पदार्पण किया, उधर मैं रियासत की सीमा से निकलकर अंग्रेजी इलाके में आ पहुंचा।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक 'विशाल भारत', दिसम्बर, 1929 में प्रकाशित। 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'हर्जजां' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

घासवाली

मुलिया हरी-हरी घास का गट्ठा लेकर आयी, तो उसका गेहुँआ रंग कुछ तमतमाया हुआ था और बड़ी-बड़ी मद-भरी आँखों में शंका समाई हुई थी। महावीर ने उसका तमतमाया हुआ चेहरा देखकर पूछा—क्या है मुलिया, आज कैसा जी है।

मुलिया ने कुछ जवाब न दिया—उसकी आँखें डबडबा गयीं !

महावीर ने समीप आकर पूछा—क्या हुआ है, बताती क्यों नहीं ? किसी ने कुछ कहा है, अम्माँ ने डाँटा है, क्यों इतनी उदास है ?

मुलिया ने सिसककर कहा—कुछ नहीं, हुआ क्या है, अच्छी तो हूं ?

महावीर ने मुलिया को सिर से पाँव तक देखकर कहा—चुपचाप रोयेगी, बतायेगी नहीं ?

मुलिया ने बात टालकर कहा—कोई बात भी हो, क्या बताऊँ।

मुलिया इस ऊसर में गुलाब का फूल थी। गेहुँआ रंग था, हिरन की सी आँखें, नीचे खिंचा हुआ चिबुक, कपोलों पर हलकी लालिमा, बड़ी-बड़ी नुकीली पलकें, आँखों में एक विचित्र आर्द्रता, जिसमें एक स्पष्ट वेदना, एक मूक व्यथा झलकती रहती थी। मालूम नहीं, चमारों के इस घर में वह अप्सरा कहाँ से आ गयी थी। क्या उसका कोमल फूल-सा गात इस योग्य था कि सर पर घास की टोकरी रखकर बेचने जाती ? उस गाँव में भी ऐसे लोग मौजूद थे, जो उसके तलवे के नीचे आँखें बिछाते थे, उसकी एक चितवन के लिए तरसते

थे, जिनसे अगर वह एक शब्द भी बोलती, तो निहाल हो जाते; लेकिन उसे आये साल-भर से अधिक हो गया, किसी ने उसे युवकों की तरफ ताकते या बातें करते नहीं देखा। वह घास लिये निकलती, तो ऐसा मालूम होता, मानों उषा का प्रकाश, सुनहरे आवरण में रंजित, अपनी छटा बिखेरता जाता हो। कोई गजलें गाता, कोई छाती पर हाथ रखता; पर मुलिया नीची आँख किये अपनी राह चली जाती। लोग हैरान होकर कहते—इतना अभिमान ! महावीर में ऐसे क्या सुरखाब के पर लगे हैं, ऐसा अच्छा जवान भी तो नहीं, न जाने यह कैसे उसके साथ रहती है !

मगर आज ऐसी बात हो गयी, जो इस जाति की और युवतियों के लिए चाहे गुप्त संदेश होती, मुलिया के लिए हृदय का शूल थी। प्रभात का समय था, पवन आम की बौर की सुगन्धि से मतवाला हो रहा है, आकाश पृथ्वी पर सोने की वर्षा कर रहा था। मुलिया सिर पर झौआ रक्खे घास छीलने चली, तो उसका गेहुआँ रंग प्रभात की सुनहरी किरणों से कुन्दन की तरह दमक उठा। एकाएक युवक चैनसिंह सामने से आता हुआ दिखाई दिया। मुलिया ने चाहा कि कतराकर निकल जाय; मगर चैनसिंह ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला—मुलिया, तुझे क्या मुझ पर जरा भी दया नहीं आती ?

मुलिया का वह फूल-सा खिला हुआ चेहरा ज्वाला की तरह दहक उठा। वह जरा भी नहीं डरी, जरा भी न झिझकी, झौआ जमीन पर गिरा दिया, और बोली—मुझे छोड़ दो, नहीं मैं चिल्लाती हूँ।

चैनसिंह को आज जीवन में एक नया अनुभव हुआ। नीची जातों में रूप-माधुर्य का इसके सिवा और काम ही क्या है कि वह ऊंची जातिवालों का खिलौना बने। ऐसे कितने ही मार्के उसने जीते थे; पर आज मुलिया के चेहरे का वह रंग, उसका वह क्रोध, वह अभिमान देखकर उसके छक्के छूट गये। उसने लज्जित होकर उसका हाथ छोड़ दिया। मुलिया वेग से आगे बढ़ गयी। संघर्ष की गरमी में चोट की व्यथा नहीं होती, पीछे से टीस होने लगती है। मुलिया जब कुछ दूर निकल गई, तो क्रोध और भय तथा अपनी बेकसी को अनुभव करके उसकी आँखों में आंसू भर आये। उसने कुछ देर जब्त किया, फिर सिसक-सिसक कर रोने लगी। अगर वह इतनी गरीब न होती, तो किसी की मजाल थी कि इस तरह उसका अपमान करता ! वह रोती जाती थी और घास छीलती जाती थी। महावीर का क्रोध वह जानती थी। अगर उससे कह दे, तो वह इस ठाकुर के खून का प्यासा हो जायगा। फिर न जाने क्या हो ! इस खयाल से उसके रोएँ खड़े हो गए। इसीलिए उसने महावीर के प्रश्नों का कोई उत्तर न दिया।

2

दूसरे दिन मुलिया घास के लिए न गई। सास ने पूछा—तू क्यों नहीं जाती ? और सब तो चली गयीं ?

मुलिया ने सिर झुकाकर कहा—मैं अकेली न जाऊँगी।

सास ने बिगड़कर कहा—अकेले क्या तुझे बाघ उठा ले जायगा ?

मुलिया ने और भी सिर झुका लिया और दबी हुई आवाज से बोली—सब मुझे छेड़ते हैं।

सास ने डाँटा—न तू औरों के साथ जायगी, न अकेली जायगी, तो फिर जायगी कैसे! वह साफ-साफ क्यों नहीं कहती कि मैं न जाऊँगी। तो यहाँ मेरे घर में रानी बन के निबाह न होगा। किसी को चाम नहीं प्यारा होता, काम प्यारा होता है। तू बड़ी सुन्दर है, तो तेरी सुन्दरता लेकर चाटूँ ? उठा झाबा और घास ला !

द्वार पर नीम के दरख्त के साये में महावीर खड़ा घोड़े को मल रहा था। उसने मुलिया को रोनी सूरत बनाये जाते देखा; पर कुछ बोल न सका। उसका बस चलता तो मुलिया को कलेजे में बिठा लेता, आँखों में छिपा लेता; लेकिन घोड़े का पेट भरना तो जरूरी था। घास मोल लेकर खिलाये, तो बारह आने रोज से कम न पड़े। ऐसी मजदूरी ही कौन होती है। मुश्किल से डेढ़-दो रुपये मिलते हैं, वह भी कभी मिले, कभी न मिले। जब से यह सत्यानाशी लारियाँ चलने लगी हैं; इक्केवालों की बधिया बैठ गई है। कोई सेंत भी नहीं पूछता। महाजन से डेढ़-सौ रुपये उधार लेकर इक्का और घोड़ा खरीदा था; मगर लारियों के आगे इक्के को कौन पूछता है। महाजन का सूद भी तो न पहुँच सकता था, मूल का कहना ही क्या ! ऊपर मन से बोला—न मन हो, तो रहने दो, देखी जायगी।

इस दिलजोई से मुलिया निहाल हो गई। बोली—घोड़ा खायेगा क्या ?

आज उसने कल का रास्ता छोड़ दिया और खेतों की मेड़ों से होती हुई चली। बार-बार सतर्क आँखों से इधर-उधर ताकती जाती थी। दोनों तरफ ऊख के खेत खड़े थे। जरा भी खड़खड़ाहट होती, उसका जी सन्न हो जाता—कहीं कोई ऊख में छिपा न बैठा हो। मगर कोई नई बात न हुई। ऊख के खेत निकल गये, आमों का बाग निकल गया; सिंचे हुए खेत नजर आने लगे। दूर के कुएँ पर पुर चल रहा था। खेतों की मेड़ों पर हरी-हरी घास जमी हुई थी। मुलिया का जी ललचाया। यहाँ आध घण्टे में जितनी घास छिल सकती है, सूखे मैदान में दोपहर तक न छिल सकेगी ! यहाँ देखता ही कौन है। कोई चिल्लायेगा, तो चली जाऊँगी। वह बैठकर घास छीलने लगी और एक घण्टे में उसका झाबा आधे से ज्यादा भर गया। वह अपने काम में इतनी तन्मय थी कि उसे चैनसिंह के आने की खबर ही न हुई। एकाएक उसने आहट पाकर सिर उठाया, तो चैनसिंह को खड़ा देखा।

मुलिया की छाती धक् से हो गयी। जी में आया भाग जाय, झाबा उलट दे और खाली झाबा लेकर चली जाय; पर चैनसिंह ने कई गज के फासले से ही रुककर कहा—डर मत, डर मत, भगवान जानता है ! मैं तुझसे कुछ न बोलूँगा। जितनी घास चाहे छील ले, मेरा ही खेत है।

मुलिया के हाथ सुन्न हो गये, खुरपी हाथ में जम-सी गयी, घास नजर ही न आती थी। जी चाहता था; जमीन फट जाय और मैं समा जाऊँ। जमीन आँखों के सामने तैरने लगी।

चैनसिंह ने आश्वासन दिया—छीलती क्यों नहीं ? मैं तुमसे कुछ कहता थोड़े ही हूँ। यहीं रोज चली आया कर, मैं छील दिया करूँगा।

मुलिया चित्रलिखित-सी बैठी रही।

चैनसिंह ने एक कदम आगे बढ़ाया और बोला—तू मुझसे इतना डरती क्यों है ! क्या तू समझती है, मैं आज भी तुझे सताने आया हूँ ? ईश्वर जानता है, कल भी तुझे सताने के लिए मैंने तेरा हाथ नहीं पकड़ा था। तुझे देखकर आप-ही-आप हाथ बढ़ गये। मुझे कुछ

सुध ही न रही। तू चली गयी, तो मैं वहीं बैठकर घण्टों रोता रहा। जी में आता था, हाथ काट डालूँ। कभी जी चाहता था, जहर खा लूँ। तभी से तुझे ढूँढ़ रहा हूँ आज तू इस रास्ते से चली आयी। मैं सारा हार छानता हुआ यहाँ आया हूँ। अब जो सजा तेरे जी में आवे, दे दे। अगर तू मेरा सिर भी काट ले, तो गर्दन न हिलाऊँगा। मैं शोहदा था, लुच्चा था, लेकिन जब से तुझे देखा है, मेरे मन से सारी खोट मिट गयी है। अब तो यही जी में आता है कि तेरा कुत्ता होता और तेरे पीछे-पीछे चलता, तेरा घोड़ा होता, तब तो तू अपने हाथों से मेरे सामने घास डालती। किसी तरह यह चोला तेरे काम आवे, मेरे मन की यह सबसे बड़ी लालसा है। मेरी जवानी काम न आवे, अगर मैं किसी खोट से ये बातें कर रहा हूँ। बड़ा भागवान था महावीर, जो ऐसी देवी उसे मिली।

मुलिया चुपचाप सुनती रही, फिर नीचा सिर करके भोलेपन से बोली—तो तुम मुझे क्या करने को कहते हो ?

चैनसिंह और समीप आकर बोला—बस, तेरी दया चाहता हूँ।

मुलिया ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। उसकी लज्जा न जाने कहाँ गायब हो गयी। चुभते हुए शब्दों में बोली। तुमसे एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे ? तुम्हारा ब्याह हो गया है या नहीं ?

चैनसिंह ने दबी जबान से कहा—ब्याह तो हो गया, लेकिन ब्याह क्या है, खिलवाड़ है।

मुलिया के होंठों पर अवहेलना की मुसकराहट झलक पड़ी, बोली—फिर भी अगर मेरा आदमी तुम्हारी औरत से इसी तरह बातें करता, तो तुम्हें कैसा लगता ? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं ? बोलो ! क्या समझते हो कि महावीर चमार है तो उसकी देह में लहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं है, अपने मर्यादा का विचार नहीं है ? मेरा रूप-रंग तुम्हें भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुन्दर औरतें नहीं घूमा करतीं ? मैं उनके तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती. तुम उसमें से किसी से क्यों नहीं दया माँगते! क्या उनके पास दया नहीं है ? मगर वहाँ तुम न जाओगे; क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया माँगते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूँ, नीच जाति हूँ और नीच जाति की औरत जरा-सी घुड़की-धमकी या जरा-सी लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जायगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे ?

चैनसिंह लज्जित होकर बोला—मूला, यह बात नहीं। मैं सच कहता हूँ, इसमें ऊँच-नीच की बात नहीं है। सब आदमी बराबर हैं। मैं तो तेरे चरणों पर सिर रखने को तैयार हूँ।

मुलिया—इसीलिए न कि जानते हो, मैं कुछ कर नहीं सकती। जाकर किसी खतरानी के चरणों पर सिर रक्खो, तो मालूम हो कि चरणों पर सिर रखने का क्या फल मिलता है। फिर यह सिर तुम्हारी गर्दन पर न रहेगा।

चैनसिंह मारे शर्म के जमीन में गड़ा जाता था। उसका मुँह ऐसा सूख गया था, मानो महीनों की बीमारी से उठा हो। मुँह से बात न निकलती थी। मुलिया इतनी वाक्-पटु है, इसका उसे गुमान भी न था।

मुलिया फिर बोली—मैं भी रोज बाजार जाती हूँ। बड़े-बड़े घरों का हाल जानती हूँ।

मुझे किसी बड़े घर का नाम बता दो, जिसमें कोई साईस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पण्डा, कोई महाराज न घुसा बैठा हो ? यह सब बड़े घरों की लीला है। और वह औरतें जो कुछ करती हैं, ठीक करती हैं ! उनके घरवाले भी तो चमारिनों और कहारिनों पर जान देते फिरते हैं। लेना-देना बराबर हो जाता है। बेचारे गरीब आदमियों के लिए यह बातें कहाँ ? मेरे आदमी के लिए संसार में जो कुछ हूँ, मैं हूँ। वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुन्दर हूँ, लेकिन मैं काली-कलूटी भी होती, तब भी वह मुझे इसी तरह रखता। इसका मुझे विश्वास है। मैं चमारिन होकर भी इतनी नीच नहीं हूँ कि विश्वास का बदला खोट से दूँ। हाँ, वह अपने मन की करने लगे, मेरी छाती पर मूँग दलने लगे, तो मैं भी उसकी छाती पर मूँग दलूँगी। तुम मेरे रूप ही के दीवाने हो न ! आज मुझे माता निकल आयें, कानी हो जाऊँ, तो मेरी ओर ताकोगे भी नहीं। बोलो, झूठ कहती हूँ ?

चैनसिंह इनकार न कर सका।

मुलिया ने उसी गर्व से भरे हुए स्वर में कहा—लेकिन मेरी एक नहीं, दोनों आँखें फूट जायँ, तब भी वह मुझे इसी तरह रक्खेगा। मुझे उठावेगा, बैठावेगा, खिलावेगा। तुम चाहते हो, मैं ऐसे आदमी के साथ कपट करूँ ? जाओ, अब मुझे कभी न छेड़ना, नहीं अच्छा न होगा।

3

जवानी जोश है, बल है, दया है, साहस है, आत्म-विश्वास है, गौरव है और सब कुछ जो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है। जवानी का नशा घमंड है, निर्दयता है, स्वार्थ है, शेखी है, विषय-वासना है, कटुता है और वह सब कुछ जो जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता है। चैनसिंह पर जवानी का नशा था। मुलिया के शीतल छींटों ने नशा उतार दिया। जैसे उबलती हुई चाशनी में पानी के छींटे पड़ जाने से फेन मिट जाता है, मैल निकल जाता है और निर्मल, शुद्ध रस निकल आता है। जवानी का नशा जाता रहा, केवल जवानी रह गयी। कामिनी के शब्द जितनी आसानी से दीन और ईमान को गारत कर सकते हैं, उतनी ही आसानी से उनका उद्धार भी कर सकते हैं।

चैनसिंह उस दिन से दूसरा ही आदमी हो गया। गुस्सा उसकी नाक पर रहता था, बात-बात पर मजदूरों को गालियाँ देना, डाँटना और पीटना उसकी आदत थी। आसामी उससे थर-थर काँपते थे। मजदूर उसे आते देखकर अपने काम में चुस्त हो जाते थे; पर ज्योंही उसने इधर पीठ फेरी और उन्होंने चिलम पीना शुरू किया। सब दिल में उससे जलते थे, उसे गालियाँ देते थे। मगर उस दिन से चैनसिंह इतना दयालु, इतना गंभीर, इतना सहनशील हो गया कि लोगों को आश्चर्य होता था।

कई दिन गुजर गये थे। एक दिन सन्ध्या समय चैनसिंह खेत देखने गया। पुर चल रहा था। उसने देखा कि एक जगह नाली टूट गयी है, और सारा पानी बहा चला जाता है। क्यारियों में पानी बिल्कुल नहीं पहुँचता, मगर क्यारी बनाने वाली बुढ़िया चुपचाप बैठी है। उसे इसकी जरा भी फिक्र नहीं है कि पानी क्यों नहीं आता। पहले यह दशा देखकर चैनसिंह आपे से बाहर हो जाता। उस औरत की उस दिन मजूरी काट लेता और पुर

चलानेवालों को घुड़कियाँ जमाता, पर आज उसे क्रोध नहीं आया। उसने मिट्टी लेकर नाली बाँध दी और खेत में जाकर बुढ़िया से बोला—तू यहाँ बैठी है और पानी सब बहा जा रहा है।

बुढ़िया घबड़ाकर बोली—अभी खुल गयी होगी। राजा ! मैं अभी जाकर बन्द किये देती हूँ।

यह कहती हुई वह थरथर काँपने लगी। चैनसिंह ने उसकी दिलजोई करते हुए कहा भाग मत, भाग मत। मैंने नाली बन्द कर दी। बुढ़ऊ कई दिन से नहीं दिखाई दिये, कहीं काम पर जाते हैं कि नहीं ?

बुढ़िया गद्‌गद् होकर बोली—आजकल तो खाली ही बैठे हैं भैया, कहीं काम नहीं लगता।

चैनसिंह ने नम्र भाव से कहा—तो हमारे यहाँ लगा दे। थोड़ा-सा सन रखा है, उसे कात दें।

यह कहता हुआ वह कुएं की ओर चला गया। यहाँ चार पुर चल रहे थे; पर इस वक्त दो हँकेवे बेर खाने गये थे। चैनसिंह को देखते ही मजूरों के होश उड़ गये। ठाकुर ने पूछा, दो आदमी कहाँ गये, तो क्या जवाब देंगे ? सब-के-सब डाँटे जायँगे। बेचारे दिल में सहमे जा रहे थे। चैनसिंह ने पूछा—वह दोनों कहाँ चले गये ?

किसी के मुँह से आवाज न निकली। सहसा सामने से दोनों मजूर धोती के एक कोने में बेर भरे आते दिखाई दिए। खुश-खुश बात करते चले आ रहे थे। चैनसिंह पर निगाह पड़ी, तो दोनों के प्राण सूख गए। पाँव मन-मन भर के हो गए। अब न आते बनता है, न जाते। दोनों समझ गए कि आज डाँट पड़ी, शायद मजूरी भी कट जाय। चाल धीमी पड़ गई। इतने में चैनसिंह ने पुकारा—बढ़ आओ, बढ़ आओ, कैसे बेर हैं, लाओ जरा मुझे भी दो, मेरे ही पेड़ के हैं न ?

दोनों और भी सहम उठे। आज ठाकुर जीता न छोड़ेगा। कैसा मिठा-मिठाकर बोल रहा है। उतनी ही भिगो-भिगोकर लगायेगा। बेचारे और भी सिकुड़ गए।

चैनसिंह ने फिर कहा—जल्दी से आओ जी, पक्की-पक्की सब मैं ले लूँगा। जरा एक आदमी लपककर घर से थोड़ा-सा नमक तो ले लो : (बाकी दोनों मजूरों से) तुम भी दोनों आ जाओ, उस पेड़ के बेर मीठे होते हैं। बेर खा ले, काम तो करना ही है।

अब दोनों भगोड़ों को कुछ ढारस हुआ। सभी ने जाकर सब बेर चैनसिंह के आगे डाल दिए और पक्के-पक्के छाँटकर उसे देने लगे। एक आदमी नमक लाने दौड़ा। आध घण्टे तक चारों पुर बन्द रहे। जब सब बेर उड़ गए और ठाकुर चलने लगे, तो दोनों अपराधियों ने हाथ जोड़कर कहा—भैयाजी, आज जान बकसी हो जाय, बड़ी भूख लगी थी, नहीं तो कभी न जाते।

चैनसिंह ने नम्रता से कहा—तो इसमें बुराई क्या हुई ? मैंने भी तो बेर खाए। एक-आध घण्टे का हरज हुआ यही न ? तुम चाहोगे; तो घण्टे भर का काम आध घण्टे में कर दोगे। न चाहोगे, दिन-भर में घण्टे-भर का भी काम न होगा।

चैनसिंह चला गया, तो चारों बातें करने लगे।

एक ने कहा—मालिक इस तरह रहे, तो काम करने में जी लगता है। यह नहीं कि

हरदम छाती पर सवार।

दूसरा—मैंने तो समझा; आज कच्चा ही खा जायँगे।

तीसरा—कई दिन से देखता हूँ, मिजाज नरम हो गया है।

चौथा—साँझ को पूरी मजूरी मिले तो कहना।

पहला—तुम तो हो गोबर-गनेस। आदमी का रुख नहीं पहचानते।

दूसरा—अब खूब दिल लगाकर काम करेंगे।

तीसरा—और क्या ! जब उन्होंने हमारे ऊपर छोड़ दिया, तो हमारा भी धरम है कि कोई कसर न छोड़ें।

चौथा—मुझे तो भैया, ठाकुर पर अब भी विश्वास नहीं आता।

4

एक दिन चैनसिंह को किसी काम से कचहरी जाना था। पाँच मील का सफर था। यों तो वह बराबर अपने घोड़े पर जाया करता था; पर आज धूप बड़ी तेज हो रही थी, सोचा इक्के पर चला चलूँ। महावीर को कहला भेजा मुझे लेते जाना। कोई नौ बजे महावीर ने पुकारा। चैनसिंह तैयार बैठा था। चटचट इक्के पर बैठ गया। मगर घोड़ा इतना दुबला हो रहा था, इक्के की गद्दी इतनी मैली और फटी हुई, सारा सामान इतना रद्दी कि चैनसिंह को उस पर बैठते शर्म आई। पूछा—यह सामान क्यों बिगड़ा हुआ है महावीर ? तुम्हारा घोड़ा तो इतना दुबला कभी न था; क्या आजकल सवारियाँ कम हैं क्या ? महावीर ने कहा—नहीं मालिक, सवारियाँ काहे नहीं है; मगर लारियों के सामने इक्के को कौन पूछता है। कहाँ दो-ढाई, तीन की मजूरी करके घर लौटता था, कहाँ अब बीस आने पैसे भी नहीं मिलते ? क्या जानवर को खिलाऊँ क्या आप खाऊँ ? बड़ी विपत्ति में पड़ा हूँ। सोचता हूँ एक्का-घोड़ा बेच-बाचकर आप लोगों की मजूरी कर.लूँ, पर कोई गाहक नहीं लगता। ज्यादा नहीं तो बारह आने तो घोड़े ही को चाहिये, घास ऊपर से। जब अपना ही पेट नहीं चलता, तो जानवर को कौन पूछे। चैनसिंह ने उसके फटे हुए कुरते की ओर देखकर कहा—दो-चार बीघे खेती क्यों नहीं कर लेते ?

महावीर सिर झुकाकर बोला—खेती के लिए बड़ा पौरुख चाहिए मालिक ! मैंने तो यही सोचा है कि कोई गाहक लग जाय, तो एक्के को औने-पौने निकाल दूँ, फिर घास छीलकर बाजार ले जाया करूँ। आजकल सास-पतोहू दोनों छीलती हैं। तब जाकर दस-बारह आने पैसे नसीब होते हैं।

चैनसिंह ने पूछा—तो बुढ़िया बाजार जाती होगी ?

महावीर लजाता हुआ बोला—नहीं भैया, वह इतनी दूर कहाँ चल सकती है। घरवाली चली जाती है। दोपहर तक घास छीलती है, तीसरे पहर बाजार जाती है। वहाँ से घड़ी रात गये लौटती है। हलकान हो जाती है भैया, मगर क्या करूँ, तकदीर से क्या जोर।

चैनसिंह कचहरी पहुँच गये और महावीर सवारियों की टोह में इधर-उधर इक्के को घुमाता हुआ शहर की तरफ चला गया। चैनसिंह ने उसे पाँच बजे आने को कह दिया।

कोई चार बजे चैनसिंह कचहरी से फुरसत पाकर बाहर निकले। हाते में पान की दुकान थी, जरा और आगे बढ़कर एक घना बरगद का पेड़ था उसकी छाँह में बीसों ही ताँगे;

एक्के, फिटनें खड़ी थीं। घोड़े खोल दिए गए थे। वकीलों, मुख्तारों और अफसरों की सवारियाँ यहीं खड़ी रहती थीं। चैनसिंह ने पानी पिया, पान खाया और सोचने लगा कोई लारी मिल जाय, तो जरा शहर चला जाऊँ कि उसकी निगाह एक घासवाली पर पड़ गई। सिर पर घास का झाबा रक्खे साईसों से मोल-भाव कर रही थी। चैनसिंह का हृदय उछल पड़ा—यह तो मुलिया है ! बनी-टनी, एक गुलाबी साड़ी पहने कोचवानों से मोल-तोल कर रही थी। कई कोचवान जमा हो गये थे। कोई उससे दिल्लगी करता था, कोई घूरता था, कोई हँसता था।

एक काले-कलूटे कोचवान ने कहा—मूला, घास तो उड़के अधिक से अधिक छः आने की है।

मुलिया ने उन्माद पैदा करने वाली आँखों से देखकर कहा—छः आने पर लेना है, तो सामने घसियारिनें बैठी हैं, चले जाओ, दो-चार पैसे कम में पा जाओगे, मेरी घास तो बारह आने में ही जायगी।

एक अधेड़ कोचवान ने फिटन के ऊपर से कहा—तेरा जमाना है, बारह आने नहीं एक रुपया माँग। लेनेवाले झख मारेंगे और लेंगे। निकलने दे वकीलों को, अब देर नहीं है।

एक ताँगेवाले ने, जो गुलाबी पगड़ी बाँधे हुए था, बोला—बुढ़ऊ के मुँह में पानी भर आया, अब मुलिया काहे को किसी की ओर देखेगी !

चैनसिंह को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन दुष्टों को जूते से पीटे। सब-के-सब कैसे उसकी ओर टकटकी लगाये ताक रहे हैं, आँखों से पी जायेंगे। और मुलिया भी यहाँ कितनी खुश है। न लजाती है, न झिझकती है, न दबती है। कैसा मुसकिरा-मुसकिराकर, रसीली आँखों से देख-देखकर, सिर का अंचल खिसका-खिसकाकर, मुँह मोड़-मोड़कर बातें कर रही है। वही मुलिया, जो शेरनी की तरह तड़प उठी थी।

इतने में चार बजे। अमले और वकील-मुख्तारों का एक मेला-सा निकल पड़ा। अमले लारियों पर दौड़े। वकील-मुख्तार इन सवारियों की ओर चले। कोचवानों ने भी चटपट घोड़े जोते। कई महाशयों ने मुलिया को रसिक नेत्रों से देखा और अपनी-अपनी गाड़ियों पर जा बैठे।

एकाएक मुलिया घास का झाबा लिये उस फिटन के पीछे दौड़ी। फिटन में एक अंगरेजी फैशन के जवान वकील साहब बैठे थे। उन्होंने पावदान पर घास रखवा ली, जेब से कुछ निकालकर मुलिया को दिया। मुलिया मुस्कराई, दोनों में कुछ बातें भी हुई, जो चैनसिंह न सुन सके।

एक क्षण में मुलिया प्रसन्न-मुख घर की ओर चली। चैनसिंह पानवाले की दुकान पर विस्मृति की दशा में खड़ा रहा। पानवाले ने दुकान बढ़ाई, कपड़े पहिने और केबिन का द्वार बन्द करके नीचे उतरा तो चैनसिंह की समाधि टूटी। पूछा—क्या दुकान बन्द कर दी?

पानवाले ने सहानुभूति दिखाकर कहा इसकी दवा करो ठाकुर साहब, यह बीमारी अच्छी नहीं है !

चैनसिंह ने चकित होकर पूछा—कैसी बीमारी ?

पानवाला बोला—कैसी बीमारी ! आध घण्टे से यहाँ खड़े हो जैसे कोई मुरदा खड़ा हो। सारी कचहरी खाली हो गयी, सब दुकानें बन्द हो गयीं, मेहतर तक झाड़ू लगाकर चल

दिये; तुम्हें कुछ खबर हुई ? यह बुरी बीमारी है, जल्दी दवा कर डालो।

चैनसिंह ने छड़ी सँभाली और फाटक की ओर चला कि महावीर का एक्का सामने से आता दिखाई दिया।

5

कुछ दूर एक्का निकल गया, तो चैनसिंह ने पूछा—आज कितने पैसे कमाये महावीर ?

महावीर ने हँसकर कहा—आज तो मालिक, दिन भर खड़ा ही रह गया। किसी ने बेगार में भी न पकड़ा। ऊपर से चार पैसे की बीड़ियाँ पी गया।

चैनसिंह ने जरा देर के बाद कहा—मेरी एक सलाह है। तुम मुझसे एक रुपया रोज लिया करो। बस, जब मैं बुलाऊँ तो एक्का लेकर चले आया करो। तब तो तुम्हारी घरवाली को घास लेकर बाजार न जाना पड़ेगा। बोलो मंजूर है ?

महावीर ने सजल आँखों से देखकर कहा—मालिक, आप ही का तो खाता हूँ। आपकी परजा हूँ। जब मरजी हो, पकड़ मँगवाइए। आपसे रुपये...

चैनसिंह ने बात काटकर कहा—नहीं, मैं तुमसे बेगार नहीं लेना चाहता। तुम मुझसे एक रुपया रोज ले जाया करो। घास लेकर घरवाजी को बाजार मत भेजा करो। तुम्हारी आबरू मेरी आबरू है। और भी रुपये पैसे का जब काम लगे, बेखटके चले आया करो। हाँ, देखो, मुलिया से इस बात की भूलकर भी चर्चा न करना। क्या फायदा !

कई दिनों के बाद संध्या समय मुलिया चैनसिंह से मिली। चैनसिंह असामियों से मालगुजारी वसूल करके घर की ओर लपका जा रहा था कि उसी जगह जहाँ उसने मुलिया की बाँह पकड़ी थी, मुलिया की आवाज कानों में आयी। उसने ठिठककर पीछे देखा, तो मुलिया दौड़ी आ रही थी। बोला—क्या है मूला ! क्यों दौड़ती हो, मैं तो खड़ा हूँ ?

मुलिया ने हाँफते हुए कहा—कई दिन से तुमसे मिलना चाहती थी। आज तुम्हें आते देखा, तो दौड़ी। अब मैं घास बेचने नहीं जाती।

चैनसिंह ने कहा—बहुत अच्छी बात है।

'क्या तुमने कभी मुझे घास बेचते देखा है ?

'हाँ, एक दिन देखा था। क्या महावीर ने तुझसे सब कह डाला ? मैंने तो मना कर दिया था।'

'वह मुझसे कोई बात नहीं छिपाता।'

दोनों एक क्षण चुप खड़े रहे। किसी को कोई बात न सूझती थी। एकाएक मुलिया ने मुस्कराकर कहा—यहाँ तुमने मेरी बाँह पकड़ी थी।

चैनसिंह ने लज्जित होकर कहा—उसको भूल जाओ मूला। मुझ पर जाने कौन भूत सवार था।

मुलिया गद्गद कण्ठ से बोली—उसे क्यों भूल जाऊँ। उसी बाँह गहे की लाज तो निभा रहे हो। गरीबी आदमी से जो चाहे करावे। तुमने मुझे बचा लिया। फिर दोनों चुप हो गये।

जरा देर के बाद मुलिया ने फिर कहा—तुमने समझा होगा, मैं हँसने-बोलने में मगन हो रही थी ?

चैनसिंह ने बलपूर्वक कहा—नहीं मुलिया, मैंने एक क्षण के लिए भी नहीं समझा।

मुलिया मुस्कराकर बोली—मुझे तुमसे यही आशा थी, और है।

पवन सिंचे हुए खेतों में विश्राम करने जा रहा था, सूर्य निशा की गोद में विश्राम करने जा रहा था, और उस मलिन प्रकाश में चैनसिंह मुलिया की विलीन होती हुई रेखा को खड़ा देख रहा था !

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी' दिसम्बर, 1929 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' में इसी शीर्षक से प्रकाशित एवं संकलित।]

धिक्कार-2

ईरान और यूनान में घोर संग्राम हो रहा था। ईरानी दिन-दिन बढ़ते जाते थे और यूनान के लिए संकट का सामना था। देश के सारे व्यवसाय बंद हो गये थे, हल की मुठिया पर हाथ रखनेवाले किसान तलवार की मुठिया पकड़ने के लिए मजबूर हो गये, डंडी तौलनेवाले भाले तौलते थे। सारा देश आत्मरक्षा के लिए तैयार हो गया था। फिर भी शत्रु के कदम दिन-दिन आगे ही बढ़ते जाते थे। जिस ईरान को यूनान कई बार कुचल चुका था, वही ईरान आज क्रोध के आवेग की भाँति सिर पर चढ़ा आता था। मर्द तो रणक्षेत्र में सिर कटा रहे थे और स्त्रियाँ दिन-दिन की निराशाजनक खबरें सुन कर सूखी जाती थीं। क्योंकर लाज की रक्षा होगी ? प्राण का भय न था, सम्पत्ति का भय न था, भय था मर्यादा का। विजेता गर्व से मतवाले हो कर यूनानी ललनाओं को घूरेंगे, उनके कोमल अंगों को स्पर्श करेंगे, उनको कैद कर ले जायेंगे ! उस विपत्ति की कल्पना ही से इन लोगों के रोयें खड़े हो जाते थे।

आखिर जब हालत बहुत नाजुक हो गयी तो कितने ही स्त्री-पुरुष मिल कर डेल्फ़ी मंदिर में गये और प्रश्न किया—देवी, हमारे ऊपर देवताओं की यह वक्र दृष्टि क्यों है ? हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ है ? क्या हमने नियमों का पालन नहीं किया, कुरबानियाँ नहीं कीं, व्रत नहीं रखे ? फिर देवताओं ने क्या हमारे सिरों से अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया ?

पुजारिन ने कहा—देवताओं की असीम कृपा भी देश को द्रोही के हाथ से नहीं बचा सकती। इस देश में अवश्य कोई-न-कोई द्रोही है। जब तक उसका वध न किया जायगा, देश के सिर से यह संकट न टलेगा।

'देवी, वह द्रोही कौन है ?'

'जिस घर से रात को गाने की ध्वनि आती हो, जिस घर से दिन को सुगंध की लपटें आती हों, जिस पुरुष की आँखों में मद की लाली झलकती हो, वही देश का द्रोही है।'

लोगों ने द्रोही का परिचय पाने के लिए और भी कितने ही प्रश्न किये; पर देवी ने कोई उत्तर न दिया।

2

यूनानियों ने द्रोही की तलाश करनी शुरू की। जिनके घर में से रात को गाने की आवाजें आती हैं। सारे शहर में संध्या होते स्यापा-सा छा जाता था। अगर कहीं आवाजें सुनायी देती थीं तो रोने की; हँसी और गाने की आवाज़ कहीं न सुनायी देती थी।

दिन को सुगंध की लपटें किस घर से आती हैं ? लोग जिधर जाते थे, उधर से दुर्गंध आती थी। गलियों में कूड़े के ढेर-के-ढेर पड़े रहते थे, किसे इतनी फुरसत थी कि घर की सफाई करता, घर में सुगंध जलाता; धोबियों का अभाव था अधिकांश लड़ने के लिए चले गये थे, कपड़े तक न धुलते थे; इत्र-फुलेल कौन मलता !

किसकी आँखों में मद की लाली झलकती है ? लाल आँखें दिखाई देती थीं; लेकिन यह मद की लाली न थी, यह आँसुओं की लाली थी। मदिरा की दूकानों पर खाक उड़ रही थी। इस जीवन और मृत्यु के संग्राम में विलास की किसे सूझती ! लोगों ने सारा शहर छान मारा लेकिन एक भी आँख ऐसी नजर न आयी जो मद से लाल हो।

कई दिन गुजर गये। शहर में पल-पल भर पर रणक्षेत्र से भयानक खबरें आती थीं और लोगों के प्राण सूखे जाते थे।

आधी रात का समय था। शहर में अंधकार छाया हुआ था, मानो श्मशान हो। किसी की सूरत न दिखाई देती थी। जिन नाट्यशालाओं में तिल रखने की जगह न मिलती थी, वहाँ सियार बोल रहे थे। जिन बाजारों में मनचले जवान अस्त्र-शस्त्र सजाये ऐंठते फिरते थे, वहाँ उल्लू बोल रहे थे। मंदिरों में न गाना होता था न बजाना। प्रासादों में अंधकार छाया हुआ था।

एक बूढ़ा यूनानी जिसका इकलौता लड़का लड़ाई के मैदान में था, घर से निकला और न-जाने किन विचारों की तरंग में देवी के मंदिर की ओर चला। रास्ते में कहीं प्रकाश न था, क़दम-क़दम पर ठोकरें खाता था; पर आगे बढ़ता चला जाता। उसने निश्चय कर लिया था कि या तो आज देवी से विजय का वरदान लूँगा या उनके चरणों पर अपने को भेंट कर दूँगा।

3

सहसा वह चौंक पड़ा। देवी का मंदिर आ गया था। और उसके पीछे की ओर किसी घर से मधुर संगीत की ध्वनि आ रही थी। उसको आश्चर्य हुआ। इस निर्जन स्थान में कौन इस वक्त रंगरेलियाँ मना रहा है। उसके पैरों में पर से लग गये, मंदिर के पिछवाड़े जा पहुँचा।

उसी घर से जिसमें मंदिर की पुजारिन रहती थी, गाने की अवाजें आती थीं ! वृद्ध विस्मित हो कर ख़िड़की के सामने खड़ा हो गया। चिराग तले अँधेरा ! देवी के मंदिर के पिछवाड़े यह अँधेर ?

बूढ़े ने द्वार से झाँका; एक सजे हुए कमरे में मोमबत्तियाँ झाड़ों में जल रही थीं, साफ-सुथरा फ़र्श बिछा हुआ था और एक आदमी मेज़ पर बैठा हुआ गा रहा था। मेज़ पर शराब की बोतल और प्यालियाँ रखी हुई थीं। दो गुलाम मेज़ के सामने हाथ में भोजन के थाल लिए खड़े थे, जिनमें से मनोहर सुगंध की लपटें आ रही थीं।

बूढ़े यूनानी ने चिल्ला कर कहा—यही देशद्रोही है, यही देशद्रोही है !

मंदिर की दीवारों ने दुहराया—द्रोही है !

बगीचे की तरफ से आवाज आयी—द्रोही है !

मंदिर की पुजारिन ने घर में से सिर निकाल कर कहा—हाँ, द्रोही है !

यह देशद्रोही उसी पुजारिन का बेटा पासोनियस था। देश में रक्षा के जो उपाय सोचे जाते, शत्रुओं का दमन करने के लिए जो निश्चय किये जाते, उनकी सूचना वह ईरानियों को दे दिया करता था। सेनाओं की प्रत्येक गति की खबर ईरानियों को मिल जाती थी और उन प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए वे पहले से तैयार हो जाते थे। यही कारण था कि यूनानियों को जान लड़ा देने पर भी विजय न होती थी। इसी कपट से कमाये हुये धन से वह भोग-विलास करता था। उस समय जब कि देश में घोर संकट पड़ा हुआ था, उसने अपने स्वदेश को अपनी वासनाओं के लिए बेच दिया था। अपने विलास के सिवा उसे और किसी बात की चिंता न थी, कोई मरे या जिये, देश रहे या जाय, उसकी बला से। केवल अपने कुटिल स्वार्थ के लिए देश की गरदन में गुलामी की बेड़ियाँ डलवाने पर तैयार था। पुजारिन अपने बेटे के दुराचरण से अनभिज्ञ थी। वह अपनी अँधेरी कोठरी से बहुत कम निकलती, वहीं बैठी जप-तप किया करती थी। परलोक-चिंतन में उसे इहलोक की खबर न थी, मनेन्द्रियों ने बाहर की चेतना को शून्य-सा कर दिया था। वह इस समय भी कोठरी के द्वार बंद किये, देवी से अपने देश के कल्याण के लिए वन्दना कर रही थी कि सहसा उसके कानों में आवाज आयी—यही द्रोही है, यही द्रोही है !

उसने तुरंत द्वार खोल कर बाहर की ओर झाँका, पासोनियस के कमरे से प्रकाश की रेखाएँ निकल रही थीं और उन्हीं रेखाओं पर संगीत की लहरें नाच रही थीं। उसके पैर-तले से जमीन-सी निकल गयी, कलेजा धक्-से हो गया। ईश्वर ! क्या मेरा बेटा देशद्रोही है ?

आप-ही-आप, किसी अंतःप्रेरणा से पराभूत हो कर वह चिल्ला उठी—हाँ, यहाँ देशद्रोही है !

4

यूनानी स्त्री-पुरुष झुंड-के-झुंड उमड़ पड़े और पासोनियस के द्वार पर खड़े हो कर चिल्लाने लगे—यही देशद्रोही है !

पासोनियस के कमरे की रोशनी ठंडी हो गयी, संगीत भी बंद था; लेकिन द्वार पर प्रतिक्षण नगरवासियों का समूह बढ़ता जाता था और रह-रह कर सहस्रों कंठों से ध्वनि निकलती थी—यही देशद्रोही है !

लोगों ने मशाले जलायीं और अपने लाठी-डंडे सँभाल कर मकान में घुस पड़े। कोई कहता था—सिर उतार लो। कोई कहता था—दे.. के चरणों पर बलिदान कर दो। कुछ लोग उसे कोठे से नीचे गिरा देने पर आग्रह कर रहे थे।

पासोनियस समझ गया कि अब मुसीबत की घड़ी सिर पर आ गयी। तुरंत जीने से उतर कर नीचे की ओर भागा। और कहीं शरण की आशा न देख कर देवी के मंदिर में जा घुसा।

अब क्या किया जाय ? देवी की शरण जानेवाले को अभय-दान मिल जाता था।

परम्परा से यही प्रथा थी ? मंदिर में किसी की हत्या करना महापाप था।

लेकिन देशद्रोही को इतने सस्ते कौन छोड़ता ? भाँति-भाँति के प्रस्ताव होने लगे—

'सुअर का हाथ पकड़ कर बाहर खींच लो।'

'ऐसे देशद्रोही का वध करने के लिए देवी हमें क्षमा कर देंगी।'

'देवी, आप उसे क्यों नहीं निगल जातीं ?'

'पत्थरों से मारो, पत्थरों से; आप निकल कर भागेगा।'

'निकलता क्यों नहीं रे कायर ! वहाँ क्या मुँह में कालिख लगा कर बैठा हुआ है ?

रात भर यही शोर मचा रहा और पासोनियस न निकला। आखिर यह निश्चय हुआ कि मंदिर की छत खोद कर फेंक दी जाय और पासोनियस दोपहर की तेज धूप और रात की कड़ाके की सरदी से आप ही आप अकड़ जाय। बस फिर क्या था। आन की आन में लोगों ने मंदिर की छत और कलस ढा दिये।

अभागा पासोनियस दिन-भर तेज धूप में खड़ा रहा। उसे जोर की प्यास लगी; लेकिन पानी कहाँ ? भूख लगी, पर खाना कहाँ ? सारी जमीन तवे की भाँति जलने लगी; लेकिन छाँह कहाँ ? इतना कष्ट उसे जीवन भर में न हुआ था। मछली की भाँति तड़पता था और चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को पुकारता था; मगर वहाँ कोई उसकी पुकार सुननेवाला न था। बार-बार कसमें खाता था कि अब फिर मुझसे ऐसा अपराध न होगा; लेकिन कोई उसके निकट न आता था। बार-बार चाहता था कि दीवार से टकरा कर प्राण दे दे; लेकिन यह आशा रोक देती थी कि शायद लोगों को मुझ पर दया आ जाय। वह पागलों की तरह जोर-जोर से कहने लगा—मुझे मार डालो, मार डालो, एक क्षण में प्राण ले लो, इस भाँति जला-जला कर न मारो। ओ हत्यारों तुमको जरा भी दया नहीं।

दिन बीता और रात—भयंकर रात—आयी। ऊपर तारागण चमक रहे थे मानो उसकी विपत्ति पर हँस रहे हों। ज्यों-ज्यों रात भीगती थी देवी विकराल रूप धारण करती जाती थी। कभी वह उसकी ओर मुँह खोल कर लपकती, कभी उसे जलती हुई आँखों से देखती। उधर क्षण-क्षण सरदी बढ़ती जाती थी, पासोनियस के हाथ-पाँव अकड़ने लगे, कलेजा काँपने लगा। घुटनों में सिर रख कर बैठ गया और अपनी किस्मत को रोने लगा; कुरते को खींच कर कभी पैरों को छिपाता, कभी हाथों को, यहाँ तक कि इस खींचातानी में कुरता भी फट गया। आधीरात जाते-जाते बर्फ गिरने लगी। दोपहर को उसने सोचा गरमी ही सबसे कष्टदायक है। इस ठंड के सामने उसे गरमी की तकलीफ भूल गयी।

आखिर शरीर में गरमी लाने के लिए एक हिकमत सूझी। वह मंदिर में इधर-उधर दौड़ने लगा। लेकिन विलासी जीव था, जरा देर में हाँफ कर गिर पड़ा।

5

प्रातःकाल लोगों ने किवाड़ खोले तो पासोनियस को भूमि पर पड़े देखा। मालूम होता था, उसका शरीर अकड़ गया है। बहुत चीखने-चिल्लाने पर उसने आँखें खोलीं; पर जगह से हिल न सका। कितनी दयनीय दशा थी, किंतु किसी को उस पर दया न आयी। यूनान में देशद्रोह सबसे बड़ा अपराध था और द्रोही के लिए कहीं क्षमा न थी, कहीं दया न थी।

एक—अभी मरा नहीं है ?

दूसरा—द्रोहियों को मौत नहीं आती !

तीसरा—पड़ा रहने दो, मर जायगा !

चौथा—मक्र किये हुए है ?

पाँचवाँ—अपने किये की सजा पा चुका, अब छोड़ देना चाहिए !

सहसा पासोनियस उठ बैठा और उदण्ड भाव से बोला—कौन कहता है कि इसे छोड़ देना चाहिए ! नहीं, मुझे मत छोड़ना, वरना पछताओगे ! मैं स्वार्थी हूँ; विषय-भोगी हूँ, मुझ पर भूल कर भी विश्वास न करना। आह ! मेरे कारण तुम लोगों को क्या-क्या झेलना पड़ा, इसे सोच कर मेरा जी चाहता है कि अपनी इंद्रियों को जला कर भस्म कर दूँ। मैं अगर सौ जन्म ले कर इस पाप का प्रायश्चित्त करूँ, तो भी मेरा उद्धार न होगा। तुम भूल कर भी मेरा विश्वास न करो। मुझे स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं। विलास के प्रेमी सत्य का पालन नहीं करते। मैं अब भी आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ, मुझे ऐसे-ऐसे गुप्त रहस्य मालूम हैं, जिन्हें जान कर आप ईरानियों का संहार कर सकते हैं; लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है और आपसे भी यह कहता हूँ कि मुझ पर विश्वास न कीजिए। आज रात को देवी की मैंने सच्चे दिल से वंदना की है और उन्होंने मुझे ऐसे यंत्र बताये हैं, जिनसे हम शत्रुओं को परास्त कर सकते हैं, ईरानियों के बढ़ते हुए दल को आज भी आन की आन में उड़ा सकते हैं। लेकिन मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है। मैं यहाँ से बाहर निकल कर इन बातों को भूल जाऊँगा। बहुत संशय है, कि फिर ईरानियों की गुप्त सहयता करने लगूँ, इसलिए मुझ पर विश्वास न कीजिए।

एक यूनानी—देखो-देखो क्या कहता है ?

दूसरा—सच्चा आदमी मालूम होता है।

तीसरा—अपने अपराधों को आप स्वीकार कर रहा है।

चौथा—इसे क्षमा कर देना चाहिए और यह सब बातें पूछ लेनी चाहिए।

पांचवाँ—देखो, यह नहीं कहता कि मुझे छोड़ दो। हमको बार-बार याद दिलाता जाता है कि मुझ पर विश्वास न करो !

छठा—रात-भर के कष्ट ने होश ठंडे कर दिये, अब आँखें खुला हैं।

पासोनियस—क्या तुम लोग मुझे छोड़ने की बातचीत कर रहे हो ? मैं फिर कहता हूँ, कि मैं विश्वास के योग्य नहीं हूँ। मैं द्रोही हूँ। मुझे ईरानियों के बहुत-से भेद मालूम हैं, एक बार उनकी सेना में पहुँच जाऊँ तो उनका मित्र बन कर सर्वनाश कर दूँ; पर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं है।

एक यूनानी—धोखेबाज इतनी सच्ची बात नहीं कह सकता !

दूसरा—पहले स्वार्थांध हो गया था; पर अब आँखें खुली हैं !

तीसरा—देशद्रोही से भी अपने मतलब की बातें मालूम कर लेने में कोई हानि नहीं है। अगर वह अपने वचन पूरे करे तो हमें इसे छोड़ देना चाहिए।

चौथा—देवी की प्रेरणा से इसकी कायापलट हुई है।

पाँचवाँ—पापियों में भी आत्मा का प्रकाश रहता है और कष्ट पा कर जाग्रत हो जाता है। यह समझना कि जिसने एक बार पाप किया, वह फिर कभी पुण्य कर ही नहीं सकता, मानव-चरित्र के एक प्रधान तत्व का अपवाद करना है।

छठा—हम इसको यहाँ से गाते-बजाते ले चलेंगे। जन-समूह को चकमा देना कितना आसान है। जनसत्तावाद का सबसे निर्बल अंग यही है। जनता तो नेक और बद की तमीज नहीं रखती। उस पर धूर्तों, रँगे-सियारों का जादू आसानी से चल जाता है। अभी एक दिन पहले जिस पासोनियस की गरदन पर तलवार चलायी जा रही थी, उसी को जुलूस के साथ मंदिर से निकालने की तैयारियाँ होने लगीं, क्योंकि वह धूर्त था कि जनता की कील क्योंकर घुमायी जा सकती है।

एक स्त्री—गाने-बजानेवालों को बुलाओ, पासोनियस शरीफ़ है।

दूसरी—हाँ-हाँ, पहले चल कर उससे क्षमा माँगो, हमने उसके साथ जरूरत से ज्यादा सख्ती की।

पासोनियस—आप लोगों ने पूछा होता तो मैं कल ही सारी बातें आपको बता देता, तब आपको मालूम होता कि मुझे मार डालना उचित है या जीता रखना।

कई स्त्री-पुरुष—हाय-हाय हमसे बड़ी भूल हुई। हमारे सच्चे पासोनियस !

सहसा एक वृद्धा स्त्री किसी तरफ से दौड़ी हुई आयी और मंदिर के सबसे ऊँचे जीने पर खड़ी हो कर बोली—तुम लोगों को क्या हो गया है ? यूनान के बेटे आज इतने ज्ञानशून्य हो गये हैं कि झूठे और सच्चे में विवेक नहीं कर सकते ? तुम पासोनियस पर विश्वास करते हो ? जिस पासोनियस ने सैकड़ों स्त्रियों और बालकों को अनाथ कर दिया, सैकड़ों घरों में कोई दिया जलाने वाला न छोड़ा, हमारे देवताओं का, हमारे पुरुषों का, घोर अपमान किया, उसकी दो-चार चिकनी-चुपड़ी बातों पर तुम इतने फूल उठे। याद रखो, अब की पासोनियस बाहर निकला तो फिर तुम्हारी कुशल नहीं। यूनान पर ईरान का राज्य होगा और यूनानी ललनाएँ ईरानियों की कुदृष्टि का शिकार बनेंगी। देवी की आज्ञा है कि पासोनियस फिर बाहर न निकलने पाये। अगर तुम्हें अपना देश प्यारा है, अपने पुरुषों का नाम प्यारा है, अपनी माताओं और बहनों की आबरू प्यारी है तो मंदिर के द्वार को चुन दो। जिससे देशद्रोही को फिर बाहर निकलने और तुम लोगों को बहकाने का मौका न मिले। यह देखो, पहला पत्थर मैं अपने हाथों से रखती हूँ।

लोगों ने विस्मित हो कर देखा—यह मंदिर की पुजारिन और पासोनियस की माता थी।

दम के दम में पत्थरों के ढेर लग गये और मंदिर का द्वार चुन दिया गया। पासोनियस भीतर दाँत पीसता रह गया।

वीर माता, तुम्हें धन्य है ! ऐसी ही माताओं से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देश-हित के सामने मातृ-स्नेह की धूल-बराबर परवाह नहीं करतीं ! उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', फरवरी, 1930 में प्रकाशित। मानसरोवर भाग-3 में संकलित।]

जुलूस

पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था। कुछ युवक, कुछ बूढ़े, कुछ बालक झंडियाँ और झंडे लिये बंदेमातरम् गाते हुए माल के सामने से निकले। दोनों तरफ दर्शकों की दीवारें खड़ी थीं, मानों उन्हें इस लक्ष्य से कोई सरोकार नहीं है, मानों यह कोई तमाशा है और उनका काम केवल खड़े-खड़े देखना है।

शंभूनाथ ने दूकान की पटरी पर खड़े होकर अपने पड़ोसी दीनदयाल से कहा—सब के सब काल के मुँह में जा रहे हैं। आगे सवारों का दल मार-मार भगा देगा।

दीनदयाल ने कहा—महात्मा जी भी सठिया गये हैं। जुलूस निकालने से स्वराज्य मिल जाता तो अब तक कब का मिल गया होता। और जुलूस में हैं कौन लोग, देखो—लौंडे, लफंगे, सिरफिरे। शहर का कोई बड़ा आदमी नहीं।

मैकू चट्टियों और स्लीपरों की माला गरदन में लटकाये खड़ा था। इन दोनों सेठों की बातें सुनकर हँसा।

शंभू ने पूछा—क्यों हँसे मैकू ? आज रंग चोखा मालूम होता है।

मैकू—हँसा इस बात पर जो तुमने कही कि कोई बड़ा आदमी जुलूस में नहीं है। बड़े आदमी क्यों जुलूस में आने लगे, उन्हें इस राज में कौन आराम नहीं है ? बँगलों और महलों में रहते हैं, मोटरों पर घूमते हैं, साहबों के साथ दावतें खाते हैं, कौन तकलीफ है ! मर तो हम लोग रहे हैं जिन्हें रोटियों का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिए गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहाँ आये पुलिस के कोड़े खाने के लिए ? तुमने भी भली कही ?

शंभू—तुम यह सब बातें क्या समझोगे मैकू, जिस काम में चार बड़े आदमी अगुआ होते हैं उसकी सरकार पर भी धाक बैठ जाती है। लौडों-लफंगों का गोल भला हाकिमों की निगाह में क्या जँचेगा ?

मैकू ने ऐसी दृष्टि से देखा, जो कह रही थी—इन बातों के समझने का ठीका कुछ तुम्हीं ने नहीं लिया है और बोला—बड़े आदमी को तो हमी लोग बनाते-बिगाड़ते हैं या कोई और ? कितने ही लोग जिन्हें कोई पूछता भी न था, हमारे ही बनाये बड़े आदमी बन गये और अब मोटरों पर निकलते हैं और हमें नीच समझते हैं। यह लोगों की तकदीर की खूबी है कि जिसकी जरा बढ़ती हुई और उसने हमसे आँखें फेरीं। हमारा बड़ा आदमी तो वही है, जो लँगोटी बाँधे नंगे पाँव घूमता है, जो हमारी दशा को सुधारने के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरता है। और हमें किसी बड़े आदमी की परवाह नहीं है। सच पूछो, तो इन बड़े आदमियों ने ही हमारी मिट्टी खराब कर रखी है। इन्हें सरकार ने कोई अच्छी-सी जगह दे दी, बस उसका दम भरने लगे।

दीनदयाल—नया दारोगा बड़ा जल्लाद है चौरास्ते पर पहुँचते ही हंटर लेकर पिल पड़ेगा। फिर देखना, सब कैसे दुम दबाकर भागते हैं। मजा आयेगा।

जुलूस स्वाधीनता के नशे में चूर चौरास्ते पर पहुँचा तो देखा, आगे सवारों और सिपाहियों का एक दस्ता रास्ता रोके खड़ा है।

सहसा दारोगा बीरबल सिंह घोड़ा बढ़ा कर जुलूस के सामने आ गये और बोले—तुम

लोगों को आगे जाने का हुक्म नहीं है।

जुलूस के बूढ़े नेता इब्राहिम अली ने आगे बढ़कर कहा—मैं आपको इत्मीनान दिलाता हूँ, किसी किस्म का दंगा-फसाद न होगा। हम दूकानें लूटने या मोटरें तोड़ने नहीं निकले हैं। हमारा मकसद इससे कहीं ऊँचा है।

बीरबल—मुझे यह हुक्म है कि जुलूस यहाँ से आगे न जाने पाये।

इब्राहिम—आप अपने अफ़सरों से जरा पूछ न लें।

बीरबल—मैं इसकी कोई जरूरत नहीं समझता।

इब्राहिम—तो हम लोग यहीं बैठते हैं। जब आप लोग चले जायँगे तो हम तो निकल जायँगे।

बीरबल—यहाँ खड़े होने का भी हुक्म नहीं है। तुमको वापस जाना पड़ेगा।

इब्राहिम ने गंभीर भाव से कहा—वापस तो हम न जायेंगे। आपको या किसी को भी, हमें रोकने का कोई हक् नहीं। आप अपने सवारों, संगीनों और बंदूकों के जोर से हमें रोकना चाहते हैं, रोक लीजिए, मगर आप हमें लौटा नहीं सकते। न जाने वह दिन कब आयेगा, जब हमारे भाई-बंद ऐसे हुक्मों की तामील करने से साफ़ इन्कार कर देंगे, जिनकी मंशा महज़ कौम को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखना है।

बीरबल ग्रेजुएट था। उसका बाप सुपरिंटेंडेंट पुलिस था। उसकी नस-नस में रोब भरा हुआ था। अफ़सरों की दृष्टि में उसका बड़ा सम्मान था। खासा गोरा चिट्टा, नीली आंखों और भूरे बालों वाला तेजस्वी पुरुष था। शायद जिस वक्त वह कोट पहन कर ऊपर से हैट लगा लेता तो वह भूल जाता था कि मैं भी यहाँ का रहनेवाला हूँ। शायद वह अपने को राज्य करनेवाली जाति का अंग समझने लगता था; मगर इब्राहिम के शब्दों में जो तिरस्कार भरा हुआ था, उसने जरा देर के लिये उसे लज्जित कर दिया। पर मुआमला नाजुक था। जुलूस को रास्ता दे देता है, तो जवाब तलब हो जायेगा; वहीं खड़ा रहने देता है, तो यह सब न जाने कब तक खड़े रहें। इस संकट में पड़ा हुआ था कि उसने डी. एस. पी. को घोड़े पर आते देखा। अब सोच-विचार का समय न था। यही मौका था कारगुज़ारी दिखाने का। उसने कमर से बेटन निकाल लिया और घोड़े को एड़ लगा कर जुलूस पर चढ़ाने लगा। उसे देखते ही और सवारों ने भी घोड़ों को जुलूस पर चढ़ाना शुरू कर दिया। इब्राहिम दारोगा के घोड़े के सामने खड़ा था। उसके सिर पर एक बेटन ऐसे जोर से पड़ा कि उसकी आँखें तिलमिला गयीं। खड़ा न रह सका। सिर पकड़ कर बैठ गया। उसी वक्त दारोगा जी के घोड़े ने दोनों पाँव उठाये और ज़मीन पर बैठा हुआ इब्राहिम उसके टापों के नीचे आ गया। जुलूस अभी तक शांत खड़ा था। इब्राहिम को गिरते देख कर कई आदमी उसे उठाने के लिए लपके; मगर कोई आगे न बढ़ सका। उधर सवारों के डंडे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे। लोग हाथों पर डंडों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे। हिंसा के भावों में प्रभावित न हो जाना उसके लिए प्रतिक्षण कठिन होता जाता था। जब आघात और अपमान ही सहना है, तो फिर हम भी इस दीवार को पार करने की क्यों न चेष्टा करें ? लोगों को खयाल आया शहर के लाखों आदमियों की निगाहें हमारी तरफ़ लगी हुई हैं। यहाँ से यह झंडा लेकर हम लौट जायँ, तो फिर किस मुँह से आजादी का नाम लेंगे; मगर प्राण-रक्षा के लिए भागने का किसी को ध्यान भी न आता था। यह पेट के भक्तों, किराये

के टट्टुओं का दल न था। यह स्वाधीनता के सच्चे स्वयंसेवकों का, आजादी के दीवानों का संगठित दल था—अपनी जिम्मेदारियों को खूब समझता था। कितने ही के सिरों से खून जारी था, कितने ही के हाथ जख्मी हो गये थे। एक हल्ले में यह लोग सवारों की सफ़ों को चीर सकते थे, मगर पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हुई थीं—सिद्धान्त की, धर्म की, आदर्श की।

दस-बारह मिनट तक यों ही डंडों की बौछार होती रही और लोग शांत खड़े रहे।

2

इस मार-धाड़ की खबर एक क्षण में बाजार में जा पहुँची। इब्राहिम घोड़े से कुचल गये, कई आदमी जख्मी हो गये, कई के हाथ टूट गये; मगर न वे लोग पीछे फिरते हैं और न पुलिस उन्हें आगे जाने देती है।

मैकू ने उत्तेजित होकर कहा—अब तो भाई, यहाँ नहीं रहा जाता। मैं भी चलता हूँ।

दीनदयाल ने कहा—हम भी चलते हैं भाई, देखी जायगी।

शम्भू एक मिनट तक मौन खड़ा रहा। एकाएक उसने भी दूकान बढ़ायी और बोला—एक दिन तो मरना ही है, जो कुछ होना है, हो। आखिर वे लोग सभी के लिए तो जान दे रहे हैं। देखते-देखते अधिकांश दूकानें बंद हो गयीं। वह लोग, जो दस मिनट पहले तमाशा देख रहे थे इधर-उधर से दौड़ पड़े और हजारों आदमियों का एक विराट दल घटनास्थल की ओर चला। यह उन्मत्त, हिंसामद से भरे हुए मनुष्यों का समूह था, जिसे सिद्धांत और आदर्श की परवाह न थी। जो मरने के लिए ही नहीं, मारने के लिए भी तैयार थे। कितनों ही के हाथों में लाठियाँ थीं, कितने ही जेबों में पत्थर भरे हुए थे। न कोई किसी से कुछ बोलता था, न पूछता था। बस, सब-के-सब मन में एक दृढ़ संकल्प किये लपके चले जा रहे थे, मानों कोई घटा उमड़ी चली आती हो।

इस दल को दूर से देखते ही सवारों में कुछ हलचल पड़ी। बीरबल सिंह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। डी. एस. पी. ने अपनी मोटर बढ़ायी। शांति और अहिंसा के व्रतधारियों पर डंडे बरसाना और बात थी, एक उन्मत्त दल से मुक़ाबला करना दूसरी बात। सवार और सिपाही पीछे खिसक गये।

इब्राहिम की पीठ पर घोड़े ने टाप रख दी। वह अचेत जमीन पर पड़े थे। इन आदमियों का शोरगुल सुन कर आप ही आप उनकी आँखें खुल गयीं। एक युवक को इशारे से बुलाकर कहा—क्यों कैलाश, क्या कुछ लोग शहर से आ रहे हैं ?

कैलाश ने उस बढ़ती हुई घटा की ओर देख कर कहा—जी हाँ, हजारों आदमी हैं।

इब्राहिम—तो अब खैरियत नहीं है। झंडा लौटा दो। हमें फौरन लौट चलना चाहिए, नहीं तूफान मच जायगा। हमें अपने भाइयों से लड़ाई नहीं करनी है। फौरन लौट चलो।

यह कहते हुए उन्होंने उठने की चेष्टा की, मगर उठ न सके।

इशारे की देर थी। संगठित सेना की भाँति लोग हुक्म पाते ही पीछे फिर गये। झंडियों के बाँसों, साफों और रूमालों से चटपट एक स्ट्रेचर तैयार हो गया। इब्राहिम को लोगों ने उस पर लिटा दिया और पीछे फिरे। मगर क्या वह परास्त हो गये थे ? अगर कुछ लोगों को उन्हें परास्त मानने में ही संतोष हो, तो हो, लेकिन वास्तव में उन्होंने एक युगांतकारी विजय प्राप्त की थी। वे जानते थे, हमारा संघर्ष अपने ही भाइयों से है, जिनके

हित परिस्थितियों के कारण हमारे हितों से भिन्न हैं। हमें उनसे वैर नहीं करना है। फिर, वह यह भी नहीं चाहते कि शहर में लूट और दंगे का बाजार गर्म हो जाय और हमारे धर्मयुद्ध का अंत लूटी हुई दूकानें, फूटे हुए सिर हों, उनकी विजय का सबसे उज्ज्वल चिह्न यह था कि उन्होंने जनता की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। वही लोग, जो पहले उन पर हँसते थे; उनका धैर्य और साहस देखकर उनकी सहायता के लिये निकल पड़े थे। मनोवृत्ति का यह परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। हमें किसी से लड़ाई करने की जरूरत नहीं, हमारा उद्देश्य केवल जनता की सहानुभूति प्राप्त करना है, उसकी मनोवृत्तियों को बदल देना है। जिस दिन हम इस लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे, उसी दिन स्वराज्य सूर्य उदय होगा।

3

तीन दिन गुजर गये थे। बीरबल सिंह अपने कमरे में बैठे चाय पी रहे थे। और उनकी पत्नी मिट्ठन बाई शिशु को गोद में लिये सामने खड़ी थीं।

बीरबल सिंह ने कहा—मैं क्या करता उस वक्त। पीछे डी. एस. पी. खड़ा था। अगर उन्हें रास्ता दे देता तो अपनी जान मुसीबत में फँसती।

मिट्ठन बाई ने सिर हिला कर कहा तुम कम से कम इतना तो कर ही सकते थे कि उन पर डंडे न चलाने देते। तुम्हारा काम आदमियों पर डंडे चलाना है ? तुम ज्यादा से ज्यादा उन्हें रोक सकते थे। कल को तुम्हें अपराधियों को बेंत लगाने का काम दिया जाय, तो शायद तुम्हें बड़ा आनंद आयेगा, क्यों। बीरबल सिंह ने खिसिया कर कहा—तुम तो बात नहीं समझती हो !

मिट्ठन बाई—मैं खूब समझती हूँ। डी. एस. पी. पीछे खड़ा था। तुमने सोचा होगा ऐसी कारगुजारी दिखाने का अवसर शायद फिर कभी मिले या न मिले। क्या तुम समझते हो, उस दल में कोई भला आदमी न था ? उसमें कितने आदमी ऐसे थे, जो तुम्हारे जैसों को नौकर रख सकते हैं। विद्या में तो शायद अधिकांश तुमसे बढ़े हुए होंगे। मगर तुम उन पर डंडे चला रहे थे और उन्हें घोड़े से कुचल रहे थे, वाह री जवाँमर्दी !

बीरबल सिंह ने बेहयाई की हँसी के साथ कहा—डी. एस. पी. ने मेरा नाम नोट कर लिया है। सच !

दारोगा जी ने समझा था कि यह सूचना दे कर वह मिट्ठन बाई को खुश कर देंगे। सज्जनता और भलमनसी आदि ऊपर की बातें हैं, दिल से नहीं, जबान से कही जाती हैं। स्वार्थ दिल की गहराइयों में बैठा होता है। वह गम्भीर विचार का विषय है।

मगर मिट्ठन बाई के मुख पर हर्ष की कोई रेखा न नजर आयी, ऊपर की बातें शायद गहराइयों तक पहुँच गयी थीं ! बोलीं—जरूर कर लिया होगा और शायद तुम्हें जल्दी तरक्की भी मिल जाय। मगर बेगुनाहों के खून से हाथ रंग कर तरक्की पायी, तो क्या पायी! यह तुम्हारी कारगुजारी का इनाम नहीं, तुम्हारे देशद्रोह की कीमत है। तुम्हारी कारगुजारी का इनाम तो तब मिलेगा, जब तुम किसी खूनी को खोज निकालोगे, किसी डूबते हुए आदमी को बचा लोगे।

एकाएक एक सिपाही ने बरामदे में खड़े हो कर कहा—हुजूर, यह लिफाफा लाया हूँ। बीरबल सिंह ने बाहर निकल कर लिफाफा ले लिया और भीतर की सरकारी चिट्ठी

निकाल कर पढ़ने लगे। पढ़ कर उसे मेज पर रख दिया।

मिट्ठन ने पूछा—क्या तरक्की का परवाना आ गया ?

बीरबल सिंह ने झेंप कर कहा—तुम तो बनाती हो ! आज फिर कोई जुलूस निकलनेवाला है। मुझे उसके साथ रहने का हुक्म हुआ है।

मिट्ठन—फिर तो तुम्हारी चाँदी है, तैयार हो जाओ। आज फिर वैसे ही शिकार मिलेंगे। खूब बढ़-बढ़कर हाथ दिखलाना ! डी. एस. पी. भी जरूर आयेंगे। अबकी तुम इंस्पेक्टर हो जाओगे। सच !

बीरबल सिंह ने माथा सिकोड़ कर कहा—कभी-कभी तुम बे सिर-पैर की बातें करने लगती हो। मान लो, मैं जाकर चुपचाप खड़ा रहूँ, तो क्या नतीजा होगा। मैं नालायक समझा जाऊँगा और मेरी जगह कोई दूसरा आदमी भेज दिया जायगा। कहीं शुबहा हो गया कि मुझे स्वराज्यवादियों से सहानुभूति है, तो कहीं का न रहूँगा। अगर बर्खास्त भी न हुआ तो लैन की हाजिरी तो हो ही जायगी। आदमी जिस दुनिया में रहता है, उसी का चलन देखकर काम करता है। मैं बुद्धिमान न सही; पर इतना जानता हूँ कि ये लोग देश और जाति का उद्धार करने के लिए ही कोशिश कर रहे हैं। यह भी जानता हूँ कि सरकार इस खयाल को कुचल डालना चाहती है। ऐसा गधा नहीं हूँ कि गुलामी की जिंदगी पर गर्व करूँ; लेकिन परिस्थिति से मजबूर हूँ।

बाजे की आवाज कानों में आयी। बीरबल सिंह ने बाहर जाकर पूछा। मालूम हुआ स्वराज्य वालों का जुलूस आ रहा है। चटपट वर्दी पहनी, साफा बाँधा और जेब में पिस्तौल रखकर बाहर आये। एक क्षण में घोड़ा तैयार हो गया। कांस्टेबल पहले ही से तैयार बैठे थे। सब लोग डबल मार्च करते हुए जुलूस की तरफ चले।

4

ये लोग डबल मार्च करते हुए कोई पंद्रह मिनट में जुलूस के सामने पहुँच गये। इन लोगों को देखते ही अगणित कंठों से 'वंदेमातरम्' की एक ध्वनि निकली, मानों मेघमंडल में गर्जन का शब्द हुआ हो, फिर सन्नाटा छा गया। उस जुलूस में और इस जुलूस में कितना अंतर था ! वह स्वराज्य के उत्सव का जुलूस था, यह एक शहीद के मातम का। तीन दिन के भीषण ज्वर और वेदना के बाद आज उस जीवन का अंत हो गया, जिसने कभी पद की लालसा नहीं की, कभी अधिकार के सामने सिर नहीं झुकाया। उन्होंने मरते समय वसीयत की थी कि मेरी लाश को गंगा में नहला कर दफन किया जाय और मेरे मजार पर स्वराज्य का झंडा खड़ा किया जाय। उनके मरने का समाचार फैलते ही सारे शहर पर मातम का पर्दा-सा पड़ गया। जो सुनता था, एक बार इस तरह चौंक पड़ता था, जैसे उसे गोली लग गयी हो और तुरंत उनके दर्शनों के लिए भागता था। सारे बाजार बंद हो गये, इक्कों और तांगों का कहीं पता न था जैसे शहर लुट गया हो। देखते-देखते सारा शहर उमड़ पड़ा। जिस वक्त जनाजा उठा, लाख-सवा लाख आदमी साथ थे। कोई आँख ऐसी न थी, जो आँसुओं से लाल न हो।

बीरबल सिंह अपने कांस्टेबलों और सवारों को पाँच-पाँच गज के फासले पर जुलूस के साथ चलने का हुक्म दे कर खुद पीछे चले गये। पिछली सफों में कोई पचास गज तक

महिलाएँ थीं। दारोगा ने उसकी तरफ ताका। पहली ही कतार में मिट्ठन बाई नजर आयीं। बीरबल को विश्वास न आया। फिर ध्यान से देखा, वही थी। मिट्ठन ने उनकी तरफ एक बार देखा और आँखें फेर लीं, पर उसकी एक चितवन में कुछ ऐसा धिक्कार, कुछ ऐसी लज्जा, कुछ ऐसी व्यथा, कुछ ऐसी घृणा भरी हुई थी कि बीरबल सिंह की देह में सिर से पाँव तक सनसनी-सी दौड़ गयी। वह अपनी दृष्टि में कभी इतने हल्के, इतने दुर्बल, इतने ज़लील न हुए थे।

सहसा एक युवती ने दारोगा जी की तरफ देख कर कहा–कोतवाल साहब कहीं हम लोगों पर डंडे न चला दीजिएगा। आपको देखकर भय हो रहा है !

दूसरी बोली–आप ही के कोई भाई तो थे, जिन्होंने उस माल के चौरस्ते पर इस पुरुष पर आघात किये थे।

मिट्ठन ने कहा–आपके कोई भाई न थे, आप खुद थे।

बीसियों ही मुँहों से आवाजें निकलीं–अच्छा, यह वही महाशय हैं ? महाशय आपको नमस्कार है। यह आप ही की कृपा का फल है कि आज हम भी आपके डंडे के दर्शन के लिए आ खड़ी हुई हैं !

बीरबल ने मिट्ठनबाई की ओर आँखों का भाला चलाया; पर मुँह से कुछ न बोले। एक तीसरी महिला ने फिर कहा–हम एक जलसा करके आपको जयमाल पहनायेंगे और आपका यशोगान करेंगे।

चौथी ने कहा–आप बिलकुल अँगरेज मालूम होते हैं, जभी इतने गोरे हैं !

एक बुढ़िया ने आँखें चढ़ा कर कहा–मेरी कोख में ऐसा बालक जन्मा होता, तो उसकी गर्दन मरोड़ देती !

एक युवती ने उसका तिरस्कार करके कहा–आप भी खूब कहती हैं, माता जी, कुत्ते तक तो नमक का हक अदा करते हैं, यह तो आदमी हैं !

बुढ़िया ने झल्ला कर कहा–पेट के गुलाम, हाय पेट, हाय पेट !

इस पर कई स्त्रियों ने बुढ़िया को आड़े हाथों ले लिया और वह बेचारी लज्जित हो कर बोली–अरे, मैं कुछ कहती थोड़े ही हूँ। मगर ऐसा आदमी भी क्या, जो स्वार्थ के पीछे अंधा हो जाय।

बीरबल सिंह अब और न सुन सके। घोड़ा बढ़ा कर जुलूस से कई गज पीछे चले गये। मर्द लज्जित करता है, तो हमें क्रोध आता है; स्त्रियाँ लज्जित करती हैं, तो ग्लानि उत्पन्न होती है। बीरबल सिंह की इस वक्त इतनी हिम्मत न थी कि फिर उन महिलाओं के सामने जाते। अपने अफ़सरों पर क्रोध आया। मुझी को बार-बार क्यों इन कामों पर तैनात किया जाता है ? और लोग भी तो हैं, उन्हें क्यों नहीं लाया जाता ? क्या मैं ही सब से गया-बीता हूँ। क्या मैं ही सबसे भावशून्य हूँ।

मिट्ठी इस वक्त मुझे दिल में कितना कायर और नीच समझ रही होगी ? शायद इस वक्त मुझे कोई मार डाले, तो वह जबान भी न खोलेगी। शायद मन में प्रसन्न होगी कि अच्छा हुआ। अभी कोई जा कर साहब से कह दे कि बीरबल सिंह की स्त्री जुलूस में निकली थी, तो कहीं का न रहूँ ! मिट्ठी जानती है, समझती, फिर भी निकल खड़ी हुई। मुझसे पूछा तक नहीं। कोई फिक्र नहीं है न, जभी ये बातें सूझती हैं, यहाँ सभी बेफिक्र हैं,

कालेजों और स्कूलों के लड़के, मजदूर पेशेवर इन्हें क्या चिंता ? मरन तो हम लोगों की है, जिनके बाल-बच्चे हैं और कुल-मर्यादा का ध्यान है। सब की सब मेरी तरफ कैसा घूर रही थीं, मानों खा जायँगी।

जुलूस शहर की मुख्य सड़कों से गुजरता हुआ चला जा रहा था। दोनों ओर छतों पर, छज्जों पर, जंगलों पर, वृक्षों पर, दर्शकों की दीवारें-सी खड़ी थीं। बीरबल सिंह को आज उनके चेहरों पर एक नयी स्फूर्ति, एक नया उत्साह, एक नया गर्व झलकता हुआ मालूम होता था। स्फूर्ति थी वृक्षों के चेहरे पर, उत्साह युवकों के और गर्व रमणियों के। यह स्वराज्य के पथ पर चलने का उल्लास था। अब उनकी यात्रा का लक्ष्य अज्ञात न था, पथभ्रष्टों की भाँति इधर-उधर भटकना न था, दलितों की भाँति सिर झुका कर रोना न था। स्वाधीनता का सुनहला शिखर सुदूर आकाश में चमक रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि लोगों को बीच के नालों और जंगलों की परवाह नहीं है। सब उस सुनहले लक्ष्य पर पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

ग्यारह बजते-बजते जुलूस नदी के किनारे जा पहुँचा, जनाज़ा उतारा गया और लोग शव को गंगा-स्नान कराने के लिए चले। उसके शीतल, शांत, पीले मस्तक पर लाठी की चोट साफ़ नज़र आ रही थी। रक्त जम कर काला हो गया था। सिर के बड़े-बड़े बाल खून जम जाने से किसी चित्रकार की तूलिका की भाँति चिमट गये थे। कई हजार आदमी इस शहीद के अंतिम दर्शनों के लिए मंडल बाँध कर खड़े हो गये। बीरबल सिंह पीछे घोड़े पर सवार खड़े थे। लाठी की चोट उन्हें भी नजर आयी। उनकी आत्मा ने जोर से धिक्कारा। वह शव की ओर न ताक सके। मुँह फेर लिया। जिस मनुष्य के दर्शनों के लिए, जिनके चरणों की रज मस्तक पर लगाने के लिए लाखों आदमी विकल हो रहे हैं उसका मैंने इतना अपमान किया। उनकी आत्मा इस समय स्वीकार कर रही थी कि उस निर्दय प्रहार में कर्त्तव्य के भाव का लेश भी न था—केवल स्वार्थ था, कारगुजारी दिखाने की हवस और अफसरों को खुश करने की लिप्सा थी। हजारों आँखें क्रोध से भरी हुई उनकी ओर देख रही थीं; पर वह सामने ताकने का साहस न कर सकते थे।

एक कांस्टेबल ने आकर प्रशंसा की—हुजूर का हाथ गहरा पड़ा था। अभी तक खोपड़ी खुली हुई है। सबकी आँखें खुल गयीं।

बीरबल ने उपेक्षा की—मैं इसे अपनी जवाँमर्दी नहीं, अपना कमीनापन समझता हूँ।

कांस्टेबल ने फिर खुशामद की—बड़ा सरकश आदमी था हुजूर !

बीरबल ने तीव्र भाव से कहा—चुप रहो ! जानते भी हो, सरकश किसे कहते हैं ? सरकश वे कहलाते हैं, जो डाके मारते हैं, चोरी करते हैं, खून करते हैं। उन्हें सरकश नहीं कहते जो देश की भलाई के लिए अपनी जान हथेली पर लिये फिरते हों। हमारी बदनसीबी है कि जिनकी मदद करनी चाहिए उनका विरोध कर रहे हैं। यह घमंड करने और खुश होने की बात नहीं है, शर्म करने और रोने की बात है।

स्नान समाप्त हुआ। जुलूस यहाँ से फिर रवाना हुआ।

5

शव को जब खाक के नीचे सुला कर लोग लौटने लगे तो दो बज रहे थे। मिट्ठन बाई स्त्रियों

के साथ-साथ कुछ दूर तक तो आयी, पर क्वीन्सपार्क में आ कर ठिठक गयी। घर जाने की इच्छा न हुई। वह जीर्ण, आहत, रक्तरंजित शव, मानों उसके अंतस्तल में बैठा उसे धिक्कार रहा था। पति से उसका मन इतना विरक्त हो गया था कि अब उसे धिक्कारने की भी उसको इच्छा न थी। ऐसे स्वार्थी मनुष्य पर भय के सिवा और किसी चीज का असर हो सकता है, इसका उसे विश्वास ही न था।

वह बड़ी देर तक पार्क में घास पर बैठी सोचती रही, पर अपने कर्त्तव्य का कुछ निश्चय न कर सकी। मैके जा सकती थी, किन्तु वहाँ से महीने दो महीने में फिर इसी घर आना पड़ेगा। नहीं मैं किसी की आश्रित न बनूँगी। क्या मैं अपने गुजर-बसर को भी नहीं कमा सकती ? उसने स्वयं भाँति-भाँति की कठिनाइयों की कल्पना की; पर आज उसकी आत्मा में न जाने इतना बल कहाँ से आ गया। इन कल्पनाओं का ध्यान में लाना ही उसे अपनी कमजोरी मालूम हुई।

सहसा उसे इब्राहिम अली की वृद्धा विधवा का खयाल आया। उसने सुना था, उनके लड़के-बाले नहीं हैं। बेचारी बैठी रो रही होंगी। कोई तसल्ली देने वाला भी पास न होगा। वह उनके मकान की ओर चली। पता उसने पहले ही अपने साथ की औरतों से पूछ लिया था। वह दिल में सोचती जाती थी—मैं उनसे कैसे मिलूँगी, उनसे क्या कहूँगी, उन्हें किन शब्दों में समझाऊँगी। इन्हीं विचारों में डूबी हुई वह इब्राहिम अली के घर पर पहुँच गयी। मकान एक गली में था, साफ-सुथरा; लेकिन द्वार पर हसरत बरस रही थी। उसने धड़कते हुए हृदय से अंदर कदम रखा। सामने बरामदे में एक खाट पर वह वृद्धा बैठी हुई थी, जिसके पति ने आज स्वाधीनता की वेदी पर अपना बलिदान दिया था। उसके सामने सादे कपड़े पहने एक युवक खड़ा, आँखों में आँसू भरे वृद्धा से बातें कर रहा था। मिट्ठन उस युवक को देख कर चौंक पड़ी—वह बीरबल सिंह थे।

उसने क्रोधमय आश्चर्य से पूछा—तुम यहाँ कैसे आये ?

बीरबल सिंह ने कहा—उसी तरह जैसे तुम आयीं। अपने अपराध क्षमा कराने आया हूँ !

मिट्ठन के गोरे मुखड़े पर आज गर्व, उल्लास और प्रेम की जो उज्ज्वल विभूति नजर आयी, वह अकथनीय थी ! ऐसा जान पड़ा, मानों उसके जन्म-जन्मांतर के क्लेश मिट गये हैं, वह चिंता और माया के बंधनों से मुक्त हो गयी है।

[हिन्दी कहानी। मासिक पत्रिका 'हंस', मार्च, 1930 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

सुभागी

और लोगों के यहाँ चाहे जो होता हो, तुलसी महतो अपनी लड़की सुभागी को लड़के रामू से जौ-भर भी कम प्यार न करते थे। रामू जवान होकर भी काठ का उल्लू था। सुभागी ग्यारह साल की बालिका होकर भी घर के काम में इतनी चतुर, और खेती-बारी के काम में इतनी

निपुण थी कि उसकी माँ लक्ष्मी दिल में डरती रहती कि कहीं लड़की पर देवताओं की आँख न पड़ जाय। अच्छे बालकों से भगवान् को भी तो प्रेम है। कोई सुभागी का बखान न करे, इसलिए वह अनायास ही उसे डाँटती रहती थी। बखान से लड़के बिगड़ जाते हैं, यह भय तो न था, भय था—नजर का ! वही सुभागी आज ग्यारह साल की उम्र में विधवा हो गयी।

घर में कुहराम मचा हुआ था। लक्ष्मी पछाड़ें खाती थी। तुलसी सिर पीटते थे। उन्हें रोते देखकर सुभागी भी रोती थी। बार-बार माँ से पूछती—क्यों रोती हो अम्माँ, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊँगी, तुम क्यों रोती हो ? उसकी भोली बातें सुनकर माता का दिल और भी फटा जाता था। वह सोचती थी—ईश्वर तुम्हारी यही लीला है ! जो खेल खेलते हो, वह दूसरों को दुःख देकर। ऐसा तो पागल करते हैं। आदमी पागलपन करे तो उसे पागलखाने भेजते हैं; मगर तुम जो पागलपन करते हो, उसका कोई दंड नहीं। ऐसा खेल किस काम का कि दूसरे रोयें और तुम हँसो। तुम्हें तो लोग दयालु कहते हैं। यही तुम्हारी दया है !

और सुभागी क्या सोच रही थी ? उसके पास कोठरी भर रुपये होते, तो वह उन्हें छिपाकर रख देती। फिर एक दिन चुपके से बाजार चली जाती और अम्माँ के लिए अच्छे-अच्छे कपड़े लाती, दादा जब बाकी माँगने आते, तो चट रुपये निकालकर दे देती, अम्माँ-दादा कितने खुश होते।

2

जब सुभागी जवान हुई तो लोग तुलसी महतो पर दबाव डालने लगे कि लड़की का घर कहीं कर दो। जवान लडकी का यों फिरना ठीक नहीं। जब हमारी बिरादरी में इसकी कोई निन्दा नहीं है, तो क्यों सोच-विचार करते हो ?

तुलसी ने कहा—भाई मैं तो तैयार हूँ; लेकिन जब सुभागी भी माने। वह किसी तरह राजी नहीं होती।

हरिहर ने सुभागी को समझाकर कहा—बेटी, हम तेरे ही भले को कहते हैं। माँ-बाप अब बूढ़े हुए, उनका क्या भरोसा। तुम इस तरह कब तक बैठी रहोगी ?

सुभागी ने सिर झुकाकर कहा—चाचा, मैं तुम्हारी बात समझ रही हूँ; लेकिन मेरा मन घर करने को नहीं कहता। मुझे आराम की चिंता नहीं है। मैं सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। और जो काम तुम कहो, वह सिर-आँखों के बल करूँगी; मगर घर बसाने को मुझसे न कहो। जब मेरा चाल-कुचाल देखना तो मेरा सिर काट लेना। अगर मैं सच्चे बाप की बेटी हूँगी, तो बात की भी पक्की हूँगी। फिर लज्जा रखनेवाले तो भगवान् हैं, मेरी क्या हस्ती है कि अभी कुछ कहूँ।

उजड्ड रामू बोला—तुम अगर सोचती हो कि भैया कमावेंगे और मैं बैठी मौज करूँगी, तो इस भरोसे न रहा। यहाँ किसी ने जनम भर का ठीका नहीं लिया है।

रामू की दुल्हन रामू से भी दो अंगुल ऊँची थी। मटककर बोली—हमने किसी का करज थोड़े ही खाया कि जनम भर बैठे भरा करें। यहाँ तो खाने को भी महीन चाहिए, पहनने को भी महीन चाहिए, यह हमारे बूते की बात नहीं। सुभागी ने गर्व से भरे हुए स्वर में कहा—भाभी, मैंने तुम्हारा आसरा कभी नहीं किया और भगवान् ने चाहा तो कभी करूँगी

भी नहीं। तुम अपनी देखो, मेरी चिंता न करो।

रामू की दुल्हन को जब मालूम हो गया कि सुभागी घर न करेगी, तो और भी उसके सिर हो गयी। हमेशा एक-न-एक खुचड़ लगाये रहती। उसे रुलाने में जैसे उसको मजा आता था। वह बेचारी पहर रात से उठकर कूटने-पीसने में लग जाती, चौका-बरतन करती, गोबर पाथती। फिर खेत में काम करने चली जाती। दोपहर को आ कर जल्दी-जल्दी खाना पका कर सबको खिलाती। रात को कभी माँ के सिर में तेल डालती, कभी उसकी देह दबाती। तुलसी चिलम के भक्त थे। उन्हें बार-बार चिलम पिलाती। जहाँ तक अपना बस चलता, माँ-बाप को कोई काम न करने देती। हाँ, भाई को न रोकती। सोचती, यह तो जवान आदमी हैं, यह काम न करेंगे तो गृहस्थी कैसे चलेगी।

मगर रामू को यह बुरा लगता। अम्मा और दादा को तिनका तक नहीं उठाने देती और मुझे पीसना चाहती है। यहाँ तक कि एक दिन वह जामे से बाहर हो गया। सुभागी से बोला—अगर उन लोगों का बड़ा मोह है, तो क्यों नहीं अलग लेकर रहती हो। तब सेवा करो तो मालूम हो कि सेवा कड़वी लगती है कि मीठी। दूसरों के बल पर वाहवाही लेना आसान है। बहादुर वह है, जो अपने बल पर काम करे।

सुभागी ने तो कुछ जवाब न दिया। बात बढ़ जाने का भय था। मगर उसके माँ-बाप बैठे सुन रहे थे। महतो से न रहा गया। बोले—क्या है रामू, उस गरीबिन से क्यों लड़ते हो?

रामू पास आकर बोला—तुम क्यों बीच में कूद पड़े, मैं तो उसको कहता था।

तुलसी—जब तक मैं जीता हूँ, तुम उसे कुछ नहीं कह सकते। मेरे पीछे जो चाहे करना। बेचारी का घर में रहना मुश्किल कर दिया।

रामू—आपको बेटी बहुत प्यारी है, तो उसे गले बाँध कर रखिए। मुझसे तो नहीं सहा जाता।

तुलसी—अच्छी बात है। अगर तुम्हारी यह मरजी है, तो यही होगा मैं कल गाँव के आदमियों को बुलाकर बँटवारा कर दूँगा। तुम चाहे छूट जाव, सुभागी नहीं छूट सकती।

रात को तुलसी लेटे तो वह पुरानी बात याद आयी, जब रामू के जन्मोत्सव में उन्होंने रुपये कर्ज लेकर जलसा किया था, और सुभागी पैदा हुई, तो घर में रुपये रहते हुए भी उन्होंने एक कौड़ी न खर्च की। पुत्र को रत्न समझा था, पुत्री को पूर्व-जन्म के पापों का दण्ड। वह रत्न कितना कठोर निकला और यह दण्ड कितना मंगलमय।

3

दूसरे दिन महतो ने गाँव के आदमियों को जमा करके कहा—पंचो, अब रामू का और मेरा एक में निबाह नहीं होता। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग इंसाफ से जो कुछ मुझे दे दो, वह लेकर अलग हो जाऊँ। रात-दिन की किच-किच अच्छी नहीं।

गाँव के मुख्तार बाबू सजनसिंह बड़े सज्जन पुरुष थे। उन्होंने रामू को बुलाकर पूछा—क्यों जी, तुम अपने बाप से अलग रहना चाहते हो ? तुम्हें शर्म नहीं आती कि औरत के कहने से माँ-बाप को अलग किये देते हो ? राम ! राम !

रामू ने ढिठाई के साथ कहा—जब एक में गुजर न हो, तो अलग हो जाना ही अच्छा है।

सजनसिंह—तुमको एक में क्या कष्ट होता है ?

रामू—एक बात हो तो बताऊँ।

सजनसिंह—कुछ तो बतलाओ।

रामू—साहब, एक में मेरा इनके साथ निबाह न होगा। बस मैं और कुछ नहीं जानता।

यह कहता हुआ रामू वहाँ से चलता बना।

तुलसी—देख लिया आप लोगों ने इसका मिजाज ! आप चाहे चार हिस्सों में तीन हिस्से उसे दे दें, पर अब मैं इस दुष्ट के साथ न रहूँगा। भगवान् ने बेटी को दुःख दे दिया, नहीं मुझे खेती-बारी लेकर क्या करना था। जहाँ रहता वहीं कमाता खाता ! भगवान् ऐसा बेटा सातवें बैरी को भी न दें। 'लड़के से लड़की भली, जो कुलवंती होय।'

सहसा सुभागी आकर बोली—दादा, यह सब बाँट-बखरा मेरे ही कारन तो हो रहा है, मुझे क्यों नहीं अलग कर देते। मैं मेहनत मजूरी करके अपना पेट पाल लूँगी। अपने से जो कुछ बन पड़ेगा, तुम्हारी सेवा करती रहूँगी; पर रहूँगी अलग। यों घर का बारा-बाँट होते मुझसे नहीं देखा जाता। मैं अपने माथे यह कलंक नहीं लेना चाहती।

तुलसी ने कहा—बेटी, हम तुझे न छोड़ेंगे चाहे संसार छूट जाय ! रामू का मैं मुँह नहीं देखना चाहता, उसके साथ रहना तो दूर रहा।

रामू की दुल्हन बोली—तुम किसी का मुँह नहीं देखना चाहते, तो हम भी तुम्हारी पूजा करने को व्याकुल नहीं हैं।

महतो दाँत पीसते हुए उठे कि बहू को मारें, मगर लोगों ने पकड़ लिया।

4

बँटवारा होते ही महतो और लक्ष्मी को मानों पेंशन मिल गयी। पहले तो दोनों सारे दिन, सुभागी के मना करने पर भी कुछ-न-कुछ करते ही रहते थे; पर अब उन्हें पूरा विश्राम था। पहले दोनों दूध-घी को तरसते थे। सुभागी ने कुछ रुपये बचाकर एक भैंस ले ली। बूढ़े आदमियों की जान तो उनका भोजन है। अच्छा भोजन न मिले तो वे किस आधार पर रहें। चौधरी ने बहुत विरोध किया। कहने लगे, घर का काम यों ही क्या कम है कि तू यह नया झंझट पाल रही है। सुभागी उन्हें बहलाने के लिए कहती—दादा, दूध के बिना मुझे खाना नहीं अच्छा लगता।

लक्ष्मी ने हँसकर कहा—बेटी, तू झूठ कब से बोलने लगी। कभी दूध हाथ से तो छूती नहीं, खाने की कौन कहे। सारा दूध हम लोगों के पेट में ठूँस देती है।

गाँव में जहाँ देखो सबके मुँह से सुभागी की तारीफ। लड़की नहीं देवी है। दो मरदों का काम भी करती है, उस पर माँ-बाप की सेवा भी किये जाती है। सजनसिंह तो कहते, यह उस जन्म की देवी है।

मगर शायद महतो को यह सुख बहुत दिन तक भोगना न लिखा था।

सात-आठ दिन से महतो को जोर का ज्वर चढ़ा हुआ था। देह पर कपड़े का तार भी नहीं रहने देते। लक्ष्मी पास बैठी रो रही थी। सुभागी पानी लिए खड़ी है। अभी एक क्षण पहले महतो ने पानी माँगा था; पर जब तक वह पानी लावे, उनका जी डूब गया और हाथ-पाँव ठंडे हो गये। सुभागी उनकी यह दशा देखते ही रामू के घर गयी और बोली—भैया,

चलो, देखो आज दादा न जाने कैसे हुए जाते हैं। सात दिन से ज्वर नहीं उतरा।

रामू ने चारपाई पर लेटे-लेटे कहा—तो क्या मैं डाक्टर-हकीम हूँ कि देखने चलूँ ? जब तक अच्छे थे, तब तक तो तुम उनके गले का हार बनी हुई थीं। अब जब मरने लगे तो मुझे बुलाने आयी हो !

उसी वक्त उसकी दुल्हन अन्दर से निकल आयी और सुभागी से पूछा—दादा को क्या हुआ है दीदी ?

सुभागी के पहले रामू बोल उठा—हुआ क्या है, अभी कोई मरे थोड़े ही जाते हैं।

सुभागी ने फिर उससे कुछ न कहा, सीधे सजनसिंह के पास गयी। उसके जाने के बाद रामू हँसकर स्त्री से बोला—त्रियाचरित्र इसी को कहते हैं।

स्त्री—इसमें त्रियाचरित्र की कौन बात है ? चले क्यों नहीं जाते ?

रामू—मैं नहीं जाने का। जैसे उसे लेकर अलग हुए थे, वैसे उसे लेकर रहें। मर भी जायँ तो न जाऊँ।

स्त्री—(हँसकर) मर जायँगे तो आग देने तो जाओगे, तब कहाँ भागोगे ?

रामू—कभी नहीं ? सब कुछ उनकी प्यारी सुभागी कर लेगी।

स्त्री—तुम्हारे रहते वह क्यों करने लगी !

रामू—जैसे मेरे रहते उसे लेकर अलग हुए और कैसे !

स्त्री—नहीं जी, यह अच्छी बात नहीं है। चलो देख आवें। कुछ भी हो, बाप ही तो हैं। फिर गाँव में कौन मुँह दिखाओगे ?

रामू—चुप रहो, मुझे उपदेश मत दो।

उधर बाबू साहब ने ज्योंही महतो की हालत सुनी, तुरन्त सुभागी के साथ भागे चले आये। यहाँ पहुँचे तो महतो की दशा और खराब हो चुकी थी। नाड़ी देखी तो बहुत धीमी थी। समझ गये कि जिन्दगी के दिन पूरे हो गये। मौत का आतंक छाया हुआ था। सजल नेत्र होकर बोले—महतो भाई, कैसा जी है ?

महतो जैसे नींद से जागकर बोले—बहुत अच्छा है भैया ! अब तो चलने की बेला है। सुभागी के पिता अब तुम्हीं हो। उसे तुम्हीं को सौंपे जाता हूँ।

सजनसिंह ने रोते हुए कहा—भैया महतो, घबड़ाओ मत, भगवान् ने चाहा तो तुम अच्छे हो जाओगे। सुभागी को तो मैंने हमेशा अपने बेटी समझा है और जब तक जिऊँगा ऐसा ही समझता रहूँगा। तुम निश्चिंत रहो। मेरे रहते सुभागी या लक्ष्मी को कोई तिरछी आँख से न देख सकेगा। और कुछ इच्छा हो तो वह भी कह दो।

महतो ने विनीत नेत्रों से देखकर कहा—और कुछ नहीं कहूँगा भैया। भगवान् तुम्हें सदा सुखी रखे।

सजनसिंह—रामू को बुलाकर लाता हूँ। उससे जो भूल-चूक हो क्षमा कर दो।

महतो—नहीं भैया। उस पापी हत्यारे का मुँह मैं नहीं देखना चाहता।

इसके बाद गोदान की तैयारी होने लगी।

5

रामू को गाँव भर ने समझाया; पर वह अन्त्येष्टि करने पर राजी न हुआ। कहा, जिस पिता

ने मरते समय मेरा मुँह देखना स्वीकार न किया, वह मेरा न पिता है, न मैं उसका पुत्र हूँ।

लक्ष्मी ने दाह-क्रिया की। इन थोड़े से दिनों में सुभागी ने न जाने कैसे रुपये जमा कर लिए थे कि जब तेरही का सामान आने लगा तो गाँव वालों की आँखें खुल गयीं। बरतन, कपड़े, घी, शक्कर, सभी समान इफ़रात से जमा हो गये। रामू देख-देख जलता था। और सुभागी उसे जलाने के लिए सबको यह सामान दिखाती थी।

लक्ष्मी ने कहा--बेटी, घर देखकर खर्च करो। अब क़ोई कमानेवाला नहीं बैठा है, आप ही कुआँ खोदना और पानी पीना है।

सुभागी बोली—बाबूजी का काम तो धूम-धाम से ही होगा अम्माँ, चाहे घर रहे या जाय। बाबूजी फिर थोड़े ही आवेंगे। मैं भैया को दिखा देना चाहती हूँ कि अबला क्या कर सकती है। वह समझते होंगे इन दोनों के किये कुछ न होगा। उनका यह घमंड तोड़ दूँगी।

लक्ष्मी चुप हो रही। तेरही के दिन आठ गाँव के ब्राह्मणों का भोज हुआ। चारों तरफ वाह-वाही मच गयी।

पिछले पहर का समय था; लोग भोजन करके चले गये थे। लक्ष्मी थक कर सो गयी थी। केवल सुभागी बची हुई चीजें उठा-उठाकर रख रही थी कि ठाकुर सजनसिंह ने आकर कहा—अब तुम भी आराम करो बेटी ! सबेरे यह सब काम कर लेना।

सुभागी ने कहा—अभी थकी नहीं हूँ दादा। आपने जोड़ लिया कुल कितने रुपये उठे?

सजनसिंह—वह पूछकर क्या करोगी बेटी ?

'कुछ नहीं योंही पूछती थी।'

'कोई तीन सौ रुपये उठे होंगे।'

सुभागी ने सकुचाते हुए कहा—'मैं इन रुपयों की देनदार हूँ।'

'तुमसे तो मैं माँगता नहीं। महतो मेरे मित्र और भाई थे। उनके साथ कुछ मेरा भी तो धर्म है।'

'आपकी यही दया क्या कम है कि मेरे ऊपर इतना विश्वास किया, मुझे कौन तीन सौ रुपये देता ?'

सजनसिंह सोचने लगे। इस अबला की धर्म-बुद्धि का कहीं वारपार भी है या नहीं।

6

लक्ष्मी उन स्त्रियों में थी जिनके लिए पति-वियोग जीवन-स्रोत का बन्द हो जाना है। पचास वर्ष के चिर-सहवास के बाद अब यह सकांत जीवन उसके लिए पहाड़ हो गया। उसे अब ज्ञात हुआ कि मेरी बुद्धि, मेरा बल, मेरी सुमति मानों सबसे मैं वंचित हो गयी।

उसने कितनी बार ईश्वर से विनती की थी, मुझे स्वामी के सामने उठा लेना; मगर उसने यह विनती स्वीकार न की। मौत पर अपना काबू नहीं, तो क्या जीवन पर भी काबू नहीं है ?

वह लक्ष्मी जो गाँव में अपनी बुद्धि के लिए मशहूर थी, जो दूसरे को सीख दिया करती थी, अब बौरही हो गयी है। सीधी-सी बात करते नहीं बनती।

लक्ष्मी का दाना-पानी उसी दिन से छूट गया। सुभागी के आग्रह पर चौके में जाती; मगर कौर कंठ के नीचे न उतरता। पचास वर्ष हुए एक दिन भी ऐसा न हुआ कि पति के बिना खाये खुद खाया हो। अब उस नियम को कैसे तोड़े ?

आखिर उसे खाँसी आने लगी। दुर्बलता ने जल्द ही खाट पर डाल दिया। सुभागी अब क्या करे ! ठाकुर साहब के रुपये चुकाने के लिए दिलोजान से काम करने की ज़रूरत थी। यहाँ माँ बीमार पड़ गयी। अगर बाहर जाय तो माँ अकेली रहती है। उनके पास बैठे तो बाहर का काम कौन करे। माँ की दशा देखकर सुभागी समझ गयी कि इनका परवाना भी आ पहुँचा। महतो को भी तो यही ज्वर था।

गाँव में और किसे फुरसत थी कि दौड़-धूप करता। सजनसिंह दोनों वक्त आते, लक्ष्मी को देखते, दवा पिलाते, सुभागी को समझाते, और चले जाते; मगर लक्ष्मी की दशा बिगड़ती जाती थी। यहाँ तक कि पन्द्रहवें दिन वह भी संसार से सिधार गयी। अन्तिम समय रामू आया और उसके पैर छूना चाहता था, पर लक्ष्मी ने उसे ऐसी झिड़की दी कि वह उसके समीप न जा सका। सुभागी को उसने आशीर्वाद दिया—तुम्हारी-जैसी बेटी पाकर तर गयी। मेरा क्रिया-कर्म तुम्हीं करना। मेरी भगवान् से यही अरजी है कि उस जन्म में भी तुम मेरी कोख पवित्र करो।

माता के देहान्त के बाद सुभागी के जीवन का केवल एक लक्ष्य रह गया—सजनसिंह के रुपये चुकाना। तीन सौ रुपये पिता के क्रिया-कर्म में लगे थे। लगभग दो सौ रुपये माता के काम में लगे। पांच सौ रुपये का ऋण था और उसकी अकेली जान ! मगर वह हिम्मत न हारती थी। तीन साल तक सुभागी ने रात को रात और दिन को दिन न समझा। उसकी कार्य-शक्ति और पौरुष देखकर लोग दाँतों उंगली दबाते थे। दिन भर खेती-बारी का काम करने के बाद वह रात को चार-चार पसेरी आटा पीस डालती। तीसवें दिन पन्द्रह रुपये लेकर वह सजनसिंह के पास पहुँच जाती। इसमें कभी नागा न पड़ता। यह मानो प्रकृति का अटल नियम था।

अब चारों ओर से उसकी सगाई के पैगाम आने लगे। सभी उसके लिए मुँह फैलाये हुए थे। जिसके घर सुभागी जायगी, उसके भाग्य फिर जायेंगे। सुभागी यही जवाब देती—अभी वह दिन नहीं आया।

जिस दिन सुभागी ने आखिरी किस्त चुकाई, उस दिन उसकी खुशी का ठिकाना न था। आज उसके जीवन का कठोर व्रत पूरा हो गया।

वह चलने लगी तो सजनसिंह ने कहा—बेटी, तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। कहो कहूँ, कहो न कहूँ, मगर वचन दो कि मानोगी।

सुभागी ने कृतज्ञ भाव से देखकर कहा—दादा, आपकी बात न मानूँगी तो किसकी बात मानूँगी। मेरा तो रोयाँ-रोयाँ आपका गुलाम है।

सजनसिंह—अगर तुम्हारे मन में यह भाव है, तो मैं न कहूँगा। मैंने अब तक तुमसे इसलिए नहीं कहा कि तुम अपने को मेरा देनदार समझ रही थीं। अब रुपये चुक गये। मेरा तुम्हारे ऊपर कोई एहसान नहीं है, रत्ती भर भी नहीं। बोलो कहूँ ?

सुभागी—आपकी जो आज्ञा हो।

सजनसिंह—देखो इनकार न करना, नहीं मैं फिर तुम्हें अपना मुँह न दिखाऊँगा।

सुभागी—क्या आज्ञा है ?

सजनसिंह—मेरी इच्छा है कि तुम मेरी बहू बनकर मेरे घर को पवित्र करो। मैं जात-पाँत का कायल हूँ, मगर तुमने मेरे सारे बन्धन तोड़ दिये। मेरा लड़का तुम्हारे नाम का पुजारी है। तुमने उसे बारहा देखा है। बोलो, मंजूर करती हो ?

सुभागी—दादा, इतना सम्मान पाकर पागल हो जाऊँगी।

सजनसिंह—तुम्हारा सम्मान भगवान् कर रहे हैं बेटी ! तुम साक्षात् भगवती का अवतार हो।

सुभागी—मैं तो आपको अपना पिता समझती हूँ। आप जो कुछ करेंगे, मेरे भले ही के लिए करेंगे। आपके हुक्म को कैसे इनकार कर सकती हूँ।

सजनसिंह ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा—बेटी, तुम्हारा सोहाग अमर हो। तुमने मेरी बात रख ली। मुझ-सा भाग्यशाली संसार में और कौन होगा ?

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', मार्च 1930 में प्रकाशित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई। 'मानसरोवर' भाग-1 मे संकलित।]

पत्नी से पति

मिस्टर सेठ को सभी हिन्दुस्तानी चीजों से नफरत थी और उनकी सुन्दरी पत्नी गोदावरी को सभी विदेशी चीजों से चिढ़ ! मगर धैर्य और विनय भारत की देवियों का आभूषण है। गोदावरी दिल पर हजार जब्र करके पति की लायी हुई विदेशी चीज़ों का व्यवहार करती थी, हालाँकि भीतर ही भीतर उसका हृदय अपनी परवशता पर रोता था। वह जिस वक्त अपने छज्जे पर खड़ी हो कर सड़क पर निगाह दौड़ाती और कितनी ही महिलाओं को खद्दर की साड़ियाँ पहने गर्व से सिर उठाये चलते देखती, तो उसके भीतर का [illegible] एक ठंडी आह बन कर निकल जाती थी। उसे ऐसा मालूम होता था कि मुझसे ज्यादा बदनसीब औरत संसार में नहीं है। मैं अपने स्वदेशवासियों की इतनी-भी सेवा नहीं कर सकती। शाम को मिस्टर सेठ के आग्रह करने पर वह कहीं मनोरंजन या सैर के लिए जाती, तो विदेशी कपड़े पहने हुए निकलते शर्म से उसकी गर्दन झुक जाती थी। वह पत्रों में महिलाओं के जोश-भरे व्याख्यान पढ़ती तो उसकी आँखें जगमगा उठतीं, थोड़ी देर के लिए वह भूल जाती कि मैं यहाँ बन्धनों में जकड़ी हुई हूँ।

होली का दिन था, आठ बजे रात का समय। स्वदेश के नाम पर बिके हुए अनुरागियों का जुलूस आ कर मिस्टर सेठ के मकान के सामने रुका और उसी चौड़े मैदान में विलायती कपड़ों की होलियाँ लगाने की तैयारियाँ होने लगीं। गोदावरी अपने कमरे में खिड़की पर खड़ी यह समारोह देखती थी और दिल मसोस कर रह जाती थी। एक वह हैं, जो यों खुश-खुश, आजादी के नशे से मतवाले, गर्व से सिर उठाये होली लगा रहे हैं, और एक मैं हूँ कि पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह फड़फड़ा रही हूँ। इन तीलियों को कैसे तोड़ दूँ? उसने कमरे में निगाह दौड़ायी। सभी चीजें विदेशी थीं। स्वदेशी का एक सूत भी न था।

यही चीजें वहाँ जलायी जा रही थीं और वही चीजें यहाँ उसके हृदय में संचित ग्लानि की भाँति सन्दूकों में रखी हुई थीं। उसके जी में एक लहर उठ रही थी कि इन चीजों को उठाकर उसी होली में डाल दे, उसकी सारी ग्लानि और दुर्बलता जल कर भस्म हो जाय ! मगर पति की अप्रसन्नता के भय ने उसका हाथ पकड़ लिया। सहसा मि. सेठ ने अन्दर आ कर कहा—जरा इन सिरफिरों को देखो, कपड़े जला रहे हैं। यह पागलपन, उन्माद और विद्रोह नहीं तो और क्या है। किसी ने सच कहा है, हिंदुस्तानियों को न अक्ल आयी है न आयेगी। कोई कल भी तो सीधी नहीं।

गोदावरी ने कहा—तुम भी हिंदुस्तानी हो ?

सेठ ने गर्म होकर कहा—हाँ, लेकिन मुझे इसका हमेशा खेद रहता है कि ऐसे अभागे देश में क्यों पैदा हुआ। मैं नहीं चाहता कि कोई मुझे हिन्दुस्तानी कहे या समझे। कम-से- कम मैंने आचार-व्यवहार, वेश-भूषा, रीति-नीति, कर्म-वचन में कोई ऐसी बात नहीं रखी, जिससे हमें कोई हिन्दुस्तानी होने का कलंक लगाये। पूछिये, जब हमें आठ आने गज में बढ़िया कपड़ा मिलता है, तो हम क्यों मोटा टाट खरीदें। इस विषय में हर एक को पूरी स्वाधीनता होनी चाहिए। न जाने क्यों गवर्नमेंट ने इन दुष्टों को यहाँ जमा होने दिया। अगर मेरे हाथ में अधिकार होता, तो सबों को जहन्नुम रसीद कर देता। तब आटे-दाल का भाव मालूम होता।

गोदावरी ने अपने शब्दों में तीक्ष्ण तिरस्कार भर के कहा—तुम्हें अपने भाइयों का जरा भी खयाल नहीं आता ? भारत के सिवा और भी कोई देश है, जिस पर किसी दूसरी जाति का शासन हो ? छोटे-छोटे राष्ट्र भी किसी दूसरी जाति के गुलाम बन कर नहीं रहना चाहते। क्या एक हिन्दुस्तानी के लिए यह लज्जा की बात नहीं है कि वह अपने थोड़े से फायदे के लिए सरकार का साथ दे कर अपने ही भाइयों के साथ अन्याय करे ?

सेठ ने भौंहें चढ़ा कर कहा—मैं इन्हें अपना भाई नहीं समझता।

गोदावरी—आख़िर तुम्हें सरकार जो वेतन देती है, वह इन्हीं की जेब से तो आता है।

सेठ—मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि मेरा वेतन किसकी जेब से आता है। मुझे जिसके हाथ से मिलता है, वह मेरा स्वामी है। न जाने इन दुष्टों को क्या सनक सवार हुई है। कहते हैं, भारत आध्यात्मिक देश है। क्या आध्यात्म का यही आशय है कि परमात्मा के विधानों का विरोध किया जाये ? जब यह मालूम है कि परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध एक पत्ती भी नहीं हिल सकती, तो यह कैसे मुमकिन है कि यह इतना बड़ा देश परमात्मा की मर्जी बगैर अँगरेजों के अधीन हो ? क्यों इन दीवानों को इतनी अक्ल नहीं आती कि जब तक परमात्मा की इच्छा न होगी, कोई अँगरेजों का बाल भी बाँका न कर सकेगा।

गोदावरी—तो फिर क्यों नौकरी करते हो ? परमात्मा की इच्छा होगी, तो आप ही आप भोजन मिल जायेगा। बीमार होते हो, तो क्यों दौड़े वैद्य के घर जाते हो ? परमात्मा उन्हीं की मदद करता है, जो अपनी मदद आप करते हैं !

सेठ—बेशक करता है; लेकिन अपने घर में आग लगा देना, घर की चीजों को जला देना, ऐसे काम हैं, जिन्हें परमात्मा कभी पसंद नहीं कर सकता।

गोदावरी—तो यहाँ के लोगों को चुपचाप बैठे रहना चाहिए।

सेठ—नहीं रोना चाहिए। इस तरह रोना चाहिए जैसे बच्चे माता के दूध के लिए रोते हैं।

सहसा होली जली, आग की शिखाएँ आसमान से बातें करने लगीं, मानो स्वाधीनता

की देवी अग्नि-वस्त्र धारण किये हुए आकाश के देवताओं से गले मिलने जा रही हो।

दीनानाथ ने खिड़की बन्द कर दी, उनके लिए यह दृश्य भी असह्य था।

गोदावरी इस तरह खड़ी रही, जैसे कोई गाय कसाई के खूँटे पर खड़ी हो। उसी वक्त किसी के गाने की आवाज़ आयी—

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती है।'

गोदावरी के विषाद से भरे हुए हृदय में एक चोट लगी। उसने खिड़की खोल दी और नीचे की तरफ झाँका। होली अब भी जल रही थी और एक अंधा लड़का अपनी खंजरी बजा कर गा रहा था—

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती है।'

वह खिड़की के सामने पहुँचा तो गोदावरी ने पुकारा—ओ अन्धे ! खड़ा रह।

अन्धा खड़ा हो गया। गोदावरी ने सन्दूक खोला, पर उसमें उसे एक पैसा मिला। नोट और रुपये थे, मगर अन्धे फकीर को नोट या रुपये देने का तो सवाल ही न था। पैसे अगर दो-चार मिल जाते, तो इस वक्त वह जरूर दे देती। पर वहाँ एक ही पैसा था, वह भी इतना घिसा हुआ कि कहार बाजार से लौटा लाया था। किसी दूकानदार ने न लिया था। अन्धे को वह पैसा देते हुए गोदावरी को शर्म आ रही थी। वह जरा देर तक पैसे को हाथ में लिये संशय में खड़ी रही। तब अन्धे को बुलाया और पैसा दे दिया।

अन्धे ने कहा—माता जी कुछ खाने को दीजिए। आज दिन भर से कुछ नहीं खाया।

गोदावरी—दिन भर माँगता है, तब भी तुझे खाने को नहीं मिलता ?

अन्धा—क्या करूँ माता, कोई खाने को नहीं देता।

गोदावरी—इस पैसे का चबैना ले कर खा ले।

अन्धा—खा लूँगा, माता जी, भगवान् आपको खुशी रखे। अब यहीं सोता हूँ।

2

दूसरे दिन प्रातःकाल काँग्रेस की तरफ से एक आम जलसा हुआ। मिस्टर सेठ ने विलायती टूथ पाउडर विलायती ब्रुश से दाँतों पर मला, विलायती साबुन से नहाया, विलायती चाय विलायती प्यालियों में पी, विलायती बिस्कुट विलायती मक्खन के साथ खाया, विलायती दूध पिया। फिर विलायती सूट धारण करके विलायती सिगार मुँह में दबा कर घर से निकले, और अपनी मोटर साइकिल पर बैठ फ्लावर शो देखने चले गये।

गोदावरी को रात भर नींद नहीं आयी थी। दुराशा और पराजय की कठिन यंत्रणा किसी कोड़े की तरह उसके हृदय पर पड़ रही थी। ऐसा मालूम होता था कि उसके कंठ में कोई कड़वी चीज अटक गयी है। मिस्टर सेठ को अपने प्रभाव में लाने की उसने वह सब योजनाएँ कीं, जो एक रमणी कर सकती है; पर उस भले आदमी पर उसके सारे हाव-भाव, मृदु-मुस्कान और वाणी-विलास का कोई असर न हुआ। खुद तो स्वदेशी वस्त्रों के व्यवहार करने पर क्या राजी होते, गोदावरी के लिए एक खद्दर की साड़ी लाने पर भी सहमत न हुए। यहाँ तक कि गोदावरी ने उनसे कभी कोई चीज माँगने की कसम खा ली।

क्रोध और ग्लानि ने उसकी सद्भावना को इस तरह विकृत कर दिया जैसे कोई मैली वस्तु निर्मल जल को दूषित कर देती है। उसने सोचा, जब यह मेरी इतनी-सी बात नहीं

मान सकते, तब फिर मैं क्यों इनके इशारों पर चलूँ, क्यों इनकी इच्छाओं की लौंडी बनी रहूँ? मैंने इनके हाथ कुछ अपनी आत्मा नहीं बेची है। अगर आज ये चोरी या गबन करें, तो क्या मैं सजा पाऊँगी ? उसकी सजा ये खुद झेलेंगे। उसका अपराध इनके ऊपर होगा। इन्हें अपने कर्म और वचन का अख्तियार है, मुझे अपने कर्म और वचन का अख्तियार। यह अपनी सरकार की गुलामी करें, अँगरेजों की चौखट पर नाक रगड़ें, मुझे क्या गरज है कि उसमें उनका सहयोग करूँ। जिसमें आत्माभिमान नहीं, जिसने अपने को स्वार्थ के हाथों बेच दिया, उसके प्रति अगर मेरे मन में भक्ति न हो तो मेरा दोष नहीं। यह नौकर हैं या गुलाम ? नौकरी और गुलामी में अन्तर है। नौकर कुछ नियमों के अधीन अपना निर्दिष्ट काम करता है। वह नियम स्वामी और सेवक दोनों ही पर लागू होते हैं। स्वामी अगर अपमान करे, अपशब्द कहे तो नौकर उसको सहन करने के लिए मजबूर नहीं। गुलाम के लिए कोई शर्त नहीं, उसकी दैहिक गुलामी पीछे होती है, मानसिक गुलामी पहले ही हो जाती है। सरकार ने इनसे कब कहा है कि देशी चीजें न खरीदो। सरकारी टिकटों तक पर यह शब्द लिखे होते हैं, 'स्वदेशी चीजें खरीदो।' इससे विदित है कि सरकार देशी चीजों का निषेध नहीं करती फिर भी यह महाशय सुर्खरू बनने की फिक्र में सरकार से भी दो अंगुल आगे बढ़ना चाहते हैं !

मिस्टर सेठ ने कुछ झेंपते हुए कहा—कल फ्लावर शो देखने चलोगी ?

गोदावरी ने विरक्त मन से कहा—नहीं !

'बहुत अच्छा तमाशा है।'

'मैं काँग्रेस के जलसे में जा रही हूँ।'

मिस्टर सेठ के ऊपर यदि छत गिर पड़ी होती या उन्होंने बिजली का तार हाथ से पकड़ लिया होता, तो भी वह इतने बदहवास न होते। आँखें फाड़ कर बोले—तुम काँग्रेस के जलसे में जाओगी ?

'हाँ, जरूर जाऊँगी।'

'मैं नहीं चाहता कि तुम वहाँ जाओ।'

'अगर तुम मेरी परवाह नहीं करते, तो मेरा धर्म नहीं कि तुम्हारी हर एक आज्ञा का पालन करूँ।'

मिस्टर सेठ ने आँखों में विष भर कर कहा—नतीजा बुरा होगा।

गोदावरी मानो तलवार के सामने छाती खोल कर बोली—इसकी चिंता नहीं, तुम किसी के ईश्वर नहीं हो।

मिस्टर सेठ खूब गर्म पड़े, धमकियाँ दीं, आखिर मुँह फेर कर लेट रहे। प्रातःकाल फ्लावर शो जाते समय भी उन्होंने गोदावरी से कुछ न कहा।

3

गोदावरी जिस समय काँग्रेस के जलसे में पहुँची, तो कई हजार मर्दों और औरतों का जमाव था। मंत्री ने चन्दे की अपील की थी और कुछ लोग चन्दा दे रहे थे। गोदावरी उस जगह खड़ी हो गयी जहाँ और स्त्रियाँ जमा थीं और देखने लगी कि लोग क्या देते हैं। अधिकांश लोग दो-दो, चार-चार आना ही दे रहे थे। वहाँ ऐसा धनवान् था ही कौन ? उसने अपनी

जेब टटोली, तो एक रुपया निकला। उसने समझा यह काफी है। इसी इन्तजार में थी कि झोली सामने आवे तो उसमें डाल दूँ ? सहसा वही अन्धा लड़का जिसे कि उसने पैसा दिया था, न जाने किधर से आ गया और ज्यों ही चन्दे की झोली उसके सामने पहुँची, उसने उसमें कुछ डाल दिया। सबकी आँखें उसकी तरफ उठ गयीं। सबको कुतूहल हो रहा था कि अन्धे ने क्या दिया ? कहीं एक आध पैसा मिल गया होगा। दिन भर गला फाड़ता है, तब भी तो उस बेचारे को रोटी नहीं मिलती। अगर वही गाना पिश्वाज़ और साज के साथ किसी महफिल में होता तो रुपये बरसते; लेकिन सड़क पर गाने वाले अन्धे की कौन परवाह करता है।

झोली में पैसा डाल कर अन्धा वहाँ से चल दिया और कुछ दूर जा कर गाने लगा–

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती है।'

सभापति ने कहा–मित्रो, देखिए, यह वह पैसा है, जो एक गरीब अन्धा लड़का इस झोली में डाल गया है। मेरी आँखों में इस एक पैसे की कीमत किसी अमीर के एक हज़ार रुपये से कम नहीं। शायद यही इस गरीब की सारी बिसात होगी; जब ऐसे गरीबों की सहानुभूति हमारे साथ है, तो मुझे सत्य की विजय में कोई संदेह नहीं मालूम होता। हमारे यहाँ क्यों इतने फकीर दिखायी देते हैं। या तो इसीलिए कि समाज में इन्हें कोई काम नहीं मिलता या दरिद्रता से पैदा हुई बीमारियों के कारण यह अब इस योग्य ही नहीं रह गये कि कुछ काम करें। या भिक्षावृत्ति ने इनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं छोड़ी। स्वराज्य के सिवा इन गरीबों का अब उद्धार कौन कर सकता है। देखिए, वह गा रहा है–

'वतन की देखिए तकदीर कब बदलती है।'

इस पीड़ित हृदय में कितना उत्सर्ग ! क्या अब भी कोई संदेह कर सकता है कि यह किसकी आवाज है ? (पैसा ऊपर उठा कर) आपमें कौन इस रत्न को खरीद सकता है ?

गोदावरी के मन में जिज्ञासा हुई, क्या यह वही तो पैसा नहीं है, जो रात मैंने उसे दिया था ? क्या उसने सचमुच रात को कुछ नहीं खाया ?

उसने जा कर समीप से पैसे को देखा, जो मेज पर रख दिया गया था। उसका हृदय धक् से हो गया। यह वही घिसा हुआ पैसा था।

उस अंधे की दशा, उसके त्याग का स्मरण करके गोदावरी अनुरक्त हो उठी। काँपते हुए स्वर में बोली–मुझे आप यह पैसा दे दीजिए, मैं पाँच रुपये दूँगी।

सभापति ने कहा–एक बहन इस पैसे के दाम पाँच रुपये दे रही हैं।

दूसरी आवाज आयी–दस रुपये।

तीसरी आवाज आयी–बीस रुपये।

गोदावरी ने इस अंतिम व्यक्ति की ओर देखा। उसके मुख पर आत्माभिमान झलक रहा था। मानों कह रहा हो कि यहाँ कौन है, जो मेरी बराबरी कर सके ! गोदावरी के मन में स्पर्द्धा का भाव जाग उठा। चाहे कुछ हो जाये, इसके हाथ में यह पैसा न जाय। समझता है, इसने बीस रुपये क्या कह दिये, सारे संसार को मोल ले लिया।

गोदावरी ने कहा–चालीस रुपये।

उस पुरुष ने तुरंत कहा–पचास रुपये।

हजारों आँखें गोदावरी की ओर उठ गयीं मानों कह रही हों, अब आप ही हमारी

लाज रखिए।

गोदावरी ने उस आदमी की ओर देख कर धमकी से मिले हुए स्वर में कहा—सौ रुपये।

धनी आदमी ने भी तुरंत कहा—एक सौ बीस रुपये।

लोगों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। समझ गये, इसी के हाथ विजय रही। निराश आँखों से गोदावरी की ओर ताकने लगे; मगर ज्यों ही गोदावरी के मुँह से निकला डेढ़ सौ, कि चारों तरफ तालियाँ पड़ने लगीं। मानों किसी दंगल के दर्शक अपने पहलवान की विजय पर मतवाले हो गये हों।

उस आदमी ने फिर कहा—पौने दो सौ।

गोदावरी बोली—दो सौ।

फिर चारों तरफ से तालियाँ पड़ीं। प्रतिद्वंद्वी ने अब मैदान से हट जाने ही में अपनी कुशल समझी।

गोदावरी विजय के गर्व पर नम्रता का पर्दा डाले हुए खड़ी थी और हजारों शुभ-कामनाएँ उस पर फूलों की तरह बरस रही थीं।

4

जब लोगों को मालूम हुआ कि यह देवी मिस्टर सेठ की बीवी हैं, तो उन्हें ईर्ष्यामय आनंद के साथ उस पर दया भी आयी।

मिस्टर सेठ अभी फ्लावर शो में ही थे कि एक पुलिस के अफसर ने उन्हें यह घातक संवाद सुनाया। मिस्टर सेठ सकते में पड़ गये, मानों सारी देह शून्य पड़ गयी हो। फिर दोनों मुट्ठियाँ बाँध लीं। दाँत पीसे, ओठ चबाये और उसी वक्त घर चले। उनकी मोटर-साइकिल कभी इतनी तेज न चली थी।

घर में कदम रखते ही उन्होंने चिनगारियों-भरी आँखों से देखते हुए कहा—क्या तुम मेरे मुँह में कालिख पुतवाना चाहती हो ?

गोदावरी ने शांत भाव से कहा—कुछ मुँह से भी तो कहो या गालियाँ ही दिये जाओगे ? तुम्हारे मुँह में कालिख लगेगी, तो क्या मेरे मुँह में न लगेगी ? तुम्हारी जड़ खुदेगी, तो मेरे लिए दूसरा कौन-सा सहारा है।

मिस्टर सेठ—सारे शहर में तूफान मचा हुआ है। तुमने मेरे रुपये दिये क्यों ?

गोदावरी ने उसी शांत भाव से कहा—इसलिए कि मैं उसे अपना ही रुपया समझती हूँ।

मिस्टर सेठ दाँत किटकिटा कर बोले—हरगिज़ नहीं, तुम्हें मेरा रुपया खर्च करने का कोई हक नहीं है।

गोदावरी—बिलकुल गलत, तुम्हारे रुपये खर्च करने का तुम्हें जितना अख्तियार है, उतना ही मुझको भी है। हाँ, जब तलाक का कानून पास करा लोगे और तलाक दे दोगे, तब न रहेगा।

मिस्टर सेठ ने अपना हैट इतने जोर से मेज पर फेंका कि वह लुढ़कता हुआ जमीन पर गिर पड़ा और बोले—मुझे तुम्हारी अक्ल पर अफसोस आता है। जानती हो तुम्हारी इस उद्दंडता का क्या नतीजा होगा ? मुझसे जवाब तलब हो जायेगा। बतलाओ, क्या जवाब दूँगा ? जब यह जाहिर है कि कांग्रेस सरकार से दुश्मनी कर रही है तो कांग्रेस की मदद

करना सरकार के साथ दुश्मनी करना है।

'तुमने तो नहीं की कांग्रेस की मदद !'

'तुमने तो की !'

'इसकी सजा मुझे मिलेगी या तुम्हें? अगर मैं चोरी करूँ, तो क्या तुम जेल जाओगे ?'

'चोरी की बात और है, यह बात और है।'

'तो क्या कांग्रेस की मदद करना चोरी या डाके से भी बुरा है ?'

'हाँ, सरकारी नौकर के लिए चोरी या डाके से भी कहीं बुरा है।'

'मैंने यह नहीं समझा था।'

अगर तुमने यह नहीं समझा था, तो तुम्हारी ही बुद्धि का भ्रम था। रोज अखबारों में देखती हो, फिर भी मुझसे पूछती हो। एक कांग्रेस का आदमी प्लेटफार्म पर बोलने खड़ा होता है, तो बीसियों सादे कपड़े वाले पुलिस अफ़सर उसकी रिपोर्ट लेने बैठते हैं। कांग्रेस के सरगनाओं के पीछे कई-कई मुखबिर लगा दिये जाते हैं, जिनका काम यही है कि उन पर कड़ी निगाह रखें। चोरों के साथ तो इतनी सख्ती कभी नहीं की जाती। इसीलिए हजारों चोरियाँ और डाके और खून रोज होते रहते हैं, किसी का कुछ पता नहीं चलता, न पुलिस इसकी परवाह करती है। मगर पुलिस को जिस मामले में राजनीति की गंध भी आ जाती है फिर देखो पुलिस की मुस्तैदी। इन्स्पेक्टर जनरल से लेकर कांस्टेबिल तक एड़ियों तक का जोर लगाते हैं। सरकार को चोरों से भय नहीं। चोर सरकार पर चोट नहीं करता। कांग्रेस सरकार के अख्तियार पर हमला करती है, इसलिए सरकार भी अपनी रक्षा के लिए अपने अख्तियार से काम लेती है। यह तो प्रकृति का नियम है।

मिस्टर सेठ आज दफ्तर चले, तो उनके कदम पीछे रह जाते थे ! न जाने आज वहाँ क्या हाल हो। रोज की तरह दफ्तर में पहुँच कर उन्होंने चपरासियों को डाँटा नहीं, क्लर्कों पर रोब नहीं जमाया, चुपके से जाकर कुर्सी पर बैठ गये। ऐसा मालूम होता था, कोई तलवार सिर पर लटक रही है। साहब की मोटर की आवाज सुनते ही उनके प्राण सूख गये। रोज वह अपने कमरे में बैठे रहते थे। जब साहब आ कर [illegible] जाते थे, तब आध घंटे के बाद मिसलें ले कर पहुँचते थे। आज वह बरामदे में खड़े थे, साहब उतरे तो झुक कर उन्होंने सलाम किया। मगर साहब ने मुंह फेर लिया।

लेकिन वह हिम्मत नहीं हारे, आगे बढ़ कर पर्दा हटा दिया, साहब कमरे में गये, तो सेठ साहब ने पंखा खोल दिया, मगर जान सूखी जाती थी कि देखें, कब सिर पर तलवार गिरती है। साहब ज्यों ही कुर्सी पर बैठे, सेठ ने लपक कर, सिगार-केस और दियासलाई मेज पर रख दी।

एकाएक ऐसा मालूम हुआ, मानो आसमान फट गया हो, साहब गरज रहे थे, तुम दगाबाज आदमी है !

सेठ ने इस तरह साहब की तरफ दे[illegible], जैसे उनका मतलब नहीं समझे।

साहब ने फिर गरज कर कहा—तुम दगाबाज आदमी है।

मिस्टर सेठ का खून गर्म हो उठा, बोले—मेरा तो खयाल है कि मुझसे बड़ा राजभक्त इस देश में न होगा।

साहब—तुम नमकहराम आदमी है।

मिस्टर सेठ के चेहरे पर सुर्खी आयी—आप व्यर्थ ही अपनी जबान ख़राब कर रहे हैं।

साहब—तुम शैतान आदमी है।

मिस्टर सेठ की आँखों में सुर्खी आयी—आप मेरी बेइज्जती कर रहे हैं। ऐसी बातें सुनने की मुझे आदत नहीं है।

साहब—चुप रहो, यू ब्लडी। तुमको सरकार पाँच सौ रुपये इसलिए नहीं देता कि तुम अपने वाइफ के हाथ से कांग्रेस का चंदा दिलवाये। तुमको इसलिए सरकार रुपया नहीं देता।

मिस्टर सेठ को अब अपनी सफाई देने का अवसर मिला। बोले—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी वाइफ ने सरासर मेरी मर्जी के खिलाफ रुपये दिये हैं। मैं तो उस वक्त फ्लावर शो देखने गया था, जहाँ मिस फ्रांक का गुलदस्ता पाँच रुपये में लिया। वहाँ से लौटा, तो मुझे यह खबर मिली।

साहब—ओ ! तुम हमको बेवकूफ बनाता है ?

यह बात अग्नि-शिला की भाँति ज्यों ही साहब के मस्तिष्क में घुसी, उनके मिजाज का पारा उबाल के दर्जे तक पहुँच गया। किसी हिंदुस्तानी की इतनी मजाल कि उन्हें बेवकूफ बनाये ! वह जो हिंदुस्तान के बादशाह हैं, जिनके पास बड़े-बड़े तालुकेदार सलाम करने आते हैं, जिनके नौकरों को बड़े-बड़े रईस नजराना देते हैं, उन्हीं को कोई बेवकूफ बनाये ! उसके लिये वह असह्य था। रूल उठा कर दौड़ा।

लेकिन मिस्टर सेठ भी मजबूत आदमी थे। यों वह हर तरह की खुशामद किया करते थे, लेकिन यह अपमान स्वीकार न कर सके। उन्होंने रूल को तो हाथ पर लिया और एक डग आगे बढ़ कर ऐसा घूँसा साहब के मुँह पर रसीद किया कि साहब की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह इस मुष्टिप्रहार के लिए तैयार न थे। उन्हें कई बार इसका अनुभव हो चुका था कि नेटिव बहुत शांत, दब्बू, और गमखोर होता है। विशेषकर साहबों के सामने तो उसकी जबान तक नहीं खुलती। कुर्सी पर बैठ कर नाक का खून पोंछने लगा। फिर मिस्टर सेठ से उलझने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ी, मगर दिल में सोच रहा था, इसे कैसे नीचा दिखाऊँ।

मिस्टर सेठ भी अपने कमरे में आ कर इस परिस्थिति पर विचार करने लगे। उन्हें बिलकुल खेद न था; बल्कि वह अपने साहस पर प्रसन्न थे। इसकी बदमाशी तो देखो कि मुझ पर रूल चला दिया। जितना दबता था, उतना ही दबाये जाता था। मेम यारों को लिये घूमा करती है, उससे बोलने की हिम्मत नहीं पड़ती। मुझसे शेर बन गया। अब दौड़ेगा कमिश्नर के पास। मुझे बरखास्त कराये बगैर न छोड़ेगा। यह सब कुछ गोदावरी के कारण हो रहा है। बेइज्जती तो हो ही गयी। अब रोटियों को भी मुहताज होना पड़ा। मुझ से तो कोई पूछेगा भी नहीं, बरखास्तगी का परवाना आ जायेगा। अपील कहाँ होगी ? सेक्रेटरी हैं हिंदुस्तानी, मगर अँगरेजों से भी ज्यादा अँगरेज। होम मेम्बर भी हिन्दुस्तानी हैं, मगर अँगरेजों के गुलाम। गोदावरी के चंदे का हाल सुनते ही उन्हें जूड़ी चढ़ आयेगी। न्याय की किसी से आशा नहीं, अब यहाँ से निकल जाने में ही क़ुशल है।

उन्होंने तुरंत एक इस्तीफा लिखा और साहब के पास भेज दिया। साहब ने उस पर लिख दिया, 'बरखास्त'।

5

दोपहर को जब मिस्टर सेठ मुँह लटकाये हुए घर पहुँचे तो गोदावरी ने पूछा—आज जल्दी कैसे आ गये ?

मिस्टर सेठ दहकती हुई आँखों से देख कर बोले—जिस बात पर लगी थीं, वह हो गयी। अब रोओ, सिर पर हाथ रखके !

गोदावरी—बात क्या हुई, कुछ कहो भी तो ?

सेठ—बात क्या हुई, उसने आँखें दिखायीं, मैंने चाँटा जमाया और इस्तीफा दे कर चला आया।

गोदावरी—इस्तीफा देने की क्या जल्दी थी ?

सेठ—और क्या सिर के बाल नुचवाता ? तुम्हारा यही हाल है, तो आज नहीं, कल अलग होना ही पड़ता।

गोदावरी—खैर, जो हुआ अच्छा ही हुआ। आज से तुम भी कांग्रेस में शरीक हो जाओ।

सेठ ने ओठ चबा कर कहा—लजाओगी तो नहीं, ऊपर से घाव पर नमक छिड़कती हो।

गोदावरी—लजाऊँ क्यों, मैं तो खुश हूँ कि तुम्हारी बेड़ियाँ कट गयीं।

सेठ—आखिर कुछ सोचा है, काम कैसे चलेगा ?

गोदावरी—सब सोच लिया है। मैं चल कर दिखा दूँगी। हाँ, मैं जो कुछ कहूँ, वह तुम किये जाना। अब तक मैं तुम्हारे इशारों पर चलती थी, अब से तुम मेरे इशारे पर चलना। मैं तुमसे किसी बात की शिकायत न करती थी; तुम जो कुछ खिलाते थे खाती थी, जो कुछ पहनाते थे पहनती थी। महल में रखते, महल में रहती। झोंपड़ी में रखते, झोंपड़ी में रहती। उसी तरह तुम भी रहना। जो काम करने को कहूँ वह करना। फिर देखूँ कैसे काम नहीं चलता। बड़प्पन, सूट-बूट और ठाट-बाट में नहीं है। जिसकी आत्मा पवित्र हो, वही ऊँचा है। आज तक तुम मेरे पति थे, आज से मैं तुम्हारा पति हूँ।

सेठ जी उसकी ओर स्नेह की आंखों से देख कर हँस पड़े।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका, 'माधुरी', अप्रैल, 1930 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। उर्दू रूप 'बीवी से शौहर' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम-चालीसी' में संकलित।]

समर-यात्रा

आज सवेरे ही से गाँव में हलचल मची हुई थी। कच्ची झोंपड़ियाँ हँसती हुई जान पड़ती थीं। आज सत्याग्रहियों का जत्था गाँव में आयेगा। कोदई चौधरी के द्वार पर चँदोवा तना हुआ है। आटा, घी, तरकारी, दूध और दही जमा किया जा रहा है। सबके चेहरों पर उमंग है, हौसला है, आनन्द है। वही बिंदा अहीर, जो दौरे के हाकिमों के पड़ाव पर पाव-पाव भर दूध के लिए मुँह छिपाता फिरता था, आज दूध और दही के दो मटके अहिराने से बटोर कर रख

गया है। कुम्हार, जो घर छोड़कर भाग जाया करता था, मिट्टी के बर्तनों का अटम लगा गया है। गाँव के नाई-कहार सब आप ही आप दौड़े चले आ रहे हैं। अगर कोई प्राणी दुखी है, तो वह नोहरी बुढ़िया है। वह अपनी झोंपड़ी के द्वार पर बैठी हुई अपनी पचहत्तर साल की बूढ़ी सिकुड़ी हुई आँखों से यह समारोह देख रही है और पछता रही है। उसके पासे क्या है, जिसे ले कर कोदई के द्वार पर जाय और कहे—मैं यह लायी हूँ। वह तो दानों को मुहताज है।

मगर नोहरी ने अच्छे दिन भी देखे हैं। एक दिन उसके पास धन, जन सब कुछ था। गाँव पर उसी का राज्य था। कोदई को उसने हमेशा नीचे दबाये रखा। वह स्त्री होकर भी पुरुष थी। उसका पति घर में सोता था, वह खेत में सोने जाती थी। मामले-मुकदमे की पैरवी खुद ही करती थी। लेना-देना सब उसी के हाथों में था लेकिन वह सब कुछ विधाता ने हर लिया; न धन रहा, न जन रहे—अब उनके नामों को रोने के लिए वही बाकी थी। आँखों से सूझता न था, कानों से सुनायी न देता था, जगह से हिलना मुश्किल था। किसी तरह जिंदगी के दिन पूरे कर रही थी और उधर कोदई के भाग उदय हो गये थे। अब चारों ओर से कोदई की पूछ थी—पहुँच थी। आज जलसा भी कोदई के द्वार पर हो रहा है। नोहरी को अब कौन पूछेगा। यह सोचकर उसका मनस्वी हृदय मानो किसी पत्थर से कुचल उठा। हाय ! मगर भगवान ने उसे इतना अपंग न कर दिया होता, तो आज झोपड़े को लीपती, द्वार पर बाजे बजवाती, कढ़ाव चढ़ा देती, पूड़ियाँ बनवाती और जब वह लोग खा चुकते; तो अँजुली भर रुपये उनकी भेंट कर देती।

उसे वह दिन याद आया, जब वह अपने बूढ़े पति को ले कर यहाँ से बीस कोस महात्मा जी के दर्शन करने गयी थी। वह उत्साह, वह सात्विक प्रेम, वह श्रद्धा, आज उसके हृदय में आकाश के मटियाले मेघों की भाँति उमड़ने लगी।

कोदई ने आकर पोपले मुँह से कहा—भाभी, आज महात्मा जी का जत्था आ रहा है, तुम्हें भी कुछ देना है।

नोहरी ने चौधरी को कटार भरी हुई आँखों से देखा। निर्दयी मुझे जलाने आया है। मुझे नीचा दिखाना चाहता है। जैसे आकाश पर चढ़ कर बोली—मुझे जो कुछ देना है, वह उन्हीं लोगों को दूँगी। तुम्हें क्यों दिखाऊँ !

कोदई ने मुस्करा कर कहा—हम किसी से कहेंगे नहीं, सच कहते हैं भाभी, निकालो वह पुरानी हाँड़ी ! अब किस दिन के लिए रखे हुए हो। किसी ने कुछ नहीं दिया। गाँव की लाज कैसे रहेगी ?

नोहरी ने कठोर दीनता के भाव से कहा—जले पर नमक न छिड़को, देवर जी ! भगवान ने दिया होता, तो तुम्हें कहना न पड़ता। इसी द्वार पर एक दिन साधु-संत, जोगी-जती, हाकिम-सूबा सभी आते थे; मगर सब दिन बरावर नहीं जाते !

कोदई लज्जित हो गया। उसके मुख की झुर्रियाँ मानो रेंगने लगीं। बोला—तुम तो हँसी-हँसी में बिगड़ जाती हो भाभी ! मैंने तो इसलिए कहा था कि पीछे से तुम यह न कहने लगो—मुझसे तो किसी ने कुछ कहा ही नहीं।

यह कहता हुआ वह चला गया। नोहरी वहीं बैठी उसकी ओर ताकती रही। उसका वह व्यंग्य सर्प की भाँति उसके सामने बैठा हुआ मालूम होता था।

2

नोहरी अभी बैठी हुई थी कि शोर मचा—जत्था आ गया। पश्चिम में गर्द उड़ती हुई नजर आ रही थी, मानो पृथ्वी उन यात्रियों के स्वागत में अपने राज-रत्नों की वर्षा कर रही हो। गाँव के सब स्त्री-पुरुष सब काम छोड़-छोड़कर उनका अभिवादन करने चले। एक क्षण में तिरंगी पताका हवा में फहराती दिखायी दी, मानो स्वराज्य ऊँचे आसन पर बैठा हुआ सबको आशीर्वाद दे रहा है।

स्त्रियाँ मंगल-गान करने लगीं। जरा देर में यात्रियों का दल साफ नजर आने लगा। दो-दो आदमियों की कतारें थीं। हर एक की देह पर खद्दर का कुर्त्ता था, सिर पर गाँधी टोपी, बगल में थैला लटकता हुआ, दोनों हाथ खाली, मानो स्वराज्य का आलिंगन करने को तैयार हों। फिर उनका कण्ठ-स्वर सुनायी देने लगा। उनके मरदाने गलों से एक कौमी तराना निकल रहा था, गर्म, गहरा, दिलों में स्फूर्ति डालनेवाला—

एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फर्द थे
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।
एक दिन वह था कि अपनी शान पर देते थे जान,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।

गाँववालों ने कई कदम आगे बढ़कर यात्रियों का स्वागत किया। बेचारों के सिरों पर धूल जमी हुई थी, ओठ सूखे हुए, चेहरे सँवलाये; पर आँखों में जैसे आजादी की ज्योति चमक रही थी।

स्त्रियाँ गा रही थीं, बालक उछल रहे थे। और पुरुष अपने अँगोछों से यात्रियों की हवा कर रहे थे। इस समारोह में नोहरी की ओर किसी का ध्यान न गया, वह अपनी लठिया पकड़े सब के पीछे सजीव आशीर्वाद बनी खड़ी थी। उसकी ऑखें डबडबायी हुई थीं, मुख से गौरव की ऐसी झलक आ रही थी मानों वह कोई रानी है, मानों यह सारा गाँव उसका है, वे सभी युवक उसके बालक हैं। अपने मन में उसने ऐसी शक्ति, ऐसे विकास, ऐसे उत्थान का अनुभव कभी न किया था।

सहसा उसने लाठी फेंक दी और भीड़ को चीरती हुई यात्रियों के सामने आ खड़ी हुई, जैसे लाठी के साथ ही उसने बुढ़ापे और दुःख के बोझ को फेंक दिया हो ! वह एक पल अनुरक्त आँखों से आजादी के सैनिकों की ओर ताकती रही, मानों उनकी शक्ति को अपने अंदर भर रही हो, तब वह नाचने लगी, इस तरह नाचने लगी, जेसे कोई सुन्दरी नवयौवना प्रेम और उल्लास के मद से विह्वल हो कर नाचे। लोग दो-दो, चार-चार कदम पीछे हट गये, छोटा-सा आँगन बन गया और उस आँगन में वह बुढ़िया अपना अतीत नृत्य कौशल दिखाने लगी। इस अलौकिक आनंद के रेले में वह अपना सारा दुःख और संताप भूल गयी। उसके जीर्ण अंगों में जहाँ सदा वायु का प्रकोप रहता था, वहाँ न जाने इतनी चपलता, इतनी लचक, इतनी फुरती कहाँ से आ गयी थी ! पहले कुछ देर तो लोग मजाक से उसकी ओर ताकते रहे; जैसे बालक बंदर का नाच देखते हैं, फिर अनुराग के इस पावन प्रवाह ने सभी को मतवाला कर दिया। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि सारी प्रकृति एक विराट व्यापक नृत्य की गोद में खेल रही है।

कोदई ने कहा- बस करो भाभी, बस करो।

नोहरी ने थिरकते हुए कहा—खड़े क्यों हो, आओ न जरा देखूँ कैसा नाचते हो !

कोदई बोले—अब बुढ़ापे में क्या नाचूँ ?

नोहरी ने रुक कर कहा—क्या तुम आज भी बूढ़े हो ? मेरा बुढ़ापा तो जैसे भाग गया। इन वीरों को देख कर भी तुम्हारी छाती नहीं फूलती ? हमारा ही दुःख-दर्द हरने के लिए तो इन्होंने यह परन ठाना है। इन्हीं हाथों से हाकिमों की बेगार बजायी हैं, इन्हीं कानों से उनकी गालियाँ और घुड़कियाँ सुनी हैं। अब तो उस जोर-जुलुम का नाश होगा—हम और तुम क्या अभी बूढ़े होने जोग थे ? हमें पेट की आग ने जलाया है। बोलो ईमान से, यहाँ इतने आदमी हैं, किसी ने इधर छह महीने से पेट-भर रोटी खायी है? घी किसी को सूँघने को मिला है ! कभी नींद-भर सोये हो ! जिस खेत का लगान तीन रुपये देते थे, अब उसी के नौ-दस देते हो। क्या धरती सोना उगलेगी ? काम करते-करते छाती फट गयी। हमीं हैं कि इतना सह कर भी जीते हैं। दूसरा होता, तो या तो मार डालता, या मर जाता। धन्य हैं महात्मा और उनके चेले कि दीनों का दुःख समझते हैं, उनके उद्धार का जतन करते हैं। और तो सभी हमें पीसकर हमारा रक्त निकालना जानते हैं।

यात्रियों के चेहरे चमक उठे, हृदय खिल उठे। प्रेम की डूबी हुई ध्वनि निकली—

एक दिन था कि पारस थी यहाँ की सरजमीन,
एक दिन यह है कि यों बे-दस्तोपा कोई नहीं।

3

कोदई के द्वार पर मशालें जल रही थीं। कई गाँवों के आदमी जमा हो गये थे। यात्रियों के भाजेन कर लेने के बाद सभा शुरू हुई। दल के नायक ने खड़े हो कर कहा—

भाइयो, आपने आज हम लोगों का जो आदर-सत्कार किया, उससे हमें यह आशा हो रही है कि हमारी बेड़ियाँ जल्द ही कट जायँगी। मैंने पूरब और पश्चिम के बहुत से देशों को देखा है, और मैं तजरबे से कहता हूँ कि आपमें जो सरलता, जो ईमानदारी,जो श्रम और धर्मबुद्धि है, वह संसार के और किसी देश में नहीं। मैं तो यही कहूँगा कि आप मनुष्य नहीं, देवता हैं। आपको भोग-विलास से मतलब नहीं, नशा-पानी से मतलब नहीं, अपना काम करना और अपनी दशा पर संतोष रखना। यह आपका आदर्श है, लेकिन आपका यही देवत्व, आपका यही सीधापन आपके हक में घातक हो रहा है। बुरा न मानिएगा, आप लोग इस संसार में रहने के योग्य नहीं। आपको तो स्वर्ग में कोई स्थान पाना चाहिए था। खेतों का लगान बरसाती नाले की तरह बढ़ता जाता है, आप चूँ नहीं करते। अमले और अहलकार आपको नोचते रहते हैं, आप जबान नहीं हिलाते। इसका यह नतीजा हो रहा है कि आपको लोग दोनों हाथों लूट रहे हैं; पर आपको खबर नहीं। आपके हाथों से सभी रोजगार छिनते जाते हैं, आपका सर्वनाश हो रहा है, पर आप आँखें खोल कर नहीं देखते। पहले लाखों भाई सूत कात कर, कपड़े बुनकर गुजर करते थे। अब सब कपड़ा विदेश से आता है। पहले लाखों आदमी यहीं नमक बनाते थे। अब नमक बाहर से आता है। यहाँ नमक बनाना जुर्म है। आपके देश में इतना नमक है कि सारे संसार का दो सौ साल तक उससे काम चल सकता है, पर आप सात करोड़ रुपये सिर्फ नमक के लिए देते हैं। आपके

ऊसरों में, झीलों में नमक भरा पड़ा है, आप उसे छू नहीं सकते। शायद कुछ दिनों में आपके कुओं पर भी महसूल लग जाय। क्या आप अब भी यह अन्याय सहते रहेंगे ?

एक आवाज आयी—हम किस लायक हैं ?

नायक—यही तो आपका भ्रम है। आप ही की गर्दन पर इतना बड़ा राज्य थमा हुआ है। आप ही इन बड़ी-बड़ी फौजों, इन बड़े-बड़े अफसरों के मालिक हैं; मगर फिर भी आप भूखों मरते हैं, अन्याय सहते हैं। इसलिए कि आपको अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं। यह समझ लीजिए कि संसार में जो आदमी अपनी रक्षा नहीं कर सकता, वह सदैव स्वार्थी और अन्यायी आदमियों का शिकार बना रहेगा ! आज संसार का सबसे बड़ा आदमी अपने प्राणों की बाजी खेल रहा है। हजारों जवान अपनी जानें हथेली पर लिये आपके दुःखों का अंत करने के लिए तैयार हैं। जो लोग आपको असहाय समझ कर दोनों हाथों से आपको लूट रहे हैं, वह कब चाहेंगे कि उनका शिकार उनके मुँह से छिन जाय। वे आपके इन सिपाहियों के साथ जितनी सख्तियाँ कर सकते हैं, कर रहे हैं; मगर हम लोग सब कुछ सहने को तैयार हैं। अब सोचिए कि आप हमारी कुछ मदद करेंगे ? मरदों की तरह निकल कर अपने को अन्याय से बचायेंगे या कायरों की तरह बैठे हुए तकदीर को कोसते रहेंगे ? ऐसा अवसर फिर शायद कभी न आये। अगर इस वक्त चूके, तो फिर हमेशा हाथ मलते रहिएगा। हम न्याय और सत्य के लिए लड़ रहे हैं; इसलिए न्याय और सत्य ही के हथियारों से हमें लड़ना है। हमें ऐसे वीरों की जरूरत है, जो हिंसा और क्रोध को दिल से निकाल डालें और ईश्वर पर अटल विश्वास रख कर धर्म के लिए सब कुछ झेल सकें ! बोलिए आप क्या मदद कर सकते हैं ?

कोई आगे नहीं बढ़ता। सन्नाटा छाया रहता है।

4

एकाएक शोर मचा—पुलिस ! पुलिस आ गयी !!

पुलिस का दारोगा कांस्टेबलों के एक दल के साथ आ कर सामने खड़ा हो गया। लोगों ने सहमी हुई आँखों और धड़कते हुए दिलों से उनकी ओर देखा और छिपने के लिए बिल खोजने लगे।

दारोगा जी ने हुक्म दिया—मार कर भगा दो इन बदमाशों को ?

कांस्टेबलों ने अपने डंडे सँभाले; मगर इसके पहले कि वे किसी पर हाथ चलायें, सभी लोग हुर्र हो गये ! कोई इधर से भागा, कोई उधर से। भगदड़ मच गयी। दस मिनट में वहाँ गाँव का एक आदमी भी न रहा। हाँ, नायक अपने स्थान पर अब भी खड़ा था और जत्था उसके पीछे बैठा हुआ था; केवल कोदई चौधरी नायक के समीप बैठे हुए थिर आँखों से भूमि की ओर ताक रहे थे।

दारोगा ने कोदई की ओर कठोर आँखों से देख कर कहा—क्यों रे कोदइया, तूने इन बदमाशों को क्यों ठहराया यहाँ ?

कोदई ने लाल-लाल आंखों से दारोगा की ओर देखा और जहर की तरह गुस्से को पी गये। आज अगर उनके सिर गृहस्थी का बखेड़ा न होता, लेना-देना न होता तो वह भी इसका मुँहतोड़ जवाब देते। जिस गृहस्थी पर उन्होंने अपने जीवन के पचास साल होम कर

दिये थे; वह इस समय एक विषैले सर्प की भाँति उनकी आत्मा में लिपटी हुई थी।

कोदई ने अभी कोई जवाब न दिया था कि नोहरी पीछे से आ कर बोली--क्या लाल पगड़ी बाँध कर तुम्हारी जीभ ऐंठ गयी है ? कोदई क्या तुम्हारे गुलाम हैं कि कोदइया-कोदइया कर रहे हो ? हमारा ही पैसा खाते हो और हमीं को आँखें दिखाते हो ? तुम्हें लाज नहीं आती ?

नोहरी इस वक्त दोपहरी की धूप की तरह काँप रही थी। दारोगा एक क्षण के लिए सन्नाटे में आ गया। फिर कुछ सोचकर और औरत के मुँह लगना अपनी शान के खिलाफ समझ कर कोदई से बोला--यह कौन शैतान की खाला है, कोदई ! खुदा का खौफ़ न होता तो इसकी जबान तालू से खींच लेता।

बुढ़िया लाठी टेक कर दारोगा की ओर घूमती हुई बोली--क्यों खुदा की दुहाई दे कर खुदा को बदनाम करते हो। तुम्हारे खुदा तो तुम्हारे अफसर हैं, जिनकी तुम जूतियाँ चाटते हो। तुम्हें तो चाहिए था कि डूब मरते चुल्लू भर पानी में ! जानते हो, यह लोग जो यहाँ आये हैं, कौन हैं ? यह वह लोग हैं, जो हम गरीबों के लिए अपनी जान तक होमने को तैयार हैं। तुम उन्हें बदमाश कहते हो ! तुम जो घूस के रुपये खाते हो, जुआ खेलाते हो, चोरियाँ करवाते हो, डाके डलवाते हो, भले आदमियों को फँसा कर मुट्ठियाँ गरम करते हो और अपने देवताओं की जूतियों पर नाक रगड़ते हो, तुम इन्हें बदमाश कहते हो !

नोहरी की तीक्ष्ण बातें सुनकर बहुत-से लोग जो इधर-उधर दबक गये थे, फिर जमा हो गये। दारोगा ने देखा, भीड़ बढ़ती जाती है, तो अपना हंटर लेकर उन पर पिल पड़े। लोग फिर तितर-बितर हो गये। एक हंटर नोहरी पर भी पड़ा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि कोई चिनगारी सारी पीठ पर दौड़ गयी। उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया, पर अपनी बची हुई शक्ति को एकत्र करके ऊँचे स्वर से बोली--लडको क्यों भागते हो ? क्या नेवता खाने आये थे। या कोई नाच-तमाशा हो रहा था ? तुम्हारे इसी लेंड़ीपन ने इन सबों को शेर बना रखा है। कब तक यह मार-धाड़, गाली-गुप्ता सहते रहोगे।

एक सिपाही ने बुढ़िया की गरदन पकड़ कर जोर से धक्का दिया। बुढ़िया दो-तीन कदम पर औंधे मुँह गिरा चाहती थी कि कोदई ने लपक कर उसे सँभाल लिया और बोला--क्या एक दुखिया पर गुस्सा दिखाते हो यारो ? क्या गुलामी ने तुम्हें नामर्द भी बना दिया है ? औरतों पर, बूढ़ों पर, निहत्थों पर, वार करते हो, वह मरदों का काम नहीं है।

नोहरी ने जमीन पर पड़े-पड़े कहा--मर्द होते, तो गुलाम ही क्यों होते ! भगवान् ! आदमी इतना निर्दयी भी हो सकता है ? भला अँगरेज इस तरह बेदरदी करे तो एक बात है। उसका राज है। तुम तो उसके चाकर हो, तुम्हें राज तो न मिलेगा, मगर राँड माँड में ही खुश ! इन्हें कोई तलब देता जाय, दूसरों की गरदन भी काटने में इन्हें संकोच नहीं !

अब दारोगा ने नायक को डाँटना शुरू किया--तुम किसके हुक्म से इस गाँव में आये ?

नायक ने शांत भाव से कहा--खुदा के हुक्म से।

दारोगा--तुम रिआया के अमन में खलल डालते हो ?

नायक--अगर तुम्हें उनकी हालत बताना उनके अमन में खलल डालना है तो बेशक हम उनके अमन में खलल डाल रहे हैं।

भागनेवालों के कदम एक बार फिर रुक गये। कोदई ने उनकी ओर निराश आँखों से देखकर काँपते हुए स्वर में कहा—भाइयो इस वखत कई गाँवों के आदमी यहाँ जमा हैं ? दारोगा ने हमारी जैसे बेआवरूई की है, क्या उसे सह कर तुम आराम की नींद सो सकते हो ? इसकी फरियाद कौन सुनेगा ? हाकिम लोग क्या हमारी फरियाद सुनेंगे। कभी नहीं। आज अगर हम लोग मार डाले जायँ, तो भी कुछ न होगा। यह है हमारी इज्जत और आबरू ? थुड़ी है इस जिंदगी पर !

समूह स्थिर भाव से खड़ा हो गया, जैसे बहता हुआ पानी मेंड़ से रुक जाय। भय का धुआँ जो लोगों के हृदय पर छा गया था, एकाएक हट गया। उनके चेहरे कठोर हो गये। दारोगा ने उनके तीवर देखे, तो तुरन्त घोड़े पर सवार हो गया और कोदई को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। दो सिपाहियों ने बढ़ कर कोदई की बाँह पकड़ ली। कोदई ने कहा—घबड़ाते क्यों हो, मैं कहीं भागूँगा नहीं। चलो, कहाँ चलते हो ?

ज्योंही कोदई दोनों सिपाहियों के साथ चला, उसके दोनों जवान बेटे कई आदमियों के साथ सिपाहियों की ओर लपके कि कोदई को उनके हाथों से छीन लें। सभी आदमी विकट आवेश में आ कर पुलिसवालों के चारों ओर जमा हो गये।

दारोगा ने कहा—तुम लोग हट जाओ वरना मैं फायर कर दूँगा। समूह ने इस धमकी का जवाव 'भारत माता की जय !' से दिया और एकाएक दो-दो कदम और आगे खिसक आये।

दारोगा ने देखा, अब जान बचती नहीं नजर आती है। नम्रता से बोला—नायक साहब, यह लोग फसाद पर अमादा हैं। इसका नतीजा अच्छा न होगा।

नायक ने कहा—नहीं, जब तक हममें एक आदमी भी यहाँ रहेगा, आपके ऊपर कोई हाथ न उठा सकेगा। आपसे हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। हम और आप दोनों एक ही पैरों के तले दबे हुए हैं। यह हमारी बदनसीबी है कि हम आप दो विरोधी दलों में खड़े हैं।

यह कहते हुए नायक ने गाँववालों को समझाया—भाइयो, मैं आपसे कह चुका हूँ, यह न्याय और धर्म की लड़ाई है और हमें न्याय और धर्म के हथियारों से ही लड़ना है। हमें अपने भाइयों से नहीं लड़ना है। हमें तो किसी से भी लड़ना नहीं है। दारोगा की जगह कोई अँगरेज होता, तो भी हम उसकी इतनी ही रक्षा करते। दारोगा ने कोदई चौधरी को गिरफ्तार किया है। मैं इसे चौधरी का सौभाग्य समझता हूँ। धन्य हैं वे लोग जो आजादी की लड़ाई में सजा पायें। यह बिगड़ने या घबड़ाने की बात नहीं है। आप लोग हट जायँ और पुलिस को जाने दें।

दारोगा और सिपाही कोदई को ले कर चले। लोगों ने जयध्वनि की—'भारतमाता की जय।'

कोदई ने जवाब दिया—राम-राम भाइयो, राम-राम। डटे रहना मैदान में। घबड़ाने की कोई बात नहीं है। भगवान् सबका मालिक है।

दोनों लड़के आंखों में आँसू भरे आये और कातर स्वर में बोले—हमें क्या कहे जाते हो दादा !

कोदई ने उन्हें बढ़ावा देते हुए कहा—भगवान् का भरोसा मत छोड़ना और वह करना जो मरदों को करना चाहिए। भय सारी बुराइयों की जड़ है। इसे मन से निकाल डालो, फिर

तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता। सत्य की कभी हार नहीं होती।

आज पुलिस के सिपाहियों के बीच में कोदई को निर्भयता का जैसा अनुभव हो रहा था, वैसा पहले कभी न हुआ था। जेल और फाँसी उसके लिए आज भय की वस्तु नहीं, गौरव की वस्तु हो गयी थी ! सत्य का प्रत्यक्ष रूप आज उसने पहली बार देखा मानों वह कवच की भाँति उसकी रक्षा कर रहा हो।

5

गाँववालों के लिए कोदई का पकड़ लिया जाना लज्जाजनक मालूम हो रहा था। उनकी आँखों के सामने उनके चौधरी इस तरह पकड़ लिये गये और वे कुछ न कर सके। अब वे मुँह कैसे दिखायें ! हर एक मुख पर गहरी वेदना झलक रही थी जैसे गाँव लुट गया !

सहसा नोहरी ने चिल्लाकर कहा—अब सब जने खड़े क्या पछता रहे हो ? देख ली अपनी दुर्दशा, या अभी कुछ बाकी है ! आज तुमने देख लिया न कि हमारे ऊपर कानून से नहीं लाठी से राज हो रहा है ! आज हम इतने बेशरम हैं कि इतनी दुर्दशा होने पर भी कुछ नहीं बोलते ! हम इतने स्वार्थी, इतने कायर न होते, तो उनकी मजाल थी कि हमें कोड़ों से पीटते। जब तक तुम गुलाम बने रहोगे, उनकी सेवा-टहल करते रहोगे, तुम्हें भूसा चोकर मिलता रहेगा, लेकिन जिस दिन तुमने कंधा टेढ़ा किया, उसी दिन मार पड़ने लगेगी। कब तक इस तरह मार खाते रहोगे ? कब तक मुर्दों की तरह पड़े गिद्धों से अपने आपको नोचवाते रहोगे ? अब दिखा दो कि तुम भी जीते-जागते हो और तुम्हें भी अपनी इज्जत-आबरू का कुछ खयाल है। जब इज्जत ही न रही तो क्या करोगे खेती-बारी करके, धम कमा कर ? जी कर ही क्या करोगे ? क्या इसीलिए जी रहे हो-कि तुम्हारे बाल-बच्चे इसी तरह लातें खाते जायँ, इसी तरह कुचले जायँ ? छोड़ो यह कायरता ! आखिर एक दिन खाट पर पड़े-पड़े मर जाओगे। क्यों नहीं इस धरम की लड़ाई में आकर वीरों की तरह मरते! मैं तो बूढ़ी औरत हूँ, लेकिन और कुछ न कर सकूँगी, तो जहाँ यह लोग सोयेंगे वहां झाड़ू तो लगा दूँगी, इन्हें पंखा तो झलूँगी।

कोदई का बड़ा लड़का मैकू बोला—हमारे जीते-जी तुम जाओगी काकी, हमारे जीवन को धिक्कार है ! अभी तो हम तुम्हारे बालक जीते ही हैं। मैं चलता हूँ उधर ! खेती-बारी गंगा देखेगा।

गंगा उसका छोटा भाई था। बोला—भैया तुम यह अन्याय करते हो। मेरे रहते तुम नहीं जा सकते। तुम रहोगे, तो गिरस्ती सँभालोगे। मुझसे तो कुछ न होगा। मुझे जाने दो।

मैकू—इसे काकी पर छोड़ दो। इस तरह हमारी-तुम्हारी लड़ाई होगी। जिसे काकी का हुक्म हो वह जाय।

नोहरी ने गर्व से मुस्करा कर कहा—जो मुझे घूस देगा, उसी को जिताऊँगी।

मैकू—क्या तुम्हारी कचहरी में भी वही घूस चलेगा काकी ? हमने तो समझा था, यहाँ ईमान का फैसला होगा !

नोहरी—चलो रहने दो। मरती दायीं राज मिला है तो कुछ तो कमा लूँ।

गंगा हँसता हुआ बोला—मैं तुम्हें घूस दूँगा काकी। अबकी बाजार जाऊँगा, तो तुम्हारे लिए पूर्वी तमाखू का पत्ता लाऊँगा।

नोहरी—तो बस तेरी ही जीत है, तू ही जाना।

मैकू—काकी, तुम न्याय नहीं कर रही हो।

नोहरी—अदालत का फैसला कभी दोनों फरीक ने पसन्द किया है कि तुम्हीं करोगे ?

गंगा ने नोहरी के चरण छुए, फिर भाई से गले मिला और बोला—कल दादा को कहला भेजना कि मैं जाता हूँ।

एक आदमी ने कहा—मेरा भी नाम लिख लो भाई—सेवाराम।

सबने जय-घोष किया। सेवाराम आकर नायक के पास खड़ा हो गया।

दूसरी आवाज आयी—मेरा नाम लिख लो—भजनसिंह।

सबने जय-घोष किया। भजनसिंह जाकर नायक के पास खड़ा हो गया।

भजनसिंह दस-पाँच गाँवों में पहलवानी के लिए मशहूर था। यह अपनी चौड़ी छाती ताने, सिर उठाये नायक के पास खड़ा हुआ, तो जैसे मंडप के नीचे एक नये जीवन का उदय हो गया।

तुरन्त ही तीसरी आवाज आयी—मेरा नाम लिखो—घूरे।

यह गाँव का चौकीदार था। लोगों ने सिर उठा-उठाकर उसे देखा। सहसा किसी को विश्वास न आता था कि घूरे अपना नाम लिखायगा।

भजनसिंह ने हँसते हुए पूछा—तुम्हें क्या हुआ है घूरे ?

घूरे ने कहा—मुझे वही हुआ है, जो तुम्हें हुआ है। बीस साल तक गुलामी करते-करते थक गया।

फिर आवाज आयी—मेरा नाम लिखो—काले खाँ।

वह जमींदार का सहना था, बड़ा ही जाबिर और दबंग। फिर लोगों को आश्चर्य हुआ।

मैकू बोला—मालूम होता है, हमको लूट-लूटकर घर भर लिया है, क्यों।

काले खाँ गम्भीर स्वर में बोला—क्या जो आदमी भटकता रहे, उसे कभी सीधे रास्ते पर न आने दोगे भाई। अब तक जिसका नमक खाता था, उसका हुक्म बजाता था। तुमको लूट-लूटकर उसका घर भरता था। अब मालूम हुआ कि मैं बड़े भारी मुगालते में पड़ा हुआ था। तुम सब भाइयों को मैंने बहुत सताया है। अब मुझे माफी दो।

पाँचों रंगरूट एक-दूसरे से लिपटते थे, उछलते थे, चीखते थे, मानों उन्होंने सचमुच स्वराज्य पा लिया हो, और वास्तव में उन्हें स्वराज्य मिल गया था। स्वराज्य चित्त की वृत्तिमात्र है। ज्योंही पराधीनता का आतंक दिल से निकल गया, आपको स्वराज्य मिल गया। भय ही पराधीनता है, निर्भयता ही स्वराज्य है। व्यवस्था और संगठन तो गौण हैं।

नायक ने उन सेवकों को सम्बोधित करके कहा—मित्रो ! आप आज आजादी के सिपाहियों में आ मिले, इस पर मैं आपको बधाई देता हूँ। आपको मालूम है, हम किस तरह लड़ाई करने जा रहे हैं ? आपके ऊपर तरह-तरह की सख्तियाँ की जाएँगी, मगर याद रखिए, जिस तरह आज आपने मोह और लोभ का त्याग कर दिया है, उसी तरह हिंसा और क्रोध का भी त्याग कर दीजिए। हम धर्म संग्राम में जा रहे हैं। हमें धर्म के रास्ते पर जमा रहना होगा। आप इसके लिए तैयार हैं ?

पाँचों ने एक स्वर में कहा—तैयार हैं !

नायक ने आशीर्वाद दिया—ईश्वर आपकी मदद करे।

6

उस सुहावने-सुनहले प्रभात में जैसे उमंग घुली हुई थी। समीर के हलके-हलके झोंकों में, प्रकाश की हलकी-हलकी किरणों में उमंग सनी हुई थी। लोग जैसे दीवाने हो गये थे। मानों आजादी की देवी उन्हें अपनी ओर बुला रही हो। वही खेत-खलिहान हैं, वही बाग-बगीचे हैं, वही स्त्री-पुरुष हैं पर आज के प्रभात में जो आशीर्वाद है, जो वरदान है, जो विभूति है, वह और कभी न थी। वही खेत-खलिहान, बाग-बगीचे, स्त्री-पुरुष आज एक नयी विभूति में रंग गये हैं।

सूर्य निकलने के पहले ही कई हजार आदमियों का जमाव हो गया था। जब सत्याग्रहियों का दल निकला तो लोगों की मस्तानी आवाजों से आकाश गूँज उठा। नये सैनिकों की विदाई, उनकी रमणियों का कातर धैर्य, माता-पिता का आर्द्र गर्व, सैनिकों के परित्याग का दृश्य लोगों को मस्त किये देता था।

सहसा नोहरी लाठी टेकती हुई आ कर खड़ी हो गयी।

मैकू ने कहा—काकी, हमें आशीर्वाद दो।

नोहरी—मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ बेटा ! कितना आशीर्वाद लोगे ?

कई आदमियों ने एक स्वर से कहा—काकी, तुम चली जाओगी, तो यहाँ कौन रहेगा ?

नोहरी ने शुभ-कामना से भरे हुए स्वर में कहा—भैया, जाने के तो अब दिन ही हैं, आज न जाऊँगी, दो-चार महीने बाद जाऊँगी। अभी जाऊँगी, तो जीवन सफल हो जायगा। दो-चार महीने में खाट पर पड़े-पड़े जाऊँगी, तो मन की आस मन में ही रह जायगी। इतने बालक हैं, इनकी सेवा से मेरी मुकुत बन जायगी। भगवान् करे, तुम लोगों के सुदिन आयें और मैं अपनी ज़िंदगी में तुम्हारा सुख देख लूँ।

यह कहते हुए नोहरी ने सबको आशीर्वाद दिया और नायक के पास जाकर खड़ी हो गयी।

लोग खड़े देख रहे थे और जत्था गाता हुआ जाता था।

एक दिन वह था कि हम सारे जहाँ में फ़र्द थे,
एक दिन यह है कि हम-सा बेहया कोई नहीं।

नोहरी के पाँव जमीन पर न पड़ते थे, मानों विमान पर बैठी हुई स्वर्ग जा रही हो।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अप्रैल, 1930 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

पूस की रात

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली—तीन ही तो रुपये हैं; दे दोगे तो

कम्मल कहाँ से आवेगा ? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी। उससे कह दो, फसल पर रुपये दे देंगे। अभी नहीं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्मल के बिना हार में रात को वह किसी तरह नहीं जा सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों मरेंगे, बला सिर से टल जायगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला—ला दे दे, गला तो छूटे। कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गयी और आँखें तरेरती हुई बोली—कर चुके दूसरा उपाय ! जरा सुनूँ, कौन उपाय करोगे ? कोई खैरात दे देगा कम्मल ? न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते ? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूँगी—न दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला—तो क्या गाली खाऊँ ?

मुन्नी ने तड़पकर कहा—गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है ?

मगर यह कहने के साथ उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गयीं। हलकू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जन्तु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिये। फिर बोली—तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है ! मजूरी करके लाओ, वह उसी में झोंक दो, उस पर से धौंस।

हल्कू ने रुपये लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-कपटकर तीन रुपये कम्मल के लिए जमा किये थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

2

पूस की अंधेरी रात ! आकाश पर तारे ठिठुरते हुये मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊँख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट में मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा—क्यों जबरा, जाड़ा लगता है ? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आये थे। अब खाओ ठण्ड, मैं क्या करूँ। जानते थे, मैं यहाँ हलुवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार

जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा—कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह राँड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिए आ रही हे। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे ! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है ! और एक-एक भागवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घबराकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ-कम्मल। मजाल है कि जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की बखूबी है ! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें !

हल्कू उठा और गड्ढे में से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुये कहा, पियेगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, जरा मन बहल जाता है।

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हलकू—आज और जाड़ा खा ले। कल से मै। यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिये और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट; पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाये हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाये हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है; और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गन्ध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छतरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया; पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरह दौड़-दौड़ कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

3

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठंड कम न

हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है। सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जायँगे तब कहीं सवेरा होगा। अभी पहर भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो; मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा—अब तो नहीं रहा जाता जबरू ! चलो, बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँठे हो जायँगे, तो फिर आकर सोयेंगे। अभी तो रात बहुत है।

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अँधेरा छाया हुआ था और अन्धकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टप-टप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेहँदी के फूलों की खुशबू लिए हुए आया।

हल्कू ने कहा—कैसी अच्छी महक आई जबरू ! तुम्हारी नाक में भी सुगन्ध आ रही है ?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। उसे चिचोड़ रहा था।

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का एक ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पाँव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगीं। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अन्धकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हों। अन्धकार के उस अनन्त सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बगल में दबा ली और दोनों पाँव फैला दिये, मानो ठंड को ललकार रहा हो, तेरे जी में जो आये सो कर। ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा—क्यों जब्बर, अब ठंड नहीं लग रही है ?

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा—अब क्या ठंड लगती ही रहेगी।

'पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते।'

जबरा ने पूँछ हिलाई।

'अच्छा आओ, इस अलाव को कूद कर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चा, तो मैं दवा न करूंगा।'

जबरा ने उस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

'मुन्नी से कल न कह देना नहीं तो लड़ाई करेगी।'

यह कहता हुआ वह उछला और अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरों में जरा लपट लगी; पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा—चलो-चलो, इसकी सही नहीं। ऊपर से कूदकर आओ। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

4

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अंधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी; पर एक क्षण में फिर आंखें बन्द कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गयी थी; पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाये लेता था।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुण्ड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुण्ड था। उनके कूदने-दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वह खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनायी देने लगी।

उसने दिल में कहा—नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ ! अब तो कुछ नहीं सुनायी देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ।

उसने जोर से आवाज लगायी—जबरा, जबरा।

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ था। इस जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगायी—लिहो-लिहो ! लिहो ! !

जबरा भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी; पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला; पर एकाएक हवा का ऐसा ठण्डा, चुभनेवाला, बिच्छू के डंक का-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठण्डी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़ डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थीं। और हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सबेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गयी थी। और मुन्नी कह रही थी—क्या आज सोते ही रहोगे ? तुम यहाँ आकर रम गये और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हल्कू ने उठकर कहा—क्या तू खेत से होकर आ रही है ?

मुन्नी बोली—हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता है ! तुम्हारे मड़ैया डालने से क्या हुआ ?

हल्कू ने बहाना किया—मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ, कि मैं ही जानता हूँ।

दोनों फिर खेत की डाँड़ पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है, और जबरा मड़ैया के नीचे चित लेटा है;

मानों प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छाई थी। पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा—अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न-मुख से कहा—रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', मई, 1930 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

शराब की दूकान

कांग्रेस-कमेटी में यह सवाल पेश था—शराब और ताड़ी की दूकानों पर कौन धरना देने जाय ? कमेटी के पच्चीस मेम्बर सिर झुकाये बैठे थे; पर किसी के मुँह से बात न निकलती थी। मुआमला बड़ा नाज़ुक था। पुलिस के हाथों गिरफ्तार हो जाना तो ज्यादा मुश्किल बात न थी। पुलिस के कर्मचारी अपनी जिम्मेदारियों को समझते हैं। चूंकि अच्छे और बुरे तो सभी जगह होते है, लेकिन पुलिस के अफसर, कुछ लोगों को छोड़ कर, सभ्यता से इतने खाली नहीं होते कि जाति और देश पर जान देनेवालों के साथ दुर्व्यवहार करें; लेकिन नशेबाजों में यह जिम्मेदारी कहाँ ? उनमें तो अधिकांश ऐसे लोग होते हैं, जिन्हें घुड़की-धमकी के सिवा और किसी शक्ति के सामने झुकने की आदत नहीं। मारपीट से नशा हिरन हो सकता है; पर शांतवादियों के लिए तो वह दरवाजा बंद है। तब कौन इस ओखली में सिर दे, कौन पियक्कड़ों की गालियां खाय ? बहुत सम्भव है कि वे हाथापाई कर बैठें। उनके हाथों पिटना किसे मंजूर हो सकता था ? फिर पुलिसवाले भी बैठे तमाशा न देखेंगे। उन्हें और भी भड़काते रहेंगे। पुलिस की शह पा कर ये नशे के बंदे जो कुछ न कर डालें, वह थोड़ा ! ईट का जवाब पत्थर से दे नहीं सकते और इस समुदाय पर विनती का कोई असर नहीं !

एक मेम्बर ने कहा—मेरे विचार में तो इन जातों में पंचायतों को फिर सँभालना

चाहिए। इधर हमारी लापरवाही से उनकी पंचायतें निर्जीव हो गयी हैं। इसके सिवा मुझे तो और कोई उपाय नहीं सूझता।

सभापति ने कहा—हाँ, यह एक उपाय है। मैं इसे नोट किये लेता हूँ, पर धरना देना जरूरी है।

दूसरे महाशय बोले—उनके घरों पर जा कर समझाया जाय, तो अच्छा असर होगा।

सभापति ने अपनी चिकनी खोपड़ी सहलाते हुए कहा—यह भी अच्छा उपाय है; मगर धरने को हम लोग त्याग नहीं सकते।

फिर सन्नाटा हो गया।

पिछली कतार में एक देवी भी मौन बैठी हुई थी। जब कोई मेम्बर बोलता वह एक नजर उसकी तरफ डाल कर फिर सिर झुका लेती थीं। यही कांग्रेस की लेडी मेम्बर थीं। उनके पति महाशय जी. पी. सक्सेना कांग्रेस के अच्छे काम करनेवालों में थे। उनका देहांत हुए तीन साल हो गये थे। मिसेज सक्सेना ने इधर एक साल से कांग्रेस के कामों में भाग लेना शुरू कर दिया था और कांग्रेस कमेटी ने उन्हें अपना मेम्बर चुन लिया था। वह शरीफ घरानों में जा कर स्वदेशी और खद्दर का प्रचार करती थीं। जब कभी कांग्रेस के प्लेटफार्म पर बोलने खड़ी होतीं तो उनका जोश देख कर ऐसा मालूम होता था, आकाश में उड़ जाना चाहती हैं। कुंदन का-सा रंग लाल हो जाता था, बड़ी-बड़ी करुण आँखें जिनमें जल भरा हुआ मालूम होता था, चमकने लगती थीं। बड़ी खुशमिजाज और इसके साथ बला की निर्भीक स्त्री थीं। दबी हुई चिनगारी थी, जो हवा पाकर दहक उठती है। उसके मामूली शब्दों में इतना आकर्षण कहाँ से आ जाता था, कह नहीं सकते। कमेटी के कई जवान मेम्बर, जो पहले कांग्रेस में बहुत कम आते थे, अब बिला नागा आने लगे थे। मिसेज सक्सेना कोई भी प्रस्ताव करें, उनका अनुमोदन करनेवालों की कमी न थी। उनकी सादगी, उनका उत्साह, उनकी विनय, उनकी मृदु-वाणी कांग्रेस पर उनका सिक्का जमाये देती थी। हर आदमी उनकी खातिर सम्मान की सीमा तक करता था, पर उनकी स्वाभाविक नम्रता उन्हें अपने दैवी साधनों से पूरा-पूरा फायदा न उठाने देती थी। जब कमरे में आतीं, लोग खड़े हो जाते थे; पर वह पिछली सफ से आगे न बढ़ती थीं।

मिसेज सक्सेना ने प्रधान से पूछा—शराब की दूकानों पर औरतें धरना दे सकती हैं?

सबकी आँखें उनकी ओर उठ गयीं। इस प्रश्न का आशय सब समझ गये।

प्रधान ने कातर स्वर में कहा—महात्मा जी ने तो यह काम औरतों ही को सुपुर्द करने पर जोर दिया है पर...

मिसेज सक्सेना ने उन्हें अपना वाक्य पूरा न करने दिया। बोलीं—तो फिर मुझे इस काम पर भेज दीजिए।

लोगों ने कुतूहल की आँखों से मिसेज सक्सेना को देखा। यह सुकुमारी जिसके कोमल अंगों में शायद हवा भी चुभती हो, गंदी गलियों में ताड़ी और शराब की दुर्गंध-भरी दूकानों के सामने जाने और नशे से पागल आदमियों की कलुषित आँखों और बाँहों का सामना करने को कैसे तैयार हो गयी।

एक महाशय ने अपने समीप के आदमी के कान में कहा—बला की निडर औरत है।

उन महाशय ने जले हुए शब्दों में उत्तर दिया—हम लोगों को काँटों में घसीटना

चाहती है, और कुछ नहीं। वह बेचारी क्या पिकेटिंग करेंगी। दूकान के सामने खड़ा तक तो हुआ न जायेगा।

प्रधान ने सिर झुका कर कहा—मैं आपके साहस और उत्सर्ग की प्रशंसा करता हूँ, लेकिन मेरे विचार में अभी इस शहर की दशा ऐसी नहीं है कि देवियाँ पिकेटिंग कर सकें। आपको खबर नहीं, नशेबाज कितने मुँहफट होते हैं। विनय तो वह जानते ही नहीं !

मिसेज सक्सेना ने व्यंग्य-भाव से कहा—तो क्या आपका विचार है कि कोई ऐसा जमाना भी आयेगा, जब शराबी लोग विनय और शील के पुतले बन जायेंगे ? यह दशा तो हमेशा ही रहेगी। आखिर महात्माजी ने कुछ समझ कर ही तो औरतों को यह काम सौंपा है। मैं नहीं कह सकती कि मुझे कहाँ तक सफलता होगी; पर इस कर्तव्य को टालने से काम न चलेगा।

प्रधान ने पसोपेश में पड़ कर कहा—मैं तो आपको इस काम के लिए घसीटना उचित नहीं समझता, आगे आपको अख्तियार है।

मिसेज सक्सेना ने जैसे विनय का आलिंगन करते हुए कहा—मैं आपके पास फरियाद ले कर न आऊँगी कि मुझे फलाँ आदमी ने मारा या गाली दी। इतना जानती हूँ कि अगर मैं सफल हो गयी, तो ऐसी स्त्रियों की कमी न रहेगी जो इस काम को सोलहो आने अपने हाथ में न ले लें।

इस पर एक नौजवान मेम्बर ने कहा—मैं सभापति जी से निवेदन करूँगा कि मिसेज सक्सेना को यह काम दे कर आप हिंसा का सामना कर रहे हैं। इससे यह कहीं अच्छा है कि आप मुझे यह काम सौंपें।

मिसेज सक्सेना ने गर्म होकर कहा—आपके हाथों हिंसा होने का डर और भी ज्यादा है।

इस नौजवान मेम्बर का नाम था जयराम। एक बार एक कड़ा व्याख्यान देने के लिए जेल हो आये थे, पर उस वक्त उनके सिर गृहस्थी का भार न था। कानून पढ़ते थे। अब उनका विवाह हो गया था, दो-तीन बच्चे भी हो गये थे, दशा बदल गयी थी। दिल में वही जोश, वही तड़प, वही दर्द था, पर अपनी हालत से मजबूर थे।

मिसेज सक्सेना की ओर नम्र आग्रह से देख कर बोले—आप मेरी खातिर इस गंदे काम में हाथ न डालें। मुझे एक सप्ताह का अवसर दीजिए। अगर इस बीच में कहीं दंगा हो जाये, तो आपको मुझे निकाल देने का अधिकार होगा।

मिसेज सक्सेना जयराम को खूब जानती थीं। उन्हें मालूम था कि यह त्याग और साहस का पुतला है और अब तक परिस्थितियों के कारण पीछे दबका हुआ था। इसके साथ ही वह यह भी जानती थीं कि इसमें वह धैर्य और बर्दाश्त नहीं है, जो पिकेटिंग के लिए लाजमी है। जेल में उसने दारोगा को अपशब्द कहने पर चाँटा लगाया था और उसकी सजा तीन महीने और बढ़ गयी थी। बोली—आपके सिर गृहस्थी का भार है। मैं घमंड नहीं करती पर जितने धैर्य से मैं यह काम कर सकती हूँ, आप नहीं कर सकते।

जयराम ने उसी नम्र आग्रह के साथ कहा—आप मेरे पिछले रेकार्ड पर फैसला कर रही हैं। आप भूल जाती हैं कि आदमी की अवस्था के साथ उसकी उद्दंडता घटती जाती है।

प्रधान ने कहा—मैं चाहता हूँ, महाशय जयराम इस काम को अपने हाथों में लें।

जयराम ने प्रसन्न हो कर कहा—मैं सच्चे हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ।

मिसेज सक्सेना ने निराश हो कर कहा—महाशय, जयराम, आपने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है और मैं इसे कभी क्षमा न करूँगी। आप लोगों ने इस बात का आज नया परिचय दे दिया कि पुरुषों के अधीन स्त्रियाँ अपने देश की सेवा भी नहीं कर सकतीं।

2

दूसरे दिन, तीसरे पहर जयराम पाँच स्वयंसेवकों को ले कर बेगमगंज के शराबखाने की पिकेटिंग करने जा पहुँचा। ताड़ी और शराब—दोनों की दूकानें मिली हुई थीं। ठीकेदार भी एक ही था। दूकान के सामने, सड़क की पटरी पर, अंदर के आँगन में नशेबाजों की टोलियाँ विष में अमृत का आनंद लूट रही थीं। कोई वहाँ अफलातून से कम न था। कहीं वीरता की डींग थी, कहीं अपने दान-दक्षिणा के पचड़े, कहीं अपने बुद्धि-कौशल का आलाप। अहंकार नशे का मुख्य रूप है।

एक बूढ़ा शराबी कह रहा था—भैया, जिंदगानी का भरोसा नहीं। हाँ, कोई भरोसा नहीं। मेरी बात मान लो, जिंदगानी का कोई भरोसा नहीं। बस यही खाना-खिलाना याद रह जायेगा। धन-दौलत, जगह-जमीन सब धरी रह जायेगी !

दो ताड़ीवालों में एक दूसरी बहस छिड़ी हुई थी।—

'हम-तुम रिआया हैं भाई ! हमारी मजाल है कि सरकार के सामने सिर उठा सकें ?'

'अपने घर में बैठकर बादशाह को गालियाँ दे लो, लेकिन मैदान में आना कठिन है।'

'कहाँ की बात भैया, सरकार तो बड़ी चीज है, लाल पगड़ी देख कर तो घर भाग जाते हो।'

'छोटा आदमी भर-पेट खाके बैठता है, तो समझता है, अब बादशाह हमीं हैं। लेकिन अपनी हैसियत को भूलना न चाहिए।'

'बहुत पक्की बात कहते हो खाँ साहब। अपनी असलियत पर डटे रहो। जो राजा है, वह राजा है, जो परजा है, वह परजा है। भला परजा कहीं राजा हो सकता है ?'

इतने में जयराम ने आ कर कहा—राम राम भाइयो राम राम !

पाँच-छह खद्दरधारी मनुष्यों को देख कर सभी लोग उनकी ओर शंका और कुतूहल से ताकने लगे। दूकानदार ने चुपके से अपने एक नौकर के कान में कुछ कहा और नौकर दूकान से उतर कर चला गया।

जयराम ने झंडे को जमीन पर खड़ा करके कहा—भाइयो, महात्मा गांधी का हुक्म है कि आप लोग ताड़ी-शराब न पियें। जो रुपये आप यहाँ उड़ा देते हैं, वह अगर अपने बाल-बच्चों को खिलाने पिलाने में खर्च करें, तो कितनी अच्छी बात हो। जरा देर के नशे के लिए आप अपने बाल-बच्चों को भूखों मारते हैं। गंदे घरों में रहते हैं, महाजन की गालियाँ खाते हैं। सोचिए, इस रुपये से आप अपने प्यारे बच्चों को कितने आराम से रख सकते हैं !

एक बूढ़े शराबी ने अपने साथी से कहा—भैया, है तो बुरी चीज, घर तबाह करके छोड़ देती है। मुदा इतनी उमर पीते कट गयी, तो अब मरते दम क्या छोड़ें ? उसके साथी

ने समर्थन किया—पक्की बात कहते हो चौधरी ! जब इतनी उमिर पीते कट गयी, तो अब मरते दम क्या छोड़ें ?

जयराम ने कहा—वाह चौधरी यही तो उमिर है छोड़ने की। जवानी तो दीवानी होती है, उस वक्त सब कुछ मुआफ है।

चौधरी ने तो कोई जवाब न दिया; लेकिन उसके साथी ने जो काला, मोटा, बड़ी-बड़ी मूँछोंवाला आदमी था, सरल आपत्ति के भाव से कहा—अगर पीना बुरा है, तो अँगरेज़ क्यों पीते हैं ?

जयराम वकील था, उससे बहस करना भिड़ के छत्ते को छेड़ना था। बोला—यह तुमने बहुत अच्छा सवाल पूछा भाई। अँगरेजों के बाप-दादा अभी डेढ़-दो सौ साल पहले लुटेरे थे। हमारे-तुम्हारे बाप-दादा ऋषि-मुनि थे। लुटेरों की संतान पिये, तो पीने दो। उनके पास न कोई धर्म है, न नीति; लेकिन ऋषियों की संतान उनकी नकल क्यों करे। हम और तुम उन महात्माओं की संतान हैं, जिन्होंने दुनिया को सिखाया, जिन्होंने दुनिया को आदमी बनाया। हम अपना धर्म छोड़ बैठे, उसी का फल है कि आज हम गुलाम हैं। लेकिन अब हमने गुलामी की जंजीरों को तोड़ने का फैसला कर लिया है और...

एकाएक थानेदार और चार-पाँच कांस्टेबल आ खड़े हुए।

थानेदार ने चौधरी से पूछा—यह लोग तुमको धमका रहे हैं ?

चौधरी ने खड़े हो कर कहा—नहीं हुजूर, यह तो हमें समझा रहे हैं। कैसे प्रेम से समझा रहे हैं कि वाह !

थानेदार ने जयराम से कहा—अगर यहाँ फिसाद हो जाय, तो आप जिम्मेदार होंगे ?

जयराम—मैं उस वक्त तक ज़िम्मेदार हूँ, जब तक आप न रहें।

'आपका मतलब है कि मैं फिसाद कराने आया हूँ ?'

'मैं यह नहीं कहता, लेकिन आप आये हैं, तो अंगरेजी साम्राज्य की अतुल शक्ति का परिचय जरूर ही दीजिएगा। जनता में उत्तेजना फैलेगी। तब आप पिल पड़ेंगे और दस-बीस आदमियों को मार गिरायेंगे। वही सब जगह होता है और यहाँ भी होगा।'

सब इन्स्पेक्टर ने ओंठ चबा कर कहा—मैं आपसे कहता हूँ, यहाँ से चले जाइए, वरना मुझे जाबते की कार्रवाई करनी पड़ेगी।

जयराम ने अविचल भाव से कहा—और मैं आपसे कहता हूँ कि आप मुझे अपना काम करने दीजिए। मेरे बहुत-से भाई यहाँ जमा हैं और मुझे उनसे बातचीत करने का उतना ही हक है जितना आपको।

इस वक्त तक सैकड़ों दर्शक जमा हो गये थे। दारोगा ने अफसरों से पूछे बगैर और कोई कार्रवाई करना उचित न समझा। अकड़ते हुए दूकान पर गये और कुर्सी पर पाँव रख कर बोले—ये लोग तो माननेवाले नहीं हैं !

दूकानदार ने गिड़गिडाकर कहा—हुजूर, मेरी तो बधिया बैठ जायेगी।

दारोगा—दो-चार गुंडे बुला कर भगा क्यों नहीं देते ? मैं कुछ न बोलूँगा। हाँ, जरा एक बोतल अच्छी-सी भेज देना। कल न जाने क्या भेज दिया, कुछ मजा ही नहीं आया।

थानेदार चला गया, तो चौधरी ने अपने साथी से कहा—देखा कल्लू, थानेदार कितना बिगड़ रहा था ? सरकार चाहती है कि हम लोग खूब शराब पीयें और कोई हमें समझाने न

पाये। शराब का पैसा भी तो सरकार ही में जाता है ?

कल्लू ने दार्शनिक भाव से कहा—हर एक बहाने से पैसा खींचते हैं सब !

चौधरी—तो फिर क्या सलाह है ? है तो बुरी चीज ?

कल्लू—बहुत बुरी चीज है भैया, महात्मा जी का हुक्म है, तो छोड़ ही देना चाहिए।

चौधरी—अच्छा तो यह लो, आज से अगर पिये तो दोगला।

यह कहते हुए चौधरी ने बोतल जमीन पर पटक दी। आधी बोतल शराब जमीन पर बह कर सूख गयी।

जयराम को शायद जिंदगी में कभी इतनी ख़ुशी न हुई थी। जोर-जोर से तालियाँ बजा कर उछल पड़े।

उसी वक्त दोनों ताड़ी पीनेवालों ने भी 'महात्मा जी की जय' पुकारी और अपनी हाँड़ी जमीन पर पटक दी। एक स्वयंसेवक ने लपक कर फूलों की माला ली और चारों आदमियों के गले में डाल दी।

3

सड़क की पटरी पर कई नशेबाज बैठे इन चारों आदमियों की तरफ उस दुर्बल भक्ति से ताक रहे थे, जो पुरुषार्थहीन मनुष्यों का लक्षण है। वहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति न था, जो अँगरेजों की मांस-मदिरा या ताड़ी को जिंदगी के लिए अनिवार्य समझता हो और उसके बगैर जिंदगी की कल्पना भी न कर सके। सभी लोग नशे को दूषित समझते थे, केवल दुर्बलेन्द्रिय होने के कारण नित्य आ कर पी जाते थे। चौधरी जैसे घाघ पियक्कड़ को बोतल पटकते देख कर उनकी आँखें खुल गयीं।

एक मरियल दाढ़ीवाले आदमी ने आकर चौधरी की पीठ ठोंकी। चौधरी ने उसे पीछे ढकेल कर कहा—पीठ क्या ठोंकते हो जी, जाकर अपनी बोतल पटक दो।

दाढ़ीवाले ने कहा—आज और पी लेने दो चौधरी ! अल्लाह जानता है, कल से इधर भूल कर भी न आऊँगा।

चौधरी—जितनी बची हो, उसके पैसे हमसे ले लो। घर जा कर बच्चों को मिठाई खिला देना।

दाढ़ीवाले ने जा कर बोतल पटक दी और बोला—लो, तुम भी क्या कहोगे ? अब तो हुए खुश।

चौधरी—अब तो न पीयोगे कभी ?

दाढ़ीवाले ने कहा—अगर तुम न पीयोगे, तो मैं भी न पीऊँगा। जिस दिन तुमने पी, उसी दिन फिर शुरू कर दी।

चौधरी की तत्परता ने दुराग्रह की जड़ें हिला दीं। बाहर अभी पाँच-छह आदमी और थे। वे सचेत निर्लज्जता से बैठे हुए अभी तक पीते जाते थे। जयराम ने उनके सामने जा कर कहा—भाइयो, आपके पाँच भाइयों ने अभी आपके सामने अपनी-अपनी बोतल पटक दी। क्या आप उन लोगों को बाजी जीत ले जाने देंगे ?

एक ठिगने, काले आदमी ने जो किसी अँगरेज़ का खानसामा मालूम होता था,

लाल-लाल आँखें निकाल कर कहा—हम पीते हैं तुमसे मतलब ? तुमसे भीख माँगने तो नहीं जाते ?

जयराम ने समझ लिया, अब बाजी मार ली। गुमराह आदमी जब विवाद करने पर उतर आये, तो समझ लो, वह रास्ते पर आ जायेगा। चुप्पा ऐब वह चिकना घड़ा है, जिस पर किसी बात का असर नहीं होता।

जयराम ने कहा—अगर मैं अपने घर में आग लगाऊँ तो उसे देख कर क्या आप मेरा हाथ न पकड़ लेंगे ? मुझे तो इसमें रत्ती भर संदेह नहीं है कि आप मेरा हाथ ही न पकड़ लेंगे बल्कि मुझे वहाँ से जबरदस्ती खींच ले जायेंगे।

चौधरी ने खानसामा की तरफ मुग्ध आँखों से देखा, मानों कह रहा है—इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है ? और बोला—जमादार, अब इसी बात पर बोतल पटक दो।

खानसामा ने जैसे काट खाने के लिए दाँत तेज कर लिये और बोला—बोतल क्यों पटक दूँ, पैसे नहीं दिये हैं ?

चौधरी परास्त हो गया। जयराम से बोला—इन्हें छोड़िए बाबू जी यह लोग इस तरह माननेवाले असामी नहीं हैं। आप इनके सामने जान भी दे दें तो भी शराब न छोड़ेंगे। हाँ, पुलिस की एक घुड़की पा जायें तो फिर कभी इधर भूल कर भी न आयें।

खानसामा ने चौधरी की ओर तिरस्कार के भाव से देखा, जैसे कह रहा हो—क्या तुम समझते हो कि मैं ही मनुष्य हूँ, यह सब पशु हैं ? फिर बोला—तुमसे क्या मतलब है जी, क्यों बीच में कूद पड़ते हो ? मैं तो बाबू जी से बात कर रहा हूँ। तुम कौन होते हो बीच में बोलनेवाले ? मैं तुम्हारी तरह नहीं हूँ कि बोतल पटक कर वाह-वाह कराऊँ। कल फिर मुँह में कालिख लगाऊँ, घर पर मँगवा कर पीऊँ ? जब यहाँ छोड़ेंगे, तो सच्चे दिल से छोड़ेंगे। फिर कोई लाख रुपये भी दे तो आँख उठा कर न देखें।

जयराम—मुझे आप लोगों से ऐसी ही आशा है।

चौधरी ने खानसामा की ओर कटाक्ष करके कहा—क्या समझते हो, मैं कल फिर पीने आऊँगा ?

खानसामा ने उद्दंडता से कहा—हाँ-हाँ, कहता हूँ तुम आओगे और बद कर आओगे। कहो, पक्के कागज पर लिख दूँ।

चौधरी—अच्छा भाई, तुम बड़े धरमात्मा हो, मैं पापी सही। तुम छोड़ोगे तो जिंदगी भर के लिए छोड़ोगे, मैं आज छोड़ कर कल फिर पीने लगूँगा, यही सही। मेरी एक बात गाँठ बाँध लो। तुम उस बखत छोड़ोगे, जब जिंदगी तुम्हारा साथ छोड़ देगी। इसके पहले तुम नहीं छोड़ सकते।

खानसामा—तुम मेरे दिल का हाल क्या जानते हो ?

चौधरी—जानता हूँ, तुम्हारे जैसे सैकड़ों आदमी को भुगत चुका हूँ।

खानसामा—तो तुमने ऐसे-वैसे बेशर्मों को देखा होगा। हयादार आदमियों को न देखा होगा।

यह कहते हुए उसने जा कर बोतल पटक दी और बोला—अब अगर तुम इस दूकान पर देखना, तो मुँह में कालिख लगा देना।

चारों तरफ तालियाँ बजने लगीं। मर्द ऐसे होते हैं।

ठीकेदार ने दूकान के नीचे उतर कर कहा—तुम लोग अपनी-अपनी दूकान पर क्यों नहीं जाते जी ? मैं तो किसी की दूकान पर नहीं जाता ?

एक दर्शक ने कहा—खड़े हैं, तो तुमसे मतलब ? सड़क तुम्हारी नहीं है ? तुम गरीबों को लूटे जाओ। किसी के बाल-बच्चे भूखों मरें तुम्हारा क्या बिगड़ता है। (दूसरे शराबियों से) क्या यारो, अब भी पीते जाओगे ! जानते हो, यह किसका हुक्म है ? अरे कुछ भी तो शर्म हो ?

जयराम ने दर्शकों से कहा—आप लोग यहाँ भीड़ न लगायें और न किसी को भला-बुरा कहें !

मगर दर्शकों का समूह बढ़ता जाता था। अभी तक चार-पाँच आदमी बे-गम बैठे हुए कुल्हड़ पर कुल्हड़ चढ़ा रहे थे। एक मनचले आदमी ने जा कर उस बोतल को उठा लिया, जो उनके बीच में रखी हुई थी और उसे पटकना चाहता था कि चारों शराबी उठ खड़े हुए और उसे पीटने लगे। जयराम और उसके स्वयंसेवक तुरन्त वहाँ पहुँच गये और उसे बचाने की चेष्टा करने लगे कि चारों उसे छोड़ कर जयराम की तरफ लपके। दर्शकों ने देखा कि जयराम पर मार पड़ा चाहती है, तो कई आदमी झल्ला कर उन चारों शराबियों पर टूट पड़े। लातें, घूँसे और डंडे चलाने लगे। जयराम को इसका कुछ अवसर न मिलता था कि किसी को समझाये। दोनों हाथ फैलाये उन चारों के वारों से बच रहा था; वह चारों भी आपे से बाहर हो कर दर्शकों पर डंडे चला रहे थे। जयराम दोनों तरफ से मार खाता था। शराबियों के वार भी उस पर पड़ते थे, तमाशाइयों के वार भी उसी पर पड़ते थे, पर वह उनके बीच से हटता न था। अगर वह इस वक्त अपनी जान बचा कर हट जाता, तो शराबियों की खैरियत न थी। इसका दोष काँग्रेस पर पड़ता। वह काँग्रेस को इस आक्षेप से बचाने के लिए अपने प्राण देने पर तैयार था। मिसेज सक्सेना को अपने ऊपर हँसने का मौका वह न देना चाहता था।

आखिर उसके सिर पर डंडा इस जोर से पड़ा कि वह सिर पकड़ कर बैठ गया। आँखों के सामने तितलियाँ उड़ने लगीं। फिर उसे होश न रहा।

4

जयराम सारी रात बेहोश पड़ा रहा। दूसरे दिन सुबह को जब उसे होश आया, तो सारी देह में पीड़ा हो रही थी और कमजोरी इतनी थी कि रह-रह कर जी डूबता जाता था। एकाएक सिरहाने की तरफ आँख उठ गयी, तो मिसेज सक्सेना बैठी नजर आयीं। उन्हें देखते ही स्वयंसेवकों के मना करने पर भी उठ बैठा। दर्द और कमजोरी दोनों जैसे गायब हो गयीं। एक-एक अंग में स्फूर्ति दौड़ गयी।

मिसेज सक्सेना ने उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—आपको बड़ी चोट आयी। इसका सारा दोष मुझ पर है।

जयराम ने भक्तिमय कृतज्ञता के भाव से देख कर कहा—चोट तो ऐसी ज्यादा न थी, इन लोगों ने बरबस पट्टी-सट्टी बाँध कर जख्मी बना दिया।

मिसेज सक्सेना ने ग्लानित होकर कहा—मुझे आपको न जाने देना चाहिए था।

जयराम—आपका वहाँ जाना उचित न था। मैं आपसे अब भी यही अनुरोध करूँगा

कि उस तरफ न जाइएगा।

मिसेज सक्सेना ने जैसे उन बाधाओं पर हँस कर कहा—वाह ! मुझे आज से वहाँ पिकेट करने की आज्ञा मिल गयी है।

'आप मेरी इतनी विनय मान जाइएगा। शोहदों के लिए आवाज कसना बिलकुल मामूली बात है।'

'मैं आवाजों की परवाह नहीं करती !'

'तो फिर मैं भी आपके साथ चलूँगा।'

'आप इस हालत में ?'—मिसेज सक्सेना ने आश्चर्य से कहा।

'मैं बिलकुल अच्छा हूँ, सच !'

'यह नहीं हो सकता। जब तक डाक्टर यह न कह देगा कि अब आप वहाँ जाने के योग्य हैं, आपको न जाने दूँगी। किसी तरह नहीं।'

'तो मैं भी आपको न जाने दूँगा।'

मिसेज सक्सेना ने मृदु-व्यंग्य के साथ कहा—आप भी अन्य पुरुषों ही की भाँति स्वार्थ के पुतले हैं। सदा यश खुद लूटना चाहते हैं, औरतों को कोई मौका नहीं देना चाहते। कम से कम यह तो देख लीजिए कि मैं भी कुछ कर सकती हूँ या नहीं।

जयराम ने व्यथित कंठ से कहा—जैसी आपकी इच्छा।

5

तीसरे पहर मिसेज सक्सेना चार स्वयंसेवकों के साथ बेगमगंज चलीं।

जयराम आँखें बंद किये चारपाई पर पड़ा था। शोर सुन कर चौंका और अपनी स्त्री से पूछा—यह कैसा शोर है ?

स्त्री ने खिड़की से झाँककर देखा और बोली—वह औरत, जो कल आयी थी झंडा लिये कई आदमियों के साथ जा रही है। इसे शर्म भी नहीं आती।

जयराम ने उसके चेहरे पर क्षमा की दृष्टि डाली और विचार में डूब गया। फिर वह उठ खड़ा हुआ और बोला—मैं भी वहीं जाता हूँ।

स्त्री ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—अभी कल मार खा कर आये हो, आज फिर जाने की सूझी !

जयराम ने हाथ छुड़ा कर कहा—तुम उसे मार कहती हो, मैं उसे उपहार समझता हूँ।

स्त्री ने उसका रास्ता रोक लिया—कहती हूँ, तुम्हारा जी अच्छा नहीं है, मत जाओ, क्यों मेरी जान के गाहक हुए हो ? उसकी देह में हीरे नहीं जड़े हैं, जो वहाँ कोई नोच लेगा।

जयराम ने मिन्नत करके कहा—मेरी तबीयत बिलकुल अच्छी है चम्पू ! अगर कुछ कसर है तो वह भी मिट जायेगी। भला सोचो, यह कैसे मुमकिन है कि एक देवी उन शोहदों के बीच में पिकेटिंग करने जाय और मैं बैठा रहूँ। मेरा वहाँ रहना जरूरी है। अगर कोई बात आ पड़ी, तो कम से कम मैं लोगों को समझा तो सकूँगा।

चम्पू ने जल कर कहा—यह क्यों नहीं कहते कि कोई और ही चीज खींचे लिये जाती है !

जयराम ने मुस्करा कर उसकी ओर देखा, जैसे कह रहा हो—यह बात तुम्हारे दिल से

नहीं, कंठ से निकल रही है और कतरा कर निकल गया। फिर द्वार पर खड़ा हो कर बोला —शहर में तीन लाख से कुछ ही कम आदमी हैं, कमेटी में भी तीस मेम्बर हैं, मगर सब के सब जी चुरा रहे हैं। लोगों को अच्छा बहाना मिल गया कि शराबखानों पर धरना देने के लिए स्त्रियों ही की जरूरत है? आखिर क्यों स्त्रियों ही को इस काम के लिए उपयुक्त समझा जाता है ? इसीलिए कि मरदों के सिर भूत सवार हो जाता है और जहाँ नम्रता से काम लेना चाहिए, वहाँ लोग उग्रता से काम लेने लगते हैं। वे देवियाँ क्या इसी योग्य हैं कि शोहदों के फ़िकरे सुनें और उनकी कुदृष्टि का निशाना बनें ? कम से कम मैं यह नहीं देख सकता।

वह लँगड़ाता हुआ घर से निकल पड़ा। चम्पू ने फिर उसे रोकने का प्रयास नहीं किया। रास्ते में एक स्वयंसेवक मिल गया। जयराम ने उसे साथ लिया और एक ताँगे पर बैठ कर चला। शराबखाने से कुछ दूर इधर एक लेमनेड-बर्फ की दूकान थी। उसने ताँगे को छोड़ दिया और वालंटियर को शराबखाने भेज कर खुद उसी दूकान में जा बैठा।

दूकानदार ने लेमनेड का एक गिलास उसे देते हुए कहा—बाबू जी, कलवाले चारों बदमाश आज फिर आये हुए हैं। आपने न बचाया होता तो आज शराब या ताड़ी की जगह हल्दी-गुड़ पीते होते।

जयराम ने गिलास लेकर कहा—तुम लोग बीच में न कूद पड़ते, तो मैंने उन सबों को ठीक कर लिया होता।

दूकानदार ने प्रतिवाद किया—नहीं बाबू जी, वह सब छँटे हुए गुंडे हैं। मैं तो उन्हें अपनी दूकान के सामने खड़ा भी नहीं होने देता। चारों तीन-तीन साल काट आये हैं।

अभी बीस मिनट भी न गुजरे होंगे कि एक स्वयंसेवक आकर खड़ा हो गया। जयराम ने सचिंत होकर पूछा—कहो, वहाँ क्या हो रहा है ?

स्वयंसेवक ने कुछ ऐसा मुँह बना लिया, जैसे वहाँ की दशा कहना वह उचित नहीं समझता और बोला—कुछ नहीं, देवी जी आदमियों को समझा रही हैं।

जयराम ने उसकी ओर अतृप्त नेत्रों से ताका, मानों कह रहे हों—बस इतना ही ! इतना तो मैं जानता ही था।

स्वयंसेवक ने एक क्षण बाद फिर कहा—देवियों का ऐसे शोहदों के सामने जाना अच्छा नहीं।

जयराम ने अधीर होकर पूछा—साफ-साफ क्यों नहीं कहते, क्या बात है।

स्वयंसेवक डरते-डरते बोला—सब के सब उनसे दिल्लगी कर रहे हैं। देवियों का यहाँ आना अच्छा नहीं।

जयराम ने और कुछ न पूछा। डंडा उठाया और लाल-लाल आँखें निकाले बिजली की तरह कौंध कर शराबखाने के सामने जा पहुँचा और मिसेज सक्सेना का हाथ पकड़ कर पीछे हटाता हुआ शराबियों से बोला—अगर तुम लोगों ने देवियों के साथ ज़रा भी गुस्ताखी की, तो तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा। कल मैंने तुम लोगों की जान बचायी थी आज इसी डंडे से तुम्हारी खोपड़ी तोड़ कर रख दूँगा।

उसके बदले हुए तेवर को देख कर सब के सब नशेबाज घबड़ा गये। वे कुछ कहना चाहते थे कि मिसेज सक्सेना ने गम्भीर भाव से पूछा—आप यहाँ क्यों आये। मैंने तो आपसे कहा था, अपनी जगह से न हिलिएगा। मैंने तो आपसे मदद न माँगी थी ?

जयराम ने लज्जित होकर कहा—मैं इस नीयत से यहाँ नहीं आया था। एक जरूरत से इधर आ निकला था। यहाँ जमाव देख कर आ गया। मेरे खयाल में आप अब यहाँ से चलें। मैं आज कांग्रेस कमेटी में यह सवाल पेश करूँगा कि इस काम के लिए पुरुषों को भेजें।

मिसेज सक्सेना ने तीखे स्वर में कहा—आपके विचार में दुनिया के सारे काम मरदों के लिए हैं।

जयराम—मेरा यह मतलब न था।

मिसेज सक्सेना—तो आप जा कर आराम से लेटें और मुझे अपना काम करने दें।

जयराम वहीं सिर झुकाये खड़ा रहा।

मिसेज सक्सेना ने पूछा—अब आप क्यों खड़े हैं ?

जयराम ने विनीत स्वर में कहा—मैं भी यहीं एक किनारे खड़ा रहूँगा।

मिसेज सक्सेना ने कठोर स्वर में कहा—जी नहीं, आप जायें।

जयराम धीरे-धीरे लदी हुई गाड़ी की भाँति चला और आ कर फिर उसी लेमनेड की दूकान पर बैठ गया। उसे जोर की प्यास लगी थी। उसने एक गिलास शर्बत बनवाया और सामने मेज पर रख कर विचार में डूब गया; मगर आँखें और कान उसी तरफ़ लगे हुए थे। जब कोई आदमी दूकान पर आता, वह चौंक कर उसकी तरफ ताकने लगता—वहाँ कोई नयी बात तो नहीं हो गयी ?

कोई आध घंटे बाद वही स्वयंसेवक फिर डरा हुआ-सा आ कर खड़ा हो गया। जयराम ने उदासीन बनने की चेष्टा करके पूछा—वहाँ क्या हो रहा है जी ?

स्वयंसेवक ने कानों पर हाथ रख कर कहा- मैं कुछ नहीं जानता बाबू जी, मुझसे कुछ न पूछिए।

जयराम ने एक साथ ही नम्र और कठोर होकर पूछा—फिर कोई छेड़-छोड़ हुई ?

स्वयंसेवक—जी नहीं, कोई छेड़छाड़ नहीं हुई। एक आदमी ने देवी जी को धक्का दे दिया, वे गिर पड़ीं।

जयराम निस्पंद बैठा रहा; पर उसके अंतराल में भूकम्प-सा मचा हुआ था। बोला—उनके साथ के स्वयंसेवक क्या कर रहे हैं ?

'खड़े हैं, देवीजी उन्हें बोलने ही नहीं देतीं।'

'तो क्या बड़े जोर से धक्का दिया ?'

'जी हाँ, गिर पड़ीं। घुटनों में चोट आ गयी। वे आदमी साथ पी रहे थे। जब एक बोतल उड़ गयी, तो उनमें से एक आदमी दूसरी बोतल लेने चला। देवी जी ने रास्ता रोक लिया। बस, उसने धक्का दे दिया। वही जो काला-काला मोटा सा आदमी है ! कलवाले चारों आदमियों की शरारत है।'

जयराम उन्माद की दशा में वहाँ से उठा और दौड़ता हुआ शराबखाने के सामने आया। मिसेज सक्सेना सिर पकड़े जमीन पर बैठी हुई थीं और वह काला मोटा आदमी दूकान के कठघरे के सामने खड़ा था। पचासों आदमी जमा थे। जयराम ने उसे देखते ही लपक कर उसकी गर्दन पकड़ ली और इतने जोर से दबायी कि उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। मालूम होता था, उसके हाथ फौलाद के हो गये हैं।

सहसा मिसेज सक्सेना ने आकर उसका फौलादी हाथ पकड़ लिया और भवें सिकोड़

कर बोलीं—छोड़ दो इसकी गर्दन ! क्या इसकी जान ले लोगे ?

जयराम ने और जोर से उसकी गर्दन दबायी और बोला—हाँ, ले लूँगा ? ऐसे दुष्ट की यही सजा है।

मिसेज सक्सेना ने अधिकार-गर्व से गर्दन उठा कर कहा—आपको यहाँ आने का कोई अधिकार नहीं है।

एक दर्शक ने कहा—ऐसा दबाओ बाबू जी, कि साला ठंडा हो जाये। इसने देवी जी को ऐसा ढकेला कि बेचारी गिर पड़ीं। हमें तो बोलने का हुक्म नहीं है, नहीं तो हड्डी तोड़ कर रख देते।

जयराम ने शराबी की गर्दन छोड़ दी। वह किसी बाज के चंगुल से छूटी हुई चिड़िया की तरह सहमा हुआ खड़ा हो गया। उसे एक धक्का देते हुए उसने मिसेज सक्सेना से कहा—आप यहाँ से चलती क्यों नहीं ? आप जायें, मैं बैठता हूँ; अगर एक छटाँक शराब बिक जाय, तो मेरा कान पकड़ लीजियेगा।

उसका दम फूलने लगा, आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। वह खड़ा न रह सका। जमीन पर बैठ कर रूमाल से माथे का पसीना पोंछने लगा।

मिसेज सक्सेना ने परिहास करके कहा—आप काँग्रेस नहीं हैं कि मैं आपका हुक्म मानूँ। अगर आप यहाँ से न जायेंगे, तो मैं सत्याग्रह करूँगी।

फिर एकाएक कठोर हो कर बोलीं—जब तक कांग्रेस ने इस काम का भार मुझ पर रखा है, आपको मेरे बीच में बोलने का कोई हक नहीं है। आप मेरा अपमान कर रहे हैं। काँग्रेस-कमेटी के सामने आपको इसका जवाब देना होगा।

जयराम तिलमिला उठा। बिना कोई जवाब दिये लौट पड़ा। और वेग से घर की तरफ चला; पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था उसकी गति मंद होती जाती थी। यहाँ तक कि बाजार के दूसरे सिरे पर आकर वह रुक गया। रस्सी यहाँ खत्म हो गयी। उसके आगे जाना उसके लिए असाध्य हो गया। जिस झटके ने उसे यहाँ तक भेजा था, उसकी शक्ति अब शेष हो गयी थी। उन शब्दों में जो कटुता और चोट थी, उसमें अब उसे सहानुभूति और स्नेह की सुगंध आ रही थी।

उसे फिर चिंता हुई न जाने वहाँ क्या हो रहा है। कहीं उन बदमाशों ने और कोई दुष्टता न की हो, या पुलिस न आ जाये।

वह बाजार की तरफ मुड़ा लेकिन एक कदम ही चल कर फिर रुक गया। ऐसे पसोपेश में वह कभी न पड़ा था।

सहसा उसे वही स्वयंसेवक दौड़ता आता दिखायी दिया। वह बदहवास होकर उससे मिलने के लिए खुद भी उसकी तरफ दौड़ा। बीच में दोनों मिल गये।

जयराम ने हाँफते हुए पूछा—क्या हुआ ? क्यों भागे जा रहे हो ?

स्वयंसेवक ने दम ले कर कहा—बड़ा गजब हो गया बाबू जी ! आपके आने के बाद वह काला शराबी बोतल ले कर दूकान से चला, तो देवी जी दरवाजे पर बैठ गयीं। वह बार-बार देवी जी को हटा कर निकलना चाहता है; पर वह फिर आ कर बैठ जाती हैं। धक्कम-धक्के में उनके कुछ कपड़े फट गये हैं और कुछ चोट भी....

अभी बात पूरी न हुई थी कि जयराम शराबखाने की तरफ दौड़ा।

6

जयराम शराबखाने के सामने पहुँचा तो देखा, मिसेज सक्सेना के चारों स्वयंसेवक दूकान के सामने लेटे हुए हैं और मिसेज सक्सेना एक किनारे सिर झुकाये खड़ी हैं। जयराम ने डरते-डरते उनके चेहरे पर निगाह डाली। आँचल पर रक्त की बूँदें दिखायी दीं। उसे फिर कुछ सुध न रही। खून की वह चिनगारियाँ जैसे उसके रोम-रोम में समा गयीं। उसका खून खौलने लगा, मानों उसके सिर खून सवार हो गया हो। वह उन चारों शराबियों पर टूट पड़ा और पूरे जोर के साथ लकड़ी चलाने लगा। एक-एक बूँद की जगह वह एक-एक घड़ा खून बहा देना चाहता था। खून उसे कभी इतना प्यारा न था। खून में इतनी उत्तेजना है, इसकी उसे खबर न थी।

वह पूरे जोर से लकड़ी चला रहा था। मिसेज सक्सेना कब आकर उसके सामने खड़ी हो गयीं उसे कुछ पता न चला। जब वह जमीन पर गिर पड़ीं, तब उसे जैसे होश आ गया हो। उसने लकड़ी फेंक दी और वहीं निश्चल, निस्पंद खड़ा हो गया, मानों उसका रक्त प्रवाह रुक गया है।

चारों स्वयंसेवकों ने दौड़ कर मिसेज सक्सेना को पंखा झलना शुरू किया। दूकानदार ठंडा पानी ले कर दौड़ा। एक दर्शक डाक्टर को बुलाने भागा, पर जयराम वहीं बेजान खड़ा था जैसे स्वयं अपने तिरस्कार-भाव का पुतला बन गया हो। अगर इस वक्त कोई उसके दोनों हाथ काट डालता, कोई उसकी आँखें लाल लोहे से फोड़ देता, तब भी वह चूँ न करता।

फिर वहीं सड़क पर बैठ कर उसने अपने लज्जित, तिरस्कृत, पराजित मस्तक को भूमि पर पटक दिया और बेहोश हो गया।

उसी वक्त उस काले मोटे शराबी ने बोतल जमीन पर पटक दी और उसके सिर पर ठंडा पानी डालने लगा।

एक शरावी ने लैसंसदार से कहा—तुम्हारा रोजगार अन्य लोगों की जान ले कर रहेगा। अब तो अभी दूसरा ही दिन है।

लैसंसदार ने कहा—कल से मेरा इस्तीफा है। अब स्वदेशी कपड़े का रोजगार करूँगा, जिसमें जस भी है और उपकार भी।

शराबी ने कहा—घाटा तो बहुत रहेगा।

दूकानदार ने किस्मत ठोंक कर कहा—घाटा-नफा तो जिंदगानी के साथ है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', मई, 1930 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित।]

दो कब्रें

अब न वह यौवन है, न वह नशा, न वह उन्माद। वह महफिल उठ गई, वह दीपक बुझ गया, जिससे महफिल की रौनक थी। वह प्रेममूर्ति कब्र की गोद में सो रही है। हाँ, उसके प्रेम की छाप अब भी हृदय पर है और उसकी अमर स्मृति आँखों के सामने। वीरांगनाओं में ऐसी वफा, ऐसा प्रेम, ऐसा व्रत दुर्लभ है और रईसों में ऐसा विवाह, ऐसा समर्पण, ऐसी

भक्ति और भी दुर्लभ। कुँवर रनवीरसिंह रोज बिला नागा संध्या समय जुहरा की कब्र के दर्शन करने जाते, उसे फूलों से सजाते, आँसुओं से सींचते। पंद्रह साल गुजर गये, एक दिन भी नागा नहीं हुआ। प्रेम की उपासना ही उनके जीवन का उद्देश्य था, उस प्रेम का जिसमें उन्होंने जो कुछ देखा वही पाया और जो कुछ अनुभव किया, उसी की याद अब भी उन्हें मस्त कर देती है। इस उपासना में सुलोचना भी उनके साथ होती, जो जुहरा का प्रसाद और कुँवर साहब की सारी अभिलाषाओं का केन्द्र थी।

कुँवर साहब ने दो शादियाँ की थीं, पर दोनों स्त्रियों में से एक भी संतान का मुँह न देख सकी। कुँवर साहब ने फिर विवाह न किया। एक दिन एक महफिल में उन्हें जुहरा के दर्शन हुए। उस निराश पति और अतृप्त युवती में ऐसा मेल, मानो चिरकाल से बिछुड़े हुए दो साथी फिर मिल गये हों। जीवन का बसन्त विकास संगीत और सौरभ से भरा हुआ आया मगर अफसोस ! पाँच वर्षों के अल्पकाल में उसका भी अंत हो गया। वह मधुर स्वप्न निराशा से भरी हुई जागृति में लीन हो गया। वह सेवा और व्रत की देवी तीन साल की सुलोचना को उनकी गोद में सौंपकर सदा के लिए सिधार गई।

कुँवर साहब ने इस प्रेमादेश का इतने अनुराग से पालन किया कि देखनेवालों को आश्चर्य होता था। कितने ही तो उन्हें पागल समझते थे। सुलोचना ही की नींद सोते, उसी की नींद जागते, खुद पढ़ाते, उसके साथ सैर करते—इतनी एकाग्रता के साथ, जैसे कोई विधवा अपने अनाथ बच्चे को पाले।

जब से वह यूनिवर्सिटी में दाखिल हुई, उसे खुद मोटर में पहुँचा आते और शाम को खुद जा कर ले आते। वह उसके माथे पर से वह कलंक धो डालना चाहते थे, जो मानो विधाता ने क्रूर हाथों से लगा दिया था। धन तो उसे न धो सका, शायद विद्या धो डाले।

एक दिन शाम को कुँवर साहब जुहरा के मजार को फूलों से सजा रहे थे और सुलोचना कुछ दूर पर खड़ी अपने कुत्ते को गेंद खिला रही थी कि सहसा उसने अपने कालेज के प्रोफेसर डाक्टर रामेन्द्र को आते देखा। सकुचाकर मुँह फेर लिया, मानो उन्हें देखा नहीं। शंका हुई कहीं रामेन्द्र इस मजार के विषय में कुछ पूछ न बैठें।

यूनिवर्सिटी में दाखिल हुए उसे एक साल हुआ। इस एक साल में उसने प्रणय के विविध रूपों को देख लिया था। कहीं क्रीड़ा थी, कहीं विनोद था, कहीं कुत्सा थी, कहीं लालसा थी, कहीं उच्छृंखलता थी, किन्तु कहीं वह सहृदयता न थी, जो प्रेम का मूल है। केवल रामेन्द्र ही एक ऐसे सज्जन थे, जिन्हें अपनी ओर ताकते देखकर उसके हृदय में सनसनी होने लगती थी; पर उनकी आँखों में कितनी विवशता, कितनी पराजय, कितनी वेदना छिपी होती थी।

रामेन्द्र ने कुँवर साहब की ओर देखकर कहा—तुम्हारे बाबा इस कब्र पर क्या कर रहे हैं ?

सुलोचना का चेहरा कानों तक लाल हो गया। बोली—यह इनकी पुरानी आदत है।

रामेन्द्र—किसी महात्मा की समाधि है ?

सुलोचना ने इस सवाल को उड़ा देना चाहा। रामेन्द्र यह तो जानते थे कि सुलोचना कुँवर साहब की दाश्ता औरत की लड़की है; पर उन्हें यह न मालूम था कि यह उसी की कब्र है और कुँवर साहब अतीत-प्रेम के इतने उपासक हैं। मगर यह प्रश्न उन्होंने बहुत

धीमे स्वर में न किया था। कुँवर साहब जूते पहन रहे थे। यह प्रश्न उनके कान में पड़ गया। जल्दी से जूता पहन लिया और समीप जाकर बोले—संसार की आँखों में तो वह महात्मा न थी; पर मेरी आँखों में थी और है। यह मेरे प्रेम की समाधि है।

सुलोचना की इच्छा होती थी, यहाँ से भाग जाऊँ; लेकिन कुँवर साहब को जुहरा के यशोगान में आत्मिक आनन्द मिलता था। रामेन्द्र का विस्मय देखकर बोले—इसमें वह देवी सो रही है, जिसने मेरे जीवन को स्वर्ग बना दिया था। यह सुलोचना उसी का प्रसाद है।

रामेन्द्र ने कब्र की तरफ देखकर आश्चर्य से कहा—अच्छा !

कुँवर साहब ने मन में उस प्रेम का आनन्द उठाते हुए कहा—वह जीवन ही और था, प्रोफेसर साहब। ऐसी तपस्या मैंने और कहीं नहीं देखी। आपको फुरसत हो, तो मेरे साथ चलिए। आपको उन यौवन-स्मृतियों...

सुलोचना बोल उठी—वे सुनाने की चीज नहीं है, दादा !

कुँवर—मैं रामेन्द्र बाबू को गैर नहीं समझता।

रामेन्द्र को प्रेम का यह अलौकिक रूप मनोविज्ञान का एक रत्न-सा मालूम हुआ। वह कुँवर साहब के साथ ही उनके घर आये और कई घंटे तक उन हसरत में डूबी हुई प्रेम-स्मृतियों को सुनते रहे।

जो वरदान माँगने के लिए उन्हें साल भर से साहस न होता था, दुबिधे में पड़कर रह जाते थे, वह आज उन्होंने माँग लिया।

2

लेकिन विवाह के बाद रामेन्द्र को नया अनुभव हुआ। महिलाओं का आना-जाना प्रायः बंद हो गया। इसके साथ ही मर्द दोस्तों की आमदरफ्त बढ़ गई। दिन भर उनका ताँता लगा रहता था। सुलोचना उनके आदर-सत्कार में लगी रहती। पहले एक-दो महीने तक तो रामेन्द्र ने इधर ध्यान नहीं दिया; लेकिन जब कई महीने गुजर गए और स्त्रियों ने बहिष्कार का त्याग न किया तो उन्होंने एक दिन सुलोचना से कहा—यह लोग आजकल अकेले ही आते हैं !

सुलोचना ने धीरे से कहा—हाँ देखती तो हूँ।

रामेन्द्र—इनकी औरतें तो तुमसे परहेज नहीं करतीं ?

सुलोचना—शायद करती हों।

रामेन्द्र—मगर वे लोग तो विचारों के बड़े स्वाधीन हैं। इनकी औरतें भी शिक्षित हैं, फिर यह क्या बात है ?

सुलोचना ने दबी जबान से कहा—मेरी समझ में कुछ नहीं आता।

रामेन्द्र ने कुछ देर असमंजस में पड़कर कहा—हम लोग किसी दूसरी जगह चले जायँ, तो क्या हर्ज ? वहाँ तो कोई हमें न जानता होगा।

सुलोचना ने अबकी तीव्र स्वर में कहा—दूसरी जगह क्यों जायें। हमने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है, किसी से कुछ माँगते नहीं। जिसे आना हो आये, न आना हो न आये। मुँह क्यों छिपायें।

धीरे-धीरे रामेन्द्र पर एक और रहस्य खुलने लगा, जो महिलाओं के व्यवहार से कहीं

अधिक घृणास्पद और अपमानजनक था। रामेन्द्र को अब मालूम होने लगा कि ये महाशय जो आते हैं और घंटों बैठे सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर बहसें किया करते हैं, वास्तव में विचार-विनिमय के लिए नहीं बल्कि रूप की उपासना के लिए आते हैं। उनकी आँखें सुलोचना को खोजती रहती हैं। उनके कान उसी की बातों की ओर लगे रहते हैं। उसकी रूप माधुरी का आनंद उठाना ही उनका अभीष्ट है। यहाँ उन्हें वह संकोच नहीं होता, जो किसी भले आदमी की बहू-बेटी की ओर आँखें नहीं उठने देता। शायद वे सोचते हैं, यहाँ उन्हें कोई रोक-टोक नहीं है।

कभी-कभी जब रामेन्द्र की अनुपस्थिति में कोई महाशय आ जाते, तो सुलोचना को बड़ी कठिन परीक्षा का सामना करना पड़ता। अपनी चितवनों से, अपने कुत्सित संकेतों से, अपनी रहस्यपूर्ण बातों से, अपनी लम्बी साँसों से उसे दिखाना चाहते थे, कि हम भी तुम्हारी कृपा के भिखारी हैं। अगर रामेन्द्र का तुम पर सोलहों आना अधिकार है, तो थोड़ी-सी दक्षिणा के अधिकारी हम भी हैं। सुलोचना उस वक्त जहर का घूँट पीकर रह जाती।

अब तक रामेन्द्र और सुलोचना दोनों क्लब जाया करते थे। वहाँ उदार सज्जनों का अच्छा जमघट रहता था। जब तक रामेन्द्र को किसी की ओर संदेह न था, वह उसे आग्रह करके अपने साथ ले जाते थे। सुलोचना के पहुँचते ही यहाँ एक स्फूर्ति-सी उत्पन्न हो जाती थी। जिस मेज पर सुलोचना बैठती, उसे लोग घेर लेते थे। कभी-कभी सुलोचना गाती थी। उस वक्त सब-के-सब उन्मत्त हो जाते।

क्लब में महिलाओं की संख्या अधिक न थी। मुश्किल से पाँच-छः लेडियाँ आती थीं; मगर वे भी सुलोचना से दूर-दूर रहती थीं, बल्कि अपनी भाव-भंगिमाओं और कटाक्षों से वे उसे जता देना चाहती थीं कि तुम पुरुषों का दिल खुश करो, हम कुल-वधुओं के पास तुम नहीं आ सकतीं।

लेकिन जब रामेन्द्र पर इस कटु सत्य का प्रकाश हुआ, तो उन्होंने क्लब जाना छोड़ दिया, मित्रों के यहाँ आना-जाना भी कम कर दिया और अपने यहाँ आनेवालों की भी उपेक्षा करने लगे। वह चाहते थे कि मेरे एकांतवास में कोई विघ्न न डाले। आखिर उन्होंने बाहर आना-जाना छोड़ दिया। अपने चारों ओर छल-कपट का जाल-सा बिछा हुआ मालूम होता था, किसी पर विश्वास न कर सकते थे, किसी से सद्व्यवहार की आशा नहीं। सोचते—ऐसे धूर्त, कपटी, दोस्ती की आड़ में गला काटनेवाले आदमियों से मिलें ही क्यों ?

वे स्वभाव से मिलनसार आदमी थे। पक्के यारबाश। यह एकान्तवास जहाँ न कोई सैर थी, न विनोद, न कोई चहल-पहल, उनके लिए कठिन कारावास से कम न था। यद्यपि कर्म और वचन से सुलोचना की दिलजोई करते रहते थे; लेकिन सुलोचना की सूक्ष्म और सशंक आँखों से अब यह बात छिपी न थी कि यह अवस्था इनके लिए दिन-दिन असह्य होती जाती थी। वह दिल में सोचती—इनकी यह दशा मेरे ही कारण तो है, मैं ही तो इनके जीवन का काँटा हो गई !

एक दिन उसने रामेन्द्र से कहा—आजकल क्लब क्यों नहीं चलते ? कई सप्ताह हुए घर से निकलते तक नहीं।

रामेन्द्र ने बेदिली से कहा—मेरा जी कहीं जाने को नहीं चाहता। अपना घर सबसे

अच्छा है।

सुलोचना—जी तो ऊबता ही होगा। मेरे कारण यह तपस्या क्यों करते हो ? मैं तो न जाऊँगी। उन स्त्रियों से मुझे घृणा होती है। उनमें एक भी ऐसी नहीं, जिसके दामन पर काले दाग न हों; लेकिन सब सीता बनी फिरती हैं। मुझे तो उनकी सूरत से चिढ़ हो गई है। मगर तुम क्यों नहीं जाते ? कुछ दिल ही बहल जायगा।

रामेन्द्र—दिल नहीं पत्थर बहलेगा। जब अन्दर आग लगी हुई हो, तो बाहर शांति कहाँ ?

सुलोचना चौंक पड़ी। आज पहली बार उसने रामेन्द्र के मुँह से ऐसी बात सुनी। वह अपने ही को बहिष्कृत समझती थी। अपना अनादर जो कुछ था, उसका था। रामेन्द्र के लिए तो अब भी सब दरवाजे खुले हुए थे। वह जहाँ चाहें जा सकते हैं, जिनसे चाहें, मिल सकते हैं, उनके लिए कौन-सी रुकावट है। लेकिन नहीं, अगर उन्होंने किसी कुलीन स्त्री से विवाह किया होता, तो उनकी यह दशा क्यों होती ? प्रतिष्ठित घरानों की औरतें आतीं, आपस में मैत्री बढ़ती, जीवन सुख से कटता; रेशम का पैबन्द लग जाता। अब तो उसमें टाट का पैबन्द लग गया। मैंने आकर सारे तालाब को गंदा कर दिया। उसके मुख पर उदासी छा गई।

रामेन्द्र को भी तुरन्त मालूम हो गया कि उनकी जबान से एक ऐसी बात निकल गई जिसके दो अर्थ हो सकते हैं। उन्होंने फोरन बात बनाई—क्या तुम समझती हो कि हम और तुम अलग-अलग हैं। हमारा और तुम्हारा जीवन एक है। जहाँ तुम्हारा आदर नहीं वहाँ मैं कैसे जा सकता हूँ। फिर मुझे भी समाज के इन रंगे सियारों से घृणा हो रही है। मैं इन सबों के कच्चे चिट्ठे जानता हूँ। पद या उपाधि या धन से किसी की आत्मा शुद्ध नहीं हो जाती। जो ये लोग करते हैं, वह अगर कोई नीचे दरजे का आदमी करता, उसे कहीं मुँह दिखाने की हिम्मत न होती। मगर यह लोग अपनी सारी बुराइयाँ उदारतावाद के पर्दे में छिपाते हैं। इन लोगों से दूर रहना ही अच्छा।

सुलोचना का चित्त शांत हो गया।

3

दूसरे साल सुलोचना की गोद में एक चाँद-सी बालिका का उदय हुआ। उसका नाम रक्खा गया शोभा। कुँवर साहब का स्वास्थ्य इन दिनों कुछ अच्छा न था। मंसूरी गये थे। यह खबर पाते ही रामेन्द्र को तार दिया कि जच्चा और बच्चा को लेकर यहाँ आ जाओ।

लेकिन रामेन्द्र इस अवसर पर न जाना चाहते थे। अपने मित्रों की सज्जनता और उदारता की अंतिम परीक्षा लेने का इससे अच्छा और कौन-सा अवसर हो सकता था। सलाह हुई, एक शानदार दावत दी जाय। प्रोग्राम में संगीत भी शामिल था। कई अच्छे-अच्छे गवैये बुलाये गये। अँग्रेजी, हिन्दुस्तानी, मुसलमानी सभी प्रकार के भोजनों का प्रबन्ध किया गया।

कुँवर साहब गिरते-पड़ते मंसूरी से आये। उसी दिन दावत थी। नियत समय पर निमंत्रित लोग एक-एक करके आने लगे। कुँवर साहब स्वयं उनका स्वागत कर रहे थे। खाँ साहब आये, मिर्जा साहब आये, मीर साहब आये; मगर पंडितजी और बाबू जी और

लाला साहब और चौधरी साहब और फक्कड़, मेहरा और चोपड़ा, कौल और हुक्कू, श्रीवास्तव और खरे किसी का पता न था।

यह सभी लोग होटलों में सब कुछ खाते थे, अंडे और शराब उड़ाते थे—इस विषय में किसी तरह का विवेक या विचार न करते थे। फिर आज क्यों तशरीफ नहीं लाये ? इसलिए नहीं कि छूत-छात का विचार था; बल्कि इसलिये कि वह अपनी उपस्थिति को इस विवाह के समर्थन की सनद समझते थे और वह सनद देने की उनकी इच्छा न थी।

दस बजे रात तक कुँवर साहब फाटक पर खड़े रहे। जब उस वक्त तक कोई न आया, तो कुँवर साहब ने आकर रामेन्द्र से कहा—अब लोगों का इन्तजार फजूल है। मुसलमानों को खिला दो और बाकी सामान गरीबों को दिला दो।

रामेन्द्र एक कुर्सी पर हतबुद्धि से बैठे हुए थे। कुंठित स्वर में बोले—जी हाँ, यही तो मैं सोच रहा हूँ।

कुँवर—मैंने तो पहले ही समझ लिया था। हमारी तौहीन नहीं हुई। खुद उन लोगों की कलई खुल गई।

रामेन्द्र—खैर, परीक्षा तो हो गई। कहिए तो अभी जाकर एक-एक की खबर लूँ।

कुँवर साहब ने विस्मित होकर कहा—क्या उनके घर जाकर ?

रामेन्द्र—जी हाँ। पूछूँ कि आप लोग जो समाज-सुधार का राग अलापते फिरते है, वह किस बल पर ?

कुँवर—व्यर्थ है। जाकर आराम से लेटो। नेक और बद की सबसे बड़ी पहचान अपना दिल है। अगर हमारा दिल गवाही दे कि यह काम बुरा नहीं तो फिर सारी दुनिया मुँह फेर ले, हमें किसी की परवाह न करनी चाहिए।

रामेन्द्र—लेकिन मैं इन लोगों को यों न छोड़ूँगा—एक-एक की बखिया उधेड़ कर न रख दूँ तो नाम नहीं।

यह कहकर उन्होंने पत्तल और सकोरे उठवा-उठवा कर कंगालों को देना शुरू किया।

4

रामेन्द्र सैर करके लौटे ही थे कि वेश्याओं का एक दल सुलोचना को बधाई देने के लिए आ पहुँचा। जुहरा की एक सगी भतीजी थी, गुलनार। सुलोचना के यहाँ पहले बराबर आती-जाती थी। इधर दो साल से न आई थी। यह उसी का बधावा था। दरवाजे पर अच्छी खासी भीड़ हो गई थी। रामेन्द्र ने यह शोरगुल सुना, गुलनार ने आगे बढ़कर उन्हें सलाम किया और बोली—बाबूजी, बेटी मुबारक, बधावा लाई हूँ।

रामेन्द्र पर मानो लकवा-सा गिर गया। सिर झुक गया और चेहरे पर कालिमा-सी पुत गई। न मुँह से बोले, न किसी को बैठने का इशारा किया, न वहाँ से हिले। बस मूर्तिवत् खड़े रह गये। एक बाजारी औरत से नाता पैदा करने का ख्याल इतना लज्जास्पद था, इतना जघन्य कि उसके सामने सज्जनता भी मौन रह गई। इतना शिष्टाचार भी न कर सके कि सबों को कमरे में ले जाकर बिठा तो देते। आज पहली ही बार उन्हें अपने अधःपतन का अनुभव हुआ। मित्रों की कुटिलता और महिलाओं की उपेक्षा को वह उनका अन्याय समझते थे, अपना अपमान नहीं, लेकिन यह बधावा उनकी अबाध उदारता के

लिए भी भारी था।

सुलोचना का जिस वातावरण में पालन-पोषण हुआ था, वह एक प्रतिष्ठित हिन्दू कुल का वातावरण था। यह सच है कि अब भी सुलोचना नित्य जुहरा के मजार की परिक्रमा करने जाती थी; मगर जुहरा अब एक पवित्र स्मृति थी, दुनिया की मलिनताओं और कलुषताओं से रहित। गुलनार से नातेदारी और परस्पर का निबाह दूसरी बात थी। जो लोग तसवीरों के सामने सिर झुकाते हैं, उन पर फूल चढ़ाते हैं, वे भी तो मूर्ति पूजा की निन्दा करते हैं। एक स्पष्ट है, दूसरा सांकेतिक। एक प्रत्यक्ष है, दूसरा आँखों से छिपा हुआ।

सुलोचना अपने कमरे में चिक की आड़ में खड़ी रामेन्द्र का असमंजस और क्षोभ देख रही थी। जिस समाज को उसने अपना उपास्य बनाना चाहा था, जिसके द्वार पर सिजदे करते उसे बरसों हो गये थे, उसकी तरफ से निराश होकर, उसका हृदय इस समय उससे विद्रोह करने पर तुला हुआ था। उसके जी में आता था—गुलनार को बुलाकर गले लगा लूँ ? जो लोग मेरी बात भी नहीं पूछते, उनकी खुशामद क्यों करूँ ? यह बेचारियाँ इतनी दूर से आई हैं मुझे अपना ही समझकर तो। उनके दिल में प्रेम तो है, यह मेरे दुःख-सुख में शरीक होने को तैयार तो हैं।

आखिर रामेन्द्र ने सिर उठाया और शुष्क मुस्कान के साथ गुलनार से बोले—आइए, आप लोग अन्दर चली आइए। यह कह कर वह आगे-आगे रास्ता दिखाते हुए दीवानखाने की ओर चले कि सहसा महरी निकली और गुलनार के हाथ में एक पुर्जा देकर चली गयी। गुलनार ने वह पुर्जा लेकर देखा और उसे रामेन्द्र के हाथ में देकर वहीं खड़ी हो गई। रामेन्द्र ने पुर्जा देखा, लिखा था—बहन गुलनार, तुम यहाँ नाहक आई। हम लोग योंही बदनाम हो रहे हैं। अब और बदनाम मत करो, बधावा वापस ले जाओ। कभी मिलने का जी चाहे, रात को आना और अकेली। मेरा जी तुमसे गले लिपटकर रोने के लिए तड़प रहा है मगर मजबूर हूँ।

रामेन्द्र ने पुर्जा फाडकर फेंक दिया और उद्दण्ड होकर बोले। इन्हें लिखने दो। मैं किसी से नहीं डरता। अन्दर आओ।

गुलनार ने एक कदम पीछे फिरकर कहा—नहीं बाबूजी, अब हमें आज्ञा दीजिए।

रामेन्द्र—एक मिनट तो बैठो।

गुलनार—जी नहीं। एक सेकिंड भी नहीं।

5

गुलनार के चले जाने के बाद रामेन्द्र अपने कमरे में जा बैठे। जैसी पराजय उन्हें आज हुई, वैसी पहले कभी नहीं हुई। वह आत्माभिमान, वह सच्चा क्रोध, जो अन्याय के ज्ञान से पैदा होता है, लुप्त हो गया था। उसकी जगह लज्जा थी और ग्लानि। इसे बधावे की क्यों सूझ गई। यों तो कभी आती-जाती न थी, आज न जाने कहाँ से फट पड़ी। कुँवर साहब होंगे इतने उदार। उन्होंने जुहरा के नातेदारों से भाईचारे का निबाह किया होगा, मैं इतना उदार नहीं हूँ। कहीं सुलोचना छिपकर इसके पास आती-जाती तो नहीं ! लिखा भी तो है कि मिलने का जी चाहे, तो रात को आना और अकेली—क्यों न हो, खून तो वही है, मनोवृत्ति

वही, विचार वही, आदर्श वही। माना, कुँवर साहब के घर में पालन-पोषण हुआ; मगर रक्त का प्रभाव इतनी जल्दी नहीं मिट सकता। अच्छा, दोनों बहनें मिलती होंगी तो उनमें क्या बातें होती होंगी ? इतिहास या नीति की चर्चा तो हो नहीं सकती। वही निर्लज्जता की बातें होती होंगी। गुलनार अपना वृत्तांत कहती होगी, उस बाजार के खरीदारों और दूकानदारों के गुण-दोषों पर बहस होती होगी। यह तो हो ही नहीं सकता कि गुलनार इसके पास आते ही अपने को भूल जाय और कोई भद्दी, अनर्गल और कलुषित बातें न करे। एक क्षण में उनके विचारों ने पलटा खाया—मगर आदमी बिना किसी से मिले-जुले रह भी तो नहीं सकता, यह भी तो एक तरह की भूख है। भूख में अगर शुद्ध भोजन न मिले, तो आदमी जूठा खाने से भी परहेज नहीं करता। अगर इन लोगों ने सुलोचना को अपनाया होता, उसका यों बहिष्कार न करते, तो उसे क्यों ऐसे प्राणियों से मिलने की इच्छा होती। उसका कोई दोष नहीं, यह सारा दोष परिस्थितियों का है, जो हमारे अतीत की याद दिलाती रहती हैं।

रामेन्द्र इन्हीं विचारों में पड़े हुए थे कि कुँवर साहब आ पहुँचे और कटु स्वर में बोले—मैंने सुना गुलनार अभी बधावा लाई थी, तुमने उसे लौटा दिया।

रामेन्द्र का विरोध सजीव हो उठा। बोले—मैंने तो नहीं लौटाया, सुलोचना ने लौटाया। पर मेरे ख्याल में अच्छा किया।

कुँवर—तो यह कहो तुम्हारा इशारा था। तुमने इन पतितों को अपनी ओर खींचने का कितना अच्छा अवसर हाथ से खो दिया है ! सुलोचना को देखकर जो कुछ असर पड़ा, वह तुमने मिटा दिया। बहुत संभव था कि एक प्रतिष्ठित आदमी से नाता रखने का अभिमान उसके जीवन में एक नये युग का आरम्भ करता, मगर तुमने इन बातों पर जरा भी ध्यान न दिया।

रामेन्द्र ने कोई जवाब न दिया। कुँवर साहब जरा उत्तेजित होकर बोले—आप लोग यह क्यों भूल जाते हैं कि हरेक बुराई मजबूरी से होती है। चोर इसलिए चोरी नहीं करता कि चोरी में उसे विशेष आनन्द आता है; बल्कि केवल इसलिए कि जरूरत उसे मजबूर कर देती है। हाँ, वह जरूरत वास्तविक है या काल्पनिक इसमें मतभेद हो सकता है। स्त्री के मैके जाते समय कोई गहना बनवाना एक आदमी के लिए जरूरी हो सकता है। दूसरे के लिए बिल्कुल गैर जरूरी। क्षुधा से व्यथित होकर एक आदमी अपना ईमान खो सकता है, दूसरा मर जायगा पर किसी के सामने हाथ न फैलायेगा, पर प्रकृति का यह नियम आप जैसे विद्वानों को न भूलना चाहिए कि जीवन-लालसा प्राणीमात्र में व्यापक है। जिंदा रहने के लिए आदमी सब कुछ कर सकता है। जिंदा रहना जितना ही कठिन होगा, बुराइयाँ भी उसी मात्रा में बढ़ेंगी, जितना ही आसान होगा उतनी ही बुराइयाँ कम होंगी। हमारा यह पहला सिद्धान्त होना चाहिए कि जिंदा रहना हरेक के लिए सुलभ हो। रामेन्द्र बाबू, आपने इस वक्त इन लोगों के साथ वही व्यवहार किया जो दूसरे आपके साथ कर रहे हैं और जिससे आप बहुत दुःखी हैं।

रामेन्द्र ने इस लंबे व्याख्यान को इस तरह सुना, जैसे कोई पागल बक रहा हो। इस तरह की दलीलों का वह खुद कितनी ही बार समर्थन कर चुके थे; पर दलीलों से व्यथित अंग की पीड़ा नहीं शांत होती। पतित स्त्रियों का नातेदार की हैसियत से द्वार पर आना

इतना अपमानजनक था कि रामेन्द्र किसी दलील से पराभूत होकर उसे भूल न सकते थे। बोले—मैं ऐसे प्राणियों से कोई संबंध नहीं रखता। यह विष अपने घर में नहीं फैलाना चाहता !

सहसा सुलोचना भी कमरे में आ गई। प्रसवकाल का असर अभी बाकी था; पर उत्तेजना ने चेहरे को आरक्त कर रखा था। रामेन्द्र सुलोचना को देखकर तेज हो गये। वह उसे जता देना चाहते थे कि इस विषय में मैं एक रेखा तक जा सकता हूँ, उसके आगे किसी तरह नहीं जा सकता। बोले—मैं यह कभी पसंद न करूँगा कि कोई बाजारी औरत किसी भेष में मेरे घर आये। रात को अकेले या सूरत बदलकर आने से इस बुराई का असर नहीं मिट सकता। मैं समाज के दंड से नहीं डरता, इस नैतिक विष से डरता हूँ।

सुलोचना अपने विचार में मर्यादा-रक्षा के लिए काफी आत्मसमर्पण कर चुकी थी। उसकी आत्मा ने अभी तक उसे क्षमा न किया था। तीव्र स्वर में बोली—क्या तुम चाहते हो कि मैं इस कैद में अकेले जान दे दूँ ! कोई तो हो जिससे आदमी हँसे, बोले !

रामेन्द्र ने गर्म होकर कहा—हँसने-बोलने का इतना शौक था, तो मेरे साथ विवाह न करना चाहिए था। विवाह का बंधन बड़ी हद तक त्याग का बंधन है। जब तक संसार में इस विधान का राज्य है और स्त्री कुलमर्यादा की रक्षक समझी जाती है, उस वक्त तक कोई मर्द यह स्वीकार न करेगा कि उसकी पत्नी बुरे आचरण के प्राणियों से किसी प्रकार का संसर्ग रक्खे।

कुँवर साहब समझ गये कि इस वाद-विवाद से रामेन्द्र और भी जिद पकड़ लेंगे और मुख्य विषय लुप्त हो जायगा, इसलिए नम्र स्वर में बोले—लेकिन बेटा, यह क्यों ख्याल करते हो कि ऊँचे दरजे की पढ़ी-लिखी स्त्री दूसरों के प्रभाव में आ जायगी, अपना प्रभाव न डालेगी ?

रामेन्द्र—इस विषय में शिक्षा पर मेरा विश्वास नहीं। शिक्षा ऐसी कितनी बातों को मानती है, जो रीति-नीति और परंपरा की दृष्टि से त्याज्य हैं। अगर पाँव फिसल जाय तो हम उसे काटकर फेंक नहीं देते। पर मैं इस anology के सामने सिर झुकाने को तैयार नहीं हूँ। मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मेरे साथ रहकर पुराने संबंधों का त्याग करना पड़ेगा ! इतना ही नहीं, मन को ऐसा बना लेना पड़ेगा कि ऐसे लोगों से उसे खुद घृणा हो। हमें इस तरह अपना संस्कार करना पड़ेगा कि समाज अपने अन्याय पर लज्जित हो, न यह कि हमारे आचरण ऐसे भ्रष्ट हो जायँ कि दूसरों की निगाह में यह तिरस्कार औचित्य का स्थान पा जाय।

सुलोचना ने उद्धृत होकर कहा—स्त्री इसके लिए मजबूर नहीं है कि वह आपकी आँखों से देखे और आपके कानों से सुने। उसे यह निश्चय करने का अधिकार है कि कौन-सी चीज उसके हित की है, कौन-सी नहीं।

कुँवर साहब भयभीत होकर बोले—सिल्लो, तुम भूली जाती हो कि बातचीत में हमेशा मुलायम शब्दों का व्यवहार करना चाहिए। हम झगड़ा नहीं कर रहे हैं, केवल एक प्रश्न पर अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे हैं।

सुलोचना ने निर्भीकता से कहा—जी नहीं, मेरे लिए बेड़ियाँ तैयार की जा रही हैं। मैं

इन बेड़ियों को नहीं पहन सकती। मैं अपनी आत्मा को उतना ही स्वाधीन समझती हूँ, जितना कोई मर्द समझता है।

रामेन्द्र ने अपनी कठोरता पर कुछ लज्जित हो कर कहा—मैंने तुम्हारी आत्मा की स्वाधीनता को छीनने की कभी इच्छा नहीं की। और न मैं इतना विचारहीन हूँ। शायद तुम भी इसका समर्थन करोगी। लेकिन क्या तुम्हें विपरीत मार्ग पर चलते देखूँ तो मैं तुम्हें समझा भी नहीं सकता ?

सुलोचना—उसी तरह जैसे मैं तुम्हें समझा सकती हूँ। तुम मुझे मजबूर नहीं कर सकते।

रामेन्द्र—मैं इसे नहीं मान सकता।

सुलोचना—अगर मैं अपने किसी नातेदार से मिलने जाऊँ, तो आपकी इज्जत में बट्टा लगता है। क्या इसी तरह आप यह स्वीकार करेंगे कि आपका व्यभिचारियों से मिलना-जुलना मेरी इज्जत में दाग लगाता है ?

रामेन्द्र—हाँ, मैं मानता हूँ।

सुलोचना—आपका कोई व्यभिचारी भाई आ जाय, तो आप उसे दरवाजे से भगा देंगे?

रामेन्द्र—तुम मुझे इसके लिए मजबूर नहीं कर सकतीं।

सुलोचना—और आप मुझे मजबूर कर सकते हैं ?

'बेशक।'

'क्यों ?'

'इसीलिए कि मैं पुरुष हूँ, इस छोटे-से परिवार का मुख्य अंग हूँ। इसीलिए कि तुम्हारे ही कारण मुझे...', रामेन्द्र कहते-कहते रुक गये। पर सुलोचना उनके मुंह से निकलनेवाले शब्दों को ताड़ गई। उसका चेहरा तमतमा उठा, मानो छाती में बरछी-सी लग गई। मन में ऐसा उद्वेग उठा कि इसी क्षण घर छोड़कर, सारी दुनिया से नाता तोड़कर चली जाऊँ और फिर इन्हें कभी मुँह न दिखाऊँ। अगर इसी का नाम विवाह है कि किसी की मर्जी की गुलाम होकर रहूँ, अपमान सहन करूँ, तो ऐसे विवाह को दूर ही से सलाम है।

वह तैश में आकर कमरे से निकलना चाहती थी कि कुँवर साहब ने लपककर उसे पकड़ लिया और बोले—क्या करती हो बेटी, घर में जाओ, क्यों रोती हो ? अभी तो मैं जीता हूँ, तुम्हें क्या गम है ? रामेन्द्र बाबू ने कोई ऐसी बात नहीं कही और न कहना चाहते थे। फिर आपस की बातों का क्या बुरा मानना। किसी अवसर पर तुम भी जो जी में आये कह लेना।

यों समझाते हुए कुँवर साहब उसे अन्दर ले गये। वास्तव में सुलोचना कभी गुलनार से मिलने की इच्छुक न थी। वह उससे स्वयं भागती थी। एक क्षणिक आवेश में उसने गुलनार को वह पुरजा लिख दिया था। मन में स्वयं समझती थी, इन लोगों से मेल-जोल रखना मुनासिब नहीं, लेकिन रामेन्द्र ने यह विरोध किया, यही उसके लिए असह्य था। यह मुझे मना क्यों करें ? क्या मैं इतना भी नहीं समझती ? क्या इन्हें मेरी ओर से इतनी शंका है ! इसीलिए तो, कि मैं कुलीन नहीं हूँ !

मैं अभी-अभी गुलनार से मिलने जाऊँगी, जिद्दन जाऊँगी; देखूँ मेरा क्या करते हैं।

लाड़-प्यार में पली हुई सुलोचना को कभी किसी ने तीखी आँखों से न देखा था। कुँवर साहब उसकी मर्जी के गुलाम थे। रामेन्द्र भी इतने दिनों उसका मुँह जोहते रहे। आज अकस्मात् यह तिरस्कार और फटकार पाकर उसकी स्वेच्छा प्रेम और आत्मीयता के सारे नातों को पैरों से कुचल डालने के लिए विकल हो उठी। वह सब कुछ सह लेगी पर यह धौंस, यह अन्याय, यह अपमान उससे न सहा जायगा।

उसने खिड़की से सिर निकालकर कोचवान को पुकारा और बोली—गाड़ी लाओ, मुझे चौक जाना है, अभी लाओ।

कुँवर साहब ने चुमकारकर कहा—बेटी सिल्लो, क्या कर रही हो, मेरे ऊपर दया करो। इस वक्त कहीं मत जाओ, नहीं हमेशा के लिए पछताना पड़ेगा। रामेन्द्र बाबू भी बड़े गुस्सेवर आदमी हैं। फिर तुमसे बड़े हैं, ज्यादा विचारवान हैं, उन्हीं का कहना मान जाओ। मैं तुमसे सच कहता हूँ। तुम्हारी माँ जब थीं, तो कई बार ऐसी नौबत आई कि मैंने उनसे कहा—घर से निकल जाओ, पर उस प्रेम की देवी ने कभी ड्योढ़ी के बाहर पाँव नहीं निकाला। इस वक्त धैर्य से काम लो ! मुझे विश्वास है, जरा देर में रामेन्द्र बाबू खुद लज्जित होकर तुम्हारे पास अपराध क्षमा कराने आयेंगे।

सहसा रामेन्द्र ने आकर पूछा—गाड़ी क्यों मँगवाई ? कहाँ जा रही हो ?

रामेन्द्र का चेहरा इतना क्रोधोन्मत्त हो रहा था, कि सुलोचना सहम उठी। दोनों आँखों से ज्वाला-सी निकल रही थी। नथने फड़क रहे थे, पिंडलियाँ काँप रही थीं। यह कहने की हिम्मत न पड़ी कि गुलनार के घर जाती हूँ। गुलनार का नाम सुनते ही शायद यह मेरी गर्दन पर सवार हो जायेंगे—इस भय से वह काँप उठी। आत्मरक्षा का भाव प्रबल हो गया। बोली—जरा अम्माँ के मजार तक जाऊँगी।

रामेन्द्र ने डाँटकर कहा—कोई जरूरत नहीं वहाँ जाने की।

सुलोचना ने कातर स्वर में कहा—क्यों अम्माँ के मजार तक जाने की भी रोक है ? रामेन्द्र ने उसी ध्वनि में कहा—हाँ।

सुलोचना—तो फिर अपना घर सम्हालो, मैं जाती हूँ।

रामेन्द्र—जाओ, तुम्हारे लिये क्या, यह न सही दूसरा घर सही !

अभी तक तस्मा बाकी था, वह कट गया। यों शायद सुलोचना वहाँ से कुँवर साहब के बँगले पर जाती, दो-चार दिन रूठी रहती, फिर रामेन्द्र उसे मना लाते और मामला तय हो जाता, लेकिन इस चोट ने समझौते और संधि की जड़ काट दी। सुलोचना दरवाजे तक पहुँची थी, वहीं चित्रलिखित-सी खड़ी रह गई। मानो किसी ऋषि के शाप ने उसके प्राण खींच लिये हों। वहीं बैठ गई। न कुछ बोल सकी, न कुछ सोच सकी। जिसके सिर पर बिजली गिर पड़ी हो, वह क्या सोचे, क्या रोये, क्या बोले। रामेन्द्र के वे शब्द बिजली से कहीं अधिक घातक थे।

सुलोचना कब तक वहाँ बैठी रही, उसे कुछ खबर न थी। जब उसे कुछ होश आया तो घर में सन्नाटा छाया हुआ था। घड़ी की तरफ आँख उठी, एक बज रहा था। सामने आरामकुर्सी पर कुँवर साहब नवजात शिशु को गोद में लिये सो गये थे। सुलोचना ने उठकर बरामदे में झाँका, रामेन्द्र अपने पलंग पर लेटे हुए थे। उसके जी में आया, इसी वक्त

इन्हीं के सामने जाकर कलेजे में छुरी मार लूँ और इन्हीं के सामने तड़प-तड़प कर मर जाऊँ। वह घातक शब्द याद आ गये। इनके मुँह से ऐसे शब्द निकले क्योंकर। इतने चतुर, इतने उदार और इतने विचारशील होकर भी यह जुबान पर ऐसे शब्द क्योंकर ला सके।

उसका सारा सतीत्व, भारतीय आदर्शों की गोद में पली हुई भूमि पर आसक्त पड़ी हुई अपनी दीनता पर रो रहा था। वह सोच रही थी, अगर मेरे नाम पर यह दाग न होता, मैं भी कुलीन होती, तो क्या यह शब्द इनके मुँह से निकल सकते थे ? लेकिन मैं बदनाम हूँ, दलित हूँ, त्याज्य हूँ, मुझे सब कुछ कहा जा सकता है। उफ्, इतना कठोर हृदय। क्या वह किसी दशा में भी रामेन्द्र पर इतना कठोर प्रहार कर सकती थी ?

बरामदे में बिजली की रोशनी थी। रामेन्द्र के मुख पर क्षोभ या ग्लानि का नाम भी न था। क्रोध की कठोरता अब तक उसके मुख को विकृत किए हुए थी। शायद इन आँखों में आँसू देखकर अब भी सुलोचना के आहत हृदय को तसकीन होती; लेकिन वहाँ तो अभी तक तलवार खिंची हुई थी। उसकी आँखों में सारा संसार सूना हो गया।

सुलोचना फिर अपने कमरे में आई। कुँवर साहब की आँखें अब भी बन्द थीं। इन चन्द घंटों ही में उनका तेजस्वी मुख कांतिहीन हो गया था। गालों पर आँसुओं की रेखाएँ सूख गई थीं। सुलोचना ने उनके पैरों के पास बैठकर सच्ची भक्ति के आँसू बहाये। हाय ! मुझ अभागिनी के लिए इन्होंने कौन-कौन से कष्ट नहीं झेले, कौन-कौन से अपमान नहीं सहे, अपना सारा जीवन ही मुझ पर अर्पण कर दिया और उसका यह हृदय-विदारक अन्त।

सुलोचना ने फिर बच्ची को देखा; मगर उसका गुलाब का-सा विकसित मुँह देखकर भी उसके हृदय में ममता की तरंग न उठी। उसने उसकी तरफ से मुँह फेर लिया। यही वह अपमान की मूर्तिमान वेदना है, जो इतने दिनों मुझे भोगनी पड़ी। मैं इसके लिए क्यों अपने प्राण संकट में डालूँ। अगर उसके निर्दयी पिता को उसका प्रेम है, तो उसको पाले। और एक दिन वह भी उसी तरह रोये, जिस तरह आज मेरे पिता को रोना पड़ रहा है। ईश्वर अबकी अगर जन्म देना, तो किसी भले आदमी के घर जन्म देना....

जहाँ जुहरा का मज़ार था उसी के बगल में एक दूसरा मज़ार बना हुआ है। जुहरा के मज़ार पर घास जम आई है; जगह-जगह से चूना गिर गया है, लेकिन दूसरा मज़ार बहुत साफ-सुथरा और सजा हुआ है। उसके चारों तरफ गमले रखे हुए हैं और मज़ार तक जाने के लिए गुलाब के बेलों की रविशें बनी हुई हैं ?

शाम हो गई है। सूर्य की क्षीण, उदास, पीली किरणें मानो उस मज़ार पर आँसू बहा रही हैं। एक आदमी एक तीन-चार साल की बालिका को गोद में लिये हुए आया और उस मज़ार को अपने रूमाल से साफ करने लगा। रविशों में जो पत्तियाँ पड़ी थीं उन्हें चुनकर साफ किया और मज़ार पर सुगंध छिड़कने लगा। बालिका दौड़-दौड़कर तितलियों को पकड़ने लगी।

यह सुलोचना का मज़ार है। उसकी आखिरी नसीहत थी, कि मेरी लाश जलाई न जाय, मेरी माँ की बगल में मुझे सुला दिया जाय। कुँवर साहब तो सुलोचना के बाद छः महीने से ज्यादा न चल सके। हाँ, रामेन्द्र अपने अन्याय का पश्चात्ताप कर रहे हैं।

शोभा अब तीन साल की हो गई है और उसे विश्वास है कि एक दिन उसकी माँ इसी मज़ार से निकलेगी !

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माया', जून, 1930 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप 'मजारे उल्फत' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम चालीसी' में संकलित।]

मैकू

कादिर और मैकू ताड़ीखाने के सामने पहुँचे; तो वहाँ काँग्रेस के वालंटियर झंडा लिये खड़े नजर आये। दरवाजे के इधर-उधर हजारों दर्शक खड़े थे। शाम का वक्त था। इस वक्त गली में पियक्कड़ों के सिवा और कोई न आता था। भले आदमी इधर से निकलते झिझकते। पियक्कड़ों की छोटी-छोटी टोलियाँ आती-जाती रहती थीं। दो-चार वेश्याएँ दूकान के सामने खड़ी नजर आती थीं। आज यह भीड़-भाड़ देखकर मैकू ने कहा–बड़ी भीड़ है बे, कोई दो तीन सौ आदमी होंगे।

कादिर ने मुस्करा कर कहा–भीड़ देख कर डर गये क्या ? यह सब हुर्र हो जायँगे, एक भी न टिकेगा। यह लोग तमाशा देखने आये हैं, लाठियाँ खाने नहीं आये हैं।

मैकू ने संदेह के स्वर में कहा–पुलिस के सिपाही भी बैठे हैं। ठीकेदार ने तो कहा था, पुलिस न बोलेगी।

कादिर–हाँ बे, पुलिस न बोलेगी, तेरी नानी क्यों मरी जा रही है। पुलिस वहाँ बोलती है, जहाँ चार पैसे मिलते हैं या जहाँ कोई औरत का मामला होता है। ऐसी बेफजूल बातों में पुलिस नहीं पड़ती। पुलिस तो और शह दे रही है। ठीकेदार से साल में सैकड़ों रुपये मिलते हैं। पुलिस इस वक्त उसकी मदद न करेगी तो कब करेगी ?

मैकू–चलो, आज दस हमारे भी सीधे हुए। मुफ्त में पियेंगे वह अलग, मगर सुनते हैं, काँग्रेसवालों में बड़े-बड़े मालदार लोग शरीक हैं। वह कहीं हम लोगों से कसर निकालें तो बुरा होगा।

कादिर–अबे, कोई कसर-वसर नहीं निकालेगा, तेरी जान क्यों निकल रही है ? काँग्रेसवाले किसी पर हाथ नहीं उठाते, चाहे कोई उन्हें मार ही डाले। नहीं तो उस दिन जुलूस में दस-बारह चौकीदारों की मजाल थी कि दस हजार आदमियों को पीटकर रख देते। चार तो वहीं ठंडे हो गये थे, मगर एक ने हाथ नहीं उठाया। इनके जो महात्मा हैं, वह बड़े भारी फकीर हैं ! उनका हुक्म है कि चुपके से मार खा लो, लड़ाई मत करो।

यों बातें करते-करते दोनों ताड़ीखाने के द्वार पर पहुँच गये। एक स्वयंसेवक हाथ जोड़कर सामने आ गया और बोला–भाई साहब, आपके मजहब में ताड़ी हराम है।

मैकू ने बात का जवाब चाँटे से दिया। ऐसा तमाचा मारा कि स्वयंसेवक की आँखों में खून आ गया। ऐसा मालूम होता था, गिरा चाहता है। दूसरे स्वयंसेवक ने दौड़कर उसे सँभाला। पाँचों उँगलियों का रक्तमय प्रतिबिम्ब झलक रहा था।

मगर वालंटियर तमाचा खा कर भी अपने स्थान पर खड़ा रहा। मैकू ने कहा–अब

हटता है कि और लेगा ?

स्वयंसेवक ने नम्रता से कहा—अगर आपकी यही इच्छा है, तो सिर सामने किये हुए हूँ। जितना चाहिए, मार लीजिए। मगर अंदर न जाइए।

यह कहता हुआ वह मैकू के सामने बैठ गया।

मैकू ने स्वयंसेवक के चेहरे पर निगाह डाली। उसकी पाँचों उँगलियों के निशान झलक रहे थे। मैकू ने इसके पहले अपनी लाठी से टूटे हुए कितने ही सिर देखे थे, पर आज की-सी ग्लानि उसे कभी न हुई थी। वह पाँचों उँगलियों के निशान किसी पंचशूल की भाँति उसके हृदय में चुभ रहे थे।

कादिर चौकीदारों के पास खड़ा सिगरेट पीने लगा। वहीं खड़े-खड़े बोला—अब, खड़ा देखता क्या है, लगा कसके एक हाथ।

मैकू ने स्वयंसेवक से कहा—तुम उठ जाओ, मुझे अंदर जाने दो।

'आप मेरी छाती पर पाँव रखकर चले जा सकते हैं।'

'मैं कहता हूँ, उठ जाओ, मैं अन्दर ताड़ी न पीऊँगा, एक दूसरा ही काम है।'

उसने यह बात कुछ इस दृढ़ता से कही कि स्वयंसेवक उठ कर रास्ते से हट गया। मैकू ने मुस्करा कर उसकी ओर ताका। स्वयंसेवक ने फिर हाथ जोड़कर कहा—अपना वादा भूल न जाना।

एक चौकीदार बोला—लात के आगे भूत भागता है, एक ही तमाचे में ठीक हो गया !

कादिर ने कहा—यह तमाचा बच्चा को जन्म-भर याद रहेगा। मैकू के तमाचे सह लेना मामूली काम नहीं है।

चौकीदार—आज ऐसा ठोंको इन सबों को कि फिर इधर आने का नाम न लें।

कादिर—खुदा ने चाहा, तो फिर इधर आयेंगे भी नहीं। मगर हैं सब बड़े हिम्मती। जान को हथेली पर लिये फिरते हैं।

2

मैकू भीतर पहुँचा, तो ठीकेदार ने स्वागत किया—आओ मैकू मियाँ ! एक ही तमाचा लगाकर क्यों रह गये ? एक तमाचे का भला इन पर क्या असर होगा ? बड़े लतखोर हैं सब। कितना ही पीटो, असर ही नहीं होता। बस आज सबों के हाथ-पाँव तोड़ दो; फिर इधर न आयें !

मैकू—तो क्या और न आयेंगे ?

ठीकेदार—फिर आते सबों की नानी मरेगी।

मैकू—और जो कहीं इन तमाशा देखनेवालों ने मेरे ऊपर डंडे चलाये तो !

ठीकेदार—तो पुलिस उनको मार भगायेगी। एक झड़प में मैदान साफ हो जायगा। लो, जब तक एकाध बोतल पी लो। मैं तो आज मुफ्त की पिला रहा हूँ।

मैकू—क्या इन ग्राहकों को भी मुफ्त ?

ठीकेदार—क्या करता, कोई आता ही न था। सुना कि मुफ्त मिलेगी, तो सब धँस पड़े।

मैकू—मैं तो आज न पीऊँगा।

ठीकेदार—क्यों ? तुम्हारे लिए तो आज ताजी ताड़ी मँगवायी है।

मैकू—यों ही, आज पीने की इच्छा नहीं है। लाओ, कोई लकड़ी निकालो, हाथ से मारते नहीं बनता।

ठीकेदार ने लपक कर एक मोटा सोंटा मैकू के हाथ में दे दिया, और डंडेबाजी का तमाशा देखने के लिए द्वार पर खड़ा हो गया।

मैकू ने एक क्षण डंडे को तौला, तब उछल कर ठीकेदार को ऐसा डंडा रसीद किया कि वहीं दोहरा होकर द्वार में गिर पड़ा। इसके बाद मैकू ने पियक्कड़ों की ओर रुख किया और लगा डंडों की वर्षा करने। न आगे देखता था, न पीछे, बस डंडे चलाये जाता था।

ताड़ीबाजों के नशे हिरन हुए। घबड़ा-घबड़ा कर भागने लगे, पर किवाड़ों के बीच में ठीकेदार की देह बिंधी पड़ी थी। उधर से फिर भीतर की ओर लपके। मैकू ने फिर डंडों से आवाहन किया। आखिर सब ठीकेदार की देह को रौंद-रौंद कर भागे। किसी का हाथ टूटा, किसी का सिर फूटा, किसी की कमर टूटी। ऐसी भगदड़ मची कि एक मिनट के अंदर ताड़ीखाने में एक चिड़िये का पूत भी न रह गया।

एकाएक मटकों के टूटने की आवाज आयी। स्वयंसेवक ने भीतर झाँककर देखा, तो मैकू मटकों को विध्वंस करने में जुटा हुआ था। बोला—भाई साहब, अजी भाई साहब, यह आप गजब कर रहे हैं। इससे तो कहीं अच्छा कि आपने हमारे ही ऊपर अपना गुस्सा उतारा होता।

मैकू ने दो-तीन हाथ चला कर बाकी बची हुई बोतलों और मटकों का सफाया कर दिया और तब चलते-चलते ठीकेदार को एक लात जमा कर बाहर निकल आया।

कादिर ने उसको रोक कर पूछा—तू पागल तो नहीं हो गया है बे ? क्या करने आया था, और क्या कर रहा है।

मैकू ने लाल-लाल आँखों से उसकी ओर देख कर कहा—हाँ, अल्लाह का शुक्र है कि मैं जो करने आया था, वह न करके कुछ और ही कर बैठा। तुममें कूवत हो, तो वालंटरों को मारो, मुझमें कूवत नहीं है। मैंने तो जो एक थप्पड़ लगाया, उसका रंज अभी तक है और हमेशा रहेगा ! तमाचे के निशान मेरे कलेजे पर बन गये हैं। जो लोग दूसरों को गुनाह से बचाने के लिए अपनी जान देने को खड़े हैं, उन पर वही हाथ उठायेगा, जो पाजी है, कमीना है, नामर्द है। मैकू फिसादी है, लठैत, गुंडा है, पर कमीना और नामर्द नहीं है। कह दो पुलिसवालों से, चाहें तो मुझे गिरफ्तार कर लें।

कई ताड़ीबाज खड़े सिर सहलाते हुए, उसकी ओर सहमी हुई आँखों से ताक रहे थे। कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ती थी। मैकू ने उनकी ओर देख कर रहा—मैं कल फिर आऊँगा। अगर तुममें से किसी को यहाँ देखा तो खून ही पी जाऊँगा ! जेल और फाँसी से नहीं डरता। तुम्हारी भलमनसी इसी में है कि अब भूल कर भी इधर न आना। यह काँग्रेसवाले तुम्हारे दुश्मन नहीं हैं। तुम्हारे और तुम्हारे बाल-बच्चों की भलाई के लिए ही तुम्हें पीने से रोकते हैं। इन पैसों से अपने बाल-बच्चों की परवरिश करो, घी-दूध खाओ।

घर में तो फाके हो रहे हैं, घरवाली तुम्हारे नाम को रो रही है, और तुम यहाँ बैठे पी रह हो?

लानत है इस नशेबाजी पर।

मैकू ने वहीं डंडा फेंक दिया और कदम बढ़ाता हुआ घर चला। इस वक्त तक हजारों आदमियों का हुजूम हो गया था। सभी श्रद्धा, प्रेम और गर्व की आँखों से मैकू को देख रहे थे।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', जून, 1930 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

स्वप्न

औरों की तो मैं नहीं जानता, पर मुझे तो जो आनंद और सुख मिलता है वह स्वप्न में; वहीं पहुँचकर मैं दिल खोलकर हँसता हूँ, दिल खोलकर रोता हूँ और दिल खोलकर खेलता हूँ। वहीं मेरा सुनहरा, रत्नजटित महल है, वहीं मेरी कामनाओं के फूल खिलते हैं, वहीं मेरी ज़बान अपनी होती है, मेरा कलम अपना होता है, मेरे विचार अपने होते हैं। मेरा वह संसार इस बंधन और कानून के संसार से कहीं ज़्यादा शांतिमय और कहीं ज़्यादा प्रत्यक्ष, कहीं ज्यादा स्फूर्तिप्रद है।

वह तन्मयता, वह अनुराग, वह उत्कर्ष, वह जागृति जिसका मैं वहाँ अनुभव करता हूँ, यहाँ कहाँ ! रोना यही है कि वैसे स्वप्न बहुत कम दिखाई देते हैं। लोग किसी अच्छे आदमी का मुँह देखकर उठना चाहते हैं। मैं किसी अच्छे आदमी का मुँह देखकर सोना चाहता हूँ।

मालूम नहीं कल किस भाग्यवान् का मुँह देखकर सोया था कि लेटते-ही-लेटते अपने स्वप्न-साम्राज्य में जा पहुँचा। क्या देखता हूँ कि मेरा बचपन लौट आया है, एक बार फिर मैं आजादी की हवा में दौड़ता फिरता हूँ। मेरी वह स्नेहमयी माता, वह प्यारी बहन, वह बाल-सखा, वह छोटा-सा घर, वह द्वार पर नीम का वृक्ष—सब कुछ आँखों के सामने आ गया। उस उमंग, उस उत्साह को क्या लिखूं, वह तो वर्णनातीत है, कल्पनातीत है ! मुझे खूब याद था कि अभी थोड़ी देर पहले मैं बूढ़ा था। मुझे स्वय अपनी काया पलटने पर आश्चर्य हो रहा था। मुझे अपनी प्रौढ़ावस्था की सारी बातें याद थीं—जीवन भर की भूलों, अनुपायों, निराशाओं और विफलताओं की याद ने मेरे बालपन को दुर्लभ बना दिया था। प्रौढ़ता भी थी, औद्धित्य भी, उमंग भी थी, संयम भी, गंभीरता भी थी, चंचलता भी। पेड़ों पर चढ़ता हूँ पर इस तरह कि गिर न पड़े, चीज़ों के लिए ज़िद भी करता हूँ पर इस तरह नहीं कि रो-रोकर दुनिया सिर पर उठा लूँ, खेलता हूँ तो इस तरह कि चोट न लगे, स्कूल में झूठे बहाने नहीं करता, चुगली नहीं खाता, काम से जी नहीं चुराता, जिन गलतियों से मेरा जीवन असफल हो गया था उन्हें दुहराकर इस दूसरे जीवन को भी असफल नहीं करना चाहता।

स्वप्न ही में यह शक्ति है कि वह महीनों, वर्षों और युगों को क्षणों में घटित कर दे और काल का भ्रम ज्यों-का-त्यों बना रहे। मैंने देखा कि मैं स्कूल से कॉलेज में जा पहुँचा

हूँ। कॉलेज नहीं है, लड़के भी नहीं। लेकिन अब मेरा किसी से द्वेष नहीं। मुझे याद है कि जिन लोगों को मैं तुच्छ समझता था वे मुझसे कहीं आगे निकल गये।

अब मैं किसी की निन्दा नहीं करता था। याद था कि अध्यापकों के लेक्चर देते समय मैं उपन्यास पढ़ा करता था, खेल के समय बाज़ार की सैर किया करता था। वही ग़लतियाँ क्या फिर कर सकता था ? वह उपन्यास-प्रेम हृदय का शून्य बन गया, वह बाज़ार की सैर पाँव की बेड़ी बन गयी। अब मैं सभी काम अपने वक्त पर करता था। वह फैशन की गुलामी, वह टाई और कॉलर का शौक़ वह नये-नये सूटों का उन्माद, वे हज़ारों बातें जिनका व्यसन हमारे छात्र जीवन को दूषित कर देता है इनमें से मुझे अब किसी चीज़ का भी शौक़ न था। एक पूरे जीवन के अनुभव अब मेरी रक्षा कर रहे थे। वही मैं जिनके लिए हॉकी स्टिक नंगी तलवार थी और फुटबाल बम का गोला, अब बड़े उत्साह से इन खेलों में शरीक होने लगा। व्यायाम से उदासीन रहकर मुझे जो पापड़ बेलने पड़े वह खूब याद थे।

फिर क्या देखता हूँ कि मेरे विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं। अब तक तो मैंने जो बातें देखी थीं उनसे जीवन का सुधार होने की ही आशा थी, किसी चिंता या भय की बात न थी। लेकिन विवाह जैसी महान घटना ने मेरी चेतना को मानो धक्के देकर जगा दिया। बालपन या यौवन अगर लौट आया है तो भी कुछ गाँठ से तो नहीं जाता। लेकिन कहीं विवाह हो गया तो एक की जगह दो-दो पत्नियाँ हो जायेंगी ! सोचिये, कितनी भीषण समस्या थीं। मैं बड़े धर्म-संकट में पड़ा हुआ हूँ कि विवाह करूँ या न करूँ। इस विवाह संवाद ने मेरी पूर्व-स्मृतियों को कुछ और जागृत कर दिया था। सोचता था कि भला यहाँ किसी को यह विश्वास आयेगा ! मैं तो पहले ही से इस वैतरणी में पड़ा हुआ हूँ और वह भी सिर पर आधी दर्जन छोटी-बड़ी गठरियाँ लिये हुए। मुझे खुद भी तो पूरा-पूरा निश्चय नहीं है कि मैं वास्तव में क्या हूँ—बूढ़ा या जवान ? मैं तो इस दुविधा में पड़ा हुआ हूँ और उधर घरवाले विवाह के सब सामान जुटाने पर तुले हुए हैं। अम्मा है कि उनके पाँव जमीन पर नहीं पड़ते, मानो संसार की जब से सृष्टि हुई है, उनके बेटे के सिवाय और किसी को यह सौभाग्य प्राप्त ही नहीं हुआ। दादा भी जिन्हें बाज़ार से नफ़रत है, जो बाज़ार को पैसे का परनाला कहते हैं और जिन्हें आभूषणों के नाम से चिढ़ है। इस विषय में अम्माजी से हज़ारों ही बार उनकी ठन चुकी है, अम्माजी के अकबरी हमलों के सामने भी वह राणा प्रताप की भाँति बराबर डटे रहे। आज ख़ुश-खुश सर्राफों की दूकानों की हवा खा रहे हैं। बार-बार बाज़ार आते-जाते थे, पर माथे पर बल का नाम भी न था। और मैं इस सोच में हूँ कि यह जवानी कहीं धोखा न हो। स्मृति के किसी गुप्त भाग में यह बात छिपी हुई मालूम होती है कि मेरे बाल-बच्चे हैं, स्त्री है, साले हैं, ससुर है। मुझे चिन्ता हो रही थी कि जब मैं यह नयी बहू लिये घर जाऊँगा तो लोग मुझे क्या कहेंगे। जवान बेटे हैं जो वृद्ध-विवाह को जीवन का सबसे बड़ा पाप समझते हैं; जिसके साथ जीवन के तीस साल बीते हैं वह स्त्री है। उन सबों के सामने मैं कौन मुँह लेकर जाऊँगा। यह न पूछिये कि नववधू के साथ मैं अपने माँ-बाप के घर के बदले अपने घर क्यों लौटता ? मेरा तो घर-बार ही नहीं। लेकिन यहाँ तो पूर्व-स्मृतियाँ बनी हुई थीं। उनके कुछ मिटे-मिटे निशान साफ़ नज़र आ रहे थे। फिर स्वप्न न्याय और शृंखला और घटनाक्रम का अनुसरण भी तो नहीं करता। सोचता

था मित्र वर्ग कितना मज़ाक उड़ायेंगे—वाह महाशय ! आप तो अनमेल विवाहों के बड़े विरोधी थे। यह आपको क्या सनक सवार हो गयी !

प्राण संकट में पड़े थे। सोचता था अम्मा को कैसे समझाऊँ ? कहीं लोग हँसने न लगें कि यह दीवाना हो गया है।

इतने में बाजे बजने लगे। अम्मा ने आकर मुझसे कहा, तुम्हारी भी विचित्र बात है, ऐसा मुँह लटकाये बैठे हो याने कोई चिंता-फ़िकर सवार हो। सारे घर में मंगल-गान हो रहा है और तुम रोनी सूरत बनाये बैठे हो। अभी तो हम जीते हैं, तुम्हें क्या चिंता ? जब हम मर जायँ, तब चिंता करना ! उठो, बारात जा रही है। जल्दी से कपड़े पहन लो !

मैं कुछ जवाब न दे सका। माँ से कैसे कहूँ कि मेरा तो विवाह एक बार तुम्हीं कर चुकी हो। चुपचाप जाकर कपड़े पहने। स्त्रियों ने गीत गाये। नाई, धोबी आदि ने न्योछावर पाये और मैं दूल्हा बना हुआ घर से निकलकर पालकी पर बैठा। कहारों ने पालकी उठाई फिर मैंने देखा कि मैं वधू के द्वार पर पहुँच गया। जनवासे में वही शोरगुल, चिल्ल-पौं मचा हुआ था जैसा दस्तूर है। जरा देर में मुझसे कहा गया कि पाणिग्रहण का मुहूर्त आ गया, चलो। अब मेरे लिए कठिन परीक्षा का समय था। जिस तरह अब तक बिना कान-पूँछ हिलाये सब कुछ करता आया हूँ अगर उसी तरह इस वक्त भी चुपके से चला गया तो अनर्थ हो जायेगा। पाँव में बेड़ी पड़ जायेगी और मैं कहीं का न रहूँगा। अगर यह जवानी मरीचिका ही निकली तो शेष जीवन कलंकित ही नहीं, दुःखमय हो जायेगा। कहीं का न रहूँगा। क्या कहकर जान बचाऊँ ? कौन-सा बहाना करूँ ? लोग मेरी बातों पर हँसेंगे और मुझे पागल समझेंगे। लेकिन यह जवानी बर्फ़ की तरह पिघल गयी तो इस युवती के साथ कितनी छीछालेदर होगी !

मैं उठकर भागा, जामा जोड़ा मौर पहने लपड़-सपड़ करता भागा। मेरे पीछे लोग दौड़े। मैं इस तरह जान छोड़कर भागा जा रहा था मानो कोई भयंकर जंतु मेरे पीछे पड़ा हुआ हो, यहाँ तक कि सामने एक नदी आ गयी और मैं उसमें कूद पड़ा।

बस, नींद खुल गयी। देखता हूँ तो चारपाई पर पड़ा हूँ, मगर साँस फूल रही है।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'वीणा', जुलाई, 1930 में प्रकाशित। 'दिल्ली', फरवरी, 1977 में पुनर्प्रकाशित। 'सोलह अप्राप्य कहानियां' तथा 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

आहुति

आनन्द ने गद्देदार कुर्सी पर बैठकर सिगार जलाते हुए कहा—आज बिशम्भर ने कैसी हिमाकत की ! इम्तहान करीब है और आप आज वालंटियर बन बैठे। कहीं पकड़े गये, तो इम्तहान से हाथ धोयेंगे। मेरा तो खयाल है कि वज़ीफ़ा भी बन्द हो जायगा।

सामने दूसरे बेंच पर रूपमणि बैठी एक अखबार पढ़ रही थी। उसकी आँखें अखबार की तरफ थीं; पर कान आनन्द की तरफ लगे हुए थे। बोली—यह तो बुरा हुआ। तुमने

समझाया नहीं ? आनन्द ने मुँह बनाकर कहा—जब कोई अपने को दूसरा गाँधी समझने लगे, तो उसे समझाना मुश्किल हो जाता है। वह उलटे मुझे समझाने लगता है।

रूपमणि ने अखबार को समेटकर बालों को सँभालते हुए कहा—तुमने मुझे भी नहीं बताया, शायद मैं उसे रोक सकती।

आनन्द ने कुछ चिढ़कर कहा—तो अभी क्या हुआ, अभी तो शायद काँग्रेस आफिस ही में हो। जाकर रोक लो।

आनन्द और विशम्भर दोनों ही यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी थे। आनन्द के हिस्से में लक्ष्मी भी पड़ी थी, सरस्वती भी; विशम्भर फूटी तकदीर लेकर आया था। प्रोफेसरों ने दया करके एक छोटा-सा वज़ीफ़ा दे दिया था। बस, यही उसकी जीविका थी। रूपमणि भी साल भर पहले उन्हीं की समकक्ष थी; पर इस साल उसने कालेज छोड़ दिया था। स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। दोनों युवक कभी-कभी उससे मिलने आते रहते थे। आनन्द आता था उसका हृदय लेने के लिए, विशम्भर आता था यों ही। जी पढ़ने में न लगता या घबड़ाता, तो उसके पास आ बैठता था। शायद उसने अपनी विपत्ति-कथा कहकर उसका चित्त कुछ शान्त हो जाता था। आनन्द के सामने कुछ बोलने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। आनन्द के पास उसके लिए सहानुभूति का एक शब्द भी न था। वह उसे फटकारता था, ज़लील करता था और बेवकूफ बनाता था। विशम्भर में उससे बहस करने की सामर्थ्य न थी। सूर्य के सामने दीपक की हस्ती ही क्या ? आनन्द का उस पर मानसिक आधिपत्य था। जीवन में पहली बार उसने उस आधिपत्य को अस्वीकार किया था और उसी की शिकायत लेकर आनन्द रूपमणि के पास आया था। महीनों विशम्भर ने आनन्द के तर्क पर अपने भीतर के आग्रह को ढाला; पर तर्क से परास्त होकर भी उसका हृदय विद्रोह करता रहा। बेशक उसका यह साल खराब हो जाएगा। संभव है, छात्र-जीवन ही का अन्त हो जाय, फिर इन चौदह-पन्द्रह वर्षों की मेहनत पर पानी फिर जायगा न खुदा ही मिलेगा, न सनम का विसाल ही नसीब होगा। आग में कूदने से क्या फायदा ? यूनिवर्सिटी में रहकर भी तो बहुत कुछ देश का काम किया जा सकता है। आनन्द महीने में कुछ-न-कुछ चंदा जमा कर देता है, दूसरे छात्रों से स्वदेशी की प्रतिज्ञा करा ही लेता है। विशम्भर को भी आनन्द ने यही सलाह दी। इस तर्क ने उसकी बुद्धि को तो जीत लिया, पर उसके मन को न जीत सका। आज जब आनन्द कालेज गया तो विशम्भर ने स्वराज्य-भवन की राह ली। आनन्द कालेज से लौटा तो उसे अपनी मेज पर विशम्भर का पत्र मिला। लिखा था—

'प्रिय आनन्द,

मैं जानता हूँ कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ वह मेरे लिए हितकर नहीं है; पर न जाने कौन-सी शक्ति मुझे खींचे लिये जा रही है। मैं जाना नहीं चाहता, पर जाता हूँ, उसी तरह जैसे आदमी मरना नहीं चाहता, पर मरता है रोना नहीं चाहता, पर रोता है। जब सभी लोग, जिन पर हमारी भक्ति है, ओखली में अपना सिर डाल चुके थे, तो मेरे लिए भी अब कोई दूसरा मार्ग नहीं है। मैं अब और अपनी आत्मा को धोखा नहीं दे सकता। यह इज्जत का सवाल है, और इज्जत किसी तरह का समझौता (Compromise) नहीं कर सकती।

तुम्हारा—'विशम्भर'

खत पढ़कर आनन्द के जी में आया, कि विशम्भर को समझा कर लौटा लाये; पर

उसकी हिमाकत पर गुस्सा आया और उसी तैश में वह रूपमणि के पास जा पहुँचा। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती—जाकर उसे लौटा लाओ, तो शायद वह चला जाता, पर उसका यह कहना कि मैं उसे रोक लेती, उसके लिए असह्य था। उसके जवाब में रोष था, रुखाई थी और शायद कुछ हसद भी था।

रूपमणि न गर्व से उसकी ओर देखा और बोली—अच्छी बात है, मैं जाती हूँ।

एक क्षण के बाद उसने डरते-डरते पूछा—तुम क्यों नहीं चलते ?

फिर वही गलती। अगर रूपमणि उसकी खुशामद करके कहती तो आनन्द ज़रूर उसके साथ चला जाता, पर उसके प्रश्न में पहले ही यह भाव छिपा था, कि आनन्द जाना नहीं चाहता। अभिमानी आनन्द इस तरह नहीं जा सकता। उसने उदासीन भाव से कहा—मेरा जाना व्यर्थ है। तुम्हारी बातों का ज्यादा असर होगा। मेरी मेज पर यह खत छोड़ गया था। जब वह आत्मा और कर्त्तव्य और आदर्श की बड़ी-बड़ी बातें सोच रहा है और अपने को भी कोई ऊँचे दरजे का आदमी समझ रहा है, तो मेरा उस पर कोई असर न होगा।

उसने जेब से पत्र निकालकर रूपमणि के सामने रख दिया। इन शब्दों में जो संकेत और व्यंग्य था, उसने एक क्षण तक रूपमणि को उसकी तरफ देखने न दिया। आनन्द के इस निर्दय प्रहार ने उसे आहत-सा कर दिया था; पर एक ही क्षण में विद्रोह की एक चिनगारी-सी उसके अन्दर जा घुसी। उसने स्वच्छन्द भाव से पत्र को लेकर पढ़ा। पढ़ा सिर्फ आनन्द के प्रहार का जवाब देने के लिए; पर पढ़ते-पढ़ते उसका चेहरा तेज से कठोर हो गया, गरदन तन गई, आँखों में उत्सर्ग की लाली आ गई।

उसने मेज़ पर पत्र रखकर कहा—नहीं, अब मेरा जाना भी व्यर्थ है।

आनन्द ने अपनी विजय पर फूलकर कहा—मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया, इस वक़्त उसके सिर पर भूत सवार है, उस पर किसी के समझाने का असर न होगा। जब साल भर जेल में चक्की पीस लेंगे और वहाँ से तपेदिक लेकर निकलेंगे, या पुलिस के डण्डों से सिर और हाथ-पाँव तुड़वा लेंगे, तो बुद्धि ठिकाने आवेगी। अभी तो जयजयकार और तालियों के स्वप्न देख रहे होंगे।

रूपमणि सामने आकाश की ओर देख रही थी। नीले आकाश में एक छायाचित्र-सा नजर आ रहा था—दुर्बल, सूखा हुआ नग्न शरीर, घुटनों तक धोती, चिकना सिर, पोपला मुँह, तप, त्याग और सत्य की सजीव मूर्ति।

आनन्द ने फिर कहा—अगर मुझे मालूम हो, कि मेरे रक्त से देश का उद्धार हो जायगा, तो मैं आज उसे देने को तैयार हूँ; लेकिन मेरे जैसे सौ-पचास आदमी निकल ही आयें, तो क्या होगा ? प्राण देने के सिवा और तो कोई प्रत्यक्ष फल नहीं दीखता।

रूपमणि अब भी वही छायाचित्र देख रही थी। वही छाया मुसकरा रही थी, सरल मनोहर मुस्कान, जिसने विश्व को जीत लिया है।

आनन्द फिर बोला—जिन महाशयों को परीक्षा का भूत सताया करता है, उन्हें देश का उद्धार करने की सूझती है। पूछिए, आप अपना उद्धार तो कर ही नहीं सकते, देश का क्या उद्धार कीजिएगा ? इधर फेल होने से उधर के डण्डे फिर भी हल्के हैं।

रूपमणि की आँखें आकाश की ओर थीं। छायाचित्र कठोर हो गया था।

आनन्द ने जैसे चौंककर कहा–हाँ, आज बड़ी मजेदार फ़िल्म है। चलती हो ? पहले शो में लौट आयें।

रूपमणि ने जैसे आकाश से नीचे उतरकर कहा–नहीं, मेरा जी नहीं चाहता।

आनन्द ने धीरे से उसका हाथ पकड़कर कहा–तबीयत तो अच्छी है ? रूपमणि ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा न की। बोली–हाँ, तबीयत में हुआ क्या है ?

'तो चलती क्यों नहीं ?'

'आज जी नहीं चाहता।'

'तो फिर मैं भी न जाऊँगा।'

'बहुत ही उत्तम, टिकट के रुपये कॉंग्रेस को दे दो।'

'यह तो टेढ़ी शर्त है; लेकिन मंजूर !'

'कल रसीद मुझे दिखा देना।'

'तुम्हें मुझ पर इतना विश्वास भी नहीं ?'

आनन्द होस्टल चला। जरा देर बाद रूपमणि स्वराज्य-भवन की ओर चली।

2

रूपमणि स्वराज्य-भवन पहुँची, तो स्वयंसेवकों का एक दल विलायती कपड़े के गोदामों को पिकेट करने जा रहा था। विशम्भर दल में न था।

दूसरा दल शराब की दूकानों पर जाने को तैयार खड़ा था। विशम्भर इसमें भी न था।

रूपमणि ने मंत्री के पास जाकर कहा–आप बता सकते हैं, विशम्भर नाथ कहाँ हैं ?

मंत्री ने पूछा–वही, जो आज भरती हुए हैं ?

'जी हाँ, वही।'

'बड़ा दिलेर आदमी है। देहातों को तैयार करने का काम लिया है। स्टेशन पहुँच गया होगा। सात बजे की गाड़ी से जा रहा है।'

'तो अभी स्टेशन पर होंगे ?'

मंत्री ने घड़ी पर नज़र डालकर जवाब दिया–हाँ, अभी तो शायद स्टेशन पर मिल जायँ।

रूपमणि ने बाहर निकलकर साइकिल तेज की। स्टेशन पर पहुँची, तो देखा, विशम्भर प्लेटफार्म पर खड़ा है।

रूपमणि को देखते ही लपककर उसके पास आया और बोला–तुम यहाँ कैसे आईं। आज आनन्द से तुम्हारी मुलाकात हुई थी ?

रूपमणि ने उसे सिर से पाँव तक देखकर कहा–यह तुमने क्या सूरत बना रखी है? क्या पाँव में जूता पहनना भी देशद्रोह है ?

विशम्भर ने डरते-डरते पूछा–आनन्द बाबू ने तुमसे कुछ कहा नहीं ?

रूपमणि ने स्वर को कठोर बनाकर कहा–जी हाँ, कहा। तुम्हें यह क्या सूझी ? दो साल से कम के लिए न जाओगे।

विशम्भर का मुँह गिर गया। बोला–जब यह जानती हो, तो क्या तुम्हारे पास मेरी हिम्मत बँधाने के लिए दो शब्द नहीं हैं ?

रूपमणि का हृदय मसोस उठा; मगर बाहरी उपेक्षा को न तयाग सकी। बोली–तुम

मुझे दुश्मन समझते हो, या दोस्त ?

विशम्भर ने आँखों में आँसू भरकर कहा—तुम ऐसा प्रश्न क्यों करती हो रूपमणि ? इसका जवाब मेरे मुँह से न सुनकर भी क्या तुम नहीं समझ सकतीं ?

रूपमणि—तो मैं कहती हूँ, तुम मत जाओ।

विशम्भर—यह दोस्त की सलाह नहीं है रूपमणि ! मुझे विश्वास है, तुम हृदय से यह नहीं कह रही हो। मेरे प्राणों का क्या मूल्य है, जरा यह सोचो। एम. ए. होकर भी सौ रुपये की नौकरी। बहुत बढ़ा तो तीन-चार सौ तक जाऊँगा। इसके बदले यहाँ क्या मिलेगा, जानती हो ? सम्पूर्ण देश का स्वराज्य। इतने महान् हेतु के लिए मर जाना भी उस ज़िन्दगी से कहीं बढ़कर है। अब जाओ, गाड़ी आ रही है। आनन्द बाबू से कहना, मुझसे नाराज न हों।

रूपमणि ने आज तक इस मन्दबुद्धि युवक पर दया की थी। इस समय उसकी श्रद्धा का पात्र बन गया। त्याग में हृदय को खींचने की जो शक्ति है, उसने रूपमणि को इतने वेग से खींचा कि परिस्थितियों का अन्तर मिट-सा गया। विशम्भर में जितने दोष थे, वे सभी अलंकार बन-बनकर चमक उठे। उसके हृदय की विशालता में वह किसी पक्षी की भाँति उड़-उड़कर आश्रय खोजने लगी।

रूपमणि ने उसकी ओर आतुर नेत्रों से देखकर कहा—मुझे भी अपने साथ लेते चलो।

विशम्भर पर जैसे घड़ों का नशा चढ़ गया।

'तुमको ? आनन्द बाबू मुझे जिन्दा न छोड़ेंगे !'

'मैं आनन्द के हाथों बिकी नहीं हूँ !'

'आनन्द तो तुम्हारे हाथों बिके हुए हैं ?'

रूपमणि ने विद्रोह भरी आँखों से उसकी ओर देखा, पर कुछ बोली नहीं। परिस्थितियाँ उसे इस समय बाधाओं सी मालूम हो रही थीं। वह भी विशम्भर की भाँति स्वच्छन्द क्यों न हुई ? सम्पन्न माँ-बाप की अकेली लड़की, भोग-विलास में पली हुई, इस समय अपने को कैदी समझ रही थी। उसकी आत्मा उन बन्धनों को तोड़ डालने के लिए जोर लगाने लगी।

गाड़ी आ गई। मुसाफिर चढ़ने-उतरने लगे। रूपमणि ने सजल नेत्रों से कहा—तुम मुझे नहीं ले चलोगे ?

विशम्भर ने दृढ़ता से कहा—नहीं।

'क्यों ?'

'मैं इसका जवाब नहीं देना चाहता !'

'क्या तुम समझते हो, मैं इतनी विलासासक्त हूँ कि मैं देहात में रह नहीं सकती ?'

विशम्भर लज्जित हो गया। यह भी एक बड़ा कारण था, पर उसने इनकार किया—नहीं, यह बात नहीं।

'फिर क्या बात है ? क्या यह भय है, पिताजी मुझे त्याग देंगे ?'

'अगर यह भय हो तो क्या वह विचार करने योग्य नहीं ?'

'मैं उनकी तृण बराब परवा नहीं करती।'

विशम्भर ने देखा, रूपमणि के चाँद-से मुख पर गर्वमय संकल्प का आभास था। वह

उस संकल्प के सामने जैसे काँप उठा। बोला—मेरी यह याचना स्वीकार करो रूपमणि, मैं तुमसे विनती करता हूँ।

रूपमणि सोचती रही।

विशम्भर ने फिर कहा—मेरी खातिर तुम्हें यह विचार छोड़ना पड़ेगा।

रूपमणि ने सिर झुकाकर कहा—अगर तुम्हारा यह आदेश है, तो मैं मानूँगी विशम्भर! तुम दिल में समझते हो, मैं क्षणिक आवेश में आकर इस समय अपने भविष्य को गारत करने जा रही हूँ। मैं तुम्हें दिखा दूँगी, यह मेरा क्षणिक आवेश नहीं है, दृढ़ संकल्प है। जाओ; मगर मेरी इतनी बात मानना कि कानन के पंजे में उसी वक्त आना, जब आत्माभिमान या सिद्धान्त पर चोट लगती हो। मैं ईश्वर से तुम्हारे लिए प्रार्थना करती रहूँगी।

गाड़ी ने सीटी दी। विशम्भर अन्दर जा बैठा। गाड़ी चली गई, रूपमणि मानो विश्व की सम्पत्ति अंचल में लिए खड़ी रही।

3

रूपमणि के पास विशम्भर का एक पुराना रद्दी-सा फोटो आल्मारी के एक कोने में पड़ा हुआ था। आज स्टेशन से आकर उसने उसे निकाला और उसे एक मखमली फ्रेम में लगाकर मेज पर रख दिया। आनन्द का फोटो वहाँ से हटा दिया गया।

विशम्भर ने छुट्टियों में उसे दो-चार पत्र लिखे थे। रूपमणि ने उन्हें पढ़कर एक किनारे डाल दिये थे। आज उसने उन पत्रों को निकाला और उन्हें दोबारा पढ़ा। उन पत्रों में आज कितना रस था! वह बड़ी हिफाजत से राइटिंग-बाक्स में बन्द कर दिये गये।

दूसरे दिन समाचारपत्र आया तो रूपमणि उस पर टूट पड़ी। विशम्भर का नाम देखकर वह गर्व से फूल उठी।

दिन में एक बार स्वराज्य-भवन जाना उनका नियम हो गया। जलसों में भी बराबर शरीक होती, विलास की चीजे एक-एक करके सब फेंक दी गई। रेशमी साड़ियों की जगह गाढ़े की साड़ियाँ आई। चरखा भी आया। वह घण्टों बैठी सूत काता करती। उसका सूत दिन-दिन बारीक होता जाता था। इसी सूत से वह विशम्भर के कुरते बनवायेगी।

इन दिनों परीक्षा की तैयारियाँ थीं। आनन्द को सिर उठाने की फुरसत न मिलती। दो-एक बार वह रूपमणि के पास आया; पर ज्यादा देर बैठा नहीं। शायद रूपमणि की शिथिलता ने उसे ज्यादा बैठने ही न दिया।

एक महीना बीत गया।

एक दिन शाम को आनन्द आया। रूपमणि स्वराज्य-भवन जाने को तैयार थी। आनन्द ने भवें सिकोड़कर कहा—तुमसे तो अब बातें भी मुश्किल हैं।

रूपमणि ने कुर्सी पर बैठकर कहा—तुम्हें भी तो किताबों से छुट्टी नहीं मिलती। आज की कुछ ताजी खबर नहीं मिली। स्वराज्य-भवन में रोज-रोज का हाल मालूम हो जाता है।

आनन्द ने दार्शनिक उदासीनता से कहा—विशम्भर ने तो सुना, देहातें में खूब शोरगुल मचा रखा है। जो काम उसके लायक था, वह मिल गया। यहाँ उसकी जबान बन्द रहती थी। वहाँ देहातियों में खूब गरजता होगा; मगर आदमी दिलेर है।

रूपमणि ने उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा; जो कह रही थीं; तुम्हारे लिए यह चर्चा

अनाधिकार चेष्टा है, और बोली—आदमी में अगर यह गुण है तो फिर उसके सारे अवगुण मिट जाते हैं। तुम्हें काँग्रेस बुलेटिन पढ़ने की क्यों फुरसत मिलती होगी। विशम्भर ने देहातों में ऐसी जागृति फैला दी है कि विलायती का एक सूत भी नहीं बिकने पाता और न नशे की दूकानों पर कोई जाता है। और मजा यह है कि पिकेटिंग करने की जरूरत नहीं पड़ती। अब तो पंचायतें खोल रहे हैं।

आनन्द ने उपेक्षा भाव से कहा—तो समझ लो, अब उनके चलने के दिन भी आ गये हैं।

रूपमणि ने जोश से कहा—इतना करके जाना बहुत सस्ता नहीं है। कल तो किसानों का एक बहुत बड़ा जलसा होनेवाला था। पूरे परगने के लोग जमा हुए होंगे। सुना है, आजकल देहातों से कोई मुकदमा ही नहीं आता। वकीलों की नानी मरी जा रही है।

आनन्द ने कड़वेपन से कहा—यही तो स्वराज्य का मजा है कि जमींदार, वकील और व्यापारी सब मरें। बस, केवल मजदूर और किसान रह जायँ।

रूपमणि ने समझ लिया, आज आनन्द तुलकर आया है। उसने भी जैसे आस्तीन चढ़ाते हुए कहा—तो तुम क्या चाहते हो कि ज़मींदार और वकील और व्यापारी गरीबों को चूस-चूसकर मोटे होते जायँ और जिन सामाजिक व्यवस्थाओं में ऐसा महान् अन्याय हो रहा है, उनके खिलाफ ज़बान तक न खोली जाय ? तुम तो समाज शास्त्र के पंडित हो। क्या किसी अर्थ में यह व्यवस्था आदर्श कही जा सकती है ? सभ्यता के तीन मुख्य सिद्धान्तों का ऐसी दशा में किसी न्यूनतम मात्रा में भी व्यवहार हो सकता है ?

आनन्द ने गर्म होकर कहा—शिक्षा और सम्पत्ति का प्रभुत्व हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। हाँ, उसका रूप भले ही बदल जाय।

रूपमणि ने आवेश से कहा—अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढ़ा-लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मैं कहूँगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। अंग्रेजी महाजनों की धन-लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही आज हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिए हुए हैं, उन्हीं बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ायेगी कि वे विदेशी नहीं, स्वदेशी हैं ? कम-से-कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नहीं है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जायँ। मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ, जहाँ कम-से-कम विषमता को आश्रय न मिल सके।

आनन्द—यह तुम्हारी निज की कल्पना होगी।

रूपमणि—तुमने अभी इस आन्दोलन का साहित्य पढ़ा ही नहीं।

आनन्द—न पढ़ा है, न पढ़ना चाहता हूँ।

रूपमणि—इससे राष्ट्र की कोई बड़ी हानि न होगी।

आनन्द—तुम तो जैसे वह रही ही नहीं। बिलकुल काया-पलट हो गई।

सहसा डाकिये ने काँग्रेस बुलेटिन लाकर मेज पर रख दिया। रूपमणि ने अधीर होकर उसे खोला। पहले शीर्षक पर नज़र पड़ते ही उसकी आँखों में जैसे नशा छा गया। अज्ञात रूप से गर्दन तन गई और चेहरा एक अलौकिक तेज से दमक उठा।

उसने आवेश में खड़ी होकर कहा—विशम्भर पकड़ लिए गए और दो साल की सजा हो गई।

आनन्द ने विरक्त मन से पूछा–किस मुआमले में सजा हुई ?

रूपमणि ने विशम्भर के फोटो को अभिमान की आँखों से देखकर कहा–रानीगंज में किसानों की विराट् सभा थी। वहीं पकड़ा है।

आनन्द–मैंने तो पहले ही कहा था, दो साल के लिए जायेंगे। जिन्दगी खराब कर डाली।

रूपमणि ने फटकार बताई–क्या डिग्री ले लेने ही से आदमी का जीवन सफल हो जाता है ? सारा ज्ञान, सारा अनुभव पुस्तकों ही में भरा हुआ है। मैं समझती हूँ, संसार और मानवी चरित्र का जितना अनुभव विशम्भर को दो सालों में हो जायगा, उतना दर्शन और कानून की पोथियों से तुम्हें दो सौ वर्षो में भी न होगा। अगर शिक्षा का उद्देश्य चरित्रबल मानो, तो राष्ट्र-संग्राम में मनोबल के जितने साधन हैं, पेट के संग्राम में कभी हो ही नहीं सकते। तुम यह कह सकते हो कि हमारे लिए पेट की चिन्ता ही बहुत है, हमसे और कुछ हो ही नहीं सकता, हममें न उतना साहस है, न बल, न धैर्य, न संगठन, तो मैं मान जाऊँगी; लेकिन जातिहित के लिए प्राण देने वालों को बेवकूफ बनाना मुझसे नहीं सहा जा सकता। विशम्भर के इशारे पर आज लाखों आदमी सीना खोलकर खड़े हो जायेंगे। तुममें है जनता के सामने खड़े होने का हौसला ? जिन लोगों ने तुम्हें पैरों के नीचे कुचल रखा है, जो तुम्हें कुत्तों से भी नीचे समझते हैं, उन्हीं की गुलामी करने के लिए तुम डिग्रियों पर जान दे रहे हो। तुम इसे अपने लिए गौरव की बात समझो, मैं नहीं समझती।

आनन्द तिलमिला उठा। बोला–तुम तो पक्की क्रांतिकारिणी हो गई इस वक्त।

रूपमणि ने उसी आवेश में कहा–अगर सच्ची-खरी बातों में तुम्हें क्रांति की गन्ध मिले, तो मेरा दोष नहीं।

'आज विशम्भर को बधाई देने के लिए जलसा जरूर होगा। क्या तुम उसमें जाओगी?'

रूपमणि ने उग्रभाव से कहा–जरूर जाऊँगी, बोलूँगी भी, और कल रानीगंज भी चली जाऊँगी। विशम्भर ने जो दीपक जलाया है, वह मेरे जीते-जी बुझने न पायेगा।

आनन्द ने डूबते हुए आदमी की तरह तिनके का सहारा लिया–अपनी अम्माँ और दादा से पूछ लिया है ?

'पूछ लूँगी !'

'और वह तुम्हें अनुमति भी दे देंगे ?'

'सिद्धान्त के विषय में अपनी आत्मा का आदेश सर्वोपरि होता है।'

'अच्छा, यह नई बात मालूम हुई।'

यह कहता हुआ आनन्द उठ खड़ा हुआ और बिना हाथ मिलाये कमरे के बाहर निकल गया। उसके पैर इस तरह लड़खड़ा रहे थे, कि अब गिरा, अब गिरा।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', नवम्बर, 1930 में प्रकाशित। 'कफन' में संकलित। उर्दू रूप 'जेल' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', जनवरी, 1931 में प्रकाशित।]

तिरसूल

अंधेरी रात है, मूसलाधार पानी बरस रहा है। खिड़कियों पर पानी के थप्पड़ लग रहे हैं। कमरे की रोशनी खिड़की से बाहर जाती है तो पानी की बड़ी-बड़ी बूंदें तीरों की तरह नोकदार, लंबी, मोटी, गिरती हुई नजर आ जाती हैं। इस वक्त अगर घर में आग भी लग जाए तो शायद मैं बाहर निकलने की हिम्मत न करूं। लेकिन एक दिन था जब ऐसी ही अंधेरी भयानक रात के वक्त मैं मैदान में बंदूक लिए पहरा दे रहा था। उसे आज तीस साल गुजर गए। उन दिनों मैं फौज में नौकर था। आह ! वह फौजी जिंदगी कितने मजे से गुजरती थी। मेरी जिंदगी की सबसे मीठी, सबसे सुहानी यादगारें उसी जमाने से जुड़ी हुई हैं। आज मुझे इस अंधेरी कोठरी में अखबारों के लिए लेख लिखते देखकर कौन समझेगा कि इस नीमजान, झुकी हुई कमर वाले खस्ताहाल आदमी में भी कभी हौसला और हिम्मत और जोश का दरिया लहरें मारता था। क्या-क्या दोस्त थे जिनके चेहरों पर हमेशा मुस्कराहट नाचती रहती थी। शेरदिल रामसिंह और मीठे गले वाले देवीदास की याद क्या कभी दिल से मिट सकती है ? वह अदन, वह बसरा, वह मिस्र; सब आज मेरे लिए सपने हैं। यथार्थ है तो यह तंग कमरा और अखबार का दफ्तर।

हां, ऐसी ही अंधेरी डरावनी सुनसान रात थी। मैं बारक के सामने बरसाती पहने हुए खड़ा मैगजीन का पहरा दे रहा था। कंधे पर भरा हुआ राइफल था। बारक में से दो-चार सिपाहियों के गाने की आवाजें आ रही थीं। रह-रहकर जब बिजली चमक जाती थी तो सामने के ऊंचे पहाड़ और दरख्त और नीचे का हरा-भरा मैदान इस तरह नजर आ जाते थे। जैसे किसी बच्चे की बड़ी-बड़ी, काली-भोली पुतलियों में खुशी की झलक नजर आ जाती है।

धीरे-धीरे बारिश ने तूफानी सूरत अख्तियार की। अंधकार और भी अंधेरा, बादल की गरज और भी डरावनी और बिजली की चमक और भी तेज हो गई। मालूम होता था प्रकृति अपनी सारी शक्ति से जमीन को तबाह कर देगी।

यकायक मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सामने से किसी चीज की परछाईं-सी निकल गई। पहले तो मुझे खयाल हुआ कि कोई जंगली जानवर होगा लेकिन बिजली की एक चमक ने यह खयाल दूर कर दिया। वह कोई आदमी था, जो बदन को चुराये पानी में भीगता हुआ एक तरफ जा रहा था। मुझे हैरत हुई कि इस मूसलाधार वर्षा में कौन आदमी बारक से निकल सकता है और क्यों ? मुझे अब उसके आदमी होने में कोई संदेह न था। मैंने बंदूक सम्हाल ली और फौजी कायदे के मुताबिक पुकारा—हाल्ट, हू कम्स देअर ? फिर भी कोई जवाब नहीं। कायदे के मुताबिक तीसरी बार ललकारने पर अगर जवाब न मिले तो मुझे बंदूक दाग देनी चाहिए थी। इसलिए मैंने बंदूक हाथ में लेकर खूब जोर से कड़ककर कहा—हाल्ट, हू कम्स देअर ? जवाब तो अबको भी न मिला मगर वह परछाईं मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। अब मुझे मालूम हुआ कि वह मर्द नहीं औरत है। इसके पहले कि मैं कोई सवाल करूं उसने कहा—संतरी, खुदा के लिए चुप रहो। मै हूं लुईसा।

मेरी हैरत की कोई हद न रही। अब मैंने उसे पहचान लिया। वह हमारे कमांडिंग अफसर की बेटी लुईसा ही थी। मगर इस वक्त इस मूसलाधार मेंह और इस घटाटोप अंधेरे

में यह कहां जा रही है ? बारक में एक हजार जवान मौजूद थे जो उसका हुक्म पूरा कर सकते थे। फिर वह नाजुक वदन औरत इस वक्त क्यों निकली और कहां के लिए निकली? मैंने आदेश के स्वर में पूछा—तुम इस वक्त कहां जा रही हो ?

लुईसा ने विनती के स्वर में कहा—माफ करो संतरी, यह मैं नहीं बता सकती और तुमसे प्रार्थना करती हूं कि यह बात किसी से न कहना। मैं हमेशा तुम्हारी एहसानमंद रहूंगी।

यह कहते-कहते उसकी आवाज इस तरह कांपने लगी जैसे किसी पानी से भरे हुए बर्तन की आवाज।

मैंने उसी सिपाहियाना अंदाज से कहा—यह कैसे हो सकता है। मैं फौज का एक अदना सिपाही हूं। मुझे इतना अख्तियार नहीं। मैं कायदे के मुताबिक आपको अपने सार्जेट के सामने ले जाने के लिए मजबूर हूं।

"लेकिन क्या तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हारे कमांडिंग अफसर की लड़की हूं ?"

मैंने जरा हंसकर जवाब दिया—अगर मैं इस वक्त कमांडिग अफसर साहब को भी ऐसी हालत में देखूं तो उनके साथ भी मुझे यही सख्ती करनी पड़ेगी। कायदा सबके लिए यकसां है और एक सिपाही को किसी हालत में उसे तोड़ने का अख्तियार नहीं है।

यह निर्दय उत्तर पाकर उसने करुण स्वर में पूछा—तो फिर क्या तदबीर है ?

मुझे उस पर रहम तो आ रहा था लेकिन कायदों की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। मुझे नतीजे का जरा भी डर न था। कोर्ट मार्शल या तनज्जुली या और कोई सजा मेरे ध्यान में न थी। मेरा अंतःकरण भी साफ था। लेकिन कायदे को कैसे तोड़ूं। इसी हैस-बैस में खड़ा था कि लुईसा ने एक कदम बढ़कर मेरा हाथ पकड़ लिया और निहायत पुरदर्द बेचैनी के लहजे में बोली—तो फिर मैं क्या करूं ?

ऐसा मालूम हो रहा था कि जैसे उसका दिल पिघला जा रहा हो। मैं महसूस कर रहा था कि उसका हाथ कांप रहा है। एक बार जी में आया जाने दूं। प्रेमी के संदेश या अपने वचन की रक्षा के सिवा और कौन-सी शक्ति इस हालत में उसे घर से निकलने पर मजबूर करती ? फिर मैं क्यों किसी की मुहब्बत की राह का कांटा बनूं। लेकिन कायदे ने फिर जुबान पकड़ ली। मैंने अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश न करके मुंह फेरकर कहा—और कोई तदबीर नहीं है।

मेरा जवाब सुनकर उसकी पकड़ ढीली पड़ गई कि जैसे शरीर में जान न हो पर उसने अपना हाथ हटाया नहीं, मेरे हाथ को पकड़े हुए गिड़गिड़ाकर बोली—संतरी, मुझ पर रहम करो। खुदा के लिए मुझ पर रहम करो। मेरी इज्जत खाक में मत मिलाओ। मैं बड़ी बदनसीब हूं।

मेरे हाथ पर आंसुओं के कई गरम कतरे टपक पड़े। मूसलाधार बारिश का मुझ पर जर्रा भर भी असर न हुआ था लेकिन इन चंद बूंदों ने मुझे सर से पांव तक हिला दिया।

मैं बड़े पसोपेश में पड़ गया। एक तरफ कायद और फर्ज की आहनी दीवार थी, दूसरी तरफ एक सुकुमार युवती का विनती भरा आग्रह। मैं जानता था अगर उसे सार्जेट के सुपुर्द कर दूंगा तो सवेरा होते ही सारे बटालियन में खबर फैल जाएगी, कोर्ट मार्शल होगा, कमांडिंग अफसर की लड़की पर भी फौज का लौह कानून कोई रियायत न कर सकेगा।

उसके बेरहम हाथ उस पर भी बेदर्दी से उठेंगे। खासकर लड़ाई के जमाने में।

और अगर इसे छोड़ दूं तो इतनी ही बेदर्दी से कानून मेरे साथ पेश आएगा। जिंदगी खाक में मिल जाएगी। कौन जाने कल जिंदा भी रहूं या नहीं। कम-से-कम तनज्जुली तो होगी ही। भेद छिपा भी रहे तो क्या मेरी अंतरात्मा मुझे सदा न धिक्कारेगी ? क्या मैं फिर किसी के सामने इसी दिलेर ढंग से ताक सकूंगा ? क्या मेरे दिल में हमेशा एक चोर-सा समाया रहेगा ?

लुईसा बोल उठी—संतरी !

विनती का एक शब्द भी उसके मुंह से न निकला। वह अब निराशा की उस सीमा पर पहुंच चुकी थी जब आदमी की वाक्शक्ति अकेले शब्दों तक सीमित हो जाती है। मैंने सहानुभूति के स्वर में कहा—बड़ा मुश्किल मामला है।

"संतरी, मेरी इज्जत बचा लो। मेरे सामर्थ्य में जो कुछ है वह तुम्हारे लिए करने को तैयार हूं।"

मैंने स्वाभिमानपूर्वक कहा—मिस लुईसा, मुझे लालच न दीजिए, मैं लालची नहीं हूं। मैं सिर्फ इसलिए मजबूर हूं कि फौजी कानून को तोड़ना एक सिपाही के लिए दुनिया में सबसे बड़ा जुर्म है।

"क्या एक लड़की के सम्मान की रक्षा करना नैतिक कानून नहीं है ? क्या फौजी कानून नैतिक कानून से भी बड़ा है ?" लुईसा ने जरा जोश में भरकर कहा।

इस सवाल का मेरे पास क्या जवाब था। मुझसे कोई जवाब न बन पड़ा। फौजी कानून अस्थायी, परिवर्तनशील होता है, परिवेश के अधीन होता है। नैतिक कानून अटल और सनातन होता है, परिवेश से ऊपर। मैंने कायल होकर कहा—जाओ मिस लुईसा, तुम अब आजाद हो, तुमने मुझे लाजवाब कर दिया। मैं फौजी कानून तोड़कर इस नैतिक कर्तव्य को पूरा करूंगा। मगर तुमसे केवल यही प्रार्थना है कि आगे फिर कभी किसी सिपाही को नैतिक कर्तव्य का उपदेश न देना क्योंकि फौजी कानून में वह भी जुर्म है। फौजी आदमी के लिए दुनिया में सबसे बड़ा कानून फौजी कानून है। फौज किसी नैतिक, आत्मिक या ईश्वरीय कानून की परवाह नहीं करती।

लुईसा ने फिर मेरा हाथ पकड़ लिया और एहसान में डूबे हुए लहजे में बोली—संतरी, भगवान् तुम्हें इसका फल दे।

मगर फौरन उसे संदेह हुआ कि शायद यह सिपाही आइंदा किसी मौके पर यह भेद न खोल दे इसलिए अपने और भी इत्मीनान के खयाल से उसने कहा—मेरी आबरू अब तुम्हारे हाथ है।

मैंने विश्वास दिलाने वाले ढंग से कहा—मेरी ओर से आप बिल्कुल इत्मीनान रखिए।

"कभी किसी से नहीं कहोगे न ?"

"कभी नहीं।"

"कभी नहीं ?"

"हां, जीते-जी कभी नहीं।"

"अब मुझे इत्मीनान हो गया, संतरी ! लुईसा तुम्हारी इस नेकी और एहसान को मौत की गोद में जाते वक्त भी न भूलेगी। तुम जहां रहोगे तुम्हारी यह बहन तुम्हारे लिए

भगवान् से प्रार्थना करती रहेगी। जिस वक्त तुम्हें कभी जरूरत हो, मेरी याद करना। लुईसा दुनिया के उस पर्दे पर होगी तब भी तुम्हारी खिदमत के लिए हाजिर होगी। वह आज से तुम्हें अपना भाई समझती है। सिपाही की जिंदगी में ऐसे मौके आते हैं जब उसे एक खिदमत करने वाली बहन की जरूरत होती है। भगवान् न करे तुम्हारी जिंदगी में ऐसे मौके आएं लेकिन अगर आएं तो लुईसा अपना फर्ज अदा करने में कभी पीछे न रहेगी। क्या मैं अपने नेकमिजाज भाई का नाम पूछ सकती हूं ?

बिजली एक बार चमक उठी। मैंने देखा लुईसा की आंखों में आंसू भरे हुए हैं। बोला—लुईसा, इन हौसला बढ़ाने वाली बातों के लिए मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूं। लेकिन मैं जो कुछ कह रहा हूं, वह नैतिकता और हमदर्दी के नाते कर रहा हूं। किसी इनाम की मुझे इच्छा नहीं है। मेरा नाम पूछकर क्या करोगी ?

लुईसा ने शिकायत के स्वर में कहा—क्या बहन के लिए भाई का नाम पूछना भी फौजी कानून के खिलाफ है ?

इन शब्दों में कुछ ऐसी सच्चाई, कुछ ऐसा प्रेम, कुछ ऐसा अपनापन भरा हुआ था कि मेरी आंखों में बरबस आंसू भर आए।

बोला—नहीं लुईसा, मैं सिर्फ यही चाहता हूं कि इस भाई-जैसे सलूक में स्वार्थ की छाया भी न पड़ने पाए। मेरा नाम श्रीनाथसिंह है।

लुईसा ने कृतज्ञता व्यक्त करने के तौर पर मेरा हाथ धीरे से दबाया और थैंक्स कहकर चली गई। अंधेरे के कारण बिल्कुल नजर न आया कि वह कहां गई और न पूछना ही उचित था। मैं वहीं खड़ा-खड़ा इस अचानक मुलाकात के पहलुओं को सोचता रहा। कमांडिंग अफसर की बेटी क्या एक मामूली सिपाही को, और वह भी जो काला आदमी हो, कुत्ते से बदतर नहीं समझती ? मगर वही औरत आज मेरे साथ भाई का रिश्ता कायम करके फूली नहीं समाती थी।

2

इसके बाद कई साल बीत गए। दुनिया में कितनी ही क्रांतियां हो गई। रूस की जारशाही मिट गई, जर्मनी का कैसर दुनिया के स्टेज से हमेशा के लिए विदा हो गया, प्रजातंत्र की एक शताब्दी में जितनी उन्नति न हुई थी, उतनी इन थोड़े से सालों में हो गई। मेरे जीवन में भी कितने ही परिवर्तन हुए। एक टांग युद्ध के देवता की भेंट हो गई, मामूली सिपाही से लेफ्टिनेंट हो गया।

एक दिन फिर ऐसी ही चमक और गरज की बात थी। मैं क्वार्टर में बैठा हुआ कप्तान नाक्स और लेफ्टिनेंट डॉक्टर चंद्रसिंह से इसी घटना की चर्चा कर रहा था जो दस-बारह साल पहले हुई थी, सिर्फ लुईसा का नाम छिपा रखा था। कप्तान नाक्स को इस चर्चा में असाधारण आनंद आ रहा था। वह बार-बार एक-एक बात पूछता और घटना का क्रम मिलाने के लिए दुबारा पूछता था। जब मैंने आखिर में कहा कि उस दिन भी ऐसी ही अंधेरी रात थी, ऐसी मूसलाधार बारिश हो रही थी और यही वक्त था तो नाक्स अपनी जगह से उठकर खड़ा हो गया और बहुत उद्विग्न होकर बोला—क्या उस औरत का नाम लुईसा तो नहीं था ?

मैंने आश्चर्य से कहा—आपको उसका नाम कैसे मालूम हुआ? मैंने तो नहीं बतलाया, पर नाक्स की आंखों में आंसू भर आए। सिसकियां लेकर बोले—यह सब आपको अभी मालूम हो जाएगा। पहले यह बतलाइए कि आपका नाम श्रीनाथसिंह है या चौधरी ?

मैंने कहा—मेरा पूरा नाम श्रीनाथसिंह चौधरी है। अब लोग मुझे सिर्फ चौधरी कहते हैं। लेकिन उस वक्त चौधरी के नाम से मुझे कोई न जानता था। लोग श्रीनाथ कहते थे।

कप्तान नाक्स अपनी कुर्सी खींचकर मेरे पास आ गए और बोले—तब तो आप मेरे पुराने दोस्त निकले। मुझे अब तक नाम के बदल जाने से धोखा हो रहा था, वर्ना आपका नाम तो मुझे खूब याद है। हां, ऐसा याद है कि शायद मरते दम तक भी न भूलूं क्योंकि यह उसकी आखिरी वसीयत है।

यह कहते-कहते नाक्स खामोश हो गए और आंखें बंद करके सर मेज पर रख लिया। मेरा आश्चर्य हर क्षण बढ़ता जा रहा था और लेफ्टिनेण्ट डॉ. चन्द्रसिंह भी सवाल-भरी नजरों से एक बार मेरी तरफ और दूसरी बार कप्तान नाक्स के चेहरे की तरफ देख रहे थे।

दो मिनट तक खामोश रहने के बाद कप्तान नाक्स ने सर उठाया और एक लंबी सांस लेकर बोले—क्यों लेफ्टिनेण्ट चौधरी, तुम्हें याद है एक बार एक अंग्रेज सिपाही ने तुम्हें बुरी गाली दी थी ?

मैंने कहा—हां, खूब याद है। वह कारपोरल था, मैंने उसकी शिकायत कर दी थी और उसका कोर्ट मार्शल हुआ था। वह कारपोरल के पद से गिराकर मामूली सिपाही बना दिया गया था। हां, उसका नाम भी याद आ गया क्रिप या क्रूप...

कप्तान नाक्स ने बात काटते हुए कहा—किरपिन। उसकी और मेरी सूरत में आपको कुछ मेल दिखाई पड़ता है ? मैं ही वह किरपिन हूं। मेरा नाम सी नाक्स है, किरपिन नाक्स। जिस तरह उन दिनों आपको लोग श्रीनाथ कहते थे उसी तरह मुझे भी किरपिन कहा करते थे।

अब जो मैंने गौर से नाक्स की तरफ देखा तो पहचान गया। बेशक वह किरपिन ही था। मैं आश्चर्य से उसकी ओर ताकने लगा। लुईसा से उसका क्या संबंध हो सकता है, यह मेरी समझ में उस वक्त भी न आया।

कप्तान नाक्स बोले—आज मुझे सारी कहानी कहनी पड़ेगी। लेफ्टिनेंट चौधरी, तुम्हारी वजह से जब मैं कारपोरल से मामूली सिपाही बनाया गया और जिल्लत भी कुछ कम न हुई तो मेरे दिल में ईर्ष्या और प्रतिशोध की लपटें-सी उठने लगीं। मैं हमेशा इसी फिक्र में रहता था कि किस तरह तुम्हें जलील करूं, किस तरह अपनी जिल्लत का बदला लूं। मैं तुम्हारी एक-एक हरकत को, एक-एक बात को ऐब ढूंढ़ने वाली नजारों से देखा करता था। इन दस-बारह सालों में तुम्हारी सूरत बहुत कुछ बदल गई है और मेरी निगाहों में भी कुछ फर्क आ गया है जिसके कारण मैं तुम्हें पहचान न सका, लेकिन उस वक्त तुम्हारी सूरत हमेशा आंखों के सामने रहती थी। उस वक्त मेरी जिंदगी की सबसे बड़ी तमन्ना यही थी कि किसी तरह तुम्हें भी नीचे गिराऊं। अगर मुझे मौका मिलता तो शायद मैं तुम्हारी जान लेने से भी बाज न आता।

कप्तान नाक्स फिर खामोश हो गए। मैं और डॉक्टर चंद्रसिंह टकटकी लगाए

कप्तान नाक्स की तरफ देख रहे थे।

नाक्स ने फिर अपनी दास्तान शुरू की—उस दिन, रात को जब लुईसा तुमसे बातें कर रही थी, मैं अपने कमरे में बैठा हुआ तुम्हें दूर से देख रहा था। मुझे उस वक्त क्या मालूम था कि वह लुईसा है। मैं सिर्फ यह देख रहा था कि तुम पहरा देते वक्त किसी औरत का हाथ पकड़े उससे बातें कर रहे हो। उस वक्त मुझे जितनी पाजीपन से भरी हुई खुशी हुई वह बयान नहीं कर सकता। मैंने सोचा, अब इसे जलील करूंगा। बहुत दिनों के बाद बच्चू फंसे। अब किसी तरह न छोड़ूंगा। यह फैसला करके मैं कमरे से निकला और पानी में भीगता हुआ तुम्हारी तरफ चला। लेकिन जब तक मैं तुम्हारे पास पहुंचूं लुईसा चली गई थी। मजबूर होकर मैं अपने कमरे में लौट आया। लेकिन फिर भी मैं निराश न था, मैं जानता था कि तुम झूठ न बोलोगे और जब मैं कमाडिंग अफसर से तुम्हारी शिकायत करूंगा तो तुम अपना कसूर मान लोगे। मेरे दिल की आग बुझाने के लिए इतना इत्मीनान काफी था। मेरी आरजू पूरी होने में अब कोई संदेह न था।

मैंने मुस्कराकर कहा—लेकिन आपने मेरी शिकायत तो नहीं की ? क्या बाद को रहम आ गया ?

नाक्स ने जवाब दिया—नहीं जी, रहम किस मरदूद को आता था। शिकायत न करने का दूसरा ही कारण था। सवेरा होते ही मैंने सबसे पहला काम यही किया कि सीधे कमाडिंग अफसर के पास पहुंचा। तुम्हें याद होगा मैं उनके बड़े बेटे राजर्स को घुड़सवारी सिखाया करता था इसलिए वहां जाने में किसी किस्म की झिझक या रुकावट न हुई। जब मैं पहुंचा तो राजर्स और लुईसा दोनों चाय पी रहे थे। आज इतने सवेरे मुझे देखकर राजर्स ने कहा—आज इतनी जल्दी क्यों किरपिन ? अभी तो वक्त नहीं हुआ ? आज बहुत खुश नजर आ रहे हो ?

मैंने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—आज का दिन मेरी जिंदगी में मुबारक है। आज मुझे अपने पुराने दुश्मन को सजा देने का मौका हाथ आया है। आपको मालूम है न एक राजपूत सिपाही ने कमाडिंग अफसर से शिकायत करके मेरी तनज्जुली करा दी थी।

राजर्स ने कहा—हां-हां, मालूम क्यों नहीं है। मगर तुमने उसे गाली दी थी।

मैंने किसी कदर झेंपते हुए कहा—मैंने गाली नहीं दी थी, सिर्फ ब्लडी कहा था। सिपाहियों में इस तरह की बदजुबानी एक आम बात है मगर उस राजपूत ने मेरी शिकायत कर दी। आज मैं उसे एक संगीन जुर्म में पकड़ पाया है। खुदा ने चाहा तो कल उसका भी कोर्ट मार्शल होगा। मैंने आज रात को उसे एक औरत से बातें करते देखा है। बिल्कुल उस वक्त जब वह ड्यूटी पर था। वह बात से इनकार नहीं कर सकता। इतना कमीना नहीं है।

लुईसा के चेहरे का रंग कुछ का कुछ हो गया। अजीब पागलपन से मेरी तरफ देखकर बोली—तुमने और क्या देखा ?

मैंने कहा—जितना मैंने देखा है उतना उस राजपूत को जलील करने के लिए काफी है। जरूर उसकी किसी से आशनाई है और वह औरत हिन्दोस्तानी नहीं, कोई योरोपियन लेडी है। मैं कसम खा सकता हूं, दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े बिल्कुल उसी तरह बातें कर रहे थे, जैसे प्रेमी-प्रेमिका किया करते हैं।

लुईसा के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। चौधरी, मैं कितना कमीना हूं, इसका

अंदाजा तुम खुद कर सकते हो। मैं चाहता हूं तुम मुझे कमीना कहो। मुझे धिक्कारो। मैं दरिंदे वहशी से भी ज्यादा बेरहम हूं, काले सांप से भी ज्यादा जहरीला हूं। वह खड़ी दीवार की तरफ ताक रही थी कि इसी बीच राजर्स का कोई दोस्त आ गया। वह उसके साथ चला गया। लुईसा मेरे साथ अकेली रह गई या उसने मेरी ओर प्रार्थना-भरी आंखों से देखकर कहा—किरपिन, तुम उस राजपूत सिपाही की शिकायत मत करना।

मैंने ताज्जुब से पूछा—क्यों ?

लुईसा ने सर झुकाकर कहा—इसलिए कि जिस औरत को तुमने उसके साथ बातें करते देखा वह मैं ही थी।

मैंने और भी चकित होकर कहा—तो क्या तुम उसे...

लुईसा ने बात काटकर कहा--चुप, वह मेरा भाई है। बात यह है मैं कल रात को एक जगह जा रही थी; तुमसे छिपाऊंगी नहीं किरपिन, जिसको मैं दिलोजान से ज्यादा चाहती हूं, उससे रात को मिलने का वादा था। वह मेरे इंतजार में पहाड़ के दामन में खड़ा था। अगर मैं न जाती तो उसकी कितनी दिलशिकनी होती। मैं ज्योंही मैगजीन के पास पहुंची, उस राजपूत सिपाही ने मुझे टोका दिया। वह मुझे फौजी कायदे के मुताबिक सार्जेंट के पास ले जाना चाहता था लेकिन मेरे बहुत अनुनय-विनय करने पर वह मेरी लाज रखने के लिए फौजी कानून तोड़ने को तैयार हो गया। सोचो, उसने अपने सिर कितनी बड़ी जिम्मेदारी ली। मैंने उसे अपना भाई कहकर पुकारा है और उसने भी मुझे बहन कहा है। सोचो, अगर तुम उसकी शिकायत करोगे तो उसकी क्या हालत होगी ? वह नाम न बतलाएगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है। अगर उसे गले पर तलवार भी रख दी जाएगी, तो भी वह मेरा नाम न बताएगा। मैं नहीं चाहती कि एक नेक काम करने का उसे यह इनाम मिले। तुम उसकी शिकायत हरगिज मत करना। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है।

मैंने निर्दय कठोरता से कहा—उसने मेरी शिकायत करके मुझे जलील किया है। ऐसा अच्छा मौका पाकर मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता। जब तुमको यकीन है कि वह तुम्हारा नाम न बतलाएगा तो फिर उसे जहन्नुम में जाने दो।

लुईसा ने मेरी तरफ घृणापूर्वक देखकर कहा—चुप रहो किरपिन, ऐसी बातें मुझसे न करो। मैं इसे कभी गवारा न करूंगी कि मेरी इज्जत-आबरू के लिए उसे जिल्लत और बदनामी का निशाना बनना पड़े। अगर तुम मेरी न मानोगे तो मैं सच कहती हूं, मैं खुदकुशी कर लूंगी।

उस वक्त तो मैं सिर्फ प्रतिशोध का प्यासा था। अब मेरे ऊपर वासना का भूत सवार हुआ। मैं बहुत दिनों से दिल में लुईसा की पूजा किया करता था लेकिन अपनी बात कहने का साहस न कर सकता था। अब उसको बस में लाने का मुझे मौका मिला। मैंने सोचा, अगर यह उस राजपूत सिपाही के लिए जान देने को तैयार है तो निश्चय ही मेरी बात पर नाराज नहीं हो सकती। मैंने उसी निर्दय स्वार्थपरता के साथ कहा--मुझे सख्त अफसोस है मगर अपने शिकार को छोड़ नहीं सकता।

लुईसा ने मेरी तरफ बेकस निगाहों से देखकर कहा--यह तुम्हारा आखिरी फैसला है ?

मैंने निर्दय निर्लज्जता से कहा—नहीं लुईसा, यह आखिरी फैसला नहीं है। तुम

चाहो तो उसे तोड़ सकती हो, यह बिल्कुल तुम्हारे इमकान में है। मैं तुमसे कितनी मुहब्बत करता हूं, यह आज तक शायद तुम्हें मालूम न हो। मगर इन तीन सालों में तुम एक पल के लिए भी मेरे दिल से दूर नहीं हुईं। अगर तुम मेरी तरफ से अपने दिल को नर्म कर लो, मेरी मुहब्बत की कद्र करो तो मैं सब कुछ करने को तैयार हूं। मैं आज तक मामूली सिपाही हूं और मेरे मुंह से मुहब्बत का निमंत्रण पाकर शायद तुम दिल में हंसती होगी, लेकिन एक दिन मैं भी कप्तान हो जाऊंगा और तब शायद हमारे बीच इतनी बड़ी खाई न रहेगी।

लुईसा ने रोकर कहा—किरपिन, तुम बड़े बेरहम हो, मैं तुमको इतना जालिम न समझती थी। खुदा ने क्यों तुम्हें इतना संगदिल बनाया, क्या तुम्हें एक बेकस औरत पर जरा भी रहम नहीं आता ?

मैं उसकी बेचारगी पर दिल में खुश होकर बोला—जो खुद संगदिल हो उसे दूसरों की संगदिली की शिकायत करने का क्या हक है ?

लुईसा ने गंभीर स्वर में कहा—मैं बेरहम नहीं हूं किरपिन, खुदा के लिए इंसाफ करो। मेरा दिल दूसरे का हो चुका, मैं उसके बगैर जिंदा नहीं रह सकती और शायद वह भी मेरे बगैर जिंदा न रहे। मैं अपनी बात रखने के लिए, अपने ऊपर नेकी करने वाले एक आदमी का आबरू बचाने के लिए अपने ऊपर जबर्दस्ती करके अगर तुमसे शादी कर भी लूं तो नतीजा क्या होगा ? जोर-जबर्दस्ती से मुहब्बत नहीं पैदा होती। मैं कभी तुमसे मुहब्बत न करूंगी...

दोस्तो, अपनी बेशर्मी और बेहयाई का पर्दाफाश करते हुए मेरे दिल को बड़ी सख्त तकलीफ हो रही है। मुझे उस वक्त वासना ने इतना अंधा बना दिया था कि मेरे कानों पर जूं तक न रेंगी। बोला—ऐसा मत खयाल करो लुईसा ! मुहब्बत अपना असर जरूर पैदा करती है। तुम इस वक्त मुझे न चाहो लेकिन बहुत दिन न गुजरने पाएंगे कि मेरी मुहब्बत रंग लाएगी। तुम मुझे स्वार्थी और कमीना समझ रही होगी, समझो। प्रेम स्वार्थी होता ही है, शायद वह कमीना भी होता है। लेकिन मुझे विश्वास है कि यह नफरत और बेरुखी बहुत दिनों तक न रहेगी। मैं अपने जानी दुश्मन को छोड़ने के लिए ज्यादा-से-ज्यादा कीमत लूंगा, जो मिल सके।

लुईसा पंद्रह मिनट तक भीषण मानसिक यातना की हालत में खड़ी रही। जब उसकी याद आती है तो जी चाहता है गले में छुरी मार लूं। आखिर उसने आंसू भरी निगाहों से मेरी तरफ देखकर कहा—अच्छी बात है किरपिन, अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही। तुम जो कीमत चाहते हो, वह मैं देने का वादा करती हूं। मगर खुदा के लिए इस वक्त जाओ, मुझे खूब जी भरकर रो लेने दो।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फूट-फूटकर रोने लगे। मैंने कहा—अगर आपको यह दर्द भरी दास्तान कहने में दुःख हो रहा है तो जाने दीजिए।

कप्तान नाक्स ने गला साफ करके—नहीं भाई, वह किस्सा पूरा तो करना ही पड़ेगा। उसके बाद एक महीने तक मैं रोजाना लुईसा के पास जाता और उसके दिल से अपने प्रतिद्वंद्वी के खयाल को मिटाने की कोशिश करता। वह मुझे देखते ही कमरे से बाहर निकल आती, खुश हो-होकर बातें करती। यहां तक कि मैं समझने लगा कि उसे मुझसे प्यार हो गया है। इसी बीच योरोपियन लड़ाई छिड़ गई। हम और तुम दोनों लड़ाई पर चले

गए। तुम फ्रांस गए, मैं कमांडिंग अफसर के साथ मिस्र गया। लुईसा अपने चचा के साथ यहीं रह गई। राजर्स भी उसके साथ रह गया। तीन साल तक मैं लाम पर रहा। लुईसा के पास से बराबर खत आते रहे। मैं तरक्की पाकर लेफ्टिनेंट हो गया और कमांडिंग अफसर कुछ दिन और जिंदा रहते तो जरूर कप्तान हो जाता। मगर मेरी बदनसीबी से वह एक लड़ाई में मारे गए। आप लोगों को उस लड़ाई का हाल मालूम ही है। उनके मरने के एक महीने बाद मैं छुट्टी लेकर घर लौटा। लुईसा अब भी अपने चचा के साथ ही थी। मगर अफसोस, अब न वह हुस्न था, न वह जिंदादिली, घुलकर कांटा हो गई थी। उस वक्त मुझे उसकी हालत देखकर रंज हुआ। मुझे अब मालूम हो गया कि उसकी मुहब्बत कितनी सच्ची और कितनी गहरी थी। मुझसे शादी का वादा करके भी वह अपनी भावनाओं पर विजय न पा सकी थी। शायद इसी गम में कुढ़-कुढ़कर उसकी यह हालत हो गई थी। एक दिन मैंने उससे कहा—लुईसा, मुझे ऐसा खयाल होता है कि शायद तुम अपने पुराने प्रेमी को भूल नहीं सकीं। अगर मेरा यह खयाल ठीक है तो मैं उस वादे से तुमको मुक्त करता हूं। तुम शौक से उसके साथ शादी कर लो। मेरे लिए यही इत्मीनान काफी होगा कि मैं दिन रहते घर आ गया। मेरी तरफ से अगर कोई मलाल हो तो उसे निकाल डालो।

लुईसा की बड़ी-बड़ी आंखों से आंसू की बूंदें टपकने लगीं। बोली—वह अब इस दुनिया में नहीं है किरपिन, आज छः महीने हुए वह फ्रांस में मारे गए। मैं ही उनकी मौत का कारण हुई—यही गम है। फौज से उनका कोई संबंध न था; अगर वह मेरी ओर से निराश न हो जाते तो कभी फौज में भर्ती न होते। मरने ही के लिए वह फौज में गए। मगर तुम आ गए, मैं बहुत जल्द अच्छी हो जाऊंगी। अब मुझमें तुम्हारी बीवी बनने की काबलियत ज्यादा हो गई। तुम्हारे पहलू में अब कोई कांटा नहीं रहा और न मेरे दिल में कोई गम।

इन शब्दों में व्यंग्य भरा हुआ था, जिसका आशय यह था कि मैंने लुईसा के प्रेमी की जान ली। इसकी सच्चाई से कौन इंकार कर सकता है। इसके प्रायश्चित्त की अगर कोई सूरत थी तो यही कि लुईसा की इतनी खातिरदारी, इतनी दिलजोई करूं, उस पर इस तरह न्योछावर हो जाऊं कि उसके दिल से दुख निकल जाए।

इसके एक महीने बाद शादी का दिन तय हो गया। हमारी शादी भी हो गई। हम दोनों घर आए। दोस्तों की दावत हुई। शराब के दौर चले। मैं अपनी खुशनसीबी पर फूला नहीं समाता था और मैं ही क्यों, मेरे इष्ट-मित्र सब मेरी खुशकिस्मती पर मुझे बधाई दे रहे थे।

मगर क्या मालूम था तकदीर मुझे यों सब्ज बाग दिखा रही है, क्या मालूम था कि यह वह रास्ता है, जिसके पीछे जालिम शिकारी का जाल बिछा हुआ है। मैं तो दोस्तों की खातिर-तवाजो में लगा हुआ था, उधर लुईसा अंदर कमरे में लेटी हुई इस दुनिया से रुखसत होने का सामान कर रही थी। मैं एक दोस्त की बधाई का धन्यवाद दे रहा था कि राजर्स ने आकर कहा—किरपिन, चलो लुईसा तुम्हें बुला रही है। जल्द। उसकी न जाने क्या हालत हो रही है। मेरे पैरों तले से जमीन खिसक गई। दौड़ा हुआ लुईसा के कमरे में आया।

कप्तान नाक्स की आंखों से फिर आंसू बहने लगे, आवाज फिर भारी हो गई। जरा दम लेकर उन्होंने कहा—अंदर जाकर देखा तो लुईसा कोच पर लेटी हुई थी। उसका शरीर

ऐंठ रहा था। चेहरे पर भी उसी ऐंठन के लक्षण दिखाई दे रहे थे। मुझे देखकर बोली—किरपिन, मेरे पास आ जाओ। मैंने शादी करके अपना वचन पूरा कर दिया। इससे ज्यादा मैं तुम्हें कुछ और न दे सकती थी क्योंकि मैं अपनी मुहब्बत पहले ही दूसरे की भेंट कर चुकी हूं। मुझे माफ करना। मैंने जहर खा लिया है और बस कुछ घड़ियों की मेहमान हूं।

मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। दिल पर एक नश्तर-सा लगा। घुटने टेककर उसके पास बैठ गया। रोता हुआ बोला—लुईसा, यह तुमने क्या किया ! हाय ! क्या तुम मुझे दगा देकर इतनी जल्दी चली जाओगी, क्या अब कोई तदबीर नहीं है ?

फौरन दौड़कर एक डॉक्टर के मकान पर गया। मगर आह ! जब तक उसे साथ लेकर आऊं मेरी वफा की देवी, सच्ची लुईसा हमेशा के लिए मुझसे जुदा हो गई थी। सिर्फ उसके सिरहाने एक छोटा-सा पुर्जा पड़ा हुआ था जिस पर उसने लिखा था—अगर तुम्हें मेरा भाई श्रीनाथ नजर आए तो उससे कह देना, लुईसा मरते वक्त भी उसका एहसान नहीं भूली।

यह कहकर नाक्स ने अपनी वास्केट की जेब से एक मखमली डिबिया निकाली और उसमें से कागज का एक पुर्जा निकालकर दिखाते हुए कहा—चौधरी, यही मेरे उस अस्थायी सौभाग्य की स्मृति है जिसे आज तक मैंने जान से ज्यादा संभालकर रखा है। आज तुमसे परिचय हो गया। मैंने समझा था, और दोस्तों की तरह तुम भी लड़ाई में खत्म हो गए होगे, मगर शुक्र है कि तुम जीते-जागते मौजूद हो। यह अमानत तुम्हारे सुर्पुद करता हूं। अब अगर तुम्हारे जी में आए तो मुझे गोली मार दो, क्योंकि उस स्वर्गिक जीव का हत्यारा मैं हूं।

यह कहते-कहते कप्तान नाक्स फैलकर कुर्सी पर लेट गए। हम दोनों ही की आंखों से आंसू जारी थे, मगर जल्द ही हमें अपने तात्कालिक कर्तव्य की याद आ गई। नाक्स को सांत्वना देने के लिए मैं कुर्सी से उठकर उनके पास गया, मगर उनका हाथ पकड़ते ही मेरे शरीर में कंपकपी-सी आ गई। हाथ ठंडा था। ऐसा ठंडा जैसा आखिरी घड़ियों में होता है। मैंने घबराकर उनके चेहरे की तरफ देखा और डॉ. चन्द्र को पुकारा। डॉक्टर साहब ने आकर फौरन उनकी छाती पर हाथ रखा और दर्द भरे लहजे में बोले—दिल की धड़कन बंद हो गई।

उसी वक्त बिजली कड़कड़ा उठी, कड़...कड़...कड़...

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' (संस्करण : 1930) में संकलित। हिन्दी रूप 'तिरसूल' शीर्षक से ही 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

देवी-1

रात भीग चुकी थी। मैं बरामदे में खड़ा था। सामने अमीनुद्दौला पार्क नींद में डूबा खड़ा था। सिर्फ एक औरत एक तकियादार बेंच पर बैठी हुई थी। पार्क के बाहर सड़क के किनारे एक फकीर खड़ा राहगीरों को दुआएं दे रहा था—खुदा और रसूल का वास्ता....राम और भगवान का वास्ता....इस अंधे पर रहम करो।

सड़क पर मोटरों और सवारियों का तांता बंद हो चुका था। इक्के-दुक्के आदमी नजर आ जाते थे। फकीर की आवाज जो पहले नक्कारखाने में तूती की आवाज थी, अब खुले मैदानों की बुलंद पुकार हो रही थी। एकाएक वह औरत उठी और इधर-उधर चौकनी आंखों से देखकर फकीर के हाथ में कुछ रख दिया और फिर बहुत धीमे से कुछ कहकर एक तरफ चली गई। फकीर के हाथ में कागज का एक टुकड़ा नजर आया जिसे वह बार-बार मल रहा था। क्या उस औरत ने यह कागज दिया है ?

यह क्या रहस्य है ? उसको जानने के कुतूहल से अधीर होकर मैं नीचे आया और फकीर के पास खड़ा हो गया।

मेरी आहट पाते ही फकीर ने उस कागज के पुर्जे की दो उंगलियों से दबाकर मुझे दिखाया और पूछा—बाबा, देखो यह क्या चीज है ?

मैंने देखा—दस रूपये का नोट था ! बोला—दस रूपये का नोट है, कहां पाया ?

मैंने और कुछ न कहा। उस औरत की तरफ दौड़ा जो अब अंधेरे में बस एक सपना बनकर रह गई थी।

वह कई गलियों में होती हुई एक टूटे-फूटे गिरे-पड़े मकान के दरवाजे पर रूकी, ताला खोला और अंदर चली गई।

रात को कुछ पूछना ठीक न समझकर मैं लौट आया।

रात भर मेरा जी उसी तरफ लगा रहा। एकदम तड़के मैं फिर उस गली में जा पहुंचा। मालूम हुआ वह एक अनाथ विधवा है।

मैंने दरवाजे पर जाकर पुकारा—देवी, मैं तुम्हारे दर्शन करने आया हूं।

औरत बाहर निकल आई—गरीबी और बेकसी की जिंदा तस्वीर।

मैंने हिचकते हुए कहा—रात आपने फकीर को....

देवी ने बात काटते हुए कहा—अजी वह क्या बात थी, मुझे वह नोट पड़ा मिल गया था, मेरे किस काम का था।

मैंने उस देवी के कदमों पर सिर झुका दिया।

[उर्दू कहानी। उर्दू कहानी-संग्रह 'प्रेम-चालीसी' (संस्करण : 1930) में संकलित। हिन्दी रूप 'देवी' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

बंद दरवाजा

सूरज क्षितिज की गोद से निकला, बच्चा पालने से—वही स्निग्धता, वही लाली, वही खुमार, वही रोशनी।

मैं बरामदे में बैठा था। बच्चे ने दरवाजे से झांका। मैंने मुस्कराकर पुकारा। वह मेरी गोद में आकर बैठ गया।

उसकी शरारतें शुरू हो गईं। कभी कलम पर हाथ बढ़ाया, कभी कागज पर। मैंने गोद से उतार दिया। वह मेज का पाया पकड़े खड़ा रहा। घर में न गया। दरवाजा खुला हुआ

था।

एक चिड़िया फुदकती हुई आई और सामने के सहन में बैठ गई बच्चे के लिए मनोरंजन का यह नया सामान था। वह उसकी तरफ लपका। चिड़िया जरा भी न डरी। बच्चे ने समझा अब वह परदार खिलौना हाथ आ गया। बैठकर दोनों हाथों से चिड़िया को बुलाने लगा। चिड़िया उड़ गई, निराशा बच्चा रोने लगा। मगर अंदर के दरवाजे की तरफ ताका भी नहीं। दरवाजा खुला हुआ था।

गरम हलवे की मीठी पुकार आई। बच्चे का चेहरा चाव से खिल उठा खोंचे वाला सामने से गुजरा। बच्चे ने मेरी तरफ याचना की आंखों से देखा। ज्यों-ज्यों खोंचेवाला दूर होता गया, याचना की आंखें रोष में परिवर्तित होती गई। यहां तक कि जब मोड़ आ गया और खोंचे वाला आंख से ओझल हो गया तो रोष ने पुरशोर फरियाद की सूरत अख्तियार की। मगर मैं बाजार की चीजें बच्चों को नहीं खाने देता। बच्चे की फरियाद ने मुझ पर कोई असर न किया। मैं आगे नहीं खाने देता। बच्चे की फरियाद ने मुझ पर कोई असर न किया। मैं आगे की बात सोचकर और भी तन गया। कह नहीं सकता। बच्चे ने अपनी मां की अदालत में अपील करने की जरूरत समझी या नहीं। आमतौर पर बच्चे ऐसी हालतों में मां से अपील करते हैं। शायद उसने कुछ देर के लिए अपील मुल्तवी कर दी हो। उसने दरवाजे की तरफ रूख न किया। दरवाजा खुला हुआ था।

मैंने आंसू पोंछने के ख्याल से अपना फाउण्टेनपेन उसके हाथ में रख दिया। बच्चे को जैसे सारे जमाने की दौलत मिल गई। उसकी सारी इन्द्रियां इस नई समस्या को हल करने में लग गई। एकाएक दरवाजा हवा से खुद-ब-खुद बंद हो गया। पट की आवाज बच्चे के कानों में आई। उसने दरवाजे की तरफ देखा। उसकी वह व्यस्तता तत्क्षण लुप्त हो गई। उसने फाउण्टेनपेन को फेंक दिया और रोता हुआ दरवाजे की तरफ चला क्योंकि दरवाजा बंद हो गया था।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेमचालीसी' (संस्करण 1930) में प्रकाशित एवं संकलित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा—देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीचा नहीं, कोई ऊंचा नहीं।

दुनिया ने जयजयकार की—कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय !

उसकी सुंदर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिंता के सागर में डूब गई।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा—यह फरिश्ता है, पैगंबर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौज़वान को मंदिर में ले गया, देवता के दर्शन कराए और कहा—हमारा देवता गरीबी में है, जिल्लत में है, पस्ती में है।

दुनिया ने कहा—कैसे शुद्ध अंतःकरण का आदमी है ! कैसा ज्ञानी !

इन्दिरा ने देखा और मुस्कराई।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली—श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूं।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा—मोहन कौन है ?

इन्दिरा ने उत्साह-भरे स्वर में कहा—मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मंदिर में ले गए, जो सच्चा, बहादुर और नेक हैं।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आंखों से उसकी ओर देखा और मुंह फेर लिया।

['कौम का खादिम' शीर्षक से उर्दू में प्रथम प्रकाशन। उर्दू कहानी संग्रह 'प्रेम चालीसी' (संस्करण: 1930) में पहली बार संकलित एवं प्रकाशित। हिन्दी रूप 'राष्ट्र का सेवक' शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

सद्‌गति

दुखी चमार द्वार पर झाड़ू लगा रहा था और उसकी पत्नी झुरिया, घर को गोबर से लीप रही थी। दोनों अपने-अपने काम से फुर्सत पा चुके थे, तो चमारिन ने कहा—तो जाके पंडित बाबा से कह आओ न। ऐसा न हो कहीं चले जायँ।

दुखी—हाँ जाता हूँ, लेकिन यह तो सोच, बैठेंगे किस चीज पर ?

झुरिया—कहीं से खटिया न मिल जायगी ? ठकुराने से माँग लाना।

दुखी—तू तो कभी-कभी ऐसी बात कह देती है कि देह जल जाती है। ठकुरानेवाले मुझे खटिया देंगे ! आग तक तो घर से निकलती नहीं, खटिया देंगे ! कैथाने में जाकर एक लोटा पानी माँगूँ तो न मिले। भला खटिया कौन देगा ! हमारे उपले, सेंठे, भूसा, लकड़ी थोड़े ही हैं कि जो चाहे उठा ले जायँ। ले अपनी खटोली धोकर रख दे। गरमी के तो दिन हैं। उनके आते-आते सूख जायगी।

झुरिया—वह हमारी खटोली पर बैठेंगे नहीं। देखते नहीं कितने नेम-धरम से रहते हैं।

दुखी ने जरा चिंतित होकर कहा—हाँ, यह बात तो है। महुए के पत्ते तोड़कर एक पत्तल बना लूँ तो ठीक हो जाय। पत्तल में बड़े-बड़े आदमी खाते हैं। वह पवित्तर है। ला तो डंडा, पत्ते तोड़ लूँ।

झुरिया—पत्तल मैं बना लूँगी, तुम जाओ। लेकिन हाँ, उन्हें सीधा भी तो देना होगा। अपनी थाली में रख दूँ ?

दुखी—कहीं ऐसा गजब न करना, नहीं तो सीधा भी जाय और थाली भी फूटे ! बाबा थाली उठाकर पटक देंगे। उनको बड़ी जल्दी क्रोध चढ़ आता है। किरोध में पंडिताइन तक

को छोड़ते नहीं, लड़के को ऐसा पीटा कि आज तक टूटा हाथ लिये फिरता है। पत्तल में सीधा भी देना, हाँ। मुदा तू छूना मत। झूरी गोंड़ की लड़की को लेकर साह की दूकान से सब चीजें ले आना। सीधा भरपूर हो। सेर भर आटा, आध सेर चावल, पाव भर दाल, आध पाव घी, नोन, हल्दी और पत्तल में एक किनारे चार आने पैसे रख देना। गोंड़ की लड़की न मिले तो भुर्जिन के हाथ-पैर जोड़कर ले जाना। तू कुछ मत छूना, नहीं गजब हो जायगा।

इन बातों की ताकीद करके दुखी ने लकड़ी उठाई और घास का एक बड़ा-सा गट्ठा लेकर पंडितजी से अर्ज करने चला। खाली हाथ बाबाजी की सेवा में कैसे जाता। नजराने के लिए उसके पास घास के सिवाय और क्या था। उसे खाली देखकर तो बाबा दूर ही से दुत्कारते।

2

पं. घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नींद खुलते ही ईशोपासन में लग जाते। मुँह-हाथ धोते आठ बजते, तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भंग की तैयारी थी। उसके बाद आध घण्टे तक चन्दन रगड़ते, फिर आइने के सामने एक तिनके से माथे पर तिलक लगाते। चन्दन की दो रेखाओं के बीच में लाल रोरी की बिन्दी होती थी। फिर छाती पर, बाहों पर चन्दन की गोल-गोल मुद्रिकाएँ बनाते। फिर ठाकुरजी की मूर्ति निकालकर उसे नहलाते, चन्दन लगाते, फूल चढ़ाते, आरती करते, घंटी बजाते। दस बजते-बजते वह पूजन से उठते और भंग छानकर बाहर आते। तब तक दो-चार जजमान द्वार पर आ जाते! ईशोपासन का तत्काल फल मिल जाता। वही उनकी खेती थी।

आज वह पूजन-गृह से निकले, तो देखा दुखी चमार घास का एक गट्ठा लिये बैठा है। दुखी उन्हें देखते ही उठ खड़ा हुआ और उन्हें साष्टांग दंडवत करके हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। यह तेजस्वी मूर्ति देखकर उसका हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया ! कितनी दिव्य मूर्ति थी। छोटा-सा गोल-मटोल आदमी, चिकना सिर, फूले गाल, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त आँखें। रोरी और चंदन देवताओं की प्रतिभा प्रदान कर रही थी। दुखी को देखकर श्रीमुख से बोले—आज कैसे चला रे दुखिया ?

दुखी ने सिर झुकाकर कहा—बिटिया की सगाई कर रहा हूँ महाराज। कुछ साइत-सगुन विचारना है। कब मर्जी होगी ?

घासी—आज मुझे छुट्टी नहीं। हाँ साँझ तक आ जाऊँगा।

दुखी—नहीं महराज, जल्दी मर्जी हो जाय। सब सामान ठीक कर आया हूँ। यह घास कहाँ रख दूँ ?

घासी—इस गाय के सामने डाल दे और जरा झाड़ू लेकर द्वार तो साफ कर दे। यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गई। उसे भी गोबर से लीप दे। तब तक मैं भोजन कर लूँ। फिर जरा आराम करके चलूँगा। हाँ, यह लकड़ी भी चीर देना। खलिहान में चार खाँची भूसा पड़ा है। उसे भी उठा लाना और भुसौली में रख देना।

दुखी फौरन हुक्म की तामील करने लगा। द्वार पर झाड़ू लगाई, बैठक को गोबर से लीपा। तब बारह बज गये। पंडितजी भोजन करने चले गये। दुखी ने सुबह से कुछ नहीं खाया था। उसे भी जोर की भूख लगी; पर वहाँ खाने को क्या धरा था। घर यहाँ से मील भर

था। वहाँ खाने चला जाय, तो पंडितजी बिगड़ जायँ। बेचारे ने भूख दबाई और लकड़ी फाड़ने लगा। लकड़ी की मोटी-सी गाँठ थी; जिस पर पहले कितने ही भक्तों ने अपना जोर आजमा लिया था। वह उसी दम-खम के साथ लोहे से लोहा लेने के लिए तैयार थी। दुखी घास छीलकर बाजार ले जाता था। लकड़ी चीरने का उसे अभ्यास न था। घास उसके खुरपे के सामने सिर झुका देती थी। यहाँ कस-कसकर कुल्हाड़ी का भरपूर हाथ लगाता; पर उस गाँठ पर निशान तक न पड़ता था। कुल्हाड़ी उचट जाती। पसीने में तर था, हाँफता था, थककर बैठ जाता था, फिर उठता था। हाथ उठाये न उठते थे, पाँव काँप रहे थे, कमर न सीधी होती थी, आँखों तले अँधेरा हो रहा था, सिर में चक्कर आ रहे थे, तितलियाँ उड़ रही थीं, फिर भी अपना काम किये जाता था। अगर एक चिलम तम्बाकू पीने को मिल जाती, तो शायद कुछ ताकत आती। उसने सोचा, यहाँ चिलम और तम्बाकू कहाँ मिलेगी। बाह्मनों का पूरा है। बाह्मन लोग हम नीच जातों की तरह तम्बाकू थोड़े ही पीते हैं। सहसा उसे याद आया कि गाँव में एक गोंड़ भी रहता है। उसके यहाँ जरूर चिलम-तमाखू होगी। तुरत उसके घर दौड़ा। खैर मेहनत सुफल हुई। उसने तमाखू भी दी और चिलम भी दी; पर आग वहाँ न थी। दुखी ने कहा—आग की चिन्ता न करो भाई। मैं जाता हूँ, पंडितजी के घर से आग माँग लूँगा। वहाँ तो अभी रसोई बन रही थी।

यह कहता हुआ वह दोनों चीज़ें लेकर चला आया और पंडितजी के घर में बरौठे के द्वार पर खड़ा होकर बोला—मालिक, रचिके आग मिल जाय, तो चिलम पी लें।

पंडितजी भोजन कर रहे थे। पंडिताइन ने पूछा—यह कौन आदमी आग माँग रहा है?

पंडित—अरे वही ससुरा दुखिया चमार है। कहा है थोड़ी-सी लकड़ी चीर दे। आग तो है, दे दो।

पंडिताइन ने भवें चढ़ाकर कहा—तुम्हें तो जैसे पोथी-पत्रे के फेर में धरम-करम किसी बात की सुधि ही नहीं रही। चमार हो, धोबी हो, पासी हो, मुँह उठाये घर में चला आये। हिन्दू का घर न हुआ, कोई सराय हुई। कह दो दाढ़ीजार से चला जाय, नहीं तो इस लुआठे से मुँह झुलस दूँगी। आग माँगने चले हैं।

पंडितजी ने उन्हें समझाकर कहा—भीतर आ गया, तो क्या हुआ। तुम्हारी कोई चीज तो नहीं छुई। धरती पवित्र है। जरा-सी आग दे क्यों नहीं देती, काम तो हमारा ही कर रहा है। कोई लोनिया यही लकड़ी फाड़ता, तो कम-से-कम चार आने लेता।

पंडिताइन ने गरज कर कहा—वह घर में आया क्यों !

पंडित ने हारकर कहा—ससुरे का अभाग था और क्या !

पंडिताइन—अच्छा, इस बखत तो आग दिये देती हूँ, लेकिन फिर जो इस तरह घर में आयेगा, तो उसका मुँह ही जला दूँगी।

दुखी के कानों में इन बातों की भनक पड़ रही थी। पछता रहा था, नाहक आया। सच तो कहती हैं। पंडित के घर में चमार कैसे चला आये। बड़े पवित्तर होते हैं यह लोग, तभी तो संसार पूजता है, तभी तो इतना मान है। भर-चमार थोड़े ही हैं। इसी गाँव में बूढ़ा हो गया; मगर मुझे इतनी अकल भी न आई।

इसलिए जब पंडिताइन आग लेकर निकलीं, तो वह मानो स्वर्ग का वरदान पा गया। दोनों हाथ जोड़कर जमीन पर माथा टेकता हुआ बोला—पड़ाइन माता, मुझसे बड़ी भूल हुई

कि घर में चला आया। चमार की अकल ही तो ठहरी। इतने मूरख न होते, तो लात क्यों खाते। पंडिताइन चिमटे से पकड़कर आग लाई थीं। पाँच हाथ की दूरी से घूँघट की आड़ से दुखी की तरफ आग फेंकी। आग की बड़ी-सी चिनगारी दुखी के सिर पर पड़ गयी। जल्दी से पीछे हटकर सिर के झोटे देने लगा। उसने मन में कहा—यह एक पवित्तर बाम्हन के घर को अपवित्तर करने का फल है। भगवान ने कितनी जल्दी फल दे दिया। इसी से तो संसार पंडितों से डरता है। और सबके रुपये मारे जाते हैं बाम्हन के रुपये भला कोई मार तो ले ! घर भर का सत्यानाश हो जाय, पाँव गल-गलकर गिरने लगे।

बाहर आकर उसने चिलम पी और फिर कुल्हाड़ी लेकर जुट गया। खट-खट की आवाजें आने लगीं।

उस पर आग पड़ गई, तो पंडिताइन को उस पर कुछ दया आ गई। पंडितजी भोजन करके उठे, तो बोलीं—इस चमरवा को भी कुछ खाने को दे दो, बेचारा कब से काम कर रहा है। भूखा होगा।

पंडितजी ने इस प्रस्ताव को व्यावहारिक क्षेत्र से दूर समझकर पूछा—रोटियाँ हैं ?

पंडिताइन—दो-चार बच जायँगी।

पंडित—दो-चार रोटियों में क्या होगा ? चमार है, कम से कम सेर भर चढ़ा जायगा।

पंडिताइन कानों पर हाथ रखकर बोलीं—अरे बाप रे ! सेर भर ! तो फिर रहने दो।

पंडितजी ने अब शेर बनकर कहा—कुछ भूसी-चोकर हो तो आटे में मिलाकर दो ठो लिट्टा ठोंक दो। साले का पेट भर जायगा। पतली रोटियों से इन नीचों का पेट नहीं भरता। इन्हें तो जुआर का लिट्टा चाहिए।

पंडिताइन ने कहा—अब जाने भी दो, धूप में कौन मरे।

3

दुखी ने चिलम पीकर फिर कुल्हाड़ी सँभाली। दम लेने से जरा हाथों में ताकत आ गई थी। कोई आध घण्टे तक फिर कुल्हाड़ी चलाता रहा। फिर बेदम होकर वहीं सिर पकड़ के बैठ गया।

इतने में वही गोंड़ आ गया। बोला—क्यों जान देते हो बूढ़े दादा, तुम्हारे फाड़े यह गाँठ न फटेगी। नाहक हलाकान होते हो।

दुखी ने माथे का पसीना पोंछकर कहा—अभी गाड़ी भर भूसा ढोना है भाई !

गोंड़—कुछ खाने को मिला कि काम ही कराना जानते हैं। जाके माँगते क्यों नहीं ?

दुखी—कैसी बात करते हो चिखुरी, बाम्हन की रोटी हमको पचेगी !

गोंड़—पचने को पच जायगी, पहले मिले तो। मूँछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये, तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया। जमींदार भी कुछ खाने को देता है। हाकिम भी बेगार लेता है, तो थोड़ी बहुत मजूरी देता है। यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं।

दुखी—धीरे-धीरे बोलो भाई, कहीं सुन लें तो आफत आ जाय।

यह कह कर दुखी फिर सँभल पड़ा और कुल्हाड़ी की चोट मारने लगा। चिखुरी को उस पर दया आई। आकर कुल्हाड़ी उसके हाथ से छीन ली और कोई आध घंटे खूब

कस-कसकर कुल्हाड़ी चलाई; पर गाँठ में एक दरार भी न पड़ी। तब उसने कुल्हाड़ी फेंक दी और यह कह कर चला गया—तुम्हारे फाड़े यह न फटेगी, जान भले निकल जाय।

दुखी सोचने लगा, बाबा ने यह गाँठ कहाँ रख छोड़ी थी कि फाड़े नहीं फटती। कहीं दरार तक तो नहीं पड़ती। मैं कब तक इसे चीरता रहूँगा। अभी घर पर सौ काम पड़े हैं। कार-परोजन का घर है, एक-न-एक चीज घटी ही रहती है; पर इन्हें इसकी क्या चिंता। चलूँ जब तक भूसा ही उठा लाऊँ। कह दूँगा, बाबा, आज तो लकड़ी नहीं फटी, कल आकर फाड़ दूँगा।

उसने झौवा उठाया और भूसा ढोने लगा। खलिहान यहाँ से दो फरलांग से कम न था। अगर झौवा खूब भर-भर कर लाता तो काम जल्द खत्म हो जाता; फिर झौवे को उठाता कौन। अकेले भरा हुआ झौवा उससे न उठ सकता था। इसलिए थोड़ा-थोड़ा लाता था। चार बजे कहीं भूसा खत्म हुआ। पंडितजी की नींद भी खुली। मुँह-हाथ धोया, पान खाया और बाहर निकले। देखा, तो दुखी झौवा सिर पर रखे सो रहा है। जोर से बोले—अरे, दुखिया तू सो रहा है ? लकड़ी तो अभी ज्यों की त्यों पड़ी हुई है। इतनी देर तू करता क्या रहा ? मुट्ठी भर भूसा ढोने में संझा कर दी ! उस पर सो रहा है। उठा ले कुल्हाड़ी और लकड़ी फाड़ डाल। तुझसे जरा-सी लकड़ी नहीं फटती। फिर साइत भी वैसी ही निकलेगी, मुझे दोष मत देना ! इसी से कहा है कि नीच के घर में खाने को हुआ और उसकी आँख बदली।

दुखी ने फिर कुल्हाड़ी उठाई। जो बातें पहले से सोच रखी थीं, वह सब भूल गई। पेट पीठ में धँसा जाता था, आज सबेरे जलपान तक न किया था। अवकाश ही न मिला। उठना ही पहाड़ मालूम होता था। जी डूबा जाता था, पर दिल को समझाकर उठा। पंडित हैं, कहीं साइत ठीक न विचारें, तो फिर सत्यानाश ही हो जाय। जभी तो संसार में इतना मान है। साइत ही का तो सब खेल है। जिसे चाहे बिगाड़ दें। पंडितजी गाँठ के पास आकर खड़े हो गये और बढ़ावा देने लगे—हाँ, मार कसके, और मार—कसके मार—अबे जोर से मार—तेरे हाथ में तो जैसे दम ही नहीं है—लगा कसके, खड़ा सोचने क्या लगता है—हाँ—बस फटा ही चाहती है ! दे उसी दरार में !

दुखी अपने होश में न था। न-जाने कौन-सी गुप्तशक्ति उसके हाथों को चला रही थी। वह थकान, भूख, कमजोरी सब मानो भाग गई। उसे अपने बाहुबल पर स्वयं आश्चर्य हो रहा था। एक-एक चोट वज्र की तरह पड़ती थी। आध घण्टे तक वह इसी उन्माद की दशा में हाथ चलाता रहा, यहाँ तक कि लकड़ी बीच से फट गई—और दुखी के हाथ से कुल्हाड़ी छूट कर गिर पड़ी। इसके साथ वह भी चक्कर खाकर गिर पड़ा। भूखा, प्यासा, थका हुआ शरीर जवाब दे गया।

पंडितजी ने पुकारा—उठ के दो-चार हाथ और लगा दे। पतली-पतली चैलियाँ हो जायँ। दुखी न उठा। पंडितजी ने अब उसे दिक करना उचित न समझा। भीतर जाकर बूटी छानी, शौच गये, स्नान किया और पंडिताई बाना पहनकर बाहर निकले। दुखी अभी तक वहीं पड़ा हुआ था। जोर से पुकारा—अरे क्या पड़े ही रहोगे दुखी, चलो तुम्हारे ही घर चल रहा हूँ। सब सामान ठीक-ठीक है न ? दुखी फिर भी न उठा।

अब पंडितजी को कुछ शंका हुई। पास जाकर देखा, तो दुखी अकड़ा पड़ा हुआ था। बदहवास होकर भागे और पंडिताइन से बोले—दुखिया तो जैसे मर गया।

पंडिताइन हकबकाकर बोलीं—वह तो अभी लकड़ी चीर रहा था न ?

पंडित—हाँ लकड़ी चीरते-चीरते मर गया। अब क्या होगा ?

पंडिताइन ने शान्त होकर कहा—होगा क्या, चमरौने में कहला भेजो मुर्दा उठा ले जायँ।

एक क्षण में गाँव भर में खबर हो गई। पूरे में ब्राह्मनों की ही बस्ती थी। केवल एक घर गोंड़ का था। लोगों ने इधर का रास्ता छोड़ दिया। कुएँ का रास्ता उधर ही से था, पानी कैसे भरा जाय ! चमार की लाश के पास से होकर पानी भरने कौन जाय। एक बुढ़िया ने पण्डितजी से कहा—अब मुर्दा फेंकवाते क्यों नहीं ? कोई गाँव में पानी पीयेगा या नहीं।

इधर गोंड़ ने चमरौने में जाकर सबसे कह दिया—खबरदार, मुर्दा उठाने मत जाना। अभी पुलिस की तहकीकात होगी। दिल्लगी है कि एक गरीब की जान ले ली। पंडितजी होंगे, तो अपने घर के होंगे। लाश उठाओगे तो तुम भी पकड़ जाओगे।

इसके बाद ही पंडितजी पहुँचे; पर चमरौने का कोई आदमी लाश उठा लाने को तैयार न हुआ, हाँ दुखी की स्त्री और कन्या दोनों हाय-हाय करती वहाँ चलीं और पंडितजी के द्वार पर आकर सिर पीट-पीटकर रोने लगीं। उनके साथ दस-पाँच और चमारिनें थीं। कोई रोती थी, कोई समझाती थी, पर चमार एक भी न था। पण्डितजी ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की; पर चमारों के दिल पर पुलिस का रोब छाया हुआ था, एक भी न मिनका। आखिर निराश होकर लौट आये।

4

आधी रात तक रोना-पीटना जारी रहा। देवताओं का सोना मुश्किल हो गया। पर लाश उठाने कोई चमार न आया और ब्राह्मन चमार की लाश कैसे उठाते ! भला ऐसा किसी शास्त्र-पुराण में लिखा है ? कहीं कोई दिखा दे।

पंडिताइन ने झुंझलाकर कहा—इन डाइनों ने तो खोपड़ी चाट डाली। सभों का गला भी नहीं पकता।

पंडित ने कहा—रोने दो चुड़ैलों को, कब तक रोयेंगी। जीता था, तो कोई बात न पूछता था। मर गया, तो कोलाहल मचाने के लिए सब की सब आ पहुँचीं।

पंडिताइन—चमार का रोना मनहूस है।

पंडित—हाँ, बहुत मनहूस।

पंडिताइन—अभी से दुर्गन्ध उठने लगी।

पंडित—चमार था ससुरा कि नहीं। साध-असाध किसी का विचार है इन सबों को।

पंडिताइन—इन सबों को घिन भी नहीं लगती।

पंडित—भ्रष्ट हैं सब।

रात तो किसी तरह कटी; मगर सबेरे भी कोई चमार न आया। चमारिनें भी रो-पीटकर चली गई। दुर्गन्ध कुछ-कुछ फैलने लगी।

पंडितजी ने एक रस्सी निकाली। उसका फन्दा बनाकर मुरदे के पैर में डाला और फन्दे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ-कुछ धुँधलका था। पंडितजी ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर घसीट ले गये। वहाँ से आकर तुरन्त

स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का।

उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवन-पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी। 'प्रेम-कुंज' (हिन्दी कहानी संग्रह, प्रथम संस्करण : 1930) में प्रथम बार संकलित व प्रकाशित। बाद में 'विशाल भारत' (हिन्दी पत्रिका), अक्टूबर, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। हिन्दी मासिक पत्रिका 'मानसरोवर', अक्टूबर, 1931 में भी प्रकाशित होने के प्रमाण हैं। उर्दू रूप 'नजात' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'आखिरी तोहफा' में संकलित।]

उन्माद

मनहर ने अनुरक्त होकर कहा—वह सब तुम्हारी कुर्बानियों का फल है वागी। नहीं तो आज मैं भी किसी अँधेरी गली में, किसी अँधेरे मकान के अन्दर अँधेरी जिन्दगी के दिन काटता होता। तुम्हारी सेवा और उपकार हमेशा याद रहेंगे, तुमने मेरा जीवन सुधार दिया—मुझे आदमी बना दिया।

बागेश्वरी ने सिर झुकाये हुए नम्रता से उत्तर दिया—यह तुम्हारी सज्जनता ही मानूँ, मैं बेचारी भला तुम्हारी जिन्दगी क्या सुधारूँगी ? हाँ, तुम्हारे साथ मैं भी एक दिन आदमी बन जाऊँगी। तुमने परिश्रम किया, उसका पुरस्कार पाया। जो अपनी मदद आप करते हैं, उनकी मदद परमात्मा भी करते हैं। अगर मुझ-जैसी गैवारिन किसी और के पाले पड़ती, तो अब तक न-जाने क्या गत बनी होती।

मनहर मानो इस बहस में अपना पक्ष-समर्थन करने के लिए कमर बाँधता हुआ बोला—तुम जैसी गँवारिन पर मैं एक लाख सजी हुई गुड़ियों और रंगीन तितलियों को न्योछावर कर सकता हूँ। तुमने मेहनत करने का वह अवसर और अवकाश दिया, जिनके बिना कोई सफल हो ही नहीं सकता। अगर तुमने अपनी अन्य विलास-प्रिय, रंगीन-मिज़ाज बहनों की तरह मुझे अपने तकाज़ों से दबा रखा होता, तो मुझे उन्नति करने का अवसर कहाँ मिलता ? तुमने मुझे वह निश्चिन्तता प्रदान की, जो स्कूल के दिनों में भी न मिली थी। अपने और सहकारियों को देखता हूँ, तो मुझे उन पर दया आती है। किसी का खर्च पूरा नहीं पड़ता। आधा महीना भी नहीं जाने पाता और हाथ खाली हो जाता है। कोई दोस्तों से उधार माँगता है, कोई घर वालों को खत लिखता है। कोई गहनों की फिक्र में मरा जाता है, कोई कपड़ों की। कभी नौकर की टोह में हैरान, कभी वैद्य की टोह में परेशान। किसी को शान्ति नहीं। आये दिन स्त्री-पुरुष में जूते चलते हैं। अपना-जैसा भाग्यवान् तो मुझे कोई दीख नहीं पड़ता। मुझे घर के सारे आनन्द प्राप्त हैं और जिम्मेदारी एक भी नहीं। तुमने ही मेरे हौसलों को उभारा, मुझे उत्तेजना दी। जब कभी मेरा उत्साह टूटने लगता था, तो तुम मुझे तसल्ली देती थी। मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि तुम घर का प्रबन्ध कैसे करती हो। तुमने मोटे-से-मोटा काम अपने हाथों से किया, जिसमें मुझे पुस्तकों के लिए रुपये की

कमी न हो। तुम्हीं मेरी देवी हो और तुम्हारी बदौलत ही आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं तुम्हारी इन सेवाओं की स्मृति को हृदय में सुरक्षित रखूँगा वागी, और एक दिन वह आयेगा, जब तुम अपने त्याग और तप का आनन्द उठाओगी।

वागेवश्वरी ने गद्गद होकर कहा—तुम्हारे ये शब्द मेरे लिए सबसे बड़े पुरस्कार हैं, मानू ! मैं और किसी पुरस्कार की भूखी नहीं। मैंने जो कुछ तुम्हारी थोड़ी-बहुत सेवा की, उसका इतना यश मुझे मिलेगा; मुझे तो आशा भी न थी।

मनहरनाथ का हृदय इस समय उदार भावों से उमड़ा हुआ था। वह यों बहुत ही अल्पभाषी, कुछ रूखा आदमी था और शायद वागेश्वरी के मन में उसकी शुष्कता पर दुख भी हुआ हो; पर इस समय सफलता के नशे ने उसकी वाणी में पर-से लगा दिये थे। बोला—जिस समय मेरे विवाह की बातचीत हो रही थी, मैं बहुत शंकित था। समझ गया कि मुझे जो कुछ होना था, हो चुका। अब सारी उम्र देवीजी की नाजबरदारी में गुजरेगी। बड़े-बड़े अँगरेज विद्वानों की पुस्तकें पढ़ने से मुझे भी विवाह से घृणा हो गयी थी। मैं इसे उम्र कैद समझने लगा था, जो आत्मा और बुद्धि की उन्नति का द्वार बंद कर देती है, जो मनुष्य को स्वार्थ का भक्त बना देती है, जो जीवन के क्षेत्र को संकीर्ण कर देती है। मगर दो ही चार मास के बाद मुझे अपनी भूल मालूम हुई। मुझे मालूम हुआ कि सुभार्या स्वर्ग की सबसे बड़ी विभूति है, जो मनुष्य को उज्ज्वल और पूर्ण बना देती है, जो आत्मोन्नति का मूल-मन्त्र है। मुझे मालूम हुआ कि विवाह का उद्देश्य भोग नहीं, आत्मा का विकास है।

वागेश्वरी की नम्रता और सहन न कर सकी। वह किसी बात के बहाने से उठ कर चली गयी।

मनहर और वागेश्वरी का विवाह हुए तीन साल गुजरे थे। मनहर उस समय एक दफ़्तर में क्लर्क था। सामान्य युवकों की भाँति उसे भी जासूसी उपन्यासों से बहुत प्रेम था। धीरे-धीरे उसे जासूसी का शौक हुआ। इस विषय पर उसने बहुत-सा साहित्य जमा किया और बड़े मनोयोग से उनका अध्ययन किया। इसके बाद उसने उस विषय पर स्वयं एक किताब लिखी। रचना में उसने ऐसी विलक्षण विवेचन-शक्ति का परिचय दिया, उसकी शैली भी इतनी रोचक थी, कि जनता ने उसे हाथों-हाथ लिया। इस विषय पर वह सर्वोत्तम ग्रन्थ था।

देश में धूम मच गयी। यहाँ तक कि इटली और जर्मनी-जैसे देशों से उसके पास प्रशंसा-पत्र आये और इस विषय की पत्रिकाओं में अच्छी-अच्छी आलोचनाएँ निकलीं। अन्त में सरकार ने भी अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया—उसे इंगलैंड जाकर इस कला का अभ्यास करने के लिए वृत्ति प्रदान की। और यह सब कुछ वागेश्वरी की सत्प्रेरणा का शुभ-फल था।

मनहर की इच्छा थी कि वागेश्वरी भी साथ चले; पर वागेश्वरी उनके पाँव की बेड़ी न बनना चाहती थी। उसने घर रहकर सास-ससुर की सेवा करना ही उचित समझा।

मनहर के लिए इंगलैंड एक दूसरी ही दुनिया थी, जहाँ उन्नति के मुख्य साधनों में एक रूपवती पत्नी का होना भी था। अगर पत्नी रूपवती है, चपल है, चतुर है, वाणी कुशल है, प्रगल्भ है, तो समझ लो कि उसके पति को सोने की खान मिल गयी, अब वह उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। मनोयोग और तपस्या के बूते पर नहीं, पत्नी के प्रभाव और

आकर्षण के तेज पर। उस संसार में रूप और लावण्य-व्रत के बंधनों से मुक्त, एक अबाध सम्पत्ति थी ! जिसने किसी रमणी को प्राप्त कर लिया; उसकी मानो तकदीर खुल गयी। यदि कोई सुन्दरी तुम्हारी सहधर्मिणी नहीं है, तो तुम्हारा सारा उद्योग, सारी कार्यपटुता निष्फल है, कोई तुम्हारा पुरसाँहाल न होगा; अतएव वहाँ लोग रूप को व्यापारिक दृष्टि से देखते थे।

साल ही भर के अँग्रेजी-समाज के संसर्ग ने मनहर की मनोवृत्तियों में क्रांति पैदा कर दी। उसके मिजाज में सांसारिकता का इतना प्राधान्य हो गया कि कोमल भावों के लिए वहाँ कोई स्थान ही न रहा। वागेश्वरी उसके विद्याभ्यास में सहायक होती थी; पर उस अधिकार और पद की ऊँचाइयों पर न पहुँचा सकती थी। उसके त्याग और सेवा का महत्त्व भी अब मनहर की निगाहों में कम होता जा रहा था। वागेश्वरी अब उसे एक व्यर्थ-सी वस्तु मालूम होती थी, क्योंकि उसकी भौतिक दृष्टि से हर एक वस्तु का मूल्य उससे होने वाले लाभ पर ही अवलंबित था। अपना पूर्व-जीवन अब उसे हास्यप्रद जान पड़ता था। चंचल, हँसमुख, विनोदिनी अंग्रेज-युवतियों के सामने वागेश्वरी एक हलकी, तुच्छ-सी वस्तु जान पड़ती—इस विद्युत्-प्रकाश में वह दीपक अब मलिन पड़ गया था। यहाँ तक कि शनैः-शनैः उसका वह मलिन प्रकाश भी लुप्त हो गया।

मनहर ने अपने भविष्य का निश्चय कर लिया। यह भी एक रमणी की रूप नौका द्वारा ही अपने लक्ष्य पर पहुँचेगा। इसके सिवा और कोई उपाय न था।

2

रात के नौ बजे थे। मनहर लंदन के एक फैशनेबुल रेस्ट्राँ में बना-ठना बैठा था। उसका रंग-रूप और ठाठ-बाट देखकर सहसा यह कोई नहीं कह सकता था कि अंग्रेज नहीं है। लंदन में भी उसके सौभाग्य ने उसका साथ दिया था। उसने चोरी के कई गहरे मुआमलों का पता लगा दिया था, इसलिए उसे धन और यश दोनों ही मिल रहा था। वह अब यहाँ के भारतीय समाज का एक प्रमुख अंग बन गया था, जिसके आतिथ्य और सौजन्य की सभी सराहना करते थे। उसका लबोलहजा भी अँग्रेजों से मिलता-जुलता था। उसके सामने मेज की दूसरी ओर एक रमणी बैठी हुई उनकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसके अंग-अंग से यौवन टपका पड़ता था। भारत के अद्भुत वृत्तांत सुन-सुनकर उसकी आँखें खुशी से चमक रहीं थीं। मनहर चिड़िया के सामने दाने बिखेर रहा था।

मनहर—विचित्र देश है जेनी, अत्यन्त विचित्र। पाँच-पाँच साल के दूल्हे तुम्हें भारत के सिवा और कहीं देखने को न मिलेंगे। लाल रंग के कामदार कपड़े, सिर पर चमकता हुआ लम्बा टोप, चेहरे पर फूलों का झालरदार बुर्का, घोड़े पर सवार चले जा रहे हैं। दो आदमी दोनों तरफ से छतरियाँ लगाये हुए हैं। हाथों में मेंहदी लगी हुई ?

जेनी—मेंहदी क्यों लगाते हैं ?

मनहर—जिसमें हाथ लाल हो जायँ। पैरों में भी रंग भरा जाता है। उँगलियों के नाखून लाल रंग दिये जाते हैं। वह दृश्य देखते ही बनता है।

जेनी—यह तो दिल में सनसनी पैदा करने वाला दृश्य होगा। दुलहिन भी इसी तरह सजायी जाती होगी ?

मनहर–इससे कई गुना अधिक। सिर से पाँव तक सोने-चाँदी के जेवरों से लदी हुई। ऐसा कोई अंग नहीं जिसमें दो-दो, चार-चार गहने न हों।

जेनी–तुम्हारी शादी भी उसी तरह हुई होगी। तुम्हें तो बड़ा आनन्द आया होगा ?

मनहर–हाँ, वही आनन्द आया था, जो तुम्हें मेरी-गो-राउण्डर पर चढ़ने में आता है। अच्छी-अच्छी चीजें खाने को मिलती हैं; अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं। खूब नाच-तमाशे देखता था और शहनाइयों का गाना सुनता था। मजा तो तब आता है, जब दुलहिन अपने घर से विदा होती है। सारे घर में कुहराम मच जाता है। दुलहिन हर एक से लिपट-लिपटकर रोती है; जैसे मातम कर रही हो।

जेनी–दुलहिन रोती क्यों है ?

मनहर–रोने का रिवाज चला आता है। हालाँकि सभी जानते हैं कि वह हमेशा के लिए नहीं चली जा रही है, फिर भी सारा घर इस तरह फूट-फूटकर रोता है, मानो वह कालेपानी भेजी जा रही हो।

जेनी–मैं तो इस तमाशे में खूब हँसूँ।

मनहर–हँसने की बात ही है।

जेनी–तुम्हारी बीबी भी रोयी होगी ?

मनहर–अजी, कुछ न पूछो, पछाड़ें खा रही थी, मानो मैं उसका गला घोट दूँगा। मेरी पालकी से निकलकर भागी जाती थी; पर मैंने जोर से पकड़ कर अपनी बगल में बैठा लिया। तब मुझे दाँत काटने दौड़ी।

मिस जेनी ने जोर से कहकहा मारा और हँसी के साथ लोट गयीं। बोलीं–हॉरिबिल ! हॉरिबिल ! क्या अब भी दाँत काटती है ?

मनहर–वह अब इस संसार में नहीं है, जेनी ! मैं उससे खूब काम लेता था। मैं सोता था, तो वह मेरे बदन में चम्पी लगाती थी, मेरे सिर में तेल डालती थी, पंखा झलती थी।

जेनी–मुझे तो विश्वास नहीं आता। बिलकुल मूर्ख थी !

मनहर–कुछ न पूछो। दिन को किसी के सामने मुझसे बोलती भी न थीं, मगर मैं उसका पीछा करता रहता था।

जेनी–ओ ! नॉटी बॉय ! तुम बड़े शरीर हो ! थीं तो रूपवती ?

मनहर–हाँ, उसका मुँह तुम्हारे तलवों जैसा था।

जेनी–नॉनसेंस ! तुम ऐसी औरत के पीछे कभी न दौड़ते।

मनहर–उस वक्त मैं भी मूर्ख था, जेनी।

जेनी–ऐसी मूर्ख लड़की से तुमने विवाह क्यों किया ?

मनहर–विवाह न करता तो माँ-बाप जहर खा लेते !

जेनी–वह तुम्हें प्यार कैसे करने लगी ?

मनहर–और करती क्या ? मेरे सिवा दूसरा था ही कौन ? घर से बाहर न निकलने पाती थी, मगर प्यार हममें से किसी को न था। वह मेरी आत्मा और हृदय को सन्तुष्ट न कर सकती थी, जेनी ! मुझे उन दिनों की याद आती है, तो ऐसा मालूम होता है कि कोई भयंकर स्वप्न था। उफ ! अगर वह स्त्री आज जीवित होती, तो मैं किसी अँधेरे दफ़्तर में

बैठा कलम घिसता होता। इस देश में आकर मुझे यथार्थ ज्ञान हुआ कि संसार में स्त्री का क्या स्थान है, उसका क्या दायित्व है और जीवन उसके कारण कितना आनन्दप्रद हो जाता है। और जिस दिन तुम्हारे दर्शन हुए, वह तो मेरी जिन्दगी का सबसे मुबारक दिन था। याद है तुम्हें वह दिन ? तुम्हारी वह सूरत मेरी आँखों में अब भी फिर रही है।

जेनी—अब मैं चली जाऊँगी। तुम मेरी खुशामद करने लगे।

3

भारत के मजदूरदल-सचिव थे लार्ड बारबर, और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी थे मि. कावर्ड। लार्ड बारबर भारत के सच्चे मित्र समझे जाते थे। जब कंजरवेटिव और लिबरल दलों का अधिकार था, तो लार्ड बारबर भारत की बड़े जोरों से वकालत करते थे। वह इन मन्त्रियों पर ऐसे-ऐसे कटाक्ष करते थे कि उन बेचारों को कोई जवाब न सूझता। एक बार वह हिन्दुस्तान आये थे और यहाँ काँग्रेस में शरीक भी हुए थे। उस समय उनकी उदार वक्तृताओं ने समस्त देश में आशा और उत्साह की एक लहर दौड़ा दी थी । कॉग्रेस के जलसे के बाद वह जिस शहर में गये, जनता ने उनके रास्ते में आँखें बिछायीं, उनकी गाड़ियाँ खींची, उन पर फूल बरसाये। चारों ओर से यही आवाज आती थी—यह है भारत का उद्धार करने वाला। लोगों को विश्वास हो गया कि भातर के सौभाग्य से अगर कभी लार्ड बारबर को अधिकार प्राप्त हुआ, तो वह दिन भारत के इतिहास में मुबारक होगा।

लेकिन अधिकार पाते ही लार्ड बारबर में एक विचित्र परिवर्तन हो गया। उनके मारं सद्भाव, उनकी उदारता, न्यायपरायणता, सहानुभूति ये सभी अधिकार के भँवर में पड़ गये। और अब लार्ड बारबर और उनके पूर्वाधिकार के व्यवहार में लेशमात्र भी अन्तर न था। वह भी वही कर रहे थे, जो उनके पहले के लोग कर चुके थे। वही दमन था, वही जातिगत अभिमान, वही कट्टरता, वही संकीर्णता। देवता अधिकार के सिंहासन पर पाँव रखते ही अपना देयत्व खो बैठा था। अपने दो साल के अधिकार-काम में उन्होंने सैकड़ों ही अफसर नियुक्त किये थे; पर उसमें एक भी हिन्दुस्तानी न था। भारतवासी निराश होकर उन्हें 'डाइहार्ड' 'धन का उपासक' और 'साम्राज्यवाद का पुजारी' कहने लगे थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि जो कुछ करते थे, मि. कावर्ड करते थे। हक यह था कि लार्ड बारबर नीयत के इतने शेर थे, जितने दिल के कमजोर। हालाँकि परिणाम दोनों दशाओं में एक-सा था।

यह मि. कावर्ड एक ही महापुरुष थे। उनकी उम्र चालीस से अधिक गुजर चुकी थी; पर अभी तक उन्होंने विवाह न किया था। शायद उनका खयाल था कि राजनीति के क्षेत्र में रहकर वैवाहिक जीवन का आनन्द नहीं उठा सकते। वास्तव में नवीनता के मधुप थे। उन्हें नित्य नये विनोद और आकर्षण, नित्य नये विलास और उल्लास की टोह रहती थी। दूसरों के लगाये हुए बाग की सैर करके चित्त को प्रसन्न कर लेना इससे कहीं सरल था कि अपना बाग आप लगायें। और उसकी रक्षा और सजावट में अपना सिर खपायें। उनको व्यावहारिक और व्यापारिक दृष्टि में यह लटका उससे कहीं आसान था।

दोपहर का समय था। मि. कावर्ड नाश्ता करके सिगार पी रहे थे कि मिस जेनी रोज के आने की खबर हुई। उन्होंने तुरन्त आईने के सामने खड़े होकर अपनी सूरत देखी, बिखरे हुए बालों को सँवारा, बहुमूल्य इत्र मला और मुख से स्वागत की सहास छवि दरशाते

हुए कमरे से निकलकर मिस रोज से हाथ मिलाया।

जेनी ने कमरे में कदम रखते ही कहा—अब मैं समझ गयी कि क्यों कोई सुन्दरी तुम्हारी बात नहीं पूछती। आप अपने वादों को पूरा करना नहीं जानते।

मि. कावर्ड ने जेनी के लिए एक कुर्सी खींचते हुए कहा—मुझे बहुत खेद है मिस रोज़, कि मैं कल अपना वादा पूरा न कर सका। प्राइवेट सेक्रेटरियों का जीवन कुत्तों के जीवन से भी हेय है। बार-बार चाहता था कि दफ्तर से उठूँ; पर एक-न-एक कॉल ऐसा आ जाता था कि फिर रुक जाना पड़ता था ! मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ। बॉल में तुम्हें खूब आनन्द आया होगा ?

जेनी—मैं तुम्हें तलाश करती रही। जब तुम न मिले, तो मेरा जी खट्टा हो गया। मैं और किसी के साथ नहीं नाची ! अगर तुम्हें नहीं जाना था, तो मुझे निमन्त्रण-पत्र क्यों दिलाया था।

कावर्ड ने जेनी को सिगार भेंट करते हुए कहा—तुम मुझे लज्जित कर रही हो, जेनी ! मेरे लिए इससे ज्यादा खुशी की और क्या बात हो सकती थी कि तुम्हारे साथ नाचता ? एक पुराना बैलेचर होने पर भी मैं उस आनन्द की कल्पना कर सकता हूँ। बस, यही समझ लो कि तड़प-तड़प कर रह जाता था।

जेनी ने कठोर मुस्कान के साथ कहा—तुम इसी योग्य हो कि बैचेलर बने रहो। यही तुम्हारी सजा है।

कावर्ड ने अनुरक्त होकर उत्तर दिया—तुम बड़ी कठोर हो, जेनी ! तुम्हीं क्या रमणियाँ सभी कठोर होती हैं। मैं कितनी ही परवशता दिखाऊँ, तुम्हें विश्वास न आयेगा। मुझे यह अरमान ही रह गया कि कोई सुन्दरी मेरे अनुराग और लगन का आदर करती।

जेनी—तुममें अनुराग हो भी तो ? रमणियाँ ऐसे बहानेबाजों को मुँह नहीं लगातीं !

कावर्ड—फिर बहानेबाज कहा—मजबूर क्यों नहीं कहतीं ?

जेनी—मैं किसी की मजबूरी को नहीं मानती। मेरे लिए यह हर्ष और गौरव की बात नहीं हो सकती, कि आपको जब अपने सरकारी, अर्द्ध-सरकारी और गैर-सरकारी कामों से अवकाश मिले, तो आप मेरा मन रखने को एक क्षण के लिए अपने कोमल चरणों को कष्ट दें। मैं दफ्तर और काम के हीले नहीं सुनना चाहती। इसी कारण तुम अब तक झींख रहे हो।

कावर्ड ने गम्भीर भाव से कहा—तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, जेनी ! मेरे अविवाहित रहने का क्या क़ारण है, यह कल तक मुझे खुद न मालूम था। कल आप-ही-आप मालूम हो गया।

जेनी ने उसका परिहास करते हुए कहा— अच्छा ! तो यह रहस्य आपको मालूम हो गया ? तब तो आप सचमुच आत्मदर्शी हैं। जरा मैं भी सुनूँ, क्या कारण था ?

कावर्ड ने उत्साह के साथ कहा—अब तक कोई ऐसी सुन्दरी न मिली थी, जो मुझे उन्मत्त कर सकती।

जेनी ने कठोर परिहास के साथ कहा—मेरा खयाल था कि दुनिया में ऐसी औरत पैदा ही नहीं हुई, जो तुम्हें उन्मत्त कर सकती। तुम उन्मत्त बनाना चाहते हो, उन्मत्त बनना नहीं चाहते।

कावर्ड—तुम बड़ा अत्याचार करती हो, जेनी !

जेनी—अपने उन्माद का प्रमाण देना चाहते हो ?

कावर्ड—हृदय से, जेनी ! मैं उस अवसर की ताक में बैठा हूँ !

उसी दिन शाम को जेनी ने मनहर से कहा—तुम्हारे सौभाग्य पर बधाई ! तुम्हें वह जगह मिल गयी।

मनहर उछलकर बोला—सच ! सेक्रेटरी से कोई बातचीत हुई थी ?

जेनी—सेक्रेटरी से कुछ कहने की जरूरत ही न पड़ी। सब कुछ कावर्ड के हाथ में है। मैंने उसी को चंग पर चढ़ाया। लगा मुझे इश्क जताने। पचास साल की तो उम्र है, चाँद के बाल झड़ गये हैं, गालों पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, पर अभी तक आपको इश्क का खब्त है। आप अपने को एक ही रसिया समझते हैं। उसके बूढ़े चोचले बहुत बुरे मालूम होते थे; मगर तुम्हारे लिए सब कुछ सहना पड़ा। खैर मेहनत सफल हो गयी है। कल तुम्हें परवाना मिल जायगा। अब सफर की तैयारी करनी चाहिए।

मनहर ने गद्गद होकर कहा—तुमने मुझ पर बड़ा एहसान किया है, जेनी !

4

मनहर को गुप्तचर विभाग में ऊँचा पद मिला। देश के राष्ट्रीय पत्रों ने उसकी तारीफों के पुल बाँधे, उसकी तस्वीर छापी और राष्ट्र की ओर से उसे बधाई दी। वह पहला भारतीय था, जिसे वह ऊँचा पद प्रदान किया गया था। ब्रिटिश सरकार ने सिद्ध कर दिया था कि उसकी न्याय-बुद्धि जातीय अभिमान और द्वेष से उच्चतर है।

मनहर और जेनी का विवाह इंगलैंड में ही हो गया। हनीमून का महीना फ्रांस में गुजरा। वहाँ से दोनों हिन्दुस्तान आये। मनहर का दफ्तर बम्बई में था। वहीं दोनों एक होटल में रहने लगे। मनहर को गुप्त अभियोग की खोज के लिए अक्सर दौरे करने पड़ते थे। कभी काश्मीर, कभी मद्रास, कभी रंगून। जेनी इन यात्राओं में बराबर उसके साथ रहती। नित्य नये दृश्य थे, नये विनोद, नये उल्लास। उसकी नवीनता-प्रिय प्रकृति के लिए आनन्द का इससे अच्छा और क्या सामान हो सकता था ?

मनहर का रहन-सहन तो अँग्रेजी था ही, घरवालों से भी सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। वागेश्वरी के पत्रों का उत्तर देना तो दूर रहा, उन्हें खोलकर पढ़ता भी न था। भारत में उसे हमेशा यह शंका बनी रहती थी कि कहीं घरवालों को उसका पता न चल जाय। जेनी से वह अपनी यथार्थ स्थिति को छिपाये रखना चाहता था। उसने घरवालों को आने की सूचना तक न दी। यहाँ कि कि वह हिन्दुस्तानियों से बहुत कम मिलता था। उसके मित्र अधिकांश पुलिस और फौज के अफसर थे। वही उसके मेहमान होते। वाक्‌चतुर जेनी सम्मोहनकला में सिद्धहस्त थी। पुरुषों के प्रेम से खेलना उसकी सबसे अमोदमय क्रीड़ा थी। जलाती थी, रिझाती भी थी, और मनहर भी उसकी कपट-लीला का शिकार बनता रहता था। उसे वह हमेशा भूल-भुलैया में रखती, कभी इतना निकट कि छाती पर सवार न कभी इतनी दूर कि योजन का अन्तर—कभी निष्ठुर और कठोर, कभी प्रेम-विह्वल और व्यग्र। एक रहस्य था, जिसे वह कभी समझता था और कभी हैरान रह जाता था !

इस तरह दो वर्ष बीत गये और मनहर तथा जेनी कोण की दो भुजाओं की भाँति एक दूसरे से दूर होते गये। मनहर इस भावना को हृदय से न निकाल सकता था कि जेनी का

मेरे प्रति एक विशेष कर्त्तव्य है। यह चाहे उसकी संकीर्णता हो या कुल-मर्यादा का असर कि वह जेनी को पाबन्द देखना चाहता था। उसकी स्वच्छन्द वृत्ति उसे लज्जास्पद मालूम होती थी। वह भूल जाता था कि जेनी से उसके संपर्क का आरम्भ ही स्वार्थ पर अवलंबित था। शायद उसने समझा था कि समय के साथ जेनी को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो जायेगा; हालाँकि उसे मालूम होना चाहिए था कि टेढ़ी बुनियाद पर बना हुआ भवन जल्द या देर में अवश्य भूमिस्थ होकर रहेगा। और ऊँचाई के साथ इसकी शंका और भी बढ़ती जाती थी। इसके विपरीत जेनी का व्यवहार बिलकुल परिस्थिति के अनुकूल था। उसने मनहर को विनोदमय तथा विलासमय जीवन का एक साधन समझा था और उसी विचार पर वह अब तक स्थिर थी। इस व्यक्ति को वह मन में पति का स्थान न दे सकती थी, पाषाण-प्रतिमा को अपना देवता न बना सकती थी। पत्नी बनना उसके जीवन का स्वप्न न था, इसलिए वह मनहर के प्रति अपने किसी कर्त्तव्य को स्वीकार न करती थी। अगर मनहर अपनी गाढ़ी कमाई उसके चरणों पर अर्पित करता था, तो उस पर कोई एहसान न करता था। मनहर उसका बनाया हुआ पुतला, उसी का लगाया हुआ वृक्ष था। उसकी छाया और फल को भोग करना वह अपना अधिकार समझती थी।

5

मनोमालिन्य बढ़ता गया। आखिर मनहर ने उसके साथ दावतों और जलसों में जाना छोड़ दिया; पर जेनी पूर्ववत् सैर करने जाती, मित्रों से मिलती, दावतें करती और दावतों में शरीक होती। मनहर के साथ न जाने से लेशमात्र भी दुःख या निराशा न होती थी; बल्कि वह शायद उसकी उदासीनता पर और भी प्रसन्न होती। मनहर इस मानसिक व्यथा को शराब के नशे में डुबोने का उद्योग करता। पीना तो उसने इंगलैंड ही में शुरू कर दिया था, पर अब उसकी मात्रा बहुत बढ़ गयी थी। वहाँ स्फूर्ति और आनन्द के लिए पीता था, यहाँ स्फूर्ति और आनन्द को मिटाने के लिए। वह दिन-दिन दुर्बल होता जाता था। वह जानता था, शराब मुझे पिये जा रही है; पर उसके जीवन का यही एक अवलम्ब रह गया था।

गर्मियों के दिन थे। मनहर एक मुआमले की जाँच करने के लिए लखनऊ में डेरा डाले हुए था। मुआमला बहुत संगीन था। उसे सिर उठाने की फुरसत न मिलती थी। स्वास्थ्य भी कुछ खराब हो चला था, मगर जेनी अपने सैर-सपाटे में मग्न थी। आखिर एक दिन उसने कहा, मैं नैनीताल जा रही हूँ। यहाँ की गर्मी मुझसे सहा नहीं जाती।

मनहर ने लाल-लाल आँखें निकालकर कहा—नैनीताल में क्या काम है ?

वह आज अपना अधिकार दिखाने पर तुल गया। जेनी भी उसके अधिकार की उपेक्षा करने पर तुली हुई बोली—यहाँ कोई सोसाइटी नहीं। सारा लखनऊ पहाड़ों पर चला गया है।

मनहर ने जैसे म्यान से तलवार निकालकर कहा—जब तक मैं यहाँ हूँ, तुम्हें कहीं जाने का अधिकार नहीं है। तुम्हारी शादी मेरे साथ हुई है, सोसाइटी के साथ नहीं। फिर तुम साफ देख रही हो कि मैं बीमार हूँ, तिस पर भी तुम अपनी विलास प्रवृत्ति को रोक नहीं सकती। मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी, जैनी ! मैं तुमको शरीफ समझता था। मुझे स्वप्न में

भी यह गुमान न था कि तुम मेरे साथ ऐसी बेवफाई करोगी।

जेनी ने अविचलित भाव से कहा—तो क्या तुम समझते थे, मैं भी तुम्हारी हिन्दुस्तानी स्त्री की तरह तुम्हारी लौंडी बनकर रहूँगी और तुम्हारे तलवे सहलाऊँगी ? मैं तुम्हें इतना नादान नहीं समझती। अगर तुम्हें हमारी अँगरेजी सभ्यता की इतनी मोटी-सी बात मालूम नहीं, तो अब मालूम कर लो कि अँगेरज-स्त्री अपनी रुचि के सिवा और किसी की पाबन्द नहीं। तुमने मुझसे इसलिए विवाह किया था कि मेरी सहायता से तुम्हें सम्मान और पद प्राप्त हो। सभी पुरुष ऐसा करते हैं और तुमने भी वही किया। मैं इसके लिए तुम्हें बुरा नहीं कहती लेकिन जब तुम्हारा वह उद्देश्य पूरा हो गया, जिसके लिए तुमने मुझसे विवाह किया था, तो तुम मुझसे अधिक आशा क्यों रखते हो ? तुम हिन्दुस्तानी हो, अँगरेज नहीं हो सकते। मैं अँगरेज हूँ और हिन्दुस्तानी नहीं हो सकती; इसलिए हम में से किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे को अपनी मर्जी का गुलाम बनाने की चेष्टा करे।

मनहर हतबुद्धि-सा बैठा सुनता रहा। एक-एक शब्द विष की घूँट की भाँति उसके कण्ठ के नीचे उतर रहा था। कितना कठोर सत्य था ! पद-लालसा के उस प्रचण्ड आवेग में, विलास तृष्णा के उस अदम्य प्रवाह में वह भूल गया था कि जीवन में कोई ऐसा तत्व भी है, जिसके सामने पद और विलास काँच के खिलौनों से अधिक मूल्य नहीं रखते। वह विस्मृत सत्य इस समय अपने दारुण-विलाप से उसकी मदमग्न चेतना को तड़पाने लगा।

शाम को जेनी नैनीताल चली गयी। मनहर ने उसकी ओर आँखें उठाकर भी न देखा।

6

तीन दिन तक मनहर घर से न निकला। जीवन के पाँच-छः वर्षों में उसने जितने रत्न संचित किये थे, जिन पर वह गर्व करता था; जिन्हें पाकर वह अपने को धन्य मानता था, अब परीक्षा की कसौटी पर आकर नकली पत्थर सिद्ध हो रहे थे। उसकी अपमानित, ग्लानित, पराजित आत्मा एकांत-रोदन के सिवा और कोई त्राण न पाती थीं। अपनी टूटी झोंपड़ी को छोड़कर वह जिस-जिस सुनहले कलशवाले भवन की ओर लपका था, वह मरीचिका-मात्र थी और अब उसे फिर उसी टूटी झोंपड़ी की याद आयी, जहाँ उसने शान्ति, प्रेम और आशीर्वाद की सुधा पी थी। यह सारा आडम्बर उसे काट खाने लगा। उस सरल शीतल स्नेह के सामने ये सारी विभूतियाँ तुच्छ-सी जँचने लगीं। तीसरे दिन वह भीषण संकल्प करके उठा और दो पत्र लिखे। एक तो अपने पद से इस्तीफा था, दूसरा जेनी से अंतिम विदा की सूचना। इस्तीफे में उसने लिखा—मेरा स्वास्थ्य नष्ट हो गया है और मैं इस भार को नहीं सँभाल सकता। जेनी के पत्र में उसने लिखा—हम और तुम दोनों ने भूल की और हमें जल्द-से-जल्द उस भूल को सुधार लेना चाहिए। मैं तुम्हें सारे बंधनों से मुक्त करता हूँ। तुम भी मुझे मुक्त कर दो। मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। अपराध न तुम्हारा है, न मेरा। समझ का फेर तुम्हें भी था और मुझे भी। मैंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है और अब तुम्हारा मुझ पर कोई एहसान नहीं रहा। मेरे पास जो कुछ है, वह तुम्हारा है, वह सब मैं छोड़े जाता हूँ। मैं तो निमित्त-मात्र था, स्वामिनी तुम थीं। उस सभ्यता को दूर से ही सलाम है, जो विनोद और विलास के सामने किसी बंधन को स्वीकार नहीं करती।

उसने खुद जाकर दोनों पत्रों की रजिस्ट्री करायी और उत्तर का इन्तजार किये बिना ही वहाँ से चलने को तैयार हो गया।

7

जेनी ने जब मनहर का पत्र पाकर पढ़ा, तो मुसकराई। उसे मनहर की इच्छा पर शासन करने का ऐसा अभ्यास पड़ गया था कि इस पत्र से उसे जरा भी घबराहट न हुई। उसे विश्वास था कि दो-चार दिन चिकनी-चुपड़ी बातें करके वह उसे फिर वशीभूत कर लेगी। अगर मनहर की इच्छा केवल धमकी देना न होती, उसके दिल पर चोट लगी होती, तो वह अब तक यहाँ न होता। कब का यह स्थान छोड़ चुका होता। उसका यहाँ रहना ही बता रहा था कि वह केवल बंदरघुड़की दे रहा है।

जेनी ने स्थिरचित्त होकर कपड़े बदले और तब इस तरह मनहर के कमरे में आयी, मानो कोई अभिनय करने स्टेज पर आयी हो।

मनहर उसे देखते ही जोर से ठट्ठा मार कर हँसा। जेनी सहम कर पीछे हट गयी। इस हँसी में क्रोध या प्रतिकार न था। उसमें उन्माद भरा हुआ था। मनहर के सामने मेज पर बोतल और गिलास रखा हुआ था। एक दिन में उसने न-जाने कितनी शराब पी ली थी। उसकी आँखों में जैसे रक्त उबला पड़ता था।

जेनी ने समीप जाकर उसके कन्धे पर हाथ रखा और बोली—क्या रात-भर पीते ही रहोगे ? चलो, आराम से लेटो; रात ज्यादा आ गयी है। घण्टों से बैठी तुम्हारा इन्तजार कर रही हूँ। तुम इतने निष्ठुर तो कभी न थे।

मनहर खोया हुआ-सा बोला—तुम कब आ गयी वागी ? देखो, मैं कब से तुम्हें पुकार रहा हूँ। चलो, आज सैर कर आयें। उसी नदी के किनारे तुम अपना वही प्यारा गीत सुनाना, जिसे सुनकर मैं पागल हो जाता हूँ। क्या कहती हो, मैं बेमुरौवत हूँ ? यह तुम्हारा अन्याय है, वागी ! मैं कसम खाकर कहता हूँ; ऐसा एक दिन भी नहीं गुजरा, जब तुम्हारी याद ने मुझे न रुलाया हो।

जेनी ने उसका कन्धा हिलाकर कहा—तुम यह क्या ऊल-ज़लूल बक रहे हो ? वागी यहाँ कहाँ है ?

मनहर ने उसकी ओर अपरिचित भाव से देखकर कुछ कहा, फिर जोर से हँसकर बोला—मैं यह न मानूँगा, वागी ! तुम्हें मेरे साथ चलना होगा। वहाँ मैं तुम्हारे लिए फूलों की एक माला बनाऊँगा...।

जेनी ने समझा, यह शराब बहुत पी गये हैं। एक्क-झक कर रहे हैं। इनसे इस वक्त कुछ बातें करना व्यर्थ है। चुपके से कमरे से बाहर चली गयी। उसे जरा-सी शंका हुई थी। यहाँ उसका मूलोच्छेद हो गया। जिस आदमी का अपनी वाणी पर अधिकार नहीं, वह इच्छा पर क्या अधिकार रख सकता है ?

उस घड़ी से मनहर को घर वालों की रट-सी लग गयी। कभी वागेश्वरी को पुकारता, कभी अम्माँ को, कभी दादा को। उसकी आत्मा अतीत में विचरती रहती, उस अतीत में जब जेनी ने काली छाया की भाँति प्रवेश न किया था और वागेश्वरी अपने सरल व्रत से उसके जीवन में प्रकाश फैलाती रहती थी।

दूसरे दिन जेनी ने जाकर उससे कहा—तुम इतनी शराब क्यों पीते हो ? देखते नहीं, तुम्हारी क्या दशा हो रही है ?

मनहर ने उसकी ओर आश्चर्य से देखकर कहा—तुम कौन हो ?

जेनी—क्या मुझे नहीं पहचानते हो ? इतनी जल्द भूल गये ?

मनहर—मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा ! मैं तुम्हें नहीं पहचानता।

जेनी ने और अधिक बातचीत न की। उसने मनहर के कमरे से शराब की बोतलें उठवा लीं और नौकरों को ताकीद कर दी कि उसे एक घूँट भी शराब न दी जाय। उसे अब कुछ-कुछ सन्देह होने लगा था, क्योंकि मनहर की दशा उससे कहीं शंकाजनक थी, जितनी वह समझती थी ! मनहर का जीवित और स्वस्थ रहना उसके लिए आवश्यक था। इसी घोड़े पर बैठकर वह शिकार खेलती थी। घोड़े के बगैर शिकार का आनन्द कहाँ ?

मगर एक सप्ताह हो जाने पर भी मनहर की मानसिक दशा में कोई अंतर न हुआ। न मित्रों को पहचानता, न नौकरों को। पिछले तीन बरसों का उसका जीवन एक स्वप्न की भाँति मिट गया था।

सातवें दिन जेनी सिविल सर्जन को लेकर आयी, तो मनहर का कहीं पता न था।

४

पाँच साल के बाद वागेश्वरी का लुटा हुआ सोहाग फिर चेता। माँ-बाप पुत्र के वियोग में रो-रोकर अंधे हो चुके थे। वागेश्वरी निराशा में भी आस बाँधे बैठी हुई थी। उसका मायका सम्पन्न था। बार-बार बुलावे आते, बाप आया, भाई आया, पर धैर्य और व्रत की देवी घर से न टली।

जब मनहर भारत आया, तो वागेश्वरी ने सुना कि वह विलायत से एक मेम लाया है। फिर भी उसे आशा थी कि वह आयेगा; लेकिन उसकी आशा पूरी न हुई। फिर उसने सुना, कि वह ईसाई हो गया है। आचार-विचार त्याग दिया है, तब उसने माथा ठोंक लिया।

घर की अवस्था दिन-दिन बिगड़ने लगी। वर्षा बन्द हो गयी और सागर सूखने लगा। घर बिका, कुछ जमीन थी, वह बिकी, फिर गहनों की बारी आयी, यहाँ तक की अब केवल आकाशी वृत्ति थी। कभी चूल्हा जल गया, कभी ठंडा पड़ा रहा।

एक दिन संध्या समय वह कुएँ पर पानी भरने गयी थी कि एक थका हुआ, जीर्ण, विपत्ति का मारा जैसा आदमी आकर कुएँ की जगत पर बैठ गया। वागेश्वरी ने देखा तो मनहर ! उसने तुरन्त घूँघट बढ़ा लिया। आँखों पर विश्वास न हुआ, फिर भी आनन्द और विस्मय से हृदय में फुरेरियाँ उड़ने लगीं। रस्सी और कलसा कुएँ पर छोड़कर लपकी हुई घर आयी और सास से बोली—अम्माँजी, जरा कुएँ पर जाकर देखो, कोई आया है। सास ने कहा—तू पानी लाने गयी थी, या तमाशा देखने ? घर में एक बूँद पानी नहीं है। कौन आया है कुएँ पर ?

'चलकर, देख लो न !'

'कोई सिपाही-प्यादा होगा। अब उनके सिवा और कौन आनेवाला है। कोई महाजन तो नहीं है ?'

'नहीं अम्माँ, तुम चली क्यों नहीं चलतीं ?'

बूढ़ी माता भाँति-भाँति की शंकाएँ करती हुई कुएँ पर पहुँची, तो मनहर दौड़कर उनके पैरों से लिपट गया। माता ने उसे छाती से लगाकर कहा–तुम्हारी यह दशा है मानू? क्या बीमार हो ? असबाब कहाँ है ?

मनहर ने कहा–पहले कुछ खाने को दो, अम्माँ ! बहुत भूखा हूँ। मैं बड़ी दूर से पैदल चला आ रहा हूँ।

गाँव में खबर फैल गयी कि मनहर आया है। लोग उसे देखने दौड़े किस ठाट से आया है ? बड़े ऊँचे पद पर है, हजारों रुपये पाता है। अब उसके ठाट का क्या पूछना ! मेम भी साथ आयी है या नहीं ?

मगर जब आकर देखा, तो आफत का मारा आदमी, फटेहाल, कपड़े तार-तार, बाल बढ़े हुए, जैसे जेल से आया हो।

प्रश्नों की बौछार होने लगी–हमने तो सुना था, तुम किसी बड़े ऊँचे पद पर हो ?

मनहर ने जैसे किसी भूली बात को याद करने का विफल प्रयास करके कहा–मैं ! मैं तो किसी ओहदे पर नहीं।

'वाह ! तुम विलायत से मेम नहीं लाये थे ?'

मनहर ने चकित होकर कहा–विलायत। विलायत कौन गया था ?

'अरे। भंग तो नहीं खा गये हो। तुम विलायत नहीं गये थे ?'

मनहर मूढ़ों की भाँति हँसा–मैं विलायत क्या करने जाता ?

'अजी, तुमको वजीफा नहीं मिला था ? यहाँ से तुम विलायत गये थे। तुम्हारे पत्र बराबर आते थे। अब तुम कहते हो, मैं विलायत गया ही नहीं। होश में हो, या हम लोगों को उल्लू बना रहे हो ?'

मनहर ने उन लोगों की ओर आँखें फाड़कर देखा और बोला–मैं तो कहीं नहीं गया था। आप लोग जाने क्या कह रहे हैं।

अब इसमें संदेह की गुंजाइश न रही कि वह अपने होश-हवास में नहीं है। उसे विलायत जाने के पहले की सारी बातें याद थीं। गाँव और घर के हरेक आदमी को पहचानता था, सबसे नम्रता और प्रेम से बातें करता था; लेकिन जब इंगलैंड, अँग्रेज-बीवी और ऊँचे पद का जिक्र आता तो भौंचक्का होकर ताकने लगता। वागेश्वरी को अब उसके प्रेम में एक अस्वाभाविक अनुराग दीखता था, जो बनावटी मालूम होता था। वह चाहती थी कि उसके व्यवहार और आचरण में पहले की-सी बेतकल्लुफी हो। वह प्रेम का स्वाँग नहीं, प्रेम चाहती थी। दस ही पाँच दिनों में उसे ज्ञात हो गया कि इस विशेष अनुराग का कारण बनावट या दिखावा नहीं, वरन् कोई मानसिक विकार है। मनहर ने माँ-बाप का इतना अदब पहले कभी न किया था। उसे अब मोटे-से-मोटा काम करने में सकोच न था। वह, जो बाज़ार से साग-भाजी लाने में अपना अनादर समझता था, अब कुएँ से पानी खींचता, लकड़ियाँ फाड़ता और घर में झाड़ू लगाता था और अपने घर में नहीं, सारे मुहल्ले में उसकी सेवा और नम्रता की चर्चा होती थी।

एक बार मुहल्ले में चोरी हुई। पुलिस ने बहुत दौड़-धूप की; पर चोरों का पता न चला। मनहर ने चोर का पता ही नहीं लगा दिया; बल्कि माल भी बरामद करा लिया। इससे आसपास के गाँवों और मुहल्लों में उसका यश फैल गया। कोई चोरी हो जाती, तो

लोग उसके पास दौड़े आते और अधिकांश उद्योग उसके सफल भी होते थे। इस तरह उसकी जीविका की एक व्यवस्था हो गयी। वह अब वागेश्वरी के इशारों का गुलाम था। उसी की दिलजोई और सेवा में उसके दिन कटते थे। अगर उसमें विकार या बीमारी का कोई लक्षण था, तो इतना ही। यही सनक उसे सवार हो गयी थी।

वागेश्वरी को उसकी दशा पर दुःख होता था; पर उसकी यह बीमारी उस स्वास्थ्य से उसे कहीं प्रिय थी, जब वह उसकी बात भी न पूछता था।

9

छः महीनों के बाद एक दिन जेनी मनहर का पता लगाती हुई आ पहुँची। हाथ में जो कुछ था, वह सब उड़ा चुकने के बाद अब उसे किसी आश्रय की खोज थी। उसके चाहने वालों में कोई ऐसा न था, जो उसकी आर्थिक सहायता करता। शायद अब जेनी को कुछ ग्लानि भी होती थी। वह अपने किये पर लज्जित थी।

द्वार पर हॉर्न की आवाज सुनकर मनहर बाहर निकला और इस प्रकार जेनी को देखने लगा, मानो उसे कभी देखा ही नहीं।

जेनी ने मोटर से उतर कर उससे हाथ मिलाया और अपनी बीती सुनाने लगी—तुम इस तरह मुझसे छिपकर क्यों चले आये ? और फिर आकर एक पत्र भी नहीं लिखा। आखिर, मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की थी ! फिर मुझमें कोई बुराई देखी थी, तो तुम्हें चाहिए था कि मुझे सावधान कर देते। छिपकर चले आने से क्या फायदा हुआ ? ऐसी अच्छी जगह मिल गयी थी, वह भी हाथ से निकल गयी।

मनहर काठ के उल्लू की भाँति खड़ा रहा।

जेनी ने फिर कहा—तुम्हारे चले आने के बाद मेरे ऊपर जो संकट आये, वह सुनाऊँ, तो तुम घबरा जाओगे। मैं इसी चिन्ता और दुःख से बीमार हो गयी। तुम्हारे बगैर मेरा जीवन निरर्थक हो गया है। तुम्हारा चित्र देखकर मन को ढाढ़स देती थी। तुम्हारे पत्रों को आदि से अन्त तक पढ़ना मेरे लिए सबसे मनोरंजक विषय था। तुम मेरे साथ चलो, मैंने एक डॉक्टर से बातचीत की है, वह मस्तिष्क के विकारों का डॉक्टर है। मुझे आशा है, उसके उपचार से तुम्हें लाभ होगा।

मनहर चुपचाप विरक्त-भाव से खड़ा रहा, मानो वह न कुछ देख रहा है, न सुन रहा है।

सहसा वागेश्वरी निकल आयी। जेनी को देखते ही वह ताड़ गयी कि यही मेरी यूरोपियन सौत है। वह उसे बड़े आदर-सत्कार के साथ भीतर ले गयी। मनहर भी उनके पीछे-पीछे चला गया।

जेनी ने टूटी खाट पर बैठते हुए कहा। इन्होंने मेरा जिक्र तो तुमसे किया ही होगा। मेरी इनसे लंदन में शादी हुई है।

वागेश्वरी बोली—यह तो मैं आपको देखते ही समझ गयी थी।

जेनी—इन्होंने कभी मेरा जिक्र नहीं किया ?

वागेश्वरी—कभी नहीं। इन्हें तो कुछ याद नहीं। आपको तो यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ होगा ?

जेनी—महीनों के बाद तब इनके घर का पता चला। वहाँ से बिना कुछ कहे-सुने चल दिये।

'आपको कुछ मालूम है, इन्हें क्या शिकायत है ?'

'शराब बहुत पीने लगे थे। आपने किसी डॉक्टर को नहीं दिखाया ?'

'हमने तो किसी को नहीं दिखाया।'

जेनी ने तिरस्कार करके कहा—क्यों ? क्या आप इन्हें हमेशा बीमार रखना चाहती हैं ?

वागेश्वरी ने बेपरवाही से जवाब दिया—मेरे लिए तो इनका बीमार रहना इनके स्वस्थ रहने से कहीं अच्छा है। तब वह अपनी आत्मा को भूल गये थे, अब उसे पा गये।

फिर उसने निर्दय कटाक्ष करके कहा—मेरे विचार में तो वह तब बीमार थे अब स्वस्थ हैं।

जेनी ने चिढ़कर कहा—नॉनसेंस ! इनकी किसी विशेषज्ञ से चिकित्सा करानी होगी। यह जासूसी में बड़े कुशल हैं। इनके सभी अफसर इनसे ''सन्न थे। यह चाहें तो अब भी इन्हें वह जगह मिल सकती है। अपने विभाग में ऊँचे-से-ऊँचे पद तक पहुँच सकते हैं। मझे विश्वास है कि इनका रोग असाध्य नहीं है; विचित्र अवश्य है। अप क्या इनकी बहन है ?

वागेश्वरी ने मुसकरा कर कहा—आप तो गाली दे रही हैं। यह मेरे स्वामी हैं।

जेनी पर मानों वज्रपात-सा हुआ। उसके मुख पर से नम्रता का आवरण हट गया और मन में छिपा हुआ क्रोध जैसे दाँत पीसने लगा। उसकी गरदन की नसें तन गयीं, दोनों मुट्ठियाँ बँध गयीं। उन्मत्त होकर बोली—बड़ा दगाबाज आदमी है। इसने मुझे बड़ा धोखा दिया। मुझे इसने कहा था, मेरी स्त्री मर गयी है। कितना बड़ा धूर्त है ! यह पागल नहीं है। इसने पागलपन का स्वाँग भरा है। मैं अदालत से इसकी सजा कराऊँगी।

क्रोधावेश के कारण वह काँप उठी। फिर रोती हुई बोली—इस दगाबाजी का मैं इसे मजा चखाऊँगी। ओह ! इसने मेरा कितना घोर अपमान किया ˜ ! ऐसा विश्वासघात करनेवाले को जो दण्ड दिया जाय, वह थोड़ा है ! इसने कैसी मीठी-ाठी बातें करके मुझे फाँसा। मैंने ही इसे जगह दिलायी, मेरे ही प्रयत्नों से यह बड़ा आदमी बना। इसके लिए मैंने अपना घर छोड़ा, अपना देश छोड़ा और इसने मेरे साथ ऐसा कपट किया।

जेनी सिर पर हाथ रखकर बैठ गयी। फिर तैश में उठी और मनहर के पास जाकर उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली—मैं तुम्हें खराब करके छोड़ूँगी। तूने मुझे समझा क्या है...

मनहर इस तरह शान्त भाव से खड़ा रहा, मानो उससे कोई प्रयोजन नहीं है।

फिर वह सिंहनी की भाँति मनहर पर टूट पड़ी और उस जमीन पर गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। वागेश्वरी ने उसका हाथ ट ड़कर अलग कर दिया ीर बोली—तुम ऐसी डायन न होतीं, तो उनकी यह दशा ही क्यों होती ?

जेनी ने तैश में आकर जेब से पिस्तौल निकाली और वागेश्वरी की तरफ बढ़ी। सहसा मनहर तड़पकर उठा, उसके हाथ से भरा हुआ पिस्तौल छीनकर फेंक दिया और वागेश्वरी के सामने खड़ा हो गया। फिर ऐसा मुँह बना लिया, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

उसी वक्त मनहर की माता दोपहरी की नींद सोकर उठीं और जेनी को देखर वागेश्वरी की ओर प्रश्न की आँखों से ताका।

वागेश्वरी ने उपहास के भाव से कहा—यह आपकी बहू हैं।

बुढ़िया तिनककर बोली—कैसी मेरी बहू ? यह मेरी बहू बनने जोग है बँदरिया? लड़के पर न जाने क्या कर-करा दिया, अब छाती पर मूँग दलने आयी है ?

जेनी एक क्षण तक खून-भरी आँखों से मनहर की ओर देखती रही। फिर बिजली की भाँति कौंधकर उसने आँगन में पड़ा हुआ पिस्तौल उठा लिया और वागेश्वरी पर छोड़ना चाहती थी कि मनहर सामने आ गया। वह बेधड़क जेनी के सामने चला गया। उसके हाथ से पिस्तौल छीन लिया और अपनी छाती में गोली मार ली।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', जनवरी, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित।]

ढपोरसंख

मुरादाबाद में मेरे एक पुराने मित्र हैं, जिन्हें दिल में तो मैं एक रत्न समझता हूँ पर पुकारता हूँ ढपोरसंख कहकर और वह बुरा भी नहीं मानते। ईश्वर ने उन्हें जितना हृदय दिया है, उसकी आधी बुद्धि दी होती, तो आज वह कुछ और होते ! उन्हें हमेशा तंगहस्त ही देखा; मगर किसी के सामने कभी हाथ फैलाते नहीं देखा। हम और वह बहुत दिनों तक साथ पढ़े हैं, खासी बेतकल्लुफी है; पर यह जानते हुए भी कि मेरे लिये सौ-पचास रुपये से उनकी मदद करना कोई बड़ी बात नहीं और मैं बड़ी खुशी से करूँगा, कभी मुझसे एक पाई के रवादार न हुए। अगर हीलें से बच्चों को दो-चार रुपये दे देता हूँ, तो बिदा होते समय उसकी दुगनी रकम के मुरादाबादी बर्तन लादने पड़ते हैं। इसलिए मैंने यह नियम बना लिया है कि जब उनके पास जाता हूँ, तो एक-दो दिन में जितनी बड़ी-से-बड़ी चपत दे सकता हूँ, देता हूँ। मौसम में जो महँगी-से-महँगी चीज होती है, वही खाता हूँ और माँग-माँगकर खाता हूँ। मगर दिल के ऐसे बेहया हैं, कि अगर एक बार भी उधर से निकल जाऊँ और उनसे न मिलूँ तो बुरी तरह डाँट बताते हैं। इधर दो-तीन साल से मुलाकात न हुई थी। जी देखने को चाहता था। मई में नैनीताल जाते हुए उनसे मिलने के लिए उतर पड़ा। छोटा-सा घर है, छोटा-सा परिवार, छोटा-सा डील। द्वार पर आवाज दी—ढपोरसंख ! तुरन्त बाहर निकल आये और गले से लिपट गये। ताँगे पर से मेरे ट्रंक को उतारकर कंधे पर रखा, बिस्तर बगल में दबाया और घर में दाखिल हो गये। कहता हूँ, बिस्तर मुझे दे दो मगर कौन सुनता है। भीतर कदम रखा तो देवीजी के दर्शन हुए। छोटे बच्चे ने आकर प्रणाम किया। बस यही परिवार है।

कमरे में गया तो देखा खतों का एक दफ्तर फैला हुआ है। खतों को सुरक्षित रखने की तो इनकी आदत नहीं ? इतने खत किसके हैं ? कुतूहल से पूछा—यह क्या कूड़ा फैला रखा है जी, समेटो।

देवीजी मुसकराकर बोलीं—कूड़ा न कहिए, एक-एक पत्र साहित्य का रत्न है। आप तो इधर आये नहीं। इनके एक नये मित्र पैदा हो गये हैं। यह उन्हीं के कर-कमलों के प्रसाद हैं।

ढपोरसंख ने अपनी नन्ही-नन्ही आँखें सिकोड़कर कहा—तुम उसके नाम से क्यों इतना जलती हो, मेरी समझ में नहीं आता ? अगर तुम्हारे दो-चार सौ रुपये उस पर आते हैं, तो उनका देनदार मैं हूँ। वह भी अभी जीता-जागता है। किसी को बेईमान क्यों समझती हो ? यह क्यों नहीं समझतीं कि उसे अभी सुविधा नहीं है। और फिर दो-चार सौ रुपये एक मित्र के हाथों डूब ही जायें, तो क्यों रोओ। माना हम गरीब हैं, दो-चार सौ रुपये हमारे लिए दो-चार लाख से कम नहीं; लेकिन खाया तो एक मित्र ने !

देवीजी जितनी रूपवती थीं, उतनी ही जबान की तेज थीं। बोलीं—अगर ऐसों ही का नाम मित्र है, तो मैं नहीं समझती, शत्रु किसे कहते हैं।

ढपोरसंख ने मेरी तरफ देखकर, मानों मुझसे हामी भराने के लिए कहा—औरतों का हृदय बहुत ही संकीर्ण होता है।

देवीजी नारी-जाति पर यह आक्षेप कैसे सह सकती थीं, आँखें तरेरकर बोलीं—यह क्यों नहीं कहते कि उल्लू बनाकर ले गया, ऊपर से हेकड़ी जताते हो ! दाल गिर जाने पर तुम्हें भी सूखा अच्छा लगे, तो कोई आश्चर्य नहीं। मैं जानती हूँ, रुपया हाथ का मैल है। यह भी समझती हूँ कि जिसके भाग्य का जितना होना है, उतना वह खाता है; मगर यह मैं कभी न मानूँगी, कि वह सज्जन था और आदर्शवादी था और यह था, वह था। साफ-साफ क्यों नहीं कहते, लंपट था दगाबाज था ! बस, मेरा तुमसे कोई झगड़ा नहीं।

ढपोरसंख ने गर्म होकर कहा—मैं यह नहीं मान सकता। देवीजी भी गर्म होकर बोलीं—तुम्हें मानना पड़ेगा। महाशय जी आ गये हैं। मैं इन्हें पंच बदती हूँ। अगर यह कह देंगे, कि सज्जनता का पुतला था, आदर्शवादी था, वीरात्मा था, तो मैं मान लूँगी और फिर उसका नाम न लूँगी। और यदि इनका फैसला मेरे अनुकूल हुआ, तो लाला, तुम्हें इनको अपना बहनोई कहना पड़ेगा !

मैंने पूछा—मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है, आप किसका जिक्र कर रही हैं? वह कौन था ?

देवीजी ने आँखें नचाकर कहा—इन्हीं से पूछो, कौन था ? इनका बहनोई था !

ढपोरसंख ने झेंपकर कहा—अजी, एक साहित्य-सेवी था—करुणाकर जोशी। बेचारा विपत्ति का मारा यहाँ आ पड़ा था ! उस वक्त तो यह भी भैया-भैया करती थीं, हलवा बना-बनाकर खिलाती थीं, उसकी विपत्ति-कथा सुनकर टेसवे बहाती थीं और आज वह दगाबाज है, लंपट है, लबार है ?

देवीजी ने कहा—वह तुम्हारी खातिर थी। मैं समझती थी, लेख लिखते हो, व्याख्यान देते हो, साहित्य के मर्मज्ञ बनते हो, कुछ तो आदमी पहचानते होंगे। पर अब मालूम हो गया, कि कलम घिसना और बात है, मनुष्य की नाड़ी पहचानना और बात।

मैं इस जोशी का वृत्तांत सुनने के लिए उत्सुक हो उठा—ढपोरसंख तो अपना पचड़ा सुनाने को तैयार थे; मगर देवीजी ने कहा—खाने-पीने से निवृत्त होकर पंचायत बैठे। मैंने भी इसे स्वीकार कर लिया।

देवीजी घर में जाती हुई बोलीं—तुम्हें कसम है जो अभी जोशी के बारे में एक शब्द भी इनसे कहो। मैं भोजन बनाकर जब तक खिला न लूँ, तब तक दोनों आदमियों पर दफा 144 है।

ढपोरसंख ने आँखें मारकर कहा—तुम्हारा नमक खाकर यह तुम्हारी तरफदारी करेंगे ही !

इस बार देवीजी के कानों में यह जुमला न पड़ा। धीमे स्वर में कहा भी गया था, नहीं तो देवीजी ने कुछ-न-कुछ जवाब जरूर दिया होता। देवीजी चूल्हा जला चुकीं और ढपोरसंख उनकी ओर से निश्चिन्त हो गये, तो मुझसे बोले—जब तक वह रसोई में हैं, मैं संक्षेप में तुम्हें वह वृत्तांत सुना दूँ ?

मैंने धर्म की आड़ लेकर कहा—नहीं भाई, मैं पंच बनाया गया हूँ और इस विषय में कुछ न सुनूँगा। उन्हें आ जाने दो।

'मुझे भय है, कि तुम उन्हीं का-सा फैसला कर दोगे और फिर वह मेरा घर में रहना अपाढ़ कर देगी।'

मैंने ढाढ़स दिया—यह आप कैसे कह सकते हैं, मैं क्या फैसला करूँगा ?

'मैं तुम्हें जानता जो हूँ। तुम्हारी अदालत में औरत के सामने मर्द कभी जीत ही नहीं सकता।'

'तो क्या चाहते हो तुम्हारी डिक्री कर दूँ !'

'क्या दोस्ती का इतना हक भी नहीं अदा कर सकते ?'

'अच्छा लो, तुम्हारी जीत होगी, चाहे गालियाँ ही क्यों न मिलें।'

खाते-पीते दोपहर हो गयी। रात का जागा था। सोने की इच्छा हो रही थी पर देवीजी कब माननेवाली थीं। भोजन करके आ पहुँचीं। ढपोरसंख ने पत्रों का पुलिंदा समेटा और वृत्तान्त सुनाने लगे।

देवीजी ने सावधान किया—एक शब्द भी झूठ बोले, तो जुर्माना होगा।

ढपोरसंख ने गम्भीर होकर कहा—झूठ वह बोलता है, जिसका पक्ष निर्बल होता है। मुझे तो अपनी विजय का विश्वास है।

इसके बाद कथा शुरू हो गई।

दो साल से ज्यादा हुए, एक दिन मेरे पास एक पत्र आया, जिसमें साहित्य सेवा के नाते एक ड्रामे की भूमिका लिखने की प्रेरणा की गई थी। करुणाकर का पत्र था। इस साहित्यिक रीति से मेरा उनसे प्रथम परिचय हुआ। साहित्यकारों की इस जमाने में जो दुर्दशा है, उसका अनुभव कर चुका हूँ, और करता रहता हूँ और यदि भूमिका तक बात रहे, तो उनकी सेवा करने में पसोपेश नहीं होता। मैंने तुरन्त जवाब दिया—आप ड्रामा भेज दीजिए। एक सप्ताह में ड्रामा आ गया, पर अबके पत्र में भूमिका लिखने ही की नहीं कोई प्रकाशक ठीक कर देने की भी प्रार्थना की गयी थी। मैं प्रकाशकों के झंझट में नहीं पड़ता। दो-एक बार पड़कर कई मित्रों को जानी दुश्मन बना चुका हूँ। मैंने ड्रामे को पढ़ा, उस पर भूमिका लिखी और हस्तलिपि लौटा दी। ड्रामा मुझे सुन्दर मालूम हुआ; इसलिए भूमिका भी प्रशंसात्मक थी। कितनी ही पुस्तकों की भूमिका लिख भी चुका हूँ। कोई नई बात न थी; पर अबकी भूमिका लिखकर पिंड न छूटा। एक सप्ताह के बाद एक लेख आया, कि इसे

अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर दीजिए। (ढपोरसंख एक पत्रिका के सम्पादक हैं) इसे गुण कहिए या दोष, मुझे दूसरों पर विश्वास बहुत जल्द आ जाता है। और जब किसी लेखक का मुआमला हो, तो मेरी विश्वास-क्रिया और भी तीव्र हो जाती है। मैं अपने एक मित्र को जानता हूँ जो साहित्यकारों के साये से भागते हैं। वह खुद निपुण लेखक हैं, बड़े ही सज्जन हैं, बड़े ही जिन्दा-दिल। अपनी शादी करके लौटने पर जब-जब रास्ते में मुझसे भेंट हुई, कहा--आपकी मिठाई रखी हुई है, भेजवा दूँगा, पर वह मिठाई आज तक न आई, हालाँकि अब ईश्वर की दया से विवाह-तरु में फल भी लग आये, लेकिन खैर, मैं साहित्यसेवियों से इतना चौकन्ना नहीं रहता। इन पत्रों में इतनी विनय, इतना आग्रह, इतनी भक्ति होती थी, कि मुझे जोशी से बिना साक्षात्कार के ही स्नेह हो गया। मालूम हुआ, एक बड़े बाप का बेटा है, घर से इसीलिए निर्वासित है, कि उसके चाचा दहेज की लम्बी रकम लेकर उसका विवाह करना चाहते थे, यह उसे मंजूर न हुआ। इस पर चाचा ने घर से निकाल दिया। बाप के पास गया। बाप आदर्श भ्रातृ-भक्त था। उसने चाचा के फैसले की अपील न सुनी। ऐसी दशा में सिद्धांत का मारा युवक सिवाय घर से बाहर निकल भागने के और क्या करता ? यों वन-वन के पत्ते तोड़ता, द्वार-द्वार ठोकरें खाता वह ग्वालियर आ गया था। उस पर मंदाग्नि का रोग, जीर्ण ज्वर से ग्रस्त। आप ही बतलाइए, ऐसे आदमी से क्या सहानुभूति न होती ? फिर जब एक आदमी आपको 'प्रिय भाई साहब' लिखता है, अपने मनोरहस्य आपके सामने खोलकर रखता है, विपत्ति में भी धैर्य और पुरुषार्थ को हाथ से नहीं छोड़ता, कड़े से कड़ा परिश्रम करने को तैयार है, तो यदि आप में सौजन्य का अणुमात्र भी है, तो आप उसकी मदद जरूर करेंगे।

अच्छा, अब फिर ड्रामे की तरफ आइए। कई दिनों बाद जोशी का पत्र प्रयाग से आया। वह वहाँ के एक मासिक-पत्रिका के सम्पादकीय-विभाग में नौकर हो गया था। यह पत्र पाकर मुझे कितना संतोष और आनन्द हुआ, कह नहीं सकता। कितना उद्यमशील आदमी है ! उसके प्रति मेरा स्नेह और भी प्रगाढ़ हो गया। पत्रिका का स्वामी संपादक सख्ती से पेश आता था, जरा-सी देर हो जाने पर दिन-भर की मजदूरी काट लेता था, बात-बात पर घुड़कियाँ जमाता था; पर यह सत्याग्रही वीर सब-कुछ सहकर भी अपने काम में लगा रहता था। अपना भविष्य बनाने का ऐसा अवसर पाकर वह उसे कैसे छोड़ देता। यह सारी बातें स्नेह और विश्वास को बढ़ाने वाली थीं। एक आदमी को कठिनाइयों का सामना करते देखकर किसे उससे प्रेम न होगा, गर्व न होगा!

प्रयाग में वह ज्यादा न ठहर सका। उसने मुझे लिखा, मैं सब कुछ झेलने को तैयार हूँ, भूखों मरने को तैयार हूँ पर आत्मसम्मान में दाग नहीं लगा सकता, कुवचन नहीं सह सकता।

ऐसा चरित्र यदि आप पर प्रभाव न डाल सके तो मैं कहूँगा, आप चालाक चाहे जितने हों पर हृदय-शून्य हैं।

एक सप्ताह के बाद प्रयाग से फिर पत्र आया--यह व्यवहार मेरे लिए असह्य हो गया। आज मैंने इस्तीफा दे दिया। यह न समझिए कि मैंने हलके दिल से लगी-लगाई रोजी छोड़ दी। मैंने वह सब किया, जो मुझे करना चाहिए था। यहाँ तक कि कुछ-कुछ वह भी किया, जो मुझे न करना चाहिए था; पर आत्मसम्मान का खून नहीं कर सकता। अगर

यह कर सकता, तो मुझे घर छोड़कर निकलने की क्या आवश्यकता थी। मैंने बम्बई जाकर अपनी किस्मत आजमाने का निश्चय किया है। मेरा दृढ़ संकल्प है कि अपने घरवालों के सामने हाथ न फैलाऊँगा, उनसे दया की भिक्षा न माँगूँगा। मुझे कुलीगिरी करनी मंजूर है, टोकरी ढोना मंजूर है; पर अपनी आत्मा को कलंकित नहीं कर सकता।

मेरी श्रद्धा और बढ़ गई। यह व्यक्ति अब मेरे लिए केवल ड्रामा का चरित्र न था, जिसके सुख से सुखी और दुख से दुखी होने पर भी हम दर्शक ही रहते हैं। वह अब मेरे इतने निकट पहुँच गया था, कि उस पर आघात होते देखकर मैं उसकी रक्षा करने को तैयार था, उसे डूबते देखकर पानी में कूदने से भी न हिचकता।

मैं बड़ी उत्कंठा से उसके बंबई से आने वाले पत्र का इंतजार करने लगा। छठवें दिन पत्र आया। वह बंबई में काम खोज रहा था, लिखा था—घबड़ाने की कोई बात नहीं है, मैं सब कुछ झेलने को तैयार हूँ। फिर दो-दो चार-चार दिन के अन्तर से कई पत्र आये। वह वीरों की भाँति कठिनाइयों के सामने कमर कसे खड़ा था, हालाँकि तीन दिन से उसे भोजन न मिला था।

ओह ! कितना ऊँचा आदर्श है। कितना उज्ज्वल चरित्र ! मैं समझता हूँ, मैंने उस समय बड़ी कृपणता की। मेरी आत्मा ने मुझे धिक्कारा—यह बेचारा इतने कष्ट उठा रहा है और तुम बैठे देख रहे हो। क्यों उसके पास कुछ रुपये नहीं भेजते ? मैंने आत्मा के कहने पर अमल न किया, पर अपनी बेदर्दी पर खिन्न अवश्य था।

जब कई दिन की बेचैनी भरे हुए इन्तजार के बाद यह समाचार आया, कि वह एक साप्ताहिक पत्र के सम्पादकीय विभाग में जगह पा गया है, तो मैंने आराम की साँस ली और ईश्वर को सच्चे दिल से धन्यवाद दिया।

साप्ताहिक में जोशी के लेख निकलने लगे। उन्हें पढ़कर मुझे गर्व होता था। कितने सजीव, कितने विचार से भरे लेख थे। उसने मुझसे भी लेख माँगे; पर मुझे अवकाश न था। क्षमा माँगी, हालाँकि इस अवसर पर उसको प्रोत्साहन न देने पर मुझे बड़ा खेद होता था।

लेकिन शायद बाधाएँ हाथ धोकर उसके पीछे पड़ी थीं। पत्र के ग्राहक कम थे। चन्दे और डोनेशन से काम चलता था। रुपये हाथ आ जाते, तो कर्मचारियों को थोड़ा-थोड़ा मिल जाता, नहीं आसरा लगाये काम करते रहते। इस दशा में गरीब ने तीन महीने काटे होंगे। आशा थी, तीन महीने का हिसाब होगा, तो अच्छी रकम हाथ लगेगी; मगर वहाँ सूखा जवाब मिला। स्वामी ने टाट उलट दिया, पत्र बन्द हो गया और कर्मचारियों को अपना-सा मुँह लिये बिदा होना पड़ा। स्वामी की सज्जनता में सन्देह नहीं; लेकिन रुपये कहाँ से लाता ! सज्जनता के नाते लोग आधे वेतन पर काम कर सकते थे लेकिन पेट बाँधकर काम करना कब मुमकिन था। और फिर बम्बई का खर्च। बेचारे जोशी को फिर ठोकरें खानी पड़ीं ! मैंने खत पढ़ा, तो बहुत दुःख हुआ। ईश्वर ने मुझे इस योग्य न बनाया, नहीं बेचारा क्यों पेट के लिए यों मारा-मारा फिरता।

अबकी बार बहुत हैरान न होना पड़ा। किसी मिल में गाँठों पर नम्बर लिखने का काम मिल गया। एक रुपया रोज मजूरी थी। बम्बई में एक रुपया, इधर के चार आने बराबर समझो ! कैसे उसका काम चलता था, ईश्वर ही जाने।

कई दिन के बाद एक लम्बा पत्र आया। एक जर्मन एजेंसी उसे रखने पर तैयार थी;

अगर तुरन्त सौ रुपये की जमानत दे सके। एजेंसी यहाँ की फौजों में जूते, सिगार, साबुन आदि सप्लाई करने का काम करती थी। अगर यह जगह मिल जाती, तो उसके दिन आराम से कटने लगते। लिखा था, अब जिन्दगी से तंग आ गया हूँ। हिम्मत ने जवाब दे दिया। आत्महत्या करने के सिवा और कोई उपाय नहीं सूझता। केवल माताजी की चिन्ता है। रो-रोकर प्राण दे देंगी ! पिताजी के साथ उन्हें शारीरिक सुखों की कमी नहीं; पर मेरे लिए उनकी आत्मा तड़पती रहती है। मेरी यही अभिलाषा है, कि कहीं बैठने का ठिकाना मिल जाता, तो एक बार उन्हें अपने साथ रखकर उनकी जितनी सेवा हो सकती, करता। इसके सिवा मुझे कोई इच्छा नहीं है; लेकिन जमानत कहाँ से लाऊँ ? बस, कल का दिन और है। परसों कोई दूसरा उम्मीदवार जमानत देकर यह ले लेगा और मैं ताकता रह जाऊँगा। एजेंट मुझे रखना चाहता है; लेकिन अपने कार्यालय के नियमों को क्या करे।

इस पत्र ने मेरी कृपण प्रकृति को भी वशीभूत कर लिया। इच्छा हो जाने पर कोई-न-कोई राह निकल आती है। मैंने रुपये भेजने का निश्चय कर लिया। अगर इतनी मदद से एक युवक का जीवन सुधर रहा हो, तो कौन ऐसा है, जो मुँह छिपा ले। इससे बड़ा रुपयों का और क्या सदुपयोग हो सकता है। हिन्दी में कलम घिसनेवालों के पास इतनी बड़ी रकम जरा मुश्किल ही से निकलती; पर संयोग से उस वक्त मेरे कोष में रुपये मौजूद थे। मैं इसके लिए अपनी कृपणता का ऋणी हूँ। देवीजी की सलाह ली। वह बड़ी खुशी से राजी हो गई; हालाँकि अब सारा दोष मेरे ही सिर मढ़ा जाता है। कल रुपयों का पहुँचना आवश्यक था, नहीं तो अवसर हाथ से निकल जायगा। मनीआर्डर तीन दिन में पहुँचेगा। तुरन्त तारघर गया और तार से रुपये भेज दिये। जिसने बरसों की कतर-ब्योंत के बाद इतने रुपये जोड़े हों और जिसे भविष्य भी अभावमय ही दीखता हो, वही उस आनन्द का अनुभव कर सकता है, जो इस समय मुझे हुआ। सेठ अमीरचन्द को दस लाख का दान करके भी इतना आनन्द न हुआ होगा। दिया तो मैंने ऋण समझकर ही; पर वह दोस्ती का ऋण था, जिसका अदा होना स्वप्न का यथार्थ होना है।

उस पत्र को मैं कभी न भूलूँगा, जो धन्यवाद के रूप में चौथे दिन मुझे मिला। कैसे सच्चे उद्‌गार थे ! एक-एक शब्द अनुग्रह में डूबा हुआ। मैं उसे साहित्य की एक चीज समझता हूँ।

देवीजी ने चुटकी ली—सौ रुपये में उससे बहुत अच्छा पत्र मिल सकता है !

ढपोरसंख ने कुछ जवाब न दिया। कथा कहने में तन्मय थे।

बम्बई में वह किसी प्रसिद्ध स्थान पर ठहरा था। केवल नाम और पोस्ट-बाक्स लिखने ही से उसे पत्र मिल जाता था। वहाँ से कई पत्र आये। वह प्रसन्न था।

देवीजी बोलीं—प्रसन्न क्यों न होता, कम्पे में एक चिड़िया जो फँस गई थी।

ढपोरसंख ने चिढ़कर कहा—या तो मुझे कहने दो, या तुम कहो। बीच में बोलो मत।

बम्बई से कई दिन के बाद एक पत्र आया कि एजेन्सी ने उसके व्यवहार से प्रसन्न होकर उसे काशी में नियुक्त कर दिया है और वह काशी आ रहा है। उसे वेतन के उपरान्त भत्ता भी मिलेगा। काशी में उसके एक मौसा थे जो वहाँ के प्रसिद्ध डाक्टर थे; पर वह उनके घर न उतरकर अलग ठहरा। इससे उसके आत्मसम्मान का पता चलता है। मगर एक महीने में काशी से उसका जी भर गया। शिकायत से भरे पत्र आने लगे—सुबह से शाम

तक फौजी आदमियों की खुशामद करनी पड़ती है, सुबह का गया-गया दस बजे रात को घर आता हूँ, उस वक्त अकेला अँधेरा घर देखकर चित्त दुख से भर जाता है, किससे बोलूँ, किससे हँसूँ। बाजार की पूरियाँ खाते-खाते तंग आ गया हूँ। मैंने समझा था, अब कुछ दिन चैन से कटेंगे; लेकिन मालूम होता है अभी किस्मत में ठोकरें खाना लिखा है। मैं इस तरह जीवित नहीं रह सकता। रात-रात भर पड़ा रोता रहता हूँ, आदि। मुझे इन पत्रों में वह अपने आदर्श से गिरता हुआ मालूम हुआ। मैंने उसे समझाया, लगी रोजी न छोड़ो, काम किये जाओ। जवाब आया, मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता ! फौजियों का व्यवहार असह्य है। फिर मैनेजर साहब मुझे रंगून भेज रहे हैं और रंगून जाकर मैं बच नहीं सकता। मैं कोई साहित्यिक काम करना चाहता हूँ। कुछ दिन आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ।

मैं इस पत्र का जवाब देने जा ही रहा था कि फिर पत्र आया। मैं कल देहरादून-एक्सप्रेस से आ रहा हूँ। दूसरे दिन वह आ पहुँचा। दुबला-सा आदमी, साँवला रंग, लम्बा मुँह, बड़ी-बड़ी आँखें, अँग्रेजी वेश, साथ में कई चमड़े के ट्रंक, एक सूटकेस, एक होल्डाल। मैं तो उसका ठाट देखकर दंग रह गया।

देवीजी ने टिप्पणी की—फिर भी तो न चेते !

मैंने समझा था, गाढ़े का कुर्ता, चप्पल, ज्यादा-से-ज्यादा फाउण्टेन पेन वाला आदमी होगा, मगर यह महाशय तो पूरे साहब बहादुर निकले। मुझे इस छोटे से घर में उन्हें ठहराते हुए संकोच हुआ।

देवीजी से बिना बोले न रहा गया।—आते ही श्री-चरणों पर सिर तो रख दिया, अब और क्या चाहते थे।

ढपोरसंख अबकी मुसकाये—देखो श्यामा, बीच-बीच में टोको मत। अदालत की प्रतिष्ठा यह कहती है कि अभी चुपचाप सुनती जाओ। जब तुम्हारी बारी आये, तो जो चाहे कहना।

फिर सिलसिला शुरू हुआ—था तो दुबला-पतला मगर बड़ा फुर्तीला, बातचीत में बड़ा चतुर, एक जुमला अंग्रेजी बोलता, एक जुमला हिन्दी, और हिन्दी-अँग्रेजी की खिचड़ी, जैसे आप-जैसे सभ्य लोग बोलते हैं। बातचीत शुरू हुई—आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। मैंने जैसा अनुमान किया था, वैसा ही आपको देखा। बस, अब मालूम हो रहा है, कि मैं भी आदमी हूँ। इतने दिनों तक कैदी था।

मैंने कहा—तो क्या इस्तीफा दे दिया ?

'नहीं, अभी तो छुट्टी लेकर आया हूँ। अभी इस महीने का वेतन भी नहीं मिला। मैंने लिख दिया है, यहाँ के पते से भेज दें। नौकरी तो अच्छी है; मगर काम बहुत करना पड़ता है और मुझे कुछ लिखने का अवसर नहीं मिलता।'

खैर, रात को मैंने इसी कमरे में उन्हें सुलाया। दूसरे दिन यहाँ के एक होटल में प्रबन्ध कर दिया। होटलवाले पेशगी रुपये ले लेते हैं। जोशी के पास रुपये न थे। मुझे तीस रुपये देने पड़े। मैंने समझा, इसका वेतन तो आता ही होगा, ले लूँगा।

यहाँ मेरे एक माथुर मित्र हैं। उनसे भी मैंने जोशी का जिक्र किया था। उसके आने की खबर पाते ही होटल दौड़े। दोनों में दोस्ती हो गई। जोशी दो-तीन बार दिन में, एक बार रात को जरूर आते और खूब बातें करते। देवीजी उनको हाथों पर लिए रहतीं। कभी उनके

लिए पकौड़ियाँ बन रही हैं, कभी हलवा। जोशी हरफनमौला था। गाने में कुशल, हारमोनियम में निपुण, इन्द्रजाल के करतब दिखलाने में कुशल। सालन अच्छा पकाता था। देवीजी को गाना सीखने का शौक पैदा हो गया। उसे म्यूजिक मास्टर बना लिया।

देवीजी लाल मुँह करके बोलीं–तो क्या मुफ्त में हलवा, पकौड़ियाँ और पान बना-बनाकर खिलाती थी ?

एक महीना गुजर गया पर जोशी का वेतन न आया। मैंने पूछा भी नहीं। सोचा, अपने दिल में समझेगा, अपने होटलवाले रुपयों का तकाजा कर रहे हैं। माथुर के घर भी उसने आना-जाना शुरू कर दिया। दोनों साथ घूमने जाते, साथ रहते। जोशी जब आते, माथुर का बखान करते, माथुर जब आते जोशी की तारीफ करते। जोशी के पास अपने अनुभवों का विशेष भंडार था। वह फौज में रह चुका था। जब उसकी मंगेतर का विवाह दूसरे आदमी से हो गया, तो शोक में उसने फौजी नौकरी छोड़ दी थी। सामाजिक जीवन की न जाने कितनी ही घटनाएँ उसे याद थीं। और जब अपने माँ-बाप और चाचा-चाची का जिक्र करने लगता, तो उसकी आँखों में आँसू भर आते। देवीजी भी उसके साथ रोतीं।

देवीजी तिरछी आँखों से देखकर रह गई। बात सच्ची थी।

एक दिन मुझसे अपने एक ड्रामे की बड़ी तारीफ की। वह ड्रामा कलकत्ते में खेला गया। और मदन कंपनी के मैनेजर ने उसे बधाइयाँ दी थीं। ड्रामे के दो-चार टुकड़े जो उसके पास पड़े थे, मुझे सुनाये। मुझे ड्रामा बहुत पसन्द आया। उसने काशी के एक प्रकाशक के हाथ वह ड्रामा बेच दिया था और कुल पचीस रुपये पर। मैंने कहा, उसे वापस मँगा लो। रुपये मैं दे दूँगा। ऐसी सुन्दर रचना किसी अच्छे प्रकाशक को देंगे, या किसी थियेटर कम्पनी से खेलवायेंगे। तीन-चार दिन के बाद मालूम हुआ कि प्रकाशक अब पचास रुपये लेकर लौटायेगा। कहता है, मैं इसका कुछ अंश छपा चुका हूँ। मैंने कहा, मँगा लो पचास रुपये ही सही। ड्रामा वी. पी. से वापस आया। मैंने पचास रुपये दे दिये।

महीना खत्म हो रहा था। होटलवाले दूसरा महीना शुरू होते ही रुपये पेशगी माँगेंगे। मैं इसी चिन्ता में था, कि जोशी ने आकर कहा–मैं अब माथुर के साथ रहूँगा। बेचारा गरीब आदमी है। अगर मैं बीस रुपये भी दे दूँगा, तो उसका काम चल जायगा। मैं बहुत खुश हुआ। दूसरे दिन वह माथुर के घर डट गया।

जब आता, तो माथुर के घर का कोई-न-कोई रहस्य लेकर आता। यह तो मैं जानता था, कि माथुर की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। बेचारा रेलवे के दफ्तर में नौकर था। वह नौकरी भी छूट गई थी। मगर यह न मालूम था कि उसके यहाँ फाके हो रहे हैं। कभी मालिक मकान आकर गालियाँ सुना जाता है, कभी दूधवाला, कभी बनिया, कभी कपड़ेवाला। बेचारा उनसे मुँह छिपाता फिरता है। जोशी आँखों में आँसू भर-भरकर उसके संकटों की करुण कहानी कहता और रोता। मैं तो जानता था, मैं ही एक आफत का मारा हूँ। माथुर की दशा देखकर मुझे अपनी विपत्ति भूल गई। मुझे अपनी ही चिन्ता है, कोई दूसरी फिक्र नहीं। जिसके द्वार पर जा पड़ूँ दो रोटियाँ मिल जायँगी, मगर माथुर के पीछे तो पूरा खटला है। माँ, दो विधवा बहनें, एक भांजी। दो भांजे, एक छोटा भाई। इतने बड़े परिवार के लिए पचास रुपये तो केवल रोटी-दाल के लिए चाहिए। माथुर सच्चा वीर है, देवता है जो इतने बड़े परिवार का पालन कर रहा है। वह अब अपने लिए नहीं, माथुर के लिए दुखी था।

देवीजी ने टीका की—जभी माथुर की भांजी पर डोरे डाल रहा था। दुःख का भार कैसे हलका करता।

ढपोरसंख ने बिगड़कर कहा—अच्छा तो अब तुम्हीं कहो।

मैंने समझाया—तुम तो यार, जरा-जरा सी बात पर तिनक उठते हो ! क्या तुम समझते हो, यह फुलझड़ियाँ मुझे न्याय-पथ से विचलित कर देंगी ?

फिर कहानी शुरू हुई—एक दिन आकर बोला—आज मैंने माथुर के उद्धार का उपाय सोच निकाला। मेरे एक माथुर मित्र बैरिस्टर हैं। उनसे जग्गो (माथुर की भांजी) के विवाह के विषय में पत्र व्यवहार कर रहा हूँ। उसकी एक विधवा बहन को दोनों बच्चों के साथ ससुराल भेज दूँगा। दूसरी विधवा बहन अपने देवर के पास जाने पर राजी है। बस, तीन-चार आदमी रह जायँगे। कुछ मैं दूँगा, कुछ माथुर पैदा करेगा, गुजर हो जायेगा। मगर आज उसके घर का दो महीनों का किराया देना पड़ेगा। मालिक मकान ने सुबह ही से धरना दे रखा है। कहता है, अपना किराया लेकर ही हटूँगा। आपके पास तीस रुपये हों तो दे दीजिए। माथुर के छोटे भाई का वेतन कल-परसों तक मिल जायगा, रुपये मिल जायँगे। एक मित्र संकट में पड़ा हुआ है; दूसरा मित्र उसकी सिफारिश कर रहा है। मुझे इनकार करने का साहस न हुआ ! देवीजी ने उस वक्त नाक-भौं जरूर सिकोड़ा था पर मैंने न माना, रुपये दे दिये।

देवीजी ने डंक मारा—यह क्यों नहीं कहते, कि वह रुपये मेरी बहन ने बर्तन खरीदकर भेजने के लिए भेजे थे।

ढपोरसंख ने गुस्सा पीकर कहा—खैर, यही सही ! मैंने रुपये दे दिये। मगर मुझे यह उलझन होने लगी, कि इस तरह तो मेरा कचूमर ही निकल जायगा। माथुर पर एक-न-एक संकट रोज ही सवार रहेगा। मैं कहाँ तक उन्हें उबारूँगा। जोशी भी जान खा रहा था कि कहीं कोई जगह दिला दीजिए1 संयोग से उन्हीं दिनों मेरे एक आगरे के मित्र आ निकले। काउंसिल में मेम्बर थे। अब जेल में हैं। गाने-बजाने का शौक है, दो-एक ड्रामे भी लिख चुके हैं, अच्छे-अच्छे रईसों से परिचय है ! खुद भी बड़े रसिक हैं। अबकी वह आये, तो मैंने जोशी का उनसे जिक्र किया। उसका ड्रामा भी सुनाया। बोले—तो उसे मेरे साथ कर दीजिए। अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लूँगा। मेरे घर में रहे; मेरे साथ घर के आदमी की तरह रहे। जेब-खर्च के लिए मुझसे तीस रुपये महीना लेता जाय। मेरे साथ ड्रामे लिखे। मैं फूला न समाया। जोशी से कहा। जोशी भी तैयार हो गया; लेकिन जाने के पहले उसे कुछ रुपयों की जरूरत हुई। एक भले आदमी के साथ फटेहालों तो जाते नहीं बनता और न यही उचित था, कि पहले ही दिन से रुपये का तकाजा होने लगे। बहुत काट-छाँट करने पर भी चालीस रुपये का खर्च निकल आया। जूते टूट गये थे, धोतियाँ फट गई थीं और भी कई खर्च थे, जो इस वक्त याद नहीं आते। मेरे पास रुपये न थे। श्यामा से माँगने का हौसला न हुआ।

देवीजी बोलीं—मेरे पास तो कारूँ का खजाना रखा था न ! कई हजार महीने लाते हो, सौ-दो सौ रुपये बचत में आ ही जाते होंगे।

ढपोरसंख इस व्यंग्य पर ध्यान न देकर अपनी कथा कहते रहे—रुपये पाकर जोशी ने ठाट बनाया और काउंसिलर साहब के साथ चले। मैं स्टेशन तक पहुँचाने गया। माथुर भी

था। लौटा, तो मेरे दिल पर से एक बोझ उतर गया था।

माथुर ने कहा—बड़ा मुहब्बती आदमी है।

मैंने समर्थन किया—बड़ा। मुझे तो भाई-सा मालूम होता है।

'मुझे तो अब घर अच्छा न लगेगा। घर के सब आदमी रोते रहे। मालूम ही न होता था, कि कोई गैर आदमी है। अम्माँ से लड़के की तरह बातें करता था। बहनों से भाई की तरह।'

'बदनसीब आदमी है, नहीं, जिसका बाप दो हजार रुपये माहवारी कमाता हो, वह यों मारा-मारा फिरे।'

'दार्जिलिंग में इनके बाप की दो कोठियाँ हैं ?'

'आई. एम. एस. हैं !'

'जोशी मुझे भी वहीं ले जाना चाहता है। साल-दो-साल में तो वहाँ जायगा ही। कहता है, तुम्हें मोटर की एजेंसी खुलवा दूँगा।'

इस तरह खयाली पुलाव पकाते हुए हम लोग घर आये।

मैं दिल में खुश था, कि चलो अच्छा हुआ, जोशी के लिए अच्छा सिलसिला निकल आया। मुझे यह आशा भी बँध चली, कि अबकी उसे वेतन मिलेगा, तो मेरे रुपये देगा। चार-पाँच महीने में चुकता कर देगा। हिसाब लगाकर देखा, तो अच्छी खासी रकम हो गई थी। मैंने दिल में समझा, यह भी अच्छा ही हुआ। यों जमा करता, तो कभी न जमा होते। इस बहाने से किसी तरह जमा तो हो गये। मैंने यह सोचा कि अपने मित्र से जोशी के वेतन के रुपये पेशगी क्यों न ले लूँ, कह दूँ, उसके वेतन से महीने-महीने काटते रहिएगा।

लेकिन अभी मुश्किल से एक सप्ताह हुआ होगा कि एक दिन देखता हूँ, तो जोशी और माथुर, दोनों चले आ रहे हैं। मुझे भय हुआ, कहीं जोशीजी फिर तो नहीं छोड़ आये; लेकिन शंका को दबाता हुआ बोला—कहो भाई, कब आये ? मजे में तो हो ?

जोशी ने बैठकर एक सिगार जलाते हुए कहा—बहुत अच्छी तरह हूँ। मेरे बाबू साहब बड़े ही सज्जन आदमी हैं। मेरे लिए अलग एक कमरा खाली करा दिया है। साथ ही खिलाते हैं। बिलकुल भाई की तरह रखते हैं। आजकल किसी काम से दिल्ली गये हैं। मैंने सोचा, यहाँ पड़े-पड़े क्या करूँ, तब तक आप ही लोगों से मिलता आऊँ। चलते वक्त बाबू साहब ने मुझसे कहा था, मुरादाबाद से थोड़े से बर्तन लेते आना, मगर शायद उन्हें रुपये देने की याद नहीं रही। मैंने उस वक्त माँगना भी उचित न समझा। आप एक पचास रुपये दे दीजिएगा। मैं परसों तक जाऊँगा और वहाँ से जाते-ही-जाते भिजवा दूँगा। आप तो जानते हैं, रुपये के मुआमले में वे कितने खरे हैं।

मैंने जरा रुखाई के साथ कहा—रुपये तो इस वक्त मेरे पास नहीं हैं।

देवीजी ने टिप्पणी की—क्यों झूठ बोलते हो ? तुमने रुखाई से कहा था, कि रुपये नहीं हैं ?

ढपोरसंख ने पूछा—और क्या चिकनाई के साथ कहा था ?

देवीजी—तो फिर कागज के रुपये क्यो दे दिये थे ? बड़ी रुखाई करनेवाले !

ढपोरसंख—अच्छा साहब, मैंने हँसकर रुपये दे दिये। बस, अब खुश हुई। तो भई, मुझे बुरा तो लगा; लेकिन अपने सज्जन मित्र का वास्ता था। मेरे ऊपर बेचारे बड़ी कृपा

रखते हैं। मेरे पास पत्रिका का कागज खरीदने के लिए पचास रुपये रखे हुए थे। वह मैंने जोशी को दे दिये।

शाम को माथुर ने आकर कहा—जोशी तो चले गये। कहते थे, बाबू साहब का तार आ गया है। बड़ा उदार आदमी है। मालूम ही नहीं होता, कोई बाहरी आदमी है। स्वभाव भी बालकों का-सा है। भांजी की शादी तय करने को कहते थे। लेन-देन का तो कोई जिक्र है ही नहीं, पर कुछ नजर तो देनी ही पड़ेगी। बैरिस्टर साहब, जिनसे विवाह हो रहा है, दिल्ली के रहने वाले हैं। उनके पास जाकर नजर देनी होगी। जोशीजी चले जायँगे। आज मैंने रुपये भी दे दिये। चलिए, एक बड़ी चिन्ता सिर से टली।

मैंने पूछा—रुपये तो तुम्हारे पास न होंगे ?

माथुर ने कहा—रुपये कहाँ थे साहब ! एक महाजन से स्टाम्प लिखकर लिये, दो रुपये सैकड़े सूद पर।

देवीजी ने क्रोध भरे स्वर में कहा—मैं तो उस दुष्ट को पा जाऊँ तो मुँह नोच लूँ। पिशाच ने इस गरीब को भी न छोड़ा।

ढपोरसंख बोला—यह क्रोध तो आपको अब आ रहा है न। तब तो आप भी समझती थीं, कि जोशी दया और धर्म का पुतला है।

देवीजी ने विरोध किया—मैंने उसे पुतला-पुतली कभी नहीं समझा। हाँ, तुम्हारी तकलीफों के भुलावे में पड़ जाती थी।

ढपोरसंख—तो साहब, इस तरह कोई दो महीने गुजरे, इस बीच में भी जोशी दो-तीन बार आये; मगर मुझसे कुछ माँगा नहीं। हाँ, अपने बाबू साहब के संबंध में तरह-तरह की बातें कीं, जिनसे मुझे दो-चार गल्प लिखने की सामग्री मिल गई।

मई का महीना था। एक दिन प्रातःकाल जोशी आ पहुँचे। मैंने पूछा, तो मालूम हुआ, उनके बाबू साहब नैनीताल चले गये। इन्हें भी लिये जाते थे; पर उन्होंने हम लोगों के साथ यहाँ रहना अच्छा समझा और चले आये।

देवीजी ने फुलझड़ी छोड़ी—कितना त्यागी था बेचारा। नैनीताल की बहार छोड़कर यहाँ गर्मी में प्राण देने चला आया।

ढपोरसंख ने इसकी ओर कुछ ध्यान न देकर कहा—मैंने पूछा, कोई नई बात तो नहीं हुई वहाँ ?

ज़ोशी ने हँसकर कहा—भाग्य में तो नई-नई विपत्तियाँ लिखी हैं। उनसे कैसे जान बच सकती है। अबकी भी एक नई विपत्ति सिर पड़ी। यह कहिए, आपका आशीर्वाद था, जान बच गई, नहीं तो अब तक जमुनाजी में बहा चला जाता होता। एक दिन जमुना किनारे सैर करने चला गया। वहाँ तैराकी का मैच था। बहुत से आदमी तमाशा देखने आये हुए थे। मैं भी एक जगह खड़ा होकर देखने लगा। मुझसे थोड़ी दूर पर एक और महाशय एक युवती के साथ खड़े थे। मैंने बातचीत की, तो मालूम हुआ, मेरी ही बिरादरी के हैं। यह भी मालूम हुआ, मेरे पिता और चाचा, दोनों ही से उनका परिचय है। मुझसे स्नेह की बातें करने लगे—तुम्हें इस तरह ठोकरें खाते तो बहुत दिन हो गये; क्यों नहीं चले जाते, अपने माँ-बाप के पास। माना कि उनका लोक-व्यवहार तुम्हें पसन्द नहीं; लेकिन माता-पिता का पुत्र पर कुछ-न-कुछ अधिकार तो होता है। तुम्हारी माताजी को कितना दुःख हो रहा होगा।

सहसा एक युवक किसी तरफ से आ निकला और वृद्ध महाशय तथा युवती को देखकर बोला—आपको शर्म नहीं आती कि आप अपनी युवती कन्या को इस तरह मेले में लिये खड़े हैं।

वृद्ध महाशय का मुँह जरा-सा निकल आया और युवती तुरन्त घूँघट निकाल कर पीछे हट गई। मालूम हुआ कि उसका विवाह इसी युवक से ठहरा हुआ है। वृद्ध उदार, सामाजिक विचारों के आदमी थे, परदे के कायल न थे। युवक, वयस में युवक होकर भी खूसट विचारों का आदमी था, परदे का कट्टर पक्षपाती। वृद्ध थोड़ी देर तक तो अपराधी भाव से बातें करते रहे, पर युवक प्रतिक्षण गर्म हो जाता था। आखिर बूढ़े बाबा भी तेज हुए।

युवक ने आँखें निकालकर कहा—मैं ऐसी निर्लज्जा से विवाह करना अपने लिए अपमान की बात समझता हूँ।

वृद्ध ने क्रोध से काँपते हुए स्वर में कहा—और मैं तुम-जैसे लंपट से अपनी कन्या का विवाह करना लज्जा की बात समझता हूँ।

युवक ने क्रोध के आवेश में वृद्ध का हाथ पकड़कर धक्का दिया। बातों से न जीतकर अब वह हाथों से काम लेना चाहता था। वृद्ध धक्का खाकर गिर पड़े। मैंने लपककर उन्हें उठाया और युवक को डाँटा।

वह वृद्ध को छोड़कर मुझसे लिपट गया। मैं कोई कुश्तीबाज तो हूँ नहीं। वह लड़ना जानता था। मुझे उसने बात-की-बात में गिरा दिया और मेरा गला दबाने लगा। कई आदमी जमा हो गये थे। जब तक कुश्ती होती रही, लोग कुश्ती का आनंद उठाते रहे; लेकिन जब देखा मुआमला संगीन हुआ जाता है, तो तुरन्त बीच-बचाव कर दिया। युवक बूढ़े बाबा से जाते-जाते कह गया—तुम अपनी लड़की को वेश्या बनाकर बाजार में घुमाना चाहते हो, तो अच्छी तरह घुमाओ, मुझे अब उससे विवाह नहीं करना है। वृद्ध चुपचाप खड़े थे और युवती रो रही थी। भाई साहब, तब मुझसे न रहा गया। मैंने कहा—महाशय, आप मेरे पिता के तुल्य हैं और मुझे जानते हैं। यदि आप मुझे इस योग्य समझें तो मैं इन देवीजी को अपनी हृदयेश्वरी बनाकर अपने को धन्य समझूँगा। मैं जिस दशा में हूँ, आप देख रहे हैं। संभव है, मेरा जीवन इसी तरह कट जाय, लेकिन श्रद्धा, सेवा और प्रम यदि जीवन को सुखी बना सकता है, तो मुझे विश्वास है कि देवी के प्रति मुझमें इन भावों की कमी न रहेगी। बूढ़े बाबा ने गद्‌गद होकर मुझे कंठ से लगा लिया। उसी क्षण मुझे अपने घर ले गये, भोजन कराया और विवाह का सगुन कर दिया। मैं एक बार युवती से मिलकर उसकी सम्मति लेना चाहता था। बूढ़े बाबा ने मुझे इसकी सहर्ष अनुमति दे दी। युवती से मिलकर मुझे ज्ञात हुआ, कि वह रमणियों में रत्न है। मैं उसकी बुद्धिमत्ता देखकर चकित हो गया। मैंने अपने मन में जिस सुन्दरी की कल्पना की थी, वह उससे हूबहू मिलती है, मुझे उतनी ही देर में विश्वास हो गया कि मेरा जीवन उसके साथ सुखी होगा। मुझे अब आशीर्वाद दीजिए। युवती आप की पत्रिका बराबर पढ़ती है और आपसे उसे बड़ी श्रद्धा है। जून में विवाह होना निश्चित हुआ है। मैंने स्पष्ट कह दिया—मैं जेवर-कपड़े नाममात्र को लाऊँगा, न कोई धूमधाम ही करूँगा। वृद्ध ने कहा—मैं तो स्वयं यही कहनेवाला था। मैं कोई तैयारी नहीं चाहता, न धूमधाम की मुझे इच्छा है। जब मैंने आपका नाम लिया, कि वह मेरे बड़े के तुल्य हैं तो वह बहुत प्रसन्न हुए। आपके लेखों को वह बड़े आदर से देखते हैं।

मैंने कुछ खिन्न होकर कहा—यह तो सब कुछ है; लेकिन इस समय तुम्हें विवाह करने की सामर्थ्य भी नहीं है। और कुछ न हो, तो पचास रुपये की बँधी हुई आमदनी तो होनी ही चाहिए।

जोशी ने कहा—भाई साहब, मेरा उद्धार विवाह ही से होगा। मेरे घर से निकलने का कारण भी विवाह ही था और घर वापस जाने का कारण भी विवाह ही होगा। जिस समय प्रमिला हाथ बाँधे हुए जाकर पिताजी के चरणों पर गिर पड़ेगी, उनका पाषाण- हृदय भी पिघल जायगा। समझेंगे विवाह तो हो ही चुका, अब वधू पर क्यों जुल्म किया जाय। जब उसे आश्रय मिल जायगा, तो मुझे झक मारकर बुलायेंगे। मैं इसी जिद पर घर से निकला था, कि अपना विवाह अपने इच्छानुसार बिना कुछ लिये-दिये करूँगा और वह मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई जा रही है। प्रमिला इतनी चतुर है, कि वह मेरे घरवालों को चुटकियों में मना लेगी। मैंने तखमीना लगा लिया है। कुल तीन सौ रुपये खर्च होंगे और यही तीन-चार सौ रुपये मुझे ससुराल से मिलेंगे। मैंने सोचा है, प्रमिला को पहले यहीं लाऊँगा। यहीं से वह मेरे घर पत्र लिखेगी और आप देखिएगा तीसरे ही दिन चचा साहब गहनों की पिटारी लिये आ पहुँचेंगे। विवाह हो जाने पर वह कुछ नहीं कर सकते। इसलिए मैंने विवाह की खबर नहीं दी।

मैंने कहा—लेकिन मेरे पास तो अभी कुछ भी नहीं है भाई। मैं तीन सौ रुपये कहाँ से लाऊँगा ?

जोशी ने कहा—तीन सौ रुपये नकद थोड़े ही लगेंगे। कोई सौ रुपये के कपड़े लगेंगे। सौ रुपये की दो-एक सोहाग की चीजें बनवा लूँगा और सौ रुपये राहखर्च समझ लीजिए। उनका मकान काशीपुर में है। वहीं से विवाह करेंगे। यह बंगाली सोनार जो सामने है, आपके कहने से एक सप्ताह के वादे पर जो-जो चीजें माँगूँगा, दे देगा। बजाज भी आपके कहने से दे देगा। नकद मुझे कुल सौ रुपये की जरूरत पड़ेगी और ज्यों ही उधर से लौटा त्यों ही दे दूँगा। बारात में आप और माथुर के सिवा कोई तीसरा आदमी न होगा। आपको मैं कष्ट नहीं देना चाहता, लेकिन जिस तरह अब तक आपने मुझे भाई समझकर सहायता दी है, उसी तरह एक बार और दीजिए। मुझे विश्वास था, कि आप इस शुभ कार्य में आपत्ति न करेंगे। इसलिए मैंने वचन दे दिया। अब तो आपको यह डोंगी पार लगानी ही पड़ेगी।

देवीजी बोलीं—मैं कहती थी, उसे एक पैसा मत दो। कह दो हम तुम्हारी शादी-विवाह के झंझट में नहीं पड़ते।

ढपोरसंख ने कहा—हाँ, तुमने अबकी बार जरूर समझाया, लेकिन मैं क्या करता। शादी का मुआमला; उस पर उसने मुझे भी घसीट लिया था। अपनी इज्जत का कुछ खयाल तो करना ही पड़ता है।

देवीजी ने मेरा लिहाज किया और चुप हो गईं।

अब मैं उस वृत्तान्त को न बढ़ाऊँगा। सारांश यह है, कि जोशी ने ढपोरसंख के मत्थे सौ रुपये के कपड़े और सौ रुपये से कुछ ऊपर के गहनों का बोझ लादा। बेचारे ने एक मित्र से सौ रुपये उधार लेकर उसके सफर खर्च को दिया। खुद ब्याह में शरीक हुए। ब्याह में खासी धूमधाम रही। कन्या के पिता ने मेहमानों का आदर-सत्कार खूब किया। उन्हें

जल्दी थी; इसलिए वह खुद तो दूसरे ही दिन चले आये; पर माथुर जोशी के साथ विवाह के अन्त तक रहा। ढपोरसंख को आशा थी, कि जोशी ससुराल के रुपये पाते ही माथुर के हाथों भेज देगा, या खुद लेता आयेगा। मगर माथुर भी दूसरे दिन आ गये, खाली हाथ और यह खबर लाये, कि जोशी को ससुराल में कुछ भी हाथ नहीं लगा। माथुर से उन्हें अब मालूम हुआ कि लड़की से जमुना-तट पर मिलने की बात सर्वथा निर्मूल थी। इस लड़की से जोशी बहुत दिनों तक पत्र-व्यवहार करता रहा था। फिर तो ढपोरसंख के कान खड़े हो गये। माथुर से पूछा—अच्छा ! यह बिल्कुल कल्पना थी उसकी ?

माथुर—जी हाँ।

ढपोरसंख—अच्छा, तुम्हारी भांजी के विवाह का क्या हुआ ?

माथुर—अभी तो कुछ नहीं हुआ।

ढपोरसंख—मगर जोशी ने कई महीने तक तुम्हारी सहायता तो खूब की ?

माथुर—मेरी सहायता वह क्या करता। हाँ, दोनों जून भोजन भले कर लेता था।

ढपोरसंख—तुम्हारे नाम पर उसने मुझसे जो रुपये लिये थे, वह तो तुम्हें दिये होंगे ?

माथुर—क्या मेरे नाम पर भी कुछ रुपये लिये थे ?

ढपोरसंख—हाँ भाई, तुम्हारे घर का किराया देने के लिए तो ले गया था।

माथुर—सरासर बेईमानी। मुझे उसने एक पैसा भी नहीं दिया, उलटे और एक महाजन से मेरे नाम पर सौ रुपयों का स्टाम्प लिखकर रुपये लिये। मैं क्या जानता था, कि धोखा दे रहा है।

संयोग से उसी वक्त आगरे से वह सज्जन आ गये जिनके पास जोशी कुछ दिनों रहा था। उन्होंने माथुर को देखकर पूछा—अच्छा ! आप अभी जिंदा हैं। जोशी ने तो कहा था, माथुर मर गया है।

माथुर ने हँसकर कहा—मेरे तो सिर में दर्द भी नहीं हुआ।

ढपोरसंख ने पूछा—अच्छा, आपके मुरादाबादी बरतन तो पहुँच गये ?

आगरा-निवासी मित्र ने कुतूहल से पूछा—कैसे मुरादाबादी बरतन ?

'वही जो आपने जोशी की मारफत मँगवाये थे ?'

'मैंने कोई चीज उसकी मारफत नहीं मँगवाई। मुझे जरूरत होती तो आपको सीधा न लिखता !'

माथुर ने हँसकर कहा—तो यह रुपये भी उसने हजम कर लिए।

आगरा-निवासी मित्र बोले—मुझसे भी तो तुम्हारी मृत्यु के बहाने सौ रुपये लाया था। यह तो एक ही जालिया निकला। उफ ! कितना बड़ा चकमा दिया है इसने ! जिन्दगी में यह पहला मौका है, कि मैं यों बेवकूफ बना। बच्चा को पा जाऊँ तो तीन साल को भेजवाऊँ। कहाँ हैं आजकल ?

माथुर ने कहा—अभी तो ससुराल में है।

ढपोरसंख का वृत्तान्त समाप्त हो गया। जोशी ने उन्हीं को नहीं, माथुर जैसे और गरीब, आगरा-निवासी सज्जन-जैसे घाघ को भी उलटे छुरे से मूड़ा और अगर भंडा न फूट गया होता तो अभी न-जाने कितने दिनों तक मूड़ता। उसकी इन मौलिक चालों पर मैं भी मुग्ध हो गया। बेशक ! अपने फन का उस्ताद है, छटा हुआ गुर्गा।

देवीजी बोलीं—सुन ली आपने सारी कथा ?

मैंने डरते-डरते कहा—हाँ, सुन तो ली।

'अच्छा, तो अब आपका क्या फैसला है ? (पति की ओर इशारा करके) इन्होंने घोंघापन किया या नहीं ? जिस आदमी को एक-एक पैसे के लिए दूसरों का मुँह ताकना पड़े, वह घर के पाँच-छः सौ रुपये इस तरह उड़ा दे, इसे आप उसकी सज्जनता कहेंगे या बेवकूफी ? अगर इन्होंने यह समझकर रुपये दिये होते, कि पानी में फेंक रहा हूँ, तो मुझे कोई आपत्ति न थी; मगर यह बराबर इस धोखे में रहे और मुझे भी उसी धोखे में डालते रहे, कि वह घर का मालदार है और मेरे सब रुपये ही न लौटा देगा; बल्कि और भी कितने सलूक करेगा। जिसका बाप दो हजार रुपये महीना पाता हो, जिसके चाचा की आमदनी एक हजार मासिक हो और एक लाख की जायदाद घर में हो, वह और कुछ नहीं तो यूरोप की सैर तो एक बार करा ही सकता था। मैं अगर कभी मना भी करती, तो आप बिगड़ जाते और उदारता का उपदेश देने लगते थे। यह मैं स्वीकार करती हूँ, कि शुरू में मैं भी धोखे में आ गई थी, मगर पीछे से मुझे उसका सन्देह होने लगा था। और विवाह के समय तो मैंने जोर देकर कह दिया था, कि अब एक पाई भी न दूँगी। पूछिए, झूठ कहती हूँ, या सच ? फिर अगर मुझे धोखा हुआ; तो मैं घर में रहनेवाली स्त्री हूँ। मेरा धोखे में आ जाना क्षम्य है, मगर यह जो लेखक और विचारक और उपदेशक बनते हैं, यह क्यों धोखे में आये और जब मैं इन्हें समझाती थी; तो यह क्यों अपने को बुद्धिमत्ता का अवतार समझकर मेरी बातों की उपेक्षा करते थे ? देखिए; रू-रिआयत न कीजिएगा, नहीं मैं बुरी तरह खबर लूँगी। मैं निष्पक्ष न्याय चाहती हूँ।'

ढपोरसंख ने दर्दनाक आँखों से मेरी तरफ देखा; जो मानो—भिक्षा माँग रही थीं। उसी के साथ देवीजी की आग्रह, आदेश और गर्व से भरी आँखें ताक रही थीं। एक को अपनी हार का विश्वास था, दूसरी को अपनी जीत का। एक रिआयत चाहती थी, दूसरी सच्चा न्याय।

मैंने कृत्रिम गंभीरता से अपना निर्णय सुनाया—मेरे मित्र ने कुछ भावुकता से अवश्य काम लिया है, पर उनकी सज्जनता निर्विवाद है।

ढपोरसंख उछल पड़े और मेरे गले लिपट गये। देवीजी ने सगर्व नेत्रों से देखकर कहा—यह तो मैं जानती ही थी, कि चोर-चोर मौसेरे भाई होंगे। तुम दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। अब तक रुपये में एक पाई मर्दों का विश्वास था। आज तुमने वह भी उठा दिया। आज निश्चय हुआ, कि पुरुष छली, कपटी, विश्वासघाती और स्वार्थी होते हैं। मैं इस निर्णय को नहीं मानती। मुफ्त में ईमान बिगाड़ना इसी को कहते हैं। भला मेरा पक्ष लेते, तो अच्छा भोजन मिलता, उनका पक्ष लेकर आपको सड़े सिगरेटों के सिवा और क्या हाथ लगेगा। खैर, हाँड़ी गई, कुत्ते की जात तो पहचानी गई।

उस दिन से दो-तीन बार देवीजी से भेंट हो चुकी है और वही फटकार सुननी पड़ी है। वह न क्षमा चाहती हैं; न क्षमा कर सकती हैं।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। हिन्दी मासिक 'हंस', जनवरी, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', मार्च 1931 में प्रकाशित।]

आखिरी हीला

यद्यपि मेरी स्मरण-शक्ति पृथ्वी के इतिहास की सारी स्मरणीय तारीखें भूल गयीं, वह तारीखें जिन्हें रातों को जागकर और मस्तिष्क को खपाकर याद किया था; मगर विवाह की तिथि समतल भूमि में एक स्तम्भ की भाँति अटल है। न भूलता हूँ, न भूल सकता हूँ। उससे पहले और पीछे की सारी घटनाएँ दिल में मिट गयीं, उनका निशान तक बाकी नहीं। वह सारी अनेकता एक एकता में मिश्रित हो गयी है और वह मेरे विवाह की तिथि हैं। चाहता हूँ, उसे भूल जाऊँ; मगर जिस तिथि का नित्य-प्रति सुमिरन किया जाता हो, वह कैसे भूल जाय; नित्य-प्रति सुमिरन क्यों करता हूँ, यह उस विपत्ति-मारे से पूछिए जिसे भगवद्-भजन के सिवा जीवन के उद्धार का कोई आधार न रहा हो।

लेकिन क्या मैं वैवाहिक जीवन से इसलिए भागता हूँ कि मुझमें रसिकता का अभाव है और मैं कोमल वर्ग की मोहनी शक्ति से निर्लिप्त हूँ और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ। क्या मैं नहीं चाहता हूँ कि जब मैं सैर करने निकलूँ, तो हृदयेश्वरी भी मेरे साथ विराजमान हों। विलास-वस्तुओं की दुकानों पर उनके साथ जाकर थोड़ी देर के लिए रसमय आग्रह का आनन्द उठाऊँ। मैं उस गर्व और आनन्द और महत्व का अनुभव कर सकता हूँ, जो मेरे अन्य भाइयों की भाँति मेरे हृदय में भी आन्दोलित होगा, लेकिन मेरे भाग्य में वह खुशियाँ—वह रंगरेलियाँ नहीं हैं।

क्योंकि चित्र का दूसरा पक्ष भी तो देखता हूँ। एक पक्ष जितना ही मोहक और आकर्षक है, दूसरा उतना ही हृदय विदारक और भयंकर। शाम हुई और आप बदनसीब बच्चे को गोद में लिये तेल या ईधन की दुकान पर खड़े हैं। अंधेरा हुआ और आप आटे की पोटली बगल में दबाये गलियों में यों कदम बढ़ाये हुए निकल जाते हैं, मानों चोरी की है। सूर्य निकला और बालकों को गोद में लिये होमियोपैथ डाक्टर की दुकान में टूटी कुर्सी पर आरूढ़ हैं। किसी खोंचेवाले की रसीली आवाज सुनकर बालक ने गगन-भेदी विलाप आरम्भ किया और आपके प्राण सूखे। ऐसे बापों को भी देखा है, जो दफ्तर से लौटते हुए पैसे दो पैसे की मूँगफली या रेवड़ियाँ लेकर लज्जास्पद शीघ्रता के साथ मुँह में रखते चले जाते हैं कि घर पहुँचते-पहुँचते बालकों के आक्रमण से पहले ही यह पदार्थ समाप्त हो जाय। कितना निराशाजनक होता है यह दृश्य, जब देखता हूँ कि मेले में बच्चा किसी खिलौने की दुकान के सामने मचल रहा है और पिता महोदय ऋषियों की-सी विद्वता के साथ उनकी क्षणभंगुरता का राग अलाप रहे हैं।

चित्र का पहला रुख तो मेरे लिए एक मदन-स्वप्न है, दूसरा रुख एक भयंकर सत्य। इस सत्य के सामने मेरी सारी रसिकता अन्तर्धान हो जाती है। मेरी सारी मौलिकता, सारी रचनाशीलता इसी दाम्पत्य के फन्दों से बचने में प्रयुक्त हुई है। जानता हूँ कि जाल के नीचे जाना है, मगर जाल जितना ही रंगीन और ग्राहक है, दाना उतना ही घातक और विषैला। इस जाल में पक्षियों को तड़पते और फड़फड़ाते देखता हूँ और फिर भी जाल पर जा बैठता हूँ।

लेकिन इधर कुछ दिनों से श्रीमतीजी ने अविश्रान्त रूप से आग्रह करना शुरू किया है कि मुझे बुला लो। पहले जब छुट्टियों में जाता था, तो मेरा केवल 'कहाँ चलोगी' कह देना

उनकी चित्त-शान्ति के लिए काफी होता था, फिर मैंने 'झंझट है' कहकर उन्हें तसल्ली देनी शुरू की। इसके बाद गृहस्थ-जीवन की असुविधाओं से डराया; किन्तु अब कुछ दिनों से उनका अविश्वास बढ़ता जाता है। अब मैंने छुट्टियों में भी उनके आग्रह के भय से घर जाना बन्द कर दिया है कि कहीं वह मेरे साथ न चल खड़ी हों और नाना प्रकार के बहानों से उन्हें आशंकित करता रहता हूँ।

मेरा पहला बहाना पत्र-सम्पादकों के जीवन की कहानियों के विषय में था। कभी बारह बजे रात को सोना नसीब होता है, कभी रतजगा करना पड़ जाता है। सारे दिन गली-गली ठोकरें खानी पड़ती हैं। इस पर तुर्रा यह है कि हमेशा सिर पर नंगी तलवार लटकती रहती है। न जाने कब गिरफ्तार हो जाऊँ, कब जमानत तलब हो जाय। खुफिया पुलिस की एक फौज हमेशा पीछे पड़ी रहती है। कभी बाजार में निकल जाता हूँ, तो लोग उंगलियाँ उठाकर कहते हैं—वह जा रहा है अखबार वाला। मानों संसार में जितनी दैविक, आधिदैविक, भौतिक, आधिभौतिक बाधाएँ हैं, उनका उत्तरदायी मैं हूँ। मानो मेरा मस्तिष्क झूठी खबरें गढ़ने का कार्यालय है। सारा दिन अफसरों की सलामी और पुलिस की खुशामद में गुजर जाता है। कान्सटेबिलों को देखा और प्राण-पीड़ा होने लगी। मेरी तो यह हालत है और हुक्काम हैं कि मेरी सूरत से काँपते हैं। एक दिन दुर्भाग्यवश एक अंगरेज के बँगले की तरफ जा निकला। साहब ने पूछा—क्या काम करता है ? मैंने गर्व के साथ कहा—पत्र का सम्पादक हूँ। साहब तुरन्त अन्दर घुस गये और कपाट मुंद्रित कर लिये। फिर मैंने मेम साहब और बा॰ा लोगों को खिड़कियों से झाँकते देखा; मानो कोई भयंकर जन्तु है। एकबार रेलगाड़ी में सफर कर रहा था, साथ और भी कई मित्र थे, इसलिए अपने पद का सम्मान निभाने के लिए सेकेण्ड क्लास का टिकट लेना पड़ा। गाड़ी में बैठा तो एक साहब ने मेरे सूटकेस पर मेरा नाम और पेशा देखते ही तुरन्त अपना सन्दूक खोला और रिवाल्वर निकालकर मेरे सामने गोलियाँ भरीं, जिससे मुझे मालूम हो जाय कि वह मुझसे सचेत है। मैंने देवीजी से अपनी आर्थिक कठिनाइयों की कभी चर्चा नहीं की, क्योंकि मैं रमणियों के सामने यह जिक्र करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता हूँ। हालाँकि मैं वह चर्चा करता, तो देवीजी की दया का अवश्य पात्र बन जाता।

मुझे विश्वास था कि श्रीमतीजी फिर यहाँ आने का नाम न लेंगी। मगर यह मेरा भ्रम था। उनके आग्रह पूर्ववत् होते रहे।

तब मैंने दूसरा बहाना सोचा। शहर बीमारियों के अड्डे हैं। हर एक खाने-पीने की चीज में विष की शंका। दूध में विष, घी में विष, फलों में विष, शाक-भाजी में विष, हवा में विष, पानी में विष। यह मनुष्य का जीवन पानी की लकीर है ! जिसे आज देखो वह कल गायब। अच्छे-खासे बैठे हैं, हृदय की गति बन्द हो गयी। घर से सैर को निकले, मोटर से टकराकर सुरपुर की राह ली। अगर कोई शाम को सांगोपांग घर आ जाय, तो उसे भाग्यवान् समझो। मच्छर की आवाज कान में आई, दिल बैठा, मक्खी नजर आई और हाथ-पाँव फूले। चूहा बिल से निकला और जान निकल गयी। जिधर देखिए यमराज की अमलदारी है। अगर मोटर और ट्राम से बचकर आ गये। तब मच्छर और मक्खी के शिकार हुए। बस यही समझ लो कि मौत हरदम सिर पर खेलती रहती है। रात-भर मच्छरों से लड़ता हूँ, दिन-भर मक्खियों से। नन्हीं-सी जान को किन-किन दुश्मनों से बचाऊँ। साँस भी मुश्किल से लेता

हूँ कि कहीं क्षय के कीटाणु फेफड़े में न पहुँच जायँ।

देवीजी को फिर भी मुझ पर विश्वास न आया। दूसरे पत्र में भी वही आरजू थी। लिखा था, तुम्हारे पत्र ने एक और चिन्ता बढ़ा दी अब। अब प्रतिदिन पत्र लिखा करना, मैं एक न सुनूँगी और सीधे चली आऊँगी। मैंने दिल में कहा—चलो, सस्ते छूटे।

मगर यह खटका लगा हुआ था कि न जाने कब उन्हें शहर आने की सनक सवार हो जाय। इसलिए मैंने तीसरा बहाना सोच निकाला। यहाँ मित्रों के मारे नाकोदम रहता है, आकर बैठ जाते हैं तो उठने का नाम भी नहीं लेते मानो अपना घर बेच आये हैं। अगर घर से टल जाओ, तो आकर बेधड़क कमरे में बैठ जाते हैं और नौकर से जो चीज चाहते हैं, उधार मँगवा लेते हैं। देना मुझे पड़ता है। कुछ लोग तो हफ्तों पड़े रहते हैं, टलने का नाम ही नहीं लेते। रोज उनकी सेवा-सत्कार करो, रात को थिएटर या सिनेमा दिखाओ। फिर सबेरे तक ताश या शतरंज खेलो। अधिकांश तो ऐसे हैं, जो शराब के बगैर जिन्दा ही नहीं रह सकते। अक्सर तो बीमार होकर आते हैं। बल्कि अधिकतर बीमार ही आते हैं। अब रोज डाक्टर को बुलाओ, सेवा-सुश्रूषा करो, रात भर सिरहाने बैठे पंखा झलते रहो, उस पर यह शिकायत भी सुनते रहो कि यहाँ कोई हमारी बात भी नहीं पूछता ! मेरी घड़ी महीनों से मेरी कलाई पर नहीं आई। दोस्तों के साथ जलसों में शरीक हो रही है। अचकन है, वह एक साहब के पास है, कोट और दूसरे साहब ले गये। जूते और एक बाबू ले उड़े। मैं वही रद्दी कोट और वह चमरौधा जूता पहनकर दफ्तर जाता हूँ। मित्रवृन्द ताड़ते रहते हैं कि कौन-सी नई वस्तु लाया। कोई चीज लाता हूँ, तो मारे डर के सन्दूक में बन्द कर देता हूँ। किसी की निगाह पड़ जाय, तो कहीं-न-कहीं न्योता खाने की धुन सवार हो जाय। पहली तारीख को वेतन मिलता है, तो चोरों की तरह दबे पाँव घर आता हूँ कि कहीं कोई महाशय रुपयों की प्रतीक्षा में द्वार पर धरना जमाये न बैठे हों ! मालूम नहीं, उनकी सारी आवश्यकताएँ पहली ही तारीख की बाट क्यों जोहती रहती हैं। एक दिन वेतन लेकर बारह बजे रात को लौटा; मगर देखा तो आधे दर्जन मित्र उस वक्त भी डटे हुए थे। माथा ठोंक लिया। कितने ही बहाने करूँ, उनके सामने एक नहीं चलती। मैं कहता हूँ, घर से पत्र आया है, माताजी बहुत बीमार हैं। जवाब देते हैं, अजी बूढ़े इतनी जल्द नहीं मरते। मरना ही होता, तो इतने दिन जीवित क्यों रहतीं। देख लेना दो-चार दिन में अच्छी हो जायँगी, और अगर मर भी जायँ, तो वृद्धजनों की मृत्यु का शोक ही क्या, वह तो और खुशी की बात है। कहता हूँ, लगान का बड़ा तकाजा हो रहा है ! जवाब मिलता है, आजकल लगान तो बन्द हो ही रहा है। लगान देने की जरूरत ही नहीं रही। अगर किसी संस्कार का बहाना करता हूँ, तो फरमाते हैं, तुम भी विचित्र जीव हो। इन कुप्रथाओं की लकीर पीटना तुम्हारी शान के खिलाफ़ है। अगर तुम उनका मूलोच्छेदन करोगे, तो वह लोग क्या आकाश से आवेंगे ? ग़रज यह किसी तरह प्राण नहीं बचते।

मैंने समझा था कि हमारा यह बहाना निशाने पर बैठेगा। ऐसे घर में कौन रमणी रहना पसन्द करेगी; जो मित्रों पर ही अर्पित हो गया हो ! किन्तु मुझे फिर भ्रम हुआ। उत्तर में फिर वही आग्रह था।

तब मैंने चौथा हीला सोचा। यहाँ के मकान हैं कि चिड़ियों के पिंजरे, न हवा, न रोशनी। वह दुर्गन्ध उड़ती है कि खोपड़ी भन्ना जाती है। कितने ही के तो इसी दुर्गन्ध के

कारण विसूचिका, टाइफाइड, यक्ष्मा आदि रोग हो जाते हैं। वर्षा हुई और मकान टपकने लगा। पानी चाहे घण्टे भर बरसे, मकान रात भर बरसता रहता है। ऐसे बहुत कम घर होंगे, जिनमें प्रेत-बाधाएँ न हों, लोगों को डरावने स्वप्न दिखाई देते हैं। कितनों ही को उन्माद रोग हो जाता है। आज नये घर में आये, कल ही उसे बदलने की चिन्ता सवार हो गई। कोई ठेला असबाब से लदा हुआ जा रहा है, कोई आ रहा है। जिधर देखिये ठेले-ही-ठेले नजर आते हैं। चोरियाँ तो इस कसरत से होती हैं कि अगर कोई रात कुशल से बीत जाय, तो देवताओं की मनौती की जाती है। आधी रात हुई और चोर-चोर ! लेना-लेना ! की आवाजें आने लगीं। लोग दरवाज़ों पर मोटे-मोटे लकड़ी के फट्टे या जूते या चिमटे लिये खड़े रहते हैं; फिर भी चोर इतने कुशल हैं कि आँख बचाकर अन्दर पहुँच ही जाते हैं। एक मेरे बेतकल्लुफ दोस्त हैं, स्नेहवश मेरे पास बहुत देर तक बैठे रहते हैं। रात अंधेरे में बर्तन खड़के, तो मैंने बिजली की बत्ती जलाई! देखा, तो वही महाशय बर्तन समेट रहे हैं। मेरे आवाज सुनकर जोर से कहकहा मारा और बोले, मैं तुम्हें चकमा देना चाहता था। मैंने दिल में समझ लिया, अगर निकल जाते, तो बर्तन आपके थे, जब जाग पड़ा तो चकमा हो गया। घर में आये कैसे थे, यह रहस्य है। कदाचित् रात को ताश खेलकर चले, तो बाहर जाने के बदले नीचे अंधेरी कोठरी में छिप गये। एक दिन एक महाशय मुझसे पत्र लिखाने आये, कमरे में कलम दवात न थी। ऊपर के कमरे से लाने गया। लौट कर आया तो देखा आप गायब हैं और उनके साथ फाउन्टेनपेन भी गायब है। सारांश यह कि नगर-जीवन नरक-जीवन से कम दुःखदायी नहीं है।

मगर पत्नीजी पर नागरिक जीवन का ऐसा जादू चढ़ा हुआ है कि मेरा कोई बहाना उन पर असर नहीं करता। इस पत्र के जवाब में उन्होंने लिखा—मुझसे बहाना करते हो, मैं हरगिज़ न मानूँगी, तुम आकर मुझे ले जाओ।

आखिर मुझे पाँचवाँ बहाना करना पड़ा। यह खोंचेवालों के विषय में था।

अभी बिस्तर से उठने की नौबत नहीं आई कि कानों में विचित्र आवाजें आने लगीं। बाबुल के मीनार के निर्माण के साथ ऐसी निरर्थक आवाजें न आई होंगी। वह खोंचेवालों की शब्द-क्रीड़ा है। उचित तो यह था, यह खोंचेवाले ढोल-मँजीरे के साथ लोगों को अपनी चीज़ों की ओर आकर्षित करते; मगर इन औंधी अक्लवालों को यह कहाँ सूझती है। ऐसे पैशाचिक स्वर निकालते हैं कि सुनने वालों के रोएँ खड़े हो जाते हैं। बच्चे माँ की गोद में चिमट जाते हैं। मैं भी रात को अक्सर चौंक पड़ता हूँ। एक दिन तो मेरे पड़ोस में एक दुर्घटना हो गई। ग्यारह बजे थे। कोई महिला बच्चे को दूध पिलाने उठी थी। एकाएक जो किसी खोंचेवाले की भयंकर ध्वनि कानों में आई, तो चीख मारकर चिल्ला उठी और फिर बेहोश हो गई। महीनों की दवा-दारू के बाद अच्छी हुई। और अब रात को कानों में रुई डालकर सोती है। ऐसे कृत्य नगरों में नित्य होते रहते हैं। मेरे ही मित्रों में कई ऐसे हैं जो अपनी स्त्रियों को घर से लाये; मगर बेचारियाँ दूसरे ही दिन इन आवाज़ों से भयभीत होकर लौट गयीं।

श्रीमतीजी ने इसके जवाब में लिखा—तुम समझते हो, मैं खोंचेवालों की आवाज़ों से डर जाऊँगी। यहाँ गीदड़ों का हौवाना और उल्लुओं का चीखना सुनकर तो डरती नहीं, खोंचेवालों से क्या डरूँगी !

अन्त में मुझे एक ऐसा बहाना सूझा, जिसकी सफलता का मुझे पूरा विश्वास था। यद्यपि इसमें कुछ बदनामी थी; लेकिन बदनामी से मैं इतना नहीं डरता, जितना उस विपत्ति से।

फिर मैंने लिखा—शहर शरीफ़ज़ादियों के रहने की जगह नहीं। यहाँ की महरियाँ इतनी कटुभाषिणी हैं कि बातों का जवाब गालियों से देती हैं, और उनके बनाव-सँवार का क्या पूछना। भले घर की स्त्रियाँ तो उनके ठाट-देखकर ही शर्म से पानी-पानी हो जाती हैं। सिर से पाँव तक सोने से लदी हुई, सामने से निकल जाती हैं, तो ऐसा मालूम होता है कि सुगंधि की लपट निकल गयी। गृहणियाँ ये ठाट कहाँ से लायें ? उन्हें तो और भी सैकड़ों चिन्ताएँ हैं। इन महरियों को तो बनाव-सिंगार के सिवा दूसरा काम ही नहीं। नित्य नयी सज-धज, नित्य नयी अदा और चंचल तो इस ग़जब की हैं; मानों अंगों में रक्त की जगह पारा भर दिया हो। उनका चमकना और मटकना और मुस्कराना देखकर गृहणियाँ लज्जित हो जाती हैं और ऐसी दीदा-दिलेर हैं कि जबरदस्ती घरों में घुस पड़ती हैं। जिधर देखो इनका मेला-सा लगा हुआ है। इनके मारे भले आदमियों का घर में बैठना मुश्किल है ! कोई ख़त लिखाने के बहाने से आ जाती है; कोई ख़त पढ़ाने के बहाने से। असली बात तो यह है कि गृहदेवियों का रंग फीका करने में इन्हें आनन्द आता है। इसलिए शरीफ़ज़ादियाँ बहुत कम शहरों में आती हैं।

मालूम नहीं इस पत्र में मुझसे क्या गलती हुई कि तीसरे दिन पत्नी जी एक बूढ़े कहार के साथ मेरा पता पूछती हुई अपने तीनों बच्चों को लिये एक असाध्य रोग की भाँति आ डटीं।

मैंने बदहवास होकर पूछा—क्यों कुशल तो है ?

पत्नीजी ने चादर उतारते हुए कहा—घर में कोई चुड़ैल बैठी तो नहीं है ? यहाँ किसी ने कदम रखा तो नाक काट लूँगी। हाँ, जो तुम्हारी शह न हो !

अच्छा, तो अब रहस्य खुला। मैंने सिर पीट लिया। क्या जानता था, अपना तमाचा अपने ही मुँह पर पड़ेगा।

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू मासिक पत्रिका 'चंदन', फरवरी, 1931 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'आखिरी हीला' शीर्षक से ही हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अप्रैल, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

जेल

मृदुला मैजिस्ट्रेट के इजलास से ज़नाने जेल में वापस आयी, तो उसका मुख प्रसन्न था। बरी हो जाने की गुलाबी आशा उसके कपोलों पर चमक रही थी। उसे देखते ही राजनैतिक कैदियों के एक गिरोह ने घेर लिया और पूछने लगीं, कितने दिन की हुई?

मृदुला ने विजय-गर्व से कहा—मैंने तो साफ-साफ कह दिया, मैंने धरना नहीं दिया। यों आप जबर्दस्त हैं, जो फैसला चाहें, करें। न मैंने किसी को रोका, न पकड़ा, न धक्का

दिया, न किसी से आरजू-मिन्नत ही की। कोई गाहक मेरे सामने आया ही नहीं। हाँ, मैं दूकान पर खड़ी ज़रूर थी। वहाँ कई वालंटियर गिरफ्तार हो गये थे। जनता जमा हो गयी थी। मैं भी खड़ी हो गयी। बस, थानेदार ने आ कर मुझे पकड़ लिया।

क्षमादेवी कुछ कानून जानती थीं। बोलीं—मैजिस्ट्रेट पुलिस के बयान पर फैसला करेगा। मैं ऐसे कितने ही मुकदमे देख चुकी।

मृदुला ने प्रतिवाद किया—पुलिसवालों को मैंने ऐसा रगड़ा कि वह भी याद करेंगे। मैं मुकदमे की कार्रवाई में भाग न लेना चाहती थी; लेकिन जब मैंने उनके गवाहों को सरासर झूठ बोलते देखा, तो मुझसे ज़ब्त न हो सका। मैंने उनसे जिरह करनी शुरू की। मैंने भी इतने दिनों घास नहीं खोदी है। थोड़ा-सा कानून जानती हूँ। पुलिस ने समझा होगा, यह कुछ बोलेगी तो है नहीं, हम जो बयान चाहेंगे, देंगे। जब मैंने जिरह शुरू की, तो सब बगलें झाँकने लगे। मैंने तीनों गवाहों को झूठा साबित कर दिया। उस समय जाने कैसे मुझे चोट सूझती गयी। मैजिस्ट्रेट ने थानेदार को दो-तीन बार फटकार भी बतायी। वह मेरे प्रश्नों का ऊल-जलूल जवाब देता था, तो मैजिस्ट्रेट बोल उठता था—वह जो कुछ पूछती हैं, उसका जवाब दो, फजूल की बातें क्यों करते हो। तब मियाँ जी का मुँह जरा-सा निकल आता था। मैंने सबों का मुँह बंद कर दिया। अभी साहब ने फैसला तो नहीं सुनाया, लेकिन मुझे विश्वास है, बरी हो जाऊँगी। मैं जेल से नहीं डरती; लेकिन बेवकूफ भी नहीं बनना चाहती। वहाँ हमारे मंत्री जी भी थे और बहुत-सी बहनें थीं। सब यही कहती थीं, तुम छूट जाओगी।

महिलाएँ उसे द्वेष-भरी आँखों से देखती हुई चली गयीं। उनमें किसी की मियाद साल-भर की थी, किसी की छह मास की। उन्होंने अदालत के सामने जबान ही न खोली थी। उनकी नीति में यह अधर्म से कम न था। मृदुला पुलिस से जिरह करके उनकी नजरों में गिर गयी थी। सजा हो जाने पर उसका व्यवहार क्षम्य हो सकता था; लेकिन बरी हो जाने में तो उसका कुछ प्रायश्चित्त ही न था।

दूर जा कर एक देवी ने कहा—इस तरह तो हम लोग भी छूट जाते। हमें तो यह दिखाना है, नौकरशाही से हमें न्याय की कोई आशा ही नहीं।

दूसरी महिला बोली—यह तो क्षमा माँग लेने के बराबर है। गयी तो थीं धरना देने, नहीं दूकान पर जाने का काम ही क्या था। वालंटियर गिरफ्तार हुए थे आपकी बला से। आप वहाँ क्यों गयीं; मगर अब कहती हैं, मैं धरना देने गयी ही नहीं। यह क्षमा माँगना हुआ, साफ !

तीसरी देवी मुँह बनाकर बोलीं—जेल में रहने के लिए बड़ा कलेजा चाहिए। उस वक्त तो वाह-वाह लूटने के लिए आ गयीं, अब रोना आ रहा है। ऐसी स्त्रियों को तो राष्ट्रीय कामों के नगीच ही न आना चाहिए। आंदोलन को बदनाम करने से क्या फायदा।

केवल क्षमा देवी अब तक मृदुला के पास चिंता में डूबी खड़ी थीं। इन्होंने एक उद्दंड व्याख्यान देने के अपराध में साल-भर की सजा पायी थी। दूसरे जिले से एक महीना हुआ यहाँ आयी थीं। अभी मियाद पूरी होने में आठ महीने बाकी थे। यहाँ की पंद्रह कैदिनों में किसी से उनका दिल न मिलता था। जरा-जरा सी बातों के लिए उनका आपस में झगड़ना, बनाव-सिंगार की चीजों के लिये लेडीवार्डरों की खुशामदें करना, घरवालों से मिलने के लिए

व्यग्रता दिखलाना उसे पसंद न था। वही कुत्सा और कनफुसकियाँ जेल के भीतर भी थीं। वह आत्माभिमान, जो उसके विचार में एक पोलिटिकल कैदी में होना चाहिए, किसी में भी न था। क्षमा उन सबों से दूर रहती थी। उसके जाति-प्रेम का वारापार न था। इस रंग में पगी हुई थी; पर अन्य देवियाँ उसे घमंडिन समझती थीं और उपेक्षा का जवाब उपेक्षा से देती थीं। मृदुला को हिरासत में आये आठ दिन हुए थे। इतने ही दिनों में क्षमा को उससे विशेष स्नेह हो गया था। मृदुला में वह संकीर्णता और ईर्ष्या न थी, न निन्दा करने की आदत, न शृंगार की धुन, न भद्दी दिल्लगी का शौक। उसके हृदय में करुणा थी, सेवा का भाव था, देश का अनुराग था। क्षमा ने सोचा था, इसके साथ छह महीने आनन्द से कट जायँगे; लेकिन दुर्भाग्य यहाँ भी उसके पीछे पड़ा हुआ था। कल मृदुला यहाँ से चली जायगी। वह फिर अकेली हो जायगी। यहाँ ऐसा कौन है ? जिसके साथ घड़ी भर बैठ कर अपना दुःख-दर्द सुनायेगी, देश-चर्चा करेगी; यहाँ तो सभी के मिजाज आसमान पर हैं।

मृदुला ने पूछा—तुम्हें तो अभी आठ महीने बाकी हैं, बहन !

क्षमा ने हसरत के साथ कहा—किसी-न-किसी तरह कट ही जायँगे बहन ! पर तुम्हारी याद बराबर सताती रहेगी। इसी एक सप्ताह के अन्दर तुमने मुझ पर न जाने क्या जादू कर दिया। जब स तुम आयी हो, मुझे जेल जेल न मालूम होता था। कभी-कभी मिलती रहना।

मृदुला ने देखा, क्षमा की आँखें डबडबायी हुई थीं। ढाढस देती हुई बोली—जरूर मिलूँगी दीदी ! मुझसे तो खुद न रहा जायगा। भान को भी लाऊँगी। कहूँगी—चल, तेरी मौसी आयी है, तुझे बुला रही है। दौड़ा हुआ आयेगा। अब तुमसे आज कहती हूँ बहन, मुझे यहाँ किसी की याद थी, तो भान की। बेचारा रोया करता होगा। मुझे देख कर रूठ जायगा। तुम कहाँ चली गयीं ? मुझे छोड़ कर क्यों चली गयीं ? जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलता, तुम मेरे घर से निकल जाओ। बड़ा शैतान है बहन ! छन-भर निचला नहीं बैठता, सबेरे उठते ही गाता है—'झन्ना ऊँता लये अमाला' 'छोलाज का मन्दिर देल में है।' जब एक झंडी कन्धे पर रख कर कहता है—'ताली-छलाब पीनी हलाम है' तो देखते ही बनता है। बाप को तो कहता है—तुम गुलाम हो। वह एक अँगरेजी कम्पनी में हैं, बार-बार इस्तीफा देने का विचार करके रह जाते हैं। लेकिन गुजर-बसर के लिए कोई उद्यम करना ही पड़ेगा। कैसे छोड़ें। वह तो छोड़ बैठे होते। तुमसे सच कहती हूँ, गुलामी से उन्हें घृणा है, लेकिन मैं ही समझाती रहती हूँ। बेचारे कैसे दफ़्तर जाते होंगे, कैसे भान को सँभालते होंगे। सास जी के पास तो रहता ही नहीं। वह बेचारी बूढ़ी, उसके साथ कहाँ-कहाँ दौड़ें ! चाहती हैं कि मेरी गोद में दबक कर बैठा रहे। और भान को गोद से चिढ़ है। अम्माँ मुझ पर बहुत बिगड़ेंगी, बस यही डर लग रहा है। मुझे देखने एक बार भी नहीं आयीं। कल अदालत में बाबू जी मुझसे कहते थे, तुमसे बहुत खफा हैं। तीन दिन तक तो दाना-पानी छोड़े रहीं। इस छोकरी ने कुल-मरजाद डुबा दी, खानदान में दाग लगा दिया, कलमुँही कुलच्छनी न जाने क्या-क्या बकती रहीं। मैं उनकी बातों को बुरा नहीं मानती ! पुराने जमाने की हैं। उन्हें कोई चाहे कि आ कर हम लोगों में मिल जायँ, तो यह उसका अन्याय है। चल कर मनाना पड़ेगा। बड़ी मिन्नतों से मानेंगी। कल ही कथा होगी, देख लेना। ब्राह्मण खायेंगे। बिरादरी जमा होगी। जेल का प्रायश्चित्त तो करना ही पड़ेगा। तुम हमारे घर दो-चार दिन रह कर तब जाना

बहन ! मैं आ कर तुम्हें ले जाऊँगी।

क्षमा आनन्द के इन प्रसंगों से वंचित है। वह विधवा है, अकेली है। जलियानवाला बाग में उसका सर्वस्व लुट चुका है, पति और पुत्र दोनों ही की आहुति जा चुकी है। अब कोई ऐसा नहीं, जिसे वह अपना कह सके। अभी उसका हृदय इतना विशाल नहीं हुआ है कि प्राणी-मात्र को अपना समझ सके। इन दस बरसों से उसका व्यथित हृदय जाति सेवा में धैर्य और शांति खोज रहा है। जिन कारणों ने उसके बसे हुए घर को उजाड़ दिया, उसकी गोद सूनी कर दी, उन कारणों का अन्त करने—उनको मिटाने—में वह जी-जान से लगी हुई थी। बड़े-से-बड़े बलिदान तो वह पहले ही कर चुकी थी। अब अपने हृदय के सिवाय उसके पास होम करने को और क्या रह गया था ? औरों के लिए जाति-सेवा सभ्यता का एक संस्कार हो, या यशोपार्जन का एक साधन; क्षमा के लिए तो यह तपस्या थी और वह नारीत्व की सारी शक्ति और श्रद्धा के साथ उसकी साधना में लगी हुई थी। लेकिन आकाश में उड़नेवाले पक्षी को भी तो अपने बसेरे की याद आती ही है। क्षमा के लिए वह आश्रय कहाँ था ? यही वह अवसर थे, जब क्षमा भी आत्म-समवेदना के लिए आकुल हो जाती थी। यहाँ मृदुला को पाकर वह अपने को धन्य मान रही थी; पर यह छाँह भी इतनी जल्दी हट गयी !

क्षमा ने व्यथित कंठ से कहा—यहाँ से जा कर भूल जाओगी मृदुला। तुम्हारे लिए तो यह रेलगाड़ी का परिचय है और मेरे लिए तुम्हारे वादे उसी परिचय के वादे हैं। कभी भेंट हो जायगी तो या तो पहचानोगी ही नहीं, या जरा मुस्करा कर नमस्ते करती हुई अपनी राह चली जाओगी। यही दुनिया का दस्तूर है। अपने रोने से छुट्टी ही नहीं मिलती, दूसरों के लिए कोई क्योंकर रोये। तुम्हारे लिए तो मैं कुछ नहीं थी, मेरे लिए तुम बहुत अच्छी थीं। मगर अपने प्रियजनों में बैठ कर कभी-कभी इस अभागिनी को जरूर याद कर लिया करना। भिखारी के लिए चुटंकी भर आटा ही बहुत है।

दूसरे दिन मैजिस्ट्रेट ने फैसला सुना दिया। मृदुला बरी हो गयी। संध्या समय वह सब बहनों से गले मिल कर, रो कर-रुला कर चली गयी, मानो मैके से विदा हुई हो।

2

तीन महीने बीत गये; पर मृदुला एक बार भी न आयी। और कैदियों से मिलनेवाले आते रहते थे किसी-किसी के घर से खाने-पीने की चीजें और सौगातें आ जाती थीं; लेकिन क्षमा का पूछनेवाला कौन बैठा था ? हर महीने के अन्तिम रविवार को प्रातःकाल से ही मृदुला की बाट जोहने लगती। जब मुलाकात का समय निकल जाता, तो जरा देर रोकर मन को समझा लेती—जमाने का यही दस्तूर है !

एक दिन शाम को क्षमा संध्या करके उठी थी कि देखा, मृदुला सामने चली आ रही है। न वह रूप-रंग है, न वह कांति। दौड़ कर उसके गले से लिपट गयी और रोती हुई बोली—यह तेरी क्या दशा है मृदुला! सूरत ही बदल गयी। बीमार है क्या ?

मृदुला की आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुई थी। बोली—बीमार तो नहीं हूँ बहन; विपत्ति से बिंधी हुई हूँ। तुम मुझे खूब कोस रही होगी। उन सारी निठुराइयों का प्रायश्चित्त करने आयी हूँ। और सब चिंताओं से मुक्त हो कर आयी हूँ।

क्षमा काँप उठी। अंतस्तल की गहराइयों से एक लहर-सी उठती हुई जान पड़ी, जिसमें उनका अपना अतीत जीवन टूटी हुई नौकाओं की भाँति उतराता हुआ दिखायी दिया। रुँधे हुए कंठ से बोली–कुशल तो है बहन, इतनी जल्दी तुम यहाँ फिर क्यों आ गयीं? अभी तो तीन महीने भी नहीं हुए।

मृदुला मुस्करायी; पर उसकी मुस्कराहट में रुदन छिपा हुआ था। फिर बोली–अब सब कुशल है बहन, सदा के लिए कुशल है। कोई चिन्ता ही नहीं रही। अब यहाँ जीवन-पर्यन्त रहने को तैयार हूँ। तुम्हारे स्नेह और कृपा का मूल्य अब समझ रही हूँ।

उसने एक ठंडी साँस ली और सजल नेत्रों से बोली–तुम्हें बाहर की खबरें क्या मिली होंगी ! परसों शहर में गोलियाँ चलीं। देहातों में आजकल संगीनों की नोक पर लगान वसूल किया जा रहा है। किसानों के पास रुपये हैं नहीं, दें तो कहाँ से दें। अनाज का भाव दिन-दिन गिरता जाता है। पौने दो रुपये में मन भर गेहूँ आता है। मेरी उम्र ही अभी क्या है, अम्माँ जी भी कहती हैं कि अनाज इतना सस्ता कभी नहीं था। खेत की उपज से बीजों तक के दाम नहीं आते। मेहनत और सिंचाई इसके ऊपर। गरीब किसान लगान कहाँ से दें। उस पर सरकार का हुक्म है कि लगान कड़ाई के साथ वसूल किया जाय। किसान इस पर भी राजी हैं कि हमारी जमा-जथा नीलाम कर लो, घर कुर्क कर लो, अपनी जमीन ले लो; मगर यहाँ तो अधिकारियों को अपनी कारगुजारी दिखाने की फिक्र पड़ी हुई है। वह चाहे प्रजा को चक्की में पीस ही क्यों न डालें; सरकार उन्हें मना न करेगी। मैंने सुना है कि वह उलटे और सह देती है। सरकार को तो अपने कर से मतलब है। प्रजा मरे या जिये, उससे कोई प्रयोजन नहीं। अकसर जमींदारों ने तो लगान वसूल करने से इन्कार कर दिया है। अब पुलिस उनकी मदद पर भेजी गयी है। भैरोगंज का सारा इलाका लूटा जा रहा है। मरता क्या न करता, किसान भी घर-बार छोड़-छोड़ कर भागे जा रहे हैं। एक किसान के घर में घुस कर कई कांस्टेबलों ने उसे पीटना शुरू किया। बेचारा बैठा मार खाता रहा। उसकी स्त्री से न रहा गया। शामत की मारी कांस्टेबलों को कुवचन कहने लगी। बस, एक सिपाही ने उसे नंगा कर दिया। क्या कहूँ बहन, कहते शर्म आती है। हमारे ही भाई इतनी निर्दयता करें, इससे ज्यादा दुःख और लज्जा की और क्या बात होगी ? किसान से जब्त न हुआ। कभी पेट भर गरीबों को खाने को तो मिलता नहीं, इस पर इतना कठोर परिश्रम, न देह में बल है, न दिल में हिम्मत; पर मनुष्य का हृदय ही तो ठहरा। बेचारा बेदम पड़ा हुआ था। स्त्री का चिल्लाना सुन कर उठ बैठा और उस दुष्ट सिपाही को धक्का दे कर जमीन पर गिरा दिया। फिर दोनों में कुश्तम-कुश्ती होने लगी। एक किसान किसी पुलिस के आदमी के साथ इतनी बेअदबी करे, इसे भला वह कहीं बरदाश्त कर सकती है। सब कांस्टेबलों ने गरीब को इतना मारा, कि वह मर गया।

क्षमा ने कहा–गाँव के और लोग तमाशा देखते रहे होंगे।

मृदुला तीव्र कंठ से बोली–बहन, प्रजा की तो हर तरह से मरन है। अगर दस-बीस आदमी जमा हो जाते, तो पुलिस कहती, हमसे लड़ने आये हैं। डंडे चलाने शुरू करती और अगर कोई आदमी क्रोध में आकर एकाध कंकड़ फेंक देता, तो गोलियाँ चला देती। दस-बीस आदमी भुन जाते। इसलिए लोग जमा नहीं होते, लेकिन जब वह किसान मर गया तो गाँववालों को तैश आ गया। लाठियाँ ले-लेकर दौड़ पड़े और कांस्टेबलों को घेर

लिया। सम्भव है दो-चार आदमियों ने लाठियाँ चलायी भी हों। कांस्टेबलों ने गोलियाँ चलानी शुरू कीं। दो-तीन सिपाहियों को हल्की चोटें आयीं। उसके बदले में बारह आदमियों की जानें ले ली गयीं और कितनों ही के अंग-भंग कर दिये गये। इन छोटे-छोटे आदमियों को इसीलिए तो इतने अधिकार दिये गये हैं कि उनका दुरुपयोग करें। आधे गाँव का कत्लेआम करके पुलिस विजय के नगाड़े बजाती हुई लौट गयी। गाँववालों की फरियाद कौन सुनता। गरीब हैं, बेकस हैं, अपंग हैं, जितने आदमियों को चाहो, मार डालो। अदालत और हाकिमों से तो उन्होंने न्याय की आशा करना ही छोड़ दिया। आखिर सरकार ही ने तो कांस्टेबलों को यह मुहिम सर करने के लिए भेजा था। वह किसानों की फरियाद क्यों सुनने लगी। मगर आदमी का दिल फरियाद किये बगैर नहीं मानता। गाँववालों ने अपने शहर के भाइयों से फरियाद करने का निश्चय किया। जनता और कुछ नहीं कर सकती, हमदर्दी तो करती है। दुःख-कथा सुन कर आँसू तो बहाती है। दुखियारों को हमदर्दी के आँसू भी कम प्यारे नहीं होते। अगर आस-पास के गाँवों के लोग जमा होकर उनके साथ रो लेते तो गरीबों के आँसू पुँछ जाते; किन्तु पुलिस ने उस गाँव की नाकेबंदी कर रखी थी, चारों सीमाओं पर पहरे बिठा दिये गये थे। यह घाव पर नमक था। मारते भी हो और रोने भी नहीं देते। आखिर लोगों ने लाशें उठायीं और शहरवालों को अपनी विपत्ति की कथा सुनाने चले। इस हंगामे की खबर पहले ही शहर में पहुँच गयी थी। इन लाशों को देखकर जनता उत्तेजित हो गयी और जब पुलिस के अध्यक्ष ने इन लाशों का जुलूस निकालने की अनुमति न दी, तो लोग और भी झल्लाये। बहुत बड़ा जमाव हो गया। मेरे बाबू जी भी इसी दल में थे। और मैंने उन्हें रोका—मत जाओ, आज का रंग अच्छा नहीं है। तो कहने लगे—मैं किसी से लड़ने थोड़े ही जाता हूँ। जब सरकार की आज्ञा के विरुद्ध जनाजा चला तो पचास हजार आदमी साथ थे। उधर पाँच सौ सशस्त्र पुलिस रास्ता रोके खड़ी थी—सवार, प्यादे, सारजंट—पूरी फौज थी। हम निहत्थों के सामने इन नामर्दो को तलवारें चमकाते और झंकारते शर्म भी नहीं आती ! जब बार-बार पुलिस की धमकियों पर भी लोग न भागे, तो गोलियाँ चलाने का हुक्म हो गया। घंटे-भर बराबर फैर होते रहे, पूरे घंटे-भर तक ! कितने मरे, कितने घायल हुए, कौन जानता है। मेरा मकान सड़क पर है। मैं छज्जे पर खड़ी, दोनों हाथों से दिल थामे, काँपती थी। पहली बाढ़ चलते ही भगदड़ पड़ गयी। हज़ारों आदमी बदहवास भागे चले आ रहे थे। बहन ! वह दृश्य अभी तक आँखों के सामने है। कितना भीषण, कितना रोमांचकारी और कितना लज्जास्पद। ऐसा जान पड़ता था कि लोगों के प्राण आँखों से निकले पड़ते हैं, मगर इन भागनेवालों के पीछे वीर व्रत-धारियों का दल था, जो पर्वत की भाँति अटल खड़ा छातियों पर गोलियाँ खा रहा था और पीछे हटने का नाम न लेता था। बन्दूकों की आवाज़ें साफ सुनायी देती थीं और हरेक धायँ-धायँ के बाद हज़ारों गलों से जय की गहरी गगन-भेदी ध्वनि निकलती थी। उस ध्वनि में कितनी उत्तेजना थी ! कितना आकर्षण ! कितना उन्माद ! बस यही जी चाहता था कि जा कर गोलियों के सामने खड़ी हो जाऊँ और हँसते-हँसते मर जाऊँ। उस समय ऐसा भान होता था कि मर जाना कोई खेल है। अम्माँ जी कमरे में भान को लिये मुझे बार-बार भीतर बुला रही थीं। जब मैं न गयी, तो वह भान को लिये हुए छज्जे पर आ गयीं। उसी वक्त दस-बारह आदमी एक स्ट्रेचर पर हृदयेश की लाश लिये हुए द्वार पर आये। अम्माँ की उन

पर नजर पड़ी। समझ गयीं। मुझे तो सकता-सा हो गया। अम्माँ ने जाकर एक बार बेटे को देखा, उसे छाती से लगाया, चूमा, आशीर्वाद दिया और उन्मत्त दशा में चौरास्ते की तरफ चलीं, जहाँ से अब भी धायं और जय की ध्वनि बारी-बारी से आ रही थी। मैं हतबुद्धि-सी खड़ी कभी स्वामी की लाश को देखती थी, कभी अम्माँ को। न कुछ बोली, न जगह से हिली, न रोयी, न घबरायी। मुझ में जैसे स्पंदन ही न था। चेतना जैसे लुप्त हो गयी हो।

क्षमा—तो क्या अम्माँ भी गोलियों के स्थान पर पहुँच गयीं ?

मृदुला—हाँ, यही तो विचित्रता है बहन ! बंदूक की आवाजें सुन कर कानों पर हाथ रख लेती थीं, खून देख कर मूर्छित हो जाती थीं। वहीं अम्माँ वीर सत्याग्रहियों की सफों को चीरती हुई सामने खड़ी हो गयीं और एक ही क्षण में उनकी लाश भी जमीन पर गिर पड़ी। उनके गिरते ही योद्धाओं का धैर्य टूट गया, व्रत का बंधन टूट गया। सभी के सिरों पर खून-सा सवार हो गया। निहत्थे थे, अशक्त थे, पर हर एक अपने अंदर अपार-शक्ति का अनुभव कर रहा था। पुलिस पर धावा कर दिया। सिपाहियों ने इस बाढ़ को आते देखा तो होश जाते रहे। जानें लेकर भागे, मगर भागते हुए भी गोलियाँ चलाते जाते थे। भान छज्जे पर खड़ा था, न जाने किधर से एक गोली आ कर उसकी छाती में लगी। मेरा लाल वहीं पर गिर पड़ा। साँस तक न ली; मगर मेरी आँखों में अब भी आँसू न थे। मैंने प्यारे भान को गोद में उठा लिया। उसकी छाती से खून के फौव्वारे निकल रहे थे। मैंने उसे जो दूध पिलाया था, उसे वह खून से अदा कर रहा था। उसके खून से तर कपड़े पहने हुए मुझे वह नशा हो रहा था जो शायद उसके विवाह में गुलाल से तर रेशमी कपड़े पहन कर भी न होता। लड़कपन, जवानी और मौत ! तीनों मंजिलें एक ही हिचकी में तमाम हो गयीं। मैंने बेटे को बाप की गोद में लेटा दिया। इतने में कई स्वयंसेवक अम्माँ जी को भी लाये। मालूम होता था, लेटी हुई मुस्करा रही हैं। मुझे तो रोकती रहती थीं और खुद इस तरह जा कर आग में कूद पड़ीं, मानो वह स्वर्ग का मार्ग हो ! बेटे ही के लिए जीती थीं, बेटे को अकेला कैसे छोड़तीं !

जब नदी के किनारे तीनों लाशें एक ही चिता में रखी गयीं, तब मेरा सकता टूटा, होश आया। एक बार जी में आया चिता में जा बैठूँ, सारा कुनबा एक साथ ईश्वर के दरबार में जा पहुँचे। लेकिन फिर सोचा—तूने अभी ऐसा कौन-सा काम किया है, जिसका इतना ऊँचा पुरस्कार मिले ? बहन ! चिता की लपटों में मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि अम्माँ जी सचमुच भान को गोद में लिये बैठी मुस्करा रही हैं और स्वामी जी खड़े मुझसे कह रहे हैं, तुम जाओ और निश्चिंत होकर काम करो। मुख पर कितना तेज था ! रक्त और अग्नि ही में तो देवता बसते हैं।

मैंने सिर उठा कर देखा। नदी के किनारे न जाने कितनी चिताएँ जल रही थीं। दूर से वह चितावली ऐसी मालूम होती थी, मानो देवता ने भारत का भाग्य गढ़ने के लिए भट्ठियाँ जलायी हों।

जब चिताएँ राख हो गयीं; तो हम लोग लौटे; लकिन उस घर में जाने की हिम्मत न पड़ी। मेरे लिये अब वह घर, घर न था। मेरा घर तो अब यह है, जहाँ बैठी हूँ, या फिर वही चिता। मैंने घर का द्वार भी नहीं खोला। महिला आश्रम में चली गयी। कल की गोलियों में काँग्रेस-कमेटी का सफाया हो गया था। यह संस्था बागी बना डाली गयी थी। उसके दफ्तर पर पुलिस ने छापा मारा और उस पर अपना ताला डाल दिया। महिला आश्रम पर भी

हमला हुआ। उस पर अपना ताला डाल दिया गया। हमने एक वृक्ष की छाँह में अपना नया दफ्तर बनाया और स्वच्छंदता के साथ काम करते रहे। यहाँ दीवारें हमें कैद न कर सकती थीं। हम भी वायु के समान मुक्त थे।

संध्या समय हमने एक जुलूस निकालने का फैसला किया। कल के रक्तपात की स्मृति, हर्ष और मुबारकबाद में जुलूस निकालना आवश्यक था ! लोग कहते हैं, जुलूस निकालने से क्या होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि हम जीवित हैं, अटल हैं, और मैदान से हटे नहीं हैं। हमें अपने हार न माननेवाले आत्माभिमान का प्रमाण देना था। हमें यह दिखाना था कि हम गोलियों और अत्याचार से भयभीत होकर अपने लक्ष्य से हटनेवाले नहीं और हम उस व्यवस्था का अंत करके रहेंगे जिसका आधार स्वार्थपरता और खून पर है। उधर पुलिस ने भी जुलूस को रोक कर अपनी शक्ति और विजय का प्रमाण देना आवश्यक समझा। शायद जनता को धोखा हो गया हो कि कल की दुर्घटना ने नौकरशाही का नैतिक ज्ञान जाग्रत कर दिया है। इस धोखे को दूर करना उसने अपना कर्त्तव्य समझा। वह यह दिखा देना चाहती थी कि हम तुम्हारे ऊपर शासन करने आये हैं और शासन करेंगे। तुम्हारी खुशी या नाराजी की हमें परवाह नहीं है। जुलूस निकालने की मनाही हो गयी। जनता को चेतावनी दे दी गयी कि खबरदार जुलूस में न आना, नहीं दुर्गति होगी। इसका जनता ने वह जवाब दिया, जिसने अधिकारियों की आँखें खोल दी होंगी। संध्या समय पचास हजार आदमी जमा हो गये। आज का नेतृत्व मुझे सौंपा गया था। मैं अपने हृदय में एक विचित्र बल और उत्साह का अनुभव कर रही थी। एक अबला स्त्री जिसे संसार का कुछ ज्ञान नहीं, जिसने कभी घर से बाहर पाँव नहीं निकाला, आज अपने प्यारों के उत्सर्ग की बदौलत उस महान् पद पर पहुँच गयी थी, जो बड़े-बड़े अफसरों को भी, बड़े-से-बड़े महाराजा को भी प्राप्त नहीं—मैं इस समय जनता के हृदय पर राज कर रही थी। पुलिस अधिकारियों की इसीलिए गुलामी करती है कि उसे वेतन मिलता है। पेट की गुलामी उससे सब कुछ करवा लेती है। महाराजा का हुक्म लोग इसीलिए मानते हैं कि उससे उपकार की आशा या हानि का भय होता है। यह अपार जन-समूह क्या मुझसे किसी फायदे की आशा रखता था, उसे मुझसे किसी हानि का भय था ? कदापि नहीं। फिर भी वह कड़े से कड़े हुक्म को मानने के लिए तैयार था। इसीलिए कि जनता मेरे बलिदानों का आदर करती थी, इसीलिए कि उनके दिलों में स्वाधीनता की जो तड़प थी, गुलामी के जंजीरों को तोड़ देने की जो बेचैनी थी मैं उस तड़प और बेचैनी की सजीव मूर्ति समझी जा रही थी। निश्चित समय पर जुलूस ने प्रस्थान किया। उसी वक्त पुलिस ने मेरी गिरफ्तारी का वारंट दिखाया। वारंट देखते ही तुम्हारी याद आयी। पहले तुम्हें मेरी जरूरत थी। अब मुझे तुम्हारी जरूरत है। उस वक्त तुम मेरी हमदर्दी की भूखी थीं। अब मैं सहानुभूति की भिक्षा माँग रही हूँ। मगर मुझमें अब लेशमात्र भी दुर्बलता नहीं है। मैं चिंताओं से मुक्त हूँ। मैजिस्ट्रेट जो कठोर से कठोर दंड प्रदान करे उसका स्वागत करूँगी। अब मैं पुलिस के किसी आक्षेप या असत्य आरोपण का प्रतिवाद न करूँगी; क्योंकि मैं जानती हूँ, मैं जेल के बाहर रह कर जो कुछ कर सकती हूँ, जेल के अंदर रह कर उससे कहीं ज्यादा कर सकती हूँ। जेल के बाहर भूलों की सम्भावना है, बहकने का भय है, समझौते का प्रलोभन है, स्पर्धा की चिंता है, जेल सम्मान और भक्ति की एक रेखा है, जिसके भीतर शैतान कदम नहीं रख

सकता। मैदान में जलता हुआ अलाव वायु में अपनी उष्णता को खो देता है; लेकिन इंजिन में बन्द हो कर वही आग संचालक-शक्ति का अखंड भंडार बन जाती है।

अन्य देवियाँ भी आ पहुँचीं और मृदुला सबसे गले मिलने लगी। फिर 'भारत माता की जय' ध्वनि जेल की दीवारों को चीरती हुई आकाश में जा पहुँची।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', फरवरी, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-7 में संकलित। 'आशियां बरबाद' शीर्षक से उर्दू पत्रिका 'चंदन', मई, 1931 में प्रकाशित। उर्दू कहानी संग्रह 'जादे राह' में संकलित।]

लांछन-2

मुंशी श्यामकिशोर के द्वार पर मुन्नू मेहतर ने झाड़ू लगायी, गुसलखाना धो-धो कर साफ किया और तब द्वार पर आ कर गृहिणी से बोला—माँ जी, देख लीजिए, सब साफ कर दिया। आज कुछ खाने को मिल जाय, सरकार।

देवीरानी ने द्वार पर आकर कहा—अभी तो तुम्हें महीना पाये दस दिन भी नहीं हुए। फिर इतनी जल्द माँगने लगे ?

मुन्नू—क्या करूँ, माँ जी, खर्च नहीं चलता। अकेला आदमी, घर देखूँ कि काम करूँ ?

देवी—तो ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?

मुन्नू—रुपये माँगते हैं, सरकार ! यहाँ खाने से ही नहीं बचता, थैली कहाँ से लाऊँ ?

देवी—अभी तो तुम जवान हो, कब तक अकेले बैठे रहोगे ?

मुन्नू—हुजूर की इतनी निगाह है, तो कहीं न कहीं ठीक ही हो जायगी; सरकार कुछ मदद करेंगी न ?

देवी—हाँ-हाँ, तुम ठीक-ठाक करो; मुझसे जो कुछ हो सकेगा, मैं दे दूँगी।

मुन्नू—सरकार का मिजाज बड़ा अच्छा है। हुजूर इतना खयाल करती हैं। दूसरे घरों में तो मालकिनें बात भी नहीं पूछतीं। सरकार को अल्लाह ने जैसी सकल-सूरत दी है, वैसा दिल भी दिया है। अल्लाह जानता है, हुजूर को देख कर भूख-प्यास जाती रहती है। बड़े-बड़े घर की औरतें देखी हैं, मुदा आपके तलुओं की बराबरी भी नहीं कर सकतीं।

देवी—चल झूठे ! मैं ऐसी कौन खूबसूरत हूँ।

मुन्नू—अब सरकार से क्या कहूँ। बड़ी-बड़ी खत्रानियों को देखता हूँ; मगर गोरेपन के सिवा और कोई बात नहीं। उनमें यह नमक कहाँ, सरकार !

देवी—एक रुपये में तुम्हारा काम चल जायगा ?

मुन्नू—भला सरकार; दो रुपये तो दे दें।

देवी—अच्छा, यह लो और जाओ।

मुन्नू—जाता हूँ, सरकार ! आप नाराज न हों, तो एक बात पूछूँ ?

देवी—क्या पूछते हो, पूछो ? मगर जल्दी, मुझे चूल्हा जलाना है।

मुन्नू—तो सरकार जायँ; फिर कभी कहूँगा।

देवी—नहीं-नहीं; कहो, क्या बात है ? अभी कुछ ऐसी जल्दी नहीं है।

मुन्नू—दालमंडी में सरकार के कोई रहते हैं क्या ?

देवी—नहीं, यहाँ तो कोई नातेदार नहीं है।

मुन्नू—तो कोई दोस्त होंगे। सरकार को अक्सर एक कोठे पर से उतरते देखता हूँ।

देवी—दालमंडी तो रंडियों का मुहल्ला है ?

मुन्नू—हाँ सरकार, रंडियाँ बहुत हैं यहाँ; लेकिन सरकार तो सीधे-सादे आदमी मालूम होते हैं। यहाँ रात को देर से तो नहीं आते ?

देवी—नहीं शाम से पहले ही आ जाते हैं और फिर कहीं नहीं जाते। हाँ, कभी-कभी लाइब्रेरी अलबत्ता जाते हैं।

मुन्नू—बस-बस, यही बात है, हुजूर ? मौका मिले, तो इशारे से समझा दीजिएगा सरकार, कि रात को उधर न जाया करें। आदमी का दिल कितना ही साफ हो, लेकिन देखने वाले तो शक करने लगते हैं।

इतने में ही बाबू श्यामकिशोर आ गये। मुन्नू ने उन्हें सलाम किया, बाल्टी उठायी और चलता हुआ।

श्यामकिशोर ने पूछा—मुन्नू क्या कह रहा था ?

देवी—कुछ नहीं, अपने दुखड़े रो रहा था। खाने को माँगता था। दो रुपये दे दिये हैं। बातचीत बड़े ढंग से करता है।

श्याम.—तुम्हें तो बातें करने का मरज है। और कोई नहीं तो मेहतर ही सही। इस भुतने-से न जाने तुम कैसे बातें करती हो !

देवी—मुझे उसकी सूरत ले कर क्या करना है ? गरीब आदमी है। अपना दुःख सुनाने लगता है, तो कैसे न सुनूँ ?

बाबू साहब ने बेले का गजरा रूमाल से निकाल देवी के गले में डाल दिया; किंतु देवी के मुख पर प्रसन्नता का कोई चिह्न न दिखायी दिया। तिरछी निगाहों देखकर बोलीं—आप आजकल दालमंडी की सैर बहुत किया करते हैं ?

श्याम.—कौन ? मैं ?

देवी—जी हाँ, तुम। मुझसे तो लाइब्रेरी का बहाना करके जाते हो, और वहाँ जलसे होते हैं !

श्याम.—बिलकुल झूठ; सोलहों आने झूठ। तुमसे कौन कहता था ? यही मुन्नू?

देवी—मुन्नू ने मुझसे कुछ नहीं कहा; पर मुझे तुम्हारी टोह मिलती रहती है।

श्याम.—तुम मेरी टोह मत लिया करो। शक करने से आदमी शक्की हो जाता है, और तब बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं। भला, मैं दालमंडी क्यों जाने लगा ? तुमसे बढ़कर दालमंडी में और कौन है ? मैं तो तुम्हारी इन मदभरी आँखों का आशिक हूँ। अगर अप्सरा भी सामने आ जाय, तो भी आँख उठा कर न देखूँ। आज शारदा कहाँ है ?

देवी—नीचे खेलने चली गयी है।

श्याम.—नीचे मत जाने दिया करो। इक्के, मोटरें, बग्घियाँ दौड़ती रहती हैं। न जाने कब क्या हो जाय। आज ही अरदली बाजार में एक वारदात हो गयी। तीन लड़के एक साथ दब बये।

देवी—तीन लड़के !! बड़ा गजब हो गया। किसकी मोटर थी .

श्याम.—इसका अभी तक पता नहीं चला। ईश्वर जानता है, तुम्हें यह गजरा बहुत खिल रहा है !

देवी (मुस्कराकर)—चलो, बातें न बनाओ।

2

तीसरे दिन मुन्नू ने देवी से कहा—सरकार, एक जगह सगाई ठीक हो रही है; देखिए कौल से फिर न जाइएगा। मुझे आपका बड़ा भरोसा है।

देवी—देख ली औरत ? कैसी है ?

मुन्नू—सरकार जैसी तकदीर में है, वैसी है। घर की रोटियाँ तो मिलेंगी, नहीं तो अपने हाथों ठोकना पड़ता था। है क्या कि मिजाज की सीधी है। हमारे जात की औरतें बड़ी चंचल होती हैं, हुजूर ! सैकड़े पीछे एक भी पाक न मिलेगी।

देवी—मेहतर लोग अपनी औरतों को कुछ कहते नहीं।

मुन्नू—क्या कहें, हुजूर ! डरते हैं कि कहीं अपने आसना से चुगली खा कर हमारी नौकरी-चाकरी न छुड़ा दे। मेहतरानियों पर बाबू साहबों की बहुत निगाह रहती है, सरकार !

देवी—(हँसकर) चल झूठे ! बाबू साहबों की औरतें क्या मेहतरानियों से भी गयी-गुजरी होती हैं !

मुन्नू—अब सरकार कुछ न कहलायें, हुजूर को छोड़कर और तो कोई ऐसी बबुआइन नहीं देखता, जिसका कोई बखान करे। बहुत ही छोटा आदमी हूँ, सरकार; पर बबुआइनों की तरह मेरी औरत होती; तो उससे बोलने को जी न चाहता। हुजूर के चेहरे-मोहरे की कोई औरत मैंने तो नहीं देखी।

देवी—चल झूठे, इतनी खुशामद करना किससे सीखा ?

मुन्नू—खुशामद नहीं करता, सरकार; सच्ची बात कहता हूँ। हुजूर एक दिन खिड़की के सामने खड़ी थीं। रजा मियाँ की निगाह आप पर पड़ गयी। जूते की बड़ी दूकान है उनकी। अल्लाह ने जैसे धन दिया है वैसा ही दिल भी। आपको देखते ही आँखें नीचे कर लीं। आज बातों-बातों में हुजूर की सकल-सूरत को सराहने लगे। मैंने कहा—जैसी सूरत है, वैसा सरकार को अल्लाह ने दिल भी दिया है।

देवी—अच्छा, यह लॉबा-सा साँवले रंग का जवान है ?

मुन्नू—हाँ हुजूर; वही। मुझसे कहने लगे कि किसी तरह एक बार फिर उन्हें देख पाता; लेकिन मैंने डाँट कर कहा—खबरदार ! मियाँ, जो मुझसे ऐसी बातें कीं। वहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी।

देवी—तुमने बहुत अच्छा किया। निगोड़े की आँख फूट जाय; जब इधर से जाता है, खिड़की की ओर उसकी निगाह रहती है। कह देना—इधर भूल कर भी न ताके !

मुन्नू—कह दिया है, हुजूर, हुकुम हो तो चलूँ। और तो कुछ साफ नहीं करना है ? सरकार के आने की वेला हो गयी है। मुझे देखेंगे तो कहेंगे—यह क्या बातें कर रहा है।

देवी—ये रोटियाँ लेते जाओ। आज चूल्हे से बच जाओगे।

मून्नू—अल्लाह हुजूर को सलामत रखे ! मेरा तो यही जी चाहता है कि इसी दरवाजे पर पड़ा रहूँ और एक टुकड़ा खा लिया करूँ। सच कहता हूँ, हुजूर को देख कर भूख-प्यास जाती रहती है।

मुन्नू जा ही रहा था कि बाबू श्यामकिशोर ऊपर आ पहुँचे। मुन्नू की पिछली बात उनके कान में पड़ गयी थी। मुन्नू ज्यों ही नीचे गया, बाबू साहब देवी से बोले—मैंने तुमसे कह दिया था कि मुन्नू को मुँह न लगाओ, पर तुमने मेरी बात न मानी। छोटे आदमी एक घर की बात दूसरे घर पहुँचा देते हैं, इन्हें कभी मुँह न लगाना चाहिए। भूख-प्यास बंद होने की क्या बात थी ?

देवी—क्या जानें, भूख-प्यास कैसी ? ऐसी तो कोई बात न थी।

श्याम.—थी क्यों नहीं, मैंने साफ सुना ?

देवी—मुझे तो खयाल नहीं आता। होगी कोई बात। मैं कौन उसकी सब बातें बैठी सुना करती हूँ।

श्याम.—तो क्या यह दीवार से बातें करता है ? देखो, नीचे एक आदमी इस खिड़की की तरफ ताकता चला जाता है। इसी मुहल्ले का मुसलमान का लौंडा है। जूते की दूकान करता है। तुम क्यों इस खिड़की पर खड़ी रहा करती हो ?

देवी—चिक तो पड़ी हुई है।

श्याम.—चिक के पास खड़ी होने से बाहर का आदमी तुम्हें साफ देख सकता है।

देवी—यह मुझे मालूम न था। अब कभी खिड़की खोलूँगी ही नहीं।

श्याम.—हाँ, फायदा क्या ? मुन्नू को अंदर मत आने दिया करो।

देवी—गुसलखाना कौन साफ करेगा ?

श्याम.—खैर आये, मगर उससे बातें न करनी चाहिए। आज एक नया थियेटर आया है। चलो देख आयें। सुना है, इसके एक्टर बहुत अच्छे हैं।

इतने में शारदा नीचे से मिठाई का दोना लिये दौड़ती हुई आयी। देवी ने पूछा—अरी, यह मिठाई किसने दी ?

शारदा—राजा भैया ने तो दी है। कहते थे—तुम को अच्छे-अच्छे खिलौने ला दूँगा।

श्याम.—राजा भैया कौन है ?

शारदा—वही तो हैं, जो अभी इधर से गये हैं ?

श्याम.—वहीं तो नहीं, जो लम्बा-सा साँवले रंग का आदमी है ?

शारदा—हाँ-हाँ, वही-वही। मैं अब उनके घर रोज जाऊँगी।

देवी—क्या तू उसके घर गयी थी ?

शारदा—वही तो गोद में उठाकर ले गये थे।

श्याम.—तू नीचे खेलने मत जाया कर। किसी दिन मोटर के नीचे दब जायगी। देखती नहीं, कितनी मोटरें आती रहती हैं।

शारदा—राजा भैया कहते थे; तुम्हें मोटर पर हवा खिलाने ले चलेंगे।

श्याम.—तुम बैठी-बैठी क्या किया करती हो, जो तुमसे एक लड़की की निगरानी भी नहीं हो सकती ?

देवी—इतनी बड़ी लड़की को संदूक में बंद करके नहीं रखा जा सकता।

श्याम.–तुम जवाब देने में तो बहुत तेज हो, यह मैं जानता हूँ। यह क्यों नहीं कहतीं कि बाते करने से फुरसत नहीं मिलती।

देवी–बातें मैं किससे करती हूँ ? यहाँ तो कोई पड़ोसिन भी नहीं ?

श्याम–मुन्नू तो हई है ?

देवी–(ओठ दबाकर) मुन्नू क्या मेरा कोई सगा है, जिससे बैठी बातें किया करती हूँ? गरीब आदमी है, अपना दुःख रोता है, तो क्या कह दूँ ? मुझसे तो दुत्कारते नहीं बनता।

श्याम.–खैर, खाना बना लो, नौ बजे तमाशा शुरू हो जायगा। सात बज गये हैं।

देवी–तुम जाओ, देख आओ, मैं न जाऊँगी।

श्याम.–तुम्हीं तो महीनों से तमाशे की रट लगाये हुए थीं। अब क्या हो गया? क्या तुमने कसम खा ली है कि यह जो बात कहें; वह कभी न मानूँगी।

देवी–जाने क्यों तुम्हारा ऐसा खयाल है। मैं तो तुम्हारी इच्छा पा कर ही कोई काम करती हूँ। मेरे जाने से कुछ और पैसे खर्च हो जायँगे और रुपये कम पड़ जायँगे तो तुम मेरी जान खाने लगोगे, यही सोच कर मैंने कहा था। अब तुम कहते हो तो चली चलूँगी। तमाशा देखना किसे बुरा लगता है।

3

नौ बजे श्यामकिशोर एक ताँगे पर बैठ कर देवी और शारदा के साथ थियेटर देखने चले। सड़क पर थोड़ी ही दूर गये थे कि पीछे से एक और ताँगा आ पहुँचा। इस पर रजा बैठा हुआ था, और उसके बगल में–हाँ, उसके बगल में–बैठा था मुन्नू मेहतर, जो बाबू साहब के घर में सफाई करता था। देवी ने उन दोनों को देखते ही सिर झुका लिया। उसे आश्चर्य हुआ कि रजा और मुन्नू में इतनी गाढ़ी मित्रता है कि रजा उसे ताँगे पर बैठा कर सैर कराने ले जाता है। शारदा रजा को देखते ही बोल उठी–बाबू जी, देखो, वह राजा भैया आ रहे हैं। (ताली बजा कर) राजा भैया, इधर देख, हम लोग तमाशा देखने जा रहे हैं।

रजा ने मुस्करा दिया; मगर बाबू साहब मारे क्रोध के तिलमिला उठे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि ये दुष्ट केवल मेरा पीछा करने के लिए आ रहे हैं। इन दोनों में जरूर साँठ-गाँठ है। नहीं तो रजा मुन्नू को साथ क्यों लेता ? उनसे पीछा छुड़ाने के लिए उन्होंने ताँगेवाले से कहा–और तेज ले चलो, देर हो रही है। ताँगा तेज हो गया। रजा ने भी अपना ताँगा तेज किया। बाबू साहब ने जब ताँगे को धीमा करने को कहा, तो रजा का ताँगा भी धीमा हो गया। आखिर बाबू साहब ने झुँझला कर कहा–तुम ताँगे को छावनी की ओर ले चलो, हम थियेटर देखने नहीं जायँगे। ताँगेवाले ने उनकी ओर कुतूहल से देखा और ताँगा फेर दिया। रजा का ताँगा भी फिर गया। बाबू साहब को इतना क्रोध आ रहा था कि रजा को ललकारूँ; पर डरते थे कि कहीं झगड़ा हो गया, तो बहुत से आदमी जमा हो जायेंगे और व्यर्थ ही झेंप होगी। लहू का घूँट पी कर रह गये। अपने ही ऊपर झुँझलाने लगे कि नाहक आया। क्या जानता था कि ये दोनों शैतान सिर पर सवार हो जायँगे। मुन्नू को तो कल ही निकाल दूँगा। बारे रजा का ताँगा कुछ दूर चल कर दूसरी तरफ मुड़ गया, और बाबू साहब का क्रोध कुछ शांत हुआ; किंतु अब थियेटर जाने का समय न था। छावनी से घर लौट आये।

देवी ने कोठे पर आ कर कहा—मुफ्त में ताँगेवाले को दो रुपये देने पड़े।

श्यामकिशोर ने उसकी ओर रक्त-शोषक दृष्टि से देख कर कहा—और मुन्नू से बातें करो, और खिड़की पर खड़ी हो-हो कर रजा को छवि दिखाओ। तुम न जाने क्या करने पर तुली हुई हो।

देवी—ऐसी बातें मुँह से निकालते तुम्हें शर्म नहीं आती ? तुम मेरा व्यर्थ ही अपमान करते हो, इसका फल अच्छा न होगा। मैं किसी मर्द को तुम्हारे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझती, उस अभागे मेहतर की क्या हकीकत है ! तुम मुझे इतनी नीच समझते हो ?

श्याम.—नहीं, मैं तुम्हें इतना नीच नहीं समझता; मगर बेसमझ जरूर समझता हूँ। तुम्हें इस बदमाश को कभी मुँह न लगाना चाहिए था। अब तो तुम्हें मालूम हो गया कि वह छटा हुआ शोहदा है; या अब भी कुछ शक है ?

देवी—मैं उसे कल ही निकाल दूँगी।

मुंशी जी लेटे; पर चित्त अशांत था। वह दिन भर दफ्तर में रहते थे। क्या जान सकते थे कि उनके पीछे देवी क्या करती है। वह यह जानते थे कि देवी पतिव्रता है; पर यह भी जानते थे कि अपनी छवि दिखाने का सुंदरियों को मरज होता है। देवी जरूर बन ठन कर खिड़की पर खड़ी होती है, और मुहल्ले के शोहदे उसको देख-देख कर मन में न जाने क्या-क्या कल्पना करते होंगे। इस व्यापार को बंद कराना उन्हें अपने काबू से बाहर मालूम होता था। शोहदे वशीकरण की कला में निपुण होते हैं। ईश्वर न करे, इन बदमाशों की निगाह किसी भले घर की बहू-बेटी पर पड़े ! इनसे पिंड कैसे छुड़ाऊँ ?

बहुत सोचने के बाद अन्त में उन्होंने वह मकान छोड़ देने का निश्चय किया। इसके सिवा उन्हें दूसरा कोई उपाय न सूझा। देवी से बोले—कहो तो यह घर छोड़ दूँ। इन शोहदों के बीच में रहने से आबरू बिगड़ने का भय है। देवी ने आपत्ति के भाव से कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा !

श्याम.—आखिर तुम्हीं कोई उपाय बताओ।

देवी—मैं कौन-सा उपाय बताऊँ, और किस बात का उपाय ? मुझे तो घर छोड़ने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती। एक-दो नहीं, लाख-दो-लाख शोहदे हों, तो क्या। कुत्तों के भूकने के भय से भला कोई अपना मकान छोड़ देता है ?

श्याम.—कभी-कभी कुत्ते काट भी लेते हैं।

देवी ने इसका कोई जवाब न दिया और तर्क करने से पति की दुश्चिंताओं के बढ़ जाने का भय था। यह शक्की तो हैं ही, न जाने उसका क्या आशय समझ बैठें।

तीसरे ही दिन श्याम बाबू ने वह मकान छोड़ दिया।

4

इस नये मकान में आने के एक सप्ताह पीछे एक दिन मुन्नू सिर में पट्टी बाँधे, लाठी टेकता हुआ आया और आवाज दी। देवी उनकी आवाज पहचान गयी, पर उसे दुत्कारा नहीं। जा कर किवाड़ खोल दिये। पुराने घर के समाचार जानने के लिए उसका चित्त लालायित हो रहा था। मुन्नू ने अन्दर आकर कहा—सरकार, जब से आपने वह मकान छोड़ दिया, कसम ले लीजिए जो उधर एक बार भी गया हूँ। उस घर को देख कर रोना आने लगता है। मेरा

भी जी चाहता है कि इसी महल्ले में आऊँ। पागलों की तरह इधर-उधर मारा-मारा फिरा करता हूँ, सरकार, किसी काम में जी नहीं लगता। बस हर घड़ी आप ही की याद आती रहती है। हुजूर जितनी परवरिस करती थीं, उतनी अब कौन करेगा ? यह मकान तो बहुत छोटा है।

देवी—तुम्हारे ही कारन तो वह मकान छोड़ना पड़ा।

मुन्नू—मेरे कारन ! मुझसे कौन-सी खता हुई, सरकार ?

देवी—तुम्हीं तो ताँगे पर रजा के साथ बैठे मेरे पीछे-पीछे आ रहे थे। ऐसे आदमी पर आदमी का शक होता ही है !

मुन्नू—अरे सरकार, उस दिन की बात न पूछिए। रजा मियाँ को एक वकील साहब से मिलने जाना था। वह छावनी में रहते थे। मुझे भी साथ बिठा लिया। उनका साईस कहीं गया हुआ था। मारे लिहाज के आपके ताँगे के आगे न निकलते थे। सरकार उसे शोहदा कहती हैं। उसका-सा भला आदमी महल्ले भर में नहीं है। पाँचों वखत की नमाज पढ़ता है हुजूर, तीसों रोजे रखता है। घर में बीवी-बच्चे सभी मौजूद हैं। क्या मजाल कि किसी पर बद निगाह हो।

देवी—खैर होगा, तुम्हारे सिर में पट्टी क्यों बँधी है ?

मुन्नू—[illegible] न पूछिए, हुजूर। आपकी बुराई करते किसी को देखता हूँ, तो बदन में आग लग जाती है। दरवाजे पर जो हलवाई रहता था, कहने लगा—मेरे कुछ पैसे बाबू जी पर आते हैं। मैंने कहा—वह ऐसे आदमी नहीं हैं कि तुम्हारे पैसे हजम कर जाते बस, हुजूर, इसी बात पर तकरार हो गयी। मैं तो दूकान के नीचे नाली धो रहा था। वह ऊपर से कूद कर आया और मुझे ढकेल दिया। मैं बेखबर खड़ा था, चारों खाने चित सड़क पर गिर पड़ा। चोट तो आयी; मगर मैंने भी दूकान के सामने बचा को इतनी गालियाँ सुनायीं कि याद ही करते होंगे। अब घाव अच्छा हो रहा है, हुजूर।

देवी—राम ! राम ! नाहक लड़ाई लेने गये। सीधी-सी बात तो थी। कह देते—तुम्हारे पैसे आते हैं; तो जा कर माँग लाओ। हैं शहर ही में, दूसरे देश में तो नहीं भाग गये ?

मुन्नू—हुजूर, आपकी बुराई सुन के नहीं रहा जाता, फिर चाहे वह अपने घर लाट ही क्यों न हो, भिड़ पडूँगा। वह महाजन होगा, तो अपने घर का होगा। यहाँ कौन उसका दिया खाते हैं।

देवी—उस घर में अभी कोई आया कि नहीं ?

मुन्नू—कई आदमी देखने आये, हुजूर; मगर जहाँ आप रह चुकी हैं, वहाँ अब दूसरा कौन रह सकता है ? हम लोगों ने उन लोगों को भड़का दिया। रजा मियाँ तो हुजूर, उसी दिन से खाना-पीना छोड़ बैठे हैं। बिटिया को याद कर के रोया करते हैं। हुजूर को हम गरीबों की याद काहे को आती होगी ?

देवी—याद क्यों नहीं आती ? मैं आदमी नहीं हूँ। जानवर तक थान छूटने पर दो-चार दिन चारा नहीं खाते ! यह पैसे लो, कुछ बाजार से ला कर खा लो, भूखे होगे।

मुन्नू—हुजूर की दुआ से खाने की तंगी नहीं है। आदमी का दिल देखा जाता है, हुजूर ! पैसा की कौन बात है। आपका दिया तो खाते ही हैं। हुजूर का मिजाज ऐसा है कि आदमी बिना कौड़ी का गुलाम हो जाता है। तो अब चलूँगा, हुजूर, बाबू जी आते होंगे।

कहेंगे—यह शैतान यहाँ फिर आ पहुँचा।

देवी—अभी उनके आने में बड़ी देर है।

मुन्नू—ओ हो, एक बात तो भूला ही जाता था। रजा मियाँ ने बिटिया के लिए ये खिलौने दिये थे। बातों में ऐसा भूल गया कि इनकी सुध ही न रही। कहाँ है बिटिया ?

देवी—अभी तो मदरसे से नहीं आयी, मगर इतने खिलौने लाने की क्या जरूरत थी ? अरे ! रजा ने तो गजब ही कर दिया। भेजना ही था, तो दो-चार आने के खिलौने भेज देते। अकेली मेम तीन-चार रुपये से कम की न होगी। कुल मिला कर तीस-पैंतीस रुपये से कम के खिलौने नहीं हैं।

मुन्नू—क्या जाने सरकार, मैंने तो कभी खिलौने नहीं खरीदे। तीस-पैंतीस रुपये के होंगे, तो उनके लिए कौन-सी बड़ी बात है ? अकेली दूकान से पचास रुपये रोज की आदमनी है, हुजूर !

देवी—नहीं, इनको लौटा ले जाओ। इतने खिलौने ले कर वह क्या करेगी ? मैं सिर्फ एक मेम रखे लेती हूँ।

मुन्नू—हुजूर, रजा मियाँ को बड़ा रंज होगा। मुझे तो जीता ही न छोड़ेंगे। बड़े ही मुहब्बती आदमी हैं, हुजूर ! बीबी दो-चार दिन के लिए मैके चली जाती है, तो बेचैन हो जाते हैं।

सहसा शारदा पाठशाला से आ गयी और खिलौने देखते ही उन पर टूट पड़ी। देवी ने डाँट कर कहा—क्या करती है, क्या करती है ? मेम ले ले, और सब ले कर क्या करेगी ?

शारदा—मैं तो सब लूँगी। मेम को मोटर पर बैठा कर दौड़ाऊँगी। कुत्ता पीछे-पीछे दौड़ेगा। इन बरतनों में गुड़िया के खाने बनाऊँगी। कहाँ से आये हैं, अम्माँ ? बता दो।

देवी—कहीं से नहीं आये, मैंने देखने को मँगवाये थे। तू इनमें से कोई एक ले ले।

शारदा—मैं सब लूँगी, मेरी अम्माँ, न सब ले लीजिए। कौन लाया है, अम्माँ ?

देवी—मुन्नू, तुम खिलौने ले कर जाओ ! सिर्फ एक मेम रहने दो।

शारदा—कहाँ से लाये हो मुन्नू, बता दो ?

मुन्नू—तुम्हारे राजा भैया ने तुम्हारे लिए भेजे हैं।

शारदा—राजा भैया ने भेजे हैं। ओ हो ! (नाच कर) राजा भैया बड़े अच्छे हैं। कल अपनी सहेलियों को दिखाऊँगी। किसी के पास ऐसे खिलौने न निकलेंगे।

देवी—अच्छा, मुन्नू, तुम अब जाओ। रजा मियाँ से कह देना, फिर यहाँ खिलौने न भेजें।

मुन्नू चला गया, तो देवी ने शारदा से कहा—ला बेटी, तेरे खिलौने रख दूँ। बाबू जी देखेंगे, तो बिगड़ेंगे और कहेंगे कि रजा मियाँ के खिलौने क्यों लिये ? तोड़-तोड़ कर फेंक देंगे। भूल कर भी उनसे खिलौनों की चर्चा न करना।

शारदा—हाँ, अम्माँ, रख दो। बाबू जी तोड़ देंगे।

देवी—उनसे कभी मत कहना कि राजा भैया ने खिलौने भेजे हैं, नहीं तो बाबू जी राजा भैया को मारेंगे और तुम्हारे कान भी काट लेंगे। कहेंगे, लड़की भिखमंगी है, सबसे खिलौने माँगती फिरती है।

शारदा—हाँ, अम्माँ, रख दो। बाबूजी तोड़ देंगे।

इतने में बाबू श्यामकिशोर भी दफ्तर से आ गये। भौंहें चढ़ी हुई थीं। आते ही बोले—वह शैतान मुन्नू इस मोहल्ले में भी आने लगा। मैंने आज उसे देखा। क्या यहाँ भी आया था ?

देवी ने हिचकिचाते हुए कहा—हाँ, आया तो था।

श्याम.—और तुमने आने दिया ? मैंने मना न किया था कि उसे कभी अंदर कदम न रखने देना।

देवी—आ कर द्वार खटखटाने लगा, तो क्या करती ?

श्याम.—उसके साथ वह शोहदा भी रहा होगा ?

देवी—उसके साथ और कोई नहीं था।

श्याम.—तुमने आज भी न कहा होगा, यहाँ मत आया कर !

देवी—मुझे तो इतना खयाल न रहा। और अब वह यहाँ क्या करने आयेगा ?

श्याम.—जो करने आज आया था, वही करने फिर आयेगा। तुम मेरे मुँह में कालिख लगाने पर तुली हो।

देवी ने क्रोध से ऐंठ कर कहा—मुझसे तुम ऐसी ऊटपटाँग बातें मत किया करो, समझ गये ? तुम्हें ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म भी नहीं आती ? एक बार पहले भी तुमने कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। आज फिर तुम वही बात कर रहे हो। अगर तीसरी बार ये शब्द मैंने सुने तो नतीजा बुरा होगा, इतना कहे देती हूँ। तुमने मुझे कोई वेश्या समझ लिया है ?

श्याम.—मैं नहीं चाहता कि वह मेरे घर आये।

देवी—तो मना क्यों नहीं कर देते ? मैं तुम्हें रोकती हूँ ?

श्याम.—तुम क्यों नहीं मना कर देतीं ?

देवी—तुम्हें कहते क्या शर्म आती है ?

श्याम.—मेरा मना करना व्यर्थ है। मेरे मना करने पर भी तुम्हारी इच्छा पा कर उसका आना-जाना होता रहेगा।

देवी ने ओठ चबा कर कहा—अच्छा, अगर वह आता ही रहे. तो क्या हानि है? मेहतर सभी घरों में आया-जाया करते हैं।

श्याम.—अगर मैंने मुन्नू को कभी अपने द्वार पर फिर देखा, तो तुम्हारी कुशल नहीं, इतना समझाये देता हूँ।

यह कहते हुए श्यामकिशोर नीचे चले गये, और देवी स्तम्भित खड़ी रह गयी। तब उसका हृदय इस अपमान, लांछन और अविश्वास के आघात से पीड़ित हो उठा। वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसको सबसे बड़ी चोट जिस बात से लगी, वह यह थी कि मेरे पति मुझे इतनी नीच, इतनी निर्लज्ज समझते हैं। जो काम वेश्या भी न करेगी, उसका संदेह मुझ पर कर रहे हैं।

5

श्यामकिशोर के आते ही शारदा अपने खिलौने उठा कर भाग गयी थी कि कहीं बाबू जी तोड़ न डालें। नीचे जाकर वह सोचने लगी कि इन्हें कहाँ छिपा कर रखूँ। वह इसी सोच में थी कि उसकी एक सहेली आँगन में आ गयी। शारदा उसे अपने खिलौने दिखाने के लिए

आतुर हो गयी। इस प्रलोभन को वह किसी तरह न रोक सकी। अभी तो बाबू जी ऊपर हैं; कौन इतनी जल्दी आये जाते हैं। तब तक क्यों न सहेली को अपने खिलौने दिखा दूँ ? उसने सहेली को बुला लिया और दोनों नये खिलौने देखने में मग्न हो गयीं, कि बाबू श्यामकिशोर के नीचे आने की भी उन्हें खबर न हुई। श्यामकिशोर खिलौने देखते ही झपट कर शारदा के पास जा पहुँचे और पूछा—तूने ये खिलौने कहाँ पाये ?

शारदा की घिग्घी बँध गयी। मारे भय के थर-थर काँपने लगी। मुँह से एक शब्द भी न निकला।

श्यामकिशोर ने फिर गरज कर पूछा—बोलती क्यों नहीं, तुझे किसने खिलौने दिये ?

शारदा रोने लगी। तब श्यामकिशोर ने उसे फुसला कर कहा—रो मत, हम तुझे मारेंगे नहीं। तुझसे इतना ही पूछते हैं, तूने ऐसे सुंदर खिलौने कहाँ पाये ?

इस तरह दो-चार बार दिलासा देने से शारदा को कुछ धैर्य बँधा। उसने सारी कथा कह सुनायी। हाँ अनर्थ ! इससे कहीं अच्छा होता कि शारदा मौन ही रहती। उसका गूँगी हो जाना भी इससे अच्छा था। देवी कोई बहाना करके बला सिर से टाल देती; पर होनहार को कौन टाल सकता है ? श्यामकिशोर के रोम-रोम से ज्वाला निकलने लगी। खिलौने वहीं छोड़ कर वह धम-धम करते हुए ऊपर गये और देवी के कंधे दोनों हाथों से झंझोड़ कर बोले—तुम्हें इस घर में रहना है या नहीं ? साफ-साफ कह दो। देवी अभी तक खड़ी सिसकियाँ ले रही थी। यह निर्मम प्रश्न सुन कर उसके आँसू गायब हो गये। किसी भारी विपत्ति की आशंका ने इस हल्के-से आघात को भुला दिया, जैसे घातक की तलवार देखकर कोई प्राणी रोग-शय्या से उठ कर भागे। श्यामकिशोर की ओर भयातुर नेत्रों से देखा; पर मुँह से कुछ न बोली। उसका एक-एक रोम मौन भाषा में पूछ रहा था—इस प्रश्न का क्या मतलब है ?

श्यामकिशोर ने फिर कहा—तुम्हारी जो इच्छा हो, साफ-साफ कह दो। अगर मेरे साथ रहते-रहते तुम्हारा जी ऊब गया हो, तो तुम्हें अख्तियार है। मैं तुम्हें कैद करके नहीं रखना चाहता। मेरे साथ तुम्हें छल, कपट करने की जरूरत नहीं। मैं सहर्ष तुम्हें विदा करने को तैयार हूँ। जब तुमने मन में एक बात निश्चय कर ली, तो मैंने भी निश्चय कर लिया। तुम इस घर में अब नहीं रह सकतीं, रहने के योग्य नहीं हो।

देवी ने आवाज सँभाल कर कहा—तुम्हें आजकल क्या हो गया है, जो हर वक्त जहर उगलते रहते हो ? अगर मुझसे जी ऊब गया है, तो जहर दे दो, जला-जला कर क्यों जान मारते हो ? मेहतर से बातें करना तो ऐसा अपराध न था। जब उसने आ कर पुकारा, तो मैंने आ कर द्वार खोल दिया। अगर मैं जानती कि जरा-सी बात का बतंगड़ हो जायगा, तो उसे दूर ही से दुत्कार देती।

श्याम.—जी चाहता है, तालू से जबान खींच लें। बातें होने लगीं, इशारे होने लगे, तोहफे आने लगे। अब बाकी क्या रहा ?

देवी—क्यों नाहक घाव पर नमक छिड़कते हो ? एक अबला की जान ले कर कुछ पा न जाओगे !

श्याम.—मैं झूट कहता हूँ ?

देवी—हाँ, झूठ कहते हो।

श्याम.—ये खिलौने कहाँ से आये ?

देवी का कलेजा धक्-से हो गया। काटो, तो बदन में लहू नहीं। समझ गयी, इस वक्त ग्रह बिगड़े हुए हैं, सर्वनाश के सभी संयोग मिलते जाते हैं। ये निगोड़े खिलौनेन जाने किस बुरी साइत में आये ! मैंने लिये ही क्यों, उसी वक्त लौटा क्यों न दिये ! बात बना कर बोली—आग लगे वही खिलौने तोहफे हो गये ! बच्चों को कोई कैसे रोके, किसी की मानते हैं। कहती रही, मत ले; मगर न मानी, तो मैं क्या करती ? हाँ, यह जानती कि इन खिलौनों पर मेरी जान मारी जायगी तो जबरदस्ती छीन कर फेंक देती।

श्याम.—इनके साथ और कौन-कौन-सी चीजें आयी हैं, भला चाहती हो तो अभी लाओ।

देवी—जो कुछ आया होगा, इसी घर ही में होगा। देख क्यों नहीं लेते ? इतना बड़ा घर भी नहीं है कि चार दिन देखते लग जायँ ?

श्याम.—मुझे इतनी फुरसत नहीं है। खैरियत इसी में है कि जो चीजें आयी हों, ला कर मेरे सामने रख दो। यह तो हो नहीं सकता कि लड़की के लिए खिलौने आयें और तुम्हारे लिए कोई सौगात न आये। तुम भरी गंगा में कसम खाओ, तो भी मुझे विश्वास न आयेगा।

देवी—तो घर में देख क्यों नहीं लेते ?

श्यामकिशोर ने घूँसा तान कर कहा—कह दिया, मुझे फुरसत नहीं है। सीधे से सारी चीजें ला कर रख दो; नहीं तो इसी दम गला दबाकर मार डालूँगा।

देवी—मारना हो, तो मार डालो; जो चीजें आयी ही नहीं, उन्हें मैं दिखा कहाँ से दूँ।

श्यामकिशोर ने क्रोध से उन्मत्त हो कर देवी को इतनी जोर से धक्का दिया कि चारों खाने चित जमीन पर गिर पड़ी। तब उसके गले पर हाथ रख कर बोले—दबा दूँ गला ! न दिखलायेगी तू उन चीजों को ?

देवी—जो अरमान हों, पूरे कर लो।

श्याम.—खून पी जाऊँगा ! तूने समझा क्या है ?

देवी—अगर दिल की प्यास बुझती हो, तो पी जाओ।

श्याम.—फिर तो उस मेहतर से बातें न करोगी ? अगर अब कभी मुन्नू या उस शोहदे को द्वार पर देखा, तो गला काट लूँगा !

यह कह कर बाबू जी ने देवी को छोड़ दिया, और बाहर चले गये; लेकिन देवी उसी दशा में बड़ी देर तक पड़ी रही। उसके मन में इस समय पति प्रेम की मर्यादा-रक्षा का लेश भी न था। उसका अन्तःकरण प्रतिकार के लिए विकल हो रहा था। इस वक्त अगर वह सुनती कि श्यामकिशोर को किसी ने बाजार में जूता से पीटा, तो कदाचित वह खुश होती। कई दिनों तक पानी से भीगने के बाद, आज यह झोंका पा कर प्रेम की दीवार भूमि पर गिर पड़ी, और मान की रक्षा करनेवाली कोई साधना न रही। आज केवल संकोच और लोक-लाज की हलकी-सी रस्सी रह गयी है, जो एक झटके में टूट सकती है।

6

श्यामकिशोर बाहर चले गये, तो शारदा भी अपने खिलौने लिये हुए घर से बाहर निकली। बाबू जी खिलौनों को देख कर कुछ बोले नहीं, तो अब उसे किसकी चिंता और किसका भय ! अब वह क्यों न अपनी सहेलियों को खिलौने दिखाये। सड़क के उस पार एक

हलवाई का मकान था। हलवाई की लड़की अपने द्वार पर खड़ी थी। शारदा उसे खिलौने दिखाने चली। बीच में सड़क थी, सवारी-गाड़ियों और मोटरों का ताँता बँधा हुआ। शारदा को अपनी धुन में किसी बात का ध्यान न रहा। बालोचित उत्सुकता से भरी हुई वह खिलौने लिये दौड़ी। वह क्या जानती थी कि मृत्यु भी उसी तरह प्राणों का खिलौना खेलने के लिये दौड़ी आ रही है। सामने एक मोटर आती हुई दिखायी दी। दूसरी ओर से एक बग्घी आ रही थी। शारदा ने चाहा, दौड़ कर उस पार निकल जाय। मोटर ने बिगुल बजाया; शारदा ने जोर मारा कि सामने से निकल जाय; पर होनहार को कौन टालता ! मोटर बालिका को रौंदती हुई चली गयी। सड़क पर एक माँस की लोथ पड़ी रह गयी। खिलौने ज्यों के त्यों थे। उनमें से एक भी न टूटा था! खिलौने रह गये, खेलनेवाला चला गया। दोनों में कौन स्थायी है और कौन अस्थायी, इसका फैसला कौन करे !

चारों ओर से लोग दौड़ पड़े। अरे ! यह तो बाबू जी की लड़की है, जो ऊपर वाले मकान में रहते हैं। लोथ कौन उठाये ? एक आदमी ने लपक कर द्वार पर पुकारा—बाबू जी। आपकी लड़की तो सड़क पर नहीं खेल रही थी ! जरा नीचे तो आ जाइए।

देवी ने छज्जे पर खड़े हो कर सड़क की ओर देखा, तो शारदा की लोथ पड़ी हुई थी। चीख मार कर बेतहाशा नीचे दौड़ी, और सड़क पर आ कर बालिका को गोद में उठा लिया। उसके पैर काँपने लगे। इस वज्रपात ने उसे स्तम्भित कर दिया; रोना भी न आया।

मुहल्ले के कई आदमी पूछने लगे—बाबू जी कहाँ गये हैं ? उनको कैसे बुलाया जाय ?

देवी क्या जवाब देती ? वह तो संज्ञाहीन हो गयी थी। लड़की की लाश गोद में लिये, उसके रक्त से अपने वस्त्रों को भिगोती; आकाश की ओर ताक रही थी,—मानो देवता से पूछ रही हो—क्या सारी विपत्तियाँ मुझी पर ?

अँधेरा होता जाता था; पर बाबू जी का पता नहीं। कुछ मालूम भी नहीं, वह कहाँ गये हैं। धीरे-धीरे नौ बजे; पर अब तक बाबू जी न लौटे। इतनी देर तक बाहर न रहते थे। क्या आज ही उन्हें भी गायब होना था ? दस बज गये, अब देवी रोने लगी। उसे लड़की की मृत्यु का इतना दुःख न था, जितना अपनी असमर्थता का। वह कैसे शव की दाहक्रिया करेगी ? कौन उसके साथ जायगा ? क्या इतनी रात गये कोई उसके साथ चलने पर तैयार होगा ? अगर कोई न गया, तो क्या उसे अकेली ही जाना पड़ेगा? क्या रात भर लोथ पड़ी रहेगी ?

ज्यों-ज्यों सन्नाटा होता जाता था, देवी को भय होता था। वह पछता रही थी कि शाम ही को क्यों न इसे ले कर चली गयी।

ग्यारह बजे थे। सहसा किसी ने द्वार खोला। देवी उठ कर खड़ी हो गयी। समझी, बाबू जी आ गये। उसका हृदय उमड़ आया और वह रोती हुई बाहर आयी; पर आह! यह बाबू जी न थे, ये पुलिस के आदमी थे, जो इस मामले की तहकीकात करने आये थे। पाँच बजे की घटना थी। तहकीकात होने लगी ग्यारह बजे। आखिर थानेदार भी तो आदमी है; वह भी तो संध्या-समय घूमने-फिरने जाता ही है।

घंटे-भर तक तहकीकात होती रही। देवी ने देखा, अब संकोच से काम न चलेगा। थानेदार ने उससे जो कुछ पूछा, उसका उत्तर उसने निस्संकोच भाव से दिया। जरा भी न शरमायी, जरा भी न झिझकी। थानेदार भी दंग रह गया।

जब सब के बयान लिख कर दारोगा जी चलने लगे, तो देवी ने कहा—आप उस मोटर का पता लगायेंगे ?

दारोगा—अब तो शायद ही उसका पता लगे।

देवी—तो उसको कुछ सजा न होगी ?

दारोगा—मजबूरी है। किसी को नम्बर भी तो मालूम नहीं।

देवी—सरकार इसका कुछ इंतजाम नहीं करती ? गरीबों के बच्चे इसी तरह कुचले जाते रहेंगे।

दारोगा—इसका क्या इंतजाम हो सकता है ? मोटरें तो बन्द नहीं हो सकतीं ?

देवी—कम से कम पुलिसवालों को यह तो देखना चाहिए कि शहर में कोई बहुत तेज न चलाये ? मगर आप लोग ऐसा क्यों करने लगे ? आपके अफसर भी तो मोटरों पर बैठते हैं। आप उनकी मोटरें रोकेंगे, तो नौकरी कैसे रहेगी ?

थानेदार लज्जित हो चला गया। जब लोग सड़क पर पहुँचे, तो एक सिपाही ने कहा—मेहरिया बड़ी टनमन दिखात है।

थानेदार—अजी, इसने तो मेरा नातका बंद कर दिया। किस गजब का हुस्न पाया है ! मगर कसम ले लो, जो मैंने एक बार भी उसकी तरफ निगाह की हो। ताकने की हिम्मत ही न पड़ती थी।

बाबू श्यामकिशोर बारह बजे के बाद नशे में चूर घर पहुँचे। उन्हें यह खबर रास्ते ही में मिल गयी थी। रोते हुए घर में दाखिल हुए। देवी भरी बैठी थी, सोच रखा था—आज चाहे जो हो जाय, पर फटकारूँगी जरूर। पर उनको रोते देखा, तो सारा गुस्सा गायब हो गया। खुद भी रोने लगी। दोनों बड़ी देर तक रोते रहे। इस विपत्ति ने दोनों के हृदयों को एक दूसरे की ओर बड़े जोर से खींचा। उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि उनमें फिर पहले का-सा प्रेम जाग्रत हो गया है।

प्रातःकाल जब लोग दाह-क्रिया करके लौटे, तो श्यामकिशोर ने देवी की ओर स्नेह से देखकर करुण स्वर में कहा—तुम्हारा जी अकेले कैसे लगेगा ?

देवी--तुम दस-पांच दिन की छुट्टी न ले सकोगे ?

श्याम.—यही तो मैं भी सोचता हूँ। पंद्रह दिन की छुट्टी ले लूं।

श्याम बाबू दफ्तर छुट्टी लेने चले गये। इस विपत्ति में भी आज देवी का हृदय जितना प्रसन्न था, उतना उधर महीनों से न हुआ। बालिका को खो कर वह विश्वास और प्रेम पा गयी थी, और यह उसके आँसू पोंछने के लिए कुछ कम न था।

आह ! अभागिनी ! खुश मत हो। तेरे जीवन का वह अन्तिम कांड होना अभी बाकी है, जिसकी आज तू कल्पना भी नहीं कर सकती।

7

दूसरे दिन बाबू श्यामकिशोर घर ही पर थे कि मुन्नू ने आ कर सलाम किया। श्यामकिशोर ने जरा कड़ी आवाज में पूछा—क्या है जी, तुम क्यों बार-बार यहाँ आया करते हो ?

मुन्नू बड़े दीन भाव से बोला—मालिक, कल की बात जो सुनता है, उसी को रंज होता है। मैं तो हुजूर का गुलाम ठहरा। अब नौकर नहीं हूँ तो क्या, सरकार का नमक तो

खा चुका हूँ। भला, वह कभी हड्डियों से निकल सकता है। कभी-कभी हाल-हवाल पूछने आ जाता हूँ। जब से कल वाली बात सुनी है हुजूर, ऐसा कलक हो रहा है कि क्या कहूँ। कैसी प्यारी-प्यारी बच्ची थी कि देख कर दुख दूर हो जाता था। मुझे देखते ही मुन्नू-मुन्नू करके दौड़ती थी; जब गैरों का यह हाल है, तो हुजूर के दिल पर जो कुछ बीत रही होगी, हुजूर ही जानते होंगे।

श्याम बाबू कुछ नर्म हो कर बोले—ईश्वर की मरजी में इन्सान का क्या चारा? मेरा तो घर ही अँधेरा हो गया। अब यहाँ रहने को जी नहीं चाहता।

मुन्नू—मालकिन तो और भी बेहाल होंगी !

श्याम—हुआ ही चाहें। मैं तो उसे शाम-सबेरे खिला लिया करता था। माँ तो दिन भर साथ रहती थी। मैं तो काम-धंधों में भूल भी जाऊँगा। वह कहाँ भूल सकती हैं। उनको तो सारी जिंदगी का रोना है।

पति को मुन्नू से बातें करते सुन कर देवी ने कोठे पर से आँगन की ओर देखा। मुन्नू को देख कर उसकी आँखों में बे-अख्तियार आँसू भर आये ! बोली—मुन्नू, मैं तो लुट गयी !

मुन्नू—हुजूर, अब सबर कीजिए, रोने-धोने से क्या फायदा ? यही सब अंधेर देख कर तो कभी-कभी अल्लाह मियाँ को जालिम कहना पड़ता है। जो बेईमान हैं, दूसरों का गला काटते फिरते हैं, उनसे अल्लाह मियाँ भी डरते हैं। जो सीधे और सच्चे हैं उन्हीं पर आफत आती है।

मुन्नू देवी को दिलासा देता रहा। श्याम बाबू भी उसकी बातों का समर्थन करते जाते थे। जब वह चला गया, तो बाबू साहब ने कहा—आदमी तो कुछ बुरा नहीं मालूम होता।

देवी ने कहा—मोहब्बती आदमी है। रंज न होता, तो यहाँ क्यों आता ?

8

पंद्रह दिन गुजर गये। बाबू साहब फिर दफ्तर जाने लगे। मुन्नू इस बीच में फिर कभी न आया ? अब तक तो देवी का दिन पति से बातें करने में कट जाता था; लेकिन अब उनके चले जाने पर उसे बार-बार शारदा की याद आती। प्रायः सारा दिन रोते ही कटता था। मुहल्ले की दो-चार नीच जाति की औरतें आती थीं; लेकिन देवी का उनसे मन न मिलता था, वे झूठी सहानुभूति दिखा कर देवी से कुछ ऐंठना चाहती थीं!

एक दिन कोई चार बजे मुन्नू फिर आया, और आँगन में खड़ा हो कर बोला—मालकिन, मैं हूँ मुन्नू, जरा नीचे आ जाइएगा।

देवी ने ऊपर ही से पूछा—क्या काम है ? कहो तो।

मुन्नू—जरा आइए तो !

देवी नीचे आयी, तो मुन्नू ने कहा—रजा मियाँ बाहर खड़े हैं; और हुजूर से मातमपुरसी करते हैं।

देवी ने कहा—जा कर कह दो, ईश्वर की जो मरजी थी, वह हुई।

रजा दरवाजे पर खड़ा था। ये बातें उसने साफ सुनीं। बाहर ही से बोला—खुदा जानता है, जब से यह खबर सुनी है दिल के टुकड़े हुए जाते हैं। मैं जरा दिल्ली चला गया

था। आज ही लौट कर आया हूँ। अगर मेरी मौजूदगी में यह वारदात हुई होती, तो और तो क्या कर सकता था; मगर मोटरवाले को बिला सजा कराये न छोड़ता, चाहे वह किसी राजा ही की मोटर होती। सारा शहर छान डालता। बाबू साहब चुपके होके बैठ रहे, यह भी कोई बात है। मोटर चला कर क्या कोई किसी की जान ले लेगा। फूल-सी मासूम बच्ची को जालिमों ने मार डाला। हाय ! अब कौन मुझे राजा भैया कह कर पुकारेगा! खुदा की कसम, उसके लिए दिल्ली से टोकरी भर खिलौने ले आया हूँ। क्या जानता था कि यहाँ यह सितम हो गया। मुन्नू देख, यह तावीज ले जा कर बहू जी को दे दे। इसे अपने जूड़े में बाँध लेंगी। खुदा ने चाहा, तो उन्हें किसी तरह की दहशत या खटका न रहेगा। उन्हें बुरे-बुरे ख्वाब दिखायी देते होंगे, रात को नींद उचट जाती होगी, दिल घबराया करता होगा। ये सारी शिकायतें इस तावीज से दूर हो जायँगी। मैंने एक पहुँचे हुए फकीर से यह तावीज लिखाया है।

इसी तरह से रजा और मुन्नू उस वक्त तक एक न एक बहाने से द्वार से न टले, जब तक बाबू साहब आते न दिखायी दिये। श्यामकिशोर ने उन दोनों को जाते देख लिया। ऊपर जा कर गम्भीर भाव से बोले—रजा क्या करने आया था ?

देवी—यों ही मातमपुरसी करने आया था। आज दिल्ली से आया है। यह खबर सुन कर दौड़ा आया था।

श्याम.—मर्द मर्दों से मातमपुरसी करते हैं या औरतों से ?

देवी—तुम न मिले, तो मुझी से शोक प्रकट करके चला गया।

श्याम.—इसके यह माने हैं कि जो आदमी मुझसे मिलने आयें, वह मेरे न रहने पर तुमसे मिल सकता है। इसमें कोई हरज नहीं, क्यों ?

देवी—सबसे मिलने मैं थोड़े ही जा रही हूँ ?

श्याम.—तो रजा क्या मेरा साला है या ससुरा ?

देवी—तुम तो जरा-जरा सी बात पर झल्लाने लगते हो।

श्याम.—यह जरा-सी बात है ! एक भले घर की स्त्री एक शोहदे से बातें करे, यह जरा-सी बात है ! तो बड़ी-सी बात किसे कहते हैं ? यह जरा-सी बात नहीं है कि यदि मैं तुम्हारी गरदन घोंट दूँ तो भी मुझे पाप न लगेगा; देखता हूँ, फिर तुमने वही रंग पकड़ा। इतनी बड़ी सजा पा कर भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं। अबकी क्या मुझे ले बीतदा चाहती हो ?

देवी सन्नाटे में आ गयी। एक तो लड़की का शोक ! उस पर यह अपशब्दों की बौछार और भीषण आक्षेप ! उसके सिर में चक्कर-सा आ गया। बैठ कर रोने लगी। इस जीवन से तो मौत कहीं अच्छी ! केवल यही शब्द उसके मुँह से निकले।

बाबू साहब गरज कर बोले—यही होगा, मत घबराओ, मत घबराओ, यही होगा। तुम मरना चाहती हो, तो मुझे भी तुम्हारे अमर होने की आकांक्षा नहीं है। जितनी जल्द तुम्हारे जीवन का अंत हो जाय, उतना ही अच्छा। कुल में कलंक तो न लगेगा।

देवी ने सिसकियाँ लेते हुए कहा—क्यों एक अबला पर इतना अन्याय करते हो? तुम्हें जरा भी दया नहीं आती ?

श्याम.—मैं कहता हूँ, चुप रह !

देवी—क्यों चुप रहूँ; क्या किसी की जबान बंद कर दोगे ?

श्याम.—फिर बोले जाती है ? मैं उठ कर सिर तोड़ दूँगा !

देवी—क्या सिर तोड़ दोगे, कोई जबरदस्ती है ?

श्याम.—अच्छा तो बुला, देखें तेरा कौन हिमायती है ?

यह कहते हुए बाबू साहब झल्ला कर उठे और देवी को कई थप्पड़ और घूँसे लगा दिये; मगर वह न रोयी न चिल्लायी, न जबान से एक शब्द निकाला, केवल अर्थ-शून्य नेत्रों से पति की ओर ताकती रही, मानो यह निश्चय करना चाहती थी कि यह आदमी है या कुछ और।

जब श्यामकिशोर मार-पीट कर अलग खड़े हो गये, तो देवी ने कहा—दिल के अरमान अभी न निकले हों तो और निकाल लो। फिर शायद यह अवसर न मिले।

श्यामकिशोर ने जवाब दिया, सिर काट लूँगा—सिर, तू है किस फेर में ? यह कहते हुए नीचे चले गये, झटके के साथ किवाड़ खोले, धमाके के साथ बन्द किये और कहीं चले गये।

अब देवी की आँखों से आँसू की नदी बहने लगी।

रात के दस बज गये; पर श्यामकिशोर घर न लौटे। रोते-रोते देवी की आँखें सूज आयीं। क्रोध में मधुर स्मृतियों का लोप हो जाता है। देवी को ऐसा ज्ञात होता है कि श्यामकिशोर को उसके साथ कभी प्रेम ही न था। हाँ, कुछ दिनों वह उसका मुँह अवश्य जोहते रहते थे; लेकिन वह बनावटी प्रेम था। उसके यौवन का आनन्द लूटने ही के लिए उससे मीठी-मीठी प्यार की बातें की जाती थीं। उसे छाती से लगाया जाता था, उसे कलेजे पर सुलाया जाता था। वह सब दिखावा था, स्वाँग था। उसे याद ही न आता था कि कभी उससे सच्चा प्रेम किया गया हो। अब वह रूप नहीं रहा, वह यौवन नहीं रहा, वह नवीनता नहीं रही ! फिर उसके साथ क्यों न अत्याचार किये जायँ ? उसने सोचा—कुछ नहीं ! अब इनका दिल मुझसे फिर गया है, नहीं तो क्या इस जरा-सी बात पर यों मुझ पर टूट पड़ते। कोई न कोई लांछन लगा कर मुझसे गला छुड़ाना चाहते हैं। यही बात है, तो मैं क्यों इनकी रोटियाँ और इनकी मार खाने के लिए इस घर में पड़ी रहूँ ? जब प्रेम ही नहीं रहा, तो मेरे यहाँ रहने को धिक्कार है ! मैके में कुछ न सही; यह दुर्गति तो न होगी। इनकी यही इच्छा है, तो यही सही। मैं भी समझ लूँगी कि विधवा हो गयी।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, देवी के प्राण सूखे जाते थे। उसे यह धड़का समाया हुआ था कि कहीं वह आकर फिर न मार-पीट शुरू कर दें। कितने क्रोध में भरे हुए यहाँ से गये। वाह री तकदीर ! अब मैं इतनी नीच हो गयी कि मेहतरों से, जूतेवालों से आशनाई करने लगी। इस भले आदमी को ऐसी बातें मुँह से निकालते शर्म भी नहीं आती ! ना-जाने इनके मन में ऐसी बातें कैसे आती हैं। कुछ नहीं, यह स्वभाव के नीच, दिल के मैले, स्वार्थी आदमी हैं। नीचों के साथ नीच ही बनना चाहिए। मेरी भूल थी कि इतने दिनों से इनकी घुड़कियाँ सहती रही। जहाँ इज्जत नहीं, मर्यादा नहीं, प्रेम नहीं, विश्वास नहीं, वहाँ रहना बेहयायी है। कुछ मैं इनके हाथ बिक तो गयी ही नहीं कि यह जो चाहे करें, मारें या काटें, पड़ी सहा करूँ। सीता-जैसी पत्नियाँ होती थीं, तो राम-जैसे पति भी होते थे !

देवी को ऐसी शंका होने लगी कि कहीं श्यामकिशोर आते ही आते सचमुच उसका गला न दबा दें, या छुरी भोंक दें। वह समाचार-पत्रों में ऐसी कई हरजाइयों की खबरें पढ़

चुकी थीं। शहर ही में ऐसी कई घटनाएँ हो चुकी थीं। मारे भय के थरथरा उठी। यहाँ रहने से प्राणों की कुशल न थी।

देवी ने कपड़ों की एक छोटी-सी बकुची बाँधी और सोचने लगी--यहाँ से कैसे निकलूँ ? और फिर यहाँ से निकल कर जाऊँ कहाँ ? कहीं इस वक्त मुन्नू का पता लग जाता, तो बड़ा काम निकलता। वह मुझे क्या मैके न पहुँचा देता ? एक बार मैके पहुँच भर जाती। फिर तो लाला सिर पटक कर रह जायँ, भूल कर भी न आऊँ। यह भी क्या याद करेंगे। रुपये क्यों छोड़ दूँ, जिसमें यह मजे से गुलछर्रे उड़ायें ? मैंने ही तो काट-छाँट कर जमा किये हैं। इनकी कौन-सी ऐसी बड़ी कमाई थी। खर्च करना चाहती, तो कौड़ी न बचती। पैसा-पैसा बचाती रहती थी।

देवी ने जा कर नीचे के किवाड़ बंद कर दिये। फिर संदूक खोल कर अपने सारे जेवर और रुपये निकाल कर बकुची में बाँध लिये। सब के सब करेंसी नोट थे; विशेष बोझ भी न हुआ।

एकाएक किसी ने सदर दरवाजे में जोर से धक्का मारा। देवी सहम उठी। ऊपर से झाँक कर देखा, श्याम बाबू थे। उनकी हिम्मत न पड़ी कि जा कर द्वार खोल दे। फिर तो बाबू साहब ने इतने जोर से धक्के मारने शुरू किये, मानो किवाड़ ही तोड़ डालेंगे। इस तरह द्वार खुलवाना ही उनके चित्त की दशा को साफ प्रकट कर रहा था। देवी शेर के मुँह में जाने का साहस न कर सकी।

आखिर श्यामकिशोर ने चिल्ला कर कहा--ओ डैम ! किवाड़ खोल, ओ ब्लाडी ! किवाड़ खोल, अभी खोल !

देवी की रही-सही हिम्मत जाती रही। श्यामकिशोर नशे में चूर थे। होश में शायद दया आ जाती, इसलिए शराब पी कर आये हैं। किवाड़ तो न खोलूँगी चाहे तोड़ ही डालो। अब तुम मुझे इस घर में पाओगे ही नहीं, मारोगे कहाँ से ? तुम्हें खूब पहचान गयी।

श्यामकिशोर पंद्रह-बीस मिनट तक शोर मचाने और किवाड़ हिलाने के बाद ऊल-जलूल बकते चले गये। दो-चार पड़ोसियों ने फटकारें भी सुनायीं : आप भी तो पढ़े-लिखे आदमी हो कर आधी रात को घर चलते हैं। नींद ही तो है, नहीं खुलती, तो क्या कीजिएगा ? जाइए, किसी यार-दोस्त के घर लेट रहिए; सबेरे आइएगा।

श्यामकिशोर के जाते ही देवी ने बकुची उठायी और धीरे-धीरे नीचे उतरी। जरा देर उसने कान लगाकर आहट ली कि कहीं श्यामकिशोर खड़े तो नहीं हैं। जब विश्वास हो गया कि वह चले गये, तो धीरे से द्वार खोला और बाहर निकल आयी। उसे जरा भी क्षोभ, जरा भी दुःख न था। बस केवल एक इच्छा थी कि यहाँ से बच कर भाग जाऊँ। कोई ऐसा आदमी न था, जिस पर वह भरोसा कर सके, जो इस संकट में काम आ सके। था तो बस वही मुन्नू मेहतर। अब उसी के मिलने पर उसकी सारी आशाएँ अवलम्बित थीं। उसी से मिल कर वह निश्चय करेगी कि कहाँ जाय, कैसे रहे ? मैके जाने का अब उसका इरादा न था। उसे भय होता था कि मैके में श्यामकिशोर से वह अपनी जान न बचा सकेगी। उसे यहाँ न पा कर वह अवश्य उसके मैके जायँगे, और उसे जबरदस्ती खींच लायेंगे। वह सारी यातनाएँ, सारे अपमान सहने को तैयार थी, केवल श्यामकिशोर की सूरत नहीं देखना चाहती थी। प्रेम अपमानित हो कर द्वेष में बदल जाता है।

थोड़ी ही दूर पर चौराहा था, कई ताँगेवाले खड़े थे। देवी ने एक इक्का किया और उससे स्टेशन चलने को कहा।

9

देवी ने रात स्टेशन पर काटी। प्रातःकाल उसने एक ताँगा किराये पर किया और परदे में बैठ चौक जा पहुँची। अभी दुकानें न खुली थीं; लेकिन पूछने से रजा मियाँ का पता चल गया। उसकी दुकान पर एक लौंडा झाड़ू दे रहा था। देवी ने उसे बुला कर कहा—जा कर रजा मियाँ से कह दे कि शारदा की अम्माँ तुमसे मिलने आयी हैं, अभी चलिए।

दस मिनट में रजा और मुन्नू आ पहुँचे।

देवी ने सजल नेत्र हो कर कहा—तुम लोगों के पीछे मुझे घर छोड़ना पड़ा। कल रात को तुम्हारा मेरे घर जाना गजब हो गया। जो कुछ हुआ, वह फिर कहूँगी। मुझे कहीं एक घर दिला दो। घर ऐसा हो कि बाबू साहब को मेरा पता न मिले। नहीं तो वह मुझे जीती न छोड़ेंगे।

रजा ने मुन्नू की ओर देखा, मानो कह रहा है—देखो, चाल कैसी ठीक थी ! देवी से बोला—आप निसाखातिर रहें, ऐसा घर दिला दूँगा कि बाबू साहब के बाबा साहब को भी पता न चलेगा। आप को किसी बात की तकलीफ न होगी। हम आपके पसीने की जगह खून बहा देंगे। सच पूछो तो बहू जी, बाबू साहब आपके लायक थे नहीं।

मुन्नू—कहाँ की बात भैया, आप रानी होने लायक हैं। मैं मालकिन से कहता था कि बाबू जी को दालमंडी की हवा लग गयी है, पर आप मानती ही न थीं। आज रात ही को मैंने गुलाबजान के कोठे पर से उतरते देखा। नशे में चूर थे।

देवी—झूठी बात। उनकी यह आदत नहीं। गुस्सा उन्हें जरूर बहुत है, और गुस्से में आ कर उन्हें नेक-बद कुछ नहीं सूझता; लेकिन निगाह के बुरे नहीं।

मुन्नू—हुजूर मानती ही नहीं, तो क्या करूँ। अच्छा कभी दिखा दूँगा, तब तो मानिएगा।

रजा—अबे दिखाना पीछे, इस वक्त आपको मेरे घर पहुँचा दे। ऊपर ले जाना। तब तक मैं एक मकान देखने जाता हूँ। आपके लायक बहुत ही अच्छा है।

देवी—तुम्हारे घर में बहुत-सी औरतें होंगी।

रजा—कोई नहीं है, बहू जी, सिर्फ एक बुढ़िया मामी है। वह आपके लिए एक कहारिन बुला देगी। आपको किसी बात की तकलीफ न होगी। मैं मकान देखने जा रहा हूँ।

देवी—जरा बाबू साहब की तरफ भी होते आना। देखना घर आये कि नहीं।

रजा—बाबू साहब से तो मुझे चिढ़ हो गयी है। शायद नजर में आ जायँ तो मेरी उनसे लड़ाई हो जाय। जो मर्द आप-जैसी हुस्न की देवी की कदर नहीं कर सकता, वह आदमी नहीं।

मुन्नू—बहुत ठीक कहते हो, भैया। ऐसी सरीफजादी को न जाने किस मुँह से डाँटते हैं ! मुझे इतने दिन हुजूर की गुलामी करते हो गये, कभी एक बात न कही।

रजा मकान देखने गया, और ताँगा रजा के घर की तरफ चला।

देवी के मन में इस समय एक शंका का आभास हुआ—कहीं ये दोनों सचमुच शोहदे

तो नहीं हैं ? लेकिन कैसे मालूम हो ? यह सत्य है कि देवी ने जीवन-पर्यंत के लिए स्वामी का परित्याग किया था; पर इतनी ही देर में उसे कुछ पश्चात्ताप होने लगा था। अकेली एक घर में कैसे रहेगी बैठी-बैठी क्या करेगी, यह कुछ उसकी समझ में न आता था। उसने दिल में कहा—क्यों न घर लौट चलूँ ? ईश्वर करे, वह अभी घर न आये हों। मुन्नू से बोली—तुम जरा दौड़ कर देखो तो, बाबू जी घर आये कि नहीं ?

मुन्नू—आप चल कर आराम से बैठें, मैं देख आता हूँ।

देवी—मैं अंदर न जाऊँगी।

मुन्नू—खुदा की कसम खाके कहता हूँ, घर बिलकुल खाली है। आप हम लोगों पर शक करती हैं। हम वह लोग हैं कि आपका हुक्म पायें, तो आग में कूद पड़ें।

देवी इक्के से उतर कर अंदर चली गयी। चिड़िया एक बार पकड़ जाने पर भी फड़फड़ायी; किन्तु पैरों में लासा लगे होने के कारण उड़ न सकी, और शिकारी ने उसे अपनी झोली में रख लिया। वह अभागिनी क्या फिर कभी आकाश में उड़ेगी ? क्या फिर उसे डालियों पर चहकना नसीब होगा ?

10

श्यामकिशोर सवेरे घर लौटे, तो उनका चित्त शांत हो गया था। उन्हें शंका हो रही थी कि कदाचित् देवी घर न होगी। द्वार के दोनों पट खुले देखे तो कलेजा सन्-से हो गया। इतने सवेरे किवाड़ों का खुला रहना अमंगलसूचक था। एक क्षण द्वार पर खड़े हो कर अंदर की आहट ली। कोई आवाज न सुनायी दी। आँगन में गये, वहाँ भी सन्नाटा, ऊपर चारों तरफ सूना ! घर काटने को दौड़ रहा था। श्यामकिशोर ने अब जरा सतर्क हो कर देखना शुरू किया। संदूक में रुपये नदारत। गहने का संदूक भी खाली। अब क्या भ्रम हो सकता था। कोई गंगा-स्नान के लिए जाता है, तो घर के रुपये नहीं उठा ले जाता। वह चली गयी। अब इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं था। यह भी मालूम था कि वह कहाँ गयी है। शायद इसी वक्त लपक कर जाने से वह वापस भी लायी जा सकती है; लेकिन दुनिया क्या कहेगी ?

श्यामकिशोर ने अब चारपाई पर बैठ कर ठंडे दिल से इस घटना की विवेचना करनी शुरू की। इसमें तो संदेह न था कि रजा और उसके पिट्ठू मुन्नू ने ही बहकाया है। आखिर बाबू जी का कर्तव्य क्या था ? उन्होंने वह पुराना मकान छोड़ दिया, देवी को बार-बार समझाया। इसके उपरान्त वह क्या कर सकते थे ? क्या मारना अनुचित था ? अगर एक क्षण के लिए अनुचित ही मान लिया जाय, तो क्या देवी को इसी तरह घर से निकल जाना चाहिए था ? कोई दूसरी स्त्री, जिसके हृदय में पहले ही से विष न भर गया हो, केवल मार खा कर घर से निकल जाती। अवश्य ही देवी का हृदय कलुषित हो गया है।

बाबू साहब ने फिर सोचा—अभी जरा देर में महरी आयेगी। वह देवी को घर में न देख कर पूछेगी, तो क्या जवाब दूँगा ? दम के दम में सारे मुहल्ले में यह खबर फैल जायगी। हाय भगवान् ! क्या करूँ ? श्यामकिशोर के मन में इस वक्त जरा भी पश्चात्ताप, जरा भी दया न थी। अगर देवी किसी तरह उन्हें मिल सकती, तो वह उसकी हत्या कर डालने में जरा भी पसोपेश न करते। उसका घर से निकल जाना, चाहे आवेश के सिवा उसका और कोई कारण न हो, उनकी निगाह में अक्षम्य था, क्रोध बहुधा विरक्ति का रूप

धारण कर लिया करता है। श्यामकिशोर को संसार से घृणा हो गयी। जब अपनी पत्नी ही दगा कर जाय तो किसी से क्या आशा की जाय ? जिस स्त्री के लिए हम जीते भी हैं, और मरते भी, जिसको सुखी रखने के लिए हम अपने प्राणों का बलिदान कर देते हैं, जब वह अपनी न हुई, तो फिर दूसरा कौन अपना हो सकता है ? इसी स्त्री को प्रसन्न रखने के लिए उन्होंने क्या नहीं किया। घरवालों से लड़ाई की, भाइयों से नाता तोड़ा, यहाँ तक कि वे अब उनकी सूरत भी नहीं देखना चाहते। उसकी कोई ऐसी इच्छा न थी, जो उन्होंने पूरी न की हो ! उसका जरा-सा सिर भी दुखता था, तो उनके हाथों के तोते उड़ जाते थे। रात की रात उसकी सेवा-शुश्रूषा में बैठे रह जाते थे। वही स्त्री आज उनसे दगा कर गयी, केवल एक गुंडे के बहकाने में आ कर उनके मुँह में कालिख लगा गयी। गुंडों पर इलजाम लगाना तो एक प्रकार से मन को समझाना है ! जिसके दिल में खोट न हो, उसे कोई क्या बहका सकता है? जब इस स्त्री ने धोखा दिया, तो फिर समझना चाहिए कि संसार में प्रेम और विश्वास का अस्तित्व ही नहीं। यह केवल भावुक प्राणियों की कल्पना-मात्र है। ऐसे संसार में रह कर दुःख और दुराशा के सिवा और क्या मिलता है। हा दुष्टा ! ले आज से तू स्वतंत्र है, जो चाहे कर; अब कोई तेरा हाथ पकड़नेवाला नहीं रहा। जिसे तू 'प्रियतम' कहते नहीं थकती थी, उसके साथ तूने यह कुटिल व्यवहार किया ! चाहूँ, तो तुझे अदालत में घसीट कर इस पाप का दंड दे सकता हूँ; मगर क्या फायदा ! इसका फल तुझे ईश्वर देंगे।

श्यामकिशोर चुपचाप नीचे उतरे, न किसी से कुछ कहा न सुना, द्वार खुले छोड़ दिये और गंगा-तट की ओर चले।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', फरवरी, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-5 में संकलित। उर्दू रूप 'फरेब' शीर्षक से 'चन्दन' जुलाई, 1932 में प्रकाशित। 'जादे राह' में संकलित।]

खेल

तीसरा पहर हो गया था। किसान अपने खेतों में पहुँच चुके थे। दरख़्तों के साये झुक चले थे। ईख के हरे-भरे खेतों में ज़ाबज़ा (जगह-जगह) सारस आ बैठे थे। फिर भी धूप तेज़ थी और हवा गर्म। बच्चे अभी तक लू के खौफ़ से घरों से न निकलने पाये थे कि यकायक एक झोंपड़े का दरवाज़ा खुला, और एक चार-पाँच साल के लड़के ने दरवाज़े से झाँका। झोंपड़े के सामने नीम के साये में एक बुढ़िया बैठी अपनी कमज़ोर आँखों पर ज़ोर डाल-डालकर एक टोकरी बुन रही थी। बच्चे को देखते ही उसने पुकारा, "कहाँ जाते हो फुन्दन ? जाकर अन्दर सोओ, धूप बहुत कड़ी है। अभी तो सब लड़के सो रहे हैं।"

फुन्दन ने ठनक कर कहा, "अम्मा तो खेत गोड़ाने गयीं। मुझे अकेले घर में डर लगता है।"

बुढ़िया गाँव भर के बच्चों की दादी थी, जिसका काम बच्चों की आज़ादी में मुख़िल (बाधक) होना था। गढ़िया के किनारे अमियाँ गिरी हुई थीं, लेकिन कोई बच्चा उधर नहीं

जा सकता। गढ़िया में गिर पड़ेगा। बेरों का दरख़्त सुर्ख़ व ज़र्द (लाल और पीले) बेरों से लदा हुआ है। कोई लड़का उस पर चढ़ नहीं सकता, फिसल पड़ेगा। तालाब में कितना साफ़ पानी भरा हुआ है, मछलियाँ उसमें फुदक रही हैं। कमल खिले हुए हैं, पर कोई लड़का तालाब के किनारे नहीं जा सकता, डूब जायेगा। इसलिए बच्चे उसकी सूरत से बेज़ार (विमुख, अप्रसन्न) थे। उसकी आँखें बचाकर सरक जाने की हिक्मतें (युक्तियाँ) सोचा करते थे। मगर बुढ़िया अपने हश्तादसाला (अस्सी वर्ष के) तजुर्बे से उनकी हर एक नक़ल व हरकत को ताड़ जाती थी और कोई-न-कोई पेशबन्दी कर लेती थी।

बुढ़िया ने डाँटा, "मैं तो बैठी हूँ। डर किस बात का है ? जा सो रह, नहीं उठती हूँ।"

लड़के ने दरवाज़े के बाहर आकर कहा, "अब तो निकलने की बेला हो गई।"

"अभी से निकल के कहाँ जाओगे ?"

"कहीं नहीं जाता हूँ दादी।"

वह दस क़दम और आगे बढ़ा। दादी ने टोकरी और सूजा रख दिया और उठना ही चाहती थी कि फुन्दन ने छलाँग मारी और सौ गज़ के फासले पर था। बुढ़िया ने अब सख़्ती से काम न चलते देखकर नरमी से पुकारा, "अभी कहीं मत जा बेटा।"

फुन्दन ने वहीं खड़े-खड़े कहा, "जतीन को देखने जाते हैं", और भागता हुआ गाँव के बाहर निकल गया।

जतीन एक खोंमचे वाले का नाम था। इधर कुछ दिनों से उसने गाँव का चक्कर लगाना शुरु किया था। हर रोज़ शाम को ज़रूर आ जाता। गाँव में पैसों की जगह अनाज मिल जाता था और अनाज असल क़ीमत से कुछ ज़्यादा होता था। किसानों का अन्दाज़ हमेशा फ़ैयाज़ी (दानशीलत) की जानिब (ओर) मायल (उन्मुख) होता है। इसीलिए जमीन करीब के कस्बे से तीन-चार मील की मसाफ़त (फ़ासला) तय करके आता था। उसके खोंचे में मीठे और नमकीन सेव, तिल या रामदाने के लड्डू, कुछ बताशे और खुट्टियाँ, कुछ पट्टी होती थीं। उस पर एक मैला-सा बोसीदा (फटा-पुराना) कपड़ा पड़ा होता था, मगर गाँव के बच्चों के लिए वह ख़्वान-ए-नेमत (अच्छी-अच्छी खाने की चीज़ों से भरा थाल) था, जिसे खड़े होकर देखने के लिए सारे बच्चे बेताब रहते थे। इनकी तिफ़्लाना (बालोचित) सरगर्मियों (संलग्नता, तत्परता) में यह एक दिलचस्प इजाफ़ा हो गया था। सब-के-सब तीसरे पहर ही से जतीन का इन्तज़ार करने लगते थे। हालाँकि ऐसे खुशनसीब लड़के कम थे, जिन्हें इस ख़्वान-ए-नेमत से हक़ाइक़ी (यथार्थ में) फ़ैज़ (लाभ) पहुँचता हो। मगर खोंचे के गिर्द (निकट) ज़मा होकर ख़्वानपोश (थाल पर ढँके कपड़े) को आहिस्ता से उठते और उन नेमतों की रानियों की तरह अपनी-अपनी जगह तकल्लुफ़ (संकोच) से बैठे देखना बजायेखुद (स्वय) बेहद दिलआवेज़ (प्रियदर्शन, खुशनुमा) था। हालाँकि जतीन का आना हर एक घर में कुहराम मचा देता था और आध घण्टे सारे गाँव में हंगामा-सा बरपा (उपस्थित) हो जाता था। मगर बच्चे इसका ख़ैरमक़्दम (स्वागत) करने को मुज़्तरिब (अधीर) रहते थे। यह जानते हुए भी कि जतीन की आमद (आगमन) उनके लिए हँसी का नहीं, रोने का मौक़ा है। सब-के-सब बड़ी बेसब्री से उसके मुन्तज़िर (प्रतीक्षक) रहते थे, क्योंकि मिठाइयों के दर्शन से चाहे ज़बान आसूदा (सन्तुष्ट) न हो, रूहानी तक़्वियत (तसल्ली, सान्त्वना) ज़रूर होती थी। फुन्दन भी इन्हीं ग़रीब लड़कों में था। और लड़के

मिठाइयाँ खाते थे, वह सिर्फ़ ग़रसना (भूखी) निगाहों से देखता था। रोने और रूठने, तिफ़लाना (बालोचित) मिन्नत और ख़ुशामद एक से भी उसकी मक़सद-बरारी (उद्देश्यपूर्ति) न होती थी, गोया नाकामी ही उसकी तक़दीर में लिखी हो। मगर इन नाकामियों के बावजूद उसका हौसला पस्त न होता था।

आज फुन्दन दोपहर को न सोया। जतीन ने आज कच्ची गरी और इमर्तियाँ लाने का ज़िक्र किया था। यह ख़बर लड़कों की उस दुनिया में किसी अहम (महत्त्वपूर्ण) तारीख़ी-वाक़िआ (ऐतिहासिक घटना) से कम न थी। सुबह ही से जतीन की तरफ़ दिल लगा हुआ था। ऐसी आँखों में नींद कहाँ से आती ?

फुन्दन ने बाग़ में पहुँचकर सोचा—क्या अभी सबेरा है ? इस वक़्त तो जतीन आ जाता था, मगर नहीं, अभी सबेर है। चुन्नू और सोहन और कुल्लू एक भी तो नहीं उठे। जतीन सड़क पर पहुँच गया होगा। इमर्तियाँ ज़रूर लायेगा, सुर्ख़ और चिकनी होंगी। एक बार न जाने कब...हाँ, दसहरे के मेले में एक इमर्ती खाई थी। कितनी मज़ेदार थी ! उस जायक़े को याद करके उसके मुँह में पानी भर आया। इश्तियाक़ (उत्कण्ठा, लालसा) और भी तेज़ हो गया। वह बाग़ के आगे निकल गया। अब सड़क तक हमवार (समतल) मैदान था, लेकिन जतीन का कहीं पता न था।

कुछ देर तक फुन्दन गाँव के निकस पर खड़ा जतीन की राह देखता रहा। उसके दिल में एक गुदगुदी उठी—आज मैं सबसे पहले जतीन को पुकारूँगा। मैं जतीन के साथ-साथ गाँव में पहुँचूँगा। तब लोग कितना चकरायेंगे ? इस ख्याल ने उसके इश्तियाक़ में बेसब्री का इज़ाफ़ा कर दिया। वह तालियाँ बजा-बजाकर दिल-ही-दिल में चहकता हुआ सड़क की तरफ चला।

इत्तिफ़ाक़ (संयोग) से उसी वक़्त गेंदा आ गया। यह गाँव का पंचायती कुत्ता था, चौकीदार का चौकीदार, खिलौने का खिलौना। हस्बे-मामूल (नित्य नियमानुसार) तीसरे पहर का गश्त लगाने निकला था। इसी वक़्त साँड़ और बैल खेतों में घुसते थे। यहाँ पहुँचा तो फुन्दन को देखकर रुक गया और दुम हिलाकर गोया पूछा—तुम आज यहाँ क्यूँ आये ? फुन्दन ने उसके सिर पर थपकियाँ दीं, मगर गेंदा को ज़्यादा बातचीत करने की मुहलत (फुर्सत) न थी। वह आगे बढ़ा तो फुन्दन भी उसके पीछे दौड़ा। अब उसके दिल में एक ताजा उमंग पैदा हो रही थी। वह तनहा (अकेला) न था। उसका रफ़ीक़ (दोस्त) भी साथ था। वह अब कच्ची सड़क पर जतीन का ख़ैरमक़्दम (स्वागत) करना चाहता था। सड़क पर पहुँचकर उसने दूर तक निगाह दौड़ाई। जतीन का कहीं निशान नहीं था। कई बार उसे वहम हुआ, वह जतीन आ रहा है, मगर एक लम्हे में उसका इज़ाला (निवारण) हो गया। सड़क पर नाज़िरी (दर्शनीय) दिलचस्पियों की कमी न थी। बैल-गाड़ियों की कतारें थीं। कभी-कभी एक्के और पैर-गाड़ियाँ भी निकल जाती थीं। एक बार एक ऊँट भी नज़र आया, जिसके पीछे वह कई सौ क़दम तालियाँ बजाता गया, मगर इन सरीउस्सैर (शीघ्रगामी) दिलचस्पियों में वह इश्तियाक़ (लालसा) किसी मीनार की तरह खड़ा था।

सड़क के किनारे दो रोया (रूखे, आमने-सामने) दरख़्त खड़े थे। उनमें आम के दरख़्त भी थे। इस इश्तियाक़ (उत्कण्ठा, लालसा) में उसे आमों पर निशाने मारने का एक दिलचस्प मशग़ला (काम) हाथ आया, मगर आँखें जतीन के लिए बरसरे-राह (ठीक

रास्ते पर) थीं। यह बात क्या है, आज वह आ क्यूँ नहीं रहा है ?

रफ़्ता-रफ़्ता (धीरे-धीरे) साया लम्बा हो गया। धूप किसी थके हुए मुसाफ़िर की तरह पाँव फैलाकर सोती हुई मालूम हुई। अब तक जतीन के आने की उम्मीद रही। उम्मीद में वक़्त उड़ता चला जाता था। मायूसी में वह गोया घुटने तोड़कर बैठ गया। फुन्दन की आँखों से बेअख़्तियार उम्मीद-ए-शिकस्ता (भग्न आशा) के आँसू बहने लगे। हिचकियाँ बँध गई। जतीन कितना बेरहम है ! रोज़ आप ही दौड़ा आता था। आज जब मैं दौड़ा आया तो घर बैठ रहा। कल आयेगा तो गाँव में घुसने न दूँगा। उसकी तिफ़लाना (बालोचित) आरजूएँ अपनी सारी वल्वला (उत्साह) अंगेज़ियों (पूर्वक) के साथ उसके दिल को मसोसने (मथने) लगीं।

दफ़अतन (सहसा) उसे ज़मीन पर एक टूटा हुआ झब्बा नज़र आया। इस यास-ओ-नाकामी (निराशा और असफलता) के आलम में बचपन की फितरी (नैसर्गिक) खुशवाशी (निश्चिन्तता) ने अनदोह रूबाई (दुख दूर करने) का सामान पैदा कर दिया। कुछ पत्तियाँ चुनकर झब्बे में बिछाई। उसमें कुछ बजरियाँ और कंकड़ चुनकर रखे। अपना कुर्ता उतारकर उसको ढाँका और उसे सिर पर रखकर गाँव की तरफ़ चला। अब वह जतीन का मुतलाशी (ढूँढ़ने वाला) लड़का न था, खुद जतीन था। वही ख़्वान-ए-नेमत (अच्छी-अच्छी खाने की चीज़ों से भरा थाल) सिर पर रखे उसी तरह मुहमल (अर्थहीन) सदा (आवाज़) लगाता हुआ, रफ़्तार भी वही, तर्जे-कलाम (बात करने का ढंग) भी वही। जतीन के आगे-आगे चलकर क्या उसे वह मुसर्रत (खुशी) हो सकती थी जो इस वक़्त जतीन बनकर हो रही थी ? वह हवा में उड़ा जा रहा था—सराब (मृग-तृष्णा) में हक़ीक़त का मज़ा लेता हुआ, नकल में अस्ल की सूरत देखता हुआ। खुशी अस्बाब (कारण) से किस क़दर बेनियाज़ (निःस्पृह, आज़ाद) है। इसकी चाल कितनी मस्ताना थी ? गुरूर से उसका सिर कितना उठा हुआ था ?

वाकेइयत (यथार्थतः) का उसका तिफ़लाना (बालोचित) चेहरे पर ऐसा मुलम्मा था कि क्या मजाल ज़रा भी हँसी आ जाय। इस शान से वह गाँव में दाख़िल हुआ। लड़कों ने उसकी आवाज़ सुनी "रेवड़ी कड़ाकेदार", और सब-के-सब दौड़े आन-की-आन में। फुन्दन मुशताक (उत्सुक) सूरतों से महसूर (घिरा हुआ) हो गया, उसी तरह जैसे जतीन हो जाता था। किसी ने न पूछा, यह क्या स्वाँग है ? दिल ने दिल की बात समझी। मिठाइयों की खरीद होने लगी। ठिकरों के पैसे थे, कंकड़ और बजरियों की मिठाई। इस खेल में लुत्फ़ कहीं ज़्यादा था। माद्दियत (भौतिकता) में रूहानियत (आध्यात्मिकता) का अन्दाज़ कहाँ, मुसर्रत कहाँ, एहसास-ए-परवाज़ (उड़ने का अनुभव) कहाँ ?

मुन्नू ने एक ठीकरा देकर कहा, "जतीन, एक पैसे की खुट्टियाँ दे दो।"

जतीन ने एक पत्ते में तीन-चार कंकड़ रखकर दे दिए।

खुट्टियों में इतनी शीरीनी (मिठास), इतनी लज़्ज़त (आनन्द, स्वाद) कब हासिल हुई थी ?

[प्रथम प्रकाशन उर्दू में। उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', अप्रैल, 1931 में प्रकाशित। हिन्दी रूप 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' खण्ड-1 में संकलित।]

डिमांसट्रेशन

महाशय गुरुप्रसादजी रसिक जीव हैं, गाने-बजाने का शौक है, खाने-खिलाने का शौक है और सैर-तमाशे का शौक है; पर उसी मात्रा में द्रव्योपार्जन का शौक नहीं है। यों वह किसी के मुँहताज नहीं हैं, भले आदमियों की तरह हैं और हैं भी भले आदमी; मगर किसी काम में चिमट नहीं सकते। गुड़ होकर भी उनमें लस नहीं है। वह कोई ऐसा काम उठाना चाहते हैं, जिसमें चटपट कारूँ का खजाना मिल जाय और हमेशा के लिए बेफिक्र हो जायँ। बैंक से छमाही सूद चला आये, खायें और मजे से पड़े रहें; किसी ने सलाह दी नाटक-कम्पनी खोलो। उनके दिल में भी बात जम गई। मित्रों को लिखा—मैं ड्रामेटिक कंपनी खोलने जा रहा हूँ, आप लोग ड्रामे लिखना शुरू कीजिए। कंपनी का प्रासपेक्टस बना, कई महीने उसकी खूब चर्चा रही, कई बड़े-बड़े आदमियों ने हिस्से खरीदने के वादे किये। लेकिन न हिस्से बिके, न कंपनी खड़ी हुई। हाँ, इसी धुन में गुरुप्रसादजी ने एक नाटक की रचना कर डाली और यह फिक्र हुई कि इसे किसी कंपनी को दिया जाय। लेकिन यह तो मालूम ही था, कि कंपनी वाले एक ही घाघ होते हैं। फिर हरेक कंपनी में उसका एक नाटककार भी होता है। वह कब चाहेगा कि उसकी कंपनी में किसी बाहरी आदमी का प्रवेश हो। वह इस रचना में तरह-तरह के ऐब निकालेगा और कंपनी के मालिक को भड़का देगा। इसलिए प्रबन्ध किया गया, कि मालिकों पर नाटक का कुछ ऐसा प्रभाव जमा दिया जाय कि नाटककार महोदय की कुछ दाल न गल सके। पाँच सज्जनों की एक कमेटी बनाई गई, उसमें सारा प्रोग्राम विस्तार के साथ तय किया गया और दूसरे दिन पाँच सज्जन गुरुप्रसादजी के साथ नाटक दिखाने चले। ताँगे आ गये। हारमोनियम, तबला आदि सब उस पर रख दिये गये; क्योंकि नाटक का डिमांसट्रेशन (demonstration) करना निश्चित हुआ था।

सहसा विनोदबिहारी ने कहा—यार, ताँगे पर जाने में तो कुछ बदरोबी होगी। मालिक सोचेगा, यह महाशय यों हीं हैं। इस समय दस-पाँच रुपये का मुँह न देखना चाहिए। मैं तो अंग्रेजों की विज्ञापनबाजी का कायल हूँ कि रुपये में पंद्रह आने उसमें लगाकर शेष एक आने में रोजगार करते हैं। कहीं से दो मोटरें मँगानी चाहिए।

रसिकलाल बोले—लेकिन किराये की मोटरों से वह बात न पैदा होगी, जो आप चाहते हैं। किसी रईस से दो मोटरें माँगनी चाहिए, मारिस हो या नये चाल की ऑस्टिन।

बात सच्ची थी। भेष से भीख मिलती है। विचार होने लगा कि किस रईस से याचना की जाय। अजी, वह महा खूसट है। सबेरे उसका नाम ले लो तो दिन भर पानी न मिले। अच्छा सेठजी के पास चलें तो कैसा ? मुँह धो रखिए, उसकी मोटरें अफसरों के लिए रिजर्व हैं, अपने लड़के तक को कभी बैठने नहीं देता, आपको दिये देता है। तो फिर कपूर साहब के पास चलें। अभी उन्होंने नई मोटर ली है। अजी, उसका नाम न लो। कोई-न-कोई बहाना करेगा, ड्राइवर नहीं है, मरम्मत में है।

गुरुप्रसाद ने अधीर होकर कहा—तुम लोगों ने तो व्यर्थ का बखेड़ा कर दिया। ताँगों पर चलने में क्या हरज था ?

विनोदबिहारी ने कहा—आप तो घास खा गये हैं। नाटक लिख लेना दूसरी बात है और मुआमले को पटाना दूसरी बात है। रुपये पृष्ठ सुना देगा, अपना-सा मुँह लेकर रह जाओगे।

अमरनाथ ने कहा—मैं तो समझता हूँ, मोटर के लिए किसी राजा-रईस की खुशामद करना बेकार है। तारीफ तो जब है कि पाँव-पाँव चलें और वहाँ ऐसा-ऐसा रंग जमायें कि मोटर से भी ज्यादा शान रहे।

विनोदबिहारी उछल पड़े। सब लोग पाँव-पाँव चलें। वहाँ पहुँचकर किस तरह बातें शुरू होंगी, किस तरह तारीफों के पुल बाँधे जाएँगे, किस तरह ड्रामेटिस्ट साहब को खुश किया जायगा, इस पर बहस होती जाती थी।

हम लोग कम्पनी के कैंप में कोई दो बजे पहुँचे। वहाँ मालिक साहब, उनके ऐक्टर, नाटककार सब पहले ही से हमारा इन्तजार कर रहे थे। पान, इलायची, सिगरेट मँगा लिए थे।

ऊपर जाते ही रसिकलाल ने मालिक से कहा—क्षमा कीजिएगा, हमें आने में देर हुई। हम मोटर से नहीं, पाँव-पाँव आये हैं। आज यही सलाह हुई कि प्रकृति की छटा का आनन्द उठाते चलें; गुरुप्रसादजी तो प्रकृनि के उपासक हैं। इनका बस होता, तो आज चिमटा लिये या तो कहीं भीख माँगते होते, या किसी पहाड़ी गाँव में वटवृक्ष के नीचे बैठे पक्षियों का चहकना सुनते होते।

विनोद ने रद्दा जमाया—और आये भी तो सीधे रास्ते से नहीं, जाने कहाँ-कहाँ का चक्कर लगाते, ख.क छानते। पैरों में जैसे सनीचर है।

अमर ने और रंग जमाया—पूरे सतजुगी आदमी हैं। नौकर-चाकर तो मोटरों पर सवार होते हैं और आप गली-गली मारे-मारे फिरते हैं। जब और रईस मीठी नींद के मजे लेते होते हैं, तो आप नदी के किनारे ऊषा का शृंगार देखते हैं।

मस्तराम ने फरमाया—कवि होना, मानो दीन-दुनिया से मुक्त हो जाना है। गुलाब की एक पंखड़ी लेकर उसमें न जाने क्या घंटों देखा करते हैं। प्रकृति की उपासना ने ही यूरोप के बड़े-बड़े कवियों को आसमान पर पहुँचा दिया है। यूरोप में होते तो आज इनके द्वार पर हाथी झूमता होता। एक दिन एक बालक को रोते देखकर आप रोने लगे। पूछता हूँ—भाई क्यों रोते हो, तो और रोते हैं। मुँह से आवाज नहीं निकलती। बड़ी मुश्किल से आवाज निकली।

विनोद—जनाब ! कवि का हृदय कोमल भावों का स्रोत है, मधुर संगीत का भण्डार है, अनन्त का आईना है।

रसिक—क्या बात कही है आपने, अनन्त का आईना है ! वाह ! कवि की सोहबत में आप भी कुछ कवि हुए जा रहे हैं।

गुरुप्रसाद ने नम्रता से कहा—मैं कवि नहीं हूँ और न मुझे कवि होने का दावा है। आप लोग मुझे जबरदस्ती कवि बनाये देते हैं। कविता स्रष्टा की वह अद्भुत रचना है जो पंचभूतों की जगह नौ रसों से बनती है।

मस्तराम—आपका यही एक वाक्य है, जिस पर सैकड़ों कविताएँ न्योछावर हैं। सुनी आपने रसिकलाल जी, कवि की महिमा। याद कर लीजिए, रट डालिए।

रसिकलाल—कहाँ तक याद करें, भैया, यह तो सूक्तियों में बातें करते हैं। और नम्रता का यह हाल है कि अपने को कुछ समझते ही नहीं। महानता का यही लक्षण है। जिसने अपने को कुछ समझा, वह गया। (कम्पनी के स्वामी से) आप तो अब खुद ही

सुनेंगे, इस ड्रामे में अपना हृदय निकालकर रख दिया है। कवियों में जो एक प्रकार का अल्हड़पन होता है, उसकी आप में कहीं गन्ध भी नहीं। इस ड्रामे की सामग्री जमा करने के लिए आपने कुछ नहीं तो एक हजार बड़े-बड़े पोथों का अध्ययन किया होगा। वाजिदअली शाह को स्वार्थी इतिहास-लेखकों ने कितना कलंकित किया है, आप लोग जानते ही हैं। उस लेख-राशि को छाँटकर उसमें से सत्य के तत्त्व खोज निकालना आप ही का काम था !

विनोद—इसीलिए हम और आप दोनों कलकत्ता गये और वहाँ कोई छः महीने मटियाबुर्ज की खाक छानते रहे। वाजिदअली शाह की हस्तलिखित एक पुस्तक की तलाश की। उसमें उन्होंने खुद अपनी जीवन-चर्चा लिखी है। एक बुढ़िया की पूजा की गई, तब कहीं जाके छः महीने में किताब मिली।

अमरनाथ—पुस्तक नहीं रत्न है।

मस्तराम—उस वक्त तो उसकी दशा कोयले की थी, गुरुप्रसादजी ने उस पर मोहर लगाकर अशर्फी बना दिया। ड्रामा ऐसा चाहिए कि जो सुने, दिल हाथों से थाम ले। एक-एक वाक्य दिल में चुभ जाय।

अमरनाथ—संसार-साहित्य के सभी नाटकों को आपने चाट डाला और नाट्य-रचना पर सैकड़ों किताबें पढ़ डालीं।

विनोद—जभी तो चीज भी लासानी हुई है।

अमरनाथ—लाहौर ड्रामेटिक क्लब का मालिक हफ्ते भर यहाँ पड़ा रहा, पैरों पड़ा कि मुझे यह नाटक दे दीजिए, लेकिन आपने न दिया। जब ऐक्टर ही अच्छे नहीं, तो उनसे अपना ड्रामा खेलवाना उसकी मिट्टी खराब कराना था। इस कम्पनी के ऐक्टर माशाअल्लाह अपना जवाब नहीं रखते और इसके नाटककार की सारे जमाने में धूम है। आप लोगों के हाथों में पड़कर यह ड्रामा धूम मचा देगा।

विनोद—एक तो लेखक साहब खुद शैतान से ज्यादा मशहूर हैं, उस पर यहाँ के ऐक्टरों का नाट्य-कौशल ! शहर लुट जायगा।

मस्तराम—रोज ही तो किसी-न-किसी कम्पनी का आदमी सिर पर सवार रहता है, मगर बाबू साहब किसी से सीधे मुँह बात नहीं करते।

विनोद—बस एक यह कम्पनी है, जिसके तमाशे के लिए दिल बेकरार रहता है, नहीं तो और जितने ड्रामे खेले जाते हैं दो कौड़ी के। मैंने तमाशा देखना ही छोड़ दिया।

गुरुप्रसाद—नाटक लिखना बच्चों का खेल नहीं है; खूने जिगर पीना पड़ता है। मेरे खयाल में एक नाटक लिखने के लिए पाँच साल का समय भी काफी नहीं। बल्कि अच्छा ड्रामा जिंदगी में एक ही लिखा जा सकता है। यों कलम घिसना दूसरी बात है। बड़े-बड़े धुरंधर आलोचकों का यही निर्णय है कि आदमी जिंदगी में एक ही नाटक लिख सकता है। रूस, फ्रांस, जर्मनी सभी देशों के ड्रामे पढ़े; पर कोई-न-कोई दोष सभी में मौजूद, किसी में भाव है तो भाषा नहीं, भाषा है तो भाव नहीं। हास्य है तो गाना नहीं, गाना है तो हास्य नहीं। जब तब भाव, भाषा, हास्य और गाना यह चारों अंग पूरे न हों, उसे ड्रामा कहना ही न चाहिए। मैं तो बहुत ही तुच्छ आदमी हूँ, कुछ आप लोगों की सोहबत में शुदबुद आ गया। मेरी रचना की हस्ती ही क्या। लेकिन ईश्वर ने चाहा, तो ऐसे दोष आपको न मिलेंगे।

विनोद—जब आप उस विषय के मर्मज्ञ हैं, तो दोष रह ही कैसे सकते हैं।

रसिकलाल—दस साल तक तो आपने केवल संगीत-कला का अभ्यास किया है। घर के हजारों रुपये उस्तादों को भेंट कर दिये, फिर भी दोष रह जाय, तो दुर्भाग्य है।

रिहर्सल

रिहर्सल शुरू और वाह ! वाह ! हाय ! हाय ! का तार बँधा। कोरस सुनते ही ऐक्टर और प्रोप्राइटर और नाटककार सभी मानो जाग पड़े। भूमिका ने उन्हें विशेष प्रभावित किया था, पर असली चीज सामने आते ही आँखें खुलीं। समां बँध गया। पहला सीन आया। आँखों के सामने वाजिदअली शाह के दरबार की तसवीर खिंच गई। दरबारियों की हाजिर-जवाबी और फड़कते हुए लतीफे ! वाह ! वाह ! क्या कहना है ! क्या वाक्य रचना थी, क्या शब्द योजना थी, रसों का कितना सुरुचि से भरा हुआ समावेश था ! तीसरा दृश्य हास्यमय था। हँसते-हँसते लोगों की पसलियाँ दुखने लगीं, स्थूलकाय स्वामी की संयत अविचलता भी आसन से डिग गई। चौथा सीन करुणाजनक था। हास्य के बाद करुणा, आँधी के बाद आने वाली शान्ति थी। विनोद आँखों पर हाथ रखे, सिर झुकाये जैसे रो रहे थे। मस्तराम बार-बार ठंडी आहें खींच रहे थे और अमरनाथ बार-बार सिसकियाँ भर रहे थे। इसी तरह सीन-पर-सीन और अंक-पर-अंक समाप्त होते गये, यहाँ तक कि जब रिहर्सल समाप्त हुआ, तो दीपक जल चुके थे।

सेठजी अब तक सोंठ बने हुए बैठे थे। ड्रामा समाप्त हो गया, पर उनके मुखारविंद पर उनके मनोविचार का लेशमात्र भी आभास न था। जड़ भरत की तरह बैठे हुए थे, न मुसकराहट थी, न कुतूहल, न हर्ष; न कुछ। विनोदबिहारी ने मुआमले की बात पूछी—तो इस ड्रामा के बारे में श्रीमान् की क्या राय है ?

सेठजी ने उसी विरक्त भाव से उत्तर दिया—मैं इसके विषय में कल निवेदन करूँगा। कल यहीं भोजन भी कीजिएगा। आप लोगों के लायक भोजन तो क्या होगा, उसे केवल विदुर का साग समझकर स्वीकार कीजिए।

पंच पांडव बाहर निकले, तो मारे खुशी के सबकी बाछें खिली जाती थीं।

विनोद—पाँच हजार की थैली है। नाक-नाक बद सकता हूँ।

अमरनाथ—पाँच हजार है कि दस, यह तो नहीं कह सकता, पर रंग खूब जम गया।

रसिक—मेरा अनुमान तो चार हजार का है।

मस्तराम—और मेरा विश्वास है कि दस हजार से कम वह कहेगा ही नहीं। मैं तो सेठ के चेहरे की तरफ ध्यान से देख रहा था। आज ही कह देता; पर डरता था, कहीं ये लोग अस्वीकार न कर दें। उसके होंठों पर तो हँसी न थी; पर मगन हो रहा था।

गुरुप्रसाद—मैंने पढ़ा भी तो जी तोड़कर।

विनोद—ऐसा जान पड़ता था तुम्हारी वाणी पर सरस्वती बैठ गई हैं। सभी की आँखें खुल गईं।

रसिक—मुझे उसकी चुप्पी से जरा संदेह होता है।

अमर—आपके संदेह का क्या कहना। आपको ईश्वर पर भी संदेह है।

मस्तराम—ड्रामेटिस्ट भी बहुत खुश हो रहा था। दस-बारह हजार का वारा-न्यारा है। भई, आज इस खुशी में एक दावत होनी चाहिए।

गुरुप्रसाद—अरे, तो कुछ बोहनी-बट्टा तो हो जाय।

मस्तराम—जी नहीं, तब तो जलसा होगा। आज दावत होगी।

विनोद—भाग्य के बली हो तुम गुरुप्रसाद।

रसिक—मेरी राय है, जरा उस ड्रामेटिस्ट को गाँठ लिया जाय। उसका मौन मुझे भयभीत कर रहा है।

मस्तराम—आप तो वाही हुए हैं। वह नाक रगड़कर रह जाय, तब भी यह सौदा होकर रहेगा। सेठजी अब बचकर निकल नहीं सकते।

विनोद—हम लोगों की भूमिका भी तो जोरदार थी।

अमर—उसी ने तो रंग जमा दिया। अब कोई छोटी रकम कहने का उसे साहस न होगा।

अभिनय

रात को गुरुप्रसाद के घर मित्रों की दावत हुई। दूसरे दिन कोई 6 बजे पाँचों आदमी सेठजी के पास जा पहुँचे। संध्या का समय हवाखोरी का है। आज मोटर पर न आने के लिए बना-बनाया बहाना था। सेठजी आज बेहद खुश नजर आते थे। कल की वह मुहर्रमी सूरत अंतर्धान हो गयी थी। बात-बात पर चहकते थे, हँसते थे, जैसे लखनऊ का कोई रईस हो। दावत का सामान तैयार था। मेजों पर भोजन चुना जाने लगा। अंगूर, संतरे, केले, सूखे मेवे, कई किस्म की मिठाइयाँ, कई तरह के मुरब्बे, शराब आदि सजा दिये गये और यारों ने खूब मजे से दावत खाई। सेठजी मेहमाननवाजी के पुतले बने हुए हरेक मेहमान के पास आ-आकर पूछते—कुछ और मँगवाऊँ ? कुछ तो और लीजिए। आप लोगों के लायक भोजन यहाँ कहाँ बन सकता है।

भोजन के उपरांत लोग बैठे, तो मुआमले की बातचीत होने लगी। गुरुप्रसाद का हृदय आशा और भय से काँपने लगा।

सेठजी—हुजूर ने बहुत ही सुंदर नाटक लिखा है। क्या बात है।

ड्रामेटिस्ट—यहाँ जनता अच्छे ड्रामों की कद्र नहीं करती, नहीं तो यह ड्रामा लाजवाब होता।

सेठजी—जनता कद्र नहीं करती न करे, हमें जनता की बिलकुल परवाह नहीं है, रत्ती बराबर परवाह नहीं है। मैं इसकी तैयारी में पचास हजार केवल बाबू साहब की खातिर से खर्च कर दूँगा। आपने इतनी मेहनत से एक चीज लिखी है, तो मैं उसका प्रचार भी उतने ही हौसले से करूँगा। हमारे साहित्य के लिए क्या यह कुछ कम सौभाग्य की बात है कि आप-जैसे महान् पुरुष इस क्षेत्र में आ गये। यह कीर्ति हुजूर को अमर बना देगी।

ड्रामेटिस्ट—मैंने तो ऐसा ड्रामा आज तक नहीं देखा। लिखता मैं भी हूँ और लोग भी लिखते हैं। लेकिन आपकी उड़ान को कोई क्या पहुँचेगा ! कहीं-कहीं तो आपने शेक्सपियर को भी मात कर दिया है।

सेठजी—तो जनाब, जो चीज दिल की उमंग से लिखी जाती है, वह ऐसी ही अद्वितीय होती है। शेक्सपियर ने जो कुछ लिखा, रुपये के लोभ से लिखा। हमारे दूसरे नाटककार भी धन ही के लिए लिखते हैं। उनमें वह बात कहाँ पैदा हो सकती है। गोसाईं

जी की रामायण क्यों अमर है, इसीलिए कि वह भक्ति और प्रेम से प्रेरित होकर लिखी गई है। सादी की गुलिस्ताँ और बोस्ताँ, होमर की रचनाएँ, इसीलिए स्थायी हैं कि उन कवियों ने दिल की उमंग से लिखा। जो उमंग से लिखता है, वह एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य, एक-एक उक्ति पर महीनों खर्च कर देता है। धनेच्छु को तो एक काम जल्दी से समाप्त करके दूसरा काम शुरू करने की फिक्र होती है।

ड्रामेटिस्ट—आप बिलकुल सत्य कह रहे हैं। हमारे साहित्य की अवनति केवल इसलिए हो रही है कि हम सब धन के लिए या नाम के लिए लिखते हैं।

सेठजी—सोचिए, आपने दस साल केवल संगीत-कला में खर्च कर दिये। लाखों रुपये कलावंतों और गायकों को दे डाले होंगे। कहाँ-कहाँ से और कितने परिश्रम और खोज से इस नाटक की सामग्री एकत्र की। न जाने कितने राजों-महाराजों को सुनाया। इस परिश्रम और लगन का पुरस्कार कौन दे सकता है।

ड्रामेटिस्ट—मुमकिन ही नहीं। ऐसी रचनाओं के पुरस्कार की कल्पना करना ही उनका अनादर करना है। इनका पुरस्कार यदि कुछ है, तो वह अपनी आत्मा का संतोष है, वह संतोष आपके एक-एक शब्द से प्रकट होता है।

सेठजी- आपने बिलकुल सत्य कहा कि ऐसी रचनाओं का पुरस्कार अपनी आत्मा का संतोष है। यश तो बहुधा ऐसी रचनाओं को मिल जाता है, जो साहित्य के कलंक हैं। आपसे ड्रामा ले लीजिए और आज ही पार्ट भी तकसीम कर दीजिए। तीन महीने के अन्दर इसे खेल डालना होगा।

मेज पर ड्रामे की हस्तलिपि पड़ी हुई थी। ड्रामेटिस्ट ने उसे उठा लिया। गुरुप्रसाद ने दीन नेत्रों से विनोद की ओर देखा, विनोद ने अमर की ओर, अमर ने रसिक की ओर, पर शब्द किसी के मुँह से न निकला। सेठजी ने मानो, सभी के मुँह-सी दिये हों। ड्रामेटिस्ट साहब किताब लेकर चल दिये।

सेठजी ने मुस्कराकर कहा—हुजूर को थोड़ी-सी तकलीफ और करनी होगी। ड्रामा का रिर्हसल शुरू हो जायगा, तो आपको थोड़े दिनों कंपनी के साथ रहने का कष्ट उठाना पड़ेगा। हमारे ऐक्टर अधिकांश गुजराती हैं। वह हिन्दी भाषा के शब्दों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते। कहीं-कहीं शब्दों पर अनावश्यक जोर देते हैं। आपकी निगरानी से यह सारी बुराइयाँ दूर हो जायँगी। ऐक्टरों ने यदि पार्ट अच्छा न किया, तो आपके सारे परिश्रम पर पानी पड़ जायगा।

यह कहते हुए उन्होंने लड़के को आवाज दी—बॉय ! आप लोगों के लिए सिगार लाओ।

सिगार आ गया। सेठजी उठ खड़े हुए। यह मित्र-मंडली के लिए विदाई की सूचना थी। पाँचों सज्जन भी उठे। सेठजी आगे-आगे द्वार तक आये। फिर सबसे हाथ मिलाते हुए कहा—आज इस गरीब कम्पनी का तमाशा देख लीजिए। फिर यह संयोग न जाने कब प्राप्त हो।

गुरुप्रसाद ने मानो किसी कब्र के नीचे से कहा—हो सका तो आ जाऊँगा।

सड़क पर आकर पाँचों मित्र खड़े होकर एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। तब पाँचों ही जोर से कहकहा मारकर हँस पड़े।

विनोद ने कहा—यह हम सबका गुरुघंटाल निकला।

अमर—साफ आँखों में धूल झोंक दी।

रसिक—मैं उसकी चुप्पी देखकर पहले ही डर रहा था कि यह कोई पल्ले सिरे का घाघ है।

मस्त—मान गया इसकी खोपड़ी को। यह चपत उम्र भर न भूलेगी।

गुरुप्रसाद इस आलोचना में शरीक न हुए। वह इस तरह सिर झुकाये चले जा रहे थे, मानो अभी तक वह स्थिति को समझ ही न पाये हों।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'प्रेमा', अप्रैल, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से उर्दू पत्रिका 'हुमायूं', जनवरी, 1932 में प्रकाशित। उर्दू कहानी संग्रह 'आखिरी तोहफा' में संकलित।]

होली का उपहार

मैकूलाल अमरकांत के घर शतरंज खेलने आए, तो देखा, वह कहीं बाहर जाने की तैयारी कर रहे हैं। पूछा—कहीं बाहर की तैयारी कर रहे हो क्या भाई ? फुर्सत हो, तो आओ, आज दो-चार बाजियां हो जाएं।

अमरकांत ने संदूक में आईना-कंघी रखते हुए कहा—नहीं भाई, आज तो बिल्कुल फुर्सत नहीं है। कल जरा ससुराल जा रहा हूं। सामान-आमान ठीक कर रहा हूं।

मैकू—तो आज ही से क्या तैयारी करने लगे। चार कदम तो है। शायद पहली ही बार जा रहे हो ?

अमर—हां यार, अभी एक बार भी नहीं गया। मेरी इच्छा तो अभी जाने को न थी; पर ससुरजी आग्रह कर रहे हैं।

मैकू—तो कल शाम को उठना और चल देना। आध घंटे में तो पहुंच जाओगे।

अमर—मेरे हृदय में तो अभी से न जाने कैसी धड़कन हो रही है। अभी तक तो कल्पना में पत्नी-मिलन का आनंद लेता था। अब वह कल्पना प्रत्यक्ष हुई जाती है। कल्पना सुंदर होती है, प्रत्यक्ष क्या होगा, कौन जाने।

मैकू—तो कोई सौगात ले ली है ? खाली हाथ न जाना, नहीं मुंह ही सीधा न होगा।

अमरकांत ने कोई सौगात न लिया था। इस कला में अभी अभ्यस्त न हुए थे।

मैकू बोला—तो अब ले लो भले आदमी ! पहली बार जा रहे हो, भला वह दिल में क्या कहेंगी ?

अमर—तो क्या चीज ले जाऊं ? मुझे तो इसका खयाल ही नहीं आया। कोई ऐसी चीज बताओ, जो कम खर्च और बालानशीन हो; क्योंकि घर भी रुपये भेजने हैं, दादा ने रुपये मांगे हैं।

मैकू मां-बाप से अलग रहता था। व्यंग्य करके बोला—जब दादा ने रुपये मांगे हैं, तो भला कैसे टाल सकते हो ! दादा का रुपये मांगना कोई मामूली बात तो है नहीं।

अमरकांत ने व्यंग्य न समझकर कहा—हां, इसी वजह से तो मैंने होली के लिए कपड़े भी नहीं बनवाए। मगर जब कोई सौगात ले जाना भी जरूरी है, तो कुछ-न-कुछ तो लेना ही पड़ेगा। हल्के दामों की कोई चीज बतलाओ।

दोनों मित्रों में विचार-विनिमय होने लगा। विषय बड़े ही महत्त्व का था। उसी आधार पर भावी दांपत्य-जीवन सुखमय या इसके प्रतिकूल हो सकता था। पहले दिन बिल्ली को मारना अगर जीवन पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है, तो पहला उपहार क्या कम महत्त्व का विषय है ? देर तक बहस होती रही; पर कोई निश्चय न हो सका।

उसी वक्त एक पारसी महिला एक नए फैशन की साड़ी पहने हुए मोटर पर निकल गई। मैकूलाल ने कहा—अगर ऐसी एक साड़ी ले लो, तो वह जरूर खुश हो जाएँ। कितना सूफियाना रंग है और वजा कितनी निराली ! मेरी आंखों में तो जैसे बस गई। हाशिम की दुकान से ले लो। पचीस रुपये में आ जाएगी।

अमरकांत भी उस साड़ी पर मुग्ध हो रहा था। वधू यह साड़ी देखकर कितनी प्रसन्न होगी और उसके गोरे रंग पर यह कितना खिलेगी, वह इसी कल्पना में मग्न था। बोला—हां, यार, पसंद तो मुझे भी है; लेकिन हाशिम की दुकान पर तो पिकेटिंग हो रही है।

"तो होने दो। खरीदने वाले खरीदते ही हैं। अपनी इच्छा है। जो चीज चाहते हैं, खरीदते हैं, किसी के बाबा का साझा है ?"

अमरकांत ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—यह तो सत्य है; लेकिन मेरे लिए स्वयंसेवकों के बीच से दुकान में जाना संभव नहीं है। फिर तमाशाइयों की हरदम भीड़ भी तो लगी रहती है।

मैकू ने मानो उसकी कायरता पर दया करके कहा—तो पीछे के द्वार से चले जाना। वहां पिकेटिंग नहीं होती।

"किसी देशी दुकान पर न मिल जाएगी ?"

"हाशिम की दुकान के सिवा और कहीं न मिलेगी।"

2

संध्या हो गई थी। अमीनाबाद में आकर्षण का उदय हो गया था। सूर्य की प्रतिभा विद्युत-प्रकाश के बुलबुलों में अपनी स्मृति छोड़ गई थी।

अमरकांत दबे पांव हाशिम की दुकान के सामने पहुंचा। स्वयंसेवकों का धरना भी था और तमाशाइयों की भीड़ भी। उसने दो-तीन बार अंदर जाने के लिए कलेजा मजबूत किया; पर फुटपाथ तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

मगर साड़ी लेना जरूरी था। वह उसकी आंखों में खुब गई थी। वह उसके लिए पागल हो रहा था।

आखिर उसने पिछवाड़े के द्वार से जाने का निश्चय किया। जाकर देखा, अभी तक वहां कोई वालंटियर न था। जल्दी से एक सपाटे में भीतर चला गया और बीस-पच्चीस मिनट में उसी नमूने की एक साड़ी लेकर फिर उसी द्वार पर आया; पर इतनी ही देर में परिस्थिति बदल चुकी थी। तीन स्वयंसेवक आ पहुंचे थे। अमरकांत एक मिनट तक द्वार पर दुविधे में खड़ा रहा। फिर तीर की तरह निकल भागा और अंधाधुंध भागता चला गया।

दुर्भाग्य की बात ! एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई चली आ रही थी। अमरकांत उससे टकरा गया। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी गालियां देने–आंखों में चर्बी छा गई है क्या ? देखकर नहीं चलते ? यह जवानी ढै जाएगी एक दिन।

अमरकांत के पांव आगे न जा सके। बुढ़िया को उठाया और उससे क्षमा मांग रहे थे कि तीनों स्वयंसेवकों ने पीछे से आकर उन्हें घेर लिया। एक स्वयंसेवक ने साड़ी के पैकेट पर हाथ रखते हुए कहा–बिल्लाती कपड़ा ले जाए का हुक्म नहीं न। बुलाइत है, तो सुनत नाहीं हौ।

दूसरा बोला–आप तो ऐसे भागे, जैसे कोई चोर भागे।

तीसरा–हज्जारन मनई पकर-पकरके जेहल में भरा जात अहैं; देश मां आग लगी है, और इनका मन बिल्लाती माल से नहीं भरा।

अमरकांत ने पैकेट को दोनों हाथों से मजबूत पकड़कर कहा–तुम लोग मुझे जाने दोगे या नहीं ?

पहले स्वयंसेवक ने पैकेट पर हाथ बढ़ाते हुए कहा–जाए कसम देई। बिल्लाती कपड़ा लेके तुम यहां से कबौ नाहीं जाय सकत हौ।

अमरकांत ने पैकेट को झटके में छुड़ाकर कहा–तुम मुझे हर्गिज नहीं रोक सकते !

उन्होंने आगे कदम बढ़ाया, मगर दो स्वयंसेवक तुरंत उनके सामने लेट गए। अब बेचारे बड़ी मुश्किल में फंसे। जिस विपत्ति से बचना चाहते थे, वह जबरदस्ती गले में पड़ गई। एक मिनट में बीसों आदमी जमा हो गए। चारों तरफ से उन पर टिप्पणियां होने लगीं।

"कोई जंटुलमैन मालूम होते हैं।"

"यह लोग अपने को शिक्षित कहते हैं। छिः ! इस दुकान पर से रोज दस-पांच आदमी गिरफ्तार होते हैं; पर आपको इसकी क्या परवाह !"

"कपड़ा छीन लो और कह दो जाकर पुलिस में रपट करें।"

बेचारे बेड़ियां-सी पहने खडे थे। कैसे गला छूटे, इसका कोई उपाय न सूझता था। मैकूलाल पर क्रोध आ रहा था कि उसी ने यह रोग उनके सिर मढ़ा। उन्हें तो किसी सौगात की फिक्र न थी। आए वहां से कि कोई सौगात ले जो।

कुछ देर तक लोग टिप्पणियां ही करते रहे, फिर छीन-झपट शुरू हुई। किसी ने सिर से टोपी उड़ा दी। उसकी तरफ लपके, तो एक ने साड़ी का पैकेट हाथ से छीन लिया। फिर वह हाथों-हाथ गायब हो गई।

अमरकांत ने बिगड़कर कहा–मैं जाकर पुलिस में रिपोर्ट करता हूं।

एक आदमी ने कहा–हां-हां, जरूर जाओ और हम सभी को फांसी चढ़वा दो।

सहसा एक युवती खद्दर की साड़ी पहने, एक थैला लिए आ निकली। यहां यह हुड़दंग देखकर बोली–क्या मुआमला है ? तुम लोग क्यों एक भले आदमी को दिक कर रहे हो ?

अमरकांत की जान में जान आई। उसके पास जाकर फरियाद करने लगे–ये लोग मेरे कपड़े छीनकर भाग गए हैं और उन्हें गायब कर दिया। मैं इसे डाका कहता हूं। यह चोरी है। इसे मैं न सत्याग्रह कहता हूं, न देश-प्रेम।

युवती ने दिलासा दिया–घबड़ाइए नहीं। आपके कपड़े मिल जाएंगे। होंगे तो इन्हीं

लोगों के पास। कैसे कपड़े थे ?

एक स्वयंसेवक बोला—बहनजी, इन्होंने हाशिम की दुकान से कपड़े लिए हैं।

युवती—किसी की दुकान से लिए हों, तुम्हें उनके हाथ से कपड़ा छीनने का कोई अधिकार नहीं है। आपके कपड़े वापस ला दो। किसके पास हैं ?

एक क्षण में अमरकांत की साड़ी जैसे हाथोंहाथ गई थी, वैसे ही हाथोंहाथ वापस आ गई। जरा देर में भीड़ भी गायब हो गई। स्वयंसेवक भी चले गये। अमरकांत ने युवती को धन्यवाद देते हुए कहा—आप इस समय न आई होतीं तो इन लोगों ने धोती तो गायब कर ही दी थी, शायद मेरी खबर भी लेते।

युवती ने सरल भर्त्सना के भाव से कहा—जन सम्पत्ति का लिहाज सभी को करना पड़ता है; मगर आपने इस दूकान से कपड़े लिए ही क्यों ? जब देख रहे है कि वहाँ हमारे ऊपर कितना अत्याचार हो रहा है, फिर भी आप न माने। जो लोग समझकर भी नहीं समझते, उनहें कैसे कोई समझाये !

अमरकांत इस समय लज्जित हो गए और अपने मित्रों में बैठकर वे जो स्वेच्छा के राग अलापा करते थे, वह भूल गए। बोले—मैंने अपने लिए नहीं खरीदे हैं, एक महिला की फरमाइश थी, इसलिए मजबूर था।

"उन महिला को आपने समझाया नहीं ?"

"आप समझातीं, तो शायद समझ पातीं, मेरे समझाने से तो न समझीं।"

"कभी अवसर मिला, तो जरूर समझाने की चेष्टा करूंगी। पुरुषों की नकेल महिलाओं के हाथ में है ? आप किस मुहल्ले में रहते हैं ?"

"सआदतगंज में।"

"शुभ नाम ?"

"अमरकात।"

युवती ने तुरंत जरा-सा घूंघट खींच लिया और सिर झुकाकर संकोच और स्नेह से सने स्वर में बोली—आपकी पत्नी तो आपके घर में नहीं है, उसने फरमाइश कैसे की ?

अमरकांत ने चकित होकर पूछा—आप किस मुहल्ले में रहती ह ?

"घसियारी मंडी।"

"आपका नाम सुखदादेवी तो नहीं है ?"

"हो सकता है, इस नाम की कई स्त्रियां हैं।"

"आपके पिता का नाम ज्वालादत्तजी है ?"

"उस नाम के भी कई आदमी हो सकते हैं।"

अमरकांत ने जेब से दियासलाई निकाली और वहीं सुखदा के सामने उस साड़ी को जला दिया।

सुखदा ने कहा—आप कल आएंगे।

अमरकांत ने अवरुद्ध कंठ से कहा—नहीं सुखदा, अब जब तक इसका प्रायश्चित्त न कर लूंगा, न आऊंगा।

सुखदा कुछ और कहने जा रही थी कि अमरकांत तेजी से कदम बढ़ाकर दूसरी तरफ चले गए।

3

आज होली है; मगर आजादी के मतवालों के लिए न होली है, न बसंत। हाशिम की दुकान पर आज भी पिकेटिंग हो रही है और तमाशाई आज भी जमा हैं। आज से स्वयंसेवकों में अमरकांत भी खड़े पिकेटिंग कर रहे हैं। उनकी देह पर खद्दर का कुरता है और खद्दर की धोती। हाथ में तिरंगा झंडा लिए हैं।

एक स्वयंसेवक ने कहा—पानीदारों को यों बात लगती है। कल तुम क्या थे, आज क्या हो। सुखदादेवी न आ जातीं, तो बड़ी मुश्किल होती।

अमर ने कहा—मैं उसके लिए तुम लोगों को धन्यवाद देता हूं, नहीं मैं आज यहां न होता।

''आज तुम्हें न आना चाहिए था। सुखदा बहन तो कहती थीं; मैं आज उन्हें न जाने दूंगी।''

''कल के अपमान के बाद अब मैं उन्हें मुंह दिखाने योग्य नहीं हूं। जब वह रमणी होकर इतना कर सकती हैं, तो हम तो हर तरह के कष्ट उठाने के लिए बने ही हैं। खासकर जब बाल-बच्चों का भार सिर पर नहीं है।''

उसी वक्त पुलिस की लारी आई; एक सब-इंस्पेक्टर उतरा और स्वयंसेवकों के पास आकर बोला—मैं तुम लोगों को गिरफ्तार करता हूं।

'वंदेमातरम्' की ध्वनि हुई। तमाशाइयों में कुछ हलचल हुई। लोग दो-दो कदम और आगे बढ़ आए। स्वयंसेवकों ने दर्शकों को प्रणाम किया और मुस्कराते हुए लारी में जा बैठे। अमरकांत सबसे आगे थे। लारी चलना ही चाहती थी कि सुखदा किसी तरफ से दौड़ी हुई आ गई। उसके हाथ में एक पुष्पमाला थी, लारी का द्वार खुला था। उसने ऊँपर चढ़कर वह अमरकांत के गले में डाल दी। आँखों से स्नेह और गर्व की दो बूँदें टपक पड़ीं। लारी चली गई। यही होली थी, यही होली का आनन्द-मिलन था।

उसी वक्त सुखदा दुकान पर खड़ी होकर बोली—विलायती कपड़े खरीदना और पहनना देश-द्रोह है !

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'माधुरी', अप्रैल, 1931 में प्रकाशित। 'कफन' में संकलित। यह कहानी केवल हिन्दी में प्रकाशित हुई।]

प्रेरणा

मेरी कक्षा में सूर्यप्रकाश से ज्यादा ऊधमी कोई लड़का न था, बल्कि यों कहो कि अध्यापन-काल के दस वर्षों में मुझे ऐसी विषम प्रकृति के शिष्य से साबका न पड़ा था। कपट-क्रीड़ा में उसकी जान बसती थी। अध्यापकों को बनाने और चिढ़ाने, उद्योगी बालकों को छेड़ने और रुलाने में ही उसे आनन्द आता था। ऐसे-ऐसे षड्यंत्र रचता, ऐसे-ऐसे फंदे डालता, ऐसे-ऐसे बंधन बाँधता कि देखकर आश्चर्य होता था। गिरोहबंदी में अभ्यस्त था।

खुदाई फौजदारों की एक फौज बना ली थी और उसके आतंक से शाला पर शासन

करता था। मुख्य अधिष्ठाता की आज्ञा टल जाय, मगर क्या मजाल कि कोई उसके हुक्म की अवज्ञा कर सके। स्कूल के चपरासी और अर्दली उससे थर-थर काँपते थे। इन्स्पेक्टर का मुआइना होने वाला था, मुख्य अधिष्ठाता ने हुक्म दिया कि लड़के निर्दिष्ट समय से आध घन्टा पहले आ जायँ। मतलब यह था कि लड़कों को मुआइने के बारे में कुछ जरूरी बातें बता दी जायँ, मगर दस बज गये, इन्स्पेक्टर साहब आकर बैठ गये, और मदरसे में एक लड़का भी नहीं। ग्यारह बजे सब छात्र इस तरह निकल पड़े, जैसे कोई पिंजरा खोल दिया गया हो। इन्स्पेक्टर साहब ने कैफियत में लिखा—डिसिप्लिन बहुत खराब है। प्रिंसिपल साहब की किरकिरी हुई, अध्यापक बदनाम हुए और यह सारी शरारत सूर्यप्रकाश की थी, मगर बहुत पूछ-ताछ करने पर भी किसी ने सूर्यप्रकाश का नाम तक न लिया। मुझे अपनी संचालन-विधि पर गर्व था। ट्रेनिंग कालेज में इस विषय में मैंने ख्याति प्राप्त की थी, मगर यहाँ मेरा सारा संचालन-कौशल जैसे मोर्चा खा गया था। कुछ अक्ल ही काम न करती कि शैतान को कैसे सन्मार्ग पर लायें। कई बार अध्यापकों की बैठक हुई; पर यह गिरह न खुली। नई शिक्षा-विधि के अनुसार मैं दंडनीति का पक्षपाती न था, मगर यहाँ हम इस नीति से केवल इसलिए विरक्त थे कि कहीं उपचार से भी रोग असाध्य न हो जाय। सूर्यप्रकाश को स्कूल से निकाल देने का प्रस्ताव भी किया गया, पर इसे अपनी अयोग्यता का प्रमाण समझकर हम [illegible] नीति का व्यवहार करने का साहस न कर सके। बीस-बाईस अनुभवी और शिक्षा-शास्त्र के आचार्य एक बारह-तेरह साल के उद्दंड बालक का सुधार न कर सकें, यह विचार बहुत ही निराशाजनक था। यों तो सारा स्कूल उससे त्राहि-त्राहि करता था, मगर सबसे ज्यादा संकट में मैं था, क्योंकि वह मेरी कक्षा का छात्र था और उसकी शरारतों का कुफल मुझे भोगना पड़ता था। मैं स्कूल आता, तो [illegible]दम यही खटका लगा रहता था कि देखें आज क्या विपत्ति आती है। एक दिन मैंने अपनी मेज की दराज खोली, तो उसमें से एक बड़ा-सा मेंढक निकल पड़ा। मैं चौंककर पीछे हटा तो क्लास में एक शोर मच गया। उसकी ओर सरोष नेत्रों से देखकर रह गया। सारा घंटा उपदेश में बीत गया और वह पट्ठा सिर झुकाये नीचे मुस्करा रहा था। मुझे आश्चर्य होता था कि यह नीचे की कक्षाओं में कैसे पास हुआ था। एक दिन मैंने गुस्से से कहा—तुम इस कक्षा से उम्र भर नहीं पास हो सकते। सूर्यप्रकाश ने अविचलित भाव से कहा—आप मेरे पास होने की चिन्ता न करें। मैं हमेशा पास हुआ हूँ और अबकी भी हूँगा।'

'असम्भव !'

'असम्भव सम्भव हो जायगा !'

मैं आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगा। जहीन से जहीन लड़का भी अपनी सफलता का दावा इतने निर्विवाद रूप से न कर सकता था। मैंने सोचा, वह प्रश्न-पत्र उड़ा लेता होगा। मैंने प्रतिज्ञा की, अबकी इसकी एक चाल भी न चलने दूँगा। देखूँ, कितने दिन इस कक्षा में पड़ा रहता है। आप घबड़ाकर निकल जायगा।

वार्षिक परीक्षा के अवसर पर मैंने असाधारण देखभाल से काम लिया; मगर जब सूर्यप्रकाश का उत्तर-पत्र देखा, तो मेरे विस्मय की सीमा न रही। मेरे दो पर्चे थे, दोनों ही में उसके नम्बर कक्षा में सबसे अधिक थे। मुझे खूब मालूम था कि वह मेरे किसी पर्चे का कोई प्रश्न भी हल नहीं कर सकता। मैं इसे सिद्ध कर सकता था; मगर उसके उत्तर-पत्रों को

क्या करता ! लिपि में इतना भेद न था जो कोई संदेह उत्पन्न कर सकता। मैंने प्रिंसिपल से कहा, तो वह भी चकरा गये; मगर उन्हें भी जान-बूझकर मक्खी निगलनी पड़ी। मैं कदाचित् स्वभाव ही से निराशावादी हूँ। अन्य अध्यापकों को मैं सूर्यप्रकाश के विषय में जरा भी चिंतित न पाता था। मानो ऐसे लड़कों का स्कूल में आना कोई नई बात नहीं, मगर मेरे लिए वह एक विकट रहस्य था। अगर यही ढंग रहे, तो एक दिन या तो जेल में होगा, या पागलखाने में।

2

उसी साल मेरा तबादला हो गया। यद्यपि यहाँ का जलवायु मेरे अनुकूल था, प्रिंसिपल और अन्य अध्यापकों से मैत्री हो गई थी, मगर मैं अपने तबादले से खुश हुआ; क्योंकि सूर्यप्रकाश मेरे मार्ग का काँटा न रहेगा। लड़कों ने मुझे बिदाई की दावत दी और सब के सब स्टेशन तक पहुँचाने आये। उस वक्त सभी लड़के आँखों में आँसू भरे हुए थे। मैं भी अपने आँसुओं को न रोक सका। सहसा मेरी निगाह सूर्यप्रकाश पर पड़ी, जो सबसे पीछे लज्जित खड़ा था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी आँखें भी भीगी थीं। मेरा जी बार-बार चाहता था कि चलते-चलते उससे दो-चार बातें कर लूँ। शायद वह भी मुझसे कुछ कहना चाहता था, मगर न मैंने पहले बातें कीं, न उसने हालाँकि मुझे बहुत दिनों तक इसका खेद रहा। उसकी झिझक तो क्षमा के योग्य थी; पर मेरा अवरोध अक्षम्य था, संभव था, उस करुणा और ग्लानि की दशा में मेरी दो-चार निष्कपट बातें उसके दिल पर असर कर जातीं; मगर इन्हीं खोये हुए अवसरों का नाम तो जीवन है। गाड़ी मंदगति से चली। लड़के कई कदम तक उसके साथ दौड़े। मैं खिड़की के बाहर सिर निकाले खड़ा था। कुछ देर मुझे उनके हिलते हुए रूमाल नजर आये। फिर वे रेखाएँ आकाश में विलीन हो गई : मगर एक अल्पकाय मूर्ति अब भी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। मैंने अनुमान किया, वह सूर्य प्रकाश है। उस समय मेरा हृदय किसी विकल कैदी की भाँति घृणा, मालिन्य और उदासीनता के बंधनों को तोड़-तोड़कर उसके गले मिलने के लिए तड़प उठा।

नये स्थान की नई चिंताओं ने बहुत जल्द मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पिछले दिनों की याद एक हसरत बनकर रह गई। न किसी का कोई खत आया, न मैंने कोई खत लिखा। शायद दुनिया का यही दस्तूर है। वर्षा के बाद वर्षा की हरियाली कितने दिनों रहती है। संयोग से मुझे इंगलैण्ड में विद्याभ्यास करने का अवसर मिल गया। वहाँ तीन साल लग गये। वहाँ से लौटा तो एक कालेज का प्रिंसिपल बना दिया गया। यह सिद्धि मेरे लिए बिलकुल आशातीत थी। मेरी भावना स्वप्न में भी इतनी दूर न उड़ी थी; किन्तु पदलिप्सा अब किसी और भी ऊँची डाली पर आश्रय लेना चाहती थी। शिक्षामंत्री से रब्त-जब्त पैदा किया। मंत्री महोदय मुझ पर कृपा रखते थे; मगर वास्तव में शिक्षा के मौलिक सिद्धांतों का उन्हें ज्ञान न था। मुझे पाकर उन्होंने सारा भार मेरे ऊपर डाल दिया। घोड़े पर वह सवार थे, लगाम मेरे हाथ में थी। फल यह हुआ कि उनके राजनैतिक विपक्षियों से मेरा विरोध हो गया। मुझ पर जा-बेजा आक्रमण होने लगे। मैं सिद्धांत रूप से अनिवार्य शिक्षा का विरोधी हूँ। मेरा विचार है कि हर एक मनुष्य की उन विषयों में ज्यादा स्वाधीनता होनी चाहिए, जिनका उनसे निज का संबंध है। मेरा विचार है कि यूरोप में अनिवार्य शिक्षा

की जरूरत है, भारत में नहीं। भौतिकता पश्चिमी सभ्यता का मूल तत्त्व है। वहाँ किसी काम की प्रेरणा, आर्थिक लाभ के आधार पर होती है। जिन्दगी की जरूरत ज्यादा है; इसलिए जीवन-संग्राम भी अधिक भीषण है। माता-पिता भोग के दास होकर बच्चों को जल्द-से-जल्द कुछ कमाने पर मजबूर करते हैं। इसकी जगह कि वह मद का त्याग करके एक शिलिंग रोज की बचत कर लें, वे अपने कमसिन बच्चे को एक शिलिंग की मजदूरी करने के लिए दबायेंगे। भारतीय जीवन में सात्विक सरलता है। हम उस वक्त तक अपने बच्चों से मजदूरी नहीं कराते, जब तक कि परिस्थिति हमें विवश न कर दे। दरिद्र से दरिद्र हिंदुस्तानी मजदूर भी शिक्षा के उपकारों का कायल है। उसके मन में यह अभिलाषा होती है कि मेरा बच्चा चार अक्षर पढ़ जाय। इसलिए नहीं कि उसे कोई अधिकार मिलेगा; वल्कि केवल इसलिए कि विद्या मानवी शील का एक शृंगार है। अगर यह जानकर भी वह अपने बच्चे को मदरसे नहीं भेजता, तो समझ लेना चाहिये कि वह मजबूर है। ऐसी दशा में उस पर कानून का प्रहार करना मेरी दृष्टि में न्याय-संगत नहीं है। इसके सिवाय मेरे विचार में अभी हमारे देश में योग्य शिक्षकों का अभाव है। अर्द्ध शिक्षित और अल्पवेतन पाने वाले अध्यापकों से आप यह आशा नहीं रख सकते कि वह कोई ऊँचा आदर्श अपने सामने रख सकें। अधिक-से-अधिक इतना ही होगा कि चार-पांच वर्ष में बालक को अक्षर-ज्ञान हो जायगा। मैं इस पर्वत खोदकर चुहिया निकालने के तुल्य समझता हूँ। वयस प्राप्त हो जाने पर यह मसला एक महीने में आसानी से तय किया जा सकता है। मैं अनुभव से कह सकता हूँ कि युवावस्था में हम जितना ज्ञान एक महीने में प्राप्त कर सकते हैं, उतना बाल्यावस्था में तीन साल में भी नहीं कर सकते, फिर खामख्वाह बच्चों को मदरसे में कैद करने से क्या लाभ ? मदरसे के बाहर रहकर उसे स्वच्छ वायु तो मिलती, प्राकृतिक अनुभव तो होते। पाठशाला में बन्द करके तो आप उसके मानसिक और शारीरिक दोनों विधानों की जड़ काट देते हैं। इसलिए जब प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा में अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पेश हुआ, तो मेरी प्रेरणा से मिनिस्टर साहब ने उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। फिर क्या था। मिनिस्टर साहब की और मेरी वह ले-दे शुरू हुई कि कुछ न पूछिए। व्यक्तिगत आक्षेप किए जाने लगे। मैं गरीब की जोवी था, मुझे ही सबकी भाभी बनना पड़ा। मुझे देशद्रोही, उन्नति का शत्रु और नौकरशाही का गुलाम कहा गया। मेरे कालेज में जरा-सी भी कोई बात होती तो कौंसिल में मुझ पर वर्षा होने लगती। मैंने एक चपरासी को पृथक् किया। सारी कौंसिल पंजे झाड़कर मेरे पीछे पड़ गई। आखिर मिनिस्टर साहब को मजबूर होकर उस चपरासी को बहाल करना पड़ा। यह अपमान मेरे लिए असह्य था। शायद कोई भी इसे सहन न कर सकता। मिनिस्टर साहब से मुझे शिकायत नहीं। वह मजबूर थे। हाँ, इस वातावरण में काम करना मेरे लिए दुस्साध्य हो गया। मुझे अपने कालेज के आन्तरिक संगठन का भी अधिकार नहीं। अमुक क्यों नहीं परीक्षा में भेजा गया, अमुक के बदले अमुक को क्यों नहीं छात्रवृत्ति दी गई, अमुक अध्यापक को अमुक कक्षा क्यों नहीं दी जाती, इस तरह के सारहीन आक्षेपों ने मेरी नाक में दम कर दिया था। इस नई चोट ने कमर तोड़ दी। मैंने इस्तीफा दे दिया।

मुझे मिनिस्टर साहब से इतनी आशा अवश्य थी कि वह कम-से-कम इस विषय में न्याय-परायणता से काम लेंगे; मगर उन्होंने न्याय की जगह नीति को मान्य समझा और

मुझे कई साल की भक्ति का यह फल मिला कि मैं पदच्युत कर दिया गया। संसार का ऐसा कटु अनुभव मुझे अब तक न हुआ था। ग्रह भी कुछ बुरे आ गये थे, उन्हीं दिनों पत्नी का देहान्त हो गया। अन्तिम दर्शन भी न कर सका। सन्ध्या-समय नदी-तट पर सैर करने गया था। वह कुछ अस्वस्थ थीं। लौटा, तो उनकी लाश मिली। कदाचित् हृदय की गति बन्द हो गई थी। इस आघात ने कमर तोड़ दी। माता के प्रसाद और आशीर्वाद से बड़े-बड़े महान् पुरुष कृतार्थ हो गये हैं। मैं जो कुछ हुआ, पत्नी के प्रसाद और आशीर्वाद से हुआ; वह मेरे भाग्य की विधात्री थीं। कितना अलौकिक त्याग था, कितना विशाल धैर्य। उनके माधुर्य में तीक्ष्णता का नाम भी न था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी उनकी भृकुटी संकुचित देखी हो, वह निराश होना तो जानती ही न थीं। मैं कई बार सख्त बीमार पड़ा हूँ। वैद्य निराश हो गये हैं, पर वह अपने धैर्य और शांति से अणु-मात्र भी विचलित नहीं हुईं। उन्हें विश्वास था कि मैं अपने पति के जीवन-काल में मरूँगी और वही हुआ भी। मैं जीवन में अब तक उन्हीं के सहारे खड़ा था ! जब वह अवलम्ब ही न रहा, तो जीवन कहाँ रहता। खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है। जीवन नाम है, सदैव आगे बढ़ते रहने की लगन का। यह लगन गायब हो गई। मैं संसार से विरक्त हो गया। और एकान्तवास में जीवन के दिन व्यतीत करने का निश्चय करके एक छोटे से गाँव में जा बसा। चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे टीले थे, एक ओर गंगा बहती थी। मैंने नदी के किनारे एक छोटा-सा घर बना लिया और उसी में रहने लगा।

3

मगर काम करना तो मानवी स्वभाव है। बेकारी में जीवन कैसे कटता। मैंने एक छोटी-सी पाठशाला खोल ली; एक वृक्ष की छाँह में गाँव के लड़कों को जमाकर कुछ पढ़ाया करता था। उसकी यहाँ इतनी ख्याति हुई कि आस-पास के गाँव के छात्र भी आने लगे।

एक दिन मैं अपनी कक्षा को पढ़ा रहा था कि पाठशाला के पास एक मोटर आकर रुकी और उसमें से उस जिले के डिप्टी कमिश्नर उतर पड़े। मैं उस समय केवल एक कुर्ता और धोती पहने हुए था। इस वेश में एक हाकिम से मिलते हुए शर्म आ रही थी। डिप्टी कमिश्नर मेरे समीप आये तो मैंने झेंपते हुए हाथ बढ़ाया, मगर वह मुझसे हाथ मिलाने के बदले मेरे पैरों की ओर झुके और उन पर सिर रख दिया। मैं कुछ ऐसा सिटपिटा गया कि मेरे मुँह से एक शब्द भी न निकला। मैं अँगरेजी अच्छी लिखता हूँ, दर्शनशास्त्र का भी आचार्य हूँ, व्याख्यान भी अच्छे दे लेता हूँ। मगर इन गुणों में एक भी श्रद्धा के योग्य नहीं। श्रद्धा तो ज्ञानियों और साधुओं ही के अधिकार की वस्तु है। अगर मैं ब्राह्मण होता, तो एक बात थी। हालाँकि एक सिविलियन का किसी ब्राह्मण के पैरों पर सिर रखना अचिंतनीय है।

मैं अभी इसी विस्मय में पड़ा हुआ था कि डिप्टी कमिश्नर ने सिर उठाया और मेरी तरफ देखकर कहा—आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।

इतना सुनते ही मेरे स्मृति-नेत्र खुल गये; बोला—आपका नाम सूर्यप्रकाश तो नहीं है?

'जी हाँ, मैं आपका वही अभागा शिष्य हूँ।'

'बारह-तेरह वर्ष हो गये।'

सूर्यप्रकाश ने मुस्कराकर कहा—अध्यापक लड़कों को भूल जाते हैं, पर लड़के उन्हें हमेशा याद रखते हैं।

मैंने उसी विनोद के भाव से कहा—तुम जैसे लड़कों को भूलना असंभव है।

सूर्यप्रकाश ने विनीत स्वर में कहा—उन्हीं अपराधों को क्षमा कराने के लिए सेवा में आया हूँ। मैं सदैव आपकी खबर लेता रहता था। जब आप इंगलैण्ड गये, तो मैंने आपके लिए बधाई का पत्र लिखा; पर उसे भेज न सका। जब आप प्रिंसिपल हुए, मैं इंगलैण्ड जाने को तैयार था। वहाँ मैं पत्रिकाओं में आपके लेख पढ़ता रहता था। जब लौटा, तो मालूम हुआ कि आपने इस्तीफा दे दिया और कहीं देहात में चले गये हैं। इस जिले में आये हुए मुझे एक वर्ष से अधिक हुआ; पर इसका जरा भी अनुमान न था कि आप यहाँ एकांत-सेवन कर रहे हैं। इस उजाड़ गाँव में आपका जी कैसे लगता है ? इतनी ही अवस्था में आपने वानप्रस्थ ले लिया ?

मैं नहीं कह सकता कि सूर्यप्रकाश की उन्नति देखकर मुझे कितना आश्चर्यमय आनंद हुआ। अगर वह मेरा पुत्र होता तो भी इससे अधिक आनंद न होता। मैं उसे अपने झोंपड़े में लाया और अपनी रामकहानी कह सुनाई।

सूर्यप्रकाश ने कहा—तो यह कहिए कि आप अपने ही एक भाई के विश्वासघात के शिकार हुए। मेरा अनुभव तो अभी बहुत कम है; मगर इतने ही दिनों में मुझे मालूम हो गया है, कि हम लोग अभी अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करना नहीं जानते। मिनिस्टर साहब से भेंट हुई; तो पूछूँगा, कि यही आपका धर्म था।

मैंने जवाब दिया—भाई, उनका दोष नहीं। संभव है, इस दशा में मैं भी वही करता, जो उन्होंने किया। मुझे अपनी स्वार्थलिप्सा की सजा मिल गई, और उसके लिये मैं उनका ऋणी हूँ। बनावट नहीं, सत्य कहता हूँ कि यहाँ मुझे जो शांति है, वह और कहीं न थी। इस एकान्त-जीवन में मुझे जीवन के तत्त्वों का वह ज्ञान हुआ, जो संपत्ति और अधिकार की दौड़ में किसी तरह संभव न था। इतिहास और भूगोल के पोथे चाटकर और यरप के विद्यालयों की शरण जाकर भी मैं अपनी ममता को न मिटा सका; बल्कि यह रोग दिन दिन और भी असाध्य होता जाता था। आप सीढ़ियों पर पाँव रखे बगैर छत की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकते। सम्पत्ति की अट्टालिका तक पहुँचने में दूसरों की जिंदगी ही ज़ीनों का काम देती है। आप कुचलकर ही लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। वहाँ सौजन्य और सहानुभूति का स्थान ही नहीं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस वक्त मैं हिंस्र जंतुओं से घिरा हुआ था और मेरी सारी शक्तियाँ अपनी आत्मरक्षा में ही लगी रहती थीं। यहाँ मैं अपने चारों ओर संतोष और सरलता देखता हूँ। मेरे पास जो लोग आते हैं, कोई स्वार्थ लेकर नहीं आते और न मेरी सेवाओं में प्रशंसा या गौरव की लालसा है।

यह कहकर मैंने सूर्यप्रकाश के चेहरे की ओर गौर से देखा। कपट मुस्कान की जगह ग्लानि का रंग था। शायद यह दिखाने आया था कि आप जिसकी तरफ से इतने निराश हो गये थे, वह अब इस पद को सुशोभित कर रहा है। वह मुझसे अपने सदुद्योग का बखान कराना चाहता था। मुझे अब अपनी भूल मालूम हुई। एक संपन्न आदमी के सामने समृद्धि की निंदा उचित नहीं। मैंने तुरन्त बात पलट कर कहा—मगर तुम अपना हाल तो कहो। तुम्हारी यह काया-पलट कैसे हुई ? तुम्हारी शरारतों को याद करता हूँ तो अब भी रोएँ खड़े हो जाते हैं। किसी

देवता के वरदान के सिवा और तो कहीं यह विभूति न प्राप्त हो सकती थी।

सूर्यप्रकाश ने मुसकराकर कहा—आपका आशीर्वाद था।

मेरे बहुत आग्रह करने पर सूर्यप्रकाश ने अपना वृत्तांत सुनाना शुरू किया—'आपके चले आने के कई दिन बाद मेरा ममेरा भाई स्कूल में दाखिल हुआ। उसकी उम्र आठ-नौ साल से ज्यादा न थी। प्रिंसिपल साहब उसे होस्टल में न लेते थे और न मामा साहब उसके ठहरने का प्रबन्ध कर सकते थे। उन्हें इस संकट में देखकर मैंने प्रिंसिपल साहब से कहा—उसे मेरे कमरे में ठहरा दीजिये। प्रिंसिपल साहब ने इसे नियम-विरुद्ध बतलाया। इस पर मैंने बिगड़कर उसी दिन होस्टल छोड़ दिया और एक किराये का मकान लेकर मोहन के साथ रहने लगा। उसकी माँ कई साल पहले मर चुकी थी। इतना दुबला-पतला, कमजोर और गरीब लड़का था कि पहले ही दिन से मुझे उस पर दया आने लगी। कभी उसके सिर में दर्द होता, कभी ज्वर हो आता। आये दिन कोई-न-कोई बीमारी खड़ी रहती थी। इधर साँझ हुई और झपकियाँ आने लगीं। बड़ी मुश्किल से भोजन करने उठता। दिन चढ़े तक सोया करता और जब तक मैं गोद में उठाकर बिठा न देता, उठने का नाम न लेता। रात को बहुधा चौंक कर मेरी चारपाई पर आ जाता। मेरे गले से लिपटकर सोता। मुझे उस पर कभी क्रोध न आता। कह नहीं सकता, क्यों मुझे उससे प्रेम हो गया। मैं जहाँ पहले नौ बजे सोकर उठता था, अब तड़के उठ बैठता और उसके लिए दूध गरम करता। फिर उसे उठाकर हाथ-मुँह धुलाता और नाश्ता कराता। उसके स्वास्थ्य के विचार से नित्य वायु सेवन को ले जाता। मैं जो कभी किताब लेकर न बैठता था, उसे घंटों पढ़ाया करता। मुझे अपने दायित्व का इतना ज्ञान कैसे हो गया, इसका मुझे आश्चर्य है। उसे कोई शिकायत हो जाती तो मेरे प्राण नखों में समा जाते। डाक्टर के पास दौड़ता, दवाएँ लाता और मोहन की खुशामद करके दवा पिलाता। सदैव यह चिंता लगी रहती थी, कि कोई बात उसकी इच्छा के विरुद्ध न हो जाय। इस बेचारे का यहाँ मेरे सिवा दूसरा कौन है। मेरे चंचल मित्रों में से कोई उसे चिढ़ाता या छेड़ता तो मेरी त्योरियाँ बदल जाती थीं ! कई लड़के तो मुझे बूढ़ी दाई कहकर चिढ़ाते थे; पर मैं हँसकर टाल देता था। मैं उसके सामने एक अनुचित शब्द भी मुँह से न निकालता। यह शंका होती थी, कि कहीं मेरी देखा-देखी यह भी खराब न हो जाय। मैं उसके सामने इस तरह रहना चाहता था, कि वह मुझे अपना आदर्श समझे और इसके लिए यह मानी हुई बात थी कि मैं अपना चरित्र सुधारूँ। वह मेरा नौ बजे सोकर उठना, बारह बजे तक मटरगश्ती करना, नई-नई शरारतों के मंसूबे बाँधना और अध्यापकों की आँख बचाकर स्कूल से उड़ जाना, सब आप-ही-आप जाता रहा। स्वास्थ्य और चरित्र पालन के सिद्धांतों का मैं शत्रु था; पर अब मुझसे बढ़कर उन नियमों का रक्षक दूसरा न था। मैं ईश्वर का उपहास किया करता, मगर अब पक्का आस्तिक हो गया था। वह बड़े सरल भाव से पूछता, परमात्मा सब जगह रहते हैं, तो मेरे पास भी रहते होंगे। इस प्रश्न का मजाक उड़ाना मेरे लिए असंभव था। मैं कहता—हाँ परमात्मा तुम्हारे, हमारे सबके पास रहते हैं और हमारी रक्षा करते हैं। यह आश्वासन पाकर उसका चेहरा आनन्द से खिल उठता था, कदाचित् वह परमात्मा की सत्ता का अनुभव करने लगता था। साल ही भर में मोहन कुछ से कुछ हो गया। मामा साहब दोबारा आये, तो उसे देखकर चकित हो गये। आँखों में आँसू भरकर बोले—'बेटा ! तुमने इसको जिला लिया, नहीं तो मैं

निराश हो चुका था। इसका पुनीत फल तुम्हें ईश्वर देंगे। इसकी माँ स्वर्ग में बैठी हुई तुम्हें आशीर्वाद दे रही है।'

सूर्यप्रकाश की आँखें उस वक्त भी सजल हो गई थीं।

मैंने पूछा—मोहन भी तुम्हें बहुत प्यार करता होगा ?

सूर्यप्रकाश के सजल नेत्रों में हसरत से भरा हुआ आनन्द चमक उठा, बोला—वह मुझे एक मिनट के लिए भी न छोड़ता था। मेरे साथ बैठता, मेरे साथ खाता, मेरे साथ सोता। मैं ही उसका सब कुछ था। आह ! वह संसार में नहीं है। मगर मेरे लिए वह अब भी उसी तरह जीता-जागता है। मैं जो कुछ हूँ, उसी का बनाया हुआ हूँ। अगर वह दैवी विधान की भांति मेरा पथ-प्रदर्शक न बन जाता, तो शायद आज मैं किसी जेल में पड़ा होता। एक दिन मैंने कह दिया था—अगर तुम रोज नहा न लिया करोगे तो मैं तुमसे न बोलूँगा। नहाने से वह न जाने क्यों जी चुराता था। मेरी इस धमकी का फल यह हुआ कि वह नित्य प्रातःकाल नहाने लगा। कितनी ही सर्दी क्यों न हो, कितनी ही ठंडी हवा चले; लेकिन वह स्नान अवश्य करता था। देखता रहता था, मैं किस बात से खुश होता हूँ। एक दिन मैं कई मित्रों के साथ थियेटर देखने चला गया, ताकीद कर गया था कि तुम खाना खाकर सो रहना। तीन बजे रात को लौटा, तो देखा कि वह बैठा हुआ है ! मैंने पूछा—तुम सोये नहीं ? बोला—नींद नहीं आई। उस दिन से मैंने थियेटर जाने का नाम न लिया। बच्चों में प्यार की जो एक भूख होती है—दूध, मिठाई और खिलौनों से भी ज्यादा मादक—जो माँ की गोद के सामने संसार की निधि की भी परवाह नहीं करती, मोहन की वह भूख कभी संतुष्ट न होती थी। पहाड़ों से टकराने वाली सारस की आवाज की तरह वह सदैव उसकी नसों में गूँजा करती थी। जैसे भूमि पर फैली हुई लता कोई सहारा पाते ही उससे चिपट जाती है, वही हाल मोहन का था। वह मुझसे ऐसा चिपट गया था कि पृथक् किया जाता, तो उसकी कोमल बेल के टुकड़े-टुकड़े हो जाते। वह मेरे साथ तीन साल रहा और तब मेरे जीवन में प्रकाश की एक रेखा डालकर अन्धकार में विलीन हो गया। उस जीर्ण काया में कैसे-कैसे अरमान भरे हुए थे। कदाचित् ईश्वर ने मेरे जीवन में एक अवलम्ब की सृष्टि करने के लिए उसे भेजा था। उद्देश्य पूरा हो गया तो वह क्यों रहता।

4

'गर्मियों की तातील थी। दो तातीलों में मोहन मेरे ही साथ रहा था। मामाजी के आग्रह करने पर भी घर न आया। अबकी कालेज के छात्रों ने काश्मीर-यात्रा करने का निश्चय किया और मुझे उसका अध्यक्ष बनाया। काश्मीर-यात्रा की अभिलाषा मुझे चिरकाल से थी। इसी अवसर को गनीमत समझा। मोहन को मामाजी के पास भेजकर मैं काश्मीर चला गया। दो महीने के बाद लौटा, तो मालूम हुआ मोहन बीमार है। काश्मीर में मुझे बार-बार मोहन की याद आती थी और जी चाहता था, लौट जाऊं। मुझे उस पर इतना प्रेम है, इसका अन्दाज मुझे काश्मीर जाकर हुआ; लेकिन मित्रों ने पीछा न छोड़ा। उसकी बीमारी की खबर पाते ही मैं अधीर हो उठा और दूसरे ही दिन उसके पास जा पहुँचा। मुझे देखते ही उसके पीले और सूखे हुए चेहरे पर आनन्द की स्फूर्ति झलक पड़ी। मैं दौड़कर उसके गले से लिपट गया। उसकी आँखों में वह दूरदृष्टि और चेहरे पर वह अलौकिक आभा थी जो

मँडराती हुई मृत्यु की सूचना देती है। मैंने आवेश से काँपते हुए स्वर में पूछा—यह तुम्हारी क्या दशा है मोहन ? दो ही महीने में यह नौबत पहुँच गई ? मोहन ने सरल मुस्कान के साथ कहा—'आप काश्मीर की सैर करने गये थे, मैं आकाश की सैर करने जा रहा हूँ।'

'मगर यह दुःख की कहानी कह कर मैं रोना और रुलाना नहीं चाहता। मेरे चले जाने के बाद मोहन इतने परिश्रम से पढ़ने लगा मानो तपस्या कर रहा हो। उसे यह धुन सवार हो गई थी कि साल भर की पढ़ाई दो महीने में समाप्त कर ले और स्कूल खुलने के बाद मुझसे इस श्रम का प्रशंसारूपी उपहार प्राप्त करे। मैं किस तरह उसकी पीठ ठोकूँगा, शाबाशी दूँगा, अपने मित्रों से बखान करूँगा, इन भावनाओं ने अपने सारे बालोचित उत्साह और तल्लीनता से उसे वशीभूत कर लिया। मामाजी को दफ्तर के कामों से इतना अवकाश कहाँ कि उसके मनोरंजन का ध्यान रखें। शायद उसे प्रतिदिन कुछ-न-कुछ पढ़ते देखकर वह दिल में खुश होते थे। उसे खेलते देख कर वह जरूर डाँटते। पढ़ते देखकर भला क्या कहते। फल यह हुआ कि मोहन को हल्का-हल्का ज्वर आने लगा, किन्तु उस दशा में भी उसने पढ़ना न छोड़ा। कुछ और व्यतिक्रम भी हुए, ज्वर का प्रकोप और भी बढ़ा; पर उस दशा में भी ज्वर कुछ हल्का हो जाता, तो किताबें देखने लगता था। उसके प्राण मुझमें ही बने रहते थे। ज्वर की दशा में भी नौकरों से पूछता—भैया का पत्र आया ? वह कब आयेंगे? इसके सिवा और कोई दूसरी अभिलाषा न थी। अगर मुझे मालूम होता कि मेरी काश्मीर-यात्रा इतनी महँगी पड़ेगी, तो उधर जाने का नाम भी न लेता। उसे बचाने के लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था, वह मैंने सब किया; किन्तु बुखार टाइफायड था, उसकी जान लेकर ही उतरा। उसके जीवन के स्वप्न मेरे लिए किसी ऋषि के आशीर्वाद बनकर मुझे प्रोत्साहित करने लगे और यह उसी का शुभ फल है कि आज आप मुझे इस दशा मे देख रहे हैं। मोहन की बाल अभिलाषाओं को प्रत्यक्ष रूप में लाकर यह मुझे संतोष होता है कि शायद उसकी पवित्र आत्मा मुझे देखकर प्रसन्न होती हो। यही प्रेरणा थी कि जिसने कठिन से कठिन परीक्षाओं में भी मेरा बेड़ा पार लगाया; नहीं तो मैं आज भी वही मंदबुद्धि सूर्यप्रकाश हूँ, जिसकी सूरत से आप चिढ़ते थे।'

उस दिन से मैं कई बार सूर्यप्रकाश से मिल चुका हूँ। वह जब इस तरफ आ जाता है, तो बिना मुझसे मिले नहीं जाता। मोहन को अब भी वह अपना इष्टदेव समझता है। मानव-प्रकृति का यह एक ऐसा रहस्य है, जिसे मैं आज तक नहीं समझ सका।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'विशाल भारत', मई, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप 'तहरीक' शीर्षक से उर्दू कहानी संग्रह 'खाके परवाना' में संकलित व प्रकाशित।]

प्रेम का उदय

भोंदू पसीने में तर, लकड़ी का एक गट्ठा सिर पर लिए आया और उसे जमीन पर पटककर बंटी के सामने खड़ा हो गया, मानो पूछ रहा हो—क्या अभी तेरा मिजाज ठीक नहीं हुआ ?

संध्या हो गयी थी, फिर भी लू चलती थी और आकाश पर गर्द छायी हुई थी। प्रकृति रक्त शून्य देह की भाँति शिथिल हो रही थी।

भोंदू प्रातःकाल घर से निकला था। दोपहरी उसने एक पेड़ की छाँह में काटी थी। समझा था—इस तपस्या से देवीजी का मुँह सीधा हो जायगा; लेकिन आकर देखा, तो वह अब भी कोप भवन में थी।

भोंदू ने बातचीत छेड़ने के इरादे से कहा—लो, एक लोटा पानी दे दो, बड़ी प्यास लगी है। मर गया सारे दिन। बाजार में जाऊँगा, तो तीन आने से बेंसी न मिलेंगे। दो-चार साँडे मिल जाते, तो मेहनत सुफल हो जाती।

बंटी ने सिरकी के अन्दर बैठे-बैठे कहा—धरम भी लूटोगे और पैसे भी। मुँह धो रखो।

भोंदू ने भँवें सिकोड़कर कहा—क्या धरम-धरम बकती है ! धरम करना हँसी-खेल नहीं है। धरम वह करता है, जिसे भगवान् ने माना हो। हम क्या खाकर धरम करें। भर-पेट चबेना तो मिलता नहीं, धरम करेंगे।

बंटी ने अपना वार ओछा पड़ता देखकर चोट पर चोट की—संसार में कुछ ऐसे भी महात्मा हैं, जो अपना पेट चाहे न भर सकें, पर पड़ोसियों को नेवता देते फिरते हैं; नहीं तो सारे दिन बन-बन लकड़ी न तोड़ते फिरते। ऐसे धरमात्मा लोगों को मेहरिया रखने की क्यों सूझती है, यही मेरी समझ में नहीं आता। धरम की गाड़ी क्या अकेले नहीं खींचते बनती ?

भोंदू इस चोट से तिलमिला गया। उसकी जिहरदार नसें तन गयीं; माथे पर बल पड़ गये। इस अबला का मुँह वह एक डपट में बंद कर सकता था; पर डाँट-डपट उसने न सीखी थी। जिसके पराक्रम की सारे कंजड़ों में धूम थी; जो अकेला सौ-पचास जवानों का नशा उतार सकता था, वह इस अबला के सामने चूँ तक न कर सका। दबी जबान से बोला—मेहरिया धरम बेचने के लिए नहीं लायी जाती, धरम पालने के लिए लायी जाती है।

यह कंजड़-दंपत्ति आज तीन दिन से और कई कंजड़ परिवारों के साथ इस बाग में उतरे हुए थे। सारे बाग में सिरकियाँ-ही-सिरकियाँ दिखायी देती थीं। उसी तीन हाथ चौड़ी और चार हाथ लम्बी सिरकी के अन्दर एक-एक पूरा परिवार जीवन के समस्त व्यापारों के साथ कल्पवास-सा कर रहा था। एक किनारे चक्की थी, एक किनारे रसोई का स्थान, एक किनारे दो-एक अनाज के मटके। द्वार पर एक छोटी-सी खटोली बालकों के लिए पड़ी थी। हरेक परिवार के साथ दो-दो भैंसें या गधे थे। जब डेरा कूच होता था तो सारी गृहस्थी इन जानवरों पर लाद दी जाती थी। यही इन कंजड़ों का जीवन था। सारी बस्ती एक साथ चलती थी। आपस में ही शादी-ब्याह, लेन-देन, झगड़े-टंटे होते रहते थे। इस दुनिया के बाहर वाला अखिल संसार उनके लिए केवल शिकार का मैदान था। उनके किसी इलाके में पहुँचते ही वहाँ की पुलिस तुरंत आकर अपनी निगरानी में ले लेती थी। पडाव के चारों तरफ चौकीदार का पहरा हो जाता था। स्त्री या पुरुष किसी गाँव में जाते तो दो-चार चौकीदार उनके साथ हो लेते थे। रात को भी उनकी हाजिरी ली जाती थी। फिर भी आस-पास के गाँव में आतंक छाया हुआ था; क्योंकि कंजड़ लोग बहुधा घरों में घुसकर जो चीज चाहते, उठा लेते और उनके हाथ में जाकर कोई चीज लौट न सकती थी। रात में ये लोग अकसर चोरी करने निकल जाते थे। चौकीदारों को उनसे मिले रहने में ही अपनी

कुशल दीखती थी। कुछ हाथ भी लगता था और जान भी बची रहती थी। सख्ती करने में प्राणों का भय था, कुछ मिलने का तो जिक्र ही क्या; क्योंकि कंजड़ लोग एक सीमा के बाहर किसी का दबाव न मानते थे। बस्ती में अकेला भोंदू अपनी मेहनत की कमाई खाता था; मगर इसलिए नहीं कि वह पुलिसवालों की खुशामद न कर सकता था। उसकी स्वतंत्र आत्मा अपने बाहुबल से प्राप्त किसी वस्तु का हिस्सा देना स्वीकार न करती थी; इसलिए वह यह नौबत आने ही न देती थी।

बंटी को पति की यह आचार-निष्ठा एक आँख न भाती थी। उसकी और बहनें नयी-नयी साड़ियाँ और नये-नये आभूषण पहनतीं, तो बंटी उन्हें देख-देखकर पति की अकर्मण्यता पर कुढ़ती थी। इस विषय पर दोनों में कितने ही संग्राम हो चुके थे; लेकिन भोंदू अपना परलोक बिगाड़ने पर राजी न होता था। आज भी प्रातःकाल यही समस्या आ खड़ी हुई थी और भोंदू लकड़ी काटने जंगलों में निकल गया था। साँडे मिल जाते, तो आँसू पुँछते, पर आज साँडे भी न मिले।

बंटी ने कहा—जिनसे कुछ नहीं हो सकता, वही धरमात्मा बन जाते हैं। राँड़ अपने माँड़ ही में खुश है ?

भोंदू ने पूछा—तो मैं निखट्टू हूँ ?

बंटी ने इस प्रश्न का सीधा-सादा उत्तर न देकर कहा—मैं क्या जानूँ, तुम क्या हो ? मैं तो यही जानती हूँ कि यहाँ धेले-धेले की चीज के लिए तरसना पड़ता है। यहीं सबको पहनते-ओढ़ते, हँसते-खेलते देखती हूँ। क्या मुझे पहनने-ओढ़ने, हँसने-खेलने की साध नहीं है ? तुम्हारे पल्ले पड़कर जिंदगानी नष्ट हो गयी।

भोंदू ने एक क्षण विचार-मग्न रहकर कहा—जानती है, पकड़ जाऊँगा, तो तीन साल से कम की सजा न होगी।

बंटी विचलित न हुई। बोली—जब और लोग नहीं पकड़ जाते; तो तुम्हीं पकड़ जाओगे ?

और लोग पुलिस को मिला लेते हैं, थानेदार के पाँव सहलाते हैं, चौकीदार की खुशामद करते हैं। तू चाहती है, मैं भी औरों की तरह सबकी चिरौरी करता फिरूँ ?

बंटी ने अपना हठ न छोड़ा—मैं तुम्हारे साथ सती होने नहीं आयी। फिर तुम्हारे छुरे-गँड़ासे को कोई कहाँ तक डरे। जानवर को भी जब घास-भूसा नहीं मिलता, तो पगहा तुड़ाकर किसी के खेत में पैठ जाता है। मैं तो आदमी हूँ।

भोंदू ने इसका कुछ जवाब न दिया। उसकी स्त्री कोई दूसरा घर कर ले, यह कल्पना उसके लिए अपमान से भरी थी। आज बंटी ने पहली बार यह धमकी दी। अब तक भोंदू इस तरफ से निश्चिन्त था। अब यह नयी संभावना उसके सम्मुख उपस्थित हुई। उस दुर्दिन को वह अपना काबू चलते अपने पास न आने देगा।

आज भोंदू की दृष्टि में वह इज्जत नहीं रही, वह भरोसा नहीं रहा। मजबूत दीवार को टिकौने की जरूरत नहीं। जब दीवार हिलने लगती है, तब हमें उसको सँभालने की चिन्ता होती है। आज भोंदू को अपनी दीवार हिलती हुई मालूम होती थी।

आज तक बंटी अपनी थी। वह जितना अपनी ओर से निश्चिन्त था, उतना ही उसकी ओर से भी था। वह जिस तरह खुद रहता था—उसी तरह उसको भी रखता था। जो

खुद खाता था, वही उसको खिलाता था, उसके लिए कोई विशेष फिक्र न थी; पर आज उसे मालूम हुआ कि वह अपनी नहीं है, अब उसका विशेष रूप से सत्कार करना होगा, विशेष रूप से दिलजोई करनी होगी।

सूर्यास्त हो रहा था। उसने देखा, उसका गधा चरकर चुपचाप सिर झुकाये चला आ रहा है। भोंदू ने कभी उसकी खाने-पीने की चिन्ता न की थी; क्योंकि गधा किसी और को अपना स्वामी बनाने की धमकी न दे सकता था। भोंदू ने बाहर आकर आज गधे को पुचकारा, उसकी पीठ सहलायी और तुरन्त उसे पानी पिलाने के लिए डोल और रस्सी लेकर चल दिया।

2

इसके दूसरे ही दिन कस्बे में एक धनी ठाकुर के घर चोरी हो गयी। उस रात को भोंदू अपने डेरे पर न था। बंटी ने चौकीदार से कहा—वह जंगल से नहीं लौटा' प्रातःकाल भोंदू आ पहुँचा। उसकी कमर में रुपयों की एक थैली थी। कुछ सोने के गहने भी थे। बंटी ने तुरन्त गहनों को ले जाकर एक वृक्ष की जड़ में गाड़ दिया। रुपयों की क्या पहचान हो सकती थी।

भोंदू ने पूछा—अगर कोई पूछे, इतने सारे रुपये कहाँ मिले, तो क्या कहोगी ?

बंटी ने आँखें नचाकर कहा—कह दूँगी, क्यों बताऊँ ? दुनिया कमाती है, तो किसी को हिसाब देने जाती है ? हमी क्यों अपना हिसाब दें।

भोंदू ने संदिग्ध भाव से गर्दन हिलाकर कहा—यह कहने से गला न छूटेगा, बंटी ! तू कह देना, मैं तीन-चार मास से दो-दो, चार-चार रुपये महीना जमा करती आई हूँ। हमारा खरच ही कौन बड़ा लंबा है।

दोनों ने मिलकर बहुत से जवाब सोच निकाले—जड़ी-बूटियाँ बेचते हैं। एक-एक जड़ी के लिए मुट्ठी-मुट्ठी भर रुपये मिल जाते हैं। खस, साँडे, जानवरों की खालें, नख और चर्बी, सभी बेचते हैं।

इस ओर से निश्चिन्त होकर दोनों बाजार चले। बंटी ने अपने लिए तरह-तरह के कपड़े, चूड़ियाँ, टिकुलियाँ, बुंदे, सेंदुर, पान-तमाखू, तेल और मिठाई ली। फिर दोनों जने शराब की दुकान गये। खूब शराब पी। फिर दो बोतल शराब रात के लिए लेकर दोनों घूमते-घामते, गाते-बजाते घड़ी रात गये डेरे पर लौटे। बंटी के पाँव आज जमीन पर न पड़ते थे। आते ही बन-ठनकर पड़ोसियों को अपनी छवि दिखाने लगी।

जब वह लौटकर अपने घर आयी और भोजन पकाने लगी, तब पड़ोसियों ने टिप्पणियाँ करनी शुरू कीं—

'कहीं गहरा हाथ मारा है।'

'बड़ा धरमात्मा बना फिरता था।'

'बगला भगत है।'

'बंटी तो आज जैसे हवा में उड़ रही है।'

आज भोंदुआ की कितनी खातिर हो रही है। नहीं तो कभी एक लुटिया पानी देने भी न उठती थी।

रात को भोंदू को देवी की याद आयी। आज तक कभी उसने देवी की वेदी पर बकरे

का बलिदान न किया था। पुलिस को मिलाने में ज्यादा खर्च था। कुछ आत्म-सम्मान भी खोना पड़ता। देवीजी केवल एक बकरे में राजी हो जाती हैं। हाँ, उससे एक गलती जरूर हुई थी। उसकी बिरादरी के और लोग साधारणतया कार्यसिद्धि के पहले ही बलिदान दिया करते थे। भोंदू ने यह खतरा न लिया। जब तक माल हाथ न आ जाय, उसके भरोसे पर देवी-देवताओं को खिलाना उसकी व्यावसायिक बुद्धि को न जँचा। औरों से अपने कृत्य को गुप्त रखना भी चाहता था; इसलिए किसी को सूचना भी न दी, यहाँ तक कि बंटी से भी न कहा—बंटी तो भोजन बना रही थी, वह बकरे की तलाश में घर से निकल पड़ा।

बंटी ने पूछा—अब भोजन करने के जून कहाँ चले ?

'अभी आता हूँ।'

'मत जाओ, मुझे डर लगता है।'

भोंदू स्नेह के नवीन प्रकाश से खिलकर बोला—मुझे देर न लगेगी। तू यह गँड़ासा अपने पास रख ले।

उसने गँड़ासा निकालकर बंटी के पास रख दिया और निकला। बकरे की समस्या बेढब थी। रात को बकरा कहाँ से लाता ? इस समस्या को भी उसने एक नये ढंग से हल किया। पास की बस्ती में एक गड़रिये के पास कई बकरे पले थे। उसने सोचा, वहीं से एक बकरा उठा लाऊँ। देवीजी को अपने बलिदान से मतलब है, या इससे कि बकरा कैसे आया और कहाँ से आया।

मगर बस्ती के समीप पहुँचा ही था कि पुलिस के चार चौकीदारों ने उसे गिरफ्तार कर लिया और मुश्कें बाँधकर थाने ले चले।

3

बंटी भोजन पकाकर अपना बनाव-सिंगार करने लगी। आज उसे अपना जीवन सफल जान पड़ता था। आनंद से खिली जाती थी। आज जीवन में पहली बार उसके सिर में सुगन्धित तेल पड़ा। आईना उसके पास एक पुराना अंधा-सा पड़ा हुआ था। आज वह नया आईना लाई थी। उसके सामने बैठकर उसने अपने केश सँवारे। मुँह पर उबटन मला। साबुन लाना भूल गयी थी। साहब लोग साबुन लगाने ही से तो इतने गोरे हो जाते हैं। साबुन होता, तो उसका रंग कुछ तो निखर जाता। कल वह अवश्य साबुन की कई बट्टियाँ लायेगी और रोज लगायेगी। केश गूँथकर उसने माथे पर अलसी का लुआब लगाया, जिसमें बाल न बिखरने पायें। फिर पान लगाये, चूना ज्यादा हो गया था। गलफड़ों में छाले पड़ गये; लेकिन उसने समझा शायद पान खाने का यही मजा है। आखिर कड़वी मिर्च भी तो लोग मजे में खाते हैं। गुलाबी साड़ी पहन और फूलों का गजरा गले में डालकर उसने आईने में अपनी सूरत देखी, तो उसके आबनूसी रंग पर लाली दौड़ गयी। आप ही आप लज्जा से उसकी आँखें झुक गयीं। दरिद्रता की आग से नारीत्व भी भस्म हो जाता है, नारीत्व की लज्जा का क्या जिक्र। मैले-कुचैले कपड़े पहनकर लजाना ऐसा ही है, जैसे कोई चबैने में सुगन्ध लगाकर खाये।

इस तरह सजकर बंटी भोंदू की राह देखने लगी। जब अब भी वह न आया, तो उसका जी झुँझलाने लगा। रोज तो साँझ ही से द्वार पर पड़ रहते थे, आज न-जाने कहाँ

जाकर बैठ रहे। शिकारी अपनी बंदूक भर लेने के बाद इसके सिवा और क्या चाहता है कि शिकार सामने आये। बंटी के सूखे हृदय में आज पानी पड़ते ही उसका नारीत्व अंकुरित हो गया। झुँझलाहट के साथ उसे चिन्ता भी होने लगी। उसने बाहर निकलकर कई बार पुकारा। उसके कंठस्वर में इतना अनुराग कभी न था। उसे कई बार भान हुआ कि भोंदू आ रहा है, वह हर बार सिरकी के अन्दर दौड़ आयी और आईने में सूरत देखी कि कुछ बिगड़ न गया हो। ऐसी धड़कन, ऐसी उलझन, उसकी अनुभूति से बाहर थी।

बंटी सारी रात भोंदू के इन्तजार में उद्विग्न रही। ज्यों-ज्यों रात बीतती थी, उसकी शंका तीव्र होती जाती थी। आज ही उसके वास्तविक जीवन का आरंभ हुआ था और आज ही यह हाल।

प्रातःकाल वह उठी, तो अभी कुछ अँधेरा ही था। इस रतजगे से उसका चित्त खिन्न और सारी देह अलसाई हुई थी। रह-रहकर भीतर से एक लहर भी उठती थी, आँखें भर-भर आती थीं।

सहसा किसी ने कहा—अरे बंटी, भोंदू रात पकड़ गया।

4

बंटी थाने पहुँची तो पसीने में तर थी और दम फूल रहा था। उसे भोंदू पर दया न थी, क्रोध आ रहा था। सारा जमाना यही काम करता है और चैन की बंसी बजाता है। उन्होंने कहते-कहते हाथ भी लगाया, तो चूक गये। नहीं सहूर था, तो साफ कह देते, मुझसे यह काम न होगा। मैं यह थोड़े ही कहती थी कि आग में फाँद पड़ो।

उसे देखते ही थानेदार ने धौंस जमायी—यही तो है भोंदुआ की औरत, इसे भी पकड़ लो।

बंटी ने हेकड़ी जतायी—हाँ-हाँ पकड़ लो, यहाँ किसी से नहीं डरते। जब कोई काम ही नहीं करते, तो डरे क्यों।

अफसर और मातहत सभी की अनुरक्त आँखें बंटी की ओर उठने लगीं। भोंदू की तरफ से लोगों के दिल कुछ नर्म हो गये। उसे धूप से छाँह में बैठा दिया गया। उसके दोनों हाथ पीछे बँधे हुए थे और धूल-धूसरित काली देह पर भी जूतों और कोड़ों के रक्तमय मार साफ नजर आ रहे थे। उसने एक बार बंटी की ओर देखा, मानो कह रहा था—देखना, कहीं इन लोगों के धोखे में न आ जाना।

थानेदार ने डाँट बतायी—जरा इसकी दीदा-दिलेरी देखो, जैसे देवी ही तो है; मगर इस फेर में न रहना। यहाँ तुम लोगों की नस-नस पहचानता हूँ। इतने कोड़े लगाऊँगा कि चमड़ी उड़ जायगी। नहीं तो सीधे से कबूल दो। सारा माल लौटा दो। इसी में खैरियत है। भोंदू ने बैठे-बैठे कहा—क्या कबूल दें। जो देश को लटते हैं, उनसे तो कोई नहीं बोलता, जो बेचारे अपनी गाढ़ी कमाई की रोटी खाते हैं, उनका गला काटने को पुलिस भी तैयार रहती है। हमारे पास किसी को नजर-भेंट देने के लिए पैसे नहीं हैं।

थानेदार ने कठोर स्वर से कहा—हाँ-हाँ; जो कुछ कोर-कसर रह गयी हो, वह पूरी कर दे। किरकिरी न होने पाये। मगर इन बैठकबाजियों से बच नहीं सकते। अगर एकबाल न किया, तो तीन साल को जाओगे। मेरा क्या बिगड़ता है। अरे छोटेसिंह, जरा लाल मिर्च की

धूनी तो दो इसे। कोठरी बंद करके पसेरी-भर मिर्चे सुलगा दो, अभी माल बरामद हुआ जाता है।

भोंदू ने ढिठाई से कहा—दारोगाजी, बोटी काट डालो, लेकिन कुछ हाथ न लगेगा। तुमने मुझे रातभर पिटवाया है, मेरी एक-एक हड्डी चूर-चूर हो गयी है। कोई दूसरा होता तो अब तक सिधार गया होता। क्या तुम समझते हो, आदमी को रुपये-पैसे जान से प्यारे होते हैं ? जान ही के लिए तो आदमी सब तरह के कुकरम करता है। धूनी सुलगाकर भी देख लो।

दारोगाजी को अब विश्वास आया कि इस फौलाद को झुकाना मुश्किल है। भोंदू की मुखाकृति से शहीदों का-सा आत्म-समर्पण झलक रहा था। यद्यपि उनके हुक्म की तामील होने लगी, कांस्टेबलों ने भोंदू को एक कोठरी में बंद कर दिया, दो आदमी मिर्चे लाने दौड़े, लेकिन दारोगा की युद्ध-नीति बदल गयी थी। बंटी का हृदय क्षोभ से फटा जाता था। वह जानती थी, चोरी करके एकबाल कर लेना कंजड़ जाति की नीति में महान् लज्जा की बात है; लेकिन क्या यह सचमुच मिर्च की धूनी सुलगा देंगे ? इतना कठोर है इनका हृदय ? सालन बघारने में कभी मिर्च जल जाती है, तो छींकों और खाँसियों के मारे दम निकलने लगता है। जब नाक के पास धूनी सुलगाई जायगी तब तो प्राण ही निकल जायँगे। उसने जान पर खेलकर कहा—दारोगाजी, तुम समझते होगे कि इन गरीबों की पीठ पर कोई नहीं है; लेकिन मैं कहे देती हूँ, हाकिम से रत्ती-रत्ती हाल कह दूँगी। भला चाहते हो, तो उसे छोड़ दो, नहीं तो इसका हाल बुरा होगा।

थानेदार ने मुस्कराकर कहा—तुझे क्या, वह मर जायगा, किसी और के नीचे बैठ जाना। जो कुछ जमा-जथा लाया होगा, वह तो तेरे ही हाथ में होगी। क्यों नहीं एकबाल करके उसे छुड़ा लेती। मैं वादा करता हूँ, मुकदमा न चलाऊँगा। सब माल लौटा दे। तूने ही उसे मंत्र दिया होगा। गुलाबी साड़ी, पान और खुशबूदार तेल के लिए तू ही ललच रही होगी। उसकी इतनी साँसत हो रही है और तू खड़ी देख रही है।

शायद बंटी की अन्तरात्मा को यह विश्वास न था कि ये लोग इतने अमानुषीय अत्याचार कर सकते हैं; लेकिन जब सचमुच धूनी सुलगा दी गयी। मिर्च की तीखी जहरीली झार फैली और भोंदू के खाँसने की आवाजें कानों में आयीं, तो उसकी आत्मा कातर हो उठी। उसका वह दुस्साहस झूठे रंग की भाँति उड़ गया। उसने दारोगाजी के पाँव पकड़ लिए और दीन भाव से बोली—मालिक, मुझ पर दया करो। मैं सब कुछ दे दूँगी।

धूनी उसी वक्त हटा ली गयी।

5

भोंदू ने सशंक होकर पूछा—धूनी क्यों हटाते हो ?

एक चौकीदार ने कहा—तेरी औरत ने एकबाल कर लिया।

भोंदू की नाक, आँख, मुँह से पानी जारी था। सिर चक्कर खा रहा था। गले की आवाज बंद-सी हो गयी थी; पर वह वाक्य सुनते ही वह सचेत हो गया। उसकी दोनों मुट्ठियाँ बँध गयीं। बोला—क्या कहा ?

'कहा क्या, चोरी खुल गयी। दारोगाजी माल बरामद करने गये हुए हैं। पहले ही

एकबाल कर लिया होता, तो क्यों इतनी साँसत होती ?'

भोंदू ने गरजकर कहा—वह झूठ बोलती है।

'वहाँ माल बरामद हो गया, तुम अभी अपनी ही गा रहे हो।'

परम्परा की मर्यादा को अपने हाथों भंग होने की लज्जा से भोंदू का मस्तक झुक गया। इस घोर अपमान के बाद अब उसे अपना जीवन दया, घृणा और तिरस्कार इन सभी दशाओं से निखिद जान पड़ता था। वह अपने समाज में पतित हो गया था।

सहसा बंटी आकर खड़ी हो गयी और कुछ कहना ही चाहती थी कि भोंदू की रौद्रमुद्रा देखकर उसकी जबान बन्द हो गयी। उसे देखते ही भोंदू की आहत मर्यादा किसी आहत सर्प की भाँति तड़प उठी। उसने बंटी को अंगारों-सी तपती हुई लाल आँखों से देखा। उन आँखों में हिंसा की आग जल रही थी। बंटी सिर से पाँव तक काँप उठी। वह उलटे पाँव वहाँ से भागी। किसी देवता के अग्निबाण के समान वे दोनों अंगारों-सी आँखें उसके हृदय में चुभने लगीं।

थाने से निकलकर बंटी ने सोचा, अब कहाँ जाऊँ, भोंदू उसके साथ होता तो वह पड़ोसियों के तिरस्कार को सह लेती। इस दशा में उसके लिए अपने घर जाना असम्भव था। वे दोनों अंगारे-सी आँखें उसके हृदय में चुभी जाती थीं, लेकिन कल की सौभाग्य-विभूतियों का मोह उसे डेरे की ओर खींचने लगा। शराब की बोतल अब भी भरी धरी थी। फुलौड़ियाँ छींके पर हाँड़ी में धरी थीं। वह तीव्र लालसा, जो मृत्यु को सम्मुख देखकर भी संसार के भोग्य पदार्थों की ओर मन को चलायमान कर देती है, उसे खींचकर डेरे की ओर ले चली।

दोपहर हो गया था। वह पहाड़ पर पहुँची, तो सन्नाटा छाया हुआ था। अभी कुछ देर पहले जो स्थान जीवन का क्रीड़ा-क्षेत्र बना हुआ था, बिलकुल निर्जन हो गया था। बिरादरीवालों के तिरस्कार का सबसे भयंकर रूप था। सभी ने उसे त्याज्य समझ लिया। केवल उसकी सिरकी उस निर्जनता में रोती हुई खड़ी थी। बंटी ने उसके अंदर पाँव रखे, तो उसके मन की कुछ वही दशा हुई, जो अकेला घर देखकर किसी चोर की होती है। कौन-कौन-सी चीज समेटे। उस कुटी में उसने रो-रोकर पाँच वर्ष काटे थे; पर आज उसे उससे वही ममता हो रही थी, जो किसी माता को अपने दुर्गुणी पुत्र को देखकर होती है, जो बरसों के बाद परदेश से लौटा हो। हवा से कुछ चीजें इधर-उधर हो गयी थीं। उसने तुरन्त उन्हें सँभालकर रखा। फुलौड़ियों की हाँड़ी छींके पर कुछ ठंडी हो गयी थी। शायद उस पर बिल्ली झपटी थी। उसने जल्दी से हाँड़ी उतारकर देखी। फुलौड़ियाँ अछूती थीं। पानी पर जो गीला कपड़ा लपेटा था, वह सूख गया था। उसने तुरन्त कपड़ा तर कर दिया।

किसी के पाँव की आहट पाकर उसका कलेजा धक्-से हो गया। भोंदू आ रहा है। उसकी वह दोनों अंगारे-सी आँखें ! उसके रोयें खड़े हो गये। भोंदू के क्रोध का उसे दो-एक बार अनुभव हो चुका था, लेकिन उसने दिल को मजबूत किया। क्यों मारेगा? कुछ कहेगा, कुछ पूछेगा, कुछ सवाल-जवाब करेगा कि योंही गँड़ासा चला देगा। उसने उसके साथ कोई बुराई नहीं की। आफत से उसकी जान बचायी। मरजाद जान से प्यारी नहीं होती। भोंदू को होगी, उसे नहीं है। क्या इतनी सी बात के लिए वह उसकी जान ले लेगा।

उसने सिरकी के द्वार से झाँका। भोंदू न था, केवल उसका गधा चला आ रहा था। बंटी आज उस अभागे से गधे को देखकर ऐसी प्रसन्न हुई, मानो अपना भाई नैहर से

बतासों की पोटली लिये थका-माँदा चला आता हो। उसने जाकर उसकी गर्दन सहलायी और उसके थूथन को अपने मुँह से लगा लिया। वह उसे फूटी आँखों न भाता था; पर आज उसने उसे कितनी आत्मीयता हो गयी थी। वह दोनों अंगारे-सी आँखें उसे घूर रही थीं। वह सिहर उठी।

उसने फिर सोचा—क्या किसी तरह न छोड़ेगा ? वह रोती हुई उसके पैरों पर गिर पड़ेगी। क्या तब भी न छोड़ेगा ? इन आँखों की वह कितनी सराहना किया करता था। इनमें आँसू बहते देखकर भी उसे दया न आयेगी ?

बंटी ने चुक्कड़ में शराब उँड़ेलकर पी ली और छींके से फुलौड़ियाँ उतारकर खायीं। जब उसे मरना ही है, तो साध क्यों रह जाय। वह दोनों अंगारे-सी आँखें उसके सामने चमक रही थीं। दूसरा चुक्कड़ भरा और पी गयी। जहरीला ठर्रा, जिसे दोपहार की गर्मी ने और भी घातक बना दिया था, देखते-देखते उसके मस्तिष्क को खौलाने लगा। बोतल आधी हो गयी थी।

उसने सोचा—भोंदू कहेगा, तूने इतनी दारू क्यों पी, तो वह क्या कहेगी। कह देगी—हाँ, पी; क्यों न पीये, इसी के लिए तो वह सब कुछ हुआ। वह एक बूँद भी न छोड़ेगी। जो होना हो, हो। भोंदू उसे मार नहीं सकता। इतना निर्दयी नहीं है, इतना कायर नहीं है। उसने फिर चुक्कड़ भरा और पी गयी। पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन की अतीत स्मृतियाँ उसकी आँखों के सामने खिंच गयीं। सैकड़ों ही बार दोनों में गृह-युद्ध हुए थे। आज बंटी को हर बार अपनी ज्यादती मालूम हो रही थी। बेचारा जो कुछ कमाता है, उसी के हाथों पर रख देता है। अपने लिए कभी एक पैसे की तम्बाकू भी लेता है तो पैसा उसी से माँगता है। भोर से साँझ तक वन-वन फिरा ही तो करता है ! जो काम उससे नहीं होता, वह कैसे करे।

यकायक एक कांस्टेबल ने आकर कहा—अरी बंटी, कहाँ है ? चल देख, भोंदुआ का हाल-बे-हाल हो रहा है। अभी तक तो चुपचाप बैठा था। फिर न-जाने क्या जी में आया कि एक पत्थर पर अपना सिर पटक दिया। लहू बह रहा है। अगर हम लोग दौड़कर पकड़ न लेते, तो जान ही दे दी थी।

6

एक महीना बीत गया था। संध्या का समय था। काली-काली घटाएँ छाई थीं और मूसलाधार वर्षा हो रही थी। भोंदू की सिरकी अब भी निर्जन स्थान पर खड़ी थी, भोंदू खटोली पर पड़ा हुआ था। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और देह जैसे सूख गयी थी। वह सशंक आँखों से वर्षा की ओर देखता है, चाहता है उठकर बाहर देखूँ; पर उठा नहीं जाता।

बंटी सिर पर घास का एक बोझ लिये पानी में लथ-पथ आती दिखलायी दी। वही गुलाबी साड़ी है, पर तार-तार, किन्तु उसका चेहरा प्रसन्न है। विषाद और ग्लानि के बदले आँखों से अनुराग टपक रहा है! गति में वह चपलता, अंगों में वह सजीवता है, जो चित्त की शान्ति का चिह्न है। भोंदू ने क्षीण स्वर में कहा—तू इतना भीग रही है, कहीं बीमार पड़ गयी, तो कोई एक घूँट पानी देने वाला भी न रहेगा। मैं कहता हूँ, तू क्यों इतना मरती है। दो गट्ठे तो बेच चुकी थी। तीसरा गट्ठा लाने का काम क्या था। यह हाँड़ी में क्या लाई है ?

बंटी ने हाँड़ी को छिपाते हुए कहा—कुछ तो नहीं है, कैसी हाँड़ी ?

भोंदू जोर लगाकर खटोली से उठा, अंचल के नीचे छिपी हुई हाँड़ी खोल दी और उसके भीतर नजर डालकर बोला—अभी लौटा, नहीं तो मैं हाँड़ी फोड़ दूँगा।

बंटी ने धोती से पानी निचोड़ते हुए कहा—जरा आईने में सूरत देखो। घी-दूध कुछ न मिलेगा, तो कैसे उठोगे ?—कि सदा खाट पर सोने का ही विचार है ?

भोंदू ने खटोली पर लेटते हुए कहा—अपने लिए तो एक साड़ी नहीं लायी। कितना कहके हार गया। मेरे लिए घी और दूध सब चाहिए ! मैं घी न खाऊँगा।

बंटी ने मुस्कराकर कहा—इसीलिए तो घी खिलाती हूँ कि तुम जल्दी से काम-धंधा करने लगो और मेरे लिए साड़ी लाओ।

भोंदू ने मुस्कराकर कहा—तो आज जाकर कहीं सेंध मारूँ ?

बंटी ने उसके गाल पर एक ठोकर देकर कहा—पहले मेरा गला काट देना, तब जाना।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका। 'हंस', जून, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-4 में संकलित। उर्दू रूप 'तुहफ़ए-मोहब्बत' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', सितम्बर, 1931 में प्रकाशित।]

आखिरी तोहफा

सारे शहर में सिर्फ एक ऐसी दुकान थी, जहां विलायती रेशमी साड़ी मिल सकती थी। और सभी दुकानदारों ने विलायती कपड़े पर कांग्रेस की मुहर लगवाई थी। मगर अमरनाथ की प्रेमिका की फरमाइश थी, उसको पूरा करना जरूरी था। वह कई दिन तक शहर की दुकानों का चक्कर लगाते रहे, दुगुना दाम देने पर तैयार थे, लेकिन कहीं सफल-मनोरथ न हुए और उसके तकाजे बराबर बढ़ते जाते थे। होली आ रही थी। आखिर वह होली के दिन कौन-सी साड़ी पहनेगी। उसके सामने अपनी मजबूरी को जाहिर करना अमरनाथ के पुरुषोचित अभिमान के लिए कठिन था। उसके इशारे से वह आसमान के तारे तोड़ लाने के लिए भी तत्पर हो जाते। आखिर जब कहीं मकसद पूरा न हुआ, तो उन्होंने उसी खास दुकान पर जाने का इरादा किया। उन्हें यह मालूम था कि उस दुकान पर धरना दिया जा रहा है। सुबह से शाम तक स्वयंसेवक तैनात रहते हैं और तमाशाइयों की भी हरदम खासी भीड़ रहती है। इसलिए उस दुकान में जाने के लिए एक विशेष प्रकार के नैतिक साहस की जरूरत थी और यह साहस अमरनाथ में जरूरत से कम था। पढ़े-लिखे आदमी थे, राष्ट्रीय भावनाओं से भी अपरिचित न थे, यथा-शक्ति स्वदेशी चीजें ही इस्तेमाल करते थे। मगर इस मामले में बहुत कट्टर न थे। स्वदेशी मिल जाए तो बेहतर वर्ना विदेशी ही सही—इस उसूल के मानने वाले थे। और खासकर जब उसकी फरमाइश थी तब तो कोई बचाव की सूरत ही न थी। अपनी जरूरतों को तो वह शायद कुछ दिनों के लिए टाल भी देते, मगर उसकी फरमाइश तो मौत की तरह अटल है। उससे मुक्ति कहां ! तय कर लिया कि आज

साड़ी जरूर लाएंगे। कोई क्यों रोके ? किसी को रोकने का क्या अधिकार है ? माना स्वदेशी का इस्तेमाल अच्छी बात है लेकिन किसी को जबर्दस्ती करने का क्या हक ? अच्छी आजादी की लड़ाई है जिसमें व्यक्ति की आजादी का इतनी बेदर्दी से खून हो !

यों दिल को मजबूत करके वह शाम को दुकान पर पहुंचे। देखा तो पांच वालंटियर पिकेटिंग कर रहे हैं और दुकान के सामने सड़क पर हजारों तमाशाई खड़े हैं। सोचने लगे, दुकान में कैसे जाएं। कई बार कलेजा मजबूत किया और चले मगर बरामदे तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

संयोग से एक जान-पहचान के पंडितजी मिल गए। उनसे पूछा—क्यों भाई, यह धरना कब तक रहेगा ? शाम तो हो गई।

पंडितजी ने कहा—इन सिरफिरों को सुबह और शाम से क्या मतलब, जब तक दुकान बंद न हो जाएगी, यहां से न टलेंगे। कहिए, कुछ खरीदने का इरादा है ? आप तो रेशमी कपड़ा नहीं खरीदते ?

अमरनाथ ने विवशता की मुद्रा बनाकर कहा—मैं तो नहीं खरीदता, मगर औरतों की फरमाइश को कैसे टालूं।

पंडितजी ने मुस्कराकर कहा—वाह, इससे ज्यादा आसान तो कोई बात नहीं। औरतों को भी चकमा नहीं दे सकते ? सौ हीले और हजार बहाने हैं।

अमरनाथ—आप ही कोई हीला सोचिए।

पंडितजी—सोचना क्या है, यहां रात-दिन यही किया करते हैं। सौ-पचास हीले हमेशा जेबों में पड़े रहते हैं। औरत ने कहा, हार बनवा दो। कहा, आज ही लो। दो-चार रोज के बाद कहा, सुनार माल लेकर चंपत हो गया। यह तो रोज का धंधा है भाई। औरतों का काम फरमाइश करना है और मर्दों का काम उसे खूबसूरती से टालना है।

अमरनाथ—आप तो इस कला के पंडित मालूम होते हैं !

पंडितजी—क्या करें भाई, आबरू तो बचानी ही पड़ती है। सूखा जवाब दें तो शर्मिंदगी अलग हो, बिगड़ें वह अलग से, समझें, हमारी परवाह ही नहीं करते। आबरू का मामला है। आप एक काम कीजिए। यह तो आपने कहा ही होगा कि आजकल पिकेटिंग है ?

अमरनाथ—हां, यह तो बहाना कर चुका भाई, मगर वह सुनती ही नहीं, कहती है क्या विलायती कपड़े दुनिया से उठ गए। मुझसे चले हो उड़ने !

पंडितजी—तो मालूम होता है, कोई धुन की पक्की औरत है। अच्छा तो मैं एक तरकीब बताऊं। एक खाली कार्ड का बकस ले लो, उसमें पुराने कपड़े जलाकर भर लो। जाकर कह देना, मैं कपड़े लिये आता था, वालंटियरों ने छीनकर जला दिए। क्यों, कैसी रहेगी ?

अमरनाथ—कुछ जंचती नहीं। अजी, बीस एतराज करेंगी, कहीं पर्दाफाश हो जाए तो मुफ्त को शर्मिंदगी उठानी पड़े।

पंडितजी—तो मालूम हो गया, आप बोदे आदमी हैं और हैं भी आप कुछ ऐसे ही। यहां तो कुछ इस शान से हीले करते हैं कि सच्चाई भी उसके आगे धूल हो जाए। जिंदगी-भर यही बहाना करते गुजरी और कभी पकड़े न गए। एक तरकीब और है। इसी

नमूने का देशी माल ले जाइए और कह दीजिए कि विलायती है।

अमरनाथ—देशी और विलायती की पहचान उन्हें मुझसे और आपसे कहीं ज्यादा है। विलायती पर तो जल्द विलायती का यकीन आएगा नहीं, देशी की तो बात ही क्या है !

एक खद्दरपोश महाशय पास ही खड़े यह बातचीत सुन रहे थे, बोल उठे—ए साहब, सीधी-सी बात है, जाकर साफ कह दीजिए कि मैं विदेशी कपड़े न लाऊंगा। अगर जिद करें तो दिन-भर खाना न खाइए, आप सीधे रास्ते पर आ जाएंगी।

अमरनाथ ने उनकी तरफ कुछ ऐसी निगाहों से देखा जो कह रही थीं आप इस कूचे को नहीं जानते और बोले—यह आप ही कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता।

खद्दरपोश—कर तो आप भी सकते हैं लेकिन करना नहीं चाहते। यहां तो उन लोगों में से हैं कि अगर विदेशी दुआ से मुक्ति भी मिलती हो तो उसे ठुकरा दें।

अमरनाथ—तो शायद आप घर में पिकेटिंग करते होंगे ?

खद्दरपोश—पहले घर में करके तब बाहर करते हैं भाई साहब !

खद्दरपोश साहब चले गए तो पंडितजी बोले—यह महाशय तो तीसमारखां से भी तेज निकले। अच्छा तो आप एक काम कीजिए। इस दुकान के पिछवाड़े एक दूसरा दरवाजा है, जरा अंधेरा हो जाए तो उधर से चले जाइएगा, दाएं-बाएं किसी तरफ न देखिएगा।

अमरनाथ ने पंडितजी को धन्यवाद दिया और जब अंधेरा हो गया तो दुकान के पिछवाड़े की तरफ जा पहुंचे। डर रहे थे, कहीं यहां भी घेरा न पड़ा हो। लेकिन मैदान खाली था। लपककर अंदर गए, एक ऊंचे दामों की साड़ी खरीदी और बाहर निकले तो एक देवीजी केसरिया साड़ी पहने खड़ी थीं। उनको देखकर इनकी रूह फना हो गई. दरवाजे से बाहर पांव रखने की हिम्मत नहीं हुई। एक मिनट तक तो किवाड़ की आड़ में छिपे खड़े रहे फिर देवीजी का मुंह दूसरी तरफ देखकर तेजी से निकल पड़े और कोई सौ कदम भागते हुए चले गए। कर्म का लिखा, सामने से एक बुढ़िया लाठी टेकती चली आ रही थी। आप उससे लड़ गए। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी कोसने—अरे अभागे, यह जवानी बहुत दिन न रहेगी, आंखों में चर्बी छा गई है, धक्के देता चलता है !

अमरनाथ उसकी खुशामद करने लगे—माई, माफ करो, मुझे रात को कुछ कम सुझाई पड़ता है। ऐनक घर भूल आया।

बुढ़िया का मिजाज ठंडा हुआ, आगे बढ़ी और आप भी चले। एकाएक कानों में आवाज आई, 'बाबू साहब, जरा ठहरिएगा' और वही केसरिया कपड़ों वाली देवीजी आती हुई दिखाई दीं।

अमरनाथ के पांव बंध गए। इस तरह कलेजा मजबूत करके खड़े हो गए जैसे कोई स्कूली लड़का मास्टर की बेंत के सामने खड़ा होता है।

देवीजी ने पास आकर कहा—आप तो ऐसे भागे कि मैं जैसे आपको काट खाऊंगी। आप जब पढ़े-लिखे आदमी होकर अपना धर्म नहीं समझते तो दुःख होता है। देश की क्या हालत है, लोगों को खद्दर नहीं मिलता, आप रेशमी साड़ियां खरीद रहे हैं !

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा—मैं सच कहता हूं देवीजी, मैंने अपने लिए नहीं खरीदी, एक साहब की फरमाइश थी।

देवीजी ने झोली से एक चूड़ी निकालकर उनकी तरफ बढ़ाते हुए कहा—ऐसे हीले

रोज ही सुना करती हूं। या तो आप उसे वापस कर दीजिए या लाइए हाथ, मैं आपको चूड़ी पहना दूं।

अमरनाथ—शौक से पहना दीजिए। मैं उसे बड़े गर्व से पहनूंगा। चूड़ी उस बलिदान का एक चिह्न है जो देवियों के जीवन की विशेषता है। चूड़ियां उन देवियों के हाथ में भी थीं जिनके नाम सुनकर आज भी हम आदर से सिर झुकाते हैं। मैं तो उसे शर्म की बात नहीं समझता। आप अगर और कोई चीज पहनाना चाहें तो वह भी शौक से पहना दीजिए। नारी पूजा की वस्तु है, उपेक्षा की नहीं। अगर स्त्री, जो कौम को पैदा करती है, चूड़ी पहनना अपने लिए गौरव की बात समझती है तो मर्दों के लिए चूड़ी पहनना क्यों शर्म की बात हो?

देवीजी को उनकी इस निर्लज्जता पर आश्चर्य तो हुआ मगर वह इतनी आसानी से अमरनाथ को छोड़ने वाली न थी। बोली—आप बातों के शेर मालूम होते हैं। अगर आप हृदय से स्त्री को पूजा की वस्तु मानते हैं, तो मेरी यह विनती क्यों नहीं मान जाते?

अमरनाथ—इसलिए कि यह साड़ी भी एक स्त्री की फरमाइश है।

देवी—अच्छा चलिए, मैं आपके साथ चलूंगी, जरा देखूं आपकी देवीजी किस स्वभाव की स्त्री हैं।

अमरनाथ का दिल बैठ गया। बेचारा अभी तक बिन-ब्याहा था, इसलिए नहीं कि उसकी शादी न होती थी बल्कि इसलिए कि शादी को वह आजीवन कारावास समझता था। मगर वह आदमी रसिक स्वभाव के थे, शादी से अलग रहकर भी शादी के मजों से अपरिचित न थे। किसी ऐसे प्राणी की जरूरत उनके लिए अनिवार्य थी जिस पर वह अपने प्रेम को समर्पित कर सकें, जिसकी तरावट से वह अपनी रूखी-सूखी जिंदगी को तरो-ताजा कर सकें, जिसके प्रेम की छाया में वह जरा देर के लिए ठंडक पा सकें, जिसके दिल में वह अपनी उमड़ी हुई जवानी की भावनाओं को बिखेरकर उनका उगना देख सकें। उनकी नजर ने मालती को चुना था जिसकी शहर में धूम थी। इधर डेढ़-दो साल से वह इसी खलिहान के दाने चुना करते थे। देवीजी के आग्रह ने उन्हें थोड़ी देर के लिए उलझन में डाल दिया। ऐसी शर्मिंदगी उन्हें जिंदगी में कभी न हुई थी। बोले—आज तो वह एक न्योते में गई हैं, घर में न होंगी।

देवीजी ने अविश्वास से हंसकर कहा—तो मैं समझ गई, यह आपकी देवीजी का कसूर नहीं, आपका कसूर है।

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा—मैं आपसे सच कहता हूं, आज वह घर पर नहीं।

देवी ने पूछा—कल आ जाएंगी ?

अमरनाथ बोले—हां, कल आ जाएंगी।

देवी—तो आप यह साड़ी मुझे दे दीजिए और कल यहीं आ जाइएगा, मैं आपके साथ चलूंगी। मेरे साथ दो-चार बहनें भी होंगी।

अमरनाथ ने बिना किसी आपत्ति के वह साड़ी देवीजी को दे दी और बोले—बहुत अच्छा, मैं कल आ जाऊंगा। मगर क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है जो साड़ी की जमानत जरूरी है ?

देवीजी ने मुस्कराकर कहा—सच्ची बात तो यही है कि मुझे आप पर विश्वास नहीं।

अमरनाथ ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—अच्छी बात है, आप इसे ले जाएं।

देवी ने क्षण-भर बाद कहा—शायद आपको बुरा लग रहा हो कि कहीं साड़ी गुम न हो जाए। इसे आप लेते जाइए, मगर कल आइए जरूर।

अमरनाथ स्वाभिमान के मारे बगैर कुछ कहे घर की तरफ चल दिए, देवीजी 'लेते जाइए, लेते जाइए' करती रह गईं।

2

अमरनाथ घर न जाकर एक खद्दर की दुकान पर गए और दो सूटों का खद्दर खरीदा। फिर अपने दर्जी के पास ले जाकर बोले—खलीफा, इसे रातों-रात तैयार कर दो, मुंहमांगी सिलाई दूंगा।

दर्जी ने कहा—बाबू साहब, आजकल तो होली की भीड़ है। होली से पहले तैयार न हो सकेंगे।

मालती ने उन्हें खाली हाथ देखकर त्योरियां चढ़ाते हुए कहा—साड़ी लाए या नहीं ?

अमरनाथ ने उदासीनता के ढंग से जवाब दिया—नहीं।

मालती ने आश्चर्य से उनकी तरफ देखा—नहीं ! वह उनके मुंह से यह शब्द सुनने की आदी न थी। यहां उसने पूर्ण समर्पण पाया था। उसका इशारा अमरनाथ के लिए भाग्य-लिपि क समान था। बोली—क्यों ?

अमरनाथ—क्यों क्या, नहीं लाए।

मालती—बाजार में मिली न होगी। तुम्हें क्यों मिलने लगी, और मेरे लिए !

अमरनाथ—नहीं साहब, मिली मगर लाया नहीं।

मालती—आखिर कोई वजह ? रुपये मुझसे ले जाते।

अमरनाथ—तुम खामखाह जलाती हो। तुम्हारे लिए जान देने को मैं हाजिर रहा।

मालती—तो शायद तुम्हें रुपये जान से भी प्यारे हों ?

अमरनाथ—तुम मुझे बैठने दोगी या नहीं ? अगर मेरी सूरत से नफरत हो तो चला जाऊं !

मालती—तुम्हें आज हो क्या गया है, तुम तो इतने तेज मिजाज के न थे ?

अमरनाथ—तुम बातें ही ऐसी कर रही हो।

मालती—तो आखिर मेरी चीज क्यों नहीं लाए ?

अमरनाथ ने उसकी तरफ बड़े वीर-भाव के साथ देखकर कहा—दुकान पर गया, जिल्लत उठाई और साड़ी लेकर चला तो एक औरत ने छीन ली। मैंने कहा, मेरी बीवी की फरमाइश है तो बोली—मैं उन्हीं को दूंगी, कल तुम्हारे घर आऊंगी।

मालती ने शरारत भरी नजरों से देखते हुए कहा—तो यह कहिए, 'आप दिल हथेली पर लिए फिर रहे थे। एक औरत को देखा और उसके कदमों पर चढ़ा दिया!

अमरनाथ—वह उन औरतों में नहीं, जो दिलों की घात में रहती हैं।

मालती—तो कोई देवी होगी ?

अमरनाथ—मैं उसे देवी ही समझता हूं।

मालती—तो आप इस देवी की पूजा कीजिएगा ?

अमरनाथ—मुझ जैसे आवारा नौजवान के लिए उस मंदिर के दरवाजे बंद हैं।

मालती—बहुत सुंदर होगी ?

अमरनाथ—न सुंदर है, न रूपवाली, न ऐसी अदाएं कुछ, न मधुर-भाषिणी, न तन्वंगी। बिल्कुल एक मामूली मासूम लड़की है। लेकिन जब मेरे हाथ से उसने साड़ी छीन ली तो मैं क्या कर सकता था। मेरी गैरत ने तो गवारा न किया कि उसके हाथ से साड़ी छीन लूं। तुम्हीं इंसाफ करो, वह दिल में क्या कहती ?

मालती—तो तुम्हें इसकी ज्यादा परवाह है कि वह अपने दिल में क्या कहेगी। मैं क्या कहूंगी, इसकी जरा भी परवाह न थी ! मेरे हाथ से कोई मर्द मेरी कोई चीज छीन ले तो देखूं, चाहे वह दूसरा कामदेव ही क्यों न हो।

अमरनाथ—अब इसे चाहे मेरी कायरता समझो, चाहे हिम्मत की कमी, चाहे शराफत, मैं उसके हाथ से न छीन सका।

मालती—तो कल वह साड़ी लेकर आएगी, क्यों ?

अमरनाथ—जरूर आएगी।

मालती—तो जाकर मुंह धो आओ। तुम इतने नादान हो, यह मुझे मालूम न था। साड़ी देकर चले आए, अब कल वह आपको देने आएगी ! कुछ भंग तो नहीं खा गए !

अमरनाथ—खैर, इसका इम्तहान कल हो ही जाएगा, अभी से क्यों बदगुमानी करती हो। तुम शाम को जरा देर के लिए मेरे घर तक चली चलना।

मालती—जिससे आप कहें कि यह मेरी बीवी है !

अमरनाथ—मुझे क्या खबर थी कि वह मेरे घर आने के लिए तैयार हो जाएगी, नहीं तो कोई और बहाना कर देता।

मालती—तो आपकी साड़ी आपको मुबारक हो, मैं नहीं जाती।

अमरनाथ—मैं तो रोज तुम्हारे घर आता हूं, तुम एक दिन के लिए भी नहीं चल सकतीं ?

मालती ने निष्ठुरता से कहा—अगर मौका आ जाए तो तुम अपने को मेरा शौहर कहलाना पसंद करोगे ? दिल पर हाथ रखकर कहना।

अमरनाथ दिल में कट गए, बात बनाते हुए बोले—मालती, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। बुरा न मानना, मेरे व तुम्हारे बीच प्यार और मुहब्बत दिखलाने के बावजूद एक दूरी का पर्दा पड़ा था। हम दोनों एक-दूसरे की हालत को समझते थे और इस पर्दे को हटाने की कोशिश न करते थे। यह पर्दा हमारे संबंधों की अनिवार्य शर्त्त था। हमारे बीच एक व्यापारिक समझौता-सा हो गया। हम दोनों उसकी गहराई में जाते हुए डरते थे। नहीं, बल्कि मैं डरता था और तुम जान-बूझकर न जाना चाहती थीं। अगर मुझे विश्वास हो जाता कि तुम्हें जीवन-सहचरी बनाकर मैं वह सब कुछ पा जाऊंगा जिसका मैं अपने को अधिकारी समझता हूं तो मैं अब तक कभी का तुमसे इसकी याचना कर चुका होता। लेकिन तुमने कभी मेरे दिल में यह विश्वास पैदा करने की परवाह न की। मेरे बारे में भी तुम्हें यह शक है। मैं नहीं कह सकता, तुम्हें यह शक करने का मैंने कोई मौका नहीं दिया और मैं कह सकता हूं कि मैं उससे कहीं बेहतर शौहर बन सकता हूं जितनी तुम बीवी बन सकती हो। मेरे लिए सिर्फ एतबार की जरूरत है और तुम्हारे लिए ज्यादा वजनी और ज्यादा भौतिक चीजों की। मेरी स्थायी आमदनी पांच सौ से ज्यादा नहीं, तुमको इतने से

संतोष न होगा। मेरे लिए सिर्फ इस इत्मीनान की जरूरत है कि तुम मेरी और सिर्फ मेरी हो। बोलो, मंजूर है ?

मालती को अमरनाथ पर रहम आ गया। उसकी बातों में जो सच्चाई भरी हुई थी, उससे वह इंकार न कर सकी। उसे यह भी यकीन हो गया कि अमरनाथ की वफा के पैर डगमगाएंगे नहीं। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा था कि उसे रस्सी से मजबूत जकड़ सकती है, लेकिन खुद जकड़े जाने पर वह अपने को तैयार न कर सकी। उसकी जिंदगी मुहब्बत की बाजीगरी में, प्रेम के प्रदर्शन में गुजरी थी। वह कभी इस, कभी उस शाख पर चहकती फिरती थी, बेकैद, आजाद, बेबंद। क्या वह चिड़िया पिंजरे में खुश रह सकती है जिसकी जबान तरह-तरह के मजों की आदी हो गई हो ? क्या वह सूखी रोटी से तृप्त हो सकती है? इस अनुभूति ने उसे पिघला दिया। बोली—आज तुम बड़ा ज्ञान बघार रहे हो।

अमरनाथ—मैंने तो केवल यथार्थ कहा है।

मालती—अच्छा, मैं कल चलूंगी, मगर एक घंटे से ज्यादा वहां न रहूंगी।

अमरनाथ का दिल शुक्रिए से भर उठा। बोला—मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूं मालती ! अब मेरी आबरू बच जाएगी। नहीं तो मेरे लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाता। अब देखना यह है कि तुम अपना पार्ट कितनी खूबसूरती से अदा करती हो।

मालती—इसकी तरफ से तुम इत्मीनान रखो। ब्याह नहीं किया मगर बारातें देखी हैं। मगर मैं डरती हूं कहीं तुम मुझसे दगा न कर रहे हो। मर्दों का क्या एतबार।

अमरनाथ ने निश्चल भाव से कहा—नहीं मालती, तुम्हारा संदेह निराधार है। अगर यह जंजीर पैरों में डालने की इच्छा होती तो कभी का डाल चुका होता। फिर मुझ जैसे वासना के बंदों का वहां गुजर ही कहां।

3

दूसरे दिन अमरनाथ दस बजे ही दर्जी को दुकान पर जा पहुंचे और सिर पर सवार होकर कपड़े तैयार कराए। फिर घर आकर नए कपड़े पहने और मालती को बुलाने चले। वहां देर हो गई। उसने ऐसा बनाव-सिंगार किया कि जैसे आज बहुत बड़ा मोर्चा जीतना है।

अमरनाथ ने कहा—वह ऐसी सुंदरी नहीं है जो तुम इतनी तैयारियां कर रही हो।

मालती ने बालो में कंघी करते हुए कहा—तुम इन बातों को नहीं समझ सकते, चुपचाप बैठे रहो।

अमरनाथ—लेकिन देर जो हो रही है।

मालती—कोई बात नहीं।

भय की उस सहज आशंका ने, जो स्त्रियों की विशेषता है, मालती को और भी अधिक सतर्क कर दिया था। अब तक उसने कभी अमरनाथ की ओर विशेष रूप से कोई कृपा न की थी। वह उससे काफी उदासीनता का बर्ताव करती थी। लेकिन कल अमरनाथ की भंगिमा से उसे एक संकट की सूचना मिल चुकी थी और वह उस संकट का अपनी पूरी शक्ति से मुकाबला करना चाहती थी। शत्रु को तुच्छ और अपदार्थ समझना स्त्रियों के लिए कठिन है। आज अमरनाथ को अपने हाथ से निकलते देखकर वह अपनी पकड़ को मजबूत कर रही थी। अगर इस तरह उसकी चीजें एक-एक करके निकल गईं तो फिर वह

अपनी प्रतिष्ठा कब तक बनाए रख सकेगी ? जिस चीज पर उसका कब्जा है, उसकी तरफ कोई आंख ही क्यों उठाए ? राजा भी तो एक-एक अंगुल जमीन के पीछे जान देता है। वह इस नये शिकारी को हमेशा के लिए अपने रास्ते से हटा देना चाहती थी, उसके जादू को तोड़ देना चाहती थी।

शाम को वह परी-जैसी, अपनी नौकरानी और नौकर को साथ लेकर अमरनाथ के घर चली। अमरनाथ ने सुबह दस बजे तक मर्दाने घर को जनानेपन का रंग देने में खर्च किया था। ऐसी तैयारियां कर रखी थीं कि जैसे कोई अफसर मुआइना करने वाला हो। मालती ने घर में पैर रखा तो उसकी सफाई और सजावट देखकर बहुत खुश हुई। जनाने हिस्से में कई कुर्सियां रखी थीं। बोली—अब लाओ अपनी देवीजी को। मगर जल्द आना। वर्ना मैं चली जाऊंगी।

अमरनाथ लपके हुए विलायती कपड़े की दुकान पर गए। आज भी धरना था। तमाशाइयों की वही भीड़। वहां देवीजी न थीं। पीछे की तरफ गए तो देवीजी एक लड़की के साथ उसी भेस में खड़ी थीं।

अमरनाथ ने कहा—माफ कीजिएगा, मुझे देर हो गई। मैं आपके वादे की याद दिलाने आया हूं।

देवीजी ने कहा—मैं तो आपका इंतजार कर रही थी। चलो सुमित्रा, जरा आपके घर हो आएं। कितनी दूर है ?

अमरनाथ—बहुत पास है। एक तांगा कर लूंगा।

पंद्रह मिनट में अमरनाथ दोनों को लिए घर जा पहुंचे। मालती ने देवीजी को देखा और देवीजी ने मालती को। एक किसी रईस का महल था, आलीशान; दूसरी किसी फकीर की कुटिया थी, छोटी-सी, तुच्छ। रईस की महल में आडंबर और प्रदर्शन था, फकीर की कुटिया में सादगी और सफाई। मालती ने देखा, भोली लड़की है जिसे किसी तरह सुंदर नहीं कह सकते। पर उसके भोलेपन और सादगी में जो आकर्षण था, उससे वह प्रभावित हुए बिना न रह सकी। देवीजी ने भी देखा, एक बनी-संवरी, बेधड़क और घमंडी औरत है जो किसी-न-किसी वजह से उस घर में अजनबी-सी मालूम हो रही है जैसे कोई जंगली जानवर पिंजरे में आ गया हो।

अमरनाथ सिर झुकाए मुजरिमों की तरह खड़े थे और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह आज पर्दा रह जाए।

देवी ने आते ही कहा—बहन, आप अब भी सिर से पांव तक विदेशी कपड़े पहने हुई हैं।

मालती ने अमरनाथ की तरफ देखकर कहा—मैं विदेशी और देशी के फेर में नहीं पड़ती। जो यह लाकर देते हैं वह पहनती हूं। लाने वाले हैं ये, मैं थोड़े ही बाजार जाती हूं।

देवी ने शिकायत-भरी आंखों से अमरनाथ की तरफ देखकर कहा—आप तो कहते थे यह इनकी फरमाइश है, मगर आप ही का कसूर निकल आया।

मालती—मेरे सामने इनसे कुछ मत कहो। तुम बाजार में भी दूसरे मर्दों से बातें कर सकती हो। जब वह बाहर चले जाएं तो जितना जी चाहे कह-सुन लेना। मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती।

देवीजी—मैं कुछ कहती नहीं, और बहनजी, मैं कह ही क्या सकती हूं! कोई जबर्दस्ती तो है नहीं, बस विनती कर सकती हूं।

मालती—इसका मतलब यह है कि इन्हें अपने देश की भलाई का जरा भी खयाल नहीं, उसका ठेका तुम्हीं ने ले लिया है। पढ़े-लिखे आदमी हैं, दस आदमी इज्जत करते हैं, नफा-नुकसान समझ सकते हैं। तुम्हारी क्या हिम्मत कि इन्हें उपदेश देने बैठो, या सबसे ज्यादा अक्लमंद तुम्हीं हो ?

देवीजी—आप मेरा मतलब गलत समझ रही हैं बहन।

मालती—हां, गलत तो समझूंगी ही, इतनी अक्ल कहां से लाऊं कि आपकी बातों का मतलब समझूं ! खद्दर की साड़ी पहन ली, झोली लटका ली, एक बिल्ला लगा लिया, बस अब अख्तियार है जहां चाहें आएं-जाएं, जिससे चाहें हंसें-बोलें, घर में कोई पूछता नहीं तो जेलखाने का भी क्या डर ! मैं इसे हुड़दंगापन समझती हूं, शरीफों की बहू-बेटियों को शोभा नहीं देता।

अमरनाथ दिल में कटे जा रहे थे। छिपने के लिए बिल ढूंढ़ रहे थे। देवी की पेशानी पर जरा बल न था, लेकिन आंखें डबडबा रही थीं।

अमरनाथ ने मालती से जरा तेज स्वर में कहा—क्यों खामखाह किसी का दिल दुखाती हो ? यह देवियां अपना ऐश-आराम छोड़कर यह काम कर रही हैं, क्या तुम्हें इसकी बिल्कुल खबर नहीं ?

मालती—रहने दो, बहुत तारीफ़ न करो। जमाने का रंग ही बदला जा रहा है, मैं क्या करूंगी और तुम क्या करोगे। तुम मर्दों ने औरतों को घर में इतनी बुरी तरह कैद किया कि आज वे रस्म-रिवाज, शर्म-हया को छोड़कर निकल आई हैं और कुछ दिनों में तुम लोगों की हुकूमत का खात्मा हुआ जाता है। विलायती और विदेशी तो दिखाने के लिए है, असल में यह आजादी की ख्वाहिश है जो तुम्हें हासिल है। तुम अगर दो-चार शादियां कर सकते हो तो औरत क्यों न करे ! सच्ची बात यह है, अगर आंखें हैं तो अब खोलकर देखो। मुझे वह आजादी न चाहिए। यहां तो लाज ढोते हैं और मैं शर्म-हया को अपना सिगार समझती हूं।

देवीजी ने अमरनाथ की तरफ फरियाद की आंखों से देखकर कहा—बहन ने औरतों को जलील करने की कसम खा ली है। मैं बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर आई थी, मगर शायद यहां से नाकाम जाना पड़ेगा।

अमरनाथ ने वह साड़ी उसको देते हुए कहा—नहीं, बिल्कुल नाकाम तो आप नहीं जाएंगी, हां जैसी कामयाबी की आपको उम्मीद थी वह न होगी।

मालती ने डपटते हुए कहा—वह मेरी साड़ी है, तुम उसे नहीं दे सकते !

अमरनाथ ने शर्मिंदा होते हुए कहा—अच्छी बात है, न दूंगा। देवीजी, ऐसी हालत में तो शायद आप मुझे माफ करेंगी।

देवीजी चली गईं तो अमरनाथ ने त्योरियां बदलकर कहा—यह तुमने आज मेरे मुंह में कालिख लगा दी। तुम इतनी बदतमीज और बदजबान हो, मुझे मालूम न था।

मालती ने रोषपूर्ण स्वर में कहा—तो अपनी साड़ी उसे दे देती ? मैं ऐंसी कच्ची गोलियां नहीं खेलीं। अब तो बदतमीज भी हूं, बदजबान भी, उस दिन इन बुराइयों में से एक भी न थी जब मेरी जूतियां सीधी करते थे। इस छोकरी ने मोहिनी डाल दी। जैसी रूह

वैसे फरिश्ते। मुबारक हो।

यह कहती हुई मालती बाहर निकली। उसने समझा था जुबान चलाकर और रूप की ताकत से वह उस लड़की को उखाड़ फेंकेगी लेकिन जब मालूम हुआ कि अमरनाथ आसानी से काबू में आने वाला नहीं तो उसने फटकार बताई। इन दामों अगर अमरनाथ मिल सकता था तो बुरा न था। इससे ज्यादा कीमत वह उसके लिए दे न सकती थी।

अमरनाथ उसके साथ दरवाजे तक आए। जब वह तांगे पर बैठी तो विनती करते हुए बोले—यह साड़ी दे दो न मालती, मैं तुम्हें कल इससे कहीं अच्छी साड़ी ला दूंगा।

मगर मालती ने रूखेपन से कहा—यह साड़ी तो अब लाख रुपये पर भी नहीं दे सकती !

अमरनाथ ने त्योरियां बदलकर जवाब दिया—अच्छी बात है, ले जाओ मगर समझ लो कि यह मेरा आखिरी तोहफा है।

मालती ने होंठ चबाकर कहा—इसकी परवाह नहीं। तुम्हारे बगैर मैं मर न जाऊंगी, इसका तुम्हें यकीन दिलाती हूं !

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन' अगस्त, 1931 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

तावान

छकौड़ीलाल ने दुकान खोली और कपड़े के थानों को निकाल-निकाल रखने लगा कि एक महिला, दो स्वयं सेवकों के साथ उसकी दुकान छेकने आ पहुँची। छकौड़ी के प्राण निकल गये।

महिला ने तिरस्कार करके कहा--क्यों लाला तुमने सील तोड़ डाली न ? अच्छी बात है, देखें तुम कैसे एक गिरह कपड़ा भी बेच लेते हो ! भले आदमी, तुम्हें शर्म नहीं आती कि देश में यह संग्राम छिड़ा हुआ है और तुम विलायती कपड़ा बेच रहे हो, डूब मरना चाहिये। औरतें तक घरों से निकल पड़ी हैं, फिर भी तुम्हें लज्जा नहीं आती ! तुम जैसे कायर देश में न होते तो उसकी यह अधोगति न होती !

छकौड़ी ने वास्तव में कल काँग्रेस की सील तोड़ डाली थी। यह तिरस्कार सुनकर उसने सिर नीचा कर लिया। उसके पास कोई सफाई न थी; कोई जवाब न था। उसकी दुकान बहुत छोटी थी। लेहने पर कपड़े लाकर बेचा करता था। यही जीविका थी, इसी पर वृद्धा माता, रोगिणी स्त्री और पाँच बेटे-बेटियों का निर्वाह होता था। जब स्वराज्य-संग्राम छिड़ा और सभी बजाज विलायती कपड़ों पर मुहरें लगवाने लगे, तो उसने भी मुहर लगवा ली। दस-पाँच थान स्वदेशी कपड़ों के उधार लाकर दुकान पर रख लिये; पर कपड़ों का मेल न था; इसलिए बिक्री कम होती थी। कोई भूला-भटका गाहक आ जाता, तो रुपया-आठ आने की बिक्री हो जाती। दिन भर दुकान में तपस्या-सी करके पहर रात को घर लौट जाता था। गृहस्थी का खर्च इस बिक्री में क्या चलता। कुछ दिन कर्ज़-वर्ज़ लेकर काम चलाया,

फिर गहने बेचने की नौबत आयी। यहाँ तक कि अब घरों में कोई ऐसी चीज़ न बची, जिससे दो-चार महीने पेट का भूत सिर से टल जाता। उधर स्त्री का रोग असाध्य होता जाता था। बिना किसी कुशल डाक्टर को दिखाये काम न चल सकता था। इसी चिन्ता में डूब-उतरा रहा था कि विलायती कपड़े का एक गाहक मिल गया, जो एकमुश्त दस रुपये का माल लेना चाहता था। इस प्रलोभन को वह न रोक सका।

स्त्री ने सुना, तो कानों पर हाथ रखकर बोली—मैं मुहर तोड़ने को कभी न कहूँगी। डाक्टर तो कुछ अमृत पिला न देगा। तुम नक्कू क्यों बनो। बचना होगा बच जाऊँगी, मरना होगा मर जाऊँगी, बेआबरुई तो न होगी। मैं जीकर ही घर का क्या उपकार कर रही हूँ। और सबको दिक कर रही हूँ। देश को स्वराज्य मिले लोग सुखी हों, बला से मैं मर जाऊँगी ! हजारों आदमी जेल जा रहे हैं, कितने घर तबाह हो गये, तो क्या सबसे ज्यादा प्यारी मेरी ही जान है ?

पर छकौड़ी इतना पक्का न था। अपना बस चलते वह स्त्री को भाग्य के भरोसे न छोड़ सकता था। उसने चुपके से मुहर तोड़ डाली और लागत के दामों दस रुपये के कपड़े बेच लिये।

अब डाक्टर को कैसे ले जाय। स्त्री से क्या परदा रखता। उसने जाकर साफ-साफ सारा वृत्तांत कह सुनाया और डाक्टर को बुलाने चला।

स्त्री ने उसका हाथ पकड़कर कहा—मुझे डाक्टर की जरूरत नहीं अगर तुमने ज़िद की, तो मैं दवा की तरफ आँख भी न उठाऊँगी।

छकौड़ी और उसकी माँ ने रोगिणी को बहुत समझाया, पर वह डाक्टर को बुलाने पर राज़ी न हुई। छकौड़ी ने दसों रुपये उठाकर घर-कुइयाँ में फेंक दिये और बिना कुछ खाये-पीये, किस्मत को रोता-झींकता दुकान पर चला आया। उसी वक्त पिकेट करने वाले आ पहुँचे और उसे फटकारना शुरू कर दिया। पड़ोस के दुकानदार ने कांग्रेस कमेटी में जाकर चुगली खाई थी।

2

छकौड़ी ने महिला के लिए अन्दर से लोहे की एक टूटी, बेरंग कुरसी निकाली और लपककर उनके लिए पान लाया। जब वह पान खाकर कुरसी पर बैठीं, तो उसने अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी ! बोला—बहनजी, बेशक मुझसे यह अपराध हुआ है; लेकिन मैंने मजबूर होकर मुहर तोड़ी। अबकी मुझे मुआफी दीजिए। फिर ऐसी खता न होगी।

देशसेविका ने थानेदारों के रोब के साथ कहा—यों अपराध क्षमा नहीं हो सकता। तुम्हें इसका तावान देना पड़ेगा। तुमने कांग्रेस के साथ विश्वासघात किया है और इसका तुम्हें दण्ड मिलेगा। आज ही बायकाट-कमेटी में यह मामला पेश होगा।

छकौड़ी बहुत ही विनीत, बहुत ही सहिष्णु था; लेकिन चिन्ताग्नि में तपकर उसका हृदय उस दशा को पहुँच गया था, जब एक चोट भी चिनगारियाँ पैदा करती हैं। तिनककर बोला—तावान तो मैं न दे सकता हूँ, न दूँगा। हाँ, दुकान भले ही बन्द कर दूँ। और दुकान भी क्यों बन्द करूँ, अपना माल है, जिस जगह चाहूँ, बेच सकता हूँ। अभी जाकर थाने में

लिखा दूँ, तो बायकाट-कमेटी को भागने की राह न मिले। जितना ही दबता हूँ; उतना ही आप लोग दबाती हैं।

महिला ने सत्याग्रह-शक्ति के प्रदर्शन का अवसर पाकर कहा—हाँ, जरूर पुलिस में रपट करो। मैं तो चाहती हूँ, तुम रपट करो। तुम उन लोगों को यह धमकी दे रहे हो, जो तुम्हारे ही लिए अपने प्राणों का बलिदान कर रहे हैं। तुम इतने स्वार्थान्ध हो कि अपने स्वार्थ के लिए देश का अनहित करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? उस पर मुझे पुलिस की धमकी देते हो ! बायकाट-कमेटी जाय या रहे; पर तुम्हें तावान देना पड़ेगा; अन्यथा दुकान बन्द करनी पड़ेगी।

यह कहते-कहते महिला का चेहरा गर्व से तेजवान हो गया। कई आदमी जमा हो गये और सब-के-सब छकौड़ी को बुरा-भला कहने लगे। छकौड़ी को भी मालूम हो गया कि पुलिस की धमकी देकर उसने बहुत बड़ा अविवेक किया है। लज्जा और अपमान से उसकी गरदन झुक गयी और मुँह जरा-सा निकल आया। फिर उसने गरदन नहीं उठाई।

सारा दिन गुज़र गया और धेले की बिक्री न हुई। आखिर हार कर उसने दुकान बन्द कर दी और घर चला आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल बायकाट-कमेटी ने एक स्वयंसेवक द्वारा उसे सूचना दे दी कि कमेटी ने उसे एक सौ एक रुपये का दण्ड दिया है।

3

छकौड़ी इतना जानता था कि कांग्रेस की शक्ति के सामने वह सर्वथा अशक्त है। उसकी ज़बान से जो धमकी निकल गयी, उस पर उसे घोर पश्चात्ताप हुआ; लेकिन तीर कमान से निकल चुका था। दुकान खोलना व्यर्थ था। वह जानता था, उसकी धेले की भी बिक्री न होगी। एक सौ एक रुपये देना उसके बूते से बाहर की बात थी ! दो-तीन दिन चुपचाप बैठा रहा। एक दिन रात को दुकान खोलकर सारी गाँठें घर उठा लाया और चुपके-चुपके बेचने लगा। पैसे की चीज धेले में लुटा रहा था और वह भी उधार! जीने के लिए कुछ आधार तो चाहिये !

मगर उसकी यह चाल भी कांग्रेस से छिपी न रही। चौथे ही दिन गोइन्दों ने कांग्रेस को ख़बर पहुँचा दी। उसी दिन तीसरे पहर छकौड़ी के घर की पिकेटिंग शुरू हो गई। अबकी सिर्फ पिकेटिंग शुरू न थी, स्यापा भी था। पाँच-छः स्वयंसेविकाएँ और इतने ही स्वयंसेवक द्वार पर स्यापा करने लगे।

छकौड़ी आँगन में सिर झुकाये खड़ा था। कुछ अक्ल काम न करती थी, इस विपत्ति को कैसे टाले। रोगिणी स्त्री सायबान में लेटी हुई थी वृद्धा माता उसके सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी और बच्चे बाहर स्यापे का आनन्द उठा रहे थे।

स्त्री ने कहा—इन सबसे पूछते नहीं, खायें क्या ?

छकौड़ी बोला—किससे पूछूँ, जब कोई सुने भी !

'जाकर कांग्रेसवालों से कहो, हमारे लिए कुछ इन्तजाम कर दें, हम अभी कपड़े को जला देंगे। ज्यादा नहीं, पच्चीस रुपये महीना दे दें।'

'वहाँ भी कोई न सुनेगा।'

'तुम जाओगे भी, या यहीं से कानून बघारने लगे ?'

'क्या जाऊँ, उलटे और लोग हँसी उड़ायेंगे। यहाँ तो जिसने दुकान खोली, उसे दुनिया लखपती ही समझने लगती है।'

'तो खड़े-खड़े ये गालियाँ सुनते रहोगे ?'

'तुम्हारे कहने से चला जाऊँ; मगर वहाँ ठिठोली के सिवा और कुछ न होगा।'

'हाँ, मेरे कहने से जाओ। जब कोई न सुनेगा, तो हम भी कोई और राह निकालेंगे।'

छकौड़ी ने मुँह लटकाये कुरता पहना और इस तरह काँग्रेस-दफ्तर चला, जैसे कोई मरणासन्न रोगी को देखने के लिए वैद्य को बुलाने जाता है।

4

काँग्रेस-कमेटी के प्रधान ने परिचय के बाद पूछा—'तुम्हारे ही ऊपर तो बायकाट-कमेटी ने एक सौ एक रुपये का तावान लगाया है ?'

'जी हाँ !'

'तो रुपया कब दोगे ?'

'मुझमें तावान देने की सामर्थ्य नहीं है। आपसे मैं सत्य कहता हूँ, मेरे घर में दो दिन से चूल्हा नहीं जला। घर की जो जमा-जथा थी, वह सब बेचकर खा गया। अब आपने तावान लगा दिया, दुकान बन्द करनी पड़ी। घर पर कुछ माल बेचने लगा। वहाँ स्यापा बैठ गया। अगर आपकी यही इच्छा हो कि हम सब दाने बगैर मर जायँ, तो मार डालिये, और मुझे कुछ नहीं कहना है।'

छकौड़ी जो बात कहने घर से चला था, वह उसके मुँह से न निकली। उसने देख लिया कि यहाँ कोई उस पर विचार करने वाला नहीं है।

प्रधानजी ने गम्भीर भाव से कहा—तावान तो देना ही पड़ेगा। अगर तुम्हें छोड़ दूँ, तो इसी तरह और लोग भी करेंगे। फिर विलायती कपड़े की रोकथाम कैसे होगी?

'मैं आपसे जो कह रहा हूँ, उस पर आपको विश्वास नहीं आता ?'

'मैं जानता हूँ, तुम मालदार आदमी हो।'

'मेरे घर की तलाशी ले लीजिए।'

'मैं इन चकमों में नहीं आता।'

छकौड़ी ने उद्दण्ड होकर कहा—तो यह कहिए कि आप देश-सेवा नहीं कर रहे हैं, गरीबों का खून चूस रहे हैं ! पुलिसवाले कानूनी पहलू से लेते हैं, आप ग़ैरकानूनी पहलू से लेते हैं। नतीजा एक है। आप भी अपमान करते हैं, वह भी अपमान करते हैं। मैं कसम खा रहा हूँ कि मेरे घर में खाने के लिए दाना नहीं है, मेरी स्त्री खाट पर पड़ी-पड़ी मर रही है। फिर भी आपको विश्वास नहीं आता। आप मुझे काँग्रेस का काम करने के लिए नौकर रख लीजिए। पच्चीस रुपये महीने दीजियेगा। इससे ज्यादा अपनी गरीबी का और क्या प्रमाण दूँ। अगर मेरा काम संतोष के लायक न हो, तो एक महीने के बाद मुझे निकाल दीजियेगा। यह समझ लीजिए कि जब मैं आपकी गुलामी करने को तैयार हुआ हूँ, तो इसीलिये कि मुझे दूसरा कोई आधार नहीं है। हम व्यापारी लोग; अपना बस चलते, किसी की चाकरी

नहीं करते। जमाना बिगड़ा हुआ है, नहीं एक सौ एक रुपये के लिए इतना हाथ-पाँव न जोड़ता।

प्रधानजी हँसकर बोले—यह तो तुमने नयी चाल चली !

'चाल नहीं चल रहा हूँ, अपनी विपत्ति-कथा कह रहा हूँ।'

'काँग्रेस के पास इतने रुपये नहीं हैं कि वह मोटों को खिलाती फिरे।'

'अब भी आप मुझे मोटा कहे जायँगे ?'

'तुम मोटे हो ही !'

'मुझ पर जरा भी दया न कीजिएगा ?'

प्रधान ज्यादा गहराई से बोले—छकौड़ीलालजी, मुझे पहले तो इसका विश्वास नहीं आता कि आपकी हालत इतनी खराब है और अगर विश्वास आ भी जाय, तो भी मैं कुछ कर नहीं सकता। इतने महान् आन्दोलन में कितने ही घर तबाह हुए और होंगे। हम लोग सभी तबाह हो रहे हैं। आप समझते हैं; हमारे सिर कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। आपका तावान मुआफ कर दिया जाय, तो कल ही आपके बीसियों भाई अपनी मुहरें तोड़ डालेंगे और हम उन्हें किसी तरह कायल न कर सकेंगे। आप गरीब हैं, लेकिन आपके सभी भाई तो गरीब नहीं हैं। तब तो सभी अपनी गरीबी के प्रमाण देने लगेंगे। मैं किस-किस की तलाशी लेता फिरूँगा। इसलिए जाइए, किसी तरह रुपये का प्रबन्ध कीजिए और दुकान खोलकर कारबार कीजिए। ईश्वर चाहेगा, तो वह दिन भी आयेगा जब आपका नुकसान पूरा होगा।

5

छकौड़ी घर पहुँचा तो अंधेरा हो गया था। अभी तक उसके द्वार पर स्यापा हो रहा था। घर में जाकर स्त्री से बोला—आखिर वही हुआ, जो मैं कहता था। प्रधानजी को मेरी बातों पर विश्वास ही नहीं आया।

स्त्री का मुरझाया हुआ बदन उत्तेजित हो उठा। उठ खड़ी हुई और बोली—अच्छी बात है, हम उन्हें विश्वास दिला देंगे। मैं अब काँग्रेस दफ्तर के सामने ही मरूँगी। मेरे बच्चे उसी दफ्तर के सामने विकल हो-होकर तड़पेंगे। काँग्रेस हमारे साथ सत्याग्रह करती है, तो हम भी उसके साथ सत्याग्रह करके दिखा दें। मैं इसी मरी हुई दशा में भी काँग्रेस को तोड़ डालूँगी। जो अभी इतने निर्दयी हैं, वह कुछ अधिकार हो जाने पर न्याय करेंगे ? एक इक्का बुला लो, खाट की जरूरत नहीं। वहीं सड़क किनारे मेरी जान निकलेगी। जनता ही के बल पर तो वह कूद रहे हैं। मैं दिखा दूँगी, जनता तुम्हारे साथ नहीं, मेरे साथ है।

इस अग्निकुण्ड के सामने छकौड़ी की गर्मी शांत हो गई। काँग्रेस के साथ इस रूप में सत्याग्रह करने की कल्पना ही से वह काँप उठा। सारे शहर में हलचल पड़ जायेगी। हजारों आदमी आकर यह दशा देखेंगे। सम्भव है, कोई हंगामा ही हो जाय। यह सभी बातें इतनी भयंकर थीं कि छकौड़ी का मन कातर हो गया। उसने स्त्री को शान्त करने की चेष्टा करते हुए कहा—इस तरह चलना उचित नहीं है अम्बे ! मैं एक बार प्रधानजी से फिर मिलूँगा। अब रात हुई, स्यापा भी बन्द हो जायगा। कल देखी जायेगी। अभी तो तुमने पथ्य भी नहीं लिया। प्रधानजी बेचारे बड़े असमंजस में पड़े हुए हैं। कहते हैं, अगर आपके साथ रियायत

करूँ, तो फिर कोई शासन ही न रह जायगा। मोटे-मोटे आदमी भी मुहरें तोड़ डालेंगे और जब कुछ कहा जायगा, तो आपकी नज़ीर पेश कर देंगे।

अम्बा एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ी छकौड़ी का मुँह देखती रही, फिर धीरे से खाट पर बैठ गयी। उसकी उत्तेजना गहरे विचार में लीन हो गयी। काँग्रेस की और अपनी जिम्मेदारी का ख़याल आ गया। प्रधानजी के कथन में कितना सत्य था; यह उससे छिपा न रहा।

उसने छकौड़ी से कहा—तुमने आकर यह बात न कही थी।

छकौड़ी बोला—उस वक्त मुझे इसकी याद न थी।

'यह प्रधानजी ने कहा है, या तुम अपनी तरफ से मिला रहे हो ?'

'नहीं, उन्होंने खुद कहा, मैं अपनी तरफ से क्यों मिलाता ?'

'बात तो उन्होंने ठीक ही कही !'

'हम तो मिट जायेंगे !'

'हम तो यों ही मिटे हुए हैं !'

'रुपये कहाँ से आवेंगे। भोजन के लिए तो ठिकाना ही नहीं, दंड कहाँ से दें ?'

'और कछ नहीं है; घर तो है। इसे रेहन रख दो। और अब विलायती कपड़े भूलकर भी न बेचना। सड़ जायँ, कोई परवाह नहीं। तुमने सील तोड़कर यह आफत सिर ली। मेरी दवा-दारू की चिन्ता न करो। ईश्वर की जो इच्छा होगी, वह होगा। बाल-बच्चे भूखों मरते हैं, मरने दो। देश में करोड़ो आदमी ऐसे हैं, जिनकी दशा हमारी दशा से भी खराब है। हम न रहेंगे, देश तो सुखी होगा।'

छकौड़ी जानता था, अम्बा जो कहती है, वह करके रहती है, कोई उज्र नहीं सुनती। वह सिर झुकाये, अम्बा पर झुँझलाता हुआ घर से निकल कर महाजन के घर की ओर चला।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', सितम्बर, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित।]

दूसरी शादी

जब मैं अपने चार साल के लड़के रामसरूप को गौर से देखता हूं तो ऐसा मालूम होता है कि उसमें वह भोलापन और आकर्षण नहीं रहा जो कि दो साल पहले था। वह मुझे अपनी सुर्ख और रंजीदा आंखों से घूरता हुआ नजर आता है। उसकी इस हालत को देखकर मेरा कलेजा कांप उठता है और मुझे वह वादा याद आ जाता है जो मैंने दो साल हुए उसकी मां के साथ, जबकि वह मृत्यु-शैया पर थी, किया था। आदमी इतना स्वार्थी और अपनी इन्द्रियों का इतना गुलाम है कि अपना फर्ज किसी-किसी वक्त ही महसूस करता है।

उस दिन जब कि डॉक्टर नाउम्मीद हो चुके थे, उसने रोते हुए मुझसे पूछा था—क्या तुम दूसरी शादी कर लोगे ? जरूर कर लेना। फिर चौंककर कहा—मेरे राम का क्या

बनेगा ? उसका ख्याल रखना, अगर हो सके।

मैंने कहा—हां-हां, मैं वादा करता हूं कि मैं कभी दूसरी शादी न करूंगा और रामसरूप, तुम उसकी फिक्र न करो, क्या तुम अच्छी न होगी।

उसने मेरी तरफ हाथ फेंक दिया, जैसे कहा, लो अलविदा।

दो मिनट बाद दुनिया मेरी आंखों में अंधेरी हो गयी। रामसरूप बे मां का हो गया। दो-तीन दिन उसको कलेजे से चिमटाये रखा।

आखिर छुट्टी पूरी होने पर उसको पिताजी के सुपुर्द करके मैं फिर अपनी ड्यूटी पर चला गया।

दो-तीन महीने दिल बहुत उदास रहा। नौकरी की, क्योंकि उसके सिवाय चारा न था। दिल में कई मंसूबे बांधता रहा। दो-तीन साल नौकरी करके रुपया लेकर दुनिया की सैर को निकल जाऊंगा, यह करूंगा, वह करूंगा, अब कहीं दिल नहीं लगता।

घर से खत बराबर आ रहे थे कि फलां-फलां जगह से नाते आ रहे हैं। आदमी बहुत अच्छे हैं, लड़की अक्ल की तेज और खूबसूरत है, फिर ऐसी जगह नहीं मिलेगी। आखिर करना है ही, कर लो। हर बात में मेरी राय पूछी जाती थी।

लेकिन मैं बराबर इन्कार किये जाता था। मैं हैरान था कि इंसान किस तरह दूसरी शादी पर आमादा हो सकता है ! जबकि उसकी सुन्दर और पतिप्राणा स्त्री को, जो कि उसके लिए स्वर्ग की एक भेंट थी, भगवान् ने एक बार छीन लिया।

वक्त बीतता गया। फिर यार-दोस्तों के तकाजे शुरू हो गये। कहने लगे, जाने भी दो, औरत पैर की जूती है, जब एक फट गयी, दूसरी बदल ली। स्त्री का कितना भयानक अपमान है, यह कहकर मैं उनका मुंह बन्द कर दिया करता था। जब हमारी सोसायटी जिसका इतना बड़ा नाम है, हिन्दू विधवा को दुबारा शादी कर लेने की इजाजत नहीं देती तो मुझको शोभा नहीं देता कि मैं दुबारा एक कुंआरी से शादी कर लूं। जब तक यह कलंक हमारी कौम से दूर नहीं हो जाता मैं हर्गिज, कुंआरी तो दूर की बात है, किसी विधवा से भी ब्याह न करूंगा। ख्याल आया, चलो नौकरी छोड़कर इसी बात का प्रचार करें। लेकिन मंच पर अपने दिल के ख्यालात जुबान पर कैसे लाऊंगा। भावनाओं को व्यावहारिक रूप देने में, चरित्र मजबूत बनाने में, जो कहना उसे करके दिखाने में हममें कितनी कमी है, यह मुझे उस वक्त मालूम हुआ जबकि छः माह बाद मैंने एक कुंआरी लड़की से शादी कर ली।

घर के लोग खुश हो रहे थे कि चलो किसी तरह माना। उधर उस दिन मेरी बिरादरी के दो-तीन पढ़े-लिखे रिश्तेदारों ने डांट बतायी, तुम तो कहा करते थे मैं बेवा से ही शादी करूंगा, लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया करते थे, अब वह तमाम बातें किधर गयीं ? तुमने तो एक उदाहरण भी न रखा जिस पर हम चल सकते।

मुझ पर जैसे घड़ों पानी फिर गया। आंखें खुल गयीं। जवानी के जोश में क्या कर गुजरा। पुरानी भावनाएं फिर उभर आयीं और आज भी मैं उन्हीं विचारों में डूबा हुआ हूं।

सोचा था—नौकर लड़के को नहीं सम्हाल सकता, औरतें ही इस काम के लिए ठीक हैं। ब्याह कर लेने पर, जब औरत घर में आयेगी तो रामसरूप को अपने पास बाहर रख सकूंगा और उसका खास ख्याल रखूंगा लेकिन वह सब कुछ गलत अक्षर की तरह मिट गया। रामसरूप को आज फिर वापस गांव पिता के पास भेजने पर मजबूर हूं। क्यों, यह

किसी से छिपी नहीं। औरत का अपने सौतेले बेटे से प्यार करना एक असंभव बात है। ब्याह के मौके पर सुना था लड़की बड़ी नेक है, स्वजनों का खास ख्याल रखेगी और उसे अपने बेटे की तरह समझेगी लेकिन सब झूठ। औरत चाहे कितनी नेकदिल हो वह कभी अपने सौतेले बच्चे से प्यार नहीं कर सकती।

और यह हार्दिक दुःख वह वादा तोड़ने की सजा है जो कि मैंने एक नेक बीवी से उसके आखिरी वक्त में किया था।

[उर्दू कहानी। प्रथम प्रकाशन उर्दू। उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन सितम्बर, 1931 में प्रकाशित। हिन्दी रूप इसी शीर्षक से 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित।]

स्वामिनी

शिवदास ने भण्डारे की कुंजी अपनी बहू रामप्यारी के सामने फेंककर अपनी बूढ़ी आँखों में आँसू भरकर कहा—बहू, आज से गिरस्ती की देख-भाल तुम्हारे ऊपर है। मेरा सुख भगवान् से नहीं देखा गया, नहीं तो क्या जवान बेटे को यों ही छीन लेते। उसका काम करने वाला तो कोई चाहिए। एक हल तोड़ दूँ तो गुजारा न होगा। मेरे ही कुकरम से भगवान् का यह कोप आया है, और मैं ही अपने माथे पर उसे लूँगा। बिरजू का हल अब मैं ही सँभालूँगा। अब घर की देख-रेख करने वाला, धरने-उठाने वाला तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है। रोओ मत बेटा, भगवान् की जो इच्छा थी, वह हुआ; और जो इच्छा होगी, वह होगा। हमारा तुम्हारा क्या बस है ? मेरे जीते-जी तुम्हें कोई टेढ़ी आँख से देख भी न सकेगा। तुम किसी बात का सोच मत करो। बिरजू गया, तो मैं तो अभी बैठा ही हुआ हूँ।

रामप्यारी और रामदुलारी दो सगी बहनें थीं। दोनों का विवाह—मथुरा और बिरजू—दो सगे भाइयों से हुआ। दोनों बहनें नैहर की तरह ससुराल में भी प्रेम और आनन्द से रहने लगीं। शिवदास को पेंशन मिली। दिन-भर द्वार पर बैठे गप-शप करते। भरा-पूरा परिवार देख-देखकर प्रसन्न होते और अधिकतर धर्म-चर्चा में लगे रहते थे। लेकिन दैवगति से बड़ा लड़का बिरजू बीमार पड़ा और आज उसे मरे हुए पन्द्रह दिन बीत गये। आज क्रिया-कर्म से फुरसत मिली और शिवदास ने सच्चे कर्मवीर की भाँति फिर जीवन-संग्राम के लिए कमर कस ली। मन में उसे चाहे कितना ही दुःख हुआ हो, उसे किसी ने रोते नहीं देखा। आज अपनी बहू को देखकर एक क्षण के लिए उसकी आँखें सजल हो गयीं; लेकिन उसने मन को सँभाला और रुद्ध-कण्ठ से उसे दिलासा देने लगा। कदाचित् उसने सोचा था, घर स्वामिनी बनकर विधवा के आँसू पुँछ जायेंगे, कम-से-कम उसे इतना कठिन परिश्रम न करना पड़ेगा; इसलिए उसने भण्डारे की कुंजी बहू के सामने फेंकी थी। वैधव्य की व्यथा को स्वामित्व के गर्व से दबा देना चाहता था।

रामप्यारी ने पुलकित कण्ठ से कहा—यह कैसे हो सकता है दादा, कि तुम मेहनत-मजूरी करो और मैं मालकिन बनकर बैठूँ ? काम-धन्धे में लगी रहूँगी, तो मन बहलता रहेगा, बैठे-बैठे तो रोने के सिवा और कुछ न होगा।

शिवदास ने समझाया—बेटा, दैवगति से तो किसी का बस नहीं। रोने-धोने से हलाकानी के सिवा और क्या हाथ आयेगा ? घर में भी तो बीसों काम हैं। कोई साधु-सन्त आ जायँ, कोई पाहुना ही आ पहुँचे, उनके सेवा-सत्कार के लिए किसी को तो घर पर रहना ही पड़ेगा।

बहू ने बहुत-से हीले किये, पर शिवदास ने एक न सुनी।

2

शिवदास के बाहर चले जाने पर रामप्यारी ने कुंजी उठाई तो उसे मन में अपूर्व गौरव और उत्तरदायित्व का अनुभव हुआ। जरा देर के लिए पति-वियोग का दुःख उसे भूल गया। उसकी छोटी बहन और देवर दोनों काम करने गये हुए थे। शिवदास बाहर था। घर बिलकुल खाली था। इस वक्त वह निश्चिंत होकर भण्डारे को खोल सकती है ! उसमें क्या-क्या सामान है, क्या-क्या विभूति है, यह देखने के लिए उसका मन लालायित हो उठा। इस घर में वह कभी न आई थी। जब कभी किसी को कुछ देना या किसी से कुछ लेना होता था, तभी शिवदास आकर इस कोठरी को खोला करता था। फिर उसे बन्द कर वह ताली अपनी कमर में रख लेता था। रामप्यारी कभी-कभी द्वार की दराजों से भीतर झाँकती थी, पर अंधेरे में कुछ न दिखाई देता था। सारे घर के लिए वह कोठरी कोई तिलस्म या रहस्य था, जिसके विषय में भाँति-भाँति की कल्पनाएँ होती रहती थीं। आज रामप्यारी को वह रहस्य खोलकर देखने का अवसर मिल गया। उसने बाहर का द्वार बन्द कर दिया कि कोई उसे भण्डारा खोलते न देख ले, नहीं सोचेगा, बेजरूरत इसने क्यों खोला। तब आकर काँपते हुए हाथों से ताला खोला। उसकी छाती धड़क रही थी कि कोई द्वार न खटखटाने लगे। अन्दर पाँव रखा तो उसे कुछ उसी प्रकार का, लेकिन उससे कहीं तीव्र आनन्द हुआ जो उसे अपने गहने-कपड़े की पिटारी खोलने में होता था। मटकों में गुड़, शक्कर, गेहूँ, जौ आदि चीजें रखी हुई थीं। एक किनारे बड़े-बड़े बर्तन भरे थे, जो शादी-ब्याह के अवसर पर निकाले जाते थे, या माँगे दिये जाते थे। एक आले पर मालगुजारी की रसीदें और लेन-देन के पुरजे बँधे हुए रखे थे। कोठरी में एक विभूति-सी छाई थी। मानो लक्ष्मी अज्ञात रूप से यहाँ विराज रही हों। उस विभूति की छाया में रामप्यारी आधे घंटे तक बैठी अपनी आत्मा को तृप्त करती रही। प्रतिक्षण उसके हृदय पर ममत्व का नशा-सा छाया जा रहा था। जब वह उस कोठरी से निकली, तो उसके मन के संस्कार बदल गये थे, मानो किसी ने उस पर मन्त्र डाल दिया हो।

उसी समय द्वार पर किसी ने आवाज दी। उसने तुरन्त भण्डारे का द्वार बन्द किया और जाकर सदर दरवाजा खोल दिया। देखा तो पड़ोसिन झुनिया खड़ी है और एक रुपया माँग रही है।

रामप्यारी ने रुखाई से कहा—अभी तो एक पैसा घर में नहीं है जीजी, क्रिया-कर्म में सब खरच हो गया।

झुनिया चकरा गयी। चौधरी के घर में इस समय एक रुपया भी नहीं है, यह विश्वास करने की बात न थी। जिसके यहाँ सैकड़ों का लेन-देन है, वह सब कुछ क्रिया-कर्म में नहीं खर्च कर सकता। अगर शिवदास ने यह बहाना किया होता, तो उसे आश्चर्य न होता।

प्यारी तो अपने सरल स्वभाव के लिए गाँव में मशहूर थी। अक्सर शिवदास की आँखें बचाकर पड़ोसियों को इच्छित वस्तुएँ दे दिया करती थी। अभी कल ही उसने जानकी को सेर भर दूध दे दिया था। यहाँ तक कि अपने गहने तक माँगे दे देती थी। कृपण शिवदास के घर में ऐसी सखरज बहू का आना गाँव वाले अपने सौभाग्य की बात समझते थे।

झुनिया ने चकित होकर कहा—ऐसा न कहो जीजी, बड़े गाढ़े में पड़कर आयी हूँ, नहीं तुम जानती हो, मेरी आदत ऐसी नहीं है। बाकी का एक रुपया देना है। प्यादा द्वार पर खड़ा बक-झक रहा है। रुपया दे दो, तो किसी तरह यह विपत्ति टले। मैं आज के आठवें दिन आकर दे जाऊँगी। गाँव में और कौन घर है, जहाँ माँगने जाऊँ ?

प्यारी टस से मस न हुई।

उसके जाते ही प्यारी साँझ के लिए रसोई-पानी का इन्तजाम करने लगी। पहले चावल-दाल बिनना अपाढ़ लगता था और रसोई में जाना तो सूली पर चढ़ने से कम न था। कुछ देर दोनों बहनों में झाँव-झाँव होती, तब शिवदास आकर कहते, क्या आज रसोई न बनेगी, तो दो में से एक उठती और मोटे-मोटे टिक्कड़ लगाकर रख देती, मानो बैलों का रातिब हो। आज प्यारी तन-मन से रसोई के प्रबन्ध में लगी हुई है। अब वह घर की स्वामिनी है।

तब उसने बाहर निकलकर देखा, कितना कूड़ा-करकट पड़ा हुआ है। बुढ़ऊ दिन-भर मक्खी मारा करते हैं, इतना भी नहीं होता कि जरा झाड़ू ही लगा दें। अब क्या इनसे इतना भी न होगा ? द्वार ऐसा चिकना चाहिए कि देखकर आदमी का मन प्रसन्न हो जाय। यह नहीं कि उबकाई आने लगे। अभी कह दूँ, तो तिनक उठेंगे। अच्छा, यह मुन्नी नाँद से अलग क्यों खड़ी है ?

उसने मुन्नी के पास जाकर नाँद में झाँका। दुर्गन्ध आ रही थी। ठीक ! मालूम होता है, महीनों से पानी ही नहीं बदला गया। इस तरह तो गाय रह चुकी। अपना पेट भर लिया, छुट्टी हुई, और किसी से क्या मतलब ? हाँ, दूध सबको अच्छा लगता है। दादा द्वार पर बैठे चिलम पी रहे हैं, मगर इतना नहीं होता कि चार घड़ा पानी नाँद में डाल दें। मजूर रखा है, वह भी तीन कौड़ी का। खाने को डेढ़ सेर; काम करते नानी मरती है। आज आते हैं तो पूछती हूँ, नाँद में पानी क्यों नहीं बदला। रहना हो रहे या जाय। आदमी बहुत मिलेंगे। चारों ओर तो लोग मारे-मारे फिर रहे हैं।

आखिर उससे न रहा गया। घड़ा उठाकर पानी लाने चली।

शिवदास ने पुकारा—पानी क्या होगा बहू ? इसमें पानी भरा हुआ है।

प्यारी ने कहा—नाँद का पानी सड़ गया है। मुन्नी भूसे में मुँह नहीं डालती। देखते नहीं हो, कोस भर पर खड़ी है।

शिवदास मार्मिक भाव से मुस्कराये और आकर बहू के हाथ से घड़ा ले लिया।

3

कई महीने बीत गये। प्यारी के अधिकार में आते ही उस घर में जैसे बसन्त आ गया। भीतर-बाहर जहाँ देखिए, किसी निपुण प्रबन्धक के हस्त-कौशल सुविचार और सुरुचि के चिह्न दीखते थे। प्यारी ने गृहयन्त्र की ऐसी चाबी कस दी थी कि सभी पुरजे ठीक-ठीक

चलने लगे थे। भोजन पहले से अच्छा मिलता, समय पर मिलता है। दूध ज्यादा होता है, घी ज्यादा होता है, और काम ज्यादा होता है। प्यारी न खुद विश्राम लेती है, न दूसरों को विश्राम लेने देती है। घर में कुछ ऐसी बरकत आ गयी है कि जो चीज माँगो, घर ही में निकल आती है। आदमी से लेकर जानवर तक सभी स्वस्थ दिखायी देते हैं। अब वह पहले की-सी दशा नहीं है कि कोई चीथड़े लपेटे घूम रहा है, किसी को गहने की धुन सवार है। हाँ, अगर कोई रुग्ण और चिन्तित तथा मलिन वेष में है, तो वह प्यारी है; फिर भी सारा घर उससे जलता है। यहाँ तक कि बूढ़े शिवदास भी कभी-कभी उसकी बदगोई करते हैं। किसी को पहर रात रहे उठना अच्छा नहीं लगता। मेहनत से सभी जी चुराते हैं। फिर भी यह सब मानते हैं कि प्यारी न हो तो घर का काम न चले। और-तो-और, दोनों बहनों में भी उतना अपनापन नहीं है।

प्रातःकाल का समय था। दुलारी ने हाथों के कड़े लाकर प्यारी के सामने पटक दिये और घुन्नाई हुई बोली—लेकर इसे भी भण्डारे में बन्द कर दे।

प्यारी ने कड़े उठा लिये और कोमल स्वर में कहा—कह तो दिया, हाथ में रुपये आने दे, बनवा दूँगी। अभी ऐसा घिस नहीं गया है कि आज ही उतार कर फेंक दिया जाय।

दुलारी लड़ने को तैयार होकर आयी थी। बोली—तेरे हाथ में काहे को कभी रुपये आयेंगे और काहे को कड़े बनेंगे। जोड़-जोड़ रखने में मजा आता है न ?

प्यारी ने हँसकर कहा—जोड़-जोड़ रखती हूँ, तो तेरे ही लिए कि मेरा कोई और बैठा हुआ है, कि मैं सबसे ज्यादा खा-पहन लेती हूँ। मेरा अनन्त कब का टूटा पड़ा है।

दुलारी—तुम न खाओ-पहनो, जस तो पाती हो, यहाँ खाने-पहनने के सिवा और क्या है ? तुम्हारा हिसाब-किताब नहीं जानती, मेरे कड़े आज बनने को भेज दो।

प्यारी ने सरल विनोद के भाव से पूछा—रुपये न हों, तो कहाँ से लाऊँ ?

दुलारी ने उद्दण्डता के साथ कहा—मुझे इससे कोई मतलब नहीं। मैं तो कड़े चाहती हूँ।

इसी तरह घर के सब आदमी अपने-अपने अवसर पर प्यारी को दो-चार खोटी-खरी सुना जाते थे। और वह गरीब सब की धौंस हँसकर सहती थी। स्वामिनी का तो यह धर्म ही है कि सब की धौंस सुन ले और करे वही, जिसमें घर का कल्याण हो। स्वामित्व के कवच पर धौंस, ताने, धमकी—किसी का असर न होता। उसकी स्वामिनी-कल्पना इन आघातों में और भी स्वस्थ होती थी। वह गृहस्थी की संचालिका है। सभी अपने-अपने दुःख उसी के सामने रोते हैं; पर जो कुछ वह कहती है, वही होता है। इतना उसे प्रसन्न करने के लिए काफी था।

गाँव में प्यारी की सराहना होती थी। अभी उम्र ही क्या है, लेकिन सारे घर को सँभाले हुए है। चाहती तो सगाई करके चैन से रहती। इस घर के पीछे अपने को मिटाये देती है। कभी किसी से हँसती-बोलती भी नहीं। जैसे कायापलट हो गयी।

कई दिन बाद दुलारी के कड़े बनकर आ गये। प्यारी खुद सुनार के घर दौड़-दौड़ गयी।

सन्ध्या हो गयी थी। दुलारी और मथुरा हार से लौटे। प्यारी ने नये कड़े दुलारी को दिये। दुलारी निहाल हो गयी। चटपट कड़े पहने और दौड़ी हुई बरौठे में जाकर मथुरा को

दिखाने लगी। प्यारी बरौठे के द्वार पर छिपी खड़ी यह दृश्य देखने लगी। उसकी आँखें सजल हो गयीं। दुलारी उससे कुल तीन ही साल तो छोटी है ! पर दोनों में कितना अन्तर है ! उसकी आँखें मानो उस दृश्य पर जम गयीं, दम्पत्ति का वह सरल आनन्द, उनका प्रेमालिंगन, उनकी मुग्ध मुद्रा—प्यारी की टकटकी-सी बँध गयी, यहाँ तक कि दीपक के धुँधले प्रकाश में वे दोनों उसकी नजरों से गायब हो गये और अपने ही अतीत जीवन की एक लीला आँखों के सामने बार-बार नये-नये रूप में आने लगी।

सहसा शिवदास ने पुकारा—बड़ी बहू, एक पैसा दो। तमाखू मँगवाऊँ। प्यारी की समाधि टूट गयी। आँसू पोंछती हुई भण्डारे में पैसा लेने चली गयी।

4

एक-एक करके प्यारी के गहने उसके हाथ से निकलते जाते थे। वह चाहती थी, मेरा घर गाँव में सबसे सम्पन्न समझा जावे, और इस महत्त्वाकांक्षा का मूल्य देना पड़ता था। कभी घर की मरम्मत के लिए, कभी बैलों की नयी गोई खरीदने के लिए, कभी नातेदारों के व्यवहारों के लिए, कभी बीमारों की दवा-दारू के लिए रुपये की जरूरत पड़ती रहती थी, और जब बहुत कतर-ब्योंत करने पर भी काम न चलता, तो वह अपनी कोई-न-कोई चीज निकाल देतीं। आर चीज एक बार हाथ से निकलकर फिर न लौटती थी। वह चाहती, तो इनमें से कितने ही खर्चों को टाल जाती; पर जहाँ इज्जत की बात आ पड़ती थी, वह दिल खोलकर खर्च करती। अगर गाँव में हेठी हो गई, तो क्या बात रही। लोग उसी का नाम तो धरेंगे। दुलारी के पास भी गहने थे। दो-एक चीजें, मथुरा के पास भी थीं, लेकिन प्यारी उनकी चीजें न छूती। उनके खाने-पहनने के दिन हैं, वे इस जंजाल में क्यों फँसे।

दुलारी को लड़का हुआ, तो प्यारी ने धूम से जन्मोत्सव मनाने का प्रस्ताव किया।

शिवदास ने विरोध किया—क्या फायदा ? जब भगवान की दया से सगाई-ब्याह के दिन आयेंगे, तो धूम-धाम कर लेना।

प्यारी का हौसला से भरा दिल भला क्यों मानता। बोली—कैसी बात कहते हो दादा ? पहलौंठी लड़के लिए भी धूम-धाम न हुआ तो कब होगा ? मन तो नहीं मानता। फिर दुनिया क्या कहेगी, नाम बड़े दर्शन थोड़े। मैं तुमसे कुछ नहीं माँगती। अपना सारा सरैजाम कर लूँगी।

गहनों के माथे जायगी, और क्या ?—शिवदास ने चिंतित होकर कहा—इस तरह एक दिन धागा भी न बचेगा। कितना समझाया बेटा, भाई-भौजाई किसी के नहीं होते। अपने पास दो चीजें रहेंगी, तो सब मुँह जोहेंगे, नहीं कोई सीधी बात भी न करेगा।

प्यारी ने ऐसा मुँह बनाया, मानो वह ऐसी बूढ़ी बातें बहुत सुन चुकी है, और बोली—जो अपने हैं, वे भी न पूछें, तो भी अपने ही रहते हैं। मेरा धरम मेरे साथ है, उनका धरम उनके साथ है। मर जाऊँगी, तो क्या छाती प॰ लाद ले जाऊँगी ?

धूम-धाम से जन्मोत्सव मनाया गया। बरही के दिन सारी बिरादरी का भोज हुआ। लोग खा-पीकर चले गये, तो प्यारी दिन भर की थकी-माँदी आँगन में एक टाट का टुकड़ा बिछाकर कमर सीधी करने लगी। आँखें झपक गयीं। मथुरा उसी वक्त घर में आया। नवजात पुत्र को देखने के लिए उसका चित्त व्याकुल हो रहा था। दुलारी सौर-गृह से

निकल चुकी थी। गर्भावस्था में उसकी देह क्षीण हो गयी थी, मुँह भी उतर गया था; पर आज स्वस्थता की लालिमा मुख पर छाई हुई थी। मातृत्व के गर्व और आनन्द ने अंगों में संजीवनी-सी भर रखी थी। सौर के संयम और पौष्टिक भोजन ने देह को चिकना कर दिया था। मथुरा उसे आंगन में देखते ही समीप आ गया और एक बार प्यारी की ओर ताककर उसके निद्रामग्न होने का निश्चय करके उसने शिशु को गोद में ले लिया और उसका मुँह चूमने लगा।

आहट पाकर प्यारी की आँखें खुल गयीं; पर उसने नींद का बहाना किया और अधखुली आँखों से यह आनन्द-क्रीड़ा देखने लगी। माता और पिता दोनों बारी-बारी से बालक को चूमते, गले लगाते, और उसके मुँह को निहारते थे। कितना स्वर्गीय आनन्द था। प्यारी की तृषित लालसा एक क्षण के लिए स्वामिनी को भूल गई। जैसे लगाम से मुखबद्ध, बोझा से लदा हुआ, हाँकने वाले की चाबुक से पीड़ित दौड़ते-दौड़ते बेदम तुरंग हिनहिनाने की आवाज सुनकर कनौतियाँ खड़ी कर लेता है और परिस्थिति को भूलकर एक दबी हुई हिनहिनाहट से उसका जवाब देता है, कुछ वही दशा प्यारी की हुई। उसका मातृत्व जो पिंजरे में बन्द मूक निश्चेष्ट पड़ा हुआ हुआ था, समीप से आने वाली मातृत्व की चहकार सुनकर जैसे जाग पड़ा और चिंताओं के उस पिंचरे से निकलने के लिए पंख फड़फड़ाने लगा।

मथुरा ने कहा—यह मेरा लड़का है।

दुलारी ने बालक को गोद में चिमटाकर कहा—हाँ, है क्यों नहीं। तुम्हीं ने तो नौ महीने पेट में रखा है। साँसत तो मेरी हुई, बाप कहलाने के लिये तुम कूद पड़े।

मथुरा—मेरा लड़का न होता, तो मेरी सूरत का क्यों होता ! चेहरा-मोहरा, रंग-रूप सब मेरा ही-सा है कि नहीं ?

दुलारी—इससे क्या होता है। बीज बनिए के घर से आता है। खेत किसान का होता है। उपज बनिए की नहीं होती, किसान की होती है।

मथुरा—बातों में तुमसे कोई न जीतेगा। मेरा लड़का बड़ा हो जायगा, तो मैं द्वार पर बैठकर मजे से हुक्का पिया करूँगा।

दुलारी—मेरा लड़का पढ़े-लिखेगा, कोई बड़ा हुद्दा पायेगा। तुम्हारी तरह दिन-भर बैल के पीछे न चलेगा। मालकिन से कहना है, कल एक पालना बनवा दें।

मथुरा—अब बहुत सबेरे न उठा करना और छाती फाड़कर काम भी न करना।

दुलारी—यह महारानी जीने देंगी।

मथुरा—मुझे तो बेचारी पर दया आती है। उसके कौन बैठा हुआ है। हमीं लोगों के लिए तो मरती है। भैया होते, तो अब तक दो-तीन बच्चों की माँ हो गयी होती।

प्यारी के कण्ठ से आँसुओं का ऐसा वेग उठा कि उसे रोकने में सारी देह काँप उठी। अपना वंचित जीवन उसे मरुस्थल-सा लगा, जिसकी सूखी रेत पर वह हरा-भरा बाग लगाने की निष्फल चेष्टा कर रही थी।

सहसा शिवदास ने भीतर आकर कहा—बड़ी बहू; क्या सो गयी ? बाजे वालों को अभी परोसा नहीं मिला। क्या कह दूँ ?

5

कुछ दिनों के बाद शिवदास भी मर गया। उधर दुलारी के दो बच्चे और हुए। वह भी अधिकतर बच्चों के लालन-पालन में व्यस्त रहने लगी। खेती का काम मजूरों पर आ पड़ा। मथुरा मजदूर तो अच्छा था, संचालक अच्छा न था। उसे स्वतन्त्र रूप से काम लेने का कभी अवसर न मिला था। खुद पहले भाई की निगरानी में काम करता रहा। बाद को बाप की निगरानी में करने लगा। खेती का तार भी न जानता था। वही मजूर उसके यहाँ टिकते थे, जो मेहनती नहीं, खुशामद करने में कुशल होते थे; इसीलिए प्यारी को अब दिन में दो-चार चक्कर हार का भी लगाना पड़ता। कहने को तो अब मालकिन थी; पर वास्तव में घर-भर की सेविका थी। मजूर भी उससे त्योरियाँ बदलते, जमींदार का प्यादा भी उसी पर धौंस जमाता। भोजन में भी किफायत करनी पड़ती। लड़कों को तो जितनी बार माँगें उतनी बार कुछ-न-कुछ चाहिए। दुलारी तो लड़कोरी थी; उसे भी भरपूर भोजन चाहिये, मथुरा घर का सरदार था, उसके इस अधिकार को कौन छीन सकता था। मजूर भला क्यों रिआयत करने लगे थे। सारी कसर बेचारी प्यारी पर निकलती थी। वह एक फालतू चीज थी; अगर आधा पेट खाय, तो किसी को कोई हानि न हो सकती थी। तीस वर्ष की अवस्था में उसके बाल पक गये, कमर झुक गयी, आँखों की जोत कम हो गयी; मगर वह प्रसन्न थी। स्वामित्व का गौरव इस सारे जख्मों पर मरहम का काम करता था।

एक दिन मथुरा ने कहा—भाभी, अब तो कहीं परदेश जाने का जी होता है। यहाँ कमाई में कोई बरक्कत नहीं। किसी तरह पेट की रोटियाँ चल जाती हैं, वह भी रो-धोकर। कई आदमी पूरब से आये हैं, वे कहते हैं, वहाँ दो-तीन रुपये रोज की मजूरी हो जाती है। चार-पाँच साल भी रह गया, तो मालोमाल हो जाऊँगा। अब आगे लड़के-बाले हुए। इनके लिए तो कुछ तो करना ही चाहिए।

दुलारी ने समर्थन किया—हाथ में चार पैसे होंगे, लड़कों को पढ़ायेंगे-लिखायेंगे। हमारी तो किसी तरह कट गयी, लड़कों को तो आदमी बनाना है।

प्यारी यह प्रस्ताव सुनकर आवाक् रह गयी। उनका मुँह ताकने लगी। इसके पहले इस तरह की बातचीत कभी न हुई थी। यह धुन कैसे सवार हो गयी ? उसे सन्देह हुआ, शायद मेरे कारण यह भावना उत्पन्न हुई है। बोली—मैं तो जाने को न कहूँगी; आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो। लड़कों को पढ़ाने-लिखाने के लिए यहाँ भी तो मदरसा है। फिर क्या नित्य यही दिन बने रहेंगे ? दो-तीन साल भी खेती बन गयी तो, सब कुछ हो जायगा।

मथुरा—इतने दिन खेती करते हो गये, अब तक न बनी, तो अब क्या बन जायगी। इसी तरह एक दिन चल देंगे, मन-की-मन में रह जायगी। फिर अब पौरुख भी तो थक रहा है। यह खेती कौन संभालेगा। लड़कों को मैं इस चक्की में जोतकर उनकी जिन्दगी नहीं खराब करना चाहता।

प्यारी ने आँखों में आँसू लाकर कहा—भैया, घर पर जब तक आधी मिले; सारी के लिए न धावना चाहिए; अगर मेरी ओर से कोई बात हो तो अपना घरबार अपने हाथ में करो, मुझे एक टुकड़ा दे देना, पड़ी रहूँगी।

मथुरा आर्द्र-कंठ होकर बोला—भाभी, यह तुम क्या कहती हो, तुम्हारे ही सँभाले यह घर अब तक चला है, नहीं रसातल को चला गया होता। इस गिरस्ती के पीछे तुमने अपने

को मिट्टी में मिला दिया, अपनी देह घुला डाली। मैं अन्धा नहीं हूँ। सब कुछ समझता हूँ। हम लोगों को जाने दो। भगवान ने चाहा, तो फिर घर सँभल जायगा। तुम्हारे लिए हम बराबर खरच-वरच भेजते रहेंगे।

प्यारी ने कहा—जो ऐसा ही है तो तुम चले जाव, बाल-बच्चों को कहाँ-कहाँ बाँधे फिरोगे।

दुलारी बोली—यह कैसे हो सकता है बहन, यहाँ देहात में लड़के क्या पढ़े-लिखेंगे। बच्चों के बिना इनका जी वहाँ न लगेगा। दौड़-दौड़ घर आयेंगे और सारी कमाई रेल खा जायगी। परदेश में अकेले जितना खरच होगा, उतने में सारा घर आराम से रहेगा।

प्यारी बोली—तो मैं यहाँ रहकर क्या करूँगी ? मुझे भी लेते चलो।

दुलारी उसे साथ ले चलने को तैयार न थी। कुछ दिन जीवन का आनन्द उठाना चाहती थी; अगर परदेश में भी यह बन्धन रहा, तो जाने से फायदा ही क्या ? बोली—बहन, तुम चलतीं तो क्या बात थी, लेकिन फिर यहाँ का सारा कारोबार तो चौपट हो जायगा। तुम तो कुछ-न-कुछ देखभाल करती ही रहोगी।

प्रस्थान की तिथि के एक दिन पहले ही रामप्यारी ने रात-भर जाग कर हलुआ और पूरियाँ पकाई। जब से इस घर में आयी, कभी एक दिन के लिए भी अकेले रहने का अवसर नहीं आया। दोनों बहनें सदैव साथ रहीं। आज उस भयंकर अवसर को सामने आते देखकर प्यारी का दिल बैठा जाता था। वह देखती थी, मथुरा प्रसन्न है, बाल-वृन्द यात्रा के आनन्द में खाना-पीना तक भूले हुए हैं, तो उसके जी में आता, वह भी इस भाँति निर्द्वद्व रहे ? मोह और ममता को पैरों से कुचल डाले; किन्तु वह ममता जिस खाद्य को खा-खाकर पली थी, उसे अपने सामने से हटाये जाते देखकर क्षुब्ध होने से न रुकती थी। दुलारी तो इस तरह निश्चिंत होकर बैठी थी, मानो कोई मेला देखने जा रही है। नयी-नयी चीजों को देखने, नयी दुनिया में विचरने की उत्सुकता ने उसे क्रियाशून्य-सा कर दिया था। प्यारी के सिर सारे प्रबन्ध का भार था। धोबी के घर से सब कपड़े आये हैं या नहीं, कौन-कौन से बर्तन साथ जायेंगे, सफर खर्च के लिए कितने रुपये की जरूरत होगी, एक बच्चे को खाँसी आ रही थी। दूसरे को कई दिन से दस्त आ रहे थे, उन दोनों की औषधियों को पीसना-कूटना आदि सैकड़ों ही काम व्यस्त किये हुए थे। लड़कोरी न होकर भी वह बच्चों के लालन-पालन में दुलारी से कुशल थी। देखो, बच्चों को बहुत मारना-पीटना मत, मारने से बच्चे जिद्दी और बेह्या हो जाते हैं। बच्चों के साथ आदमी को बच्चा बन जाना पड़ता है, कभी उनके साथ खेलना पड़ता है, कभी हँसना पड़ता है। जो तुम चाहो कि हम आराम से पड़े रहें और बच्चे चुपचाप बैठ रहें, हाथ-पैर न हिलायें, तो यह नहीं हो सकता। बच्चे तो स्वभाव के चंचल होते हैं। उन्हें किसी-न-किसी काम में फँसाये रखो। धेले का एक खिलौना हज़ार घुड़कियों से बढ़कर होता है। दुलारी उपदेशों को इस तरह बेमन होकर सुनती थी, मानो कोई सनक कर बक रहा हो।

बिदाई का दिन प्यारी के लिए परीक्षा का दिन था। उसके जी में आता था, कहीं चली जाय, जिससे वह दृश्य देखना न पड़े। हा ! घड़ी भर में यह घर सूना हो जायगा ! वह दिन-भर घर में अकेली पड़ी रहेगी ! किससे हँसेगी-बोलेगी ? यह सोचकर उसका हृदय काँप जाता था। ज्यों-ज्यों समय निकट आता था, उसकी वृत्तियाँ शिथिल होती जाती थीं।

वह कोई काम करते-करते जैसे खो जाती थी और अपलक नेत्रों से किसी बिन्दु की ओर ताकने लगती थी। कभी अवसर पाकर एकान्त में जाकर थोड़ा रो आती थी। मन को समझा रही थी, यह लोग अपने होते तो क्या इस तरह चले जाते। यह तो मानने का नाता है; किसी पर कोई जबरदस्ती है ? दूसरों के लिए कितना ही मरो, तो भी अपने नहीं होते। पानी तेल में कितना ही मिले; फिर भी अलग ही रहेगा। बच्चे नये-नये कुरते पहने नवाब बने घूम रहे थे। प्यारी उन्हें प्यार करने के लिए गोद में लेना चाहती, तो रोने का-सा मुँह बनाकर छुड़ाकर भाग जाते। वह क्या जानती थी कि ऐसे अवसर पर बहुधा अपने बच्चे भी ऐसे निठुर हो जाते हैं।

दस बजते-बजते द्वार पर बैलगाड़ी आ गयी। लड़के पहले ही से उस पर जा बैठे। गाँव के कितने स्त्री-पुरुष मिलने आये। प्यारी को इस समय उनका आना बुरा लग रहा था। वह दुलारी से थोड़ी देर एकान्त में गले मिलकर रोना चाहती थी, मथुरा से हाथ जोड़कर कहना चाहती थी, मेरी खोज-खबर लेते रहना, तुम्हारे सिवा मेरा संसार में कौन है; लेकिन इस भड़भड़ में उसको इन बातों का मौका न मिला। मथुरा और दुलारी दोनों गाड़ी में जा बैठे। प्यारी द्वार पर रोती खड़ी रह गई। वह इतनी विह्वल थी कि गाँव के बाहर तक पहुँचाने की भी उसे सुधि न रही।

6

कई दिन तक प्यारी मूर्छित-सी पड़ी रही। न घर से निकली, न चूल्हा जलाया, न हाथ-मुँह धोया। उसका हलवाहा जोखू बार-बार आकर कहता -'मालकिन, उठो, मुँह-हाथ धोओ, कुछ खाओ-पियो। कब तक इसी तरह पड़ी रहोगी ?' इस तरह की तसल्ली गाँव की और स्त्रियाँ भी देती थीं; पर उनकी तसल्ली में एक प्रकार की ईर्ष्या का भाव छिपा हुआ जान पड़ता था। जोखू के स्वर से सच्ची सहानुभूति झलकती थी। जोखू कामचोर, बातूनी और नशेबाज था। प्यारी उसे बार-बार डाँटती रहती थी। दो-एक बार उसे निकाल भी चुकी थी, पर मथुरा के आग्रह से फिर रख लिया था। आज भी जोखू की सहानुभूति-भरी बातें सुनकर प्यारी झुंझलाती, यह काम करने क्यों नहीं जाता, यहाँ मेरे पीछे क्यों पड़ा हुआ है; मगर उसे झिड़क देने को जी न चाहता था। उसे इस समय सहानुभूति की भूख थी। फल काँटेदार वृक्ष से भी मिलें, तो क्या उन्हें छोड़ दिया जाता है ?

धीरे-धीरे क्षोभ का वेग कम हुआ। जीवन के व्यापार होने लगे। अब खेती का सारा भार प्यारी पर था। लोगों ने सलाह दी, एक हल तोड़ दो और खेतों को उठा दो; पर प्यारी का गर्व यों ढोल बजाकर अपनी पराजय स्वीकार न कर सकता था। सारे काम पूर्ववत् चलने लगे। उधर मथुरा के चिट्ठी-पत्री न भेजने से उसके अभिमान को और भी उत्तेजना मिली। वह समझता है, मैं उसके आसरे बैठी हूँ। यहाँ उसको भी खिलाने का दावा रखती हूँ। उसके चिट्ठी भेजने से मुझे कोई निधि न मिल जाती। उसे अगर मेरी चिन्ता नहीं है तो मैं कब उसकी परवाह करती हूँ।

घर में तो अब विशेष कोई काम रहा नहीं, प्यारी सारे दिन खेतीबारी के काम में लगी रहती। खरबूजे बोये थे। वह खूब फले और खूब बिके। पहले सारा दूध घर में खर्च हो जाता था, अब बिकने लगा। प्यारी की मनोवृत्तियों में भी एक विचित्र परिवर्तन आ गया।

वह अब साफ-सुथरे कपड़े पहनती, माँग-चोटी की ओर से भी उतनी उदासीन न थी। आभूषणों में भी रुचि हुई। रुपये हाथ में आते ही उसने अपने गिरवी गहने छुड़ाये और भोजन भी संयम से करने लगी। सागर पहले खेतों को सींचकर खुद ख़ाली हो जाता था। अब निकासी की नालियाँ बन्द हो गयी थीं। सागर में पानी जमा होने लगा और अब उसमें हलकी-हलकी लहरें भी थीं, खिले हुए कमल भी थे।

एक दिन जोखू हार से लौटा, तो अंधेरा हो गया था। प्यारी ने पूछा—अब तक वहाँ क्या करता रहा ?

जोखू ने कहा—चार क्यारियाँ बच रही थीं। मैंने सोचा, दस मोट और खींच दूँ। कल की झंझट कौन रखे।

जोखू अब कुछ दिनों से काम में मन लगाने लगा था। जब तक मालिक उसके सिर पर सवार रहते थे, वह हीले-बहाने करता था। अब सब कुछ उसके हाथ में था। प्यारी सारे दिन हार में थोड़े ही रह सकती थी; इसलिए अब इसमें जिम्मेदारी आ गयी थी।

प्यारी ने लोटे का पानी रखते हुए कहा—अच्छा, हाथ-मुँह धो डालो। आदमी जान रखकर काम करता है, हाय-हाय करने से कुछ नहीं होता। खेत आज न होते, कल होते क्या जल्दी थी।

जोखू ने समझा प्यारी बिगड़ रही है, उसने तो अपनी समझ में कारगुजारी की थी और समझा था, तारीफ होगी। यहाँ आलोचना हुई। चिढ़कर बोला—मालकिन, तुम दायें-बायें दोनों ओर चलती हो। जो बात नहीं समझती हो, उसमें क्यों कूदती हो। कल के लिए तो उंचवा के खेत पड़े सूख रहे हैं। आज बड़ी मुश्किल से कुआँ खाली हुआ है।

सबेरे मैं न पहुँचता, तो कोई और आकर न छेंक लेता ? फिर अठवारे तक राह देखनी पड़ती। तब तक तो सारी ऊख बिदा हो जाती।

प्यारी उसकी सरलता पर हँसकर बोली—अरे, तो मैं तुझे कुछ कह थोड़ी रही हूँ, पागल ! मैं तो यह कहती हूँ कि जान रखकर काम कर। कहीं बीमार पड़ गया, तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

जोखू—कौन बीमार पड़ जायगा, मैं ? बीस साल में कभी सिर तक तो दुखा नहीं, आगे की नहीं जानता। कहो रात भर काम करता रहूँ।

प्यारी—मैं क्या जानूँ, तुम्हीं अंतरे दिन बैठे रहते थे, और पूछा जाता था, तो कहते थे—जुर आ गया था, पेट में दरद था।

जोखू झेंपता हुआ बोला—वह बातें तब थीं, जब मालिक लोग चाहते थे कि इसे पीस डालें। अब तो जानता हूँ, मेरे ही माथे है। मैं न करूँगा तो सब चौपट हो जायगा।

प्यारी—मैं क्या देखभाल नहीं करती ?

जोखू—तुम बहुत करोगी, दो बेर चली जावगी। सारे दिन तुम वहाँ बैठी नहीं रह सकतीं।

प्यारी को उसके निष्कपट व्यवहार ने मुग्ध कर लिया। बोली—तो इतनी रात गये चूल्हा जलाओगे ? कोई सगाई क्यों नहीं कर लेते ?

जोखू ने मुँह धोते हुए कहा—तुम भी खूब कहती हो मालकिन। अपने पेट भर को तो होता नहीं, सगाई कर लूँ। सवा सेर खाता हूँ एक जून—पूरा सवा सेर। दोनों जून के

लिए दो सेर चाहिए।

प्यारी—आज मेरी रसोई में खाओ, देखूँ कितना खाते हो ?

जोखू ने पुलकित होकर कहा—नहीं मालकिन, तुम बनाते-बनाते थक जावगी। हाँ, आध-आध सेर की दो रोटी बनाकर खिला दो तो खा लूँ। मैं तो यही करता हूँ। बस, आटा सानकर दो लिट बनाता हूँ और उपलें पर सेंक लेता हूँ। कभी मठे से, कभी नमक से, कभी प्याज से खा लेता हूँ और आकर पड़ रहता हूँ।

प्यारी—मैं तुम्हें आज फुलके खिलाऊँगी।

जोखू—तब तो सारी रात खाते ही बीत जायगी।

प्यारी—बको मत, चटपट आकर बैठ जाओ।

जोखू—जरा बैलों को पानी देता आऊँ तो बैठूँ।

7

जोखू और प्यारी में ठनी हुई थी।

प्यारी ने कहा—मैं कहती हूँ, धान रोपने की कोई जरूरत नहीं। झड़ी लग जाय, तो खेत डूब जाय। बर्खा बन्द हो जाय, तो खेत सूख जाय। जुआर, बाजरा, सन, अरहर सब तो हैं, धान न सही।

जोखू ने अपने विशाल कंधे पर फावड़ा रखते हुए कहा—जब सबका होगा, तो मेरा भी होगा। सबका डूब जायगा, तो मेरा भी डूब जायगा। मैं क्यों किसी से पीछे रहूँ। बाबा के जमाने में पाँच बीघे से कम नहीं रोपा जाता था, बिरजू भैया ने उसमें एक-दो बीघे और बढ़ा दिये। मथुरा ने भी थोड़ा-बहुत हर साल रोपा, तो मैं क्या सबसे गया-बीता हूँ ? मैं पाँच बीघे से कम न लगाऊँगा।

'तब घर के दो जवान काम करने वाले थे।'

'मै अकेला उन दोनों के बराबर खाता हूँ। दोनों के बराबर काम क्यों न करूँगा ?'

'चल, झूठा कहीं का। कहते थे, दो सेर खाता हूँ, चार सेर खाता हूँ। आध सेर में रह गये।'

'एक दिन तौलो, तब मालूम हो।'

'तौला है। बड़े खानेवाले ! मैं कहे देती हूँ, धान न रोपो। मजूर मिलेंगे नहीं, अकेले हलकान होना पड़ेगा।

'तुम्हारी बला से। मैं ही हलकान हूँगा न ? यह देह किस दिन काम आयेगी?'

प्यारी ने उसके कंधे पर से फावड़ा ले लिया और बोली—तुम पहर दिन से पहर रात तक ताल में रहोगे, अकेले मेरा जी ऊबेगा !

जोखू को जी ऊबने का अनुभव न था। कोई काम न हो, तो आदमी पड़ कर सो रहे। जी क्यों ऊबे। बोला—जी ऊबे तो सो रहना। मैं घर रहूँगा, तब तो और जी ऊबेगा। मैं खाली बैठता हूँ, तो बार-बार खाने की सूझती है। बातों में देर हो रही है और बादल घिरे आते हैं।

प्यारी ने हारकर कहा—अच्छा, कल से जाना, आज बैठो।

जोखू ने मानों बन्धन में पड़कर कहा—अच्छा, बैठ गया, कहो क्या कहती हो ?

प्यारी ने विनोद करते हुए कहा—कहना क्या है, मैं तुमसे पूछती हूँ अपनी सगाई क्यों नहीं कर लेते ? अकेली मरती हूँ। तब एक से दो हो जाऊँगी ?

जोखू शरमाता हुआ बोला—तुमने फिर वही बेबात की बात छेड़ दी, मालकिन! किससे सगाई कर लूँ यहाँ ? मैं ऐसी मेहरिया लेकर क्या करूँगा, जो गहनों के लिए मेरी जान खाती रहे।

प्यारी—यह तो तुमने बड़ी कड़ी शर्त लगायी। ऐसी औरत कहाँ मिलेगी, जो गहने भी न चाहे।

ज़ोखू—यह मैं थोड़े ही कहता हूँ कि वह गहने न चाहे; हाँ, मेरी जान न खाय। तुमने तो कभी गहनों के लिए हठ न किया; बल्कि अपने सारे गहने दूसरों के ऊपर लगा दिये।

प्यारी के कपोलों पर हल्का-सा रंग आ गया। बोली—अच्छा, और क्या चाहते हो ?

जोखू—मैं कहने लगूँगा, तो बिगड़ जावगी।

प्यारी की आँखों में लज्जा की एक रेखा नजर आयी, बोली—बिगड़ने की बात कहोगे, तो जरूर बिगड़ूँगी।

जोखू—तो मैं न कहूँगा।

प्यारी ने उसे पीछे की ओर ढकेलते हुए कहा—कहोगे कैसे नहीं, मैं कहला के छोड़ूंगी।

जोखू—मैं चाहता हूँ कि वह तुम्हारी तरह हो; ऐसी ही गंभीर हो, ऐसी ही बातचीत में चतुर हो, ऐसा ही अच्छा खाना पकाती हो, ऐसी ही किफायती हो, ऐसी ही हँसमुख हो। बस, ऐसी औरत मिलेगी, तो करूँगा नहीं इसी तरह पड़ा रहूँगा।

प्यारी का मुख लज्जा से आरक्त हो गया। उसने पीछे हटकर कहा—तुम बड़े नटखट हो ! हँसी-हँसी में सब कुछ कह गये।

[हिन्दी कहानी। प्रथम प्रकाशन हिन्दी में। मासिक 'विशाल भारत', सितम्बर, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-1 में संकलित। उर्दू रूप 'मालकिन' शीर्षक से उर्दू कहानी-संग्रह 'वारदात' में संकलित।]

दो बैलों की कथा

जानवरों में गधा सबसे ज्यादा बुद्धिहीन समझा जाता है। हम जब किसी आदमी को पल्ले दरजे का बेवकूफ कहना चाहते हैं, तो उसे गधा कहते हैं। गधा सचमुच बेवकूफ है, या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गायें सींग मारती हैं, ब्यायी हुई गाय तो अनायास ही सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है; किन्तु गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब, सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असन्तोष की छाया भी न दिखायी देगी। वैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो; पर हमने तो उसे कभी

खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, किसी भी दशा में उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वे सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं; पर आदमी उसे बेवकूफ कहता है। सद्गुणों का इतना अनादर कहीं नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिये न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्या दुर्दशा हो रही है ? क्यों अमरीका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता ? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी तोड़कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते हैं फिर भी बदनाम हैं। कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गण्य बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और भी है, जो उससे कम ही गधा है, और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम गधा का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में 'बछिया के ताऊ' का भी प्रयोग करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफों में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे; मगर हमारा विचार ऐसा नहीं है। बैल कभी-कभी मारता भी है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने म आता है। और भी कई रीतियों से अपना असन्तोष प्रकट कर देता है; अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

झूरी काछी के दोनों बैलों के नाम थे हीरा और मोती। दोनों पछाईं जाति के थे—देखने में सुन्दर, काम में चौकस, डील में ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाईचारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक-दूसरे से मूक-भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक-दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करनेवाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते, कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे—विग्रह के नाते से नहीं, केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्ठता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हलकी-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिये जाते और गरदन हिलाकर-हिलाकर चलते, उस वक्त हरएक की यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा-से-ज्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या सन्ध्या को दोनों खुलते, तो एक दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकान मिटा लिया करते। नाँद में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ उठते, साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुँह हटा लेता, तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, झूरी ने एक बार गोईं को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जा रहे हैं। समझे, मालिक ने हमें बेच दिया। अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने, पर झूरी के साले गया को घर तक गोईं ले जाने में दाँतों पसीना आ गया। पीछे से हाँकता तो दोनों दायें-बायें भागते; पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनों पीछे को जोर लगाते। मारता तो दोनों सींग नीचे करके हुँकारते। अगर ईश्वर ने

उन्हें वाणी दी होती, तो झूरी से पूछते—तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो ? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम न चलता था और काम ले लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था। हमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया, फिर तुमने हमें इस जालिम के हाथ क्यों बेच दिया ?

संध्या समय दोनों बैल अपने नये स्थान पर पहुँचे। दिन-भर के भूखे थे, लेकिन जब नाँद में लगाये गये, तो एक ने भी उसमें मुँह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समझ रखा था, वह आज उनसे छूट गया था। यह नया घर, नया गाँव, नये आदमी, उन्हें बेगानों-से लगते थे।

दोनों ने अपनी मूक-भाषा में सलाह की, एक दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गये। जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने जोर मारकर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा; पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गयी थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गयीं।

झूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा कि दोनों बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनों में आधा-आधा गराँव लटक रहा है। घुटने तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह झलक रहा है।

झूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्गद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गये और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्त्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशु-वीरों को अभिनन्दनपत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा—ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।

दूसरे ने समर्थन किया—इतनी दूर से दोनों अकेले चले आये।

तीसरा बोला—बैल नहीं हैं वे, उस जनम के आदमी हैं।

इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।

झूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली—कैसे नमक-हराम बैल हैं कि एक दिन वहाँ काम न किया; भाग खड़े हुए।

झूरी अपने बैलों पर यह आक्षेप न सुन सका—नमकहराम क्यों हैं ? चारा-दाना न दिया होगा, तो क्या करते ?

स्त्री ने रोब के साथ कहा—बस, तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।

झूरी ने चिढ़ाया—चारा मिलता तो क्यों भागते ?

स्त्री चिढ़ी—भागे इसलिए कि वे लोग तुम-जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिलाते हैं, तो रगड़कर जोतते भी हैं। ये दोनों ठहरे कामचोर, भाग निकले। अब देखूँ, कहाँ से खली और चोकर मिलता है ! सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खायें चाहें मरें।

वही हुआ। मजूर को बड़ी ताकीद कर दी गयी कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाय।

बैलों ने नाँद में मुँह डाला, तो फीका-फीका। न कोई चिकनाहट, न कोई रस! क्या खायँ ? आशा-भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे।

झूरी ने मजूर से कहा—थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता बे ?

'मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।'

'चुराकर डाल आ।'

'ना दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं की-सी कहोगे।'

2

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को सड़क की खाई में गिराना चाहा; पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या-समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों से बाँधा और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी न हुआ था। झूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत-सम्मान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा !

नाँद की तरफ आँखें तक न उठायीं।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता, पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया; पर दोनों ने पाँव न उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक पर खूब डण्डे जमाये, तो मोती का गुस्सा काबू के बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, जोत, सब टूट-टाट कर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं, तो दोनों पकड़ाई में न आते।

हीरा ने मूक-भाषा में कहा—भागना व्यर्थ है।

मोती ने उत्तर दिया—तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी।

अबकी बड़ी मार पड़ेगी।

'पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे ?'

'गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है। दोनों के हाथों में लाठियाँ हैं।'

मोती बोला—कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है।

हीरा ने समझाया—नहीं भाई ! खड़े हो जाओ।

'मुझे मारेगा, तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगा !'

'नहीं। हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।'

मोती दिल में ऐंठकर रह गया। गया आ पहुँचा और दोनों को पकड़कर ले चला। कुशल हुई कि उसने इस वक्त मारपीट न की, नहीं तो मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर

देखकर गया और उसके सहायक समझ गये कि इस वक्त टाल जाना ही मसलहत है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उस वक्त छोटी-सी लड़की दो रोटियाँ लिये निकली, और दोनों के मुँह में देकर चली गयी। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शान्त होती; पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का वास है। लड़की भैरो की थी। उसकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ उसे मारती रहती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गयी थी।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डण्डे खाते, अड़ते। शाम को थान पर बाँध दिये जाते और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की यह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों में रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक-भाषा में कहा—अब तो नहीं सहा जाता, हीरा !

'क्या करना चाहते हो ?'

'एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूँगा।'

'लेकिन जानते हो, वह प्यारी लड़की, जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। यह बेचारी अनाथ न हो जायगी ?'

'तो मालकिन को न फेंक दूँ। वही तो उस लड़की को मारती है।'

'लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।'

'तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। बताओ, तुड़ाकर भाग चलें।'

'हाँ, यह मैं स्वीकार करता, लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे ?'

'इसका एक उपाय है। पहले रस्सी को थोड़ा-सा चबा लो। फिर एक झटके में जाती है।'

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गयी, दोनों रस्सियाँ चबाने लगे, पर मोटी रस्सी मुँह में न आती थी। बेचारे बार-बार जोर लगाकर रह जाते थे।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूँछें खड़ी हो गयीं। उसने उनके माथे सहलाये और बोली—खोले देती हूँ। चुपके से भाग जाओ, नहीं तो यहाँ लोग मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जायँ।

उसने गराँव खोल दिया, पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा—अब चलते क्यों नहीं।

हीरा ने कहा—चलें तो लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आयेगी। सब इसी पर सन्देह करेंगे। सहसा बालिका चिल्लायी—दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा ! दादा ! दोनों बैल भागे जा रहे हैं, जल्दी दौड़ो।

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला। वे दोनों भागे। गया ने पीछा किया। और भी तेज हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को भी साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गये। यहाँ तक कि मार्ग का ज्ञान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आये थे, उसका यहाँ पता

न था। नये-नये गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे, अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा—मालूम होता है, राह भूल गये।

'तुम भी बेतहाशा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।'

'उसे मार गिराते, तो दुनिया क्या कहती ? वह अपना धर्म छोड़ दे, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें ?'

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी। चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं है।

जब पेट भर गया, दोनों ने आजादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाये और एक दूसरे को ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। सँभलकर उठा और फिर मोती से मिल गया। मोती ने देखा—खेल में झगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गया।

3

अरे ! यह क्या ? कोई साँड़ डौंकता चला आ रहा है। हाँ, साँड़ ही है। वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगलें झाँक रहे हैं। साँड़ पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है; लेकिन न भिड़ने पर भी जान बचती नहीं नजर आती। इन्हीं की तरफ आ भी रहा है। कितनी भयंकर सूरत है !

मोती ने मूक-भाषा में कहा—बुरे फँसे। जान बचेगी ? कोई उपाय सोचो।

हीरा ने चिन्तित स्वर में कहा—अपने घमंड में भूला हुआ है। आरजू-विनती न सुनेगा।

'भाग क्यों न चलें ?'

'भागना कायरता है।'

'तो फिर यहीं मरो। बन्दा तो नौ-दो-ग्यारह होता है।'

'और जो दौड़ाये ?'

'तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द !'

'उपाय यही है कि उस पर दोनों जने एक साथ चोट करें ? मैं आगे से रगेदता हूँ, तुम पीछे से रगेदो, दोहरी मार पड़ेगी, तो भाग खड़ा होगा। मेरी ओर झपटे, तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना। जान जोखिम है; पर दूसरा उपाय नहीं है।'

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके। साँड़ को भी संगठित शत्रुओं से लड़ने का तजरबा न था। वह तो एक शत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था। ज्योंही हीरा पर झपटा, मोती ने पीछे से दौड़ाया। साँड़ उसकी तरफ मुड़ा, तो हीरा ने रगेदा। साँड़ चाहता था कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले; पर ये दोनों भी उस्ताद थे। उसे वह अवसर न देते थे। एक बार साँड़ झल्लाकर हीरा का अन्त कर देने के लिए चला कि मोती ने बगल से आकर पेट में सींग भोंक दी। साँड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया। आखिर बेचारा जख्मी होकर भागा और दोनों मित्रों ने दूर तक उसका पीछा

किया। यहाँ तक कि साँड़ बेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे छोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में झूमते चले जाते थे।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—मेरा जी तो चाहता था कि बच्चा को मार ही डालूँ।

हीरा ने तिरस्कार किया—गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिए।

'यह सब ढोंग है। बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे।'

'अब घर कैसे पहुँचेंगे, वह सोचो।'

'पहले कुछ खा लें, तो सोचें।'

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी। अभी दो ही चार ग्रास खाये थे कि दो आदमी लाठियाँ लिये दौड़ पड़े, और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा तो मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। न भाग सका। पकड़ लिया। हीरा ने देखा, संगी संकट में है, तो लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों फँसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रातःकाल दोनों मित्र काँजीहौस में बन्द कर दिये गये।

4

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा साबिका पड़ा कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ ही में न आता था, यह कैसा स्वामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। यहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे; पर किसी के सामने चारा न था, सब जमीन पर मुरदों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमजोर हो गये थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाये ताकते रहे; पर कोई चारा लेकर आता न दिखायी दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की, पर इससे क्या तृप्ति होती ?

रात को भी जब कुछ भोजन न मिला, तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला—अब तो नहीं रहा जाता मोती !

मोती ने सिर लटकाये हुए जवाब दिया—मुझे तो मालूम होता है, प्राण निकल रहे हैं।

'इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई ! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।'

'आओ दीवार तोड़ डालें।

'मुझसे तो अब कुछ नहीं होगा।'

'बस इसी बूते पर अकड़ते थे !'

'सारी अकड़ निकल गयी।'

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिये और जोर मारा, तो मिट्टी का एक चिप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। इसने दौड़-दौड़कर दीवार पर चोटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय काँजीहौस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरों की हाजिरी लेने आ

निकला। हीरा का उजड्डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किये और मोटी-सी रस्सी से बाँध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा—आखिर मार खायी, क्या मिला ?'

'अपने बूते-भर जोर तो मार दिया।'

'ऐसा जोर मारना किस काम का कि और बंधन में पड़ गये।'

'जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने ही बंधन पड़ते जायँ।'

'जान से हाथ धोना पड़ेगा।'

'कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती, तो कितनी जानें बच जातीं। इतने भाई यहाँ बन्द हैं। किसी की देह में जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा, तो सब मर जायेंगे।

'हाँ, यह बात तो है। अच्छा, तो ला, फिर मैं भी जोर लगाता हूँ।'

मोती ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और फिर हिम्मत बढ़ी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह जोर करने लगा, मानो किसी प्रतिद्वन्द्वी से लड़ रहा है। आखिर कोई दो घंटे की जोर-आजमाई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गयी। उसने दूनी शक्ति से दूसरा धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था कि अधमरे-से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गयीं; पर गधे अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा—तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते ?

एक गधे ने कहा—जो कहीं फिर पकड़ लिये जायँ।

'तो क्या हरज है। अभी तो भागने का अवसर है।'

'हमें तो डर लगता हैं हम यहीं पड़े रहेंगे।'

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे कि भागें या न भागें, और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था। जब वह हार गया, तो हीरा ने कहा—तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो। शायद कहीं भेंट हो जाय।

मोती ने आँखों में आँसू लाकर कहा—तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो, हीरा? हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे हैं। आज तुम विपत्ति में पड़ गये, तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊँ।

हीरा ने कहा—बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जायँगे, यह तुम्हारी शरारत है।

मोती गर्व से बोला—जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बन्धन पड़ा उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े तो क्या चिन्ता। इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गयी। वे सब तो आशीर्वाद देंगे।

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींगों से मार-मारकर बाड़े के बाहर निकाला और तब अपने बन्धु के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मुंशी और चौकीदार तथा अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसके लिखने की जरूरत नहीं। बस, इतना ही काफी है कि मोती की खूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी से बाँध दिया गया।

5

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बँधे पड़े रहे। किसी ने चारे का एक तृण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गये थे कि उठा तक न जाता था; ठठरियाँ निकल आयी थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गये। तब दोनों मित्र निकाले गये और उनकी देख भाल होने लगी। लोग आ-आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते। एक से मृतक बैलों का कौन खरीदार होता ?

सहसा एक दढ़ियल आदमी, जिसकी आँखें लाल थीं और मुद्रा अत्यन्त कठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों में उँगली गोदकर मुंशीजी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर अन्तर्ज्ञान से दोनों मित्रों के दिल काँप उठे। वह कौन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।

मोती ने अश्रद्धा के भाव से उत्तर दिया—कहते हैं, भगवान् सबके ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती ?

'भगवान् के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो, अच्छा ही है, कुछ दिन उसके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचायेंगे ?'

'यह आदमी छुरी चलायेगा। देख लेना।'

'तो क्या चिन्ता है ? मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम आ जायँगी।'

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दढ़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे, पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे; क्योंकि वह जरा भी चाल धीमी हो जाने पर जोर से डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक रेवड़ हरे-हरे हार में चरता नजर आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चपल। कोई उछलता था, कोई आनन्द से बैठा पागुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका; पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई बधिक के हाथ पड़े कैसे दुःखी हैं।

सहसा दोनों को ऐसा मालूम हुआ कि यह परिचित राह है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे। प्रतिक्षण उनकी चाल तेज होने लगी। सारी थकान, सारी दुर्बलता गायब हो गयी। आह ? यह लो ! अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे; यही कुआँ है।

मोती ने कहा—हमारा घर नगीच आ गया।

हीरा बोला—भगवान् की दया है।

'मैं तो अब घर भागता हूँ।'

'यह जाने देगा ?'

'इसे मैं मार गिराता हूँ।'

'नहीं-नहीं, दौड़कर थान पर चलो। वहाँ से हम आगे न जायँगे।'

दोनों उन्मत्त होकर बछड़ों की भाँति कुलेलें करते हुए घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है। दोनों दौड़कर अपने थान पर आये और खड़े हो गये। दढ़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

झूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बैलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। एक झूरी का हाथ चाट रहा था।

दढ़ियल ने जाकर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

झूरी ने कहा—मेरे बैल हैं।

'तुम्हारे बैल कैसे ? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिये आता हूँ।'

'मैं तो समझता हूँ चुराये लिये आते हो ! चुपके से चले जाओ। मेरे बैल हैं। मैं बेचूँगा तो बिकेंगे। किसी को मेरे बैल नीलाम करने का क्या अख्तियार है ?'

'जाकर थाने में रपट कर दूँगा।'

'मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।'

दढ़ियल झल्लाकर बैलों को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दढ़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दढ़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका; पर खड़ा दढ़ियल का रास्ता देख रहा था। दढ़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था। और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे और हँसते थे।

जब दढ़ियल हारकर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा—मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।

'अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बे-मारे न छोड़ता।'

'अब न आयेगा।'

'आयेगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ, कैसे ले जाता है।'

'जो गोली मरवा दे ?'

'मर जाऊँगा; पर उसके काम तो न आऊँगा।'

'हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।'

'इसीलिए कि हम इतने सीधे हैं।'

जरा देर में नाँदों में खली, भूसा, चोकर और दाना भर दिया गया और दोनों मित्र खाने लगे। झूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिये।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', अक्टूबर, 1931 में प्रकाशित। 'मानसरोवर' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप 'दो बैल' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', नवम्बर, 1931 में प्रकाशित।]

लेखक

प्रातःकाल महाशय प्रवीण ने बीस दफा उबाली हुई चाय का प्याला तैयार किया और बिना शक्कर और दूध के पी गये। यही उनका नाश्ता था। महीनों से मीठी, दूधिया चाय न मिली थी। दूध और शक्कर उनके लिए जीवन के आवश्यक पदार्थों में न थे। घर में गये जरूर, कि पत्नी को जगाकर पैसे माँगे; पर उसे फटे-मैले लिहाफ़ में निद्रा-मग्न देखकर जगाने की इच्छा न हुई। सोचा शायद मारे सर्दी के बेचारी को रातभर नींद न आई होगी, इस वक्त जाकर आँख लगी है। कच्ची नींद जगा देना उचित न था। चुपके से चले आये।

चाय पीकर उन्होंने कलम-दवात सँभाली और वह किताब लिखने में तल्लीन हो गये, जो उनके विचार में इस शताब्दी की सबसे बड़ी रचना होगी, जिसका प्रकाशन उन्हें गुमनाम से निकालकर ख्याति और समृद्ध के स्वर्ग पर पहुँचा देगा।

आध घण्टे बाद पत्नी आँखें मलती हुई आकर बोली—क्या तुम चाय पी चुके ?

प्रवीण ने सहास्य मुख से कहा—हाँ, पी चुका। बहुत अच्छी बनी थी।

'पर दूध और शक्कर कहाँ से लाये ?'

'दूध और शक्कर तो कई दिन से नहीं मिलता। मुझे आजकल सादा चाय ज्यादा स्वादिष्ट लगती है। दूध और शक्कर मिलाने से उसका स्वाद बिगड़ जाता है। डाक्टरों की भी यही राय है कि चाय हमेशा सादा पीनी चाहिए। योरोप में तो दूध का बिलकुल रिवाज नहीं है। यह तो हमारे यहाँ के मधुर-प्रिय रईसों की ईजाद है।'

'जाने तुम्हें फीकी चाय कैसे अच्छी लगती है ! मुझे जगा क्यों न लिया ? पैसे तो रखे थे।

महाशय प्रवीण फिर लिखने लगे। जवानी ही में उन्हें यह रोग लग गया था, और आज बीस साल से वह उसे पाले हुए थे। इस रोग में देह घुल गई, स्वास्थ्य घुल गया, और चालीस की अवस्था में बुढ़ापे ने आ घेरा; पर यह रोग असाध्य था। सूर्योदय से आधी रात तक यह साहित्य का उपासक अन्तर्जगत् में डूबा हुआ, समस्त संसार से मुँह मोड़े, हृदय के पुष्प और नैवेद्य चढ़ाता रहता था। पर भारत में सरस्वती की उपासना लक्ष्मी की अभक्ति है। मन तो एक ही था। दोनों देवियों को एक साथ कैसे प्रसन्न करता, दोनों के वरदान का पात्र क्योंकर बनता ? और लक्ष्मी की यह अकृपा केवल धनाभाव के रूप में न प्रकट होती थी। उसकी सबसे निर्दय क्रीड़ा यह थी, कि पत्रों के सम्पादक और पुस्तकों के प्रकाशक उदारता-पूर्वक सहृदयता का दान भी न देते थे। कदाचित् सारी दुनिया में उसके विरुद्ध कोई षड्यन्त्र-सा रच डाला था। यहाँ तक कि इस निरन्तर अभाव में उसमें आत्म-विश्वास को जैसे कुचल दिया था। कदाचित् अब उसे यह ज्ञात होने लगा था, कि उसकी रचनाओं में कोई सार, कोई प्रतिभा नहीं है, और यह भावना अत्यन्त हृदय-विदारक थी। यह दुर्लभ मानव-जीवन यों ही नष्ट हो गया ! यह तस्कीन भी नहीं कि संसार ने चाहे उसका सम्मान न किया हो, पर उसकी जीवनकृति इतनी तुच्छ नहीं। जीवन की आवश्यकताएँ घटते-घटते संन्यास की सीमा को भी पार कर चुकी थीं। अगर कोई सन्तोष था, तो यह कि उनकी जीवन-सहचरी त्याग और तप में उनसे भी दो कदम आगे थी। सुमित्रा इस दशा में भी प्रसन्न थी। प्रवीणजी को दुनिया से शिकायत हो, पर सुमित्रा जैसे गेंद में भरी हुई वायु की

भाँति उन्हें बाहर की ठोकरों से बचाती रहती थी। अपने भाग्य का रोना तो दूर की बात थी, इस देवी ने कभी माथे पर बल भी न आने दिया।

सुमित्रा ने चाय का प्याला समेटते हुए कहा—तो जाकर घण्टा-आध-घण्टा कहीं घूम-फिर क्यों नहीं आते ? जब मालूम हो गया, कि प्राण देकर काम करने से भी कोई नतीजा नहीं, तो व्यर्थ क्यों सिर खपाते हो ?

प्रवीण ने बिना मस्तक उठाये, कागज पर कलम चलाते हुए कहा लिखने में कम-से-कम यह सन्तोष तो होता है कि कुछ कर रहा हूँ। सैर करने में तो मुझे ऐसा जान पड़ता है, कि समय का नाश कर रहा हूँ।

'यह इतने पढ़े-लिखे आदमी नित्य-प्रति हवा खाने जाते हैं, तो अपने समय का नाश करते हैं ?

'मगर इनमें अधिकांश वही लोग हैं, जिनके सैर करने से उनकी आमदनी में बिल्कुल कमी नहीं होती। अधिकांश तो सरकारी नौकर हैं. जिनको मासिक वेतन मिलता है, या ऐसे पेशों के लोग हैं, जिनका लोग आदर करते हैं। मैं तो मिल का मजूर हूँ। तुमने किसी मजूर को हवा खाते देखा है ? जिन्हें भोजन की कमी नहीं, उन्हीं को हवा खाने की भी ज़रूरत है। जिनको रोटियों के लाले हैं, वे हवा खाने नहीं जाते। फिर स्वास्थ्य और जीवन-वृद्धि की ज़रूरत उन लोगों को है जिनके जीवन में आनन्द और स्वाद है। मेरे लिए तो जीवन भार है। इस भार को सिर पर कुछ दिन और बनाये रहने की अभिलाषा मुझे नहीं है।

सुमित्रा ने निराशा में डूबे हुए शब्द सुनकर आँखों में आँसू भरे अन्दर चली गई। उसका दिल कहता था, इस तपस्वी की कीर्ति-कौमुदी एक दिन अवश्य फैलेगी। चाहे लक्ष्मी की अकृपा बनी रहे। किन्तु प्रवीण महोदय अब निराशा की उस सीमा तक पहुँच चुके थे, जहाँ से प्रतिकूल दिशा में उदय होने वाली आशामय उषा की लाली भी नहीं दिखाई देती थी।

2

एक रईस के यहाँ कोई उत्सव है। उसने महाशय प्रवीण को भी निमन्त्रित किया है। आज उनका मन आनन्द के घोड़े पर बैठा हुआ नाच रहा है। सारे दिन वह इसी कल्पना में मग्न रहे। राजा साहब किन शब्दों में उनका स्वागत करेंगे और वह किन शब्दों में उनको धन्यवाद देंगे, किन प्रसंगों पर वार्तालाप होगा, और वह किन महानुभावों से उनका परिचय होगा, सारे दिन वह इन्हीं कल्पनाओं का आनन्द उठाते रहे। इस अवसर के लिए उन्होंने एक कविता भी रची, जिसमें उन्होंने जीवन की एक उद्यान से तुलना की थी। अपनी सारी धारणाओं की उन्होंने आज उपेक्षा कर दी, क्योंकि रईसों केक मनोभावों को वह आघात न पहुँचा सकते थे।

दोपहर ही से उन्होंने तैयारियाँ शुरू कीं। हजामत बनाई, साबुन से नहाया, सिर में तेल डाला। मुश्किल कपड़ों की थी। मुद्दत गुजरी, जब उन्होंने एक अचकन बनवाई थी। उसकी दशा भी उन्हीं की दशा जैसी जीर्ण हो चुकी थी। जैसे ज़रा-सी सर्दी या गर्मी से उन्हें जुकाम या सिर-दर्द हो जाता था, उसी तरह वह अचकन भी नाजुक-मिज़ाज थी। उसे

निकाल और झाड़-पोंछकर रखा।

सुमित्रा ने कहा—तुमने व्यर्थ ही यह निमंत्रण स्वीकार किया। लिख देते, मेरी तबियत अच्छी नहीं है, इन फटेहालों जाना तो और भी बुरा है।

प्रवीण ने दार्शनिक गम्भीरता से कहा—जिन्हें ईश्वर ने हृदय और परख दी है, वे आदमियों की पोशाक नहीं देखते—उनके गुण और चरित्र देखते हैं। आखिर कुछ बात तो है, कि राजा साहब ने मुझे निमन्त्रित किया। मैं कोई ओहदेदार नहीं, ज़मींदार नहीं, जागीरदार नहीं, ठेकेदार नहीं, केवल एक साधारण लेखक हूँ। लेखक का मूल्य उसकी रचनाएँ होती हैं। इस एतबार से मुझे किसी भी लेखक से लज्जित होने का कारण नहीं है।

सुमित्रा उनकी सरलता पर दया करके बोली—तुम कल्पनाओं के संसार में रहते-रहते प्रत्यक्ष संसार से अलग हो गये हो। मैं कहती हूँ, राजा साहब के यहाँ लोगों की निगाह सबसे ज्यादा कपड़ों पर ही पड़ेगी। सरलता जरूर अच्छी चीज है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं कि आदमी फूहड़ बन जाय।

प्रवीण को इस कथन में कुछ सार जान पड़ा। विद्वज्जनों की भाँति उन्हें भी अपनी भूलों को स्वीकार करने में कुछ विलम्ब न होता था। बोले—मैं समझता हूँ, दीपक जल जाने के बाद जाऊँ।

'मैं तो कहती हूँ, जाओ ही क्यों ?'

'अब तुम्हें कैसे समझाऊँ, प्रत्येक प्राणी के मन में आदर और सम्मान की क्षुधा होती है। तुम पूछोगी, यह क्षुधा क्यों होती है ? इसलिए कि यह हमारे आत्मविकास की एक मंजिल है। हम उस महान सत्ता के सूक्ष्मांश हैं, जो समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त है। अंश में पूर्ण के गुणों का होना लाज़िमी है। इसलिए कीर्ति और सम्मान, आत्मोन्नति और ज्ञान की ओर हमारी स्वाभाविक रुचि है। मैं इस लालसा को बुरा नहीं समझता।'

सुमित्रा ने गला छुड़ाने के लिए कहा—अच्छा भाई, जाओ। मैं तुमसे बहस नहीं करती, लेकिन कल के लिए कोई व्यवस्था करते आना; क्योंकि मेरे पास केवल एक आना और रह गया है। जिनसे उधार मिल सकता था, उनसे ले चुकी और जिससे लिया उसे देने की नौबत नहीं आई। मुझे तो और अब कोई उपाय नहीं सूझता।

प्रवीण ने एक क्षण के बाद कहा—दो-एक पत्रिकाओं से मेरे लेखों के रुपये आने वाले हैं। शायद कल तक आ जायँ। और अगर कल उपवास ही करना पड़े तो क्या चिंता ? हमारा धर्म है काम करना। हम काम करते हैं और तन-मन से करते हैं। अगर इस पर भी हमें फ़ाका करना पड़े, तो मेरा दोष नहीं। मर ही तो जाऊँगा। हमारे जैसे लाखों आदमी रोज मरते हैं। संसार का काम ज्यों-का-त्यों चलता रहता है। फिर इसका क्या ग़म कि हम भूखों मर जायेंगे ? मौत डरने की वस्तु नहीं। मैं तो कबीरपंथियों का क़ायल हूँ, जो अर्थी को गाते-बजाते ले जाते हैं। मैं इससे नहीं डरता। तुम्हीं कहो, मैं जो कुछ करता हूँ, इससे अधिक और कुछ मेरी शक्ति के बाहर है या नहीं। सारी दुनिया मीठी नींद सोती होती है और मैं क़लम लिये बैठा रहता हूँ। लोग हँसी-दिल्लगी, आमोद-प्रमोद करते रहते हैं, मेरे लिए वह सब हराम है। यहाँ तक कि महीनों से हँसने की नौबत नहीं आई। होली के दिन भी मैंने तातील नहीं मनाई। बीमार भी होता हूँ, तो लिखने की फिक्र सिर पर सवार रहती है। सोचो, तुम बीमार थीं और मैं वैद्य के यहाँ जाने के लिए समय न पाता था। अगर

दुनिया कदर नहीं मेरी करती, न करे। इसमें दुनिया का ही नुकसान है। मेरी कोई हानि नहीं ! दीपक का काम है जलना। उसका प्रकाश फैलता है या उसके सामने कोई ओट है, उसे इससे प्रयोजन नहीं।

मेरा भी ऐसा कौन मित्र, परिचित या सम्बन्धी है, जिसका मैं आभारी नहीं ? यहाँ तक कि अब घर से निकलते शर्म आती है। सन्तोष इतना ही है कि लोग मुझे बदनीयत नहीं समझते। वे मेरी कुछ अधिक मदद न कर सकें, पर उन्हें मुझसे सहानुभूति अवश्य है। मेरी खुशी के लिए इतना ही काफी है कि आज वह अवसर तो आया कि एक रईस ने मेरा सम्मान किया।

फिर सहसा उन पर एक नशा-सा छा गया। गर्व से बोले—नहीं, मैं अब रात को न जाऊँगा। मेरी ग़रीबी अब रुसवाई की हद तक पहुँच चुकी है। उस पर परदा डालना व्यर्थ है। मैं इसी वक्त जाऊँगा। जिसे रईस और राजे आमन्त्रित करें, वह कोई ऐसा-वैसा आदमी नहीं हो सकता। राजा साहब साधारण रईस नहीं हैं। वह इस नगर के ही नहीं, भारत के विख्यात रईसों में हैं। अगर अब भी कोई मुझे नीचा समझे, तो वह ख़ुद नीचा है।

सन्ध्या का समय है। प्रवीणजी अपनी फटी-पुरानी अचकन और सड़े हुए जूते और बेढंगी-सी टोपी पहने घर से निकले। खामखाह बाँगड़ू उचक्के-से मालूम होते थे। डीलडौल और चेहरे-मुहरे के आदमी होते, तो इस ठाठ में भी एक शान होती। स्थूलता स्वयं रोब डालने वाली वस्तु है। पर साहित्य-सेवा और स्थूलता में विरोध है। अगर कोई साहित्य-सेवी मोटा-ताज़ा, डबल आदमी है, तो समझ लो, उसमें माधुर्य नहीं, लोच नहीं, हृदय नहीं। दीपक का काम है, जलना। दीपकर वही लबालब भरा होगा, जो जला न हो। फिर भी आप अकड़े जाते हैं। एक-एक अंग से गर्व टपक रहा है।

यों घर से निकलकर वह दुकानदारों से आँखें चुराते, गलियों से निकल जाते थे। पर आज वह गरदन उठाये, उनके सामने से जा रहे हैं। आज वह उनके तकाजों का दन्दाँशिकन जवाब देने को तैयार हैं। पर सन्ध्या का समय है, हरेक दूकान पर ग्राहक बैठे हुए हैं। कोई उनकी तरफ नहीं देखता। जिस रकम को वह अपनी हीनावस्था में दुर्विचार समझते थे, वह दूकानदारों की निगाह में इतनी जोखिम न थी, कि एक जाने-पहचाने आदमी को सरे-बाज़ार टोकते, विशेषकर जब वह आज किसी से मिलने जाते हुए मालूम होते थे।

प्रवीण ने एक बार सारे-बाज़ार का चक्कर लगाया, पर जी न भरा। तब दूसरा चक्कर लगाया, पर वह भी निष्फल। तब वह खुद हाफ़िज़ समद की दूकान पर जाकर खड़े हो गये। हाफ़िज़ जी बिसाते का कारोबार करते थे। बहुत दिन हुए प्रवीण इस दुकान से एक छतरी ले गये थे और अभी तक दाम न चुका सके थे। प्रवीण को देखकर बोले—महाशयजी, अभी तक छतरी के दाम नहीं मिले। ऐसे सौ-पचास ग्राहक मिल जायँ, तो दिवाला ही हो जाय। अब तो बहुत दिन हुए।

प्रवीण की बाछें खिल गईं। दिली मुराद पूरी हुई। बोले—मैं भूला नहीं हूँ हाफ़िज़जी, इन दिनों काम इतना ज्यादा था कि घर से निकलना मुश्किल था। रुपये तो नहीं हाथ

आते, पर आपकी दुआ से क़दरशिनासों की कमी नहीं। दो-चार आदमी घेरे ही रहते हैं। इस वक़्त भी राजा साहब—अजी वही जो नुक्कड़ वाले बँगले में रहते हैं—उन्हीं के यहाँ जा रहा हूँ। दावत है। रोज ऐसा कोई-न-कोई मौक़ा आता ही रहता है।

हाफ़िज़ समद प्रभावित होकर बोला—अच्छा ! आप राजा साहब के यहाँ तशरीफ़ ले जा रहे हैं। ठीक है, आप जैसे बाक़मालों की क़दर रईस ही कर सकते हैं, और कौन करेगा? सुभानल्लाह ! आप इस ज़माने में यकता हैं। अगर कोई मौका हाथ आ जाय, तो गरीबों को न भूल जाइएगा। राजा साहब की अगर इधर निगाह हो जाय, तो फिर क्या पूछना ! एक पूरा बिसाता तो उन्हीं के लिए चाहिए। ढाई-तीन लाख सालाना आमदनी है।

प्रवीण को ढाई-तीन लाख कुछ तुच्छ जान पड़े। ज़बानी जमाखर्च है, तो दस-बीस लाख कहने से क्या हानि ? बोले—ढाई-तीन लाख ! आप तो उन्हें गालियाँ देते हैं। उनकी आदमनी दस लाख से कम नहीं। एक साहब का अन्दाज़ तो बीस लाख का है। इलाका है, मकानात हैं, दुकानें हैं, ठीका है, अमानती रुपये हैं और फिर सबसे बड़ी सरकार बहादुर की निगाह है।

हाफ़िज़ ने बड़ी नम्रता से कहा—यह दूकान आप ही की है जनाब, बस इतनी ही अरज़ है। अरे मुरादी, जरा दो पैसे के अच्छे-से पान तो बनवा ला आपके लिए। आइए दो मिनट बैठिए। कोई चीज पसन्द हो तो दिखाऊँ। आपसे तो घर का वास्ता है।

प्रवीण ने पान खाते हुए कहा—इस वक्त तो मुआफ़ रखिए। वहाँ देर होगी। फिर कभी हाजिर हूँगा।

यहाँ से उठकर वह एक कपड़े वाले की दुकान के सामने रुके। मनोहरदास नाम था। इन्हें खड़े देखकर आँखें उठाईं। बेचारा इनके नाम को रो बैठा था। समझ लिया, शायद इस शहर में हैं ही नहीं। समझा रुपये देने आये हैं। बोले—भाई प्रवीणजी, आपने तो बहुत दिनों दर्शन ही नहीं दिये। रुक्का कई बार भेजा, मगर प्यादे को आपके घर का पता ही न मिला। मुनीमजी, जरा देखो तो आपके नाम क्या है।

प्रवीण के प्राण तकाजों से सूख जाते थे; पर आज वह इस तरह खड़े थे, मानो उन्होंने कवच धारण कर लिया है, जिस पर किसी अस्त्र का आघात नहीं हो सकता। बोले—जरा इन राजा साहब के यहाँ से लौट आऊँ, तो निश्चिंत होकर बैठूँ। इस समय जल्दी में हूँ। राजा साहब पर मनोहरदास के कई हज़ार रुपये आते थे। फिर भी उनका दामन न छोड़ता था। एक के तीन वसूल करता। उसने प्रवीणजी को ऊँची श्रेणी में रखा जिसका पेशा रईसों को लूटना है। बोला—'पान तो खाते जाइए महाशय !' राजा साहब एक दिन के हैं। हम तो बारहों मास के हैं, भाई साहब ! कुछ कपड़े दरकार हों तो ले जाइए। अब तो होली आ रही है। मौका हो, तो जरा राजा साहब के खजानची से कहिएगा पुराना हिसाब बहुत दिनों से पड़ा हुआ है, अब तो सफ़ाई हो जाय ! हम सब ऐसा कौन-सा नफ़ा लेते हैं कि दो-दो साल हिसाब ही न हो ?

प्रवीण ने कहा—इस समय तो पान-वान रहने दो भाई ? देर हो जायगी। जब उन्हें मुझसे मिलने का इतना शौक है और मेरा इतना सम्मान करते हैं, तो अपना भी धर्म है कि उनको मेरे कारण कष्ट न हो। हम तो गुणाग्राहक चाहते हैं, दौलत के भूखे नहीं। कोई

अपना सम्मान करे, तो उसकी गुलामी करें। अगर किसी को रियासत का घमंड हो, तो हमें उसकी परवाह नहीं।

4

प्रवीणजी राजा साहब के विशाल भवन के सामने पहुँचे, तो दीये जल चुके थे। अमीरों और रईसों की मोटरें खड़ी थीं। वरदी-पोश दरबान द्वार पर खड़े थे। एक सज्जन मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। प्रवीणजी को देखकर वह जरा झिझके। फिर उन्हें सिर से पाँव तक देखकर बोले—आपके पास नवेद है ?

प्रवीण की जेब में नवेद था। पर इस भेदभाव पर उन्हें क्रोध आ गया। उन्हीं से क्यों नवेद माँगा जाय ? औरों से भी क्यों न पूछा जाय ? बोले—जी नहीं, मेरे पास नवेद नहीं है। अगर आप अन्य महाशयों से माँगते हों; तो मैं भी दिखा सकता हूँ। वरना मैं इस भेद को अपने लिए अपमान की बात समझता हूँ। आप राजा साहब से कह दीजिए, 'प्रवीणजी आये थे और द्वार से लौट गये।'

'नहीं-नहीं, महाशय अन्दर चलिए। मुझे आपसे परिचय न था। बेअदबी माफ़ कीजिए। आप ही ऐसे महानुभावों से तो महफिल की शोभा है। ईश्वर ने आपको वह वाणी प्रदान की है, कि क्या कहना।'

उस व्यक्ति ने प्रवीण को कभी न देखा था। लेकिन जो कुछ उसने कहा, वह हरेक साहित्य-सेवी के विषय में कह सकते हैं, और हमें विश्वास है कि कोई साहित्य-सेवी इस दाद की अपेक्षा नहीं कर सकता।

प्रवीण अन्दर पहुँचे तो देखा, बारहदरी के सामने विस्तृत और सुसज्जित प्रांगण में बिजली के कुमकुमे अपना प्रकाश फैला रहे हैं। मध्य में एक हौज है, हौज में संगमरमर की परी, परी के सिर पर फौवारा, फौवारे की फुहारें रंगीन कुमकुमों से रंजित होकर ऐसी मालूम होती थीं, मानो इन्द्र-धनुष पिघल कर ऊपर से बरस रहा है। हौज़ के चारों ओर मेजें लगी हुई थीं। मेज़ों पर सुफेद मेज-पोश, ऊपर सुन्दर गुलदस्ते।

प्रवीण को देखते ही राजा साहब ने स्वागत किया—आइए, आइए ! अबकी 'हंस' में आपका लेख देखकर दिल फड़क उठा। मैं तो चकित हो गया। मालूम ही न था, कि इस नगर में आप-जैसे रत्न भी छिपे हुए हैं।

फिर उपस्थित सज्जनों से उनका परिचय देने लगे—आपने महाशय प्रवीण का नाम तो सुना होगा। वह आप ही हैं। क्या माधुर्य है, क्या ओज है, क्या भाव है, क्या भाषा है, क्या सूझ है, क्या चमत्कार है, क्या प्रवाह है कि वाह ! वाह ! मेरी तो आत्मा जैसे नृत्यु करने लगती है।

एक सज्जन ने, जो अँगरेजी सूट में थे, प्रवीण को ऐसी निगाह से देखा मानो वह चिड़िया-घर के कोई जीव हों और बोले—आपने अँग्रेजी के कवियों का भी अध्ययन किया है—वायरन, शेली, कीट्स आदि।

प्रवीण ने रुखाई से जवाब दिया—जी हाँ, थोड़ा-बहुत देखा तो है।

'आप इन महाकवियों में से किसी की रचनाओं का अनुवाद कर दें, तो आज हिन्दी-भाषा की अमर सेवा करें।'

प्रवीण अपने को वायरन, शेली आदि से जौ-भर भी कम न समझते थे। वह अँगरेजी के कवि थे। उनकी भाषा, शैली, विषय-व्यंजना सभी अँग्रेजों की रुचि के अनुकूल था। उनका अनुवाद करना वह अपने लिए गौरव की बात न समझते हो, उसी तरह जैसे वे उनकी रचनाओं का अनुवाद करना अपने लिए गौरव की वस्तु न समझते। बोले—हमारे यहाँ आत्म-दर्शन का अभी इतना अभाव नहीं है, कि हम विदेशी कवियों से भिक्षा माँगें। मेरा विचार है कि कम-से-कम इस विषय में भारत अब भी पश्चिम को कुछ सिखा सकता है।

यह अनर्गल बात थी। अँग्रेजी के भक्त महाशय ने प्रवीण को पागल समझा।

राजा साहब ने प्रवीण को ऐसी आँखों से देखा, जो कह रही थीं—जरा मौका-महल देखकर बातें करो ! और बोले—अँग्रेजी साहित्य का क्या पूछना ! कविता में तो वह अपना जोड़ नहीं रखता।

अँग्रेजी के भक्त महाशय ने प्रवीण को सगर्व नेत्रों से देखा—हमारे कवियों ने अभी तक कविता का अर्थ ही नहीं समझा अभी तक वियोग और नख-शिख को कविता का आधार बनाये हुए हैं।

प्रवीण ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया—मेरा विचार है, कि आपने वर्तमान कवियों का अध्ययन नहीं किया, या किया तो उतरी आँखों से।

राजा साहब ने अब प्रवीण की जबान बन्द कर देने का निश्चय किया—आप मिस्टर परांजपे हैं, प्रवीणजी ! आपके लेख अंग्रेजी पत्रों में छपते हैं और बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं।

उसका आशय यह था, कि अब आप न बहकिये।

प्रवीण समझ गये। परांजपे के सामने उन्हें नीचा देखना पड़ा। विदेशी वेश-भूषा और भाषा का यह भक्त जाति-द्रोही होकर भी इतना सम्मान पाये, यह उनके लिए असह्य था। पर करते क्या ?

इसी भेष के एक दूसरे सज्जन आये। राजा साहब ने तपाक से उनका अभिवादन किया—आइए डाक्टर चड्ढा ! कैसे मिजाज हैं ?

डाक्टर साहब ने राजा साहब से हाथ मिलाया और फिर प्रवीण की ओर जिज्ञासा-भरी आँखों से देखकर पूछा—आपकी तारीफ ?

राजा साहब ने प्रवीण का परिचय दिया—आप महाशय प्रवीण हैं। आप भाषा के अच्छे कवि और लेखक हैं।

डाक्टर साहब ने एक खास अन्दाज़ से कहा—अच्छा ! आप कवि हैं ! और बिना कुछ पूछे आगे बढ़ गये।

फिर उसी भेष के एक और महाशय पधारे। यह नामी बैरिस्टर थे। राजा साहब ने उनसे भी प्रवीण का परिचय कराया। उन्होंने भी उसी अन्दाज़ से कहा—अच्छा ! आप कवि हैं ? और आगे बढ़ गये। यही अभिनय कई बार हुआ। और हर बार प्रवीण को यही दाद मिली—अच्छा ! आप कवि हैं ?

यह वाक्य हर बार प्रवीण के हृदय पर एक नया आघात पहुँचाता था। उसके नीचे जो भाव था उसे प्रवीण खूब समझते थे। उसका सीधा-सादा आशय यह था कि तुम अपने ख़याली-पुलाव पकाते हो, पकाओ। यहाँ तुम्हारा क्या प्रयोजन ? तुम्हारा इतना साहस कि

तुम इस सभ्य-समाज में बेधड़क आओ।

प्रवीण मन-ही-मन अपने ऊपर झुँझला रहे थे। निमन्त्रण पाकर उन्होंने अपने को धन्य माना था, पर यहाँ आ कर उनका जितना अपमान हो रहा था, उसके देखते तो वह सन्तोष की कुटिया स्वर्ग थी। उन्होंने अपने मन को धिक्कारा—तुम जैसे सम्मान के लोभियों का यह दण्ड है। अब तो आँखें खुलीं, तुम कितने सम्मान के पात्र हो ! तुम इस स्वार्थमय संसार में किसी के काम नहीं आ सकते। वकील-बैरिस्टर तुम्हारा सम्मान क्यों करें ? तुम उनके मुवक्किल नहीं हो सकते, न उन्हें तुम्हारे द्वारा कोई मुकदमा पाने की आशा है। डाक्टर या हकीम तुम्हारा सम्मान क्यों करें? उन्हें तुम्हारे घर बिना फीस आने की इच्छा नहीं ! तुम लिखने के लिए बने हो, लिखे जाओ। बस, और संसार में तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं।

सहसा लोगों में हलचल पड़ गई। आज के प्रधान अतिथि का आगमन हुआ। यह महाशय हाईकोर्ट के जज नियुक्त हुए थे। इसी उपलक्ष्य में यह जलसा हो रहा था। राजा साहब ने लपककर जल्द हाथ मिलाया और आकर प्रवीणजी से बोले—आप अपनी कविता तो लिख ही लाये होंगे ?

प्रवीण ने कहा—मैंने कोई कविता नहीं लिखी।

'सच ! तब तो आपने ग़जब ही कर दिया। अरे भले आदमी, अबसे कोई चीज़ लिख डालो। दो-ही चार पंक्तियाँ हो जायँ। बस ! ऐसे अवसर पर एक कविता का पढ़ा जाना लाज़िमी है।'

'मैं इतनी जल्दी कोई चीज़ नहीं लिख सकता।'

'मैंने व्यर्थ ही इतने आदमियों से आपका परिचय कराया ?'

'बिल्कुल व्यर्थ।'

'अरे भाई जान, किसी प्राचीन कवि की ही कोई चीज़ सुना दीजिए। यहाँ कौन जानता है।'

'जी नहीं, क्षमा कीजिएगा। मैं भाट नहीं हूँ, न कथक हूँ।'

यह कहते हुए प्रवीणजी तुरन्त वहाँ से चल दिये। घर पहुँचे तो उनका चेहरा खिला हुआ था।

सुमित्रा ने प्रसन्न होकर पूछा—इतनी जल्द कैसे आ गये ?

'मेरी वहाँ कोई जरूरत न थी।'

'चलो, चेहरा खिला हुआ है खूब सम्मान हुआ होगा।'

'हाँ सम्मान तो, जैसी आशा न थी वैसा हुआ।'

'खुश बहुत हो।'

इसी से कि आज मुझे हमेशा के लिए सबक़ मिल गया। मैं दीपक हूँ और जलने के लिए बना हूँ। आज मैं इस तत्त्व को भूल गया था। ईश्वर ने मुझे ज्यादा बहकने न दिया। मेरी यह कुटिया ही मेरे लिए स्वर्ग है। मैं आज यह तत्त्व पा गया कि साहित्य-सेवा पूरी तपस्या है।

[प्रथम प्रकाशन हिन्दी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'हंस', नवम्बर, 1931 में प्रकाशित। 'कफन', में संकलित। उर्दू रूप 'परवीन' शीर्षक से उर्दू मासिक पत्रिका 'चन्दन', दिसम्बर, 1931 में प्रकाशित। यह कहानी 'अदीब की इज्जत' शीर्षक से भी उर्दू में प्रकाशित हुई है।]

सौत-2

जब रजिया के दो-तीन बच्चे होकर मर गये और उम्र ढल गयी, तो रामू का प्रेम उससे कुछ कम होने लगा और दूसरे ब्याह की धुन सवार हुई। आये दिन रजिया से झकझक होने लगी। रामू एक-न-एक बहाना खोजकर रजिया पर बिगड़ता और उसे मारता। और अन्त को वह नयी स्त्री ले ही आया। इसका नाम था दासी। चम्पई रंग था, बड़ी-बड़ी आंखें, जवानी की उम्र। पीली कृशांगी रजिया भला इस नवयौवना के सामने क्या जंचती ! फिर भी वह जाते हुए स्वामित्व को, जितने दिन हो सके, अपने अधिकार में रखना चाहती थी। गिरते हुए छप्पर को थूनियों से सम्हालने की चेष्टा कर रही थी। इस घर को उसने मर-मरकर बनाया है। उसे सहज ही में नहीं छोड़ सकती। वह इतनी बेसमझ नहीं है कि घर छोड़कर चली जाए और दासी राज करे।

2

एक दिन रजिया ने रामू से कहा—मेरे पास साड़ी नहीं है, जाकर ला दो।

रामू उसके एक दिन पहले दासी के लिए अच्छी-सी चुंदरी लाया था। रजिया की मांग सुनकर बोला—मेरे पास अभी रुपया नहीं है।

रजिया को साड़ी की उतनी चाह न थी, जितनी रामू और दसिया के आनंद में विघ्न डालने की। बोली—रुपये नहीं थे, तो कल अपनी चहेती के लिए चुंदरी क्यों लाये? चुंदरी के बदले उसी दाम में दो साड़ियां लाते, तो एक मेरे काम न आ जाती?

रामू ने स्वेच्छा भाव से कहा—मेरी इच्छा, जो चाहूंगा, करूंगा, तू बोलने वाली कौन है ? अभी उसके खाने-खेलने के दिन हैं। तू चाहती है, उसे अभी से नोन-तेल की चिन्ता में डाल दूं। यह मुझसे न होगा। तुझे ओढ़ने-पहनने की साध है तो काम कर, भगवान् ने क्या हाथ-पैर नहीं दिये। पहले तो घड़ी रात उठकर काम-धंधे में लग जाती थी। अब उसकी डाह में पहर दिन तक पड़ी रहती है। तो रुपये क्या आकाश से गिरेंगे? मैं तेरे लिए अपनी जान थोड़े ही दे दूंगा !

रजिया ने कहा—तो क्या मैं उसकी लौंडी हूं कि वह रानी की तरह पड़ी रहे और मैं घर का सारा काम करती रहूं ? इतने दिनों छाती फाड़कर काम किया, उसका यह फल मिला, तो अब मेरी बला काम करने जाती है।

"मैं जैसे रखूंगा, वैसे ही तुझे रहना पड़ेगा।"

"मेरी इच्छा होगी रहूंगी, नहीं अलग हो जाऊंगी।"

"जो तेरी इच्छा हो कर, मेरा गला छोड़।"

"अच्छी वात है। आज से तेरा गला छोड़ती हूं। समझ लूंगी, विधवा हो गयी।"

3

रामू दिल में इतना तो समझता था कि यह गृहस्थी रजिया की जोड़ी हुई है, चाहे उसके रूप में उसके लोचन-विलास के लिए आकर्षण न हो। सम्भव था, कुछ देर के बाद वह जाकर

रजिया को मना लेता, पर दासी भी कूटनीति में कुशल थी। उसने गर्म लोहे पर चोटें जमाना शुरू कीं। बोली—आज देवीजी किस बात पर बिगड़ रही थीं ?

रामू ने उदास मन से कहा—तेरी चुंदरी के पीछे रजिया महाभारत मचाये हुए है। अब कहती है, अलग रहूंगी। मैंने कह दिया, तेरी जो इच्छा हो कर।

दसिया ने आंखें मटकाकर कहा—यह सब नखरे हैं कि आकर हाथ-पांव जोड़ें, मनावन करें, और कुछ नहीं। तुम चुपचाप बैठे रहो। दो-चार दिन में आप ही गरमी उतर जायेगी। तुम कुछ बोलना नहीं, नहीं उनका मिजाज और आसमान पर चढ़ जायेगा।

रामू ने गम्भीर भाव से कहा—दासी, तुम जानती नहीं हो, वह कितनी घमंडिन है। वह मुंह से जो बात कहती है, उसे करके छोड़ती है।

रजिया को भी रामू से ऐसी कृतघ्नता की आशा न थी। वह अब पहले की-सी सुन्दरी नहीं, इसलिए रामू को अब उससे प्रेम नहीं है। पुरुष-चरित्र में यह कोई असाधारण बात न थी, लेकिन रामू उससे अलग रहेगा, इसका उसे विश्वास न आता था। यह घर उसी ने पैसा-पैसा जोड़कर बनवाया। गृहस्थी भी उसी की जोड़ी हुई है। अनाज का लेन-देन उसी ने शुरू किया। इस घर में आकर उसने कौन-कौन से कष्ट नहीं झेले, इसीलिए तो कि पौरुख थक जाने पर एक टुकड़ा चैन से खाएगी और पड़ी रहेगी, और आज वह इतनी निर्दयता से दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दी गयी ! रामू ने इतना भी नहीं कहा—तू अलग नहीं रहने पायेगी। मैं या खुद मर जाऊंगा या तुझे मार डालूंगा, पर तुझे अलग न होने दूंगा। तुझसे मेरा ब्याह हुआ है। हंसी-ठट्ठा नहीं है। तो जब रामू को उसकी परवाह नहीं है, तो वह रामू की क्यों परवाह करे ? क्या सभी स्त्रियों के पुरुष बैठे होते हैं ? सभी के मां-बाप, बेटे-पोते होते हैं। आज उसके लड़के जीते होते, तो मजाल थी कि यह नयी स्त्री लाते और मेरी यह दुर्गति करते ? इस निर्दयी को मेरे ऊपर इतनी भी दया नहीं आयी !

नारी-हृदय की सारी परवशता इस अत्याचार से विद्रोह करने लगी। वही आग जो मोटी लकड़ी को स्पर्श भी नहीं कर सकती, फूल को जलाकर भस्म कर देती है।

4

दूसरे दिन रजिया एक दूसरे गांव में चली गयी। उसने अपने साथ कुछ न लिया। जो साड़ी उसकी देह पर थी, वही उसकी सारी सम्पत्ति थी। विधाता ने उसके बालकों को पहले ही छीन लिया था। आज घर भी छीन लिया।

रामू उस समय दासी के साथ बैठा हुआ आमोद-विनोद कर रहा था। रजिया को जाते देखकर शायद वह समझ न सका कि वह चली जा रही है। रजिया ने यही समझा। इस तरह चोरों की भांति वह जाना भी न चाहती थी। वह दासी को, उसके पति को और सारे गांव को दिखा देना चाहती थी कि वह इस घर से धेले की भी चीज नहीं ले जा रही है। गांव वालों की दृष्टि में रामू का अपमान करना ही उसका लक्ष्य था। उसके चुपचाप चले जाने से तो कुछ भी न होगा। रामू उल्टा सबसे कहेगा, रजिया घर की सारी सम्पदा उठा ले गयी।

उसने रामू को पुकारकर कहा—सम्हालो अपना घर। मैं जाती हूं। तुम्हारे घर की कोई भी चीज अपने साथ नहीं ले जाती।

रामू एक क्षण के लिए कर्तव्य-भ्रष्ट हो गया। क्या कहे, उसकी समझ में न आया।

उसे आशा न थी कि वह यों जायेगी। उसने सोचा था, जब वह घर ढोकर ले जाने लगेगी, तब वह गांव वालों को दिखाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करेगा। अब क्या करे।

दसिया बोली—जाकर गांव में ढिंढोरा पीट आओ। यहां किसी का डर नहीं है। तुम अपने घर से ले ही क्या आयी थीं, जो कुछ लेकर जाओगी।

रजिया ने उसके मुंह न लगकर रामू ही से कहा—सुनते हो, अपनी चहेती की बातें। फिर भी मुंह नहीं खुलता। मैं तो जाती हूं, लेकिन दस्सो रानी, तुम भी बहुत दिन राज न करोगी। ईश्वर के दरबार में अन्याय नहीं फलता। वह बड़े-बड़े घमंडियों का घमंड चूर कर देते हैं।

दसिया ठट्ठा मारकर हंसी, पर रामू ने सिर झुका लिया। रजिया चली गयी।

5

रजिया जिस नये गांव में आयी थी, वह रामू के गांव से मिला ही हुआ था, अतएव यहां के लोग उससे परिचित हैं। वह कैसी कुशल गृहिणी है, कैसी मेहनती, कैसी बात की सच्ची, यह यहां किसी से छिपा न था। रजिया को मजूरी मिलने में कोई बाधा न हुई। जो एक लेकर दो का काम करे, उसे काम की क्या कमी ?

तीन साल तक रजिया ने कैसे काटे, कैसे एक नयी गृहस्थी बनायी, कैसे खेती शुरू की, इसका बयान करने बैठें, तो पोथी हो जाए। संचय के जितने मन्त्र हैं, जितने साधन हैं, वे रजिया को खूब मालूम थे। फिर अब उसे लाग हो गयी थी और लाग में आदमी की शक्ति का पारावार नहीं रहता। गांव वाले उसका परिश्रम देखकर दांतों तले उंगली दबाते थे। वह रामू को दिखा देना चाहती है—मैं तुझसे अलग होकर भी आराम से रह सकती हूं। वह अब पराधीन नारी नहीं है। अपनी कमाई खाती है।

रजिया के पास बैलों की एक अच्छी जोड़ी है। रजिया उन्हें केवल खली-भूसी देकर नहीं रह जाती, रोज दो-दो रोटियां भी खिलाती है, फिर उन्हें घंटों सहलाती है। कभी-कभी उनके कंधों पर सिर रखकर रोती है, और कहती है, अब बेटे हो तो, पति हो तो तुम्हीं हो। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ है। दोनों बैल शायद रजिया की भाषा और भाव समझते हैं। वे मनुष्य नहीं, बैल हैं। दोनों सिर नीचा करके रजिया का हाथ चाटकर उसे आश्वासन देते हैं। वे उसे देखते ही कितने प्रेम से उसकी ओर ताकने लगते हैं, कितने हर्ष से कंधा झुलाकर उस पर जुआ रखवाते हैं और कैसा जी तोड़ काम करते हैं, यह वे ही लोग समझ सकते हैं, जिन्होंने बैलों की सेवा की है और उनके हृदय को अपनाया है।

रजिया इस गांव की चौधराइन है। उसकी बुद्धि जो पहले नित्य आधार खोजती रहती थी और स्वच्छन्द रूप से अपना विकास न कर सकती थी, अब छाया से निकलकर प्रौढ़ और उन्नत हो गयी है।

एक दिन रजिया घर लौटी, तो एक आदमी ने कहा—तुमने नहीं सुना, चौधराइन, रामू तो बहुत बीमार है। सुना दस लंघन हो गये हैं।

रजिया ने उदासीनता से कहा—जूड़ी है क्या ?

"जूड़ी नहीं, कोई दूसरा रोग है। बाहर खाट पर पड़ा था। मैंने पूछा, कैसा जी है रामू ? तो रोने लगा। बुरा हाल है। घर में एक पैसा भी नहीं कि दवा-दारू करे। दसिया के एक

लड़का हुआ है। वह तो पहले भी काम-धन्धा न करती थी और अब तो लड़कोरी है, कैसे काम करने जाये। सारी मार रामू के सिर जाती है। फिर गहने चाहिए, कपड़े चाहिए, नयी दुलहिन यों कैसे रहे।''

रजिया ने घर में जाते हुए कहा—जो जैसा करेगा, आप भोगेगा।

लेकिन अंदर उसका जी न लगा। वह एक क्षण में फिर बाहर आई। शायद उस आदमी से कुछ पूछना चाहती थी और इस अन्दाज से पूछना चाहती थी, मानो उसे कुछ परवाह नहीं है।

पर वह आदमी चला गया था। रजिया ने पूरब-पच्छिम जा-जाकर देखा। वह कहीं न मिला। तब रजिया द्वार के चौखट पर बैठ गयी। उसे वे शब्द याद आये, जो उसने तीन साल पहले रामू के घर से चलते समय कहे थे। उस वक्त जलन में उसने वह शाप दिया था। अब वह जलन न थी। समय ने उसे बहुत कुछ शांत कर दिया था। रामू और दासी की हीनावस्था अब ईर्ष्या के योग्य नहीं, दया के योग्य थी।

उसने सोचा, रामू को दस लंघन हो गए हैं, तो अवश्य ही उसकी दशा अच्छी न होगी। कुछ ऐसा मोटा-ताजा तो पहले भी न था, दस लंघन ने तो बिल्कुल ही घुला डाला होगा। फिर इधर खेती-बारी में भी टोटा ही रहा। खाने-पीने को भी ठीक-ठीक न मिला होगा...

पड़ोस की एक स्त्री ने आग लेने के बहाने आकर पूछा—सुना, रामू बहुत बीमार है। जो जैसा करेगा, वैसा पायेगा। तुम्हें इतनी बेदर्दी से निकाला कि कोई अपने बैरी को भी न निकालेगा।

रजिया ने टोका—नहीं दीदी, ऐसी बात न थी। वे तो बेचारे कुछ बोले ही नहीं। मैं चली तो सिर झुका लिया। दसिया के कहने में आकर वह चाहे जो कुछ कर बैठे हों, यों मुझे कभी कुछ नहीं कहा। किसी की बुराई क्यों करूं। फिर कौन मर्द ऐसा है जो औरतों के बस नहीं हो जाता। दसिया के कारण उनकी यह दशा हुई है।

पड़ोसिन ने आग न मांगी, मुंह फेरकर चली गयी।

रजिया ने कलसा और रस्सी उठायी और कुएं पर पानी खींचने गयी। बैलों को सानी-पानी देने की बेला आ गयी थी, पर उसकी आंखें उस रास्ते की ओर लगी हुई थीं, जो मलसी (रामू का गांव) को जाता था। कोई उसे बुलाने अवश्य आ रहा होगा। नहीं, बिना बुलाये वह कैसे जा सकती है। लोग कहेंगे, आखिर दौड़ आयी न।

मगर रामू तो अचेत पड़ा होगा। दस लंघन थोड़े नहीं होते। उसकी देह में था ही क्या। फिर उसे कौन बुलाएगा ? दसिया को क्या गरज पड़ी है। कोई दूसरा घर कर लेगी। जवान है। सौ ग्राहक निकल आवेंगे। अच्छा, वह आ तो रहा है कोई। हां, आ रहा है। कुछ घबराया-सा जान पड़ता है। कौन आदमी है, इसे तो कभी मलसी में नहीं देखा, मगर उस वक्त से मलसी कभी गयी भी तो नहीं। दो-चार नये आदमी आकर बसे ही होंगे।

बटोही चुपचाप कुएं के पास से निकला। रजिया ने कलसा जगत पर रख दिया और उसके पास जाकर बोली—रामू महतो ने भेजा है तुम्हें ? अच्छा तो चलो घर, मैं तुम्हारे साथ चलती हूं। नहीं, अभी मुझे कुछ देर है, बैलों को सानी-पानी देना है, दिया-बत्ती करनी है।

तुम्हें रुपये दे दूं, जाकर दसिया को दे देना। कह देना, कोई काम हो तो बुला भेजें।

बटोही रामू को क्या जाने। किसी दूसरे गांव का रहने वाला था। पहले तो चकराया, फिर समझ गया। चुपके से रजिया के साथ चला गया और रुपये लेकर लम्बा हुआ। चलते-चलते रजिया ने पूछा—अब क्या हाल है उनका ?

बटोही ने अटकल से कहा—अब तो कुछ सम्हल रहे हैं।

"दसिया बहुत रो-धो तो नहीं रही है ?"

"रोती तो नहीं थी।"

"वह क्यों रोयेगी। मालूम होगा पीछे।"

बटोही चला गया, तो रजिया ने बैलों का सानी-पानी किया, पर मन रामू ही की ओर लगा हुआ था। स्नेह-स्मृतियां छोटी-छोटी तारिकाओं की भांति मन में उदित होती जाती थीं। एक बार जब वह बीमार पड़ी थी, वह बात याद आयी। दस साल हो गये। वह कैसे रात-दिन उसके सिरहाने बैठा रहता था। खाना-पीना तक भूल गया था। उसके मन में आया क्यों न चलकर देख ही आवे। कोई क्या कहेगा ? किसका मुंह है, जो कुछ कहे। चोरी करने नहीं जा रही हूं। उस आदमी के पास जा रही हूं, जिसके साथ पन्द्रह-बीस साल रही हूं। दसिया नाक सिकोड़ेगी। सिकोड़े। मुझे उससे क्या मतलब।

रजिया ने किवाड़ बन्द किये, घर मजूर को सहेजा और रामू को देखने चली, कांपती, झिझकती, क्षमा का दान लिए हुए।

6

रामू को थोड़े ही दिनों में मालूम हो गया कि उसके घर की आत्मा निकल गयी है, और वह चाहे कितना जोर करे, कितना ही सिर खपाये, उसमें स्फूर्ति नहीं आती। दासी सुन्दरी थी, शौकीन थी और फूहड़ थी। जब पहला नशा उतरा, तो ठांय-ठांय शुरू हुई। खेती की उपज कम होने लगी, और जो होती भी थी, वह ऊट-पटांग खर्च होती थी। ऋण लेना पड़ता था। इसी चिन्ता और शोक में उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। शुरू में कुछ परवाह न की। परवाह करके ही क्या करता। घर में पैसे न थे। अताइयों की चिकित्सा ने बीमारी की जड़ और मजबूत कर दी और आज दस-बारह दिन से उसका दाना-पानी छूट गया था। मौत के इंतजार में खाट पर पड़ा कराह रहा था। और अब वह दशा हो गयी थी जब हम भविष्य से निश्चिंत होकर अतीत में विश्राम करते हैं, जैसे कोई गाड़ी आगे का रास्ता बन्द पाकर पीछे लौटे। रजिया को याद करके वह बार-बार रोता और दासी को कोसता—तेरे ही कारण मैंने उसे घर से निकाला। वह क्या गयी, लक्ष्मी चली गयी। मैं जानता हूं, अब भी बुलाऊं तो दौड़ी आयेगी, लेकिन बुलाऊं किस मुंह से ! एक बार वह आ जाती और उससे अपने अपराध क्षमा करा लेता, फिर मैं खुशी से मरता। और लालसा नहीं है।

सहसा रजिया ने आकर उसके माथे पर हाथ रखते हुए पूछा—कैसा जी है तुम्हारा ? मुझे तो आज हाल मिला।

रामू ने सजल नेत्रों से उसे देखा, पर कुछ कह न सका। दोनों हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया, पर हाथ जुड़े ही रह गए और आंख उलट गयी।

7

लाश घर में पड़ी थी। रजिया रोती थी, दसिया चिन्तित थी। घर में रुपये का नाम नहीं। लकड़ी तो चाहिए ही, उठाने वाले भी जलपान करेंगे ही, कफन के बगैर लाश उठेगी कैसे। दस से कम का खर्च न था। यहां घर में दस पैसे भी नहीं। डर रही थी कि आज गहनों पर आफत आयी। ऐसे कीमती भारी गहने ही कौन थे। किसान की बिसात ही क्या, दो-तीन नग बेचने से दस मिल जायेंगे। मगर और हो ही क्या सकता है। उसने चौधरी के लड़के को बुलाकर कहा—देवरजी, यह बेड़ा कैसे पार लगे ! गांव में कोई धेले का भी विश्वास करने वाला नहीं। मेरे गहने हैं। चौधरी से कहो, इन्हें गिरों रखकर आज का काम चलायें, फिर भगवान् मालिक हैं।

"रजिया से क्यों नहीं मांग लेती ?"

सहसा रजिया आंखें पोंछती हुई आ निकली। कान में भनक पड़ी। पूछा—क्या है जोखू, क्या सलाह कर रहे हो ? अब मिट्टी उठाओगे कि सलाह की बेला है ?

"हां, उसी का सरंजाम कर रहा हूं।"

"रुपये-पैसे तो यहां होंगे नहीं। बीमारी में खर्च हो गए होंगे। इस बेचारी को तो उन्होंने बीच मंझधार में लाकर छोड़ दिया। तुम लपककर उस घर चले जाओ भैया! कौन दूर है, कुंजी लेते जाओ। मजूर से कहना, भंडार से पचास रुपया निकाल दे। कहना, ऊपर की पटरी पर रक्खे हैं।

वह तो कुंजी लेकर उधर गया, इधर दसिया राजो के पैर पकड़कर रोने लगी। बहनापे के ये शब्द उसके हृदय में बैठ गए। उसने देखा, रजिया में कितनी दया, कितनी क्षमा है।

रजिया ने उसे छाती से लगाकर कहा—क्यों रोती है बहन ? वह चला गया। मैं तो हूं। किसी बात की चिन्ता न कर। इसी घर में हम और तुम दोनों उसके नाम पर बैठेंगी। मैं वहां भी देखूंगी, यहां भी देखूंगी। धाप भर की बात ही क्या ? कोई तुमसे गहने-पाते मांगे तो मत देना।

दसिया का जी होता था सिर पटककर मर जाए। इसे उसने कितना जलाया, कितना रुलाया और घर से निकालकर छोड़ा।

रजिया ने पूछा—जिस-जिसके रुपये हों, सुरत करके मुझे बता देना। मैं झगड़ा नहीं रखना चाहती। बच्चा दुबला क्यों हो रहा है ?

दसिया बोली—मेरे दूध होता ही नहीं। गाय जो तुम छोड़ गयी थीं, वह मर गयी। दूध नहीं पाता।

"राम-राम ! बेचारा मुरझा गया। मैं कल ही गाय लाऊंगी। सभी गृहस्थी उठा लाऊंगी। वहां क्या रखा है।"

लाश धूम से उठी। रजिया उसके साथ गयी। दाहकर्म किया। भोज हुआ। कोई दो सौ रुपये खर्च हो गए। किसी से मांगने न पड़े।

दसिया के जौहर भी इस त्याग की आंच में निकल आये। विलासिनी सेवा की मूर्ति बन गई।

8

आज रामू को मरे सात साल हुए हैं। रजिया घर सम्हाले हुए है। दसिया को वह सौत नहीं, बेटी समझती है। पहले उसे पहनाकर तब आप पहनती है। उसे खिलाकर आप खाती है। जोखू पढ़ने जाता है। उसकी सगाई की बातचीत पक्की हो गयी है। इस जाति में बचपन में ही ब्याह हो जाता है। दसिया ने कहा—बहन, गहने बनवाकर क्या करोगी। मेरे गहने तो धरे ही हैं।

रजिया ने कहा—नहीं री, उसके लिए नये गहने बनवाऊंगी। अभी तो मेरा हाथ चलता है। जब थक जाऊं, तो जो चाहे करना। तेरे अभी पहनने-ओढ़ने के दिन हैं, तू अपने गहने रहने दे।

नाइन ठकुरसोहाती करके बोली—आज जोखू के बाप होते, तो कुछ और ही बात होती।

रजिया ने कहा—वे नहीं हैं, तो मैं तो हूं। वे जितना करते, मैं उसका दूना करूंगी। जब मैं मर जाऊं, तब कहना जोखू का बाप नहीं है !

ब्याह के दिन दसिया को रोते देखकर रजिया ने कहा—बहू, तुम क्यों रोती हो? अभी तो मैं जीती हूं। घर तुम्हारा है। जैसे चाहो रहो। मुझे एक रोटी दे दो, बस। और मुझे क्या करना है। मेरा आदमी मर गया। तुम्हारा तो अभी जीता है।

दसिया ने उसकी गोद में सिर रख दिया और खूब रोई—जीजी, तुम मेरी माता हो। तुम न होतीं, तो मैं किसके द्वार पर खड़ी होती। घर में तो चूहे लोटते थे। उनके राज में मुझे दुःख-ही-दुःख उठाने पड़े। सोहाग का सुख तो मुझे तुम्हारे राज में मिला। मैं दुःख से नहीं रोती, रोती हूं भगवान् की दया पर कि कहां मैं और कहां यह खुसियाली!

रजिया मुस्कराकर रो दी।

[हिन्दी कहानी। हिन्दी मासिक पत्रिका 'विशाल भारत', दिसम्बर, 1931 में प्रकाशित। 'गुप्तधन' भाग-2 में संकलित। उर्दू रूप इसी शीर्षक से 'चन्दन', जनवरी, 1932 में प्रकाशित।]

